# प्रमुख देशों की शासन प्रणालियाँ

# प्राक्कथन

राष्ट्र भाषा के पद पर आसीन होने के उपरान्त हिन्दी साहित्य में एक नवीन युग का आविर्भाव हो रहा है। हिन्दी का महत्व प्रत्येक क्षेत्र में उत्तरोत्तर बढ़ने के साथ ही हिन्दी भाषा भाषियों और हिन्दी के हित चिन्तकों पर नित नयी जिम्मेदारिया आती जा रही हैं। वास्तव में हिन्दी का भविष्य और उसकी मान मर्यादा का मूल्यांकन इन जिम्मेदारियों के भली भांति पूरे होने पर ही निर्भर है। विभिन्न विषयों पर हिन्दी साहित्य में आधुनिक दृष्टिकोण का समावेश करने का भार बहुत कुछ हमारे विश्व विद्यालयों पर है। विश्व विद्यालय बौद्धिक विकास के केन्द्र माने गये हैं और वहीं से समाज को कला और विज्ञान के क्षेत्र में प्रेरणा प्राप्त होती है। अब तक हमारे विश्व विद्यालयों में अपने हृदय के भाव अपनी भाषा में प्रकट करने की शिक्षा नहीं दी जाती रही है। हमारे मानसिक विकास पर इसका अत्यन्त घातक प्रभाव पड़ा है। विद्यार्थियों और अध्यापकों का अधिकाश समय तो अपने विचारों को अंग्रेजी में सुन्दरतापूर्वक व्यक्त करने की कला को सीखने में ही खप जाता है और उन्हें स्वतन्त्र और स्वाभाविक रूप से विचार करने का अवकाश ही नहीं मिल पाता। इस तथ्य को विश्व विद्यालय कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है। इस प्रकार की शिक्षा से जो कुछ ज्ञान वृद्धि हुई भी है, उसका शतांश लाभ भी सर्व साधारण को नहीं मिल सका है। खेती सरीखे विषयों पर वृहत् ग्रन्थ अंग्रेजी में प्रकाशित किये जा रहे हैं, परन्तु उनका उपयोग जनता के लिये कुछ भी नहीं है। किन्तु अब इस मूल को सुधारने के लिये व्यापक प्रयत्न किये जा रहे हैं। कई विश्व विद्यालयों ने मातृ भाषा द्वारा ही ज्ञानदान का संकल्प करके इस सुधार-मार्ग को और भी प्रशस्त बना दिया है।

विश्व विद्यालयों द्वारा हिन्दी को शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार कर लेने से एक नितान्त नयी दिशा में कार्य करने की आवश्यकता उत्पन्न हो गई है। अभी तक हमारा हिन्दी जगत समाज शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि विविध विषयों के सम्बन्ध में अत्यन्त अविकसित है। हिन्दी में इन विषयों पर जो पुस्तकें हैं भी, वे मुख्यत अन्य भाषाओं की प्रति छाया मात्र ही हैं। इन पर हिन्दी में आधुनिक विचारधाराओं को लेकर

मौलिक पुस्तकें तो नहीं के बराबर ही लिखी गई हैं। निस्सन्देह हिन्दी में अनुवादों का अपना एक स्थान है और उनकी उपादेयता भी सन्देह से परे है। उदाहरणार्थ बंगला, मराठी, गुजराती, अङ्गरेजी और फ्रेंच से अनुवादित कविताओं, कहानियों और उपन्यासों ने हिन्दी साहित्य में नवीन लेखन शैलियों तथा विचार धाराओं को जन्म दिया है। किन्तु अनुवादित साहित्य एक प्रकार से मांगी हुई वस्तु होती है, उसमें जाति की प्रकृति दृष्टिगोचर नहीं होती। वह तो पर-जाति की भावनाओं और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति का साधन-मात्र होता है। कोई भी भाषा इस प्रकार के मांगे हुये साहित्य से परिपुष्ट और गौरवमयी नहीं हो सकती। यह तो तभी सम्भव है, जब कि लेखकगण मौलिक रूप से हिन्दी में मनन करें और हिन्दी में ही लिखें, विचारों तथा लेखनी में ओज और स्वाभाविकता भी तभी आ सकती है।

इस समय विश्व विद्यालयों में अङ्गरेजी में पाठ्य पुस्तकों का स्थान लेने के लिये उच्च कोटि की हिन्दी की पुस्तकों की अत्यधिक आवश्यकता है। मौलिक पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आरम्भ में हमें अनुवादों का ही सहारा लेना होगा। स्वतन्त्र साहित्य की रचना का युग सम्भवतः अनुवाद-युग के बाद ही आयेगा। इस सम्बन्ध में बहुत से मनीषी महानुभाव मातृ-भाषा द्वारा राष्ट्र-सेवा करने के लिये इस क्षेत्र में उतर पड़े हैं। यह हिंदी का सौभाग्य ही है। इनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। परन्तु उन्हें विद्यार्थी जीवन में हिन्दी की अच्छी शिक्षा न मिलने के कारण, वे अपनी भाषा में अपने विचार और भाव प्रकट करने की शक्ति भली भांति विकसित नहीं कर सके हैं। वे मूल के शब्दों और शब्दार्थों पर ही सबसे अधिक ध्यान रखते हैं, भावार्थ उनकी दृष्टि के सामने प्राय आने ही नहीं पाते। उनकी कृतियों में शब्द तो हिन्दी—वे भी कभी कभी अशुद्ध और अहिन्दी होते हैं, किन्तु वाक्य विन्यास, लेखन शैली और मुहावरे प्राय अङ्गरेजी से उधार लिये होते हैं। डा० ब्रजमोहन शर्मा की प्रस्तुत पुस्तक भी इसी प्रकार का एक प्रयास है। उन्होंने इस समय प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों पर योग्यतापूर्ण पुस्तक लिखकर हिन्दी और विशेषकर विश्व विद्यालयों के छात्रों की बड़ी सेवा की है। इस समय हमारा देश एक लोकतन्त्रात्मक युग में पदार्पण कर रहा है। हमें अपने नवनिर्मित विधान को सफल बनाने के लिये

समस्त देशवासियों में लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली के प्रति आस्था और श्रद्धा का भाव जाग्रत करना होगा। देश में इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न करने के लिये काफी समय तक धैर्यपूर्वक कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता है। मेरा विचार है, संसार के अन्य प्रमुख देशों की शासन प्रणालियों का इतिहास और कार्य-कलाप का अध्ययन, इस सम्बन्ध में अत्यन्त फलदायक होगा। इसके द्वारा हमें यह भी ज्ञात हो जायगा कि जिन परम्पराओं को हम भारत में स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उन्हें अन्य देशवासी अपने देशों में किस प्रकार स्थापित कर सके हैं। डा० शर्मा की यह पुस्तक सर्वसाधारण और विशेषकर विद्यार्थियों तथा उन लोगों के लिये, जिन्हें अन्य भाषाओं का ज्ञान नहीं है अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इस सम्बन्ध में उनका प्रयास प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। पुस्तक के प्रारम्भ में प्रथम तीन अध्यायों में 'वैधानिक सरकार', 'संत्र शासन का सिद्धान्त' तथा 'सरकार के स्वरूप और कर्त्तव्य' का निरूपण कर देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। यदि डाक्टर साहब ने स्थान-स्थान पर अन्य देशों के विधानों का भारत के नवीन विधान के साथ तुलनात्मक विश्लेषण कर दिया होता, तो निस्संदेह सोने में सुगन्ध आ जाती।

पुस्तक की भाषा पर अंग्रेजी की छाया स्पष्ट है। भाषा कहीं कहीं गुट्ठल हो गई है और उसमें प्रवाह की भी कमी है। अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों में बहुत से पर्याय भारतीय विधान परिषद् द्वारा स्वीकृत पर्यायों से भिन्न हैं और कुछ स्थलों पर अंग्रेजी के एक ही शब्द के लिये कई पर्याय अनिश्चित रूप से प्रयोग किये गये हैं। पाठकों और विशेषकर विद्यार्थियों को इससे किंचित असुविधा होना स्वाभाविक ही है, परन्तु हिन्दी के पर्याय के साथ कोष्टक में अंग्रेजी का पारिभाषिक शब्द दे देने के कारण, आशा है, यह कठिनाई काफी कम हो जायगी।

हिन्दी जगत में इस समय ऐसी पुस्तकों की अत्यधिक कमी है। मुझे विश्वास है, डा० शर्मा की यह पुस्तक इस कमी को पूरा करने में सहायक होगी और साथ ही अन्य लेखकों तथा अध्यापकों को इस प्रकार की पुस्तकें लिखने की सद् प्रेरणा प्रदान करेगी।

लखनऊ,
२६ अप्रैल, १९५० ई०

चन्द्रभानु गुप्त

# दो शब्द

—:*:—

गत तीन वर्षों में भारत मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं, विशेषतया राजनीतिक क्षेत्र में इनका प्रभाव भारतीयों के जीवन के प्रत्येक पहलू पर पड़ा है। साहित्यिक क्षेत्र में भी जो जागति और उन्नति हो रही है उससे आशा की जा सकती है कि भारतीय भाषाओं मे और विशेषतया हिन्दी भाषा में, जो राष्ट्रीय भाषा मान ली गई है, साहित्य के प्रत्येक अङ्ग पर नित नयी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। जैसा कि माननीय चन्द्रभानु गुप्त ने प्राक्कथन में कहा है, विश्वविद्यालय के अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है (और मैं तो इसे उनका धर्म ही कहूंगा) कि वे हिन्दी में उन विषयों पर पुस्तकें लिखें जो विश्वविद्यालय में पाठविधि के ही लिए उपयोगी सिद्ध न हों, वरन् जनसाधारण में भी ज्ञानवृद्धि करने मे सहायक हों।

हिन्दी भाषा में राजनीति विषय पर अभी तक अधिक नहीं लिखा गया है। विश्वविद्यालय में राजशास्त्र का अध्यापक होने की हैसियत से मैंने अपना यह कर्त्तव्य समझा कि मैं अपनी शक्ति का कुछ भाग हिन्दी साहित्य की सेवा में लगा दूँ। इसी कारण मैंने 'संसार के प्रमुख देशों की शासन प्रणालियाँ' लिखने का उद्योग किया। इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में ऐसी पुस्तकें लिखने मे अनेक कठिनाइयाँ होंगी और इसी कारण पुस्तकों में त्रुटियाँ रह जाना भी आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दी मे पारिभाषिक शब्दों का उस समय तक अभाव ही था जिस समय यह पुस्तक लिखी गई है। भारतीय भाषाओं के विशेषज्ञों ने हिन्दी पर्यायों को जिस समय निश्चित् रूप से स्वीकार किया था उसके पूर्व ही यह पुस्तक तीन-चौथाई से अधिक मुद्रित हो चुकी थी। उन पर्यायों के स्थान पर मैंने उन्हीं पारिभाषिक

शब्दों का प्रयोग किया जो साधारणतया प्रचलित थे अथवा पाठकों की समझ में आ सकते थे, अगले संस्करणों में सर्वमान्य पर्यायों का ही प्रयोग होगा। पुस्तक की अन्य त्रुटियों को भी दूर करने का मैं प्रयत्न करूंगा। जो सज्जन इस कार्य में मुझे त्रुटियाँ बताकर अथवा अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर सहायता देंगे उनका मैं आभारी हूँगा।

मैं माननीय चन्द्रभानु जी गुप्त को विशेषतया धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने अपने बहुमूल्य समय को देकर पुस्तक को पढ़ा और प्राक्कथन लिखा। मैं उन्हें आश्वासन देता हूँ कि अगले संस्करण में मैं पुस्तक की त्रुटियों को दूर करने का प्रयास करूंगा।

राजशास्त्र विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
१ मई १९५०

ब्रजमोहन शर्मा

## समर्पण !

हिन्दी के परम-प्रेमी तथा उच्च-शिक्षा के समर्थक

राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान्

**माननीय श्री चन्द्रभानु गुप्त**

मंत्री

उत्तर प्रदेश सरकार

को

सादर समर्पित !

—ब्रजमोहन शर्मा

# विषय-सूची

४८८

१. जापान की सरकार।

देश का परिचय—शासन-विधान का इतिहास—प्राचीन काल—तोकू गावा—शोगून काल—मीजी युग (The Meiji Era)—जापान में पश्चिमी विचारों का प्रवेश—पश्चिमी विचारों का प्रभाव—सम्राट को शपथ का महत्व—जापानी संस्थाओं पर जर्मनी का प्रभाव—पीयरों का बनाना—मन्त्रिपरिषद् का संगठन—सन् १८८६ के शासन विधान की विशेषतायें—लिखित प्रकार—कठोरता (Rigidity)—प्रचलित प्रथा का प्रभाव-सबल राजतन्त्र—केन्द्रित पद्धति—पाश्चात्य राजनैतिक संस्थाओं का अपनाना—जैनरो—सन् १८८६ के शासन-विधान की उपक्रमा—शासन-विधान सम्राट का उपहार—सरकार की अध्यादेश निकालने की शक्ति—राजा की कार्यकारी शक्तियां—राजा की न्यायकारी शक्तियां—प्रजा के अधिकार और कर्त्तव्य—मन्त्रिपरिषद्—डाइट—प्रिवी कौंसिल—लार्ड प्रवी-सील (Lord Privy Seal)—विधान मण्डल द्विगृही प्रणाली—हाउस आफ पीयर्स में निम्नलिखित ६ श्रेणियों के दो सदस्य होते थे—विधान मन्डल की शक्ति—आय व्यय पर नियन्त्रण—राजनीतिक पक्ष—न्यायपालिका—न्यायालय के प्रकार—पञ्चप्रणाली—सैनिक न्यायालय—स्थानीय शासन—प्रिफैक्चर—बड़े नगर—ग्राम और छोटे नगर—केन्द्रीय नियन्त्रण—सन् १९४६ का शासन-विधान—नया संविधान कैसे बना—संविधान में जनता के अधिकार—विधान मण्डल—द्विगृही मण्डल—डाइट का अधिवेशन—प्रतिनिधि सदन का विघटन—कार्यपद्धति—अधिनियम कैसे बनते हैं?—संविधान संशोधन—कार्यपालिका—सम्राट—मन्त्रिपरिषद्—अधिनियमों को कार्यान्वित करना—न्यायपालिका—सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति—स्थानीय शासन—आर्थिक प्रावधान—पाठ्य पुस्तकें—

# प्रमुख देशों की शासन प्रणालियां

## अध्याय १

### वैधानिक सरकार

'यह कहने की आवश्यकता नही कि आदर्श शासन पद्धति वह नही जो सब सभ्य राष्ट्रो में वाछनीय और साध्य हो पर वह है जो जिन परिस्थितियो में वाछनीय और साध्य समझी जाती है उनमें उससे अधिक से अधिक निकटवर्ती व दूरवर्ती लाभ होता हो। एक पूर्ण प्रजातन्त्र सरकार ही ऐसी सत्ता है जो आदर्श सत्ता कहलाने की अधिकारी है'—(जे० एस० मिल)

**राज्य समाज का सबसे उन्नत रूप है**—मनुष्य ने अपने जीवन के विभिन्न स्वरूपो को तरह तरह के समुदाय बनाकर व्यक्त किया है, पर समाज का राजनैतिक सगठन करने में उसने मानव चतुरता की पराकाष्ठा कर दी है। इस प्रक्रिया में बहुत से प्रयोग किये गये। आरम्भ में पर्यटनशील टोलियो से लेकर पशु चराने वाली जातिया, कुटुम्ब समुदाय और अन्त में आधुनिक राजनैतिक समाज का विकास हुआ। ऐसे सामाजिक जीवन में ही मनुष्य ने अपना पूर्ण विकास पाया है और साथ साथ उन लागो का हित साधन किया है जिनसे उसका कौटुम्बिक, सास्कृतिक और आर्थिक सम्बन्ध है।

ऐसे ही समाज मे, जिसको हम राज्य कह कर पुकारते है, सभ्यता का विकास, विज्ञान की वृद्धि, कला की प्रगति, सिद्धान्तो का प्रतिपादन व व्याख्या और प्रगतिशील मानव का निर्माण सम्भव है।

मानव जाति अपने इतिहास के बहुत से उतार-चढावो के पश्चात् अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुची है। मानवजाति को कई घातो और प्रतिघातो के बीच से होकर निकलना पडा है। सभ्यता प्राकृतिक-मनुष्य का वह भार है जो उसने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये थोडा थोडा करके लाद लिया है। इसीलिये सस्कृति मानव इतिहास का विस्तृत लेख है।

**राज्य का ऐतिहासिक आधार**—मानव समुदायों का अध्ययन करने में यह आवश्यक है कि उनकी ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर बराबर दृष्टि रखी जाय। इन ऐतिहासिक घटनाओं की जटिलता ऐसी है कि किसी मानव समाज या जाति की संस्कृति को समझने के लिये यह जानना आवश्यक है कि वह समाज भिन्न भिन्न विशिष्ट अवस्थाओं व परिस्थितियों में रहा है। इसलिये किसी समाज के आचरण को केवल मनोवैज्ञानिक आधार पर समझ कर उसकी वर्तमान संस्कृति के रूप को प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता।

व्यक्ति में अपनी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों की क्या मानसिक प्रतिक्रिया होती है, इसका चाहे हमको कितना ही अधिक ज्ञान क्यों न हो जाय पर केवल मनोविज्ञान की सहायता से हम किसी समाज की संस्कृति का सच्चा रूप स्थिर करने में सफल नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त विश्व में जो वातावरण आदि की विविधता है, बहुत कुछ उसके ही कारण मानव संस्थाओं, उनके मूल तत्वों, प्रकारों और सिद्धान्तों में भेद है।

**विधान ही सामाजिक संगठन की रूप-रेखा का द्योतक है**—मानव संस्थाओं का सबसे अधिक व्यापक गुण व्यक्तियों और संस्थाओं के बीच शक्ति-मूलक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को विधान द्वारा स्पष्ट किया जाता है। विधान में सत्ता के आधारभूत सिद्धान्तों का ही समावेश नहीं होता पर उसमें राजनैतिक संगठन की रूपरेखा भी निश्चित कर दी जाती है। अर्थात् उसमें यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि सरकार किस प्रकार बनाई जायगी और उसका कार्यक्रम किस प्रकार का होगा। मानव इतिहास के भिन्न भिन्न विकास युगों में विभिन्न शासन पद्धतियां प्रचलित रही हैं। पुरानी और आजकल की शासन पद्धति का सबसे प्रमुख भेद यह है कि जहां प्राचीन काल में लोगों की कुल संख्या का एक बहुत थोड़ा अंश राज्य कार्य में सम्मिलित होता था वहां अब प्रवृत्ति यह है कि राज्य कार्य में सम्मिलित होने का अधिकार प्रत्येक ऐसे पुरुष या स्त्री को हो, जो परिपक्व बुद्धि रखता हो और प्रत्येक समूह या जाति का हो, अर्थात् जो राज्य निष्ठ हो।

इससे स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य अपने लिये ऐसे विधान की रचना करता है जो उसकी भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो। ये परिस्थितियां सब जगह एकसी नहीं हैं इसलिये सब राष्ट्रों के विधान भी एक से नहीं हैं। इसी विभिन्नता के कारण भिन्न भिन्न शासन प्रणालियां

संसार में प्रचलित है। किसी भी मानव समूह की समृद्धि अधिकतर उसके राजनैतिक सगठन और शासन पद्धति पर निर्भर है। आचार्य बर्क ने कहा था कि "सरकार मानव बुद्धि का वह आविष्कार है जिसको उसने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये बनाया है, मनुष्यो का यह नैसर्गिक अधिकार है कि यह बुद्धि या अनुभव-जन्य ज्ञान उसकी इच्छाओं की पूर्ति होने की उचित व्यवस्था करे।" इस कथन में बुद्धि या अनुभव-जन्य ज्ञान शब्द महत्वपूर्ण है। यदि कोई सरकार बुद्धिमानो के अनुभव-जन्य ज्ञान पर आधारित नही है और व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने मे असमर्थ है तो वह सरकार एक कौड़ी की भी नही। कजिन (Cousin) का यह कथन सत्य है कि व्यक्तियो पर शासन उनकी सेवा करके ही किया जा सकता है, इस नियम में कोई अपवाद नही मिलता। शासन करना और सेवा करना ये दोनो विरोधी बाते मालूम होती हैं पर निस्सदेह ये शासन की आधुनिक कल्पना की द्योतक हैं। इस कल्पना को तब तक कार्यरूप मे परिणत करना कठिन है जब तक राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को, उनकी निर्विरोध एकता की नींव पर, दृढता से व स्थायी रूप में नही स्थिर किया जाता। मानव सुख के लिये केवल यह पर्याप्त नही कि किसी विशेष समय पर ऐसी सरकार हैं जो सब प्रकार से अच्छी है। उसके लिये इस बात की आवश्यकता है कि सरकार का सगठन किस प्रकार होता है और शासन पद्धति कैसी है। हम आचार्य पोप के इस कथन का आजकल बिल्कुल आदर नही कर सकते कि मूर्ख ही शासन पद्धति के बारे में लडते भिडते है, जो सरकार अच्छा शासन करती है वही अच्छी है। सरकार में कौन कौन व्यक्ति शासन सूत्र को हाथ मे लिये हुये हैं और शासन प्रणाली कैसी है? इन दोनो का उतना ही महत्व है जितना कि उनके शासन प्रबन्ध की अच्छाई या बुराई। इससे स्पष्ट है कि राज्य में ऐसा सगठन होना चाहिये, जिसमें शासितो के ही हाथ मे राज्यशक्ति हो और वे अपनी बुद्धि के अनुसार उस शक्ति का सचालन करने में स्वतन्त्र हों। आत्म अनुशासन से ही जीवन सुधरता है और राज्य का उद्देश्य जीवन को सुधार कर उन्नत करना है। आत्म-अनुशासन राज्य सगठन में तभी होगा जब सरकार लोक प्रतिनिधियो की होगी और वह लोकसम्मति से ही शासन करेगी, अर्थात् जब प्रजा का सरकार पर पूर्ण नियत्रण होगा। प्रजातन्त्रात्मक शासन में यह आवश्यक है कि राज्य शक्ति को लोकहित की दृष्टि से मर्यादित कर दिया जाय और इस पर नियत्रण रखा जाय। इसी उद्देश्य से आधुनिक सरकार किसी विधान से मर्यादित रहती है।

**संविधान की परिभाषा**--प्रसिद्ध राजशास्त्री ब्राइस ने कहा है कि किसी राज्य या राष्ट्र का सविधान वे नियम या विधि है जो उसकी सरकार का

रूप निश्चित करते हैं और इस सरकार के नागरिकों के प्रति क्या कर्तव्य हैं और क्या अधिकार हैं इसका निर्णय करते हैं । पैले (Paley) के अनुसार किसी देश के विधान से उन नियमों का निर्देश है जिनका सम्बन्ध, देश के व्यवस्थापक मण्डल के गठन रूप, व्यवस्थापक-मण्डल के भिन्न भिन्न अवयवों के पारस्परिक सम्बन्ध और न्यायालयों के बनाने व उनके अधिकार क्षेत्र से है । विधान राज्य विधि का ही एक प्रमुख विभाग है जिसको दूसरी विधियों से इसी आधार पर पृथक् किया जा सकता है कि यह राज्य संगठन के एक प्रमुख व महत्वशाली विषय से सम्बन्धित है, जिनसे राज्यशक्ति के सूत्रधारों का परिचय और उनके पारस्परिक सम्बन्धों का नियमन होता है, या जो उस रीति का क्रम निर्णय करते हैं जिससे राज्य-सत्ता या सत्ताधारी अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं । गिलक्रिस्ट (Gilchrist) ने उन लिखित या अलिखित विधियों को *संविधान कहा है जिनसे* राज्यसत्ता के संगठन की रूप-रेखा निश्चित होती है या जो सरकार के विभिन्न अंगों में राज्यशक्ति वितरण को तथा उन सिद्धान्तों को निश्चित करते हैं जिनके अनुसार *इस राज्यशक्ति का संचालन हो । यह स्पष्ट है कि* संविधान में हमें किसी समाज की उन राजनैतिक संस्थाओं का चित्र देखने को मिलता है जिनमें रह कर उस समाज के व्यक्ति अपना जीवन बिताते हैं । इस चित्र में केवल मोटा आकार ही दिखाई देता है, उसके भीतर भरे हुये विविध रंग दिखाई नहीं पड़ते । इन रंगों को समझने के लिये हमें कुछ और प्रयत्न करना पड़ेगा । हमें उस राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करना पड़ेगा, उसकी संस्कृति की परम्परा जाननी होगी और उसके प्राचीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर अपनी दृष्टि डालनी पड़ेगी ।

**संविधान की आवश्यकता**—मानव इतिहास के लम्बे समय में कई युग हुये हैं जिनकी अपनी अपनी पृथक विशेषतायें रही हैं । सुदूर अतीत काल में जिसका धुंधला ज्ञान अब हमें पुरातत्वज्ञों या पुराविशेषज्ञों के आविष्कारों से होता जा रहा है, हमें कठिनता से कोई ऐसे नियम मिलते हैं जो मनुष्य की प्रतिभा या कर्तव्य शक्ति के परिचायक हों । कदाचित् वह समय ऐसा था जब दंड का जोर था और मत्स्यन्याय की प्रबलता थी । अर्थात् जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार एक व्यक्ति दूसरे को कुचल कर अपना हित साधन करता था । ऐसी अवस्था में जो अधिक शक्तिशाली था वही अपनी जीवन-रक्षा कर सकता था । सबसे शक्तिशाली जीव ही की जीवन संघर्ष में जीत होती है, उस समय निस्सन्देह व्यावहारिक रूप में दिखाई पड़ता होगा । उस समय में सिद्धान्तों व नियमों का शासन न होता

था, पुरुष विशेष ही शासन करता था। उसकी आज्ञा का पालन इसलिये किया जाता था क्योकि वह अपने बल प्रयोग द्वारा दूसरो को अपने आधीन कर निरंकुश होकर उनसे काम करा सकता था और अपने नियन्त्रण में विभिन्न वर्गो या व्यक्ति समूहो को रखने मे समर्थ था। पर जैसे जैसे मानव बुद्धि का विकास हुआ और बर्बर मनुष्य सभ्य हुआ, शताब्दियो पश्चात् जब देह-बल के स्थान पर बुद्धि-बल व विवेक की प्रधानता हुई, तब एक नये युग का श्री गणेश हुआ और मानव ने उस युग में पदार्पण किया। इस नये युग मे प्राचीन क्रम बिलकुल उल्टा हो गया और पुरुष विशेष के स्थान पर नियमो का शासन होने लगा। राजा के साथ साथ समाज के दूसरे व्यक्ति भी शासन में भाग लेने लगे। इसी समय वैधानिक सरकार की भी उत्पत्ति हुई और शासन कार्य व उसकी पद्धति बुद्धि गम्य होने लगी।

**संविधान का इतिहास**—यूरोप में सबसे प्रथम यूनानी दार्शनिको ने इस ओर ध्यान दिया कि राज्य का रूप क्या होना चाहिये। उन्होने राज्यतन्त्र के मूल-तत्त्वो पर विचार किया और उन तत्त्वो के अनुसार राज्य का सगठन कैसा होना चाहिये, किन व्यक्तियो के हाथ में राज्य शक्ति रहनी चाहिये और उनको उस शक्ति का किस उद्देश्य से प्रयोग करना चाहिये, इन सब बातो की विस्तृत विवेचना की। प्लेटो और विशेषकर अरस्तू ने विभिन्न राज्य सस्थाओ का वर्गीकरण किया और उस वर्गीकरण के आधारभूत सिद्धान्तो को बतला कर उन राज्य सगठनो की आलोचना की। उन्होने यह स्थिर किया कि राज्य मे किन नियमो की आवश्यकता होती है। उनके पश्चात् पन्द्रह शताब्दियो तक बराबर यह प्रयत्न होता रहा कि राज्य को एक सुसगठित सस्था किस प्रकार बनाया जाय जिसके निवासियो म सामाजिक और सास्कृतिक विरोधाभाव हो और जो सद्भाव और प्रेमपूर्वक मिलकर रह सके। ऐसे राज्य सगठन का विकास धीरे धीरे हुआ। जागीरदारी प्रथा के समाप्त होने पर एक नई विचार-धारा का आविर्भाव हुआ, जिसने निरकुश शासन की जड हिला दी और राज्य के प्रति प्राचीन मनोवृत्ति क्रान्तिकारी हलचल और परिवर्तन कर दिया। उस हलचल के फलस्वरूप राजनैतिक जीवन को ये ज्ञात व ज्ञातव्य सिद्धान्तो के आधार पर सुदृढ बनाने में बडा प्रोत्साहन मिला।

यूरोप में इग्लैण्ड ऐसा देश था जहा सबसे प्रथम प्रजा के अधिकारो की प्रधानता को मान्य कराने का प्रयास किया गया और इस विचार को दृढ बनाया गया कि राज्य में प्रजा का ही अधिक महत्व है और राज्य-कार्य लोक

सम्मति से ही चल सकता है और चलना चाहिये । इसलिये वैधानिक शासन पद्धति का जन्म पहले पहल इंगलैण्ड में हुआ । उसके पश्चात् इसका प्रचार यूरोप के दूसरे देशों में, अमरीका में और विश्व के दूसरे राष्ट्रों में हुआ और यह पद्धति सर्वत्र अपना ली गयी ।

वैधानिक सरकार इसलिये ऐसी शासन पद्धति है जिसमें नियमों के अनुसार शासन कार्य होता है । शासकों की सनक, व उनकी स्वेच्छाचारिता की प्रभुता नहीं होती वरन् प्रजा के योग-क्षेम का विचार ही राजनैतिक संगठन की रूप रेखा निश्चित करता है । इतना ही नहीं, प्रजा थोड़ा या बहुत राजकाज में भाग लेती है और राजनीति, शासन नीति तथा शासकों पर अपने नियंत्रण रखती है ।

**इंगलैण्ड में संविधान का विकास**—इंगलैण्ड में 'कन्स्टीटयूशन' या संविधान शब्द का प्रयोग सबसे प्रथम उन प्राचीन प्रचलित रीति रिवाजों के लिये किया गया था जिनकी वहां के तत्कालीन राजा ने अपनी परिषद् की सम्मति से घोषणा की थी । हेनरी द्वितीय ने सन् ११६४ ई० में ऐसे नियमों का प्रचार किया जिनसे उस समय की लौकिक और धार्मिक न्याय संस्थाओं का पारस्परिक सम्बन्ध निश्चित हुआ । ये नियम क्लेरेण्डन के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Clarendon) के नाम से प्रसिद्ध हैं । ये कोई नये नियम न थे जिनका नये सिरे से निर्माण किया गया था । वे तो केवल पुरानी प्रचलित प्रथायें थीं जिनको लिखित रूप में लाया गया था और यथाविधि घोषित कर दिया गया था । यही बात उन प्रविधानों के सम्बन्ध में भी लागू होती है जिनकी घोषणा १२१५ ई० में जोन नामक राजा से उसके जागीरदारों ने करवाली थी । मैग्ना कार्टा (Magna Carta) में ऐसी ही मौलिक या प्रायमिक रीति रिवाजों का विस्तृत वर्णन था । इस प्रलेख में केवल उन रीति-रिवाजों की परिभाषा कर दी गई थी । कोई नये नियम या विधियां प्रतिपादित नहीं किये थे । इनको भी क्लेरेण्डन के कन्स्टीट्यूशन्स के समान रनीमीड के कन्स्टीट्यूशन्स (Constitutions of Runnymede) कह सकते हैं । दोनों में कोई विशेष भेद नहीं है । पर इनका महत्व इसलिये माना जाता है कि उनके द्वारा राजा ने जो रीति रिवाजों एवं परम्पराओं के सामने आत्म समर्पण किया उससे वैधानिक सरकार का यूरोप में बीजारोपण हुआ । यह सिद्धान्त मान लिया गया कि राज्यतंत्र का आधार लोकसम्मति है । परन्तु आने वाली

शताब्दियो मे जो शासन नीति इगलैण्ड म मान्य हुई उसके आधारभूत सब सिद्धान्त इन विधानो और अधिकार पत्रो मे वर्णित नही हैं। समय समय पर इन प्रलेखो मे पारिभाषित रीति-रिवाजो एव परम्पराओ को दूसरे विधानो द्वारा स्वीकृत किया गया और उनमें नय सिद्धान्तो को जोड दिया गया। ये दूसरे विधान, आक्सफोर्ड के प्रविधान, (Provisions of Oxford) सन् १२५८ ई०, मार्टमेन का विधान (Statute of Mortmain) सन् १२७८ ई०, विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) सन् १२८५ ई० आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पश्चात् सन् १६४७ ई० में क्रौमवेल के सिपाहियो ने एक जनता का करार (Agreement of the People) बनाया और १६५३ ई० मे क्रौमवेल ने एक शासन विलेख (Instrument of Government) घोषित किया। यह अन्तिम विलेख एक विधिवत् लिखा हुआ सम्पूर्ण सविधान था। इसमें सविधान के अन्तर्गत जो प्रमुख बाते आती हैं उनका विस्तृत वर्णन था और विधान मण्डल तथा कार्यपालिका के अधिकारो का उल्लेख कर दिया गया था। इस सविधान के द्वारा एक अगरेज़ी प्रजातन्त्र राज्य की स्थापना करने का विचार था, जिसके व्यवस्थापक अधिकार एक विधान मण्डल को और एक आजीवन राष्ट्रपति को सुपुर्द थे। पर यह सविधान पार्लियामट ने कभी स्वीकार नही किया और क्रौमवेल की मृ यु के पश्चात् जब फिर राजतत्र की स्थापना हुई तब सम्राट् ने केवल यही घोषणा की कि इगलैण्ड का शासन फिर से उन्ही मौलिक रीति रिवाजो के आधार पर होगा जो प्राचीन काल में राज्य में प्रचलित थी। इस प्रकार लिखित और निर्मित शासन विधान के अनुभव का अन्त हुआ जिसका इगलैण्ड के इतिहास मे दूसरा उदाहरण नही मिलता यह सन् १६५३ ई० का विधान यूरोप के लिखित विधानो मे सबसे प्राचीन माना जाता है। इसके पूर्व इगलैण्ड की प्रजा को लिखित शासन विधान का अनुभव न था। इसीलिये तत्कालीन परिस्थितिओ में उसका अन्त भी तुरन्त ही होगया और उसकी जड जमने न पायी।

अमरीका में—स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद जब १३ अमरीकी उपनिवेश यह निश्चय करने बैठे कि उनके राष्ट्र का सविधान कैसा हो और यह निर्णय किया कि सविधान लिखित हो, उस समय उनके मन में उसी १६५३ के शासन विधान का चित्र खिचा हुआ था जो क्रौमवेल ने घोषित किया था। उनकी लिखित सविधान की कल्पना इसी पर आधारित थी। सविधान या "कन्स्टीट्यूशन" शब्द का प्रयोग के सत्रहवी शताब्दी के आरम्भ मे ही अपनी मौलिक विधियो के

लिये करते चले आ रहे थे, विशेषकर उन विधियों के लिये जिनसे उनका शासन संगठन प्रतिबन्धित था। इसी नाम का प्रयोग उन्होंने स्वतन्त्रता की घोषणा के पश्चात् उनके शासन विधान के लिये किया जो उन्होंने नये राष्ट्र के लिये अपनाया। इस प्रकार लिखित संविधान का जन्म सर्वप्रथम अमरीका में हुआ। पर संविधान या 'कन्स्टीट्यूशन' शब्द का जन्म-स्थान इंग्लैण्ड में ही है। अमरीका के १३ प्रदेशों ने उसे यहीं से लिया और उसको अधिक निश्चित रूप देकर अपनाया। अमरीका की देखा देखी और राष्ट्रों ने भी उस शब्द का ज्यों का त्यों प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। दक्षिणी कॅरोलीना प्रदेश का शासन-विधान लॉक (Locke) नामक राजनीतिज्ञ ने लिखा था और रोजर विलियम्स (Roger Williams) ने रोड द्वीप (Rhode Island) का संविधान बनाया था।

**यूरोप में**—अमरीका के पश्चात् लिखित संविधान बनाने का दूसरा प्रयत्न फ्रांस में किया गया। फ्रांस की राज्य क्रान्ति के समय १७६१ ई० में एक लिखित शासन विधान तैयार किया गया जो एक वर्ष से कम ही चल सका। उसके समाप्त होने के बाद सन् १७६२ से सन् १८१५ ई० तक कई लिखित संविधान तैयार हुये किन्तु समाप्त हो गये। जर्मनी में भी लिखित विधान का प्रचार हुआ और शायद इस प्रणाली को वहां फ्रांस की राज्यक्रान्ति से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला। सन् १८१५ से लेकर सन् १८३० ई० तक जर्मनी के छोटे छोटे कुछ उपराष्ट्रों ने लिखित संविधान पद्धति अपनाई थी किन्तु जर्मनी में लिखित संविधान की प्रथा असफल ही रही। सन् १८३० ई० में जब बेलजियम का नया राष्ट्र स्थापित हुआ तो वहां लिखित विधान का निर्माण हुआ। स्पेन के आधीन दक्षिणी अमरीका में जो उपनिवेश थे उन्होंने भी स्वतन्त्र होने पर वैधानिक शासन पद्धति अपनाई और लिखित संविधान तैयार किये। यूरोप में और भी कई राज्यों में लिखित विधान की प्रणाली का सन् १८४८ ई० की क्रान्ति से अधिक प्रोत्साहन मिला। प्रशिया और इटली में तभी से लिखित विधान की प्रथा आरम्भ हुई। सन् १८७० ई० में लगभग जो राष्ट्रीय एकता की भावना जागृत हुई और जिसके फलस्वरूप जर्मनी के छोटे छोटे राज्यों का एक राष्ट्र में एकीकरण हुआ, उससे भी कई लिखित संविधानों का जन्म हुआ। इनमें आस्ट्रिया-हंगरी और जर्मन साम्राज्य के लिखित विधान उल्लेखनीय हैं।

**दूसरे स्थानों में**—सन् १८८६ में जापान में एक लिखित शासन विधान की घोषणा हुई और जापान राज्य भी वैधानिक राज्यों में गिना जाने लगा। पिछले

कुछ ही वर्षों में टर्की, ईरान, चीन, मिश्र और ईराक में लिखित सविधान बनाये गये। सन् १९३२ ई० में स्याम में भी लिखित सविधान बना।

इस प्रकार लिखित सविधान बनाने की जिस प्रथा का अमरीका में सन् १७७६ में सूत्रपात हुआ वह बढते बढते सारे ससार में फैल गई। सयुक्त राष्ट्र अमरीका का शासन विधान वहा के कुछ उपराष्ट्रो के विधानो को छोडकर ससार में सबसे पुराना लिखित सविधान है और यद्यपि सन् १७८९ से लेकर जब उसको पहले पहल कार्यान्वित किया गया अब तक प्राय १६० वर्ष का समय बीत चुका है पर अब भी वह वैसा ही कार्यान्वित हो रहा है। इस लम्बे समय में उसमें केवल थोडे से सशोधन ही आवश्यक समझे गये है।

**संविधानों का वर्गीकरण**—अलिखित सविधान से साधारणतया यह भास होता है कि वह सविधान अस्पष्ट और अनिश्चित है। पर अस्पष्ट या अनिश्चित होना अलिखित विधानो का कोई आवश्यक गुण नही है। उदाहरण के लिये, इगलैण्ड का सविधान यद्यपि लिखित विधानो की श्रेणी में नही आता पर उसके प्रतिबन्ध कुछ बातो में लिखित विधानो की अपेक्षा अधिक निश्चित एव स्पष्ट है। भाषा में चाहे वह अनिश्चित हो जाये पर नागरिको के मन में वह स्पष्ट तया लिखित है। इसलिये लिखित और अलिखित विधानो का विभेद अधिक महत्व का नही है। यदि उस विभेद को विकसित या अधिनियमित सविधान कह कर प्रकट किया जाय तो अधिक उपयुक्त रहेगा। इगलैण्ड के जैसे विकसित सविधान की जड प्राचीन प्रचलित रीति रिवाजो एव प्राय सर्व मान्य परम्पराओ में होती है और धीरे धीरे उनका विकास होता रहता है। इसके विपरीत बनावटी विधान किसी एक समय सम्पूर्ण अगो सहित किसी शासन या सविधान सभा के द्वारा बनाया जाता है। इगलैण्ड और हगरी का शासन-विधान विकसित सविधानो की श्रेणी में है। पर यह भेद भी प्राय स्पष्ट नही होता। विकसित विधान में भी कुछ अग अधिनियमित विधान के समान होते है। इगलैण्ड में मैग्नाकार्टा (१२१५) और हगरी में गोल्डेन बुल (१२२२) बनावटी व्यवस्थाये थी जो इन दोनो देशो में अपने अपने सविधान की अग समझी जाती है। इसी प्रकार अधिनियमित सविधान भी कोई बिलकुल नई वस्तु नही होती है। कोई भी अधिनियमित सविधान ऐसा नही है जिसके नियमो को एक निर्दिष्ट समय में किसी व्यक्तिसमूह या सभा ने केवल तात्विक और वैज्ञानिक दृष्टि से बिलकुल नये ढग से बनाया हो। सयुक्त राष्ट्र अमरीका का लिखित सविधान भी बनना सम्भव न होता यदि पहिले ही से शासन सम्बन्धी युद्ध प्रथायें प्रचलित और मान्य न होती। इसके अतिरिक्त

अधिनियमित संविधान जिस दिन बन कर तैयार होता है उसी दिन से उसमें विकास भी होने लगता है। कुछ समय के पश्चात् संविधान के मूल तत्वों के अनुकूल ही कुछ रूढ़ियाँ और परम्पराएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो उसके विकास में योग देती हैं। इसलिये कोई भी संविधान न पूर्ण रूप से विकसित होता है न अधिनियमित रूप से बनावटी। उसमें दोनों प्रकार के संविधानों के गुण पाये जाते हैं।

संविधानों का वर्गीकरण इस आधार पर भी किया जाता है कि संविधान में संशोधन सुगमता से हो सकता है या कठिनता से। जिस संविधान में संशोधन सीधे सादे ढंग से सुगमता से थोड़े समय में भीतर हो सकता है उसे लचीला (Flexible) विधान कहते हैं। इसके विपरीत जिस संविधान में परिवर्तन करने के लिये ऐसा पेचीदा ढंग अपनाना पड़ता है कि संशोधन करना कठिन हो और उसमें अधिक समय और कष्ट उठाना पड़े उसे क्लिष्ट (Rigid) संविधान कहते हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका का विधान क्लिष्ट संविधान है, उसमें परिवर्तन करने का क्रम बड़ा पेचीदा और लम्बा है और संशोधन करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इंगलैण्ड का विधान और इटली व हंगरी के विधानों में उसी रीति से परिवर्तन हो जाता है जिस रीति से साधारण कानून बनते हैं। इन देशों में विधान को बदलना उतना ही सहज है जितना कोई नया कानून बनाना या पुराने कानून में संशोधन करना सहज है। इन दोनों प्रकार के संविधानों के बीच में एक ऐसे प्रकार के संविधान भी हैं जिनमें राष्ट्र की विधान मण्डल सभा को संशोधन करने का अधिकार है पर ऐसा करने के लिये एक विशेष शैली अपनाई जाती है जो साधारण कानून बनाने वाली शैली से अधिक दुस्तर होती है। इस श्रेणी में फ्रांस, जर्मनी और आस्ट्रिया के संविधान आते हैं।

यद्यपि लचीले और क्लिष्ट संविधानों का भेद महत्वपूर्ण है पर आवश्यकता से अधिक महत्व उसको नहीं दिया जा सकता। कोई भी संविधान चाहे कितना ही क्लिष्ट क्यों न हो पर उसमें फिर भी संशोधन हो सकता है और लचीले से लचीले संविधान को संशोधित करने में कुछ न कुछ रुकावटें होती हैं। यह कहा जाता है कि अमरीका के एक राष्ट्रपति ने एक समय यह कहा था कि अमरीका का शासन विधान किसी पुरुष के छोटे कोट के समान है, जिसको आगे से कस कर बटन लगाया जाय तो पीठ पर से फट जायगा। अमरीका के संविधान का ऐसा चित्रण ठीक नहीं प्रतीत होता। केवल विधिवत् संशोधन ही संविधान के परिवर्तन करने का अकेला ढंग नहीं है। उसको समयानुकूल और स्थिति के उपयुक्त बनाने के लिये बहुत सी शैलियाँ हैं। विधिवत् संशोधन तो उनमें से

केवल एक ही है। सविधान की धाराओ की, उस सविधान के मूल तत्वो और मूल भावनाओ के अनुकूल ही न्यायपालिका भी ऐसी व्याख्या किया करती है, जो यदि न की जाय तो राज्य की स्थिति के बदलने पर सविधान को भी विधिवत् बदलने की आवश्यकता पड जाय। सविधान राज्य सगठन के चित्र की मोटी मोटी रेखाओ को निश्चित कर देता है। दिन प्रतिदिन की समस्याओ का सामना करने के लिये वैधानिक ढाचे के अन्तर्गत बहुत सी व्यावहारकि बाते करनी पडती है। इनका आधार परम्परा और रूढिया रहती है। यह रूढिया और परम्पराएँ कभी कभी विधिवत् विधान-सशोधन के स्थान की पूर्ति कर देती है। अर्थात् परम्परा के आधार पर बहुत सी बाते कर दी जाती है। यद्यपि सविधान में उनके सम्बन्ध म कोई अनुच्छेद उल्लिखित नही होते। सन् १७८९ से लेकर सयुक्त राष्ट्र अमरीका के सविधान में केवल २१ विधिवत् सशोधन हुये है, पर अनेको बार न्यायालय की व्याख्या द्वारा उसके अनुच्छेदो के अभिप्राय में परिवर्तन कर दिया गया है। यदि इस दृष्टिकोण से देखा जाय तो सयुक्त राष्ट्र अमेरिका का सविधान इगलैण्ड से अधिक क्लिष्ट नही है। किसी भी शक्तिशाली और प्रगतिशील राष्ट्र को अत्यन्त क्लिष्ट सविधान वाछनीय नही होता। यदि सविधान का विधिवत सशोधन दुसाध्य होता है तो वह राष्ट्र अपने सविधान को दूसरे तरीको से बदलने का कोई न कोई मार्ग ढूढ लेता है। ऐसी ही स्थिति अमेरिका में थी। जब विधान को बदलना सरल न समझा गया तो वहा के सर्वोच्च न्यायालय ने सहायता की और समय समय पर जब सविधान सम्बन्धी प्रश्न उसके सामने प्रस्तुत किये गये तो उनसे सविधान की धाराओ का ऐसा व्यापक अर्थ निकाला कि विधान मे सशोधन करने की आवश्यकता ही न रही। मूल अनुच्छेदो के अन्तर्गत ही उन प्रश्नो का लोकहित के अनकूल निबटारा कर दिया गया। सरकार को सविधान म सशोधन करने के लिय कदम न उठाना पडता। सविधान का क्लिष्ट अथवा लचीला होना, जिस लोक समाज का वह सविधान है, उसकी प्रकृति पर निर्भर रहता है। जिस समाज में पुरानी परिपाटी पर चलने की और परिवर्तन विरोधी प्रवृत्ति होती है, वह अपने विधान में बडे सोच विचार के पश्चात् धीमी गति से परिवर्तन करता है चाहे वह विधान कितना ही लचीला हो और उसका परिवर्तन कितना ही सुगम हो।

**लिखित विधान केवल एक ढांचा है**—हम यह पहले ही कह आये है कि शासन विधान सरकार के सगठन व उसके कर्तव्यो आदि की रूप रेखामात्र खीच देना है। इसमें हमें एक स्थान पर वे सब नियम मिल सकते है जिनके अन्तर्गत

राज्यतन्त्र का कार्यरूप होता है। लिखित सविधान वाले राष्ट्र के नागरिक यदि इन नियमों के अनुसार अपना राजकीय जीवन ज्यों का त्यों नियमित करें तब तो हमें उस राष्ट्र के सविधान के देखने से ही वहा के नागरिकों के राजकीय जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो सकता है। पर प्राय: बहुत दिनों तक कोई भी समाज अपने शासन,विधान के नियमों से परिमित नही रह पाता और वैधानिक नियमों का व्यवहार में पालन नही होता। ऐसी स्थिति में राजनैतिक विज्ञान के विद्यार्थी को केवल सविधान के अध्ययन से ही उस राष्ट्र के राजकीय जीवन का वास्तविक ज्ञान नही हो सकता और उसके लिये यह आवश्यक हो जायगा कि सविधान के अध्ययन के अतिरिक्त वह शासन-कार्य के व्यावहारिक रूप का निरीक्षण करे। उदाहरण के लिये पक्षों (Party) को लीजिये, न अमरीका के शासन विधान मे पक्षों का कोई वर्णन है न इगलैण्ड में ही पक्षों की कोई मान्य संस्था है। पर यह सभी जानते है कि इन दोनो राष्ट्रो के राजकीय जीवन व शासन में पक्ष कितने महत्व की वस्तु है। इसलिये शासन पद्धतियों का अध्ययन करते समय केवल विधान की धाराओं का ज्ञान ही आवश्यक नही परन्तु उससे अधिक आवश्यक यह है कि वास्तविक राजकीय जीवन के विकास का अध्ययन किया जावे। इसके लिये यह जानना पडेगा कि विविध लोक समाजों की राजनैतिक प्रवृत्ति कैसी है और उनके व्यवहार में उसका क्या प्रभाव पडता है। केवल इससे काम न चलेगा कि यह जान ले कि उनका राजकीय सगठन किन नियमो के आधार पर खड़ा हुआ है।

**परम क्लिष्टता अवांच्छनीय है**—लिखित सविधान केवल ढाचा होते हुए भी उसको बहुत क्लिष्ट बनाना उचित नही होता। किसी भी शासन विधान को सर्वांग रूप में आदर्श नही बनाया जा सकता कि उसमें कभी सशोधन की आवश्यकता ही न हो। मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है और गतिशील है। समय की प्रगति से परिस्थितियो में परिवर्तन होता रहता है और समाज की आवश्यकतायें बदलती रहती है। यदि सविधान को इन आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाना है तो यह आवश्यक है कि उसमें समय समय पर स्थिति के अनुसार सशोधन हो। यदि ऐसे सशोधन का पर्याप्त आयोजन न किया तो दो बातें हो सकती है। या तो सविधान समाज की तत्कालीन राजकीय परिस्थियो से असगति हो जायगा अथवा इसके नयमों की खींचातानी कर ऐसा अर्थ लगाया जायगा कि व्यवहारिक राजकीय सगठन का चित्र वैधानिक चित्र से भिन्न दिखाई पड़ने लगेगा। अमरीका के राष्ट्रपति के वक्तव्य का जो उल्लेख हमने ऊपर

किया है उसका अभिप्राय यही था। उन्होंने अमरीका के शासन विधान की जो कसे हुए कोट से उपमा दी उसका खुलासा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट हो जायगा।

यदि लिखित सविधान के पक्ष में और विपक्ष मे कही हुई बातो पर ध्यान देकर यह निर्णय करना हो कि क्या लिखित और क्लिष्ट कहलाने वाला शासन-विधान वाञ्छनीय है तो हम यह कह सकते है कि यूरोप में जो ऐसे सविधान का अनुभव अब तक प्राप्त हुआ है उससे वहा के लोग उसको वाछनीय समझते है। ऐसे विधान के विरोध में क्लिष्टता या लचीला न होने की जो दलील दी जाती है वह किसी अश तक सत्य है जहा तक उस विधान में सशोधन करना दुष्कर है।

**विधान पर लोक-नियन्त्रण**—लोक प्रभुता के सिद्धान्त के अनुसार शासन विधान पर जनता का नियन्त्रण रहना चाहिये। यह नियन्त्रण दो प्रकार से रह सकता है। प्रथम् तो इस प्रकार कि मूल सविधान के बनने के पश्चात् यदि इसम परिवर्तन करना हो तो यह सशोधन भी जनता से स्वीकृत कराया जाय। अमरीका के उपराष्ट्रो के जब शासन विधान बने उस समय वहा तत्कालीन प्रचलित प्रभुता की भावना का ऐसा प्रभाव था कि उपराष्ट्रो के मूल सविधान और उसके सशोधनो पर भी जनमत लिया जाता था। अमरीका के सघ-शासन-विधान में उपराष्ट्रो के विधनो का उल्लेख नही है। उपराष्ट्रो के विधान पृथक् पृथक् है। अमरीका के सघ-शासन-विधान में यह आयोजन नही है कि वैधानिक संशोधन पर जनमत लिया जाय। यही बात ससार के दूसरे लिखित शासन सविधानो के लिये भी लागू होती है। विधान-मण्डल जैसे साधारण कानून बनाते है वैसे ही वे विधान-सशोधन भी करते है। केवल एक विशेष शैली के द्वारा यह काम करना पडता है और इस सशोधन की स्वीकृति साधारण मताधिक्य के द्वारा न होकर विशेष मताधिक्य से होती है। फ्रान्स के सन् १८७५ ई० के सविधान मे सशोधन किस प्रकार होता था उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी। विधानमण्डल के दोनो आगार पृथक्-पृथक् अपने सदस्यों की सख्या के बहुमत से यह निर्णय करते थे कि सशोधन आवश्यक है। उसके पश्चात् वे एक सयुक्त अधिवेशन में एकत्रित होते थे और इन एकत्रित सदस्यो के बहुमत् मे यदि यह निर्णय होता था कि सशोधन कर दिया जाय तो विधान सशोधित समझा जाता था।

यदि यूरोपीय राष्ट्रो के अनुभव को हम निर्णायक माने तब तो हमें यही कहना पड़ेगा कि प्रत्येक देश मे जहा वैधानिक शासन पद्धति है, वहा

शासन संविधान लिखित होना चाहिये और उस लिखित संविधान का संशोधन करने की प्रणाली वैसी ही हो जैसी कि फ्रांस के सन् १८७५ ई० के विधान के लिये प्रचलित थी ।

**वैधानिक सरकार की परिभाषा**—आजकल प्रायः सब प्रमुख राज्यों का शासन वैधानिक रीति पर होता है । अब प्रश्न यह उठता है कि वैधानिक शासन किसे कहते हैं और इसकी विभिन्न शासन-पद्धति में क्या भेद है । वैधानिक शासन में कौनसी ऐसी विशेषता है जिससे उसकी पहिचान हो सकती है । वैधानिक शासन पद्धति में इसके विपरीत स्वभाव वाली व्यक्तिगत शासन पद्धति के समान किसी एक ऐसे व्यक्ति की स्वेच्छा या सनक से शासन नीति निर्धारित नहीं होती, जिसके हाथ में राजशक्ति हो । परन्तु उस राज्यतन्त्र की जड़ में ऐसे नियम होते हैं जो सर्वसाधारण द्वारा इतने मान्य होते हैं कि प्रभुताधारी कोई अधिकारी उनकी अवहेलना करने का साहस नहीं करता और अपना आचरण उन नियमों से परिमित रखता है । वैधानिक शासन इसलिये कानून का शासन है, व्यक्तियों का शासन नहीं है । और जब यह सही है कि वह नियमों का शासन है तो यह आवश्यक ही है कि ऐसे शासन के लिये वे कानून या नियम बनाये जाँय जो सरकारी अधिकारियों के कार्यों की मर्यादा स्थिर कर दें । ये नियम पुञ्ज ही विधान के नाम से पुकारे जाते हैं ।

**संविधान निर्माण के विविध प्रकार**—यद्यपि संविधान निर्माण की आधार-भूत प्रेरणा सब देशों में यही रहती है कि निरंकुश राज्यशक्ति को नियमों से परिमित और नियन्त्रित रखा जाय पर फिर भी राज्यप्रभुता पर अंकुश लगाने की शैली और विकास क्रम विभिन्न प्रकार का होता है । ब्रिटिश शासन विधान धीरे धीरे बढ़कर अपनी वर्तमान स्थिति पर पहुंचा है, उसके सब नियम किसी एक लेख्य में एकत्रित नहीं मिलते । उसका कारण ही यह है कि ये नियम किसी एक शासक या विधान सभा ने तत्व विचार और वैज्ञानिक ढंग से नहीं बनाये हैं । ये नियम लम्बे समय में प्रयुक्त होते होते इतने मान्य हो गये हैं कि उनका उल्लेख किसी लेख्य में न रहते हुए भी सब उनको समझते और इससे नियन्त्रित रहते हैं । ये नियम प्राचीन परम्परायें रूढ़ियां, और रीति रिवाज हैं जिनका व्यवहार अतीत से होता चला आ रहा है । ऐसे रीति रिवाज और परम्परायें उसी देश या समाज में बहुत समय तक सुरक्षित रह सकती हैं जहां समाज का इतिहास लम्बा हो और उसमें अधिक उथल पुथल और विशेषकर हिंसात्मक क्रान्ति न हुई हो । पर ब्रिटेन को छोड़ कर ऐसे देश और समाज कम हैं जिनको

ऐतिहासिक स्थिति इतनी सुदृढ़ और सामाजिक परिवर्तन इतने शान्त व अहिंसात्मक रहे हो। इसलिये उनमे विधान निर्माण का कार्य ब्रिटेन जैसा क्रमबद्ध न रह कर प्रायः हिंसात्मक क्रान्ति के फलस्वरूप ही हुई है। या तो राजविद्रोह के डरने या विद्रोह के फलस्वरूप सम्राट् को वाध्य होकर अपने आपको विधान के अधीन करना पड़ा, या सम्राट् को अपनी इच्छा के विरुद्ध विधान परिषद् बुलानी पड़ी जिसने शासन विधान बनाया। कही कही पर प्रजा ने स्वतः ही विधान परिषद् बनाई और अपने लिये एक शासन-विधान रच लिया। अमरीका व जर्मनी में उपराष्ट्रो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन हुआ जिसने शासन विधान की रचना की। अमरीका में इस रचना के पश्चात् उपराष्ट्रो में पृथक् पृथक् प्रजा द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियो ने यह विधान स्वीकृत किया। प्राय थोडे हेर फेर के साथ इसी पद्धति से संसार के सब लिखित शासन-विधानो का जन्म हुआ है। एक वैधानिक समिति निर्वाचित होती है और विधान का मसविदा तैयार करती है। उसके पश्चात् या तो वही समिति उसको स्वीकार कर लागू कर देती है या अनुसमर्थन ( ratification ) की पद्धति से इसका संस्कार होता है। इस अनुसमर्थन मे कही प्रत्यक्ष व कही अप्रत्यक्ष रूप से जनता भाग लेती है।

सविधान में किन किन वातो का समावेश होता है यदि इसकी जानकारी हो जाय तो वैधानिक शासन-पद्धति को भली भाँति समझने में सुगमता रहेगी। इसलिये नीचे वे बातें दी जाती है जिनका नियमन विधान द्वारा होता है:--

(१) प्रत्येक सविधान, चाहे वह किसी सम्राट के आत्मसमर्पण और आत्म-त्याग के फलस्वरूप बना हो या किसी प्रतिनिधि विधान परिषद् ने उसका निर्माण किया हो, राजशक्ति को मर्यादित करता है। सरकार क्या कर सकती है और क्या नही कर सकती उसको स्पष्ट रूप से निश्चित कर दिया जाता है। इस प्रकार सविधान राजशक्ति का स्रोत है। सरकार के अधिकार सविधान से प्राप्त होते हैं।

(२) नागरिको के पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य क्या हैं और प्रजा व राज्य में किस प्रकार का सम्बन्ध है इसकी निश्चित व्याख्या सविधान में कर दी जाती है।

(३) सविधान निश्चित करता है कि राज्य के शासन कार्य में कौन कौन व्यक्ति या व्यक्ति समूह भाग ले सकते है और किस सीमा तक वे राज्य शक्ति

का उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करना आवश्यक है क्योंकि लोकतन्त्र राज्यों में भी शासन करने का अधिकार सबको नहीं होता, न ऐसा सम्भव है कि प्रत्येक नागरिक शासन सूत्र सम्भाल सके। जो राज्य पूर्ण रूप से जनतन्त्रात्मक नहीं हैं उनमें तो जनता का बहुत बड़ा भाग राज्य कार्य में सम्मिलित होने से वंचित रखा जाता है।

(४) संविधान में उन मौलिक नियमों और सिद्धान्तों का उल्लेख भी कर दिया जाता है जिनके अनुसार राज्य के शासनाधिकारी चुने जावें।

(५) मोटे रूप में संविधान इस बात का निर्देश भी करता है कि सरकार का संगठन किस प्रकार से होगा, सरकार के कौन कौन से अधिकार और शक्तियां होंगी और सरकार के विविध अंगों का एकीकरण किस प्रकार किया जायगा। किसी किसी संविधान में इन बातों का विस्तृत वर्णन भी कर दिया जाता है।

(६) संविधान राज्य का सर्वोच्च और प्रमुख कानून है। इस कानून के विरुद्ध जो कुछ भी राज्य कार्य किया जाता है वह अवैध और अनाधिकार चेष्टा समझी जाती है।

**संवैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन शैली में भेद**—उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जायगा कि वैधानिक और स्वेच्छाचारी शासन-शैली में क्या भेद है। वैधानिक सरकार का जनतन्त्रात्मक होना अनिवार्य नहीं है, परन्तु कोई भी सरकार जनतन्त्रात्मक नहीं हो सकती, यदि उसका संगठन ऐसे विधान के अनुसार न हो जिसको जनता ने या उसके बड़े अंश ने अपनी सहमति से तैयार किया हो।

उदाहरणार्थ, जापान का १९४५तक शासन वैधानिक था पर वह जनतन्त्रात्मक नहीं था। सन् १९१८ई० से पूर्व आस्ट्रिया जर्मनी और टर्की में भी वैधानिक सरकारें थी पर वे जनतन्त्रात्मक नहीं थी। इन राज्यों के शासन विधान में शासन प्रणाली को बड़े यत्न से विस्तारपूर्वक निश्चित कर दिया गया था पर वह शासन प्रणाली किसी भी प्रकार से प्रजातन्त्रात्मक नहीं कही जा सकती थी। इसका कारण यह है कि इन राज्यो में शासन विधान ने शासन-शक्ति को इस प्रकार वितरित किया था और राज्यतन्त्र के संगठन व उसकी कार्य प्रणाली ऐसी बनाई थी कि कुछ व्यक्तियों को या समूहों को राज्य में विशेषाधिकार प्राप्त थे। जनतन्त्रात्मक राज्य में इसके विपरीत शासन के हेतु सरकार का ऐसा संगठन होना है और शासनाधिकार इस प्रकार बांटे जाते हैं जिससे राज्य में रहने वाले सब वर्ग,

समूह और व्यक्ति खुले तौर पर उनसे लाभ उठा सकते है। जनतंत्र में सिद्धान्ततः नागरिको के अधिकार व कर्तव्य समान समझे जाते हैं। राज्य से लाभ उठाने का सबको समान अधिकारी समझा जाता है, न किसी को विशेषाधिकार होता है और न विशेष सुविधा दी जाती हैं। .. .

इसका यह अभिप्राय नही है कि जनतंत्र-राज्य म दिन प्रति दिन के व्यवहार म राज्य से सबको समान सुविधाएं मिलती रहती हैं। सिद्धान्ततः यह बात मान ली गई है किन्तु आदर्श प्राप्त करना दुष्कर है। जनतन्त्र राज्य में भी भिन्न भिन्न वर्गों व समूहों में संघर्ष उसी प्रकार चलता रहता हैं जैसे दूसरे प्रकार के राज्यों में। प्रत्येक वर्ग अपने अधिकारों को बढ़ाना चाहता है। इस संघर्ष में अधिकारों की पलड़ा कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर है जिसके फलस्वरूप व्यवहार में वह समानता नही होती जो संविधान ने सिद्धान्ततः स्वीकार कर ली हैं। पर जनतंत्र में विभिन्न समुदायों और व्यक्तियों में वांछित अन्यायपूर्ण पक्षपात नही होता, या यो कहें कि न होना चाहिये, और प्रत्येक व्यक्ति व समुदाय को अपनी प्रतिभा दिखाने का पूर्ण अवसर मिलता है जैसा कि किसी अन्य प्रकार की शासन प्रणाली में नही मिलता।

---

# अध्याय २

## संघ शासन का सिद्धान्त

"यदि आधुनिक वैधानिक विचार-धारा से एक ही राज्य में कई सत्ताधारी मान्य हैं तो उनके पारस्परिक सम्बन्ध के बारे में हम यही कल्पना कर सकते हैं कि यहाँ कर्तव्यों व अधिकारों का एक पुञ्ज ऐसा है जो सर्वोच्च और अविभाज्य है पर कुछ व्यक्ति सम्मिलित रूप से उसे धारण करते हैं। इसके अतिरिक्त संघ राज्य में राज्य शक्ति का वही रूप होता है, जैसा एकिक राज्य में। भेद केवल इसी बात का रहता है कि संघ राज्य शक्ति के धारण करने वाली संस्था (व्यक्ति) विशेष प्रकार की होती है। इसका रूप एक व्यक्ति का सा नहीं होता पर अनेक व्यक्तियों के विशेष प्रकार के संगठन से बनती है।"—(ह्यूगो प्रूएज)

हमने शासन सविधानों का कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। इनमें से एक है एकिक और सघात्मक। आधुनिक काल में वैज्ञानिक उन्नति के कारण विभिन्न राष्ट्रों के पारस्परिक सम्बन्ध में बड़ा परिवर्तन हुआ है और राष्ट्रों के दृष्टिकोण में इसके फलस्वरूप बड़ा भारी अन्तर हो गया है। इस प्रकार राष्ट्र के सम्बन्ध में पुरानी भावना अब बदलती जा रही है। अब कोई राष्ट्र यह दावा नहीं करता कि वह बिल्कुल स्वावलम्बी स्वेच्छाचारी और निरपेक्ष रह सकता है। यह धारणा पूर्ण रूप से सब राष्ट्रों में जम गई है कि पुरानी राष्ट्र-भावना के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भावना को ग्रहण करने से ही कल्याण हो सकता है।

**राजनैतिक संघ के प्रकार (Types of Political Unions)**—राजनैतिक सघो का अधिकाधिक प्रचार बढ रहा है और प्रोफेसर सिजविक की यह भविष्यवाणी सच्ची सिद्ध होती जा रही है कि "जब हम अतीत से अनागत की ओर दृष्टि डालते हैं तो राज्यतंत्र के सगठन के सम्बन्ध में सघ प्रणाली की उत्तरोत्तर अपनाये जाने की सम्भावना प्रतीत होती है।" भविष्य में ही नहीं, अतीत में भी प्राचीनयुगीय तथा मध्ययुगीय राजनैतिक सघो के उदाहरण मिलते हैं।

पर इन संघों का बाह्यरूप एक सा नहीं था। इनका यदि अध्ययन किया जाय तो उनके कई भेद मिलेंगे। इन भेदों के आधार पर इनको निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा जा सकता है।

१—व्यक्तिगत संघ (Personal Unions)—ऐसे एक सघ का उदाहरण इंगलैण्ड और हैनोवर का सघ है जो सन् १७१४ से १८३७ ई० तक रहा। जब जार्ज प्रथम इंगलैण्ड के राजसिंहासन पर बैठा तो उसने अपनी पैतृक हैनोवर की जागीर अपने आधीन रखी। सन् १७१४ से १८३७ ई० तक हैनोवर और इगलैण्ड का राज्य एक ही व्यक्ति के हाथ मे था। पर दोनो राज्य एक दूसरे से स्वतन्त्र थे, कोई एक दूसरे के आधीन न था। दोनो की आन्तरिक और विदेशीय नीति व शासन स्वतन्त्र रूप से सचालित होता था।

२—वास्तविक संघ (Real Unions)—सन् १६०३ से १७०७ तक इगलैण्ड और स्काटलैण्ड अपने घरेलू मामलो में स्वतन्त्र राज्य थे। विदेशी मामलो में वे दूसरे राष्ट्रों के सामने एक इकाई के रूप मे उपस्थित होते थे। पर १७०७ ई० के अधिनियम (Act) से घरेलू शासन में भी ये दोनों एक दूसरे से मिल गये। इस अधिनियम की तीसरी धारा इस प्रकार थी। ग्रेट ब्रिटेन के सयुक्त राज्य में एक ही ससद् (Parliament) होगी, जिसका नाम "ग्रेट ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट होगा।" इस अधिनियम की दूसरी कई धाराओ ने मुद्रा, माप और भार की दोनो राज्यो में एकता स्थापित की। दो राजमुद्राओ के स्थान पर एक राजमुद्रा बना दी गई। सबसे महत्वशाली तो २४ वी धारा थी जिसने सघ को एक इकाई बना दिया। उस धारा के अनुसार "दोनो राज्यो मे इस अधिनियम की धाराओ के असगत यदि कोई नियम या अधिनियम हो तो वे सघ स्थापना के पश्चात् अवैध माने जायेंगे और दोनो राज्यों की पार्लियामेण्ट इसकी प्रथक् प्रथक् घोषणा करेगी।" यह सम्मिलन पूर्ण सम्मिलन के रूप में था जिससे ऐकिक राज्य की स्थापना हुई।※

३—समूह शासन या अस्थायी संघ (Confederations)—इस प्रकार के सघ का जन्म दो या अधिक राज्यो की मित्रता से उत्पन्न होता है। उसका अभिप्राय किसी विशेष आर्थिक या राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि होती है। प्रायः यह मित्रता अस्थाई रहती है। जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये समूह शासन स्थापित किया जाता है उसके लिये सयुक्त सस्थायें बना ली जाती हैं। इस सहयोग

※शर्मा, फेडरल पोलिटी, पृष्ठ ४।

से सम्मिलित राष्ट्रों की सर्वोच्चता शक्ति का भी ह्रास नहीं होता किन्तु केन्द्रीय शक्ति एक प्रकार से स्थायी और व्यवहार बनी रहती है। विदेशीय व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में ऐसा सामूहिक शासन (Confederacy) एक राष्ट्र के समान दिखाई देता है और घरेलू या अन्य अन्तर्गृहीय मामलों में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र (Member state) स्वतन्त्र होता है। फिर भी सामूहिक शासन का सदस्य राष्ट्रों के ऊपर दण्ड लगाने का अधिकार नहीं होता। यही कारण है कि प्रत्येक राष्ट्र अपने अपने स्वार्थ में सामने समूह की उपेक्षा कर सकता है और इसलिए यह समूह राष्ट्र (Confederacy) स्थायी नहीं रहता। उदाहरणार्थ प्रथम महासमर के पहले आस्ट्रिया-हंगरी एक समूह राष्ट्र था जो केवल ८० वर्ष तक ही चल सका और उस समर की परीक्षा की कठिनाइयों को पार न कर सकने से छिन्न भिन्न हो गया। ऐसे समूह राष्ट्रों के उदाहरण और भी हैं, जैसे अमरीकन समूह राष्ट्र (१७७७–१७८९), स्विट्जरलैण्ड का समूह राष्ट्र (१८७४ तक) और जर्मन समूह-राष्ट्र (१८७८ तक)।

४—संघ शासन (Federations)—चौथा और अन्तिम सहयोग संघ शासन है जिसमें सम्मिलित राष्ट्र या उपराष्ट्र अपनी स्वतन्त्रता त्याग देते हैं यद्यपि व्यक्तिगत रूप में उनको कुछ राज्याधिकार अवश्य रहते हैं। बचे हुए अधिकार एक केन्द्रीय सत्ता को सुपुर्द कर दिये जाते हैं जो सामूहिक मामलों में सर्वाधिकारी बन जाती है। ऐसे संघ शासन के उदाहरण संयुक्त-राष्ट्र अमरीका (१७८९ से), स्विटजरलैण्ड (१८७४ से) कनाडा (१८६७ से), आस्ट्रेलिया (१९०१ से), प्रजातन्त्र जर्मनी (१९१९–१९३३ तक), भारत और सोवियट रूस में मिलते हैं।

**संघ शासन की परिभाषा**—संघ शासन एक वह प्रणाली है जिसमें राज्यशक्ति "ऐसी अनेक समानाधिकारी संस्थाओं में वितरित होती है जिनकी स्थापना व नियमन एक विधान द्वारा होता है।" ❀ यह विभाजन क्यों आवश्यक है ? यह सब जानते हैं कि नागरिक जितना अपने समीपवर्ती और दिन प्रतिदिन सम्पर्क में आने वाली संस्थाओं से दिलचस्पी रखता है उतना दूसरी संस्थाओं से नहीं। नागरिक राष्ट्र और देश की प्रणाली की अपेक्षा अपने नगर, ज़िला और प्रान्त की बातों से अधिक निकट सम्बन्ध रखता है। उसके सुख दुख में, प्रतिदिन के व्यावहारिक जीवन में नगर, ज़िला या प्रान्तीय शासन का अधिक हाथ रहता है, केन्द्रीय शासन का कम। नागरिक को शिक्षा सफाई, सड़कें,

❀ फेडरल पोलिटी, पृष्ठ १।

प्रकाश, विनोद और दूसरी जीवन सुविधाओं की आवश्यकता रहती है, इन्ही से उसका जीवन गुण-पूर्ण बनता है। जहा पर ये सब प्राप्त है स्वभावत उस स्थान से और वहा की सस्थाओं से उसे प्रेम और निष्ठा हो जाती है। वह अपनी दृष्टि इन्ही की ओर लगाये रहता है। दूरवर्ती केन्द्रीय शासन या उसके लिये अधिक महत्व नहीं रहता। केवल अप्रत्यक्ष रूप से, और वह भी कभी कभी, वह अपने नगर या प्रान्त से परे केन्द्रीय शासन की ओर अपनी दृष्टि करता है। यही कारण है कि प्राचीन युग में जब आने जाने के मार्ग दुर्गम थे, शासन का विस्तार छोटा होता था और छोटे राज्य थे। आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने जल, स्थल और वायु यात्रा को सुगम और शीघ्र बना दिया है, दूरिया अब कम हो गई है और पृथ्वी सिकुडकर छोटी हुई सी प्रतीत होती है। इसलिये राष्ट्र का विस्तार भी पहिले से अधिक बढ गया है। अब एक राष्ट्र की सीमा दूसरे राष्ट्र की सीमा से टकराती है, उनके बीच में अब कोई अपरिचित भूमि नही है, अब वे एक दूसरे से पृथक् रहकर एकाकी जीवन व्यतीत नही कर सकते। अब सब राज्य परस्परावलम्बी हो गये है और उन्होने पृथक्त्व का बाना उतार फेंका है। एक ओर अन्तराष्ट्रीय सहयोग की वृद्धि से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में नियमन आता जा रहा है, दूसरी ओर उस सहयोग के फलस्वरूप आत्म प्रकाश और आत्माभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होता जा रहा है। ऐसी अवस्था में यह स्वाभाविक है कि नागरिक स्थानीय सस्थाओं से निकट सम्बन्ध रखते हुये भी यह जानने को उत्सुक रहता है कि दूसरे नगर, जिले, प्रान्त या देश में क्या हो रहा है। यह जो बाहर से विरोधी दिखाई देने वाली स्थानीय और राष्ट्रीय भावनायें है उनका मेल कराने के लिये ही सघ शासन की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है।

सघ शासन की पद्धति बडे विचार विमर्श के पश्चात् राजनीतिज्ञो द्वारा निकाली गई है, इसलिये यह पद्धति उस पद्धति की अपेक्षा नई है जिसको एकिक-शासन-पद्धति (Unitary System of Government) के नाम से पुकारा जाता है और जिसका अनजाने तथा धीरे धीरे विकास हुआ है। वास्तव में सघ शासन बडे परिपक्व राजनैतिक अनुभव का परिचायक है और उसका सचालन करने के लिये मजे हुये राजनैतिक अनुभव की आवश्यकता भी है। इसीलिये १७८७ ई० से पूर्व सघशासन प्रणाली प्रचलित न थी। सन् १७८७ ई० में बनी सयुक्त राष्ट्र अमरीका की सघशासन प्रणाली एक नई योजना थी। यह ठीक है कि प्राचीन इतिहास मे भी हमें सघशासन के उदाहरण मिलते है। परन्तु वे उन छोटे प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रो के सामूहिक शासन थे जो उन्होने युद्ध

में कौरव प्रान्त भारत में किये स्थापित किये थे। प्राचीन भारत में बड़े बड़े साम्राज्य भी थे जिनमें एक सम्राट के आधीन अनेक छोटे छोटे राजा राज्य करते थे परन्तु उन साम्राज्यों में संघशासन के गुण न मिलते थे। क्योंकि फ्रीमैन के कथनानुसार "संघ शासन" नाम उन्हीं सदस्य राष्ट्रों के संघ को दिया जा सकता है जिनका सम्मिलन केवल मित्रता से अधिक घनिष्ट हो और जिनकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की मात्रा इतनी हो कि हम उसे केवल स्थानीय स्वायत्त शासन (Municipal Government) की स्वतन्त्रता या नगर स्वतन्त्रता (Municipal Freedom) न कह सकें।*

संघ-शासन में दो शासन-शक्तियां होती हैं। पहिली शासन शक्ति वह सरकार है जो सम्पूर्ण राष्ट्र के ऊपर शासन करती है, उसको केन्द्रीय सरकार या संघ सरकार (Federal Government) के नाम से पुकारते हैं, दूसरी वे अनेक सरकार हैं जो संघ के सदस्य-प्रान्तों या उपराज्यों (States) के ऊपर शासन करती हैं। संघ शासन शक्ति प्रत्येक संघात्मक शासन में इन दो प्रकार की सरकारों में बटी हुई होती है। संघ सरकार बनाने के लिये दो बात आवश्यक हैं। एक ओर संघ के सदस्य-राज्य उन विषयों के शासन में पूर्णतया स्वतन्त्र रहने चाहियें जिनका सम्बन्ध एक सदस्य-राज्य से ही है। दूसरी ओर सब सदस्य उपराष्ट्र अपनी सामूहिक संस्था के आधीन रहने चाहियें।१ लार्ड चार्नवुड ने संघ-शासन के संविधान की परिभाषा करते हुये कहा है कि "इस संविधान में शासन कार्य का एक भाग राष्ट्र की अनेक प्रान्तीय या जिले की सरकारों द्वारा सम्पादित होता है और दूसरा भाग इन सरकारों में से भिन्न भिन्न सारे राष्ट्र की एक सरकार द्वारा सम्पादित होता है।२

**संघ किस प्रकार बनते हैं**—संघ दो प्रकार से बनते हैं, एकीकरण द्वारा और खण्डन द्वारा। जहां केन्द्राभिसारी शक्तियां प्रबल होती हैं वहां एकीकरण द्वारा संघ स्थापित होता है और इसके विपरीत केन्द्रापसारी प्रवृत्ति जहां अधिक बलशाली होती है वहां खण्डन द्वारा संघ शासन स्थापित होता है।

---

*फ्रीमैन, हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमेण्ट, भाग १, पृष्ठ ३।

(१) फ्रीमैन, हिस्ट्री आफ फैडरल गवर्नमेण्ट, पृष्ठ २–३।

(२) दी फैडरल सोल्यूशन, पृष्ठ ५५।

पहले अर्थात् एकीकरण में अनेक छोटे-छोटे राज्य जो संघ स्थापित होने से पूर्व घरेलू व विदेशी मामलों में पूर्ण या अर्ध-स्वतन्त्र होते हैं, अपनी इच्छा से सहयोग करते हुए एक केन्द्रीय नई सरकार की स्थापना करते हैं और उसके हाथों में अपनी शासन शक्ति का कुछ भाग सौंप देते हैं। यह नई सरकार सारे राष्ट्र के लिये महत्वपूर्ण मामलों के सम्बन्ध में शासन शक्ति का उपभोग करती है। उसको छोड़कर बची हुई शासन शक्ति सदस्य-उपराज्य अपने पास रखते हैं और अपने घरेलू एवं व्यक्तिगत मामलों में वे स्वशासन करते हैं। इससे यह प्रकट है कि जब कुछ राज्य मिलना चाहते हैं पर मिलकर एक एकाई बनाना नहीं चाहते तब संघ-शासन की स्थापना करते हैं। इस प्रकार जो संघ-शासन बनते हैं उसका उदाहरण अमरीका का संघ-शासन है। स्विटजरलैण्ड और आस्ट्रेलिया के संघ-शासन भी इसी रीति से स्थापित हुए थे। दूसरे, अर्थात् खण्डन, में एक बड़े राज्य को तोड़कर उसको छोटे छोटे उपराज्यों में विभाजित कर दिया जाता है, इन उपराज्यों को अपने अपने आन्तरिक या स्थानीय मामलों के शासन का भार सौंप दिया जाता है और इन उपराज्यों का जन्मदाता राष्ट्र बचे हुये सारे राष्ट्र के हित से सम्बन्ध रखने वाले विषय में सब उपराज्यों पर शासन करता है। सन् १८६७ में कनाडा में यही हुआ। वहां पहिले ऐकिक शासन था फिर उसको दो भागों में बांट दिया गया, क्यूबक और ओन्टेरियो के दो प्रान्तों में प्रान्तीय शासन और सारे कनाडा का संघ-शासन। दक्षिणी अफ्रीका का संघ स्थापित होने से पूर्व वहां भी ऐकिक शासन था और इसी क्रम से वहां संघात्मक शासन स्थापित किया गया। यह क्रम ९ जून सन् १८७१ के उस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है जिसको केप (Cape) असेम्बली ने इस विषय में छानबीन करने वाले एक कमीशन की स्थापना के हेतु पास किया था। यह प्रस्ताव इन शब्दों में था "और क्योंकि यह सुविधाजनक हो कि उपनिवेश को तीन या अधिक प्रान्तीय सरकारों में बांट दिया जाये जो अपने घरेलू मामलों का प्रबन्ध करें और एक ऐसे संघ-शासन में संगठित हो जाये जिसमें एक सम्मिलित संघ सरकार हो जिस पर उन मामलों के प्रबन्ध करने का भार हो जो संयुक्त उपनिवेश के सम्मिलित हितों से सम्बन्ध रखते हों..।*

सन् १९३५ के भारतीय संघ-शासन विधान में जो भारतीय संघ स्थापित होने जा रहा था उसमें एकीकरण और खण्डन दोनों क्रमों को अपनाने की

---

* न्यूटन—दी यूनीफिकेशन आफ साउथ अफ्रीका, भाग १, पृष्ठ १२।

योजना थी। तत्कालीन ब्रिटिश इण्डिया और देशी राज्यों में एकीकरण के क्रम से और ब्रिटिश इण्डिया के प्रान्तों को कुछ अधिक छोटे भागों में बांटने से संघ शासन बनाने का प्रस्ताव उस समय विचाराधीन था।

संघ शासन की विशेषतायें—(Federal Constitutions) अन्य शासनों की अपेक्षा कुछ विशेषतायें रखता है। हरमन फाइनर (Herman Finer) के कथनानुसार ये विशेषतायें इस प्रकार हैं—विधायिनी शक्ति (Legislative power) और शासन-अधिकारों का विभाजन, उपराष्ट्रों का संघ संसद् में प्रतिनिधित्व, आयसम्बन्धी विशेष प्रबन्ध, दो शासन शक्तियों का साथ साथ एक ही क्षेत्र में अधिकार होना, संघ-शासन विधान की विशिष्टता, न्यायपालिका का विशेष महत्व और राज्य निष्ठा तथा सम्बन्धोच्छेद (Secession) का विशेष सिद्धान्त।

दो सरकारों का साथ साथ रहना।—संघ शासन में सारे राष्ट्र की सम्मिलित सरकार जिसको केन्द्रीय सरकार भी कहते हैं सदस्य उपराज्यों या प्रान्तों की सरकार के सान्निध्य में रहती हैं। शासन की ये दो शक्तियां संविधान से अपने अधिकार प्राप्त करती हैं इसलिये वे एक दूसरे के आधीन न रह कर अपने अपने शासन क्षेत्र में, जो विधान द्वारा निश्चित हो जाता है, स्वतन्त्र रहती है। "संघ-शासन-विधान" (federal constitution) और "ऐकिक शासन विधान" (unitary constitution) में यही भेद है कि दूसरे प्रकार के संविधान के अन्तर्गत जहां एक ही शासन शक्ति मान्य होती है जो सब राजकीय मामलों में बिना अपवाद के सर्वशक्तिशाली और सर्वाधिकारी होती है, वहां पहिला अर्थात् संघशासन, विधान शासन-सम्बन्धी अधिकारों और शक्तियों को उपराज्यों की सरकारों व संघ सरकार के बीच बांट देता है।"* यहां यह तर्क उठ सकता है कि एकिक-राज्य (Unitary state) में भी अब शक्ति का विकेन्द्रीकरण (Decentralization) बढ़ता जा रहा है और स्थानीय शासन के हेतु स्थानिक संस्थायें बनती जा रही हैं। इसलिये संघ और ऐकिक राज्य में अन्तर क्या रहा। इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यद्यपि ऐकिक राज्य में शासन के दो स्तर हैं, एक केन्द्रीय और दूसरा स्थानीय पर फिर भी केन्द्रीय शासन का स्थानीय शासन पर आधिपत्य अक्षुण्ण रहता है। स्थानीय या नगर शासन (Municipal Government) की सृष्टि केन्द्रीय शासन शक्ति ही करती है और उस शक्ति को वैधानिक अधिकार प्राप्त रहता

*फेडरल पोलिटी, पृष्ठ ७।

है कि इन स्थानीय शासनो के अधिकारो में वृद्धि कर दे या घटती कर दें। यही नहीं बल्कि उसको यह भी अधिकार रहता है कि वह इन शासन सस्थाओ को बिल्कुल तोड दे और किसी भी वैधानिक अनौचित्य की दोषी न हो। यदि कोई केन्द्रीय शासन शक्ति ऐसा करने का निश्चय करे तो इस निश्चय के विरुद्ध किसी न्यायालय में पुकार नही की जा सकती और न एसा निश्चय अवैध घोषित हो सकता है क्योंकि केन्द्रीय शासन शक्ति स्वेच्छा से इन सस्थाओ की सृष्टि करती है जिससे उसके शासन कार्य में सुविधा रहे। इन स्थानिक शासन सस्थाओ के नियम केवल उपविधि (Bye-law) ही रहते हैं और वे तभी तक लागू रहते हैं जब तक वे केन्द्रीय शासन शक्ति द्वारा मान्य समझे जाते है। सघ शासन में इसके विपरीत शासन के तीन स्तर होते है, जो केन्द्रीय, उपराज्यीय या प्रान्तीय, और स्थानिक (एकिक शासन के समान) है। इससे स्पष्ट है कि उपराज्यीय शासन होने से ही सघ शासन और एकिक शासन में भेद हो जाता है। उपराज्यो के अधिकार केन्द्रीय सरकार से प्राप्त नही होते पर वे सीधे विधान से प्राप्त होते है। इससे यह निश्चित है कि उपराज्यो की सरकारें केन्द्रीय सरकार की उपेक्षा नही करती, उनका स्वतन्त्र अस्तित्व सविधान द्वारा सुरक्षित रहता है। उपराज्यो की सरकारो के कानून उसी प्रकार वैध (Legal) समझे जाते हैं जैसे केन्द्रीय सरकार के कानून। उनकी मान्यता केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति या इच्छा पर निर्भर नही होती।

**शासन-अधिकारों का विभाजन**—सघ-शासन-विधान केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो के अधिकार स्पष्टतया निश्चित कर देता है। शासनाधिकारों का यह विभाजन शासन-क्षेत्र के सब विभागो में कर दिया जाता है। व्यवहार में यह पृथक्करण बिलकुल पूरा रहता है, उसमें सन्देह के लिये स्थान नही रहता, चाहे कानून बनाने का अधिकार हो या उसको कार्यान्वित करने का, न्यायिक अधिकार हो या प्रशासनीय सबके सम्बन्ध में दोनो सरकारो की शक्ति स्पष्टतया मर्यादित कर दी जाती है। आय के स्रोत आदि भी दोनो सरकारो में पृथक् कर दिये जाते है। इस अधिकार विभाजन में साधारणतया यह सिद्धान्त लागू किया जाता है कि वे अधिकार जो राष्ट्रीय महत्व के हितो की रक्षा के लिये आवश्यक है सघ सरकार को दिये जाते है जैसे प्रतिरक्षा (Defence), विदेशी सम्बन्ध बाहरी व्यापार कर, रेलवे, डाकघर, तार आदि। उधर भिन्न भिन्न प्रान्तो के आधीन शासन के वे विभाग तथा विषय होते हैं जिनकी देख रेख प्रान्त की सरकार आसानी और अधिक लाभ से कर सकती हैं तथा

जिन विषयों में सभी प्रान्तों में प्रबन्ध की समानता अनिवार्य नहीं है। उदाहरणार्थ शिक्षा, न्याय, जनारोग्य, छोटी सड़कें इत्यादि। संघ तथा प्रान्त दोनों ही की सरकारें अपने अपने कार्य संचालन के लिये निजी टैक्स लगाती हैं और दोनों के लिये पृथक् पृथक् कर के साधन निश्चित कर दिये जाते हैं। प्रायः केन्द्रीय संघ सरकार को अप्रत्यक्ष कर के साधन ही सुपुर्द होते हैं, जैसे विदेशी व्यापार पर कर आदि, पर अब प्रवृत्ति यह होती जा रही है कि संघ सरकार को कर के प्रत्यक्ष साधन भी दिये जाते हैं। इस शक्ति-विभाजन से संघ और प्रान्तों, दोनों ही की सरकारों की स्थिति एक दूसरे से निरपेक्षित रहती है। एक सरकार दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

**अवशिष्ट, समवर्ती और निहित शक्तियां**—संघ संविधान के निर्माता चाहे इस अधिकार-विभाजन के कार्य में कितने ही दक्ष हों और कितनी ही चतुराई से वे इस काम को करें पर फिर भी राज्य के कर्तव्य इतने अधिक हैं और उनकी संख्या में व विस्तार में समय के बीतने से इतने परिवर्तन होते रहते हैं कि सब कर्तव्यों के सम्बन्ध में दोनों प्रकार की सरकारों के अधिकारों का सर्वदा के लिये और सब तरह पूर्ण वर्गीकरण और वितरण होना किसी भी संविधान निर्माता समिति या व्यक्ति के लिये असम्भव है। उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमरीका का विधान १७८७ ई० में बनाया गया था जब न वैज्ञानिक आविष्कार हुये थे न आने जाने के आज जैसे साधन ही उपलब्ध थे। विधान के निर्माता उस समय यह कल्पना न कर सकते थे कि १६वीं व २०वीं शताब्दी में वैज्ञानिक आविष्कारों से ऐसे साधन प्राप्त हो जायेंगे कि एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के बहुत निकट आ जायगा और आपस में घनिष्ठता तथा सहकारिता की मात्रा इतनी बढ़ जायगी जैसी आजकल वर्तमान है। इसलिये अब राष्ट्र के कामों में जो नवीनता तथा वृद्धि हो गई है उसका उनको अनुमान न हो सकता था और न उसके लिये उन्होंने संविधान में कोई आयोजन किया था।

**अवशिष्ट शक्तियां (Residuary Powers)**—उपर्युक्त कठिनाई को दूर करने के लिये सब संघ शासन विधान, जिनमें संयुक्त राज्य अमरीका का शासन विधान भी शामिल है, अवशिष्ट व अवर्णित शक्तियों के सम्बन्ध में विधान में कुछ धारायें बना देते हैं और इन धाराओं के द्वारा उन्हें या तो केन्द्रीय सरकार को या प्रान्तीय सरकारों को सुपुर्द कर देते हैं। यदि केन्द्रापसारी (Centrifugal) शक्तियां अधिक प्रबल होती हैं तो ये शक्तियां उपराज्यों के सुपुर्द रहती हैं, यदि केन्द्राभिसारी (Centrifugal) शक्तियां

अधिक बलशाली होनी है तो केन्द्र को। सयुक्त राज्य अमरीका में सविधान वर्णित शक्तियो से बची हुई शक्तिया उपराज्यो को सुपुर्द है, वहा खिचाव केन्द्र से बाहर की ओर को है। कनाडा में ये शक्तिया केन्द्रीय सरकार को है क्योकि वहा केन्द्र को शक्तिशाली बनाने की प्रवृत्ति है।

समवर्ती शक्तियाँ (Concurrent Powers)—सघ विधान मे प्राय समवर्ती शक्तियो के सम्बन्ध मे भी कुछ न कुछ आयोजन रहता है। कुछ मामले ऐसे होते है जिनको सघ और प्रान्तीय दोनो सरकारो में से किसी एक को नही सौंपा जाता या जो प्रान्तीय और राष्ट्रीय दोनो की दृष्टि से महत्वशाली हैं। इन विषयो में, सघ और प्रान्तीय दोनो सरकारो को व्यवस्था करने और प्रबन्ध करने का अधिकार रहता है। दोनो सरकारो में परस्पर विरोध न उत्पन्न हो जाये इस अभिप्राय से यह निश्चित कर दिया जाता है कि यदि किसी समवर्ती विषय के सम्बन्ध में दोनो सरकारो मे मतभेद हो अथवा दोनो किसी एक ही समवर्ती विषय के सम्बन्ध में व्यवस्था और प्रबन्ध करें तो राष्ट्रीय व्यवस्था और प्रबन्ध अधिक मान्य होगा और प्रान्तीय व्यवस्था अमान्य रहेगी। ऐसा करने से यह लाभ होता है कि जो विषय महत्व के हैं सब उपराज्यो में उनकी व्यवस्था की समानता रहती है और राष्ट्रीय सरकार के काम में दृढता और बल रहता है। उदाहरण के लिये जर्मनी के सन् १९१९ के विधान की १३वी धारा में यह दिया हुआ था कि जिन विषयो में केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारो को समवर्ती शक्तिया प्राप्त है उनमें यदि दोनो सरकारें असमान कानून बनावें तो केन्द्रीय कानून ही लागू होगा, प्रान्तीय कानून रद्द समझा जायेगा।

निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Implied Powers)—इस सिद्धान्त का बडा महत्व है। सयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सबसे प्रथम किया था। अमरीका के सन् १७८७ के विधान में केन्द्रीय या राष्ट्रीय और उपराज्यो की शक्तियो का निश्चित रूप से वर्णन है और अवर्णित शक्तिया उपराज्यो की सरकारो के लिये सौंप दी गई है। केन्द्र की उल्लिखित शक्तिया बडी सीमित हैं।

विधान के पहिले अनुच्छेद (Article) की आठवी धारा में कांग्रेस की शक्तिया इस प्रकार वर्णित हैं—

'कांग्रेस को टैक्स, ड्यूटी, इम्पोस्ट और एक्साइज़ लगाने का अधिकार होगा व ऋण चुकाने और सारे राष्ट्र की सुरक्षा और योगक्षेम के हेतु आयो-

जा करने का अधिकार होगा। परन्तु प्रतिबन्ध यह है कि सब ड्यूटियां, इम्पोस्ट और एक्साइज सारे संयुक्त राज्य में एक समान होंगे।"

"संयुक्त राज्य की सम्पत्ति और साख के आधार पर ऋण लेने का अधिकार होगा।"

"उपराज्यों विदेशों व इण्डियन जातियों से व्यापार का नियमन करने का अधिकार होगा ।" इत्यादि, इत्यादि।

आठवीं धारा के अन्तिम शब्द ये है 'कांग्रेस को इन सब कानूनों के बनाने का अधिकार होगा जो उपर्युक्त शक्तियों को और दूसरी शक्तियों को, जो विधान ने संयुक्त राज्य की सरकार को सुपुर्द की हैं या इसके किसी विभाग या अफसर को सौंपी हैं, कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक हों और उचित हों।" इन शब्दों का इतना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ने अधिकांश कांग्रेस के पक्ष में ही व्याख्या की है और निर्णय देते समय उस व्याख्या का उपयोग करते हुए निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार चाहे यह उल्लेख न हो कि अमुक शक्ति किस सरकार को प्राप्त है किन्तु यदि किसी सरकार के लिये किसी विशेष शक्ति को कार्यान्वित करने के लिये अनिवार्य या उचित है, तो यह समझा जायेगा कि वह शक्ति दूसरी उल्लिखित शक्तियों में निहित है या दूसरी उल्लिखित शक्तियां को देते समय अमुक शक्ति का देने का तात्पर्य था। इस सिद्धान्त के व्याख्याता सुप्रसिद्ध प्रमुख न्यायाधीश मार्शल (Justice Marshall) थे। उन्होंने इस सिद्धान्त के द्वारा संयुक्त राष्ट्र अमरीका की संघ-सरकार अर्थात् केन्द्रीय सरकार की शक्ति बढ़ाई। दूसरे संघ शासनों में भी सर्वोच्च न्यायालयों के निर्णयों पर इस सिद्धान्त का प्रभाव पड़े बिना न रह सका है, और इस प्रकार शक्तियों के वर्णन करने में जो कमी रह जाती हैं, जैसा कि स्वाभाविक है तो उनके कारण कोई विशेष कठिनाई उत्पन्न नहीं होती।

(क) दो सरकारों की नागरिकता—संघ शासन में प्रत्येक नागरिक को दो सरकारों के प्रति निष्ठा रखनी पड़ती है। उन मामलों में जो प्रान्तीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र में हैं, व्यक्ति अपनी प्रान्तीय सरकार का नागरिक रहता है और उसके बनाये हुये कानूनों का पालन करता व उसकी नागरिकता के स्वत्वों से लाभ उठाता है। इसके साथ ही साथ वह संघ सरकार का भी नागरिक होता है और संघ सरकार के बनाये हुये कानूनों का पालन करता और उसकी

नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकारो को प्राप्त करता है। एकिक शासन मे व्यक्ति एक ही सरकार का नागरिक होता है। सामूहिक सघ (Confederation) मे भी सघ के निवासी केन्द्रीय सरकार की प्रजा नही होते। वे अपने अपने राज्य के नागरिक रहते हैं और सघ के कानून या आज्ञायें अपने अपने राज्य की मध्यस्थता से उन पर लागू होते हैं। सघ की आज्ञायें बिना राज्य की अनुमति से प्रजा को मान्य नही समझी जाती। राजशास्त्री ब्राइस सघ की द्विनागरिकता की इस प्रकार परिभाषा करते हैं —"प्रमुख बात तो यह है कि प्रत्येक नागरिक के ऊपर दो सरकारो का आधिपत्य रहता है। एक तो उस उपराज्य या प्रान्त (कनाडा जैसी) या कैन्टन (स्विट्जरलैण्ड जैसी) की सरकार का आधिपत्य जिसका वह निवासी है, और दूसरा राष्ट्र या सघ की सरकार का जिस सघ में वे सब उपराज्य या प्रान्त शामिल है जिनकी प्रजा पर सघ सरकार समानरूप से शासन करती है। इस प्रकार व्यक्ति की दो निष्ठाए रहती है, एक अपने प्रान्त के लिये और दूसरी सारे राष्ट्र के लिये। वह दो कानूनो को मानता है, अपनी प्रान्तीय सरकार के कानून और सघ सरकार के कानून। वह सघ सरकार और प्रान्तीय सरकार के दो भिन्न भिन्न अफसरो की आज्ञा पालन करता है और उन करो को छोडकर जो उसकी नगर या ग्राम सस्था उस पर लगाती है दो सरकारो को कर देता है।"* ब्राइस के मतानुसार सघ शासन उसी को कहा जा सकता है जहा केन्द्रीय या सघ सरकार सदस्य-उपराज्यो की प्रजा पर सीधा बिना उपराज्य की सरकार की मध्यस्थता के आधिपत्य रखती है। न्यूटन का भी मत इस विषय में स्पष्ट है। उसका कहना है कि "सघ सरकार केवल सम्मिलित राज्यो पर शासन नही करती पर उनकी प्रजा पर भी स्वय शासन करती है। एक दूसरे लेखक ने एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका मे सघ शासन के नागरिक का दो सरकारो से कैसा सम्बन्ध रहता है, समझाते हुए लिखा है कि सघ सरकार अपनी उल्लिखित शक्तियो का उपभोग करने में अपने सदस्य उपराज्यो से सीधा सम्बन्ध स्थापित करती है और उन पर शासन करती है। पर उसके साथ साथ सघ के प्रत्येक व्यक्ति से उसका सीधा सम्बन्ध रहता है। .. और फलत संघ के निवासी दो सरकारो के, सघ सरकार के और प्रान्तीय सरकार के नागरिक रहते हैं। [1] द्विनागरिकता का यह सिद्धान्त सब सघ

*कन्स्टीट्यूशन्स, पृष्ठ २८८।

१ भाग १० पृष्ठ २३३। ब्राइस, स्टडीज इन हिस्टरी एण्ड ज्यूरिसप्रूडेन्स, भाग २, पृष्ठ ४६० भी देखिये।

शासनों में बरता जाता है। केवल एक उदाहरण ही यहां दिया जाना पर्याप्त होगा। संयुक्त-राज्य अमरीका के संघ विधान के १४वें अनुच्छेद में कहा गया है कि "सब व्यक्ति जो संयुक्त राष्ट्र में उत्पन्न हुए हों या जिनका देशीयकरण (Naturalisation) हो चुका हो और उसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत हों, संयुक्त राज्य के व जिस उपराज्य में निवासी हैं उसके नागरिक हैं......।"

(ख)—लिखित और क्लिष्ट संविधान—संघ शासन-विधान की दूसरी विशेषता है कि वह अनिवार्य रूप से लिखित तथा परिवर्तन करने के लिये विशेष-तया क्लिष्ट होता है। यह सच है कि आजकल लिखित संविधान की प्रवृत्ति है चाहे राज्य का रूप एकिक (unitary) हो या संघ शासनीय (federal) पर संघ शासन की उस विशेषता से यह अभिप्राय है कि यद्यपि एकिक शासन प्रणाली में अलिखित विधान से भी काम चल सकता है, पर संघ शासन में लिखित विधान अनिवार्य है। एकिक शासन प्रणाली में शासन की सारी शक्ति केवल एक सरकार के पास रहती है और वही सरकार सर्वाधिकारी होती है, किन्तु संघ शासन में शासन शक्ति दो भिन्न भिन्न एक दूसरे से निरपेक्ष, सरकारों में बटी रहती है। कुछ विषयों में केन्द्रीय सरकार का शासन रहता है और दूसरों में प्रान्तीय सरकार का। ये विषय या विभाग दोनों सरकारों में पृथक् पृथक् बटे रहते हैं। इंगलैण्ड का अब भी ऐसा उदाहरण है जहां एकिक शासन का लिखित विधान नहीं है। दूसरे एकिक शासनों में सब जगह लिखित विधान ही है। परन्तु संघ शासन का एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जहां अलिखित संविधान हो। संघ शासन एक प्रकार का पूर्ण साविदात्मक करार (contractual agreement) है प्रान्तीय सरकारें आपस में एक मत होकर इस निश्चित करार पर पहुंचती हैं और अपने ऊपर संघ सरकार की स्थापना कर उसे निश्चित अधिकार देती हैं। यह करार (agreement) बड़ा नाजुक होता है और उसमें शक्ति का व अधिकारों का बड़ा सूक्ष्म संतुलन रहता है। दो व्यक्तियों में भी यदि कोई करार (agreement) हो तो वह भी संदेह रहित और सब तरह से स्पष्ट नहीं रहता, यदि वह लिखा न जाय तो भविष्य में उनकी शर्तों के सम्बन्ध में उन दोनों व्यक्तियों को भ्रान्ति हो सकती है व झगड़ा हो सकता है। यही बात अधिक मात्रा में उस पेचीदा करार (agreement) के बारे में सत्य है जो दो राज्यशक्तियों के बीच में हो। संघ शासन संविधान संघ सरकार और प्रान्तीय सरकार की शक्तियों की मर्यादा स्थिर करता है इसलिये दोनों सरकारों के ऊपर उसका महत्वपूर्ण स्थान है। संघ सरकार का या प्रान्तीय

अरकार का कानून तभी वैध समझा जाता है जब वह विधान के अनुकूल हो। एकि-
सार की शक्तियों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं होता क्योंकि वह स्वय
रहती है। यह डी लोम (Do Lolmo) ने उस कथन से स्पष्ट
उसने कुछ भद्दे ढग से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की शक्ति का सक्षिप्त निरू-
है। उसका कहना था कि अंग्रेज वकील इस सिद्धान्त पर चलते हैं कि
स्ट सब कुछ कर सकती है, केवल पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष नहीं
। सघ शासन में पार्लियामेण्ट को ऐसा अधिकार कभी भी नहीं दिया
।

सघ-शासन विधान परिवर्तन करने के लिये विशेषतया क्लिष्ट होना है। जब सघ की स्थापना की जाती है तो विभिन्न सरकारो के प्रतिनिधि अपने अपने राज्य के अधिकारो का दावा करते है। इन अभ्यर्थनाओं या दावो पर बडी सूक्ष्मता और चतुरता से विचार किया जाता है और समझौते पर पहुचने से पूर्व अनेको रुकावटो का सामना करना पडता है। सब अभ्यर्थनाओ का ऐसा सतुलन और समिश्रण करना पडता है जिससे सब सदस्य राज्य सतुष्ट रहे और सघ में सम्मिलित होने को तैयार हो। जितने सघ शासन, ससार में, स्थापित हुये है उनका इतिहास इन सब बातो का साक्षी है। जब कई प्रान्त या उपराज्य मिलकर सघ (Federation) स्थापित करते है तो इस बात का विशेष ध्यान रखते है कि सघ सरकार को केवल वे अधिकार दिये जायें जो सम्मिलित शासन के हित में अनिवार्य रूप से आवश्यक है और वे प्रान्त शेष अधिकार व शासन शक्ति अपने पास सुरक्षित रखने का पूरा पूरा उपाय कर लेते है। प्रान्त स्पष्ट शर्तों पर ही अपनी स्वतन्त्रता का कुछ अश सघ शासन को सुपुर्द करते और शेष स्वतन्त्रता को अपने पास रखते है इन शर्तों का लिखित और स्पष्ट होना आवश्यक है जिससे सबको अपने अपने अधिकारो का स्पष्ट ध्यान रहे और समय के बीतने से उनके सम्बन्ध में भ्रान्ति न हो जाये, क्योंकि सदैव के लिये या उस समय तक के लिये जब तक सविधान में सशोधन न हो इन्ही शर्तों से ही सब के अधिकारो की रक्षा होती है। विधान बनाने में विरोधी अधिकारो का जब इस प्रकार सन्तुलन हो और बडे प्रयत्न के पश्चात् समझौते पर पहुचा जाय तो यह आवश्यक है कि विधान का सशोधन सुलभ न होना चाहिये। यदि यह सशोधन करना साधारण कानून की तरह सुलभ कर दिया जाय तो सविधान निर्माताओ का महत्वपूर्ण कार्य शीघ्र नष्ट हो जाय और सघ अधिक समय तक जीवित न रह सके। इसी कारण इस बात को निश्चित रखने के लिये जिन शर्तों पर प्रान्त-गण सघ में सम्मिलित हुये है उनको बहुत काल तक सुरक्षित रखा जाय और

शासन सविधान में परिवर्तन कठिनता से हो सके, उसी विधान में उसके परि-
वर्तन के ढग का निर्देश कर दिया जाता है और वह ढग विशिष्ट होता है। इसका
आशय यह नही है कि सविधान में परिवर्तन अथवा सशोधन (Amendment)
हो ही न सके। सविधान के निर्माता कितने ही योग्य और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ
हो, वे सविधान बनाते समय सब आगत घटनाओं के लिये उचित आयोजन करने
में समर्थ नही हो सकते, क्योंकि मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है।
कोई विधान ऐसा नहीं बनाया जा सकता जो सब समय के लिये और सब अव-
स्थाओ के लिये और समान रूप से उपयुक्त हो। मनुष्य जाति की आवश्यक-
ताओं में परिवर्तन होता रहता है। उन्नति के मार्ग में नई कठिनाइयों और नई
समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनसे नया अनुभव प्राप्त होता रहता है।
सविधान को क्रियात्मक रूप में लाने से ही उसकी कमियां मालूम होती हैं। वर्त-
मान युग में तो विज्ञान के नये नये आविष्कारों से मानव जाति की आर्थिक,
सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय व राजनैतिक स्थिति में दिन प्रति दिन परिवर्तन होता
रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शासन को स्थिति के अनुकूल बदलने
के लिये सघ विधान में परिवर्तन हो सकना सम्भव होना चाहिये। ऐसा भी
प्राय होता है कि सघ विधान के निर्माता कुछ पेचीदार समस्याओं का विधान
बनाते समय हल नही कर पाते और उन्हें भविष्य में सुलझाने के लिये इसलिये
छोड़ देते हैं कि विधान को कार्यान्वित करने में जो अनुभव प्राप्त होगा उसकी
सहायता से उनको सुलझाना सुगम होगा। इसलिये सघ शासन सविधान में ही
उसके सशोधन की विधि का उल्लेख कर दिया जाता है। सशोधन करने
की प्रणाली सब सघ विधानो में एक सी ही नही होती, पर साधारण कानून बनाने
की प्रणाली की अपेक्षा असीम विशेषतायें सब जगह रहती हैं। प्राय इस प्रणाली में
ऐसा आयोजन रहता है कि सघ के सब सदस्यो दलो और हितो का सघ विधान
के परिवर्तन में मत प्रकाशन ही न हो सके वरन् उनका थोड़ा बहुत हाथ इस परि-
वर्तन अथवा सशोधन में हो। इसलिये यह प्रणाली अधिक पेचीदा और दुष्कर
होती है। एकिक शासन को जब चाहे सुविधा के लिये बदला जा सकता है
परन्तु सघात्मक सविधान को ऐसा बनाया जाता है कि उसमें अनिवार्य परिवर्तन तो
न कर सके। सारांश यह है कि सघ शासन विधान में परिवर्तन तथा सशोधन
केवल उसी दशा में किया जा सकता है जब कि सघ के हित के लिये यह सशोधन
अत्यन्त आवश्यक हो और फिर इस सशोधन के करने का ढग भी मामूली कानूनो
के बनाने के ढग से अधिक विशिष्ट तथा विशेष प्रकार का होता हो।

(ग)—विशेष प्रकार की न्यायपालिका—संघ शासन की तीसरी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत एक ऐसा न्यायालय (Supreme Court) स्थापित किया जाता है जो प्रान्तों तथा केन्द्र दोनों की ही सरकारों के प्रभाव से मुक्त हो। यह पहले ही कहा जा चुका है कि संघ का शासन सविधान एक प्रकार सविदात्मक करार (Contractual agreement) की शर्तों का लिखित वर्णन है। यह वह लिखा हुआ समझौता है जिसमें प्रान्तीय सरकारो और संघ सरकार के बीच अधिकार और शक्तियो का विभाजन किया हुआ होता है और उनके आपस के सम्बन्धो की व्याख्या भी दी हुई होती है। यदि संघ की रक्षा करनी है और उसे चिरजीवी बनाना है तो इस करार की शर्तों का उचित पालन होना चाहिये, जैसे मनुष्यो या जनसमूहों के बीच करार की शर्तों को सुरक्षित रखने तथा तोड़ने वाले को दण्ड देने के लिये शासन के न्यायालय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केन्द्र की सरकार और प्रान्तो की सरकार के बीच मे हुये करार के अनुसार, अर्थात् शासन विधान की शर्तों के अनुसार बाध्य करने तथा किसी भी सरकार को उसके अधिकारो का अतिक्रमण करने से रोकने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है। परन्तु कौनसा न्यायालय यह निर्णय करे कि सविधान के अनुकूल सब सरकारें व्यवहार कर रही हैं और उनके कानून वैध (Legal) हैं या नही? कौन न्यायालय सविधान की सर्वप्रभुता की रक्षा करेगा, कौन उसकी व्याख्या करेगा और कौनसा न्यायालय इसे इनके मौलिक तत्वो के आधार पर व्यापक रूप देगा? यह कहने की आवश्यकता नही कि प्रान्तीय या संघ सरकार के आधीन रहने वाला न्यायालय इस काम को सुचारु रूप से नही कर सकता, न उसके निर्णयो का कोई मान होगा। इसलिये सविधान में ही एक स्वतन्त्र न्यायालय के बनने का आयोजन कर दिया जाता है। इसको सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) कह कर पुकारा जाता है जो सरकारों के आपस के झगड़े निबटाता है और उपर्युक्त दूसरी बातें भी करता है। इस न्यायालय के अधिकार शासन विधान में ही स्पष्ट तथा वर्णित रहते हैं। उन अधिकारो को विधान का संशोधन करके भले ही बदल दिया जा सकता है परन्तु किसी प्रान्त अथवा केन्द्र की सरकार उन्हे नही बदल सकती। जिस विधान से प्रान्तो अथवा केन्द्र की सरकारों को अपने अपने अधिकार और शक्तियाँ प्राप्त हैं उसी विधान से सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार और शक्ति प्राप्त होती है। किसी भी एकिक शासन में न्यायालय की इस प्रकार की स्वतन्त्रता हम नही पाते। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ही एक ऐसी सस्था है जिसकी उपस्थिति संघात्मक शासन को सुचारु रूप से चलाने में बहुत

शासन सविधान में परिवर्तन कठिनता से हो सके, उसी विधान में उसके परिवर्तन के ढग का निर्देश कर दिया जाता है और यह ढंग क्लिष्ट होता है। इसका आशय यह नहीं है कि सविधान में परिवर्तन अथवा सशोधन (Amendment) हो ही न सके। सविधान के निर्माता कितने ही योग्य और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हो, वे सविधान बनाते समय सब अनागत घटनाओं के लिये उचित आयोजन करने में समर्थ नहीं हो सकते, क्योंकि मानव जाति अपनी प्रकृति से ही अस्थिर है। कोई विधान ऐसा नहीं बनाया जा सकता जो सब समय के लिये और सब अवस्थाओं के लिये और समान रूप से उपयुक्त हो। मनुष्य जाति की आवश्यकताओं में परिवर्तन होता रहता है। उन्नति के मार्ग में नई कठिनाइयां और नई समस्याओं का सामना करना पड़ता है जिनसे नया अनुभव प्राप्त होता रहता है। सविधान को क्रियात्मक रूप में लाने से ही उसकी कमियां मालूम होती हैं। वर्तमान युग में तो विज्ञान के नये नये आविष्कारों से मानव जाति की आर्थिक, सामाजिक, अन्तर्राष्ट्रीय व राजनैतिक स्थिति में दिन प्रति दिन परिवर्तन होता रहता है। इसलिये यह आवश्यक है कि शासन को स्थिति के अनुकूल बदलने के लिये सघ विधान में परिवर्तन हो सकना सम्भव होना चाहिये। ऐसा भी प्राय होता है कि सघ विधान के निर्माता कुछ गुत्थीदार समस्याओं को विधान बनाते समय हल नहीं कर पाते और उन्हें भविष्य में सुलझाने के लिये इसलिये छोड़ देते हैं कि विधान को कार्यान्वित करने में जो अनुभव प्राप्त होगा उसकी सहायता से उनको सुलझाना सुगम होगा। इसलिये सघ शासन सविधान में ही उसके सशोधन की विधि का उल्लेख कर दिया जाता है। सशोधन करने की प्रणाली सब सघ-विधानों में एक सी ही नहीं होती, पर साधारण कानून बनाने की प्रणाली की अपेक्षा असीम विशेषतायें सब जगह रहती हैं। प्राय इस प्रणाली में ऐसा आयोजन रहता है कि सघ के सब सदस्यों, दलों और हितों का सघ विधान के परिवर्तन में मत प्रकाशन ही न हो सके वरन् उनका थोड़ा बहुत हाथ इस परिवर्तन अथवा सशोधन में हो। इसलिये यह प्रणाली अधिक पेचीदा और दुष्कर होती है। एकिक शासन को जब चाहे सुविधा के लिये बदला जा सकता है परन्तु सघात्मक सविधान को ऐसा बनाया जाता है कि उसमें अनिवार्य परिवर्तन को न कर सके। सारांश यह है कि सघ शासन विधान में परिवर्तन तथा सशोधन केवल उसी दशा में किया जा सकता है जब कि सघ के हित के लिये यह सशोधन अत्यन्त आवश्यक हो, और फिर इस सशोधन के करने का ढग भी मामूली कानूनों के बनाने के ढग से अधिक क्लिष्ट तथा विशेष प्रकार का होता हो।

(ग)—विशेष प्रकार की न्यायपालिका—सघ शासन की तीसरी विशेषता यह है कि उसके अन्तर्गत एक ऐसा न्यायालय (Supreme Court) स्थापित किया जाता है जो प्रान्तो तथा केन्द्र दोनो की ही सरकारो के प्रभाव से मुक्त हो। यह पहले ही कहा जा चुका है कि सघ का शासन सविधान एक प्रकार सविदात्मक करार (Contractual agreement) की शर्तों का लिखित वर्णन है। यह वह लिखा हुआ समझौता है जिसमें प्रान्तीय सरकारो और सघ सरकार के बीच अधिकार और शक्तियो का विभाजन किया हुआ होता है और उनके आपस के सम्बन्धो की व्याख्या भी दी हुई होती है। यदि सघ की रक्षा करनी है और उसे चिरजीवी बनाना है तो इस करार की शर्तों का उचित पालन होना चाहिये, जैसे मनुष्यो या जनसमूहो के बीच करार की शर्तों को सुरक्षित रखने तथा तोड़ने वाले को दण्ड देने के लिये शासन के न्यायालय की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार केन्द्र की सरकार और प्रान्तो की सरकार के बीच में हुये करार के अनुसार, अर्थात् शासन विधान की शर्तों के अनुसार बाध्य करने तथा किसी भी सरकार को उसके अधिकारो का अतिक्रमण करने से रोकने के लिये न्यायालय की आवश्यकता होती है। परन्तु कौनसा न्यायालय यह निर्णय करे कि सविधान के अनुकूल सब सरकारें व्यवहार कर रही हैं और उनके कानून वैध (Legal) हैं या नही ? कौन न्यायालय सविधान की सर्वप्रभुता की रक्षा करेगा कौन उसकी व्याख्या करेगा और कौनसा न्यायालय इसे इनके मौलिक तत्वो के आधार पर व्यापक रूप देगा ? यह कहने की आवश्यकता नही कि प्रान्तीय या सघ सरकार के आधीन रहने वाला न्यायालय इस काम को सुचारु रूप से नही कर सकता, न उसके निर्णयो का कोई मान होगा। इसलिये सविधान में ही एक स्वतन्त्र न्यायालय के बनने का आयोजन कर दिया जाता है। इसको सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) कह कर पुकारा जाता है जो सरकारो के आपस के झगडे निबटाता है और उपर्युक्त दूसरी बातें भी करता है। इस न्यायालय के अधिकार शासन विधान में ही स्पष्ट तथा वर्णित रहते हैं। उन अधिकारो को विधान का सशोधन करके भले ही बदल दिया जा सकता है परन्तु किसी प्रान्त अथवा केन्द्र की सरकार उन्हे नही बदल सकती। जिस विधान से प्रान्तो अथवा केन्द्र की सरकारो को अपने अपने अधिकार और शक्तियां प्राप्त हैं उसी विधान से सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार और शक्ति प्राप्त होती है। किसी भी एकिक शासन में न्यायालय की इस प्रकार की स्वतन्त्रता हम नही पाते। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि सर्वोच्च न्यायालय ही एक ऐसी सस्था है जिसकी उपस्थिति सघात्मक शासन को सुचारु रूप से चलाने में बहुत

कुछ समर्थ हैं। सब संघ शासनों में सर्वोच्च न्यायालयों ने बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। उदाहरणार्थ, निहित शक्तियों का सिद्धान्त (Doctrine of Implied Powers) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय ने प्रतिपादित किया था।

(घ)—सम्बन्धोच्छेद का सिद्धान्त—संघ शासन में राज्यों का सम्मिलन होता है। वे राज्य सम्मिलन से पूर्व या तो पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं या अर्धस्वतन्त्र। यह सम्मिलन कई प्रकार का हो सकता है। इस सम्मिलन में मिलने वाली इकाइयां समान सदस्य रह सकती हैं, बिल्कुल एक दूसरे के आधीन रह सकती हैं या कुछ बातों में आधीन और कुछ में स्वतंत्र या समान सदस्य हो सकती हैं। यह सम्मिलन चिरकालीन या अल्पकालीन हो सकता है, इस सम्मिलन में से निकलना सुकर या दुष्कर या पृथक् होना सम्भव ही न हो सकता हो। यह सम्मिलन पृथक् पृथक् इकाइयों ने अपने अपने स्वार्थसाधन के लिये किया हो या यह सम्मिलित आवश्यकताओं के कारण अनिवार्य था सामूहिक निष्ठा से प्रेरित हुआ हो। राजनैतिक सम्मिलनों या संघों के विविध प्रकारों का वर्णन ऊपर ही हो चुका है। अब हमें इस बात पर विचार करना है कि संघ शासन में संघ कहां तक अभंगनीय है, अर्थात् संघ बनाने वाली इकाइयों को संघ से सम्बन्धोच्छेद कर पृथक् होने का अधिकार कहां तक है।

इस सम्बन्ध में दो विरोधी मत हैं। एक ओर तो उन लोगों का मत है जो यह कहते हैं कि उपराष्ट्र या प्रान्त संघ की स्थापना के पूर्व पूर्णसत्तात्मक स्वतन्त्र और एक दूसरे से पृथक् इकाई थे। वे अपनी इच्छा से संघ में शामिल हुये और शामिल होने का अभिप्राय यह था कि संघ में रह कर वे कुछ सुविधायें प्राप्त करेंगे। उनका कहना है कि ज्योंही ये उपराष्ट्र यह अनुभव करें कि संघ में रहने से उनको कोई लाभ नहीं है उनको संघ से पृथक् होने का अधिकार है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में इस मत के प्रतिपादक वे लोग थे जो उपराष्ट्रों के अधिकारों की श्रेष्ठता के समर्थक थे। उनकी दृष्टि में संघ के अधिकार उपराष्ट्रों के अधिकारों से गौण हैं। इस मत के प्रतिपादकों में प्रमुख कल्हाउन (Calhoun) थे। ये लोग केन्टकी और वर्जीनिया में संघ स्थापित होने समय जो प्रस्ताव पास हुये थे उनकी भाषा का सहारा लेकर यह कहते थे कि उपराष्ट्र संघ स्थापना के पूर्व जिस इकाई अवस्था में थे उसी रूप से वे संघ में आये और इसलिये संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् भी उनकी सत्ता में कोई अन्तर नहीं हुआ और संघ

में वे ज्यो वे त्यो अलग अलग इकाई के रूप में सुरक्षित है। अमरीका में जब पहली बार सम्बन्धोच्छेद का यह प्रश्न उठा तो उसको तत्कालीन विदेशियो व राजविद्रोह से सम्बन्धित अधिनियमो को रद्द करके टाल दिया। पर जब सन् १८१२ का युद्ध हुआ और फिर सन् १८२८ में जब कांग्रेस ने विदेशी व्यापार पर कर लगाने का निश्चय किया जिससे दक्षिणी कैरालिना को हानि होती थी तो यह प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। दोना बार समझौता हो गया और यह विषय टाल दिया गया किन्तु प्रश्न का कोई समुचित सुनिश्चित हल नहीं निकाला जा सका।

दूसरे मत के प्रतिपादकों म मुख्य स्थान डेनियल वेब्स्टर (Daniel Webster) का है। इन लोगो का यह कहना था कि सारे देश के निवासियो ने मिलकर सघ की स्थापना की थी न कि पृथक् पृथक् राज्यो ने। इस आधार पर वे कहते थे कि उपराष्ट्रो को सघ शासन के कानूनो को शून्य करने का या सघ से सम्बन्ध तोडने का कोई अधिकार नही है। वे अपने उस मत के समर्थन में, जिससे वे सघ सरकार के अधिकारो का श्रेष्ठ और सर्वोपरि मानते थे, १७८७ के सघ विधान की प्रस्तावना को सामने उपस्थित करते थे। इस प्रस्तावना म लिखा था "हम सयुक्त राज्य अमरीका के निवासी एक सुदृढ व अधिक पूर्ण सघ की स्थापना के लिये न्याय प्रतिष्ठा के लिये, घरेलू शान्ति के लिये, सार्वजनिक सुरक्षा के लिये और अपने आपको व अपनी सन्तान को स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त कराने के लिये इस सघ सविधान को दृढ सकल्प होकर सयुक्त राज्य अमरीका के लिये स्वीकार करते हैं।" सन् १८६१ में जो गृह युद्ध (Civil War) हुआ उसमें यही प्रश्न उपस्थित था। दक्षिणी उपराष्ट्र दास प्रथा के सम्बन्ध मे राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के दृष्टिकोण से सहमत न थे। लिंकन दास प्रथा को तोडना चाहते थे पर दक्षिणी उपराज्यो को इस दास प्रथा से बडा लाभ था। उनकी आर्थिक सम्पन्नता इसी दास प्रथा पर निर्भर थी। उत्तरी उपराष्ट्र इस प्रथा के विरुद्ध थे और राष्ट्रपति से सहमत थे। अन्त में झगडा यहा तक बढा कि युद्ध हुआ, दक्षिणी उपराज्यों को हार माननी पडी और उनको सघ मे उनकी इच्छा के विरुद्ध रहना पडा। इस प्रकार इस प्रश्न का निबटारा बल प्रयोग से हो गया पर तर्क से न हो पाया। स्विट्जरलैण्ड म भी सन् १८४७ मे कैथोलिक धर्मावलम्बी कैन्टनो ने जब सघ शासन की आधीनता को मानने से इन्कार किया और सघ से अलग होना चाहा तो सौन्दरबन्द (Sonderbund) के युद्ध से इस समस्या का समाधान हुआ। पृथक होने वाले प्रान्तो की सेना को

जनरल डफूर ने हरा दिया और उन्हें संघ से पृथक होने से रोका। उस समय यहां भी बल प्रयोग से ही समस्या सुलझाई गई। पर उसके पश्चात् सन १८४७ और सन १८७४ में संघ शासन विधान में संशोधन करके इस पृथक् होने की इच्छा करने वाले प्रान्तों की बहुत सी शिकायतें दूर कर दी गईं।

सम्बन्धोच्छेद के सिद्धान्त की बड़े बड़े राजनीतिज्ञों ने कड़ी आलोचना की है। अमरीका के न्यायाधीश स्टोरी के अनुसार उपराज्यों या प्रान्तों को संघ से पृथक् होने का अधिकार नहीं है और इस प्रकार वे संघ को समाप्त नहीं कर सकते। इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि संघ शासन के शान्तिपूर्वक स्थापित रहने से सब अधिकारी साझीदारों के प्रमुख हितों की रक्षा व पोषण होता है। उनके मत से संघ के साझीदार राज्य नहीं पर प्रजा है और प्रजा का हित शान्ति और सुव्यवस्था में ही है। उनका कहना था कि "यदि व्यक्तियों व उपराज्यों के निजी अधिकारों में हस्तक्षेप किया जाता है तो व्यक्तिगत अधिकारों व सम्पत्ति की रक्षा इसी से हो सकती है कि उपयुक्त न्यायालय के समक्ष इस प्रश्न को ले जाया जाय और न्यायालयों द्वारा उचित व्यवस्था न हो तो जनता के बहुसंख्यकों की नैतिक भावना और सच्चाई का सहारा लिया जाय।" मैक्कलो (McCulloch) और मेरीलैण्ड (Maryland) के बीच मुकद्दमे में प्रसिद्ध न्यायाधीश मार्शल ने भी ऐसे ही विचार प्रकट किये थे। सरकार जनता से निस्सारित होती है जनता के नाम से ही उसका निरूपण और स्थापना होती है, जब उपराज्या ने जनता के प्रतिनिधियों को सम्मेलन में बुलाया और उनके सामने विधान रखा तो उससे ही यह स्पष्ट था कि उपराज्यो ने तो अपने पूर्णसत्ताधारी सगठित रूप से विधान को पहिले ही स्वीकार कर लिया था। सम्मेलन बुलाकर उनके सामने विधान को स्वीकृति के लिये प्रस्तुत करने के कार्य में ही राज्यो की स्वीकृति निहित थी। परन्तु उसके पश्चात् जनता को अधिकार था कि वह विधान को स्वीकार करती या रद्द कर देती। जनता का निर्णय अन्तिम निर्णय होता। इस निर्णय का सरकारा द्वारा अंगीकार करना आवश्यक नहीं था, न प्रान्तीय सरकारें उसे अस्वीकार कर सकती थी। जब विधान इस प्रकार अभिस्वीकृत हो गया तो वह पूर्ण आबद्धकारी हो गया और उपराज्यों की सत्तायें उससे पूर्णतया बाध्य हो गईं ..इसलिये संघ सरकार निश्चय ही जनता की सरकार है और वह वास्तवमें रूप और तत्व दोना से देखते हुये जनता से ही निस्सारित हुई है। जनता ने ही इस सरकार को इसके अधिकार

सौंपे हैं और यह सरकार बिना किसी की मध्यस्थता के अपनी जनता पर इन अधिकारों का उनके ही कल्याण के लिये उपभोग करेगी।*

स्विटज़रलैण्ड में विधान (१८७४) का पहला अनुच्छेद इस प्रकार है "स्विट्ज़रलैण्ड के पूर्ण सत्ताधारी केन्टनों की जनता इस संघ में सम्मिलित हो कर स्विस संघ का निर्माण करती है।" इसी प्रकार जर्मनी के सन् १९१९ के विधान में यह कहा गया है कि सारे शासनाधिकार जनता से उद्भूत है। संघ की लोक-सत्ता के सम्बन्ध में इन स्पष्ट उल्लेखों के अतिरिक्त, हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि किसी भी शासन विधान में स्वमृजित राज्य का विलयन करने वाली धारा नहीं रखी जा सकती न विधान इस विलयन की आज्ञा ही दे सकता है।

"जब कभी कोई एक या एक से अधिक उपराज्यीय सरकारें संघ में अपने आप को अल्पसख्यक दल में पावें और उनको यह प्रतीत हो कि उनके हितो की किसी केन्द्रीय सरकार के कानून से भारी हानि हो रही है, तो इस अल्पसख्यक दल को प्रार्थना करनी चाहिये और बातचीत के द्वारा अपना मत प्रकाशित कर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह कानून उसके अनुकूल बना दिया जावे। पर जब एक बार संघ की सारी जनता ने उस केन्द्रीय संस्था की स्थापना कर दी तब उस सरकार को संघ से पृथक् होने का कोई भी अधिकार नहीं है, क्योंकि यदि दुर्दान्त उपराज्यों को पृथक् होने का अधिकार दे दिया जाय तो सारे राज्य संगठन की स्थिरता ही नष्ट हो जाने का भय है और निश्चयपूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि इस विच्छेद का क्या अन्त हो। जिस संघ में सब मेल कराने वाले हितों को व मार्गों को दूर कर व उनके विच्छेद कराने वाले कारणों से अधिक शक्तिशाली और पुष्ट बनाकर संघ शासन की स्थापना की हो वहां प्राय ऐसे झगडे नहा उठ सकते जिनके कारण कोई उपराज्य संघ से अपना सम्बन्ध तोडने पर बाध्य हो जावे। वास्तव में यदि कोई संघ किसी उपराज्य के पृथक् होने से भग हो जाय तो यह समझ लेना चाहिये कि संघ वास्तव में संघ न था। केवल एक मित्र संगठन मात्र था।'[1] संघ शासन का भंग न हो सकना अब सभी स्वीकार करते हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने से भारत में संघ शासन की स्थापना के सम्बन्ध में जब बातचीत चली तो उस समय बर्मा को भारतीय संघ में शामिल करने के प्रश्न पर भी विचार हुआ। उस समय यह स्पष्ट कर दिया गया था कि एक बार

*थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृष्ठ ८२८, फुट नोट १।
१ फेडरल पौलिटी पृ० २४–२५।

संघ में आने के पश्चात् कभी संघ से अलग न हो सकेगा।

**संघ शासन के अनुकूल हेतु**—जिन परिस्थितियों व इच्छाओं के वश में होकर कई छोटे राज्य संघ में संगठित होने को तैयार होते हैं, या कोई एक बड़ा राज्य अपने को छोटे छोटे भागों में विभाजित कर संघ शासन प्रणाली को अपनाने का निश्चय करता है, उनका अध्ययन बड़ा महत्वपूर्ण है। संघ शासन के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि भिन्न भिन्न कारणों से संघ शासन स्थापित हुये। इन कारणों की विभिन्नतायें विशेष परिस्थितियों और हेतुओं पर निर्भर रहती है। हम यहां कतिपय ऐसे मुख्य साधनों पर विचार करेंगे जिन्होंने संघ शासन की स्थापना में योग दिया है।

**(i) भौगोलिक निकटता**—यदि सम्मिलित उपराज्य एक दूसरे से जुड़े हुये हों तो संघ स्थायी रूप से सुदृढ़ नहीं रह सकता। राज्यों में सहकारिता का भाव तभी पैदा होता है जब वे एक दूसरे के सान्निध्य में रहते हैं क्योंकि तब उन्हें बहुत सी बातों में एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। "पास पास रहने से ऐसा अप्रत्यक्ष पर महत्वशाली सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो साधारणतया उन दो राज्यों में नहीं होता जो एक दूसरे से दूरी पर स्थित हों।"* हैन्सियाटिक लीग (Hanseatic League) इसीलिये बहुत समय तक जीवित न रह सकी क्योंकि इसमें सम्मिलित नगर इधर उधर एक दूसरे से दूर दूर बिखरे हुये थे। न्यूज़ीलैण्ड, आस्ट्रेलिया के संघ में इसीलिये शामिल न किया जा सका क्योंकि विधान निर्माताओं की बलवती इच्छा के होते हुये भी एकीकरण की प्रवृत्तियां समुद्र की दूरी से ढीली पड़ गईं और वह टापू संघ में शामिल न हुआ। इन्हीं कारणों से आरम्भ में न्यूफाउण्डलैण्ड ने कनाडा के संघ में शामिल होने का निश्चय न किया। हैमिल्टन ने प्रसन्न होकर कहा था कि 'अमरीका एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न व पृथक् स्थल समूहों से मिलकर नहीं बना है पर स्वतन्त्रता की इस पश्चिमी सन्तान का देश एक विस्तृत, जुड़ा हुआ और उपजाऊ भूमि प्रदेश है।"[1] दक्षिणी अफ्रीका के संघ बनने में आर० एच० ब्राण्ड ने भी इन्हीं कारणों को हेतु बतलाया था "देश यद्यपि विस्तृत है पर प्रकृति से ही इसको इकाई बने रहने का सौभाग्य प्राप्त है। उसकी बनावट ऐसी है और इसके एक भाग व दूसरे भाग में कोई प्राकृतिक रुकावटें नहीं हैं। यहां के निवासी एक राजनैतिक संगठन में

---

*फेडरल पौलिटी, पृ० १०२।

[1]फेडरलिस्ट न० २।

रहते हैं और युद्ध से पहले भी रहते थे।"* इसमें संदेह नहीं कि भौगोलिक सार्थकता के सिद्धान्त को हाल ही में पाकिस्तान के निर्माण ने एक चुनौती दी है क्योंकि बंगाल का एक भाग जिसे पूर्वी पाकिस्तान कहते हैं, पाकिस्तान का एक भाग है किन्तु वह एक दूसरे से सैकड़ों मील दूर स्थित है। इतिहास के आधार पर यह बात निश्चयपूर्वक कही जा सकती है कि यह परिस्थिति सुव्यवस्थित रूप में अधिक समय तक नहीं चल सकती। पूर्वी पाकिस्तान या तो भारतवर्ष का ही भाग हो जायगा अथवा वह एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में ही परिणत हो जायगा।

(ii) आर्थिक लाभ—संघ शासन बनाने में आर्थिक लाभ ने बड़ा योग दिया है। बहुत से संघों के निर्माण का आधार ही यही था कि उसकी स्थापना से व्यापार, मुद्रा, कर, आने जाने के मार्ग आदि के सम्बन्ध में कानूनों की समानता होगी और निरर्थक रुकावटों के हट जाने से इनके द्वारा आर्थिक स्थिति सुधर जायेगी। अमरीकन राज्यो का संघ बनने से जो आर्थिक लाभ होंगे उन पर विचार करते हुये हैमिल्टन ने लिखा था कि "व्यापार की शिरायें प्रत्येक भाग में भरी पूरी रहेगी और प्रत्येक भाग की वस्तुओं के विविध बहाव से इनमें शक्ति और पुष्टता आवेगी। विविध राज्यो के उत्पादन की विभिन्नता से व्यापारिक उद्योग के लिये विस्तृत क्षेत्र खुल जायेगा।" कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, हैन्सियाटिक लीग और जर्मन संघ के निर्माता संघ से प्राप्त आर्थिक लाभों से अच्छी प्रकार विज्ञ थे। इन सब संघ शासन विधानों में ऐसी धारायें हैं जो इस बात की पर्याप्त समर्थक हैं। इस बात के समझने में कल्पना शक्ति को अधिक उडान नहीं करनी पड़ती कि संघ शासन से एक विस्तृत क्षेत्र खुल जाता है, क्रय विक्रय की सुविधायें बढ़ जाती हैं और सब सदस्य राज्यो को एक दूसरे से व्यापार में अधिक आसानी होती है। इस सुविधा का क्या महत्व है, यह बात उन कठिनाइयों से प्रकट हो जायगी जिनका सामना व्यापारी लोग करते हैं जब उन्हें एक ही देश में स्थित एक राज्य की सीमा में पैर रखते ही भिन्न मुद्रा, तौल आदि के माप और भिन्न व्यापार सम्बन्धी नियमों को बरतना पड़ता है। इसलिये यह स्पष्ट है कि आर्थिक सुविधाओं का लाभ संघ शासन बनने में बहुत कुछ कारणी भूत सिद्ध हुआ है।

(iii) राजनैतिक हेतु—संघ शासन स्थापित करने से जो राजनैतिक

*यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, पृ० ८९।

लाभ होते हैं उन्हें सभी जानते हैं। इन राजनैतिक लाभों में विशेषतया बाहरी आक्रमणों से रक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध और शासन व्यय में बचत, उल्लेखनीय हैं। इनके कारण बहुत से संघ शासनों की रचना हुई। प्राचीन काल में यूनान के नगर राज्यों ने पहले मैसीडोनिया और उसके पश्चात् रोम की बढ़ती हुई शक्ति से अपनी रक्षा करने के लिये और समय पड़ने पर उसका सामना करने के हेतु अपना एक संगठन बनाया। इटली में लाम्बार्ड लीग और स्विट्ज़रलैण्ड में संघ की स्थापना आस्ट्रिया सम्राट् का सामना करने के लिये हुई थी। स्पेन के आक्र-मण को रोकने के लिये फ्रांस के उत्तर में नैदरलैण्ड्स संघ (Notherlands Confederacy) बनाया गया था। अमरीका में हैमिल्टन ने ठीक ही कहा था कि "संघ से प्राप्त सुखों की अनुभूति की सुदृढ़ कल्पना ने लोगों को बहुत प्राचीन समय में ही संघ शासन स्थापित करने के लिये और उसकी रक्षा कर *उसे चिरस्थायी बनाने के लिये प्रेरित किया था।" *आस्ट्रेलिया में राजनैतिक* भावना से प्रेरित होकर स्वतन्त्र उपनिवेशों ने संघ की स्थापना की। "फैडरलिस्ट" में जो (Jay) ने अमरीकन जनता से अपील करते समय उसका ध्यान यूरोपियन राज्यों की *साम्राज्य लोलुपता की ओर आकर्षित किया और उससे सामना* करने के लिये अपने आपको संघ शासन में संगठित कर शक्तिशाली बनाने पर जोर दिया था। उन्होंने घोषित किया "कि यदि वे (यूरोपियन राज्य) देखेंगे कि हमारी राष्ट्रीय या संघ सरकार योग्य सामर्थ्यवान् हैं और उसका शासन सुव्यवस्थित है, हमारे व्यापार का बुद्धिमानी से नियमन होता है, हमारी सेना सुशिक्षित और सुसंगठित हैं, हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ है और हमारे आय के साधनों की भली भांति व्यवस्था होती है, हममें दूसरा का विश्वास जमा हुआ है, हमारी प्रजा स्वतन्त्र, सुखी और एकमत है, तो वे हमें अप्रसन्न करने के बजाय हमसे मित्रता करने के लिये अधिक उत्सुक होंगे। इसके विपरीत यदि वे दूसरी ओर यह देखेंगे कि हमारा शासन ढीला है और हम अयोग्य सरकारों *की अनाथ प्रजा हैं (जहां प्रत्येक राज्य गलत और ठीक अपनी सुविधा के लिये* जो चाहे सो करता हो) या हम तीन या चार स्वतन्त्र और शायद आपस में लड़ने वाले राज्य समूहों में अपने आपको बांटे हुये हैं जिसमें कोई ब्रिटेन की ओर झुका हुआ है, दूसरा फ्रांस की ओर और तीसरा स्पेन की ओर, जिससे ये तीनों मिलकर हमको आपस में लड़ाते रहे तो इन लोगों की दृष्टि में अमरीका का कैसा दयनीय रूप जचेगा। कितनी सुगमता से वह उन लोगों की घृणा का ही विषय न बनेगा

---

*फैडरलिस्ट, नं० २।

परन्तु उनके अपमान का शिकार भी बन जायगा और कितने थोडे समय के पश्चात् हमारा महगा अनुभव पुकार पुकार कर कहेगा कि जब कोई कुटुम्ब या जन समूह फूट का शिकार बनते है तो वे किस प्रकार अपना नाश अपने ही हाथ कर बैठते हैं।"* अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बडे राज्य की जो सुनवाई होती है वह छोटे राज्य की नही होती। इस कारण भी छोटे छोटे राज्य मिलकर बडा राज्य बनाने के लिये तैयार रहा करते हैं। इसके अतिरिक्त सघ शासन में खर्चे की बचत भी रहती है क्योकि सघ स्थापित होने से उपराज्यो को अलग अलग निजी स्थल, जल और वायु सेना रखने की आवश्यकता नही रहती और न विदेशीय मामलो में उन्हे अपने निजी दूत व दूतावास रखने पडते हैं। यह काम और इसका खर्च सब सघ-सरकार पर छोड दिया जाता है जो सब उपराज्यो की रक्षा के लिये केवल एक राष्ट्रीय सेना का सगठन करती है।

जर्मन राजनीतिज्ञ जब वीमार (Weimar) में युद्ध के पश्चात् विधान बनाने के लिये एकत्रित हुये तब उनके सम्मुख यही राजनैतिक हेतु थे। उनमें एक ऐसा दल था जो रियासतो के विलगीकरण का समर्थक था जिससे प्रशिया छिन्न भिन्न हो जाये। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये ही उन्होने सघ शासन की स्थापना की। भारतवर्ष मे जब पहले पहल सन् १९३५ के शासन विधान के लिये बातचीत चल रही थी तभी यह निश्चय हो गया था कि भारतवर्ष में सघ शासन की स्थापना होनी चाहिये जिसमें रियासतें और प्रान्त दोनो शामिल हो। यह विचार किया जाता था कि सयुक्त भारतवर्ष विदेशी आक्रमणो से अपनी रक्षा अच्छी तरह कर सकेगा, एक सुदृढ व स्थिर वैदेशिक नीति अपना सकेगा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभावशाली बनने में सफल हो सकेगा। यदि ऐसा न होकर उसके कई स्वतन्त्र इकाई राज्य होते तो उपर्युक्त सुविधाये न होती, न रक्षा हो सकती, न ससार में पृथक् पृथक छोटे राज्यो का कोई प्रभाव या मान होता। इन्ही कारणो से हम आज देखते हैं कि भारत के सविधान निर्माताओ ने इस देश के सविधान को सघात्मक रूप दिया है।

**जाति सम्बन्धी और सांस्कृतिक हेतु**—जिस देश म एक ही जाति व सस्कृति के लोग रहते हो, एक ही धर्म के मानने वाले हो और एक ही भाषा को बोलने वाले हो वहा एकिक शासन का सफलीभूत होना सम्भव है। पर जहा धर्म, भाषा व जाति की अनेकता है वहा एकिक शासन इस विभिन्नता को और भी

* फेडरेलिस्ट न० ४, न० ३ भी देखिये।

अधिक महत्व देता है जिससे देश की उन्नति रुक जाती है। देश में रहने वाले भिन्न भिन्न जाति, धर्म व संस्कृति वाले जन समूहों व प्रान्तों को यदि एक सूत्र में बांध कर रखना ही श्रेयस्कर समझा जाय तो संघात्मक शासन प्रणाली सबसे उपयुक्त सिद्ध होगी। कनाडा में ऐसी ही स्थिति का सामना करने के लिये १८६७ में संघ शासन स्थापित किया गया था। यहां फ्रेंच और अंग्रेज दो बड़ी प्रमुख जातियां थीं जिनमें बड़ी पुरानी फूट चली आ रही थी और जिनका रहन-सहन, विचार-शैली, भाषा व धर्म एक दूसरे से भिन्न थे। संघ शासन में इस विभिन्नता को मान लिया गया और उसको उचित स्थान, देकर एक संयुक्त राज्य की स्थापना कर दी गई। इससे पूर्व एकिक शासन प्रणाली में उनकी भाषा, संस्कृति और जाति की विभिन्नता पग पग पर शासन के कार्य में बाधा अटकाती थी और शासन के शान्ति पूर्वक संचालन करने में बाधक सिद्ध हो रही थी। सन् १८६७ के नार्थ अमेरिका ऐक्ट के पास होने से ऐसे संघ शासन की स्थापना की गई जिससे इन दोनों जातियों में बहुत कुछ सामञ्जस्य पैदा हो गया। यही बात स्विट्ज़रलैंड के बारे में भी सत्य सिद्ध हुई। वहां भिन्न भिन्न केण्टनों में फ्रांसीसी, जर्मन और इटैलियन लोग रहते हैं और अपनी अपनी भाषायें बोलते हैं। उनका धर्म भी एक दूसरे से भिन्न है। ऐसी अवस्था में इन कैण्टनों को एकिक शासन सूत्र में बांधकर सुव्यवस्थित रखना असम्भव था। उनकी पारस्परिक विभिन्नता की ओर आंख न मूंद कर उसका उचित आदर किया गया और फिर संघात्मक सिद्धान्तों के आधार पर उनमें सामञ्जस्य स्थापित कर १८७४ ई० के स्विस संघ की स्थापना कर दी गई। जर्मन प्रजातन्त्र के संघ शासन संविधान ने जर्मन उपराज्यों की विभिन्न आवश्यकताओं को उचित मान देकर उनको पूरा करने का सफल प्रयत्न किया। भारतवर्ष में संघ शासन स्थापित करने में भाषा धर्म और संस्कृति की अनेकता भी एक कारण है।

**संघ शासन के गुण व दोष**—संघ शासन प्रणाली का मूल्यांकन करने में राजनीतिशास्त्रियों का भिन्न भिन्न मत है। कुछ राजनीतिशास्त्री इसे दोषपूर्ण बताते हैं और कहते हैं कि इस प्रणाली से सरकार निर्बल रहती है क्योंकि प्रजा की राज्यनिष्ठा दो सरकारों के प्रति विभाजित रहती है। यहां हम कुछ प्रमुख और परस्पर विरोधी विचारकों के मतों का मूल्यांकन कर एक सुनिश्चित मत पर पहुंचने की चेष्टा करेंगे।

**आचार्य डायसी (Prof Dicey) की आलोचना**—आचार्य डायसी का कहना है कि संघ शासन में या दो उपराज्यों में से एक प्रबल राज्य इतना

प्रमुख सम्पन्न हो जायगा कि उपराज्यीय समानता का उल्लंघन कर दूसरों पर अपना प्रभुत्व जमा लेगा या बहुत से छोटे उपराज्य मिलकर, अपने में से जो सब से बड़ा और शक्तिशाली सदस्य राज्य होगा, उस पर संघ के करों को बढ़ाकर व दूसरे उपायों से संघ का सारा बोझ उसी पर डाल देंगे और उससे स्वयं बच जायेंगे। परन्तु व्यवहार में यह देखा गया है कि यदि संघ शासन विधान को होशियारी से बनाया जाय तो इन दोनो अनिष्टों की आशंका नही रहती। यह सच है कि इस बात का ध्यान युद्ध से पूर्व जर्मन साम्राज्य के शासन विधान बनाने में नही रखा गया। प्रशिया जो सबसे प्रभुत्वशाली सदस्य राज्य था दूसरे छः उपराज्यों की सहायता से बचे हुये छोटे उपराज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाये रहता था और ये शक्तिहीन और असहाय बने रहते थे। उस शासन विधान की इस कमी को देखकर लोवेल (Lowell) ने कहा था कि इन राज्यो में जो समझौता था, वह वैसा ही था जैसा कि एक सिंह, आधे दर्जन लोमड़ियों और बीस चूहों में हो। आस्ट्रिया-हंगरी के संघ मे हंगरी अपनी संगठित मैगायार प्रजा के बल पर तीस प्रति सैकड़ा संघ शासन का खर्चा देने के बदले में संघ की सत्तर प्रतिशत शक्ति का उपभोग करता था। आस्ट्रिया का क्षेत्रफल हंगरी से अधिक था और उसकी जनसंख्या भी हंगरी की जनसंख्या से अधिक थी, पर भाषा-विभेद और जाति-भेद के कारण आस्ट्रिया की शक्ति छिन्न भिन्न रहती थी।

आचार्य डायसी ने दूसरा दोष यह बतलाया है कि संघ शासन में एक निष्ठा का अभाव रहने से राज्य की इकाइयो में बराबर तनातनी बनी रहती है और प्रायः मुकदमेबाजी तक की नौबत आ जाती है। संघ शासन के विरुद्ध इस अभियोग में ऊपरी दृष्टि से देखने पर बहुत कुछ तथ्य दिखाई देता है, पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह कोई अनिवार्य दोष नही है। यदि संघ शासन विधान का चतुराई से निर्माण किया जाय तो यह दोष बहुत कुछ दूर हो सकता है और एक शक्तिशाली संघ की स्थापना हो सकती है। आचार्य डायसी आगे कहते हैं कि यदि कोई संघ सफलीभूत हुआ है तो वही जो एक कदम और बढाने पर एकिक शासन का रूप धारण कर ले। इस कथन का अभिप्राय यही प्रतीत होता है कि संघ शासन के सफल कार्यभूत होने से विभिन्नतायें मिटकर एकता स्थापित हो जाती हैं। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि संघ-शासन में ऐसी राजनैतिक संस्था की स्थापना नहीं की जाती है जो अपनी विरोधी शक्तियो को उत्पन्न कर अपने ही बल को कम कर दें, पर उसके द्वारा एक ऐसे शक्तिशाली राज्य की उत्पत्ति होती है जो वास्तव में एकिक शासन न होते हुये ऊपर से ऐसा ही दिखाई दे।

**ब्रांड की आलोचना**—संघ शासन को दोषपूर्ण बतलाने वालों में ब्रांड (Brand) का नाम भी लिया जाता है। उनका कहना है कि मानव-निर्बलता को अनिवार्य मानकर संघ शासन प्रणाली अपनायी गई है। वे आगे चलकर कहते हैं कि इससे अच्छी दूसरी शासन प्रणाली यदि न मिल सके तो संघ शासन प्रणाली के स्वीकार कर लेने के सिवाय चारा ही क्या है, पर इसकी असुविधायें स्पष्ट हैं। इससे सरकार के अंगों के टुकड़े हो जाते हैं और उसके फलस्वरूप उनमें तनातनी और निर्बलता आ जाती है। इस प्रणाली में एक नये देश का विकास एक संकुचित मर्यादा के भीतर ही हो सकता है।"[*] इस कथन से यह तो मान ही लिया गया है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में संघ शासन की बड़ी उपयोगिता होती है क्योंकि इससे यह अभिप्राय स्पष्ट होता है कि जहां एकिक शासन असम्भव हो वहां संघ शासन ही दूसरी शासन प्रणाली है जो सफल हो सकती है।

**आचार्य लास्की (Laski) की प्रशंसा**—संघ शासन की प्रशंसा भी बड़े कुशल राजनीतिशास्त्रियों ने की है। उनमें आचार्य लास्की का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका तो यहां तक कहना है कि यदि सामाजिक संगठन को यथेष्ट बनाना है तो उसका रूप संघात्मक ही होना चाहिये (अर्थात् स्थानीय वैयक्तिक स्वतन्त्रता और सार्वजनिक मामलों में व्यवस्था की समानता)। इस संघात्मक बनावट में केवल 'मैं और मेरा राज्य' या 'मेरी जाति और मेरा राज्य' के ही सम्बन्ध नहीं होते पर ये सब और उनका पारस्परिक सम्बन्ध भी इसी के अन्तर्गत रहता है।"[१] इसके पश्चात् वे यह कह कर इस कथन को समाप्त करते हैं कि क्योंकि समाज संघात्मक है राज्यतन्त्र भी संघात्मक ही होना चाहिये।"[२] उनके कथनानुसार "राष्ट्र ही सामाजिक संगठन की अन्तिम इकाई नहीं है। इसकी प्रभुता (Sovereignty) मानव समाज के ऐतिहासिक अनुभव का केवल एक रूप है और जैसे जैसे यह अनुभव निखरता जाता है और संसार की एकता का दबाव पड़ता जाता है यह निरर्थक व असामयिक सिद्ध होती जाती है। यह ठीक है कि किसी भी राज्य को उन सब विषयों में स्वतन्त्रता मिलनी चाहियें जिनका प्रभाव उस राज्य के निजी क्षेत्र तक ही सीमित हो परन्तु होता यह है कि ज्यों ही वह अपनी इच्छा को कार्यान्वित करना आरम्भ करता है उसके स्थानीय हितों और उससे बाहर की दुनिया के हितों में टक्कर होने

---

*दी यूनियन आफ साउथ अफ्रीका, पृ० ४६–४७।
१ग्रामर आफ पौलीटिक्स, पृ० २६२।
२ " " पृ० २७१।

लगती है।"※ इसमें संदेह नही कि अब दुनिया अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक और बौद्धिक सहयोग के क्षेत्र में पदार्पण कर रही है और अब कोई बिरला ही साहसी पुरुष मिलेगा जो वर्तमान युग में किसी राज्य को सम्पूर्ण प्रभु वा सत्ताधिकारी (Sovereign) कहने का दावा करेगा।

**संघ शासन का अनुभव क्या बतलाता है**—व्यवहार में संघ शासन उतना निर्बल सिद्ध नही हुआ है जैसा आचार्य डायसी ने बतलाया है। स्विट्ज़रलैण्ड के केन्टन यदि संघीभूत न हुये होते तो सर्वदा वे यूरोप की अशांति का कारण बने रहते। इनके सम्बन्ध में ब्रुक्स ने ठीक ही कहा था कि जो लोग इतने भौगोलिक घेरों मे विभाजित हो, जिनमें भाषा व धर्म की इतनी विभिन्नता हो और जो जाति और रीति रिवाजो में एक दूसरे से न मिलते हो, उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक था कि राज्य संगठन में स्थानीय स्वायत्त-शासन के लिये पर्याप्त क्षेत्र छोड देना चाहिये था। वास्तव में इस आवश्यकता को संघात्मक प्रणाली द्वारा पूरा कर दिया गया है और इसमें शक्ति को बहुत मात्रा में विकेन्द्रीकरण कर दिया गया है।"१

यही बात अमरीका के संयुक्त राज्य के सम्बन्ध में सत्य है। यदि फिलाडेल्फिया के शासन विधान के निर्माता संघ शासन के सिद्धान्तों को अंगीकार न करते तो आरम्भ के तेरह राज्य अमरीका को शक्तिशाली प्रजातन्त्र राज्य बनाने में सफल न होते। फ्रांस में शासन विधान एकिक सरकार की स्थापना करता है। क्या कोई कह सकता है कि संयुक्त राज्य अमरीका की संघ सरकार फ्रांस की एकिक सरकार की अपेक्षा निर्बल सिद्ध हुई है अथवा इग्लैण्ड जो एकिक राज्य है, अमरीका के संघात्मक राज्य से अधिक दृढ एवं शक्तिशाली है ? फ्रांस में तो बार बार सरकारो के बदलने से शासन में तरह तरह की अडचने और असुविधायें पडती रहती है। कनाडा में फ्रांसीसियों और अंग्रेजो में ऐसा विरोध और झगडा था कि वहा एकिक शासन का चिरस्थायी होना असम्भव था। यदि फ्रांसीसी और अंग्रेजी कनाडा का शासन अलग अलग रहता और ये दोनो संघीभूत न हुये होते तब भी इनमें बराबर युद्ध चलता रहता। पर कनाडा के संघ शासन न यह सब दूर कर दिया और विविधता के बीच एकरूपता की स्थापना कर दी। सन् १९१४–१८ के युद्ध के पश्चात् जर्मनी में वीमार शासन विधान (Weimar Constitution) के निर्माताओं ने संघ शासन-पद्धति की सहायता से

※गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० १८।
१„ „ „ पृ० २८५।

ही जर्मनी को टुकड़ों में बंटने से बचाया और जर्मनी यूरोप में एक शक्तिशाली राज्य बना रहा।

"संक्षेप में संघ शासन पद्धति ने झगड़े मिटा दिये हैं, खण्डन रोक दिया है, द्वेष को दबा दिया है, युद्ध को रोक दिया है और संसार के विभिन्न भागों में रहने वाले अनेक जन समूहों में से शान्तिप्रिय शक्तिशाली व सम्पन्न राज्यों को जन्म दिया है। यह सब एकिक सरकार पद्धति के अन्तर्गत न हो सकता था। यदि हम संघ शासन को, जो राज्यों के बीच समझौता, मेल-जोल और शान्ति स्थापित करता है, निर्बल कहें तो ऐसा कहना उसके नाम का प्रतिवाद करना समझा जायेगा। इस शासन पद्धति ने जहां निर्बलता थी वहां बल दिया है, जहां द्वेष और संदेह का दौर दौरा था वहां शान्ति और सद्भावना की स्थापना की है और इस प्रकार जहां छोटे छोटे निर्बल राज्य आपस में अपने अस्तित्व के लिये एक दूसरे से लड़ भिड़ रहे थे वहां शक्तिशाली बड़े बड़े राज्य स्थापित कर दिये।"* यह ठीक है कि स्वभाव से ही एकिक शासन अधिक चिरन्जीवी और सुव्यवस्थित रहता है पर जहां यह शासन सम्भव न हो क्योंकि परिस्थितियां और आवश्यकतायें विशेष प्रकार की हैं, वहां संघ शासन ही निस्सन्देह श्रेणी में दूसरी सबसे अच्छी पद्धति है और कुछ विशेष परिस्थितियों के लिये तो यह वास्तव में सबसे अच्छी पद्धति सिद्ध होगी।

## पाठ्य पुस्तकें

Brand, R. H—The Union of South Africa, pp 1–50
Brooks, R C—Government and Politics of Switzerland, pp. 1–50
Bryce, Viscount—Constitutions (Oxford University Press)
Dicey, A V—Law of the Constitution pp LXXX—LXXXIII
Finer, Herman—Theory and Practice of Modern Government, Vol I, chs. VIII–IX
Freeman, E A.—History of Federal Government, Vol I

*फेडरल पौलिटी, पृ० १३६।

Hamilton, A.—The Federalist, Nos. II–XI.
Laski, H. J.—Grammar of Politics, ch. VII.
Newton, A. P.—Federal & Unified Constitutions, Introduction.
Sharma, B. M.—Federal Polity, chs. I, III, IV
Sidgwick, H.—The Development of European Polity, Lecture XXIX.

# अध्याय ३

## सरकार के स्वरूप और कृत्य

"राजाओं का दैवी अधिकार बलहीन पर अत्याचारी राजपुरुषों के लिये बहाना मात्र हो, पर सरकार का दैवी अधिकार मानवोन्नति की कुंजी है और इसके बिना सरकारें गिरते गिरते केवल पुलिस रह जाती है और राष्ट्र का पतन होते होते वह केवल एक असंगत जनसमूह रह जाता है।" (डिजरेली)

**सरकार प्रत्येक राज्य का अनिवार्य अंग है**—समाज में रहने वाले मनुष्य ने सामाजिक जीवन बिताने के लिये कई संस्थाओं को जन्म दिया है। इन संस्थाओं में राज्य सर्वग्राही और सबसे महत्वशाली संस्था है, क्योंकि इसका अस्तित्व और रूप मनुष्य के जन्म लेने से पूर्व ही निश्चित रहता है। राज्य का परिचय उसके अन्तर्गत भूमि प्रदेश से, वहा के निवासियों से व उन लोगों की उस सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक घनिष्टता से जिससे वे एक इकाई प्रतीत होते हैं प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त राज्य का परिचायक वह संगठन होता है जिससे राजकीय जीवन नियमित रहता है। इस संगठन को ही हम सरकार कह कर पुकारते हैं। राजकीय संस्था को परिचालित करना राज्य के लिये आवश्यक है। चाहे कुछ समय के लिये कोई राज्य बिना सरकार के रह भी जाय पर बिना राज्य के कोई सरकार पर्याप्त समय तक नहीं रह सकती। सरकार और राज्य का सम्बन्ध इससे स्पष्टतया प्रकट होता है।

**आधुनिक राज्यों में सरकार के विभिन्न रूप हैं**—अतः सरकार वह संगठन है जिसके द्वारा किसी समाज का राजकीय जीवन परिचालित होता है। यह संगठन राज्य की नीति की रक्षा करता है और उसे व्यावहारिक रूप देता है। जीवन की समस्यायें प्रत्येक राज्य में एक समान नहीं होतीं। भौगोलिक स्थिति, आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक, तथा परम्परा आदि की विभिन्नता ही इस असमानता का कारण रहती है। आधुनिक राज्यों में जो भिन्न भिन्न राज्यतंत्र प्रणाली देखने को मिलती है उसका कारण ये ही विभिन्नतायें हैं। मानव इतिहास के प्रत्येक युग में राज्यतंत्र की यह विभिन्नता रहती चली आई है और

भविष्य में भी इसके विभिन्न रूप रहेंगे । हर एक राज्य में ऐसी राज्यतंत्र प्रणाली या सरकार का रूप अपनाया जाता है जो उस राजकीय समाज की स्थिति में सम्भव है और उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये सबसे उपयुक्त सिद्ध होती है ।

**प्राचीन काल में सरकारों का वर्गीकरण**—यद्यपि सरकार के अनेक रूप हैं पर उनके सूक्ष्म अध्ययन की सुविधा के लिये हम उनको कुछ वर्गों में विन्यस्त कर सकते हैं । प्राचीन काल से लेकर अब तक अनेकों राजनीतिज्ञ विशारदों ने वर्गीकरण करने का ऐसा प्रयत्न किया है । इन विचारकों में से हर एक ने अपने निराले ढंग पर यह वर्गीकरण किया है और उसके पश्चात् उन्होंने यह दिखलाने का प्रयत्न किया है कि आदर्श राज्यतन्त्र प्रणाली कौनसी है ।

**वर्गीकरण के दो मुख्य आधार**—सबसे प्रथम इस वर्गीकरण का प्रयत्न अरस्तू ने किया जिसको हम राजनीति विज्ञान को अध्ययन का विषय बनाने का श्रेय देते हैं । उसके वर्गीकरण के दो आधार हैं, एक संख्यात्मक और दूसरा गुणात्मक ।

**सरकार का संख्यात्मक वर्गीकरण**—संख्यात्मक दृष्टि से अरस्तू ने राज्य-प्रशासन को संभालने वालों की संख्या के आधार पर सरकारों का वर्गीकरण किया है । यदि राज्यतंत्र का सारा संगठन एक व्यक्ति द्वारा या एक व्यक्ति की इच्छानुसार परिचालित होता हो तो वह सरकार राजतंत्र है, यदि सरकार का संचालन कुछ व्यक्तियों द्वारा होता है तो उसे कुलीन-तंत्र, तथा जब बहुतों द्वारा होता है (बहुतों से अभिप्राय सारी जनता से है ) तो उसे जनतंत्र कहते हैं । रोमन युग में बहुत से राजनीति विचारकों ने इसी संख्यात्मक वर्गीकरण को अपनाया था । उनमें से पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) का नाम उल्लेखनीय है, मध्य युग में भी यही वर्गीकरण प्रचलित था ।

**सरकार का गुणात्मक वर्गीकरण**—सरकार के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने के लिये जब अरस्तू गुणात्मक वर्गीकरण की शरण लेता है तो यह वर्गीकरण इतना प्रभावशाली और अनुपम हो जाता है कि अच्छे अच्छे विचारक भी उसकी प्रशंसा करते हैं । इस वर्गीकरण की कसौटी वह उद्देश्य है जिसकी पूर्ति के लिये राज्य संगठन का कार्य रूप होना है । इस वर्गीकरण में शासकों का अभिप्राय और इच्छा ये दोनों महत्वपूर्ण वस्तुयें हैं । यदि सरकार शासितों के हित की दृष्टि से ही प्रमुखतः परिचालित होती हो तो वह सरकार साधारण कही जाती है । ऐसी

अवस्था में भी उसके तीन भेद रहते हैं; यदि एक व्यक्ति शासितों की सुख पहुंचाने और कल्याण करने के लिये शासन करता है तो वह राज-पद या राज-तन्त्र, यदि कुछ व्यक्ति शासन करते हैं तो कुलीन-तन्त्र और यदि सब जनता शासन करती है तो उसे पोलिटी या बहुतन्त्र कहते हैं। इसके विपरीत यदि शासन शासकों के हितों का ही प्रमुखतः पालन करता हो तो उपर्युक्त साधारण रूपों का भ्रष्टरूप हो जाता है। इन भ्रष्टरूपों में एक व्यक्ति का शासन अत्याचारी तन्त्र (Tyranny), कुछ का शासन अल्प-जनतन्त्र (Oligarchy) और बहुतों का शासन जनतन्त्र या प्रजातन्त्र (Democracy) कहलाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'जनतन्त्र' या 'प्रजातन्त्र' नाम अरस्तू उस शासन सग-ठन को देता है जिसे हम आधुनिक समय में अराजकता अथवा असंयतराजतन्त्र (Mobocracy) कहते हैं। इन सब रूपों में कौनसी सरकार सबसे उत्तम है, इस प्रश्न का उत्तर देने में अरस्तू सरकार की दृढ़ता और स्थायित्व की ही कसौटी को अपनाता है। इस कसौटी से परखने पर "जिस राज्य में निर्धनों की संख्या धनिकों से बहुत अधिक हो वहा प्रजातन्त्र सबसे उत्तम है, जहा धनिकों की संख्या की कमी उनकी शक्ति और सम्पत्ति से पूरी हो जाती हो, वहा अल्पजनतन्त्र और जहां मध्यवर्गवालों की अधिकता हो वहा पोलिटी या बहुतन्त्र सबसे उत्तम सरकारें होती हैं। पोलिबियस (Polybius) और सिसेरो (Cicero) दोनों ने अरस्तू के वर्गीकरण को अपनाया था पर उनके अनुसार वह राजतन्त्र प्रणाली सबसे उत्तम है जिसमें एकतन्त्र (या राजतन्त्र), कुलीनतन्त्र और जन-तन्त्र का मिश्रण हो। उन्होंने इसीलिये रोमन पद्धति की बड़ी प्रशंसा की है जिसमें कौंसुलस (Consuls) राजतन्त्र के तत्व के परिचायक थे, सीनेट या परिषद् कुलीनतन्त्र तत्व की परिचायक थी और लोक सभायें जनतन्त्र या प्रजातन्त्र तत्व की परिचायक थी।

आधुनिक सरकारों का हम संख्यात्मक या गुणात्मक वर्गीकरण नहीं करते। आधुनिक राज्यों में राज्यतन्त्र प्रणालियां इतनी पेचीदा और अनेक प्रकार की हैं कि उनका वर्गीकरण एक भिन्न आधार पर करना परमावश्यक है।

**सरकारों का आधुनिक वर्गीकरण**—वर्तमान सरकारों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है, राजतन्त्र या जनतन्त्र। राजतन्त्र के भी दो विभाग होते हैं। जब राजा अपनी प्रजा के अधिकारों और स्वतन्त्रता की रक्षा करते हुये उनका अधिक से अधिक हित करने के उद्देश्य से शासन करता है तो वह लोक-प्रिय राजतन्त्र कहलाता है और जब वह रूसी जार की तरह अपने ही हित में

अपनी ही इच्छानुसार शासन करता है तब वह स्वेच्छाचारी निरंकुश राजतन्त्र कहलाता है ।

प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष जनतन्त्र—प्रजातन्त्र के भी दो भेद किये जा सकते हैं, एक प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र और दूसरा अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र । प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र में सब वयस्क स्त्री पुरुष राज्य के सब कानूनो के बनाने, अफसरो के नियुक्त करने और न्याय करने का सारा काम स्वयं ही सम्मिलित होकर करते हैं । इस प्रकार का प्रत्यक्ष जनतन्त्र स्विट्ज़रलैण्ड के कुछ कैण्टनो में अब भी प्रचलित है। प्राचीन काल में यूनानी नगर राज्यो में ऐसी ही प्रत्यक्ष जनतन्त्र प्रणाली चालू थी । पर यह प्रणाली एक बहुत छोटे राज्य में ही सम्भव हो सकती है, जहा के नागरिक आसानी से एक स्थान पर एकत्रित हो सकें और जहां राजकीय जीवन इतना सरल और सीधा सादा हो कि शासन की समस्याओ पर सर्वसाधारण विचार कर सके और अपने लिये उचित प्रबन्ध कर सके । ऐसी जनतन्त्र प्रणाली के सफल होने के लिये लोगों की आवश्यकतायें बहुत परिमित और पड़ौसी राज्यों से सम्बन्ध बहुत शान्तिपूर्ण होने चाहियें । परन्तु आजकल हम क्या देखते हैं ? आजकल वैज्ञानिक, आविष्कारो ने मनुष्य की आवश्यकताओ में अपूर्व वृद्धि और पेचीदगी उत्पन्न कर दी है । दूसरी ओर आने जाने की सुविधा से दूरी कम हो गई है, और हम आजकल यह देखते हैं कि ससार में राज्यों को बडा बनाने की ओर ही अधिकाधिक प्रवृत्ति होती जा रही है । इन राज्यों में विस्तृत भूमि प्रदेश, असंख्य जनता रहती है और उनके पारस्परिक सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के तथा पेचीदगी से भरे रहते है । ऐसे राज्यो में प्रजातन्त्र का अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि रूप चालू है और वही सम्भव भी है । ऐसे प्रतिनिधि जनतन्त्र में जनता का मत केवल लोकसभाओ के सदस्यो के चुनाव में ही लिया जाता है । ये सदस्य जनता द्वारा चुने जाकर उनके प्रतिनिधि बनकर निश्चित समय तक कार्य में भाग लेते हैं। साधारण जनता दिन प्रति दिन के शासन कार्य से दूर ही रहती है। वह तो केवल प्रतिनिधियो के चुनाव द्वारा ही शासन नीति की रूप रेखा अप्रत्यक्ष रूप से निश्चित कर देती है। प्रतिनिधि जनतन्त्र ने १८वी व १९वी शताब्दी में जन्म लिया और १८४८ ई० के उदार विचारो के प्रसार से यूरोप में बहुत से राज्यों में जनतन्त्रात्मक सरकारें स्थापित हो गईं । औद्योगिक क्रान्ति, विज्ञान की उन्नति तथा ज्ञानप्राधान्यवाद, तथा अत्याचारी शासकों के विरुद्ध विद्रोह, इन सबने ससार में प्रतिनिधि जनतन्त्र के विकास में भारी योग दिया । पर अब यह जन-तन्त्रात्मक प्रणाली इसीलिये सर्वमान्य हो गई है क्योंकि सब बातो के देखते हुये यह सफल सिद्ध हुई है ।

प्रजातन्त्र अब भी सबसे अधिक लोकप्रिय राज्यतन्त्र-प्रणाली है। यद्यपि कुछ लोग इसकी आलोचना करते रहे हैं और उसकी त्रुटि बताने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर फिर भी विचार निर्णायकों के लिये यही सबसे वांछनीय सिद्ध होती है। प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्त विभिन्न राजनैतिक संस्थायें बनाकर कार्यरूप दिये जाते हैं और साधारणतया अब सभ्य राज्य-संगठन की पहिचान इसी बात से की जाने लगी है कि किस हद तक उस संगठन में प्रजातन्त्र के सिद्धान्त घनीभूत हो पाये हैं। जब १९वीं शताब्दी को उदार सिद्धान्त वाली प्रजातन्त्र-प्रणाली का परम्परागत रूप बतलाया होता है तो इंगलैण्ड, फ्रांस, संयुक्तराज्य, अमरीका, स्विट्ज़रलैण्ड, आयरलैण्ड और ब्रिटिश साम्राज्य के स्वायत्त शासन वाले प्रदेशों की ओर इशारा कर दिया जाता है। राजकीय संस्थाओं के विकास में यह प्रणाली अन्तिम सीढ़ी समझी जाती है न कि बीच की सीढ़ी।

**प्रजातन्त्र के सम्बन्ध में कतिपय मत**—प्रजातन्त्रात्मक, राज्यतन्त्र को समझने के हेतु प्रजातन्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों का संक्षिप्त अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा। इन सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त करने में प्रमुख प्रमुख राजनीति-शास्त्रियों व विचारकों के विचारों से बहुत सहायता मिलेगी। अब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र को ऊंचा स्थान दे डाला जब उन्होंने यह कहा कि प्रजातन्त्र प्रजा द्वारा, प्रजा के हेतु प्रजा की सरकार है। इस कथन से संक्षेप में प्रजातन्त्र का पूरा बखान कर दिया गया। औस्कर विल्डे (Oscar Wilde) ने अकारण ही इसको तोड़ मरोड़ कर यह कहा कि प्रजातन्त्र का अर्थ यह है कि जनता स्वयं अपने आपको अपने ही हितसाधन के लिये डण्डे से पीटती है। इस परिभाषा से प्रजातन्त्र का अर्थ ही कुछ का कुछ हो जाता है और प्रजातन्त्र को इस प्रकार कल्पित करना सच्चाई से बहुत दूर है। सच तो यह है कि प्रजातन्त्र में लोगों के अपने जीवन के चरम उद्देश्य की प्राप्ति करने की वह स्वतन्त्रता मिलती है जो इसके लिये आवश्यक है। इस प्रणाली से राज्य में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें मानव निर्मित निर्धनता आदि की अड़चन दूर होकर सबको आत्माभिव्यक्ति करने का समान अवसर मिलता है।

**प्रजातन्त्र के सिद्धान्त**—इस राज्य प्रणाली में शासन शक्ति वैधानिक रूप में किसी विशेष सम्प्रदाय, जाति या दल को न सौंपी जाकर सारी जनता के सुपुर्द की जाती है। साधारणतया किसी भी समाज में निर्धनों की ही अधिकता होती है। यदि प्रजातन्त्र की शक्ति, सम्पत्ति-स्वामित्व या साम्प्रदायिकता पर आधारित न होकर जनता की सम्पूर्ण संख्या को सुपुर्द है तो निर्धन-बहुसंख्यक

वर्ग अनायास अपनी बहुलता के बल से ही शासन शक्ति को हस्तगत करने में समर्थ हो जायगा। समानता और स्वतन्त्रता ही प्रजातन्त्र के मूल सिद्धान्त हैं। इस कथन की सचाई का उदाहरण अमेरिका निवासियो की उस घोषणा के शब्दो में मिलता है जो सन् १७७६ ई० में उन्होने स्वतन्त्रता युद्ध के आरम्भ में की थी —

"हम इन बातो को स्वत सिद्ध सत्य मानते है कि सब मनुष्यो को ईश्वर ने समान बनाया है, यह कि ईश्वर ने उनको कुछ ऐसे स्वत्वो से विभूषित किया है जो दूसरो को हस्तान्तरित नही किय जा सकते, यह कि जीवन, स्वतन्त्रता और सुखोपार्जन ही ये स्वत्व है, यह कि इन स्वत्वो की रक्षा के लिये सरकारे बनाई जाती है जिनके अधिकार शासितो की सम्मति से प्राप्त हुये होते है।"

"अपने स्वत्वो के सम्बन्ध में सब मनुष्य समान उत्पन्न हुये है और वे समान ही बने रहते हैं। राजकीय सगठन का उद्देश्य ही इन नैसर्गिक व अदृष्ट स्वत्वो की रक्षा करना है। स्वतन्त्रता, सम्पत्ति सुरक्षा और अत्याचार का प्रतिरोध, ये ही वे स्वत्व हैं।"

"सब अधिसत्ता की प्रधानता प्रमुखत जनता में ही रहती है। कोई भी सस्था या व्यक्ति किसी अधिकार का उपभोग नही कर सकता जो स्पष्टतया जनता से प्राप्त न हो।"

जनतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति अपने हित का सबसे उत्तम निर्णायक समझा जाता है। प्रजातन्त्र में किसी एक व्यक्ति को असीमित अधिकार नही दिये जाते क्योकि ऐसा करने में निश्चय ही यह भय रहता है कि उन अधिकारो का वह दुरुपयोग करेगा। अत जितने ही अधिक व्यक्ति प्रशासन में सम्मिलित हो उतनी ही इस बात की अधिक सम्भावना रहती है कि बुराइया दूर होगी और भूलें सुधरती रहगी। जनतन्त्र राज सगठन में इस बात की कम सम्भावना रहती है कि, कोई व्यक्ति बिना लोक नियन्त्रण के अपना स्वार्थ-साधन करता चला जाय। दूसरी ओर यहा प्रत्येक व्यक्ति को पर्याप्त अवसर मिलता है कि वह अपने उत्तमस्व की अभिव्यक्ति करे और सार्वजनिक सुखोपवृद्धि में अपना उचित योग दे।

**प्रजातन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थितियां**—कोई भी प्रणाली कितनी ही अच्छी क्या न हो वह तब तक सफल नही हो सकती जब तक वे परिस्थितिया वर्तमान न हो जो उसको सफल-कार्य बनाने के लिये आव-

स्पष्ट है। सब जगह ये परिस्थितियाँ प्राप्त नहीं होतीं। इसीलिये प्रजातन्त्र के असफल होने के उदाहरण जहाँ तहाँ मिलते हैं। प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये सबसे प्रथम आवश्यकता इस बात की है कि लोगों की शिक्षा का स्तर ऊँचा होना चाहिये। केवल साक्षरता ही पर्याप्त नहीं हो सकती। साक्षरता और समझदारी का कोई अनिवार्य मेल नहीं होता। साक्षर व्यक्ति बिल्कुल अज्ञानी भी हो सकता है और ज्ञानी व्यक्ति होने के लिये अक्षर ज्ञान ही आवश्यक नहीं है। निरक्षरता को दूर करने के साथ ही साथ मनुष्यों को ज्ञानवान् भी बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि नागरिकों को अपने स्वत्वों व अधिकारों का समुचित ज्ञान न हो और उनमें सार्वजनिक बुद्धि न हो तो वे जनतन्त्र सरकार का संचालन करने में समर्थ नहीं हो सकते। यह ठीक है कि जनतन्त्र में निर्वाचन में भाग लेने से, व्यवस्थापिका सभाओं और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं में काम करने से ऊँची शिक्षा मिलती है पर फिर भी यह आवश्यक है कि भावी नागरिकों को सार्व-जनिक जीवन के तत्वों का ज्ञान करा देना चाहिये। इस ओर शिक्षण कार्य में वाक् स्वातन्त्र्य और सामुदायिक स्वतन्त्रता बड़ी सहायक होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे समाचार पत्र भी आवश्यक होते हैं जो पूर्णतया स्वतन्त्र हों और जो जिज्ञासु जनता पर अपने निजी मत को न लाद कर उसके सामने निरपेक्ष होकर घट-नाओं का ठीक ठीक चित्रण करें।

यह बात स्वयं सिद्ध है कि यदि मानवहित का पोषण करना है और उनकी रक्षा करनी है तो वर्तमान को अतीत के आधार पर खड़ा करना चाहिये और अनागत की ओर अपनी दृष्टि रखनी चाहिये। प्रजातन्त्र स्थापित करने के लिये केवल यही पर्याप्त नहीं है कि वैधानिक समता और व्यक्ति स्वातन्त्र्य का आयोजन कर दिया जाय। इसके साथ साथ यदि परम्परागत असमानता प्राचीन समय से चली आ रही हो तो जनतन्त्र सफल नहीं होगा। इसको सफल बनाने के लिये सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक तीनों समानताओं की स्थापना करनी होगी। वास्तविक जनतन्त्र की ये तीनों मूल भावनायें हैं। जिस जाति भेद या वर्ग भेद से जनता के कुछ व्यक्ति ही नागरिक अधिकारों का उपभोग कर सकते हों वहाँ ये भेद जनतन्त्र की स्थापना में सबसे बड़ी रुकावट डालते हैं। इनको जितनी जल्दी हो सके हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसी भाँति राज्यपदों पर आसीन होने का सबको समान अधिकार मिलना चाहिये। वे उन सब व्यक्तियों के लिये खुले रहने चाहियें जो शिक्षा से व योग्यता से उन पदों पर कार्य करने के लिये उपयुक्त हों। मताधिकार भी सार्वजनिक होना चाहिये। प्रत्येक वयस्क स्त्री व पुरुष जो राज्य में शान्ति पूर्वक उन्नति करने

के मार्ग में बाधक न हों मत देन का अधिकारी होना चाहिये। मताधिकार केवल उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित न रहना चाहिये जो किसी विशेष जाति या वंश में उत्पन्न हुये हों या सम्पत्ति के स्वामी हों। अन्त में यह भी बतलाना आवश्यक है कि जनतन्त्र राजकीय समाज में आर्थिक संगठन ऐसा होना चाहिये जिससे प्रत्येक व्यक्ति को केवल जीविकोपार्जन का साधन ही न मिले पर उसके साथ साथ यह भी देखभाल रहनी चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति को इतना पारिश्रमिक या वेतन मिलता है कि वह मनुष्य की तरह अपना जीवन विताने में समर्थ हो सके। आजकल बहुत से जनतन्त्रात्मक राज्य ऐसी आर्थिक परिस्थिति उत्पन्न करने में असफल रहे हैं, जिससे बेकारी व भुखमरी दूर हो और रहन सहन सुखी व स्वास्थ्य-वर्द्धक हो। यही कारण है कि प्रजातन्त्र लोगों के हृदयों में अच्छी तरह प्रतिष्ठित नही होने पाया है और इसके लिये श्रद्धा और प्रेम का भावोद्गार नही उठता। कही कहीं तो उससे इतनी निराशा हुई कि लोग घृणा करने लगे और उसी प्रणाली के प्रति विद्रोह खड़ा कर दिया जिसका उद्देश्य ही उनके हितों का साधन करना है।

**निरंकुशता से युद्ध करने से स्वतन्त्रता की प्राप्ति**—जनतन्त्र की विजय बड़े संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुई है। इंगलैण्ड का इतिहास इस बात का सबसे उज्ज्वल दृष्टान्त है कि किस प्रकार प्रजा ने निरकुश शासकों से शक्ति छीनकर अपने आधीन की। वोलटेयर ने अंगरेजों की इस लड़ाई का संक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया है: "इंगलैण्ड में स्वतन्त्रता स्थापित करने का भारी मूल्य देना पड़ा है। निरंकुश शक्ति की मूर्ति को डुवाने के लिये खून के सागर की आवश्यकता पड़ी पर फिर भी अंगरेज यह नही समझते कि उन्होने अपने कानूनों के खरीदने में अधिक मूल्य चुकाया है। दूसरी जातियो ने भी इनसे कम विपत्तियों का सामना नहीं किया और कम खून नही बहाया पर उनके बलिदान का फल केवल यही हुआ कि उनकी दासता की शृंखलायें और मजबूत हो गईं।" स्वतन्त्रता के युद्ध में अधिकारों की एक पद्धति स्वीकार करनी पड़ती है और इसे स्वीकार करने से ही लोग सुखी व सम्पन्न रह सकते हैं। यदि इन अधिकारों को उचित मान न दिया जाय और उनकी रक्षा के लिये लड़ने को सदा तत्पर न रहा जाय तो स्वतन्त्रता चार दिन की चादनी रहती है। इन अधिकारों के लिये युद्ध करके ही सन् १७८३ ई० में अमरीकन लोगों ने स्वतन्त्रता प्राप्त की। आयरलैण्ड के लोगो को सैकड़ो वर्ष तक स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करना पड़ा और तब कही जाकर १६३७ ई० में उनको अपनी सरकार बनाने का अवसर मिला।

**जनतन्त्र और अधिकारों की घोषणा**—आजकल नागरिकों के अधिकारों की शासन संविधान में स्पष्ट घोषणा करने की प्रथा प्रचलित हो गई है। पर संविधान में इनका उल्लेख हो जाना ही कोई बड़ी बात नहीं है और इसी से व्यक्ति को अपने अधिकार प्राप्त नहीं हो जाते। अधिकारों का उपभोग बहुत कुछ परम्परा और अभ्यास पर निर्भर है। यदि लोग इन अधिकारों के प्रति उदासीन हैं तो वैधानिक उल्लेख का व्यवहार में कोई महत्व नहीं रहता। यह उल्लेख तभी काम में आता है जब जनता अपने अधिकारों की रक्षा करने में सतर्क रहे क्योंकि ऐसा होने से जब कभी राज्य व्यक्ति के अधिकारों में हस्तक्षेप करेगा व्यक्ति को उस समय यह सुविधा होगी कि वह राज्य के विरुद्ध न्यायालय में पुकार करे। इस उल्लेख से लोगों के सामने एक आदर्श भी उपस्थित कर दिया जाता है जिसकी प्राप्ति के लिये उन्हें यह याद दिलाता रहता है कि उन्हें लड़ना है। जहां तक इस सिद्धान्त की पवित्रता का सम्बन्ध है वह इस उल्लेख से सुरक्षित रहती है और इसीलिये संविधान एक महत्वपूर्ण वस्तु है। वैयक्तिक अधिकारों के सिद्धान्त के उल्लेख से सरकार की शक्ति व कार्यों की मर्यादा बंध जाती है। इसके कार्यरूप होने से ऐसी स्थिति विद्यमान रहती है जिसमें व्यक्ति अपनी आत्मा की अभिव्यक्ति समुचित रूप से कर सके।

**प्रजातन्त्र और प्रथम् महायुद्ध**—सन् १९१४–१८ के महायुद्ध में मित्र-राष्ट्रों ने यह घोषणा की थी कि वे प्रजातन्त्र की स्थापना के लिये संसार को सुरक्षित बना रहे हैं। इसमें संशय भी नहीं कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से ही प्रजातन्त्र के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हुआ। पहिली जनवरी सन् १९०१ में आस्ट्रेलिया के संघ शासन की स्थापना हुई। १९०९ में दक्षिणी अफ्रीका के जनतन्त्रात्मक स्वशासन की नींव पड़ी। पर सन् १९१४ में जर्मनी ने बेलजियम पर आक्रमण करके उसकी तटस्थता का अतिक्रमण किया और ऐसे महायुद्ध का सूत्रपात हुआ जो चार वर्ष तक चला। पहिले इंगलैण्ड ने युद्ध भूमि में पदार्पण किया उसके तीन वर्ष पश्चात् अमरीका भी युद्ध में सम्मिलित हो गया। युद्ध में सम्मिलित होने के साथ ही अमरीका के राष्ट्रपति विलसन ने संसार के राष्ट्रों को विश्वास दिलाया कि युद्ध के समाप्त होने पर आत्म निर्णय ही उनके राजतन्त्र का आधार होगा। अर्थात् उनकी सरकार वैसी ही होगी जैसा कि वे स्वयं निर्णय करेंगे। युद्ध के पश्चात् इस घोषणा के अनुसार ही यूरोप में कई प्रजातन्त्र राज्यों का जन्म हुआ जिससे वैयक्तिक स्वतन्त्रता और समानता का अधिकाधिक प्रचार हुआ और यह भावना सब जगह मान्य होकर दृढ़ हो गई।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में राष्ट्र सघ ( League of Nations)-के स्थापित होने से एक नये युग का जन्म हुआ जिसमे प्रत्येक राज्य के अधिकारी को समानता और न्याय के आधार पर उचित महत्व दिया जाने लगा। उस समय जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली का ही सब जगह बोलवाला था पर युद्ध के पश्चात् जो सन्धि हुई उसमे राष्ट्रपति विलसन के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को पैरो तले कुचलकर साम्राज्यवाद के नये स्तम्भो की रचना कर दी। पदोक्रान्त जर्मनी ने अपना नया जीवन विमार (Weimar) शासन सविधान के अनुसार आरम्भ किया। यह शासन सविधान जनतन्त्रात्मक व सघात्मक था पर इटली में युद्ध के पश्चात् निराशा की बडी लहर फैली। जिस गुप्त सधि के आधार पर इटली युद्ध में सम्मिलित हुआ और उसमें जो आशायें दिलाई गई थी वे पूर्ण न हो सकी। फलस्वरूप सन् १८४८ के उदार दल के आन्दोलन के अनुयायी ससद् प्रणाली (Parliamentary System) के समर्थको को बडी निराशा हुई। वे वर्साई की सधि होते समय कूटनीति के युद्ध में अपना सिक्का न जमा सके। इस हार से जनता की निगाहो मे वे गिर गये और जनतन्त्र की ओर से जनता उदासीन हो गई। इस उदासीनता की निराशा का मुसोलिनी ने पूरा लाभ उठाया और वह राज्यशक्ति अपने हाथ में कर इटली का अधिनायक बन बैठा। रूस में सन् १९१७ की क्रान्ति से जार की निरकुशता समाप्त हो गई और एक ऐसी शासन प्रणाली की स्थापना हुई जो उन्नीसवी शताब्दी की जनतन्त्र-कल्पना से उतनी ही दूर थी जितनी कि सम्भवत इटली की अधिनायक शासन प्रणाली, हालाकि इसमें सन्देह नही कि इन दोनो के मूलभूत सिद्धान्तो में पर्याप्त अन्तर था। रूस में मार्क्स के दर्शन के आधार पर व्यक्तिवादी ( Individualistic ) सरकार से भिन्न सामूहिक ( Collective ) सरकार की उत्पत्ति हुई।

युद्ध की लूट के फलस्वरूप मध्य यूरोप में नये राज्य बन गये। आस्ट्रिया, हगरी, तुर्की तथा जर्मन साम्राज्य के टुकडे कर दिये गये और या तो वे छोटे २ राज्य बना दिये गये या सयुक्त राष्ट्र की नाममात्र की अध्यक्षता में विजेताओ को सुपुर्द कर दिये गये। इस लूट से अधिकतर इगलैण्ड और फ्रांस ने लाभ उठाया और उनके उपनिवेशो की सख्या और बढ गई। युद्ध के पश्चात् जिस आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर प्रजातन्त्र की स्थापना की जाने वाली थी और जिसके लिये ही युद्ध लडने का बहाना किया गया था, वह उठाकर ताक पर रख दिया गया और साम्राज्यवाद का ज्यो का त्यो बोलबाला रहा।

पहले महायुद्ध के पश्चात् संसार जनतन्त्र की स्थापना के लिये उतना ही असुरक्षित बना रहा जितना युद्ध से पूर्व था। निःशस्त्रीकरण का स्वप्न सच्चा न हो सका और यूरोप के राष्ट्र परस्पर स्पर्धा के कारण अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाते रहे। युद्ध के फलस्वरूप आर्थिक कठिनाइयाँ बराबर चल रही थीं और सारा संसार उनसे ग्रस्त था। इस आर्थिक विपत्ति ने जर्मनी, आस्ट्रिया, पोलैण्ड और दूसरे यूरोप के छोटे राज्यों की नवजात जनतन्त्रात्मक सरकारों को उत्साहहीन कर दिया। जर्मनी में जनतन्त्रात्मक-राज्य अधिक दिन तक अपने आपको न संभाल सका और कुछ दिन लड़खड़ाकर अन्त में अपनी निर्बल नींव के कारण ढह कर गिर पड़ा। उसके खंडहर पर हिटलर के जर्मनी का जन्म हुआ। यही क्रम आस्ट्रिया में भी हुआ और वहां भी अधिनायकतन्त्र की स्थापना हुई। कुछ कुछ पोलैण्ड में भी यही हाल हुआ। इसके फलस्वरूप यूरोप में एक नया भय उत्पन्न हो गया क्योंकि अधिनायक सत्तायें पड़ोसी राष्ट्रों के प्रति अविश्वास घृणा, वैरभाव और युद्धभय के सहारे ही अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने का प्रयत्न करती हैं। इस वैरभाव की अग्नि में विभिन्न राजनैतिक भावनाओं के, विशेषकर समाजवाद और उसके विरोधी अधिनायकवाद के संघर्ष ने घी का काम किया। प्रत्येक राष्ट्र में फैसिस्ट सिद्धान्तों का प्रभाव पड़ने लगा जिससे जनतन्त्र प्रणाली अवाञ्छनीय समझी जाने लगी।

प्रथम महायुद्ध के अग्निकाण्ड की राख के ढेर से दो प्रकार की सरकारों के अंकुर निकले, एक तो समाजवादी सरकार के, जैसी रूस में स्थापित हुई और दूसरी अधिनायक सत्ता के, जैसी जर्मनी और इटली में उत्पन्न हुई। आधुनिक सरकारों के अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों के लिये इन दोनों राज्यतन्त्र प्रणालियों में इनके आधारभूत सिद्धान्तों व इनकी संस्थाओं की बनावट की दृष्टि से पर्याप्त सामग्री मिल सकती है। इसका विवेचन हम इस पुस्तक में आगे चल कर करेंगे।

स्वतन्त्र तथा परतन्त्र सरकारें—आधुनिक राज्यों में कुछ की सरकारें स्वतन्त्र हैं और कुछ की परतन्त्र। इंगलैण्ड, फ्रांस संयुक्त राज्य अमरीका, भारतवर्ष आदि ऐसे देश हैं जहां राज्य प्रणाली जनता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकृत हैं। इन सब राज्यों में सरकार का संचालन एक दल के द्वारा होता है या ऐसे विधान के अनुसार होता है जो प्रजा को मान्य है, चाहे वह संविधान जनतन्त्रात्मक हो या अधिनायकतन्त्रात्मक (dictatorial)। दूसरी

और वे राज्य हैं जिनको आत्मनिर्णय का अधिकार नही दिया गया है। या तो इसलिये कि वे अपना शासन अपने आप करने के योग्य नही है या उनके सम्बन्ध में विदेशी शासकों के विशेष उत्तरदायित्व है। सन् १९४७ से पहिले भारतवर्ष ऐसे ही राज्यो की गिनती में था, अब भी अफ्रीका के कुछ राज्य जो इटली के साम्राज्य के अंग थे या जो फ्रांस, जर्मनी व बेलजियम आदि के आधिपत्य में थे, और इनके अतिरिक्त भी छोटे छोटे उपनिवेश ऐसे ही राज्यो की श्रेणी में आते हैं। ये सभ्य ससार के धवल मुख पृष्ठ पर कालिमा के सादृश्य हैं। प्रजातन्त्र प्रेमियो के लिये यह एक समस्या है कि इनको किस प्रकार स्वतन्त्र किया जाय क्योंकि शासक-राज्यो की सद्भावनापूर्ण घोषणाओं पर विश्वास नही किया जाता। स्वयं इगलैण्ड ही जिसको जनतन्त्रात्मक और ससदात्मक प्रणाली का जन्मदाता कहा जाता है, बहुत से देशो पर आधिपत्य किये हुये था और यही आडम्बरपूर्ण दावा करता था कि वह सद्भावना से प्रेरित होकर ही शासित प्रदेश के हित में ही उस पर राज्य कर रहा है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भारतवर्ष, ब्रह्मा, मिश्र को स्वतन्त्रता मिल गई पर अब भी इगलैण्ड के आधिपत्य में कई छोटे छोटे राज्य है। प्रजातन्त्र के युग मे यद्यपि विदेशी सत्ता का शासन नैतिक दृष्टि से किसी प्रकार भी न्यायपूर्ण नही कहा जा सकता पर फिर भी साम्राज्यवादी शक्तियां स्वार्थ के वश बहुत से राज्यो को अपने आधीन रखे हुये हैं और अपने स्वार्थ को ऊचे ऊचे सिद्धान्तो व आडम्बरपूर्ण शब्दो से ढकने का प्रयत्न करती हैं। ब्रिटेन के साम्राज्य के सम्बन्ध में बर्नार्ड शा (Bernard Shaw) ने अपने सहज ढग से अगरेजो के बारे में कहा था "कोई भी अच्छी या बुरी बात ऐसी नही जिसे अगरेज न करता हो पर आप उसको गलती करते हुये कभी नही पकड सकते। वह (अगरेज) हर एक बात को किसी न किसी सिद्धान्त की आड में करता है, वह सिद्धान्त पर लडता है, व्यापार सिद्धान्त के द्वारा तुम पर शासन करता है और साम्राज्य सिद्धान्त के द्वारा तुम्हे परतन्त्र बनाता है।" परतन्त्र प्रदेश की राज्यतन्त्र प्रणाली का रूप विदेशी सत्ता द्वारा निर्धारित होता है और यह प्रणाली किसी न किसी सिद्धान्त से उपयुक्त भी ठहराई जाती है। इन विभिन्न प्रदेशों की शासन प्रणालियां भी वहां की सरकार के उद्देश्य और उनके सचालन के ढग की दृष्टि से निराली है और अध्ययन करने योग्य हैं।

**आधीन प्रदेशों के रखने का अभिप्राय**--विदेशी सत्ता अपने आधीन राज्यो के ऊपर इसलिये शासन नही करती कि उसके द्वारा आधीन देश का हित हो, पर वह अपने ही स्वार्थ साधन के लिये उन पर अपना अधिकार

जमाये रहती हैं। विदेशी सत्ता को जो कतिपय बड़े बड़े लाभ होते हैं वे ये हैं — (१) शान्ति के समय में कर, और युद्ध के समय में धन और आदमी मिलते हैं, (२) कच्चा माल कारखानों के लिये, और कारखानों के बने माल की खपत के लिये बाजार मिल जाता है; (३) समुद्री और हवाई अड्डे मिलते हैं जहां से विदेशी सत्ता की जल सेना और वायु सेना विदेशी सत्ता के जलमार्गों और वायु-मार्गों व साम्राज्य की रक्षा करती है; (४) इन आधीन राज्यों में शासक राज्य की बढ़ती हुई जनसंख्या के बसाने का क्षेत्र खुला रहता है और कभी कभी शासक-प्रदेश के अपराधियों को भी आधीन देश में रहने के लिये स्थान दिया जाता है जैसे पहले अमरीका में स्थित ब्रिटिश उपनिवेशों में, आस्ट्रेलिया में और कुछ दिन तक अण्डमान टापू में किया जाता था, (५) शासक प्रदेश का यश भी इन आधीन राज्यों से बढ़ता है जिसका उदाहरण अंगरेजों को अपने साम्राज्य पर अभिमान प्रदर्शन में मिलता है, यह बड़े अभिमान से कहा जाता था कि ब्रिटिश साम्राज्य इतना विस्तृत है कि उसमें सूर्य कभी छिपता नहीं। अपने अन्यायपूर्ण स्वामित्व को आकर्षक आवरण पहनाने के लिये ही ये शासक-प्रदेश यह कहा करते हैं कि वे आधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा को स्वायत्त शासन की शिक्षा देने और स्वतन्त्र होने के योग्य बनाने के लिये ही उन पर राज्य करते हैं। सर जार्ज कार्नवाल लेविस ने भारतवर्ष का उदाहरण देकर यह बताने का जो प्रयत्न किया कि आधीन प्रदेश को क्या क्या हानि उठानी पड़ती है वह इस कथन से स्पष्ट हो जायगा —

"यद्यपि ब्रिटिश इण्डिया ने अंगरेज पदाधिकारियों की चतुरता और ईमानदारी से बहुत लाभ उठाया हो तब भी केवल अंगरेजों को ही सबसे ऊंचे पदों पर नियुक्त करने से, उनके ऊंचे वेतन और राज्य की आय कम होने के कारण, एक ही ऐसे अंगरेज व्यक्ति के सिर पर इतने कामों का बोझ लाद दिया गया है कि बहुत से हिस्सों में अन्याय का बोलबाला है और वहां कोई सरकारी लाभदायक काम नहीं होता। यदि जनता के स्थायी व महत्वपूर्ण हितों की रक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता तो अंगरेज अफसरों का वह अभिमानपूर्ण व्यवहार जिससे प्राय भारतीय जनता के हृदयों पर चोट पहुंचाई जाती थी अधिक महत्व रखता। परन्तु खेद *का विषय यह है कि देश के अधिक भाग में* जान और माल मुश्किल से उनसे अधिक सुरक्षित कहे जा सकते हैं जैसे वे देशी सरकारों के समय में थे और लोगों को ब्रिटिश शासन से जो मुख्य लाभ हुआ है वह यही है कि बाहरी आक्रमणों से उनका बचाव हो गया है।" ❀

---

❀ एन ऐस ऑन दी गवर्नमेण्ट ऑफ डिपेन्डेन्सीज, पृष्ठ २६२।

ऐसे ही जोरदार शब्दो में सर जार्ज ने यह विश्वास करने से अस्वीकार किया कि कोई भी शासक प्रदेश कभी भी ऐसा कर सके कि आधीन देश की प्रजा को स्वायत्त शासन की धीरे धीरे शिक्षा देकर उनको पूर्ण स्वतन्त्र बना दे। वे कहते हैं कि "यदि कोई शासक-प्रदेश किसी आधीन देश को प्रतिनिधि संस्थायें तो बनाने देता है और यह कहता है कि वह उसे स्वायत्त-शासन करने देगा तो वास्तव में उसके साथ स्वतन्त्र देश जैसा व्यवहार नही करता, ऐसी दशा में उसका व्यवहार अपने अधीन देश को ऐसी राजकीय संस्थायें देकर जिनका बाहरी रूप तो हो पर वास्तविकता कुछ न हो, केवल चिढाने का काम करता है। आधीन देश के साथ यह प्रवन्चनामात्र है कि उसे लोक सस्था प्रणाली का नाम-रूप तो दे दिया जाय पर वास्तव में एक स्वतन्त्र देश जैसा उनको कार्यरूप न करने दिया जाय। न ऐसी रियायते आधीन देश को कोई लाभ पहुंचाती हैं वल्कि इसके विपरीत वे राजनीतिक फूट के बीज बो देती हैं और कदाचित् विद्रोह और युद्ध के भी, जो ऐसी रियायते न देने से न होता।"[1]

इसीलिये स्वामी दयानन्द ने, जो भारतवर्ष के बहुत बडे सामाजिक व धार्मिक सुधारको और राजनीतिज्ञो में गिने जाते हैं, यह कहा था कि स्वराज्य सबसे उत्तम है। विदेशी सत्ता चाहे कितनी भी पक्षपात व धार्मिक द्वेष से रहित और आधीन देशवासियो के प्रति माता पिता के समान दयापूर्ण न्यायपूर्ण और व दानशील क्यो न हो, उनको पूर्णरूप से सुखी नही बना सकती। यह कथन वैसा ही है जैसे यह कि अच्छी सरकार स्वराज्य का स्थान नही ले सकती।

**उत्तरदायी व अनुत्तरदायी सरकारें**—सरकारो का, चाहे वे स्वतन्त्र राज्यो की हो या परतन्त्र राज्यो की, एक दूसरी दृष्टि से भी वर्गीकरण किया जाता है। वह यह है कि कोई सरकार अपनी प्रजा की उत्तरदायी है या नही। जब किसी सरकार का शासन प्रबन्ध जनता या उसके प्रतिनिधियो की इच्छानुसार संचालित होता है तो हम कहते हैं कि सरकार उत्तरदायी है। ऐसी सरकार म कार्यपालिका इस प्रकार से प्रशासन करती है कि जनता या उसके प्रतिनिधि उससे प्रसन्न रहें। जहा प्रत्यक्ष जनतन्त्र आज भी प्रचलित है जैसे स्विट्ज़रलैण्ड के केण्टनो में, वहा कार्यपालिका जनता को प्रसन्न रखने का सतत प्रयत्न करती है और जहा प्रतिनिधिक प्रजातन्त्र प्रणाली से प्रशासन होता है वहा प्रतिनिधियो की प्रसन्नता पर दृष्टि रख कर कार्यपालिका अपना कार्य करती है। जहा जनता की इच्छा या अनिच्छा की परवाह न कर कार्यपालिका उन पर स्वेच्छा से शासन

१. पूर्व स्रोत, पृ० २६३।

करती है उसको अनुत्तरदायी सरकार कहते हैं।

**सरकार एक पेचीदा संगठन है**—आधुनिक राज्यों में जीवन इतना जटिल हो गया है और उसकी रूप रेखा निश्चित करने वाले कारणों में ऐसी अनेकता है कि आधुनिक शासन संगठन को पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में शासन कार्य करना पड़ता है। इस शासन कार्य के अन्तर्गत कानूनों का बनाना, उनका पालन करवाना और न पालन करने वालों को दण्ड देने की व्यवस्था करना, यह सब आते हैं। राजनीतिज्ञ शासन करने की कई पद्धतियां बताई हैं जिनसे प्रजा को अधिक से अधिक स्वतन्त्र और सुखी बनाया जा सके और साथ ही शासन-प्रबन्ध के गुणों में कमी न हो और न शासन परिवर्तन का डर रहे। अरस्तू ने सरकार के तीन अंग वाला सिद्धान्त अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "दी पोलिटिक्स" में प्रतिपादित किया था। उसने इन तीनों अंगों के अलग अलग नाम दिये हैं, पहला मनन करने वाला, दूसरा राज्यपदों से सम्बन्ध रखने वाला और तीसरा न्याय करने वाला।

**सरकार के तीन अंग**—अरस्तू के पश्चात् कई राजनीति-विचारकों ने इस तीन अंग वाले सिद्धान्त की विवेचना की। अब यह सिद्धान्त इतना सर्वमान्य हो गया है कि प्रत्येक आधुनिक राज्य में इन्हीं तीनों अंगों के सामूहिक प्रयत्न से शासन कार्य सम्पादित होता है। इन तीनों अंगों को, विधिनिर्बन्धकारी (Legislative) कार्यकारी (Executive) और न्यायकारी (Judicial) कहा जाता है।

**मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) और अधिकार विभाग का सिद्धान्त**—यद्यपि अब सभी प्रगतिशील राज्यों ने राज्यसत्ता व अधिकारों को तीन विभागों, निर्बन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी में बांटने की पद्धति को मान लिया है और उसको व्यावहारिक रूप भी दे दिया है पर पहले पहल इस विभाजन के मूल—स्थित सिद्धान्त का प्रतिपादन प्रसिद्ध राजशास्त्री मौन्टेस्क्यू (Montesquieu) ने अपनी 'दी स्प्रिट आफ लाज' नामक पुस्तक में किया था। उदार दल के राजनीतिज्ञों ने इस सिद्धान्त का लोकसत्ता की रक्षा करने वाला गढ़ कहकर स्वागत किया।

मौन्टेस्क्यू लिखते हैं "जब निर्बन्धकारी और कार्यकारी सत्ता एक ही व्यक्ति या व्यक्ति समूह के सुपुर्द कर दी जाती है तो कोई भी नागरिक स्वतन्त्र नहीं रह सकता क्योंकि उसे यह भय बना रहेगा कि वह राजा या परिषद् उत्पीड़क कानून बनावेगा और उनको निर्दयतापूर्वक प्रयोग करेगा। उस दशा में भी

स्वतन्त्रता न रहेगी जब तक कि न्यायकारी सत्ता (Judiciary) निर्बन्धकारी (Legislative) और कार्यकारी (Executive) सत्ता से पृथक् न कर दी जाय। जहाँ उसका निर्बन्धकारी सत्ता से मेल कर दिया जाता है वहा स्वेच्छाचारी शासन से प्रजा की स्वतन्त्रता और जीवन की रक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि न्यायाधीश ही व्यवस्थापक बन जायगा। जहा इस न्यायकारी सत्ता का मेल कार्यकारी सत्ता से कर दिया जायगा वहा न्यायाधीशो द्वारा अत्याचार व हिंसा की सम्भावना सदा बनी रहेगी।। यदि एक ही व्यक्ति या सस्था, चाहे वह विशिष्ट व्यक्तियो की हो या साधारण लोगो की, कानून बनाने, उन कानूनो को कार्य रूप देने और अपराधियो को दण्ड देने के तीनो अधिकारो का उपभोग करेगी तो हर वस्तु समाप्त हो जायगी।"

**विधान मंडल**—राज्य में विधान मण्डल कानूनो के बनाने और उनका सशोधन करने का कार्य करता है। अनियन्त्रित राजसत्ता (Monarchy) में राजा की आज्ञा ही राज्य का कानून समझा जाता है पर किसी भी लोकसत्तात्मक प्रजातन्त्र में शासन कार्य नही चल सकता यदि वहा ऐसा विधान मण्डल स्थापित न किया जाये जिसका एकमात्र कर्तव्य यह हो कि वह सारे राज्य या उसके किसी भाग के निवासियो को सुखी बनाने वाले क्षेम कारक विषयो का मनन करे और उसके अनुकूल विधियों की रचना करे। छोटे राज्या में सारी प्रजा इस काम को कर सकती है। यूनानी नगर राज्यो में व अब भी स्विट्जरलैण्ड के कुछ छोटे कैण्टनो (प्रान्तो) में प्रजा के सब व्यक्ति सम्मिलित होकर कानूनो की व्यवस्था करते है। पर अब प्रा। राज्यो का ऐसा छोटा रूप नही होता और प्रजा की सख्या करोडो और अरबो में होती है। इसलिये ऐसे राज्यो में यह सम्भव नही हो सकता कि सारी प्रजा एक चित्त होकर कानूनो की व्यवस्था करें। उनमें तो यही सम्भव है कि प्रजा द्वारा चुने हुये कुछ प्रतिनिधि ही विधान मण्डल बनाकर राज्य के लिये कानून बनावें। कुछ समय के पश्चात् यह प्रतिनिधि मण्डल इतना अनुभवी हो जाता है कि कानून-निर्माण कला में यह विशेषता की पदवी प्राप्त कर लेता है। यह प्रतिनिधि प्रणाली सबसे प्रथम् इगलैण्ड में आरम्भ हुई और उसके पश्चात् लगभग सभ्य राज्यो ने इसे अपना लिया है।

**विधान मण्डल के भिन्न भिन्न रूप—द्विगृही व एक गृही (Bicameral or Unicameral)**—प्राचीन काल में धर्म, नैतिक नियम और राजाज्ञा में तीन कानून के उद्गम थे। रीति-रिवाज को भी बडा महत्व दिया जाता था। पर आधुनिक राज्यो में विचार विमर्श के पश्चात् वैज्ञानिक रीति

से ही कानूनों की व्यवस्था की जाती है, यद्यपि इस कार्य में रीति-रिवाजों, न्याय-तन्त्रों और न्यायालयों के निर्णयों का भी प्रभाव पड़ता रहता है। इसलिये प्रत्येक राज्य में विधान मण्डल की बनावट और उसके कर्तव्यों व अधिकारों का बड़ा महत्व समझा जाता है। इगलैण्ड के इतिहास के अध्ययन करने से यह मालूम हो जायगा कि अकस्मात् ही पार्लियामेण्ट के दो भाग हो गये थे, एक हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords), और दूसरा हाउस आफ कामन्स (House of Commons), *ऐसा विभाजन किसी वैज्ञानिक दृष्टि या विशेष उद्देश्य* से प्रेरित न हुआ था। पर दूसरे राज्यों ने जब इगलैण्ड की पार्लियामेण्ट-प्रणाली का अनुकरण किया तो उन्होंने भी द्विगृही व्यवस्थापक मण्डल की पद्धति को अपनाया और दो गृहों की स्थापना की। कुछ राज्य अब भी एक ही गृह (House) से काम चलाते हैं। अत विधान मण्डल दो प्रकार का होता है एक द्विगृही जिसमें दो सभायें कानून बनाने के कार्य में भाग लेती हैं, और एकगृही जिसमें एक ही सभा कानून बनाती है।

**द्विगृही पद्धति के गुण**—राजशास्त्रियों में बहुत से इस मत के समर्थक हैं कि द्विगृही पद्धति एकगृही पद्धति से अधिक लाभदायक है। दो गृहों के होने पर एक गृह में जब कोई विधेयक (Bill) पास हो जाता है तो वह दूसरे गृह में विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है और वहा एक बार पुन उसकी आलोचनात्मक परीक्षा हो जाती है जिससे उसके बचे हुये दोष भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार दूसरा गृह *बिल को दोहरा कर संशोधन करने का महत्वपूर्ण कार्य* करता है। दूसरे आधुनिक राज्य में शासन का कार्य इतना अधिक हो गया है कि एक ही गृह के लिये यह कठिन हो गया है कि वह प्रत्येक योजना पर सूक्ष्म निरीक्षण कर सके। यदि दूसरे गृह में भी कुछ विधेयक प्रारम्भ कर दिये जायें तो दोनों गृहों में साथ साथ बहुतसा विधान-कार्य सम्पादित किया जा सकता है। इस प्रकार दो गृहों के होने से काम की मात्रा बढ़ जाती है। यह ठीक है कि प्रत्येक विधेयक एक धारा सभा में स्वीकृति के लिये भेजना पड़ता है और उससे काम में कमी होने की सम्भावना नहीं पर बहुत से विधेयक आरम्भ में ही रद्द हो जाते हैं और दूसरे *गृहों में जाने की आवश्यकता ही नहीं रहती।* अत दो गृहों के होने से यह आसानी रहती है कि जिस गृह में कम काम हो वहा ऐसे बिल प्रारम्भ हों जिनके सम्बन्ध में निश्चित रूप से पहले यह नहीं कहा जा सकता है कि वे वाछनीय हैं या नहीं। वहा यदि अनावश्यक सिद्ध हो गये तो उन्हे आगे बढ़ने और दूसरे गृहों के समय नष्ट करने का अवसर ही नहीं मिलता। ऐसी बचत तब न हो सकती थी जब एक ही विधान मण्डल को सब काम करना पड़ता। तीसरी बात यह है

कि जहा दो गृहो का विधान-मण्डल होता है वहा उनमे से एक साधारण लोक सभा होती है जिसे प्रथम सदन (Lower House) कहते है। इसमें प्रजा से प्रत्यक्ष निर्वाचित कम आयु वाले प्रतिनिधि बैठते है। उनमें दलबन्दी का पुट प्रचुर माना में रहना है। प्राय ऐसा होता है कि किसी विषय में वादविवाद इतना बढ जाता है कि उनमें आपस में अनावश्यक गर्मागर्मी हो जाती है और उस समय वे प्रस्तुत विषय के गुण दोषो पर विवेकशील होकर ठण्डे दिमाग से मनन नही कर पाते। फलत कभी कभी इस तनातनी से लोकहित के विरुद्ध भी निर्णय हो जाते है। ऐसी अवस्था मे दूसरा सदन (Lower House) जिसमें अनुभवी स्थिर बुद्धि वाले व्यक्ति होते है जो सहज ही भावावेश में नही आ जाते व जल्दी ही लोभवश होकर अनौचित्य की ओर नही झुकते, वह शान्तिपूर्वक सूक्ष्म विचार के द्वारा प्रथम सदन के निर्णयो के गुण दोषो पर पुन विचार करते है। दूसरे शब्दो में, दूसरा सदन प्रथम सदन को जल्दी में, बिना ठीक ठीक विचारे हुये, बनाये हुये विधेयको पर रोक लगाने का काम करती है। चौथी बात यह है कि प्रथम सदन प्रादेशिक आधार पर साधारण जनता का प्रतिनिधित्व करती है। उसमें उन हितो व वर्गो के प्रतिनिधि नही होते जो राज्य में स्थिरता लाते है, जैसे अल्प जन सख्यक धन सम्पत्ति के स्वामी, जमीदार, उद्योगपति आदि जिनका हित इसमें है कि राज्य में सुरक्षा व शान्ति रहे। इस दोष को दूसरे सदन की स्थापना करके दूर किया जा सकता है जिसमें ऐसे लोगो के प्रतिनिधि रह जिनकी प्रधानता सख्या-बाहुल्य पर निर्भर न हो वरन् जो या तो अपने अनुभव, वैयक्तिक योग्यता व सदाचरण के कारण राज्य के योगक्षेम में सहायक और शुभचिन्तक है या जिनका हित राज्यके हित से सम्बद्ध हुआ है। यह कहने की आवश्यकता नही कि इनके प्रतिनिधियो का निर्वाचन या नियुक्ति प्रथम सदन के सदस्यो के निर्वाचन से भिन्न रीति पर होनी चाहिये। इस ढग से राज्य के विधान मण्डल में सब वर्गों व सब हितो का उचित प्रतिनिधित्व होना सम्भव हो जाता है। पाचवी बात यह है कि दूसरे सदन में सदस्यो की सख्या कम होने से व उनमें प्रथम सदन सदस्यो की अपेक्षा योग्य व्यक्ति के रहने से वहा कानून बनाने में अधिक समय तक सूक्ष्म मनन हो सकता है। प्रथम सदन में वाक्पटुता दिखाने में ही बहुतसा समय निकल जाता है। दूसरे सदन में ज्ञानवान् व परिपक्व बुद्धि वाले व्यक्तियो के रहने से विधि निर्माण कार्य मे दक्षता और दूरदर्शिता का पुट रहता है।

**द्विगृही पद्धति के दोष**—द्विगृही पद्धति के समर्थको के विरुद्ध व लोग है जो यह कहते है कि दूसरे सदन (Upper House) जिस उद्देश्य से

बनाए गये थे उसे पूरा करने में असमर्थ रहे हैं। उनका यह भी कहना है कि प्रजा-तन्त्र राज्य में यदि दूसरे सदन के सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा होता है और यदि उसके वही अधिकार हों जो प्रथम सदन (Lower House) के हैं तो दूसरे सदन से केवल प्रथम सदन का द्विगुणीकरण हो जाता है। इससे विधान सगठन केवल अधिक खर्चीला और अनावश्यक पेचीदा बन जाता है। दूसरे यदि फ्रांस और इंगलैण्ड की तरह दूसरे सदन के अधिकार प्रथम सदन से कम हों तो उसका होना न होना कोई महत्व नहीं रखता। तीसरे, यदि दूसरा सदन अधिक अनुदार हो और उसके सदस्यों का निर्वाचन प्रथम सदन के सदस्यों की अपेक्षा अधिक सकुचित क्षेत्र से हुआ हो, तो वह गाड़ी के पांचवें पहिये के समान शासन की प्रगति में रोक लगाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकता। इससे वह प्रजातन्त्र का विरोधी ही सिद्ध होगा। चौथी बात यह है कि यदि कनाडा की तरह दूसरे सदन के सदस्यों का नामनिर्देशन किया जाये तो उससे नामनिर्देशन करने वाले अधिकारी (Authority) को ही विधायिनी-शक्ति (Legislative power) सुपुर्द हो जाती है। यदि इंगलैण्ड की तरह इस सभा की सदस्यता पैतृक अधिकार पर निर्भर हो और उसकी स्थिति परम्परागत हो गई हो तो यह मान लिया जाता है कि विधायिनी बुद्धि माता पिता से प्राप्त होती है या सन्तान को दी जा सकती है, जो सत्य प्रतीत नहीं होता। यदि इस सभा में व्यवसायों व विहित वर्गों के प्रतिनिधि रखे जायें तो यह निश्चय करना असम्भव हो जाता है कि उन सब व्यवसायों और वर्गों में प्रत्येक को कितना प्रतिनिधित्व दिया जाय। यह भी कहा जाता है कि दूसरे सदन को न रख कर दूसरी युक्तियों से वही काम निकाला जा सकता है जो यह सभा करती है। उदाहरणार्थ एक गृह स्थापित करने के साथ साथ कमेटी पद्धति अपनाई जाय। प्रत्येक शासन विभाग के लिये एक स्थायी कमेटी बना दी जाय जो विधेयकों पर पहले विचार करे और फिर उन्हे धारासभा में अन्तिम स्वीकृति के लिये भेजे, या किसी भी विधेयक के पास होने से पूर्व उस पर जनता की राय ली जाय अथवा विशेषज्ञों का परामर्श प्राप्त किया जाय कि क्या वास्तव में अमुक विधेयक वाञ्छनीय और पर्याप्त है या नहीं। ऐसा करने से विधेयकों के पास होने में आवश्यक देरी और छिद्रान्वेषण की वही सुविधा हो जायगी जिसके कारण ही दूसरे सदन का अस्तित्व आवश्यक समझा जाता है।

**संघ शासन और दूसरा सदन**—द्विगृही पद्धति के समर्थकों का कहना है कि संघ-शासन में दूसरा सदन का होना नितान्त आवश्यक है। उसके द्वारा उपराज्यों की समता अक्षुण्ण रखी जा सकती है क्योंकि उसमें छोटे बड़े

सब उपराज्यों को समान प्रतिनिधित्व दिया जाता है। सघ-शासन में यह सभा उपराज्यों के विशेष अधिकारों की रक्षक समझी जाती है। यदि वह उपराज्यों की परिषद् न हो तो बड़े उपराज्य प्रथम सदन में अपने प्रतिनिधियों की सख्या बाहुल्य के बल पर छोटे राज्यों से बाजी मार ले जाया करेंगे क्योंकि प्रथम सदन मे जन सख्या के अनुपात से ही उपराज्यों को प्रतिनिधित्व मिलता है। ऐसा होने से सघ-शासन में उपराज्यों की समानता का जो महत्वपूर्ण सिद्धान्त है वह समाप्त हो जायगा। इस सम्बन्ध में यह निस्सन्देह ठीक है कि सब सघ-शासनों में सघ शासन स्थापित होते समय इस बात पर जोर दिया गया कि दूसरा सदन बनना चाहिये जिसमें सब सघीभूत इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व मिल जाय। यही नहीं बल्कि इन इकाइयों ने सघ मे सम्मिलित होने के लिये यह शर्त लगा दी कि ऐसी परिषद् बनना चाहिये। पर सघ शासन विधान मडलों के व्यावहारिक रूप को देखकर हम कह सकते हैं कि जिस भय के कारण दूसरे सदनों का बनना आवश्यक समझा गया वह निर्मूल था। जैसी आशा की जाती थी वैसे ये दूसरे सदन उपयोगी सिद्ध नहीं हुये।

**दोनों गृहों की रचना और उनके अधिकार**—आधुनिक राज्यों में यह एक बड़ी भारी समस्या है कि विधान मण्डल के दोनों गृहों की रचना किस प्रकार की जाय और उनमें किसको अधिक व किसको कम अधिकार दिये जायें। साधारणत जो स्थिति पाई जाती है वह यह है कि दूसरे सदन प्राय प्रथम सदन से अल्पसख्यक होते हैं। केवल ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस ही उस नियम में एक अपवाद है। इनके अधिकार या तो प्रथम सदन से कम होते हैं या बराबर। पर अमरीका में दूसरा सदन जिसे सीनेट (Senate) कहते हैं प्रतिनिधि-सभा (House of Representatives) से अधिक शक्तिशाली है और वह ससार के अन्य दूसरे सदनों में सब से अधिक अधिकारों का उपभोग करती है। ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस के अधिकार सब से कम हैं। दूसरे सदन की अवधि प्रथम सदन से लम्बी होती है, ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस तो कभी समाप्त होना ही नहीं। कनाडा में सदस्य आजीवन दूसरे सदनों में बैठ सकते हैं। आय-व्यय सम्बन्धी विषयों में प्रथम सदन को अन्तिम अधिकार होता है यद्यपि अमरीका में दोनों सदनों को समान अधिकार है केवल यही प्रतिबन्ध है कि धन विधेयक (Money bills) प्रथम सदन में प्रारम्भ होने हैं। बहुत से देशों में दूसरे सदन को उच्च

राजकर्मचारियों और राज्याधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को सुनने और निर्णय करने का भी अधिकार प्राप्त है। जहां उपरली सभाएँ निर्वाचित होती हैं वहां प्राय. इनके निर्वाचन के लिये मताधिकार संकुचित होता है अर्थात् कुछ थोड़े से व्यक्ति इनके सदस्यों का निर्वाचन करते हैं। कहीं कहीं अप्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली से सदस्यों का चुनाव किया जाता है। पर अमरीका में सन् १९१३ के पश्चात् सीनेट के सदस्यों को प्रत्येक उपराज्य की मतधारक जनता ही चुनने लगी है। ऐसी ही प्रथा आस्ट्रेलिया में भी प्रचलित है। पास में जुड़ी हुई सारिणी (Table) में द्विगृही विधानों वाले राज्यों के विधान मन्डलों के दोनों की तुलनात्मक रचना और अधिकार दिये हुये हैं।

*विधान मण्डलों की विभिन्न निर्वाचन प्रणालियां*—प्रत्येक राज्य में विभिन्न निर्वाचन प्रणालियों के द्वारा विधान मण्डलों में प्रतिनिधि चुन कर भेजे जाते हैं। इंगलैण्ड में एक-प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्रों (Single member constituencies) से पार्लियामेण्ट के सदस्य चुने जाते हैं। केवल विश्व-विद्यालय वाले क्षेत्र से एक से अधिक सदस्य चुने जा सकते हैं। जो उम्मीदवार अपेक्षाकृत सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वही निर्वाचित समझा जाता है। चाहे इन मतों की संख्या उस निर्वाचन-क्षेत्र के मतधारकों की संख्या या मतदाताओं की संख्या के आधे से अधिक हो अथवा न हो। इस पद्धति को निर्वाचन की अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धति (Relative majority system of election) कह कर पुकारते हैं। यह पद्धति तब तक बड़ी सफल सिद्ध हुई जब तक इंगलैण्ड में उदार (Liberal) और अनुदार (Conservative) दो दल थे और केवल दो दलों के उम्मीदवारों में ही प्रतिद्वन्द्विता चलती थी और दोनों में से मतधारक एक को चुनते थे जिससे बहुमत की ही जीत होती थी। लेबर पार्टी के आने के बाद यह पार्टी बहुमत का प्रतिनिधित्व कराने में स्पष्टतया सफल न हो सकी। ऐसा क्यों होता है, यह हम आगे बतायेंगे। जहां अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली प्रचलित है वहां प्रत्येक दल को अपनी संख्यानुसार प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं मिल पाता चाहे वहां निर्वाचन क्षेत्र में केवल दो ही राजनैतिक दल हों। निम्न-

लिखित आंकड इसको स्पष्ट कर देंगे । कनाडा के प्रथम सदन के लिये सदस्यो के निर्वाचन में जो मत (Vote) पडे उनसे ये आंकडे सम्बन्धित है —

| निर्वाचन का वर्ष | प्रान्त | दल | मत जो दल को प्राप्त हुये | स्थान जो दलको मिले |
|---|---|---|---|---|
| १९०४ | नोवा स्कोटिया | लिबरल | ५६,५२६ | १८ |
| | ,, | कन्जरवेटिव | ४६,१३१ | शून्य |
| १९११ | ब्रिटिश कोलम्बिया | लिबरल | २५,६२२ | ७ |
| | | कन्जरवेटिव | १६,३५० | शून्य |
| १९२६ | एलबर्टा | फार्मर्स पार्टी | ६०,००० | ११ |
| १९२६ | मैनीटोवा | कन्जरवेटिव | ४६,००० | १ |
| | | लिबरल | ८३,००० | शून्य |
| | | प्रोग्रेसिव | ३८,००० | ७ |

अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति—(System of proportional representation)—यह सभी मानने लगे है कि अपेक्षाकृत मताधिक्य प्रणाली (Relative majority system) मे बडा दोष है। इसलिये उसे सुधारने के लिये कई नई योजनायें तैयार हुई है, उनमें से सब से महत्व-पूर्ण अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली है। इस प्रणाली से प्रत्येक राजनीतिक दल को लोकसभा में उसी अनुपात मे स्थान मिलते है जो अनुपात उस दल के लिये पडे हुये मतो में और कुल डाले हुये मतो में होता है । इस प्रणाली मे बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन-क्षेत्र होते है और मतदाताओ को या तो निर्वाचित होने वाले उम्मेदवारो की सख्या से कम मत देने का अधिकार होता है या उनको यह सुविधा दे दी जाती है कि वे सारे वोट एक ही उम्मीदवार को दे दे अथवा उन्हे एक से अधिक उम्मेदवारो में बाट दें। एक दूसरी निर्वाचन प्रणाली में एक मतदाता को एक मत देने का अधिकार होता है पर वह उम्मेदवारो के लिये अपनी अभिरुचि नुसार रुचि बैलट पेपर (मत-पत्र) पर उम्मेदवारा के नाम के सामने १, २, ३, ४ सख्या लिखकर प्रकट करता है। इस प्रणाली में बडी पेचीदगी रहती है जिसका वर्णन करना यहा आवश्यक नही है।

की समिति के समान है। मन्त्रिमण्डल में वे सब मन्त्री, पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी, व दूसरे पदाधिकारी होते हैं जो मन्त्रिपरिषद् के त्यागपत्र देने पर अपने सब पदों का त्याग कर देते हैं। परिषद् में प्रधान मन्त्री ही प्रमुख व्यक्ति होता है, परिषद् उसी की बनाई हुई होती है और वही उसी परिषद् की शासन नीति की रूप रेखा निश्चित करता है। कौन कौन से शासन विभाग किस किस मन्त्री को मिलेंगे, यह वही निर्णय करता है। यदि कोई मन्त्रि पदत्याग करता है तो वह अपना त्याग-पत्र प्रधान मन्त्री को देता है, पर उसके ऐसा पदत्याग करने पर सारे मन्त्रिमण्डल को पदत्याग किये हुये समझा जाता है। प्रधान मन्त्री ही प्रथम सदन का नेतृत्व करता है और अपनी मन्त्रिपरिषद् पर लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उसकी नीति का समर्थन करता है।

इस प्रणाली का तीसरा सिद्धान्त यह है कि मन्त्रिपरिषद् अपने पद पर उस समय तक आसीन रहती है जब तक वह प्रथम सदन की विश्वास पात्र बनी रहती है। जैसे ही प्रथम सदन का इस पर से विश्वास उठ जाता है, वह पदत्याग कर देती है। यह अविश्वास या तो अविश्वास के प्रस्ताव के पास होने से प्रकट हो सकता है या तब जब कि प्रथम सदन मन्त्रिपरिषद् द्वारा प्रस्तुत किसी महत्वपूर्ण योजना को अस्वीकृत कर दे अथवा मन्त्रिपरिषद् द्वारा किये हुये किसी कार्य की निन्दा करे और उससे अपनी असम्मति प्रकट करे। यदि ऐसा किये जाने पर मन्त्रिपरिषद् यह निर्णय करती है कि उसकी नीति ठीक है और प्रथम सदन का मत गलत है और जनता उसकी नीति का ही समर्थन करेगी न कि प्रथम सदन के मत का, तो उसे यह स्वतन्त्रता रहती है कि वह प्रथम सदन के विघटन कराने का प्रयत्न करे और विघटन हो जाने के पश्चात् जनता से अपनी नीति के समर्थन की प्रार्थना करते हुये नये निर्वाचन में भाग ले। यदि इस मन्त्रिपरिषद के दल के लोग ही अधिकांश प्रथम सदन के सदस्य चुन लिये जायें तब तो वह परिषद् पदासीन बनी रहती है वरना पद त्याग कर देती है विरोधी पक्ष नई परिषद् बना कर सरकार की बागडोर अपने हाथ में लेता है। पार्लियामेण्टरी प्रणाली की यह पद्धति इसकी आत्मा है।

चौथा सिद्धान्त यह है कि मन्त्रिमण्डल के सब सदस्य उस पक्ष के होने चाहियें जिसका प्रथम सदन में बहुमत है और जिस पक्ष को राज्यतन्त्र का भार सौंपा गया हो। ऐसा करने से शासन नीति में एकरूपता रहती है भिन्न भिन्न वह पक्षों की नीति में खिचड़ी नहीं बनती और न शासन कार्यों में खींचातानी का अवसर रहता है। परन्तु यदि प्रथम सदन में दो से अधिक राजनीतिक पक्ष

है और उनमे से किसी का भी बहुमत न हो तो सबसे प्रभावशाली पक्ष के नेता से मन्त्रिमण्डल बनाने को कहा जाता है। वह मन्त्रिमण्डल में या तो अपने ही पक्ष के लोगो को रखे और इस आशा में शासन-भार अपने ऊपर ले ले कि दूसरे पक्ष उस से सहयोग करेंगे या वह दूसरे पक्षो में से भी कुछ व्यक्तियो को अपने मन्त्रिमण्डल मे रख ले जिससे वे पक्ष उसका समर्थन करते रहे। ऐसी मन्त्रि-परिषद् मिली जुली परिषद् (Coalition cabinet) कहलाती है। मिली जुली परिषद् की शासन नीति उन कई राजनीतिक पक्षो के सिद्धान्तो के सम्मिश्रण से निर्धारित होती है जिनके सहयोग से मन्त्रिपरिषद् बनती है। इसलिये परिषद् के सदस्यो मे वह घनिष्ठता और एकाग्रता नही रहती जो समान सिद्धान्तो पर चलने वाले एक आदर्श की प्राप्ति का यत्न करने वाले सगठन म हुआ करती है। परन्तु ऐसी परिषद् बहुत दिनो तक नही टिकती और जब तक यह रहती है उसकी नीति मे दृढता नही आने पाती।

**संसदात्मक या पार्लियामेण्टरी राजतन्त्र प्रणाली के गुण**—जिस राजतन्त्र प्रणाली का हमने ऊपर वर्णन किया है उसम कई अच्छाइया हैं। पहली बात तो यह है कि इस प्रणाली में विभिन्न पृथक् पृथक् राजनैतिक पक्षो का होना आवश्यक है। इन पक्षो का अपना अपना कार्यक्रम होता है जिसे वे राज्यशक्ति को अपने अधिकार में कर पूरा करने की घोषणा किया करते हैं। इस कार्यक्रम को वे जनता के सामने रखते है और यह आशा करते हैं कि जनता उनके कार्यक्रम से सहमत होगी तो उन्हें प्रथम सदन के लिये चुनेगी। यदि वे बहुमत प्राप्त करने में सफल होते हैं तो शासन सत्ता सभालने और अपने कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देते हैं। राजनीतिक पक्षो के आधार पर निर्वाचन होने से साधारण जनता को बहुत सी राजनीति सम्बन्धी बातो की जानकारी हो जाती है। इस से राजकीय जीवन में उनकी रुचि बढती है। वे अपने अधिकारो व कर्तव्यो को अच्छी तरह समझने लगते है और उन्ही के अनुसार अपने जीवन व्यापार की रूप-रेखा बना लेने में प्रयत्नशील होते है। दूसरे, इस प्रकार निर्वाचन होने से अपनाई जाने वाली शासन नीति का रूप अच्छी तरह व्यवस्थित हो जाता है और सब को उसके विषय में जानकारी हो जाती है जो समाज के योग क्षेम के लिये बडी महत्वपूर्ण बात है। शासन-सत्ता को भी नीति व आदर्श के लिये इधर उधर भटकना नही पडता। उसके सामने निश्चित ध्येय व आदर्श रहता है जिस पर पहुँचने के लिये जनता ने उसे पदासीन किया है। तीसरे इस प्रणाली में शासन नीति के गुण-दोष की चर्चा भली भाति होती है। विरोधी पक्ष हमेशा सरकार के

**मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों का सम्बन्ध**—यह प्रश्न उठ सकता है कि मतदाताओं और उनके प्रतिनिधियों में कैसा सम्बन्ध रहना चाहिये। क्या प्रतिनिधि अपनी इच्छानुसार विधान मण्डल में किसी योजना को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिये स्वतन्त्र है ? यदि नहीं तो क्या उसे अपने मतदाताओं की इच्छा के अनुसार व्यवहार करना चाहिये ? उसे अपने मतदाताओं से किस प्रकार सम्पर्क रखना चाहिये ? यह महत्वपूर्ण प्रश्न है और प्रत्येक राज्य में इसको पृथक् पृथक् ढंग से सुलझाया जाता है। इस सम्बन्ध में बहुत सी युक्तियां काम में लाई जाती हैं। कतिपय ये हैं, जैसे प्रथम सदन के लिये निश्चित समय के बीतने पर नया निर्वाचन करना, दूसरे सदन के कुछ भाग को निश्चित समय के पश्चात् नये सदस्यों से भरना, मन्त्रि परिषद् और लोकसभा में विरोध होने पर लोकसभा का विघटन कर देना, लोक निर्णय (Referendum), प्रत्याहरण (Recall), व निर्बन्ध उपक्रम (Initiative) आदि को अपनाना, इन सब का वर्णन हम आगे चलकर उपयुक्त स्थानों पर करेंगे।

**कार्यपालिका (Executive)**—सरकार का दूसरा अंग कार्यपालिका है। इसकी बनावट, शक्ति और विधान मण्डल से इसका सम्बन्ध, ये तीनों बातें सब राज्यों में एक समान नहीं होतीं। पर किसी राज्य के शासन की आत्मा उसकी कार्यपालिका की बनावट पर ही निर्भर है। हमें यहां कुछ प्रश्नों पर विचार करना पड़ता है। कार्यपालिका सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में हो या कई व्यक्तियों के हाथ में ? इस कार्यपालिका के पद की क्या अवधि होगी ? निश्चित अवधि होनी चाहिये या परिवर्तनशील ? कार्यपालिका उत्तरदायी हो या अनुत्तरदायी ? यदि उत्तरदायी हो तो किसको ? विधान मण्डल को या जनता को ? यदि कार्यपालिका उत्तरदायी हो और कई व्यक्तियों से बनी हो, तो क्या प्रत्येक व्यक्ति पृथक् पृथक् उत्तरदायी हो या सामूहिक रूप से सब उत्तरदायी हों ? इन प्रश्नों का उत्तर प्रत्येक राज्य ने अपने अपने ढंग से दिया है।

**सरकारों का उनकी कार्यपालिका की बनावट के आधार पर वर्गीकरण स्वेच्छाचारी अध्यक्षात्मक, संसदात्मक (Parliamentary)**—सरकारों का वर्गीकरण उनकी कार्यपालिका की बनावट के अनुसार भी किया जाता है। जब कार्यकारी सत्ता पूर्णरूप से एक व्यक्ति को सौंप दी जाती है जो किसी को उत्तरदायी नहीं होता तो वह स्वेच्छाचारी सरकार कहलाती है। इस श्रेणी में अफगानिस्तान का अनियन्त्रित राजतन्त्र गिना जा सकता है। जहां

कार्यकारी सत्ता जनता से निर्वाचित एक व्यक्ति को सुपुर्द रहती है और वह व्यक्ति निश्चित समय के लिये उस सत्ता का अधिकारी रहता है वहां अध्यक्षात्मक (Presidential) प्रजातन्त्र सरकार कहलाती है। ऐसी सरकार संयुक्त राज्य अमरीका की है। अमरीका का राष्ट्रपति अकेला कार्यकारी सत्ताधिपति है पर वह संविधान द्वारा नियन्त्रित है। वह अपनी शक्ति का उपयोग विधान का उल्लंघन करके नहीं कर सकता। इंगलैण्ड, फ्रांस आदि में कार्यपालिका मन्त्रिपरिषद् कहलाती है। इसमें कई व्यक्ति रहते हैं जो सामूहिक रूप से प्राय प्रथम सदन को उत्तरदायी रहते हैं। प्रथम सदन उनको जब चाहे उनके पद से हटा सकती है। ऐसी कार्यपालिका वाली सरकार को संसदात्मक या पार्लियामेण्टरी प्रणाली वाली या मन्त्रिपरिषद् वाली सरकार कहते हैं। जब तक कार्यपालिका प्रथम सदन की विश्वासपात्र बनी रहती है तभी तक वह पदासीन रहती है।

**मन्त्रिपरिषद् प्रणाली के सिद्धान्त**—प्रजातन्त्र को प्रचलित करने में जो ग्रेट ब्रिटेन ने सब से महत्वपूर्ण योग दिया है वह मन्त्रिपरिषद् प्रणाली का विकास है। मन्त्रिपरिषद् या पार्लियामेण्टरी प्रणाली का कैसे आरम्भ हुआ और किस प्रकार उसका धीरे धीरे विकास हुआ इसका विवेचन इस पुस्तक में आगे किया गया है। इस प्रणाली के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिनके अनुसार इसका कार्य होता है। नाम के लिये कार्यपालिका सत्ता का स्वामी इंगलैण्ड में अब भी राजा ही है पर वास्तव में सारी शक्ति मन्त्रिपरिषद् के ही हाथ में रहती है और वही उसको काम में लाती है। इस प्रणाली के कतिपय सिद्धान्त ये हैं—पहिला, विधान मण्डल में निश्चित राजनैतिक दल होने चाहिये और मन्त्रिपरिषद बनाने का अधिकार उस दल को होना चाहिये जिसका विधान मण्डल में अपना बहुमत हो या बहुमत पर प्रभाव हो। दूसरे कार्यपालिका शक्ति एक छोटे से मन्त्रिमण्डल में निहित होनी चाहिये जो प्रथम सदन को उत्तरदायी हो चाहे उनमें से कुछ दूसरे सदन के सदस्य ही क्यों न हों।

मन्त्रिपरिषद् शासन नीति को निर्धारित करती और विधान मण्डल के सम्मुख उस नीति को कार्यान्वित करने के लिये कार्यक्रम उपस्थित करती है। मन्त्रिपरिषद् विधान मण्डल को बतलाने का काम करती है कि मण्डल सुशासन के लिये कौन से और किस तरह के निर्बन्ध बनावे। विधि विधान बनाने के सम्बन्ध में वह मण्डल की निर्देशक रहती है और उसी दिशा में उसे परिचालित करती रहती है पर उसे आय-व्यय आदि के सम्बन्ध में मण्डल की स्वीकृति लेनी पड़ती है। मन्त्रिमण्डल एक बड़ा संगठन होता है जिसमें मन्त्रिपरिषद् एक छोटी

कार्यों में दोष निकालने को प्रयत्नशील रहता है और उसकी दृष्टि से कोई भी ऐसी बात नहीं छिप सकती जो जनता के हित के विरुद्ध हो। सरकार, विरोधी विरोधी पक्ष की आलोचना और दोष प्रकाशन से भयभीत बनी रहती है जिससे वह स्वेच्छाचारी नहीं हो पाती। यह विरोधी पक्ष पदासीन व्यक्तियों को सदा उन प्रतिज्ञाओं की याद दिलाता रहता है जिनके आधार पर उनको बहुमत मिला है और सरकार की शक्ति उनके हाथ सौंपी गई है। चौथे, विरोधी पक्ष ऐसे कानून बनाने से रोकता है जिन पर अच्छी तरह विचार नहीं हुआ है व जिनमें दूसरे [illegible] रहते हैं। यह केवल धारा सभा में ही विधेयक (Bill) की आलोचना नहीं करता किन्तु बाहर भी व्याख्यानों द्वारा व समाचार पत्रों द्वारा उनके गुणदोषों पर विचार करने के लिये जनता के सामने बहुत सी सामग्री उपस्थित करता रहता है।

**राजनीतिक पक्ष प्रणाली और प्रजातन्त्र राज्य**—संसदात्मक प्रजातन्त्र को सुचारु रूप से चलाने के लिये राजनीतिक पक्ष-प्रणाली एक महत्वपूर्ण काम करती है। जहाँ अध्यक्षात्मक कार्यपालिका बनाने की प्रथा है या ऐसी दूसरी प्रकार की कोई और कार्यपालिका बनाने की रीति है जो अपने पद से अवधि से पूर्व नहीं हटाई जा सकती, पर जहां यदि प्रजातन्त्रात्मक राज-संस्थायें हैं तो वहाँ भी यह पक्ष प्रणाली कम लाभदायक नहीं है। ब्राइस के कथनानुसार राजनीतिक पक्ष के अस्तित्व का प्रकट कारण तो यही है कि वह किन्हीं सिद्धान्तों या किसी विचारशैली का प्रचार करे पर इन सूक्ष्म सिद्धान्तों के साथ ही साथ व्यवहार में यह व्यक्तियों को भी उचित महत्व देता है। इसका संचालन सहानुभूति, अनुकरण, स्पर्द्धा और कलहप्रियता आदि मानव गुणदोषों के सहारे चलता है, यह नहीं कि सर्वदा उच्चादर्शों से ही उसकी प्रत्येक क्रिया प्रेरित होती हो, पक्ष के सदस्य आपस के प्रेम और ध्येय की समानता के बन्धन से बंधे रहते हैं। यह बन्धन पक्ष के अनुशासन-सम्बन्धी नियमों से दृढ़ बना रहता है। इनको अपने विरोधियों को सार्वजनिक जीवन में नीचा दिखाने के हेतु विभिन्न उपाय ढूंढने में एक निराली प्रसन्नता का सुख मिलता है।

पक्ष प्रणाली में राजनैतिक सिद्धान्तों और मतों का प्रकटीकरण होकर उनका निश्चित रूप व आकार स्थिर हो जाता है जिससे जनता को तत्कालीन राजकीय जीवन की आवश्यकताओं की जानकारी हो जाती है। प्राय साधारण जनता सार्वजनिक विषयों के प्रति उदासीन रहती है और लोग अपने स्वार्थ की परिधि के बाहर विषयों पर बहुत कम ध्यान देते या उन पर मनन करते हैं।

इसलिये यदि राजनैतिक पक्ष उन विषयों पर सतत प्रकाश न डालते रहे तो लोकमत बड़ा अस्पष्ट और बेकार सिद्ध हो। अनेकों मतदाताओं के मस्तिष्क के भीतर जो अव्यवस्थित व अस्पष्ट विचार घूमते रहते हैं पक्ष-प्रणाली उनको ठीक ढंग से एकत्रित कर उन्हे स्पष्ट और सुव्यवस्थित रूप देने में सहायता करती है, यद्यपि प्रत्येक पक्ष अपने अनुकूल दृष्टिकोण को ही उपस्थित करता है और विरोधी पक्ष की अच्छाइयों को छिपाने का प्रयत्न करता है, तब भी सब पक्षों की बातें सुनने से जनता को वास्तविकता का ज्ञान हो ही जाता है।

किसी राज्य में राजनैतिक पक्षों का बनना बिगड़ना उस देश की परम्परा, विवेचन रीतिरिवाजों व राजनैतिक समस्याओं के ऊपर निर्भर रहता है। इनका वर्णन उपर्युक्त स्थान पर इस पुस्तक में आगे चल कर किया जायेगा।

**राज्य में सिविल सर्विस**—यदि राजनैतिक पक्ष कार्यपालिका की गलतियों को सुधारने का प्रयत्न करते हैं और सरकार को अपने उत्तरदायित्व के प्रति जागरूक रखते है तो सिविल सर्विस पदासीन पक्ष के सिद्धान्तों को कार्यरूप में परिणित कर शासन करती है। सिविल सर्विस (Civil Service) में भिन्न भिन्न श्रेणियों के अनेक शासनाधिकारी होते है। वे स्थायीरूप से अपने पदों पर आरूढ रहते हैं। इन पदाधिकारियों से यह आशा की जाती है कि वे अपने पद के लिये योग्य हों और सरकार की आज्ञानुसार व पदासीन पक्ष के सिद्धान्तों को ध्यान में रख कर शासन चलायेंगे। ये अधिकारी भी कार्यपालिका के अंग ही होते हैं। मन्त्रिपरिषद् और इन में केवल यही अन्तर रहता है कि ये मन्त्रिपरिषद् के पदत्याग करने पर अपने पद का त्याग नही करते। कोई भी पक्ष पदासीन हो या पदच्युत हो ये अपने स्थानों पर बने रहते हैं। इनका काम यही है कि पदासीन पक्ष की शासन-नीति की आलोचना न कर उसको क्रियात्मक रूप दे। इसके लिये उन्हें प्रशासन में कुशल होने की आवश्यकता रहती है, शासन-नीति या राजनीति निर्धारित करने का भार उनके ऊपर नही रहता। ये शासनाधिकारी सरकार की भुजायें हैं, वे स्थायी राजकर्मचारी हैं। और प्रकट रूप से वे ही शासन करते हैं। इसलिये शासन की अच्छाई या बुराई उनके आचार व योग्यता पर बहुत कुछ निर्भर रहती है। चाहे सरकार की नीति ऐसी हो कि उसको जनता के हितों की रक्षा और वृद्धि ही दृष्ट हो पर यदि शासन-अधिकारी उस नीति में अनुराग रखते हुये उसका भली भांति संचालन न करें तो अभीष्ट की प्राप्ति नहीं हो सकती।

**राज्य का तीसरा अंग न्यायपालिका**—जैसे ही मनुष्य समाज में संगठित हुये होंगे, आपस के झगड़े व राज्य और व्यक्तियों के झगड़ों को निपटाने की आवश-

करना पड़ी होगी। राज्य के लिये भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ होगा कि झगड़े के निपटाने के लिये क्या व्यवस्था की जाय। राज्य नियन्त्रण केवल इसी बात से पूरा नही हो सकता कि कानून बना दिये जायें और शासनाधिकारी शासन करने के लिये नियुक्त कर दिये जाय। इसकी भी आवश्यकता पड़ती है कि यह देख भाल रखी जाय कि कानून लागू किये जायें, कानूनो के तोड़ने वालो को उचित दण्ड दिया जाय और अधिकारो के प्राप्त करने व कर्तव्यो के पालन करने में नागरिको के साथ न्याय बरता जाय। इस देख भाल के लिये ही सरकार के न्यायपालिका अंग की स्थापना की जाती है।

न्यायपालिका सत्ता के कार्य-सिद्धान्त—न्यायपालिका के अगो की बनावट, कर्तव्य और उसके सिद्धान्त या तो विधानमण्डल और कार्यपालिका मिल कर निश्चित कर देते हैं या इन सब का संविधान में ही उल्लेख कर दिया जाता है। पर कुछ ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्त हैं जो प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में विधानमण्डल के क्रिया रूप होने में लागू किये जाते हैं। विधानमण्डल सत्ता का प्रमुख कर्तव्य न्याय करना है इसलिये निरपेक्षित रहना इसका सर्वप्रथम सिद्धान्त है। पक्षपात शून्य तभी रहना सम्भव है जब न्यायाधीश को किसी प्रकार का न भय हो न प्रलोभन। पक्षपात शून्यता स्थापित करने के लिये तीन बातो का होना आवश्यक है। पहली आवश्यकता यह है कि न्यायाधीश अपने पदो पर पूर्णरूप से सुरक्षित हो। यदि अपने पद पर आसीन रहने के लिये उन्हे दूसरो का मुह देखना पड़े और उनसे भयभीत रहना पड़े तो वे पक्षपातरहित हो कर न्याय नही कर सकते। वे तभी न्याय के पलड़ा को बराबर रख सकते हैं जब उन्हे यह दृढ़ विश्वास हो कि उनका निर्णय चाहे किसी भी ऊंचे से ऊंचे पदाधिकारी सत्ता को क्यो न बुरा लगे वह उनको उनके पद से हटा नही सकते। इसलिये पद का स्थायित्व और कार्यकारी सत्ता के सम्ध से उसका परे होना आवश्यक है। जब तक न्यायाधीशो के काम में हस्तक्षेप करने से कार्यपालिका को बिलकुल रोक न दिया जाय तब तक न्यायाधीशों के मन से यह भय पूर्णतया नही निकल सकता कि वे अपना काम यदि पक्षपातरहित हो कर करेंगे तो उनकी हानि हो सकती है। इसके अतिरिक्त न्यायाधीशो को पर्याप्त वेतन मिलना चाहिये जिससे वे प्रलोभन में फसने से बचे रह सके। जहा न्यायाधीश कर्म रिश्वतखोर व भ्रष्टाचारी होता है वहा निश्चय ही न्याय की आशा करना व्यर्थ है। रुपया मन को मोह लेता है और न्यायाधीश मानव होने के नाते इस दुर्बलता से बचे नही रह सकते। फिर भी भ्रष्टाचार की सम्भावना कम कर दी जा सकती है यदि उनको समुचित पारिश्रमिक दिया जाय जिससे वे जल्दी ही प्रलोभन के वश मे न आ जायें। दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि न्यायाधीश कानून के ज्ञाता हो। इसके लिये यह आयोजन कर दिया

जाता है कि विशेष काननी योग्यता वाले शिक्षित व्यक्ति ही न्यायाधीश बनाये जाते हैं। तीसरी बात यह है कि न्यायालय हर एक व्यक्ति के लिये समान रूप से खुले रहें। वहा हर एक को अपनी पुकार करने का अधिकार होना चाहिये। कोई भी व्यक्ति, चाहे उसकी कोई भी जाति, वर्ण, सम्प्रदाय या धर्म हो, न्यायाधीश के सम्मुख अपना मुकदमा पेश करने के लिये स्वतन्त्र होना चाहिये। धनी और निर्धन सब ही को न्यायालय मे न्याय के लिये प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि छोटे बडे न्यायालय स्थापित किये जाये, न्यायशुल्क की मात्रा थोडी हो और निर्धन व्यक्तियो को नि शुल्क कानूनी सहायता देने का राज्य द्वारा प्रबन्ध रखा जाय। यदि न्यायशुल्क की मात्रा बहुत अधिक रखी जाती है तो गरीब आदमी न्यायालयो का उपयोग करने से वचित रह जाता है और उसकी व्यथा के दूर होने का रास्ता ही बन्द हो जाता है। फलस्वरूप धनी आदमियो से गरीबो के मन में डर बैठ जाता है क्योकि वे अपने धन के बल पर दुर्बल निर्धनी व्यक्तियो पर अत्याचार करेंगे और न्याय को अपने रुपयो की थैली से अपनी ओर झुका लिया करेंगे। न्यायालयो की कई छोटी बडी श्रेणी होना आवश्यक है। सब के ऊपर एक उच्चतम न्यायालय हो जिसमे मुकदमे की अन्तिम सुनवाई हो। यदि कोई व्यक्ति छोटी अदालत के निर्णय से असन्तुष्ट रहे तो उसे उस निर्णय के विरुद्ध उस पर पुनर्विचार करने के लिये ऊपर वाले न्यायालय से प्रार्थना करने की सुविधा होनी चाहिये क्योकि न्यायाधीश कितने ही योग्य व्यक्ति क्यो न हो, उनका निर्णय निर्दोष नही होता।

नागरिको के स्वत्वो की रक्षा भी न्यायकारी सत्ता के हाथ मे रहती है। न्यायाधीश निषेधाज्ञा द्वारा राज्य को किसी काम के करने से रोक सकता है या कोई काम करा सकता है जिसके करने या न करने से नागरिको के अधिकारो पर राज्य का आक्रमण होता हो या उन अधिकारो की प्राप्ति न होती हो। कानून तो केवल विधान कर देता है कि क्या अधिकार नागरिको को मिलना चाहियें। इनको उपलब्ध करा देना न्यायाधीशो का काम है। शासन विधान में नागरिक के अधिकारो का कितना ही विस्तृत और स्पष्ट उल्लेख कर दिया जाय, वहा वाक्स्वातन्त्र्य धर्म स्वातन्त्र्य आदि पर कितना ही जोर दिया गया हो, पर जब तक न्यायकारी सत्ता नागरिको को उनका भोग करने में सहायता न दे तब तक वे केवल कोरी कल्पना ही रह जाते हैं। सुसगठित न्यायपालिका द्वारा ही शरीर और धन की रक्षा का अधिकार मतदान का अधिकार व दूसरे ऐसे ही अधिकारो की रक्षा होती है। जो राज्य अपने नागरिको के उन स्वत्वो की रक्षा नही करता वह सभ्य कहलाने योग्य नही है। प्लूटार्क ने कहा था कि 'राजा को और कोई

गुण उतना शोभित नहीं करता जितना उसकी न्यायप्रियता...न्याय ही संसार का सच्चा सम्राट् है।"

इसलिये जिस न्यायपालिका में सदाचारी न्यायाधीश हों, जो न भय से, न लोभ से विचलित हो सकते हों, व जिन पर शासनाधिकारियों की अप्रसन्नता का कोई प्रभाव नहीं पड़ता हो, वे अपने निर्णयों से स्वतन्त्रता का ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें नागरिक प्रसन्नतापूर्वक निर्भीक होकर अपना काम कर सकते हैं। आधुनिक संविधानों में ऐसी न्यायपालिका की स्थापना के लिये आयोजन रहता है जिससे अतिव्यय न करा कर शीघ्रतापूर्वक न्याय निर्णय की सुविधा प्रत्येक नागरिक को प्राप्त हो। इसमें सन्देह नहीं कि विभिन्न देशों की न्याय पद्धति एक दूसरे से भिन्न है। पर यह भिन्नता केवल छोटी छोटी बातों में ही है। उनके अतिरिक्त वे सब समान सिद्धान्तों पर ही आधारित हैं। जैसा पहले बतलाया जा चुका है, संघ शासन में न्यायपालिका को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

**राज्य के कर्तव्य**—राज्य पहले पहल यदि संरक्षण के लिये उदय हुआ तो पोषण के लिये वह जीवित रहता है। इस अभिप्राय को सिद्ध करने के लिये उसके सामने कुछ ध्येय होते हैं जिन पर पहुंचने के लिये उसे कितने ही कामों को करना पड़ता है। राज्य के क्या उद्देश्य होने चाहियें और किन कर्तव्यों को इसे पूरा करना चाहिये, ये ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर युग युग में राजशास्त्रियों ने देने का प्रयत्न किया है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, परम्परा आवश्यकता और राज्य से भविष्य में किस आदर्श की आशा करते थे, इन सब बातों को ध्यान में रख कर इन प्रश्नों का उत्तर दिया। इन उत्तरों के ही द्वारा राजनीति-विचारकों ने राज्य के घटना चक्र में बड़ी हेर फेर कर दी और उसके द्वारा राज्य-नीति और शासन-नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तनों के लिये रास्ता साफ कर दिया। इसी से यह समझ में आता है कि भिन्न भिन्न देशों में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना भिन्न क्यों है। कारण यह है कि राज्यों की उत्पत्ति व परम्परा एक दूसरे से भिन्न और निराली रही है। परिस्थितियों ने उनको विशेष ढांचे में ढाला, आवश्यकता व स्वार्थ के वश में होकर और कहीं कहीं व्यक्ति विशेषों की इच्छा से प्रेरित हो कर उन्होंने पृथक पृथक् मार्गों का अनुसरण किया है। राज्य के आदर्श और कर्तव्यों से हमें व्यवहृत सिद्धान्तों और भविष्य की आकांक्षाओं का परिचय मिल जाता है। सरकार के कर्तव्यों की रूप-रेखा जानने के लिये हमें यह मालूम करना चाहिये कि सरकार का रूप क्या है, और सरकार का रूप इस बात से निर्णीत होता है कि हम आदर्श सरकार का कैसा चित्र अपने सामने खींचे हुये हैं।

**राज्य के कर्तव्यों का वर्गीकरण**—सरकार के अनेक कर्तव्य हैं और

उनकी अनेकता बढ़ती जाती है। उनका अध्ययन करने के लिये उनका वर्गीकरण आवश्यक है। यह वर्गीकरण उनके रूप व विस्तार के अनुसार किया जाता है। कुछ कर्तव्य ऐसे हैं जिनका करना प्रत्येक राज्य के लिये अपरिहार्य है। उनके किये बिना कोई भी राज्य-राज्य कहलाने का दावा नहीं कर सकता। आचार्य विल्सन ने सरकार के कर्तव्यों को दो विभागों में बांटा था, अनिवार्य और वैकल्पिक (Optional), व्यवधानिक (Constituent) या सामाजिक (Ministrant)। अनिवार्य कर्तव्यों में जीवन रक्षा, स्वतन्त्रता, सम्पत्ति रक्षा व दूसरे वे सब कर्तव्य गिने जाते हैं जो सामाजिक संगठन के लिये आवश्यक हैं। ये कर्तव्य इतने अपरिहार्य हैं कि व्यक्तिस्वातन्त्र्य का कट्टर से कट्टर सिद्धान्ती भी राज्य को इन्हें करने से मना नहीं कर सकता। राजा का सब से प्रथम धर्म तो संरक्षण है और उसके लिये शान्ति और सुव्यवस्था रखने का काम सर्वप्रथम है, इस कर्तव्य के अन्तर्गत आनुषङिगक दूसरे कर्तव्य हैं जैसे पिता-पुत्र व पति-पत्नी के काननी सम्बन्ध स्थिर करना, धन सम्पत्ति के स्वामित्व उसके क्रय विक्रय, वसीयत करने आदि के नियम बनाना, ऋण व अपराध का स्वरूप निश्चय करना, अर्थात् उनके लिये उचित दण्ड का विधान करना, नागरिकों के आपस के ठेकों को कार्यान्वित कराना व उन के पारस्परिक झगड़ों को निबटाना, राजनीतिक अधिकारों व कर्तव्यों को निश्चित रूप देना और विदेशी राज्यों से आदान प्रदान की व्यवस्था करना, आदि।

वैकल्पिक या सामाजिक कर्तव्यों में निम्नलिखित कर्तव्यों की गिनती की जाती है, व्यापार व उद्योग का नियमन, जिससे नाप तौल व मुद्रा आदि की देखभाल की जाती है, श्रमजीवियों के पारिश्रमिक, काम करने के घण्टे व काम करने की सुविधाओं के सम्बन्ध में नियमन करना, यातायात के मार्ग जैसे रेल, सड़कें, हवाई अड्डे, तार डाकघर, टेलीफोन आदि का प्रबन्ध करना, शिक्षा, अनाथों व निर्धनों की देखभाल, कृषि उद्योग आदि की उन्नति, इत्यादि।

**राज्य के कर्तव्यों की प्राचीन कल्पना**—पुराने समय में राज्य के कर्तव्यों की कल्पना इतनी संकुचित थी कि राज्य का रूप एक बड़ी पुलिस संस्था से उच्चतर न था। उस समय संरक्षण ही राजा का कर्तव्य समझा जाता था। उसके कर्तव्य निषेधात्मक होते थे जैसे अत्याचार, चोरी, दंगा फिसाद आदि को रोकना। उस कल्पना में समय के प्रवाह से अनेक परिवर्तन हुये हैं और आज कल इसका बिलकुल नया रूप ही हो गया है।

**सरकार के कर्तव्यों की आधुनिक कल्पना**—निषेधात्मक कर्तव्यों के अतिरिक्त आधुनिक सरकार समाज के पोषक काम भी करने लगी है। अब

राज्य में व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक, व राजनैतिक अधिकार भी मान्य होने लगे हैं जिनकी प्राप्ति व रक्षा का उचित प्रबन्ध करना सरकार का कर्तव्य समझा जाता है। औद्योगिक क्रान्ति ने राज्य के कर्तव्यों में बहुत हेर फेर कर दी है। मशीन-युग में ऐसा होना अवश्यम्भावी था। भौतिक विज्ञान की उन्नति से राष्ट्रों में निकट सम्बन्ध स्थापित होने के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की कल्पना वरवर व्यापक होती जा रही है। अब एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अधिकाधिक अन्योन्याश्रयी होता जा रहा है। इसलिये सरकार के कर्तव्यों की अनेकता व व्याप्ति भी बढ़ती जा रही है। व्यक्तिवादियों के इस कथन का अब कोई मूल्य नही रह गया है कि सरकार वही उत्तम है जो कम से कम शासन करती है। इस के विपरीत अब यह भावना दृढ़ होती जा रही है कि सरकार को अधिक से अधिक नियन्त्रण करना चाहिये। अब सरकारें नागरिक जीवन की छोटी छोटी बातों में भी हस्तक्षेप करने लगी हैं, यहा तक कि वे यह भी निश्चित करती है कि नागरिक क्या पढे, क्या लिखे, क्या खाये, किस वृत्ति को अपनाये, किस प्रकार विवाह करे और किस प्रकार इस सम्बन्ध को तोड़े। सब से अधिक हस्तक्षेप सरकार आर्थिक क्षेत्र में करने लगी है। एक ओर पूजीवादी राष्ट्रों में सरकार अनेकों प्रकार से व्यक्तियो को वृहत उद्योगों को स्थापित करने मे प्रोत्साहन देती है दूसरी ओर समाजवादी राष्ट्रों में इस बात का खुला प्रयत्न किया जा रहा है कि सब उत्पादक उद्योग सरकार के स्वामित्व में आ जायें अर्थात् सब उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर दिया जावे जिसमे व्यक्तिया का आर्थिक सगठन को स्वार्थ वश बिगाडने की कम से कम स्वतन्त्रता रह जाये। अमरीका जैसे व्यक्तिवादी राष्ट्र में जहा सघ सरकार की शक्ति विधान से मर्यादित है रूजवैल्ट के समय में नेशनल रिकवरी ऐक्ट (National Recovery Act) आदि जो तत्कालीन आर्थिक सकट को मिटाने के लिये पास किये गये उनका उद्देश्य राष्ट्र द्वारा छोटे आदमी को सहायता देना ही था। इससे स्पष्ट है कि ससार की स्थिति ही ऐसी होती जा रही है कि समाजवाद के सिद्धान्तो के अपनाये बिना कुशल दिखाई नही देती।

आधुनिक सरकारें प्रतिदिन ऐसे नियम बनाती जा रही है जिनसे कर्तव्यो की परिधि बराबर विस्तृत होती जा रही है और व्यक्ति स्वातन्त्र्य का दायरा कम होता जा रहा है। ऐसा करना मनुष्य को सुखी बनाने के लिये आवश्यक होता जा रहा है। सरकार की बढती हुई शक्ति आर्थिक क्षेत्र में अधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है क्योंकि उसका हर समय व्यक्ति के जीवन पर प्रभाव पडता है। द्वितीय महायुद्ध से पूर्व जर्मनी, इटली व रूस में सरकारें व्यक्ति के जीवन पर सब से अधिक नियन्त्रण करती थी। पर अब इगलैण्ड जैसे जनतन्त्रात्मक देश में भी

समाजवादी सरकार की स्थापना हो गई है जो व्यक्ति के आर्थिक जीवन को सामूहिक रूप देती जा रही है। इससे प्रकट है कि सरकार के कर्तव्यों का प्रवाह निश्चय ही प्राचीन समय से चले आने वाले सिद्धान्तों के विरुद्ध, समाजवादी दिशा की ओर होने लगा है। अब जीवन यात्रा का कोई ऐसा मार्ग नही जो राष्ट्र के नियंत्रण से परे समझा जाता हो। संसार की जैसी वर्तमान स्थिति है, जहा भावनाओ व विचारो का संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है वहा बरबस सब राष्ट्रों में एक ही दिशा की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति होती जा रही है। जनतन्त्रात्मक राष्ट्रो में राज्य नागरिको के जीवन पर अधिकाधिक नियंत्रण करता जा रहा है। राज्य के कर्तव्यो की सीमा बाधना असम्भव है।

## पाठ्य पुस्तकें

इस अध्याय में जिन विषयो पर विचार किया गया है उसके अध्ययन के लिये वृहत् साहित्य उपलब्ध है। प्रत्येक राजशास्त्री और लेखक ने कुछ न कुछ इन विषयो पर अवश्य लिखा है। हाल ही मे इस प्रकार का साहित्य प्रचुर मात्रा में तैयार हुआ है। यद्यपि पाठको को किसी भी राजनीति की पुस्तक से पर्याप्त पठन सामग्री मिल सकती है पर फिर भी निम्नलिखित पुस्तकें इस अध्ययन के लिये विशेष उपयुक्त होंगी।

Bryce, Viscount:—Modern Democracies, Vol. I.
Burns, C.D.—Political Ideals.
Coker, F. W.—Recent Political Thought.
Cole, G. D. H., and M. I.—Modern Politics, Books V & VI.
Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government, Vol I, Chs. I, III, VII, XI XII, XVI and XVI.
Laski, H J.—A Grammar of Politics.
Laski, H. J.—Liberty in the Modern State.
Laski, H. J.—Introduction to Politics.
Michels, R.—Political Parties.
Seeley, J. R.—Introduction to Political Science.
Wilson, W.—The State.

# अध्याय ४

## इंगलैंड की सरकार

### अंगरेजी शासन-विधान का विकास

"ब्रिटिश साम्राज्य एक नियन्त्रित राजसत्ता द्वारा एक बन्धन में बंधा हुआ है। यह राजसत्ता वही प्राचीन नियन्त्रित राजसत्ता है जिसका गठबन्धन पहिले स्काटलैंड की राजसत्ता से होकर संवर्द्धन हुआ जिसमें समुद्र पार दूसरे राष्ट्र भी आकर सम्मिलित हो गये। इसका वर्तमान वैधानिक स्वरूप किसी एक घटना या आन्दोलन से उत्पन्न न होकर एक ऐसे क्रमिक विकास से हुआ है जो उतना ही प्राचीन है जितनी कि प्राचीन नौर्मन (Norman) जाति की विजय। स्यात् हमें अपनी दृष्टि हटा कर भी पहले उन सैक्सन राजाओं पर लगानी पड़ेगी जिनके आधिपत्य में इंगलैण्ड के राजा और उनके प्रदेशों का जन्म हुआ। विशेषतया हमारी दृष्टि एलफ्रैड पर जाकर जमती है जो हमारे राजाओं में सब से महान् था, जिसका जीवन व चरित्र अंगरेजी संविधान का जीता जागता रूप था।"

(जी एम ट्रेविल्यान)

**इंगलैंड में एंग्लो-सेक्सन जाति**—लगभग पांचवीं शताब्दी में पिक्ट् और स्कौट लोगों से ब्रिटेन के लोगों की रक्षा करने के हेतु जो एंग्ल, सेक्सन और जूट लोग आये वे ब्रिटेन में बस गये थे। इन नवागन्तुकों ने ब्रिटेन की संस्थाओं का आकार व व्यवहार में बड़ा परिवर्तन किया। ये संस्थायें कैल्ट और रोमन संस्कृतियों के एक निराले सम्मिश्रण से बनी थीं। इन नयी जातियों के आने के बाद कई छोटे छोटे राज्य बस गये जिनमें पारस्परिक संगठन सुदृढ़ नहीं था। कोई राज्य कभी एक राज्य से मिल जाता था कभी दूसरे से। इसके पश्चात् तुरत ही एक ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसमें थैंगस् (Thegns) नामक एक शूर जाति का उत्थान हुआ। इस जाति के लोगों में जागीरें बटी हुई थीं और वे लोग इस शर्त पर इन जागीरों का उपभोग करते थे कि युद्ध के समय वे राजा को सेना व धन से सहायता करेंगे।

**ब्रिटेन में ईसाई धर्म**—छठी शताब्दी में जब ब्रिटेन के रहने वालों ने ईसाई धर्म अपना लिया तो वहां एक नई सभ्यता का आरम्भ हुआ जिससे वहां

की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। ईसाई धर्म जो विश्वैकता के आधार पर प्रचलित था, इन लोगों को यूरोपियन राजकीय समाज के निकट ले आया और वे अपनी राजकीय सभाओं या धार्मिक संघों के अनुरूप संगठन व संचालन करने लगे। "आरम्भ से ही राज्य व धर्म का निकट सम्बन्ध स्थापित हो गया और यद्यपि वहां का धर्मसंघ रोम के पादरी का प्रभुत्व मानता था पर उसका निजी राष्ट्रीय ढंग पर विकास हुआ।"* इस समय जब ब्रिटेन में सात आंग्ल व सैक्सन राज्य साथ साथ स्थित थे सारे प्रदेशों में सात छोटे छोटे राजा राज्य करते थे। इन सातों राजाओं में, वैसेक्स, मर्शिया और नोर्थम्ब्रिया के राजा सबसे अधिक प्रबल थे। वैसेक्स के राजा ऐग्बर्ट (Egbert) ने दूसरे राज्यों को अपने आधीन कर उन पर अपना आधिपत्य जमा लिया और अपने को "पश्चिमी सेक्सनों का राजा" कहने लगा। जिस ईसाई धर्म की प्रेरणा से अलग अलग राज्यों में लोग संगठित थे और एक केन्द्रीय शक्ति अर्थात् राजा को माने हुये थे, उसने राष्ट्रीय भावना के उगने में योग नहीं दिया। यह राष्ट्रीय एकता की भावना तभी जाग्रत हुई जब कि विधर्मियों के आक्रमण के भय से उन्हें एक साथ मिलकर रहने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अंगरेज जाति की एकता का श्रेय उत्तर की ओर से होने वाले डेन लोगों के आक्रमण को है। यह आक्रमण लगभग ७९३ ई० से आरम्भ हुआ और पचास वर्ष के भीतर ही यह एक भारी समस्या हो गयी। पर अंगरेजों के लिये यह एक वरदान सिद्ध हुआ क्योंकि इसके कारण तत्कालीन राज्य मिलकर एक राज्य बन गया।

**एल्फ्रेड और इंगलैण्ड का एक रूप होना**—सन् ८७१ ई० मे जब एग्बर्ट (Egbert) का चौथा पोता एल्फ्रेड, वैसेक्स (Wessex) का राजा हुआ उस समय डेनों के आक्रमण ने विकट रूप धारण किया। सन् ८७८ ई० में एल्फ्रेड ने एथेण्डन की लड़ाई में डेना के सरदार गूथ्रम (Guthrum) को करारी हार दी और उसे वैडमोर (Wedmore) के संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने को विवश किया। इस संधि से उत्तरी ब्रिटेन पर डेनों का राज्य ज्यों का त्यों मान लिया गया पर वैसेक्स की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई। इसके पश्चात् ऐल्फ्रेड ने वैसेक्स की शक्ति को सुदृढ करने की ओर ध्यान दिया। उसने स्थल सेना की शक्ति बढाई, जल सेना तैयार की, कानूनों का सुधार किया और विद्या व देश भक्ति को प्रोत्साहन दिया।

उसके समय में सारी जमीन राजा की सम्पत्ति समझी जाती थी और वही समाज का केन्द्र समझा जाता था। राजा ने यह जमीन अर्लों (Earls)

---

*टैसवेल-लैंगमीड—इंगलिश कन्स्टीट्यूशनल हिस्टरी, पृ० ८।

और थैनों (Thegns) में इस बात पर बाट रखनी थी कि वे राजा की युद्ध में सहायता करेंगे। इस प्रकार के वितरण को फ्यूडल प्रणाली कहते हैं। राज्याधिकार पिता से पुत्र को मिला करता था पर राजा की मृत्यु होने पर राजा के पुत्रों में से सबसे योग्य राजकुमार या राजघराने का और कोई व्यक्ति उसका उत्तराधिकारी चुन लिया जाता था। यह कोई नियम न था कि ज्येष्ठ राजकुमार ही राज्यसिंहासन पर बैठे। राजा की आय उसकी निजी सम्पत्ति या न्यायालयों द्वारा लगाये हुये आर्थिक दण्डों से होती थी। राजा अभी न्यायकर्ता न समझा जाता था क्योंकि जागीरदारों की अपनी अपनी जागीरों में न्याय संस्थायें थीं जो न्याय करने का काम करती थीं। पर धीरे धीरे राजा की न्यायकारी सत्ता जागीरदारों की सत्ता को हटाकर उसका स्थान स्वयं ले रही थी।

**विटेनगेमोट (Witenagemot), इसकी बनावट और इसके कर्तव्य**—उस समय राजा निरंकुश न था। उसकी शक्ति असमर्यादित न थी। उस समय भी एक राज्य परिषद् थी जिसका नाम विटेनगेमाट (Witenagemot) था। इस परिषद् को बड़े अधिकार थे और यह राजा की शक्ति पर अंकुश रखती थी। इस परिषद् में प्रत्येक स्वाधीन नागरिक बैठ सकता था। पर यह कुलीन-संस्था ही थी जिसके राजा, जागीरदार, मठधारी पादरी या बुद्धिमान कहलाने वाले व्यक्ति ही सदस्य होते थे। जो लोग इस परिषद् में उपस्थित होते थे उनको विटन या बुद्धिमान व्यक्ति कहते थे और बुद्धिमानों की परिषद् होने के कारण इसका नाम विटेनगेमोट पड़ गया। इसके बड़े विस्तृत अधिकार थे। यह राजा को चुन सकती थी, गद्दी से उतार सकती थी और शासन-प्रबन्ध में स्वयं भाग लेती थी। राजा के साथ बैठकर यह परिषद् कानून बनाती थी और राजकीय सेवाओं के बदले में कर लगाती थी। संधि करना, स्थल व जल सेना एकत्रित करना, राजा का जागीर में से भेंट देना, पादरियों को पदासीन व पद्च्युत करना, दूसरे राज्याधिकारियों व जागीरदारों को अपने पद पर नियुक्त करना या हटाना अपराधियों की व निःसन्तान व्यक्तियों की जायदाद का फैसला कर जब्त करना और धार्मिक आज्ञाओं का अनुसरण कराना, ये सब काम यह परिषद् किया करती थी। इन सब कामों के अतिरिक्त जब तब परिषद् सम्पत्ति सम्बन्धी व झगड़े सम्बन्धी मुकदमों में सर्वोच्च न्यायालय का काम भी किया करती थी। संक्षेप में भ्रूणावस्था में यह आधुनिक पार्लियामेण्ट थी। यद्यपि इसके अधिकार बड़े विस्तृत थे पर उनका प्राय उपयोग न किया जाता था और राजा का व्यक्तित्व ही इन मामलों में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता था।

सारा देश गावो में विभक्त था। जिस कुल ने जिस गाव को बसाया उसी के नाम पर गाव का नाम पड गया। सौ गावो के समूह का नाम "दी हन्ड्रेड" होता था और प्रशासन की वह दूसरी बडी इकाई होती थी, पहिली इकाई गाव था। तीसरी इकाई "शायर" कहलाती थी जिसमे सौ "दी हण्ड्रेड" होते थे अर्थात् शायर एक हजार गावो का प्रदेश कहलाता था। राज्य का सबसे बडा स्थलात्मक विभाग शायर (Shire) ही था।

इन प्रशासन विभागो की संस्थाओं और अधिकारियो के संगठन और सम्बन्ध में इतिहासकारो के भिन्न भिन्न मत हैं। पर साधारणतया यह माना जाता है कि शायर (Shire) में राजा का सबसे बडा अफसर एल्डरमैन (Elderman) होता था जिसको राजा नियुक्त करता था। यह अफसर प्राय राजघराने का ही व्यक्ति होता था और सैनिक तथा शासन सम्बन्धी अधिकारो का उपभोग करता था। शायर-मूट (Shire moot) जो शायर की पुनर्विचार करने वाली अदालत (Appellate court) थी उसका एल्डरमैन सभापति होता था। इस अदालत को एकत्रित करने का काम शैरिफ करता था। शैरिफ (Sheriff) शायर (Shire) का निर्वाचित कर्मचारी होता था। इस अदालत के दूसरे सदस्य पादरी, जमीदार, सब राज कर्मचारी, धर्म्म पुजारी और कुछ चुने हुये व्यक्ति होते थे।

दी हण्ड्रेड (The Hundred) शायर (Shire) का एक उपविभाग था और उसमें एक स्थानीय अदालत होती थी जिसका नाम "हण्ड्रेड मूट" (Hundred moot) था। इस अदालत में बारह या बारह के अपवर्त्य (Multiple) संख्या में जज होते थे। इस अदालत में शैरिफ (Sheriff) या उप-शैरिफ (Deputy Sheriff) प्रधान का काम करता था। दीवानी और फौजदारी के मुकदमे इसी अदालत में प्रारम्भ होते थे।

नौर्मन (Norman) काल—सन् १०६६ में जो हेस्टिंग्ज का युद्ध हुआ उससे इगलैण्ड के शासन विधान के इतिहास का प्रवाह ही बदल गया। नार्मण्डी (फ्रास) के राजा विलियम प्रथम् ने इगलैण्ड के राजा हैरोल्ड को हरा-कर इगलैण्ड का राज सिंहासन अपने अधिकार में कर लिया और वह इगलैण्ड का प्रथम् नार्मन राजा बन बैठा। राज्याभिषेक होते समय उसने इगलैण्ड के प्राचीन काल से प्रचलित राजशपथ ली। उसने इगलैण्ड के प्राचीन नियमो का ही पालन किया और वैधानिक राजा की तरह राज्य किया। उसने उन जागीरदारो की जागीर छीन ली जो उसके विरुद्ध युद्ध में लड़े और उन जागीरो को

अपने उन नोर्मन सामन्तों में बांट दिया जिन्होंने उसे सहायता दी या जिन्होंने आवश्यकता पड़ने पर सैनिक सहायता देने का वचन दिया। पुराने जागीरदारों को राजभक्ति की शपथ लेनी पड़ी और वे अपनी शिकायत की पुकार न्यायालयों में करने पर विवश किये गये। धर्म न्यायालय (Spiritual Courts) राजकीय न्यायालयों (Civil Courts) से पृथक् कर दिये गये परन्तु धर्ममठों पर राज्य का प्रभुत्व सुरक्षित रखा गया। यह नियम बना दिया गया कि राजा की आज्ञा बिना कोई पादरी मान्य न समझा जाय न उसके आदेशों का पालन किया जाय, राष्ट्रीय याजक-परिषदों (Ecclesiastical assemblies) के निर्णय और आज्ञायें तब तक मान्य न हों जब तक राजा उसका समर्थन न कर दे और कोई जागीरदार या राज कर्मचारी बिना राजा की आज्ञा के पदच्युत या समाजच्युत न किया जाय।

इस प्रथम् नोर्मन विजय के फलस्वरूप जो नये जागीरदार (Barons) बने उन्होंने कुछ समय के पश्चात् विलियम द्वितीय के लिये बड़ी कठिनाई उत्पन्न करदी और उसे इगलैण्ड के निवासियों से मिलकर इनके विद्रोह को दबाना पड़ा। हेनरी प्रथम् के समय में ही राजा को अंगरेजी जनता की स्वतन्त्रता के कुछ अधिकार मानने पड़े। जिस अंगीकारपत्र द्वारा इनकी घोषणा हुई उसको दूसरे नोर्मन राजाओं ने भी आगे चलकर मानने का वचन दिया। एन्जीविन (Angevin) राजवंश की नींव डालने वाले हेनरी द्वितीय ने भी ऐसा ही किया। इस राजवंश में जोन नामक राजा का राज्यकाल इगलैण्ड के जनतन्त्र के इतिहास में बहुत महत्वपूर्ण समझा जाता है।

इगलैंड की जनता के अधिकारों का मैग्ना कार्टा (Magna Carta) सन् १२१५ ई०—जोन नामक राजा के समय में जागीरदारों और पादरियों ने, जो उस समय देश के नेता थे, राजा के विरुद्ध आन्दोलन किया। उन्होंने मिल कर एक षड्यन्त्र रचा और राजा को "ग्रेट चार्टर" (Great Charter) अर्थात् अंगीकार-पत्र स्वीकार करने पर विवश किया। इस चार्टर (Charter) में ऐसे उपबन्ध (Provisions) थे जिनसे यह स्पष्ट होता था कि राजा पर जनता के किसी भी वर्ग का विश्वास नहीं है। राजा ने सामन्तों व पादरियों से झगड़ा कर लिया था। मैग्ना कार्टा (Magna Carta) उन तीन चार्टरों में से एक है जो चैथम (Chatham) के कथनानुसार इगलैण्ड के शासन विधान की बाइबिल है। दूसरे दो चार्टर पेटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights) और बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) के नाम से प्रसिद्ध है। यदि मैग्ना कार्टा की सूक्ष्म विवेचना की जावे तो उससे पता चलेगा

कि यह केवल सन् १२१५ ई० के पूर्व जो जनस्वातन्त्र्य के अधिकार मान्य थे उनको लेखन-क्रिया द्वारा पुन प्रतिष्ठित ही करता है। प्रस्तावना (Preamble) के अतिरिक्त इसमें ६३ खण्ड (Clauses) हैं जो किसी क्रम से लिखे हुये नही हैं। प्रथम, इसमें सामन्तशाही (feudalism) के कर्तव्यो को फिर से दुहराया गया है और सामन्तो के प्रति राजा की मागो को मर्यादित कर दिया गया है। दूसरे, यह न्याय-प्रणाली को सरल बनाने का प्रयास करता है। इसमें कहा गया है कि (१) साधारण जनता के मुकदमो की सुनवाई निश्चित स्थानो पर होगी, (२) अर्लों (Earls) और बैरनो (Barons) को उनके ही कुलीन न्यायाधीश अपराध के अनुसार दण्ड दे सकेंगे, (३) राजा के मुकदम, शैरिफ, पुलिस अफसर, अमीन आदि सुनकर निवटारा न करेंगे, (४) कोई स्वाधीन नागरिक न्यायालय में जाने से न रोका जा सकेगा, (५) कोई भी अमीन विश्वसनीय गवाहो को सुने विना अपना निर्णय नही देगा, (६) न्याय के ज्ञाता ही न्यायाधीश, अमीन और शैरिफ नियुक्त किये जायेंगे, आदि आदि। तीसरे, इसमें शासन-विधान के मौलिक सिद्धान्तो की परिभाषा कर दी गयी है, इसमें लिखा है कि विटन (बुद्धिमानो की सभा, न्यायालय) को बुलाने के लिये पादरियो, महन्तो, मठधारियो, अर्लों, व बडे बैरनो के पास अलग अलग व्यक्तिगत रूप से निमन्त्रण भेजा जाना चाहिये, प्रमुख आसामियो (tenants) को प्रत्येक शायर में शैरिफ की लिखित आज्ञा द्वारा बुलाया जायगा, न्याय किसी को बेचा न जायगा, न कोई इससे वंचित रखा जायगा। चौथे, इस मैग्ना कार्टा में नगरों व कस्बों के अधिकारो को फिर से दुहराया गया है और कुछ व्यापारिक अधिकारो की परिभाषा की गई है और पाचवें, राजा द्वारा लगाये जाने वाले करो की निश्चित मर्यादा बाध दी गई है।

इस चार्टर में उच्च वर्गों के व्यक्तियों के अधिकारो का वर्णन था पर इसका हैनरी तृतीय ने छ वार, एडवर्ड ने तीन वार, एडवर्ड तृतीय ने चौदह वार, रिचार्ड द्वितीय ने छ वार हैनरी चतुर्थ ने छ वार और हैनरी पांचवें और छटे ने एक एक वार समर्थन करने की घोषणा की। जनता, विशेषकर बैरन और पादरी, अपनी स्वतन्त्रता व अधिकारो की रक्षा करने का जो महत्व इस चार्टर को देते थे वह इससे बिल्कुल स्पष्ट है ही।

**एञ्जीविन वंश के राज्यकाल में इंगलैण्ड का शासन विधान**—मैग्ना कार्टा (Magna Carta) ने प्रजा के लिये राजा से अपने अधिकार मागने का मार्ग खोल दिया। इसके पश्चात् हैनरी तृतीय के समय में राजा की वैधानिक स्थिति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुये। हैनरी तृतीय छोटी अवस्था में ही राजा हो चुका था, उसकी ओर से राज्य प्रबन्ध करने के लिये जो परिषद् बनाई गई

उसने अपनी शक्ति बढ़ा ली। जब हैनरी पूर्ण वयस्क होकर राजसिंहासन पर बैठा तो उसे इस परिषद् से परामर्श करना पड़ता था। उस समय तक उस कौंसिल का प्रीवी कौंसिल नाम पड़ चुका था। इसके पश्चात् हैनरी के विदेशी मित्रों ने भारी शक्ति बढ़ाली जिससे देश में असन्तोष फैलने लगा और गड़बड़ मचना प्रारम्भ हो गई। सन् १२५८ में इस कुशासन हीनता की हद हो गई। उस समय बैरनों (Barons) ने एक ग्रेट कौंसिल (Great Council) बुलाई। यह कौंसिल "मैड पार्लियामेण्ट" (उन्मादिनी संसद्) के नाम से प्रसिद्ध है। यह ऑक्सफोर्ड नगर में अपनी मांगो को पेश करने के लिये बुलाई गई। ये लेख अन्त में ऑक्सफोर्ड के उपबन्ध (Provisions of Oxford) के नाम से प्रसिद्ध हुये।

**ऑक्सफोर्ड के उपबन्ध**—विद्रोह पर तुले हुये बैरनों को देखकर राजा को इन उपबन्धों (Provisions) को मानने पर विवश होना पड़ा और यह स्वीकार करना पड़ा कि इनके आधार पर ही शासन प्रबन्ध होगा। इनके अनुसार पन्द्रह बैरनों और पादरियों की कौंसिल नियुक्त की गई जो राजा को शासन कार्य में परामर्श देने की अधिकारिणी थी। हर तीसरे वर्ष पार्लियामेण्ट बुलाना आवश्यक था। इस पार्लियामेण्ट मे कौंसिल के १५ सदस्यों के अतिरिक्त बैरनों के १५ प्रतिनिधि और राजा के १५ मनोनीत व्यक्ति बुलाने पड़ते थे। इस प्रकार सामन्तों को तो शासन प्रबन्ध में हाथ बटाने का अवसर मिल गया पर साधारण जनता को कोई प्रतिनिधित्व नहीं मिला।

**साइमन डि मान्टफोर्ड द्वारा बैरनों का नेतृत्व**—उपरोक्त कौंसिल से परामर्श लेने को पहले तो हैनरी सहमत हो गया पर सन् १२६१ ई० में उसने खुले तौर से ऑक्सफोर्ड के उपबन्धों का अनुकरण करने से इनकार कर दिया। बैरनों ने इस ललकार का सामना करने की ठान ली। गृह युद्ध आरम्भ हुआ और सन् १२६४ ई० में १४ मई को लिविस के युद्ध में हार खाकर राजा और राजकुमार दोनों ने आत्म-समर्पण कर दिया। इस संघर्ष में साइमन डि मान्टफोर्ड (Simon de Montford) ने बैरनों का नेतृत्व किया था। प्राय उसको साधारण जनता का नेता कह कर भी पुकारा जाता है। फ्रांस के इतिहासकार गुइजट (Guizot) ने उसे "प्रतिनिधिक सरकार का जन्मदाता" कह कर पुकारा है। गुइजट का जीवनी लेखक पाउली (Pauli) साइमन को 'हाउस ऑफ कामन्स का जन्मदाता" कहता है, सच तो यह है कि वह दोनों में से एक भी नही है, यह ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। मोन्टफोर्ड एक दु:साहसी नौर्मन था जिसका चरित्र कई आकर्षक गुणों व दोषों का अद्भुत मिश्रण था। वह अपने बहनोई

हैनरी तृतीय के प्रोत्साहन के कारण आरम्भ में उन्नति कर गया और उस समय तक प्रतिनिधि राज्य-शासन प्रणाली की ओर उसका बिल्कुल झुकाव न था। जब उसने देखा कि उसके स्वार्थ की सिद्धि इस ढग से होगी तभी इस प्रणाली का समर्थक होने का उसने दावा किया। इगलैण्ड के शासन विधान की प्रगति तो जारी थी ही और उसमें तो परिवर्तन होने जा ही रहा था पर मौन्टफोर्ड के स्वार्थ का इससे अनायास ही मेल हो गया। उस समय नगरो और कस्बो की आबादी बढ़ रही थी और उनकी समृद्धि हो रही थी। ऐसी स्थिति में इन नगरो की अधिक समय तक पार्लियामेण्ट द्वारा उपेक्षा न की जा सकती थी। प्रतिनिधित्व तो अनिवार्य था ही। साइमन ने इस सम्बन्ध मे असामयिक प्रयास किया।

**साइमन की १२६४ और १२६५ की पार्लियामेण्ट**—राजा से राजनैतिक लडाई लडने के लिये साइमन ने सन् १२६४ ई० में एक पार्लियामेण्ट बुलाई। इस पार्लियामेण्ट में उन बैरनो और पादरियो के अतिरिक्त जो पहले से ही अधिकारी थे, प्रत्येक प्रान्त (County) के चार प्रतिनिधियो को भी बुलाया। इस पार्लियामेण्ट ने यह निश्चय किया कि शासन प्रबन्ध साइमन की अध्यक्षता मे एक नौ सदस्यो की कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाय। सन् १२६५ ई० में साइमन ने फिर पार्लियामेण्ट बुलाई जिसमे उसने "नाइट्स आफ दी शायर्स (Knights of the Shires) को नहीं बुलाया पर सब बडे नगरो और कस्बो से प्रतिनिधि बुलाये। इसमें सन्देह नही कि प्रजातन्त्रात्मक सरकार की स्थापना करने के लिये यह पहला कदम था और इसका श्रेय साइमन को ही दिया जा सकता है।

**एडवर्ड प्रथम् के शासन-सुधार**—सन् १२७४ ई० में हैनरी तृतीय के मरन के पश्चात् एडवर्ड प्रथम राजसिंहासन पर बैठा। उसकी पार्लियामेण्ट ने कई शासन सुधार किये। सन् १२७५ ई० में ही वैस्टमिस्टर का प्रथम् विधान (First Statute of Westminster) पास हुआ था। इसमें भूमि-कर (Land Tax) निश्चय कर दिया गया और निर्वाचन होने का आयोजन कर दिया गया। सन् १२७८ ई० मे ग्लौसेस्टर का विधान (Statute of Gloucester) पास हुआ जिसमे यह जानने का प्रयत्न किया गया कि बैरन लोग किस अधिकार से जागीरो पर अपना स्वामित्व किये हुये थे। इस विधान के पास होने से बैरनो के ऊपर राजा का नियत्रण और अधिक दृढ़ हो गया। सन १२७९ के मोर्टमेन के विधान (Statute of Mortmain) से पादरियो के उस अधिकार की काट छाट कर दी गई जिससे वे मरणासन्न व्यक्तियो को

अपनी जायदाद गिरजाघरों या मठों के नाम कर देने के लिये विधान किया करते थे। सन् १२८५ ई० में वेस्टमिन्स्टर का दूसरा विधान (Second Statute of Westminster) पास किया गया। उसमें मरने के बाद स्वाधीन नागरिकों की भूमि उनके ज्येष्ठ पुत्रों को दिये जाने का विधान कर दिया गया। सन् १२८५ ई० में विन्चेस्टर का विधान (Statute of Winchester) पास हुआ जिससे देश की रक्षा व नगरों तथा गांवों की पुलिस का प्रबन्ध होने का आयोजन हुआ। इनके अतिरिक्त दूसरे और सुधार भी हुये।

**सन् १२६५ ई० की ग्रेट पार्लियामेन्ट (Great Parliament)**—एडवर्ड का सबसे महत्वपूर्ण शासन सुधार यह था कि उसने सन् १२९५ ई० में ग्रेट पार्लियामेण्ट को बुलाया। इस पार्लियामेण्ट में इंग्लैण्ड के राजनैतिक जीवन में भाग लेने वाले तीनों वर्गों के प्रतिनिधियों को बुलाया गया। पादरी लार्ड्स और कामन्स (Commons) ये ही तीन वर्ग थे। ऐसा एक भी नगर न बचा था जिसका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेण्ट में न हो। इसलिये इस पार्लियामेण्ट का "प्रथम पूर्ण और आदर्श पार्लियामेण्ट" (First Complete and Model Parliament") नाम पड़ा।

**शतवर्षीय युद्ध और पार्लियामेन्ट**—सन् १३३८ ई० में शतवर्षीय युद्ध के आरम्भ होने से कई महत्वपूर्ण शासन सुधार हुये। उस समय तक पार्लियामेण्ट के उपर्युक्त तीनों वर्ग एक ही सदन में बैठकर वाद विवाद करते और वोट दिया करते थे हालांकि बैरन मनचाही कर लेने में सफल हो जाया करते थे। इसके अनन्तर पादरियों व बैरनों ने मिलकर एक अलग सदन में बैठना आरम्भ कर दिया जहां वे विचार करते थे और इस तरह हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) की नींव पड़ी। नगरों और कस्बों के प्रतिनिधि अपने अलग सदन में बैठकर राजकाज करने लगे। यह सदन हाउस आफ कामन्स (House of Commons) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते होते पार्लियामेण्ट का इन दो शाखाओं में विभाजन पक्का हो गया, दूसरे गृह में सामन्तशाही का प्रतिनिधित्व था और प्रथम् गृह में साधारण जनता का। पहले पार्लियामेण्ट की बैठकें किसी नियम से न होती थीं परन्तु सन् १३३० ई० में यह कानून बना दिया गया कि "प्रति वर्ष एक बार पार्लियामेण्ट की बैठक होगी और यदि आवश्यक हो तो एक से अधिक बार भी हो सकती है'। सन् १३६२ ई० में इसको फिर दुहराया गया और इस बैठक के उद्देश्यों की निश्चित रूप से घोषणा इस प्रकार कर दी गई. 'भिन्न भिन्न प्रकार

के झगडो और शिकायतो को दूर करने के लिये जो प्रतिदिन होते रहते है प्रति-वर्ष पालियामेण्ट की एक बैठक बुलाई जायगी। एडवर्ड तृतीय के राज्य के समाप्त होते होते प्रथम सदन (Lower House) ने अपने तीन महत्वपूर्ण अधिकार अपने हाथ में कर लिये। यह तीन अधिकार ये थे —(१) विना इस गृह की सम्मति के कर अवैध (Illegal) है, (२) निर्बन्धो अर्थात् कानूनो के बनने के लिये दोनो गृहो की सहमति आवश्यक है, और (३) प्रथम गृह यानी हाउस आँफ कामन्स को शासन प्रबन्ध के दोषो में छानबीन करने और सुधारने का अधिकार है। प्रश्न यह उठता है कि राजा ने यह सब प्रतिबन्ध क्यो मान लिया? बात यह थी कि राजा को युद्ध के व्यय के लिये धन की आवश्यकता थी और विवश होकर उसे आय-व्यय व कानून व्यवस्था पर पालियामेण्ट का नियन्त्रण स्वीकार करना पडा। उस समय से ही पालियामेण्ट में हाउस आँफ लार्डस का महत्व कम होने लगा और कामन्स की शक्ति व महत्ता बढने लगी।

**नौर्मन और एञ्जीविन राजवंशों के समय मे न्याय-पालिका का विकास**—नौर्मन और एजीविन राजवशो के समय में न्याय प्रणाली में जो विकास हुआ वह अध्ययन करने योग्य है। उस समय राजा ही सारे शासन का स्वामी होता था और इसलिये न्यायपालिका का भी वही प्रमुख व्यक्ति था। प्रारम्भ में राजा स्वय न्यायालय मे बैठता था और न्याय करता था परन्तु उसके फ्रास स्थित प्रदेशो के शासन का उत्तरदायित्व इतना भारी था कि वह उसे पूरा करने के लिये फ्रास में ही अधिक समय तक रहने लगा। इसलिये अपनी अनुपस्थिति में काम काज करने के लिये राजा ने अपना एक प्रधान मन्त्री नियुक्त कर दिया जो न्याय और आय-व्यय के प्रबन्ध की देखभाल करने लगा इस प्रधान-मन्त्री को जस्टिसिअर (Justiciar) भी पुकारा जाता था। एडवर्ड प्रथम ने जस्टिसिअर (Justiciar) के पद को तोड दिया और उसके काम को चासलर (Chancellor) को सौप दिया। एडवर्ड दी कनफेसर (Edward the Confessor) ने इस चासलर के पद को सब से प्रथम जन्म दिया था। इस प्रकार चासलर के ऊपर न्याय कार्य करने का भार पडा और उसी समय मे वह न्यायकर्ता बन गया।

जस्टिसिअर (Justiciar) और चासलर (Chancellor) के अतिरिक्त एक और सस्था थी जिसका बडा मान था। इस सस्था का नाम क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) था और यह न्यायपालिका के कर्तव्यो को पूरा किया करती थी। पहिले यह ग्रेट काउसिल आफ दी रैल्म (Great

Council of the Realm) अर्थात् राष्ट्र की महान् परिषद् कहलाती थी। उस समय इसमें कुछ राज्य-कर्मचारियों की एक छोटी सी समिति थी जिसका नाम क्यूरिया (Curia) था। यही समिति न्याय-सम्बन्धी सब काम करती थी। कुछ समय पश्चात् इस समिति का काम, किंग्स बेंच (King's Bench) दी कोर्ट आफ कामन प्लीज़ (The Court of Common Pleas) और कोर्ट आफ एक्सचेकर (Court of Exchequer), इन तीन न्याय संस्थाओं में बांट दिया गया। कोर्ट आफ एक्सचेकर कर-सम्बन्धी और आय-व्यय सम्बन्धी मुकदमे सुनती थी। दीवानी के मुकदमे कोर्ट आफ कामन प्लीज़ में सुने जाते थे। इनको छोड़ कर और बचा हुआ न्याय सम्बन्धी काम सब किंग बेंच में हुआ करता था। हेनरी तृतीय के राज के अन्त में यह कार्य-विभाजन हो चुका था।

हेनरी प्रथम के समय में क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के कुछ न्यायाधीशों को घूम घूम कर एक ज़िले से दूसरे ज़िले में जाकर मुकदमे करने पड़ते थे। ये लोग साथ साथ मालगुज़ारी (आगम) वसूल करते और अपराधियों को दण्ड भी देते थे। इनको आइटीनरेण्ट (Itinerant) अर्थात् भ्रमणशील न्यायाधीश कहते थे। इन न्यायाधीशों के लिये हेनरी द्वितीय ने सारे राज्य को ६ भागों में बांट दिया। प्रत्येक भाग में दौरा करने के लिये तीन न्यायाधीश नियुक्त कर दिये। ये सरकिट कोर्ट (Circuit court), शायरमूट (Shire moot) जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है और क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) अर्थात् लोक न्यायालय और राज न्यायालय में सम्बन्ध स्थापित करते थे। इनके द्वारा पुरानी प्रणाली और नई न्याय प्रणाली में सामजस्य स्थापित हो गया। हेनरी द्वितीय ने फौजदारी (Criminal) मामलो मे पचो (Jury) की सहायता से न्याय करने की प्रथा पहले पहल आरम्भ की। कुछ समय पश्चात् यह प्रथा दीवानी मुकदमो के लिये भी लागू कर दी। पहले पहल यह पच केवल वे ही लोग होते थे जो शपथ लेते हुये सच बाते बतला कर गवाही देते थे।

जब न्यायपालिका का यह विकास हो रहा था राजा की ग्रेट कौंसिल (King's Great Council) जिसका पीछे से कटीन्यूअल कौंसिल (Continual Council) नाम पड़ गया, अपने विशेष न्याय-अधिकार क्षेत्र मे काम करती रही। यद्यपि सैद्धान्तिक रूप से इस न्यायालय में कौंसिल (भूतपूर्व पार्लियामेण्ट) के तीनो भाग अर्थात् बैरनो, पादरियों और कामन्स के लोग होते थे, पर साधारणतया कामन्स कौंसिल के न्याय सम्बन्धी काम में योग न देते थे। इसलिये यह न्याय-सम्बन्धी काम पीयर्स (Peers) ही करने

लगे। ये लोग जब एक पृथक गृह म बैठ कर काम करने लगे और हाउस ऑफ लार्डस का जन्म हुआ तो ये दोनों काम करने लगे। उनका एक काम तो विचारक मण्डली जैसा था और दूसरा न्यायालय का। बाद मे धीरे धीरे यह न्याय-सम्बन्धी काम इस हाउस ऑफ लार्ड स की एक छोटी समिति द्वारा होने लगा। इस समिति का ही नाम प्रीवी कौंसिल पडा।

**गुलाब युद्ध (Wars of Roses) और शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन**—उपर्युक्त शासन प्रणाली लंकास्टर (Lancaster) और यार्क (York) के राजवशो में होने वाले गुलाब युद्ध के छिडने के समय तक चलती रही। यह युद्ध सन् १४५५ से १४८५ ई० तक चलता रहा और जब यह समाप्त हुआ तो उस समय कई महत्वपूर्णशासन विधान सम्बन्धी परिवर्तन हुये। बैरनो की शक्ति दोना युद्ध वर्गों में बट जाने से छिन्न भिन्न हो गई और राजा पर जो अब तक उनका प्रभाव चला आ रहा था सब समाप्त हो गया। युद्ध से लोग बडी आपत्ति में पड गये और उनकी आर्थिक दशा शोचनीय हो गई। इस से हेनरी सप्तम ने पूरा लाभ उठाया और प्रजा की सम्मति से ही उसने शान्ति और सुरक्षा के हित में अपनी शक्ति खूब बढा ली। हेनरी सप्तम के राज्याभिषेक को पार्लियामेण्ट ने स्वीकार कर लिया तब से राजा को चुनने का पार्लियामेण्ट को अधिकार मिल गया। पहले दो टयूडर वशी राजाओ ने (हेनरी सप्तम और अष्टम) गिरी हुई आर्थिक दशा का अपनी शक्ति बढान में खूब लाभ उठाया और वे निरकुश शासन स्थापित करन में बहुत कुछ सफल हुये। यद्यपि पार्लियामेण्ट की अब भी बैठके होती थी पर इन टयूडर वशी राजाओ ने उसको अपनी निरकुश शक्ति बढाने का साधन बना रखा था।

**टयूडर वशीय निरकुशता की स्थापना**—टयूडर वश के राजा पार्लियामेण्ट में ऐसे व्यक्तियो को चालाकी स निर्वाचित करा लेते थे जो उनकी हा में हा मिलाने वाले होते थे और फिर करो को बढवा कर अपने राजकोष को भरा पूरा रखते थे। बैरनो की शक्ति को कुचलने के लिये उन्होंने स्टार चैम्बर (Star Chamber) का न्यायालय और हाई कमीशन (High Commission) का न्यायालय ये दो सस्थायें स्थापित की।

इधर जागीरदारो पर हेनरी सप्तम ने अपना प्रभुत्व जमा लिया था और दूसरी ओर पोप से झगडा कर उसने अंगरेजी नये ईसाई सघ की स्थापना की, जिस पर रोम के पोप का प्रभुत्व न रहा। यह झगडा रानी को तलाक देने के प्रश्न पर उठा था। नये ईसाई सघ (Church) पर राजा का बड़ा प्रभाव

रहने लगा। एडवर्ड षष्ठ व मेरी (Mary) के समय में प्रोटेस्टेण्ट जो रोमी-धर्म-सम्प्रदाय से विरोधी थे और कैथोलिक जो रोम के पोप और उसके सम्प्रदाय के समर्थक थे, इन दोनों में प्राय झगड़ा होता रहता था। रानी एलिज़बेथ ने जनता की इस निजी धार्मिक फूट का लाभ उठाने में कोई कसर न रखी। वह चालाकी से कभी एक दल को अर्थात् प्रोटेस्टेण्ट और कभी कैथोलिक को उकसाती रहती थी जिससे इन सम्प्रदायों के मानने वाले दो दल हमेशा रानी के मुँह की ओर देखते रहते थे। राजसत्ता की शक्ति इस प्रकार बढ़ती चली गई। इसके अतिरिक्त १५वीं शताब्दी का जो कला व साहित्य के पुनरुद्धार (Renaissance) का आन्दोलन चला उसका भी देश पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। इंगलैण्ड एक शक्तिशाली जल-सेना का स्वामी हो गया, उसका व्यापार बढ़ने लगा। व्यापार करने के लिये जो कम्पनियां खुलीं उन से साधारण जनता फलने फूलने लगी और देश समृद्धिशाली हुआ। जब इस प्रकार जनता समृद्ध हुई तो स्वभावत अपनी आर्थिक स्थिति की ओर से निश्चिन्त होने के कारण उसे राजा और अपने पारस्परिक सम्बन्धों व अधिकारों पर विचार करने का अवसर मिला और वह कुछ अधिक जागरूक रहने लगी। पर इस जागरूकता को व सार्वजनिक अधिकारों की माग को जो निरकुश ट्यूडर राजाओं के स्वेच्छाचारी शासन से बल पाती रही थी एलिज़बेथ ने सफलतापूर्वक अपनी कूटनीति की सहायता से रोके रखा।

**स्टूअर्ट-काल में शासन परिवर्तन**—स्टूअर्ट राजवंश का राज उस समय से प्रारम्भ हुआ जब से जेम्स प्रथम इंगलैण्ड के राजसिंहासन पर बैठा। स्टूअर्ट राजाओं के राज सिद्धान्त और शासन नीति ने दो बार ऐसी आपत्तिपूर्ण स्थिति उत्पन्न कर दी जिसके फलस्वरूप कई महत्वपूर्ण शासन-सम्बन्धी परिवर्तन हुये। जेम्स प्रथम् ने राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त के मुख्य सिद्धान्त चार थे—(१) यह कि राजा सीधे ईश्वर से अपना राज्याधिकार प्राप्त करता है, (२) यह कि राजा का यह अधिकार अनियन्त्रित और अमर्यादित है, (३) यह कि राजा की आज्ञा का विरोध करना प्रत्येक दशा में अवैध ही नहीं पाप भी है, (४) यह कि राजपद पैत्रक है और राजा के लड़कों में सब से बड़ा उसका उत्तराधिकारी होना चाहिये। इन सिद्धान्तों के मानने में जेम्स प्रथम और पार्लियामेण्ट में मुठभेड़ हो गई। राजा की धार्मिक नीति ने, जिसके द्वारा उसने रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के लोगों को किसी प्रकार की स्वतन्त्रता देने से इनकार कर दिया और इसने राजा-प्रजा के वैमनस्य की आग में घी का काम किया। रोमन कैथोलिक पोप की प्रभुता के

समर्थक थे न कि राजा की प्रभुता के। प्यूरिटन सम्प्रदाय (उत्कट पवित्रतावादी) जो प्रोटेस्टेण्ट धार्मिक मत का ही एक भाग था, वह भी राजा की नीति से अप्रसन्न था। इसलिये जेम्स प्रथम की जब पहली पार्लियामेण्ट बैठी तो इन सब असन्तुष्ट दलों ने मिल कर राजा से यह माग की कि राजा जनता के सार्वजनिक अधिकारो को स्वीकार करे और यह भी माने कि कामन्स (House of Commons) को ही कर लगाने की अनुमति देने का अधिकार है। जेम्स प्रथम् ऊपर से कामन्स के अधिकारो का आदर करने का बहाना करता रहा पर भीतर ही भीतर वह उनसे स्वतन्त्र होने की चाल चलने लगा। सन् १६११ से १६१४ तक उसन पार्लियामेण्ट को बुलाया ही नही और बिना पार्लियामेण्ट के ही उसने राज्य किया। जब १६१४ ई० में उसने पार्लियामेण्ट को बुलाया तो "अनुदान स्वीकार करने के पूर्व शिकायतें दूर हो" इस बात पर आपस में झगडा हो गया और पार्लियामेण्ट भग कर दी गई। उसके पश्चात् फिर छ वर्ष तक बिना पार्लियामेण्ट के उसने राज्य किया। सन् १६२१ में उसने तीसरी बार पार्लियामेण्ट बुलाई। इस बार भी पार्लियामेण्ट अपनी पुरानी हठ पर जमी रही। उसने फिर यह माग की कि उन को बोलने की स्वतन्त्रता दी जाय, उनको पकडा न जाय और राजा के परामर्श-दाताओं की निन्दा करने का उन्हे अधिकार दिया जाय। इस पर राजा ने पार्लियामेण्ट भग कर दी और सन् १६२४ ई० मे राजा ने चौथी पार्लियामेण्ट बुलाई। इस पार्लियामेण्ट ने जो मागें उपस्थित की वे अधिकतर मान ली गई, इस से पार्लियामेण्ट का आदर और ख्याति बढ गई।

**चार्ल्स प्रथम और पार्लियामेन्ट**—जेम्स प्रथम् के बाद उसका पुत्र चार्ल्स प्रथम् राजसिंहासन पर बैठा। चार्ल्स भी अपने पिता के समान राजाओ के दैवी अधिकारो में विश्वास करता था, राजा के अनियन्त्रित अधिकार वाले सिद्धान्त को व्यवहार मे उसने अति कर दी। उसने पार्लियामेण्ट की स्थिति और उसके परामर्श से शासन करने की आवश्यकता, दोनो को ठुकरा दिया। परन्तु धनाभाव के कारण विवश होकर उसे पार्लियामेण्ट बुलानी पडी। सन् १६२६ ई० मे जो पार्लियामेण्ट बुलाई गई उसने चार्ल्स के मन्त्री बकिंघम (Bucking-ham) पर अभियोग लगाया। इससे राजा और पार्लियामेण्ट में अनबन हो गई और राजा ने पार्लियामेण्ट को भग कर दिया, पर फिर कर उगाहने की आवश्यकता के कारण उसे सन् १६२८ में पार्लियामेण्ट बुलानी पड़ी। परन्तु इस बार कामन्स ने अनुदानो को स्वीकार करने से पहले यह प्रस्ताव पास किया 'कि बिना उनकी स्वीकृति के कोई भी कर वैध न समझा जायगा। और उन्होने' राजा के स्वेच्छाचारी-शासन की बड़ी निन्दा की। उन्होंने मैग्नाकार्टा, पिटीशन

श्राफ राइट्स १६२८ई० श्रौर उसके बाद के श्रधिकार पत्रों में स्वीकृत श्रपने प्राचीन श्रधिकारों के श्राधार पर एक पिटीशन श्राफ राइट्स (Petition of Rights) श्रर्थात् अधिकारों का प्रार्थना पत्र, तैयार किया जिसमें उनकी मांगों का उल्लेख था। उन मांगों में से कुछ ये थीं, (१) कोई श्रवैध कर-वसूली न की जाय जैसा कि एडवर्ड प्रथम के समय में घोषित हो चुका था कि राजा या उसके उत्तराधिकारी पादरियों, अर्लों (Earls), बैरनों (Barons), नाइटों (Knights), स्वतन्त्र शासित नगरों के नागरिकों (Burgesses) श्रौर दूसरे स्वाधीन देशवासियों की स्वीकृति के बिना कोई भी कर राज्य में न लगाया जायगा श्रौर जिसका एडवर्ड तृतीय की पालियामेण्ट ने इस प्रकार स्पष्टीकरण कर दिया था "कि श्राज यह घोषित किया जाता है कि श्रब से श्रागे किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध राजा के लिये ऋण देने पर विवश न किया जायगा क्योंकि ऐसे ऋण नागरिकता श्रौर श्रौचित्य के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। (२) दूसरी मांग यह थी कि राजा व्यक्तियों को कारावास देने में स्वेच्छाचार न करे जिसके सम्बन्ध में मैगनाकार्टा में घोषणा हो चुकी थी श्रौर जिसको एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में पालियामेण्ट ने फिर दुहरा दिया था। (३) जैसा मैगनाकार्टा ने श्रौर एडवर्ड तृतीय ने घोषित किया था राज्य में मार्शल ला (Martial Law) श्रर्थात् सामरिक कानून न लगाया जाय। (४) चौथी मांग यह थी कि संविधान व कानून के श्रनुसार प्रजा की स्वतन्त्रता श्रौर उसके स्वत्वों की रक्षा की जाय। पिटीशन श्राफ राइट्स अंग्रेजी स्वतन्त्रता रूपी भवन का दूसरा स्तम्भ है। पर उसमें कोई नई बातें न थीं। इससे पूर्व जो श्रधिकार राजाश्रों द्वारा मान्य हो चुके थे उनको ही संक्षिप्त रूप से एक स्थान पर इस पत्र में एकत्रित कर दिया गया था। राजा को विवश होकर यह प्रार्थना पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसके पश्चात् पालियामेण्ट ने राजा को शराब व दूसरी वस्तुश्रों के श्रायात निर्यात् पर कर लगा कर धन इकट्ठा करने का श्रधिकार दे दिया। पर साथ ही साथ नौसेना रखने के लिये लगाये हुये कर को तोड़ दिया श्रौर स्टार चैम्बर व हाई कमीशन कोर्ट को भी भंग कर दिया। यह सब राजा ने स्वीकार कर लिया परन्तु भीतर ही भीतर चार्ल्स सेना को पालियामेण्ट के विरुद्ध भड़काने लगा श्रौर इस प्रकार बलप्रयोग से पालियामेण्ट पर श्रपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करने लगा। जब पालियामेण्ट को इसका पता लगा तो उसने ग्रांड रिमोस्ट्रेंस (Grand Remonstrance) नामक एक प्रलेख तैयार किया जिसमें श्रपने स्वत्वों व श्रधिकारों का गौरवपूर्ण दृढ़ समर्थन किया श्रौर राजा से प्रार्थना की कि वह उनको स्वीकार करे। राजा श्रौर पालियामेण्ट की श्रनबन ने गृहयुद्ध का रूप धारण किया जिसमें चार्ल्स को श्रपनी जान से हाथ धोना पड़ा श्रौर उसके पश्चात् प्रजातन्त्र

शासन की स्थापना हुई जिसका सगठन एक शासन विलेख (Instrument of Government) के अनुसार हुआ। इस विलेख से हाउस आफ लार्ड्स तोड दिया गया और राजसत्ता भी समाप्त कर दी गई। हाउस आफ कामन्स में से वे सब पक्ष निकाल दिये गये जो राजसत्ता के समर्थक थे और इगलैण्ड का शासन एक नये राज्य प्रमुख की अध्यक्षता में होने लगा जिसका नाम प्रोटेक्टर (Protector) रखा गया।

**राजसत्ता की पुनर्स्थापना (१६०० ई०)**—इगलैण्ड में यह प्रजातन्त्र शासन केवल ग्यारह वर्ष ही रहा। इस काल में शासन की कमिया स्पष्ट होने लगी और पार्लियामेण्ट ने राजसत्ता को पुन स्थापित करने का निश्चय किया। चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को राजसिंहासन पर बैठाया। इस नये राजा ने प्रजा के स्वत्वो व अधिकारो की रक्षा करने का वचन दिया। उसके राज्य में जो सब से महत्वपूर्ण शासन-विधान सम्बन्धी लाभ हुआ वह यह था कि सन् १६७९ ई० में हेबियस कारपस (Habeas Corpus) ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट से प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई क्योंकि इस ऐक्ट में यह आयोजन कर दिया गया था कि यदि किसी व्यक्ति पर अपराध करने का अभियोग लगाया जाय व बन्दी बना लिया जाय और वह व्यक्ति स्वय या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा किसी न्यायालय मे इसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करावे तो वह न्यायालय शासन और उस बन्दी को न्यायालय के सामने अभियोग की सुनवाई करने के लिये उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता है। चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने पिता के समान स्वेच्छाचारी शासन करने का प्रयत्न किया पर पार्लियामेण्ट ने इस बार कोई कडी कार्यवाही नही की क्योंकि उसे प्रजातन्त्र काल के कटु अनुभव ने सतर्क बना दिया था।

**सन् १६८८ ई० की क्रांति और प्रतिफलित शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन**—चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका भाई जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसके मन में आरम्भ से ही यह कुचक्र रचा हुआ था कि वह किस प्रकार निरकुश शासक बनने का प्रयत्न करेगा और राज्यरक्षित ईसाई धर्म सघ को नष्ट करेगा। उसने प्रारम्भ से ही प्रबंध कर उगाहना आरम्भ किया, एक नई हाई कमीशन अर्थात् महान् अपराध की अदालत स्थापित की जिससे न्याय निर्णय उसके पक्ष में ही हो और सन् १६८८ ई० में दो डिसीजन्स आफ इण्डलजैन्स (Decisions of Indulgence) अर्थात् अनुग्रह-निर्णय जारी किये। इन निर्णयो से राजा राज्य-रक्षित धर्म सघ में हस्तक्षेप कर सकता था। इन सब बातो से पार्लियामेण्ट चिढ़ गई और उसने विलियम आफ ओरेन्ज (William

आफ राइट्स १६२८ई० और उसके बाद के अधिकार पत्रों में स्वीकृत अपने प्राचीन अधिकारों के आधार पर एक पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights) अर्थात् अधिकारों का प्रार्थना पत्र, तैयार किया जिसमें उनकी मांगों का उल्लेख था। उन मांगों में से कुछ ये थी, (१) कोई प्रबंध कर्ज-वसूली न की जाय जैसा कि एडवर्ड प्रथम के समय में घोषित हो चुका था कि राजा या उसके उत्तराधिकारी पादरियों, अर्लों (Earls), बैरनों (Barons), नाइटों (Knights), आत्म शासित नगरों के नागरिकों (Burgesses) और दूसरे स्वाधीन देशवासियों की स्वीकृति के बिना कोई भी कर राज्य में न लगाया जायगा और जिसका एडवर्ड तृतीय की पार्लियामेण्ट ने इस प्रकार स्पष्टीकरण कर दिया था "कि आज यह घोषित किया जाता है कि अब से आगे किसी भी व्यक्ति को उसकी इच्छा के विरुद्ध राजा के लिये ऋण देने पर विवश न किया जायगा क्योंकि ऐसे ऋण नागरिकता और औचित्य के विरुद्ध प्रतीत होते हैं। (२) दूसरी माग यह थी कि राजा व्यक्तियों को कारावास देने में स्वेच्छाचार न करे जिसके सम्बन्ध में मैग्नाकार्टा में घोषणा हो चुकी थी और जिसको एडवर्ड तृतीय के राज्यकाल में पार्लियामेण्ट ने फिर दुहरा दिया था। (३) जैसा मैग्नाकार्टा ने और एडवर्ड तृतीय ने घोषित किया था राज्य में मार्शल ला (Martial Law) अर्थात् सामरिक कानून न लगाया जाय। (४) चौथी माग यह थी कि सविधान व कानून के अनुसार प्रजा की स्वतन्त्रता और उनके स्वत्वों की रक्षा की जाय। पिटीशन आफ राइट्स अंग्रेजी स्वतन्त्रता रूपी भवन का दूसरा स्तम्भ है। पर उसमें कोई नई बात न थी। इससे पूर्व जो अधिकार राजाओं द्वारा मान्य हो चुके थे उनको ही संक्षिप्त रूप से एक स्थान पर इस पत्र में एकत्रित कर दिया गया था। राजा को विवश होकर यह प्रार्थना-पत्र स्वीकार करना पड़ा। उसके पश्चात् पार्लियामेण्ट ने राजा को शराब व दूसरी वस्तुओं के आयात-निर्यात् पर कर लगा कर धन इकट्ठा करने का अधिकार दे दिया। पर साथ ही साथ नौसेना रखने के लिये लगाये हुये कर को तोड़ दिया और स्टार चैम्बर व हाई कमीशन कोर्ट को भी भंग कर दिया। यह सब राजा ने स्वीकार कर लिया परन्तु भीतर ही भीतर चार्ल्स सेना को पार्लियामेण्ट के विरुद्ध भड़काने लगा और इस प्रकार बलप्रयोग से पार्लियामेण्ट पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न करने लगा। जब पार्लियामेण्ट को इसका पता लगा तो उसने ग्रांड रिमोस्ट्रेन्स (Grand Remonstrance) नामक एक प्रलेख तैयार किया जिसमें अपने स्वत्वों व अधिकारों का गौरवपूर्ण दृढ़ समर्थन किया और राजा से प्रार्थना की कि वह उनको स्वीकार करे। राजा और पार्लियामेण्ट की अनबन ने गृहयुद्ध का रूप धारण किया जिसमें चार्ल्स को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा और उसके पश्चात् प्रजातन्त्र

शासन की स्थापना हुई जिसका संगठन एक शासन विलेख (Instrument of Government) के अनुसार हुआ। इस विलेख से हाउस आफ लार्ड्स तोड़ दिया गया और राजसत्ता भी समाप्त कर दी गई। हाउस आफ कामन्स में से वे सब पक्ष निकाल दिये गये जो राजसत्ता के समर्थक थे और इंगलैण्ड का शासन एक नये राज्य प्रमुख की अध्यक्षता में होने लगा जिसका नाम प्रोटैक्टर (Protector) रखा गया।

**राजसत्ता की पुनर्स्थापना (१६०० ई०)**—इंगलैण्ड में यह प्रजातन्त्र शासन केवल ग्यारह वर्ष ही रहा। इस काल में शासन की कमियां स्पष्ट होने लगी और पालियामेण्ट ने राजसत्ता को पुनः स्थापित करने का निश्चय किया। चार्ल्स प्रथम के पुत्र चार्ल्स द्वितीय को राजसिंहान पर बैठाया। इस नये राजा ने प्रजा के स्वत्वों व अधिकारों की रक्षा करने का वचन दिया। उसके राज्य में जो सब से महत्वपूर्ण शासन-विधान सम्बन्धी लाभ हुआ वह यह था कि सन् १६७६ ई० में हेबियस कारपस (Habeas Corpus) ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट से प्रत्येक व्यक्ति की वैयक्तिक स्वतन्त्रता सुरक्षित हो गई क्योंकि इस ऐक्ट में यह आयोजन कर दिया गया था कि यदि किसी व्यक्ति पर अपराध करने का अभियोग लगाया जाय व बन्दी बना लिया जाय और वह व्यक्ति स्वयं या किसी दूसरे व्यक्ति के द्वारा किसी न्यायालय में इसके विरुद्ध प्रार्थना पत्र प्रस्तुत करावे तो वह न्यायालय शासन और उस बन्दी को न्यायालय के सामने अभियोग की सुनवाई करने के लिये उपस्थित करने की आज्ञा दे सकता है। चार्ल्स द्वितीय ने भी अपने पिता के समान स्वेच्छाचारी शासन करने का प्रयत्न किया पर पालियामेण्ट ने इस बार कोई कड़ी कार्यवाही नहीं की क्योंकि उसे प्रजातन्त्र काल के कटु अनुभव ने सतर्क बना दिया था।

**सन् १६८८ ई० की क्रांति और प्रतिफलित शासन-विधान सम्बन्धी परिवर्तन**—चार्ल्स द्वितीय के पश्चात् उसका भाई जेम्स द्वितीय राजगद्दी पर बैठा। उसके मन में आरम्भ से ही यह कुचक्र रचा हुआ था कि वह किस प्रकार निरंकुश शासक बनने का प्रयत्न करेगा और राज्यरक्षित ईसाई धर्म संघ को नष्ट करेगा। उसने प्रारम्भ से ही अवैध कर उगाहना आरम्भ किया, एक नई हाई कमीशन अर्थात् महान् अपराध की अदालत स्थापित की जिससे न्याय निर्णय उसके पक्ष में ही हो और सन् १६८८ ई० में दो डिसीजन्स आफ इण्डलजैन्स (Decisions of Indulgence) अर्थात् अनुग्रह-निर्णय जारी किये। इन निर्णयों से राजा राज्य-रक्षित धर्म संघ में हस्तक्षेप कर सकता था। इन सब बातों से पालियामेण्ट चिढ़ गई और उसने विलियम आफ ऑरेन्ज (William

of Orange) को इंगलैण्ड के राजसिंहासन पर अधिकार करने का निमन्त्रण भेजा। इससे डर कर जेम्स २३ दिसम्बर सन् १६८८ को इंगलैण्ड छोड़ कर भाग निकला। बाईस जनवरी सन् १६८६ को पार्लियामेण्ट स्वयं एकत्रित हुई और दो प्रस्ताव पास किये जो इस प्रकार थे; (१) क्योंकि राजा ने प्रजा-राजा के प्रारम्भिक ठेके को तोड़ कर राज्य के शासन विधान को विध्वंस करने का प्रयत्न किया और जेसुइट (Jesuist) और दूसरे दुष्ट व्यक्तियों की सलाह से देश के मौलिक नियमों का उल्लंघन किया और क्योंकि उसने देश से भाग कर राजपद त्याग कर दिया है जिससे राजसिंहासन रिक्त पड़ा है, (२) क्योंकि अनुभव से यह सिद्ध हो चुका है कि इस प्रोटेस्टेण्ट राज्य की सुरक्षा और क्षेम तब तक नहीं हो सकता जब तक कि इस देश का राजा पोप का समर्थक हो।"

बिल आफ राइट्स (Bill of Rights)—पार्लियामेण्ट ने उसी समय अधिकारों का घोषणा पत्र (Declaration of Rights) तैयार किया जिसमें जेम्स द्वितीय के द्वारा जो जो अवैध और स्वेच्छाचारी काम हुये थे उनको दुहराया और इगलैण्ड का राजमुकुट विलियम व उसकी रानी मेरी को सुपुर्द किया। विलियम ने अपनी ओर से तथा अपनी स्त्री की ओर से इसे धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार किया। इन युगल राजा-रानी ने पार्लियामेण्ट द्वारा २५ अक्टूबर सन् १६८६ को पास किये हुये बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) को स्वीकार किया। अंगरेजों की स्वतन्त्रता का यह तीसरा चार्टर था और इसने मैग्नाचार्टा की नींव पर खड़े हुये शासन विधान के भवन को पूरा कर दिया। इस बिल में जेम्स द्वितीय के अवैध कामों का वर्णन था, उदाहरणार्थ—कानून अवहेलना करना व उनका उल्लंघन करना, हाई कमीशन अदालत की स्थापना, अनाधिकारी कर का लगाना, स्थायी सेना एकत्रित करना और उसे शान्ति के समय में भी बिना पार्लियामेण्ट की अनुमति बनाये रखना, निर्वाचन-स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करना, अपराधी सिद्ध होने से पूर्व ही जुर्माने वसूल करना व सम्पत्ति जब्त करना, आदि आदि। इसके पश्चात् इस बिल से विलियम को राज्याधिकारी घोषित किया गया और ऐसे राजवंश के व्यक्तियों को राज्य का उत्तराधिकारी होने से वंचित कर दिया जो पोप के समर्थक हों, या जो पोप के समर्थकों से विवाह सम्बन्ध स्थापित कर लें। इस बिल में यह स्पष्ट कर दिया गया कि प्रत्येक राजा रानी को इस सम्बन्ध में घोषणा करनी होगी।

सन् १७०१ ई० में पार्लियामेण्ट ने ऐक्ट आफ सेटिलमेण्ट (Act of Settlement) पास करके यह निश्चित कर दिया कि रानी ऐने (Anne) की मृत्यु के पश्चात् यदि उसका कोई उत्तराधिकारी न हो तो इंगलैण्ड का राज-

मुकुट हैनोवर की राजकुमारी सोफिया और उसके उत्तराधिकारियों को प्रदान किया जाय। इस ऐक्ट में और भी कई महत्वपूर्ण वैधानिक व्यवस्थायें थी जिनसे अंगरेज़ी जनता के धर्म, न्याय और स्वतन्त्रता की रक्षा का आयोजन होता था। इस ऐक्ट की निम्नलिखित तीन धारायें इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

(१) जो कोई भी इंगलैण्ड के राजमुकुट को धारण करेगा वह कानून से स्थापित हुये इगलैण्ड के ईसाई धर्म संघ (Church of England) में मिल कर रहेगा।

(२) यदि इस राज्य का राजमुकुट और राज्यश्री किसी ऐसे व्यक्ति को सुशोभित करती हो जो इस देश का निवासी न हो तो यह राष्ट्र किसी ऐसे देश की रक्षा के लिये, जो इगलैण्ड की राजसत्ता के आधीन न हो, युद्ध में भाग लेने पर बिना पालियामेण्ट की सहमति से बाध्य न किया जायगा।

(३) कोई भी व्यक्ति जो भविष्य में राजमुकुट धारण करेगा वह पालियामेण्ट की सहमति के बिना इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और आइरलैण्ड की राज्य सीमा से बाहर न जा सकेगा।

इस ऐक्ट में यह आदेश था कि भविष्य में प्रत्येक राजा या रानी देश के निर्बन्धों और विधानों का आदर करेगा और जनता के स्वत्वों और स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखेगा।

**दो राजनीतिक दलों का प्रारम्भ**—इगलैण्ड के राज्य-शासन में यह महान् क्रान्ति बडी महत्वपूर्ण थी और वह इतनी शान्तिपूर्वक हुई कि उसका नाम ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) पडा। इस क्रान्ति का प्रत्यक्ष फल तो यह था कि बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) और ऐक्ट आफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) पास हुये पर इस क्रान्ति के दूरवर्ती और अप्रत्यक्ष परिणाम अधिक महत्व रखने वाले थे। गृह युद्ध (Civil War) ने पालियामेण्ट व देशवासियों को दो पृथक दलो में बाट दिया था। एक दल तो चार्ल्स प्रथम का सहायक था और दूसरा पालियामेण्ट का समर्थक होने से स्टूअर्ट निरकुशता का विरोधी था। क्रौमवैल के पश्चात् जब राजा को फिर पदासीन किया गया तो कुछ समय के लिये इन दलो का विरोध कुछ ठण्डा पड गया था लेकिन ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) से फिर पुरानी आग भभक उठी। वे लोग जो जेम्स द्वितीय और उसके पुत्र के अनुयायी थे वे रूढ़िवादी (Tories)

कहलाते थे। जो लोग ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) के पक्ष में थे और हैनोवर के राजघराने के अनुयायी थे वे उदार (Whig) नाम से प्रसिद्ध थे। रूढ़िवादी दल ने विलियम तृतीय को मारने और उसके स्थान पर जेम्स द्वितीय को सिंहासनासीन करने का असफल प्रयत्न किया। विलियम तृतीय की पार्लियामेण्ट में आरम्भ से उदार दल का मताधिक्य था पर उसने मिली जुली मन्त्रिपरिषद् बनाने का ही निश्चय किया। सन् १६९७–९८ में उसकी तीसरी पार्लियामेण्ट में भी उदार पक्ष वालों (Whigs) का मताधिक्य था और उसने केवल उदार पक्ष ही का मन्त्रिमण्डल बनाया। इस प्रकार इंगलैण्ड में इस प्रथा का श्रीगणेश हुआ कि ऐसे मन्त्रिमण्डल की स्थापना हो जिसके समर्थक पार्लियामेण्ट में बहुमत रखते हों।

**रूढ़िवादी एवं उदार पक्ष की नीति**—उदार दल वालों का कहना था कि राजा प्रजा का सेवक है और उसे इसलिये पार्लियामेण्ट की इच्छा के अनुसार शासन करना चाहिये। इसके विपरीत रूढ़िवादी दल वाले राजा के दैवी अधिकार में विश्वास रखते थे। ये लोग अधिकतर लार्डस, बड़े जमींदार या ईसाई संघ के पादरी होते थे। राजनीतिक प्रश्नों के अतिरिक्त इन दोनों पक्षों में दूसरे विषयों में भी विचार-विभिन्नता थी। वे धर्म सम्बन्धी व सामाजिक प्रश्नों पर भी एक विचार न रखते थे। उदार पक्ष वाले पूजा-पाठ की स्वतन्त्रता के समर्थक थे, वे कहते थे कि तत्कालीन भूमि से सम्बद्ध श्रम-जीवियों (Serfs) को स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये और जमींदारों के आसामियों को भी जमींदारों के आधिपत्य से अलग करना चाहिये। इसके विपरीत रूढ़िवादी लोग अंग्रेजी ईसाई धर्म संगठन के समर्थक थे और जमींदारों व पादरियों के अधिकारों को सुरक्षित रखना चाहते थे।

राज्यनीति विचारक अंगरेजों का इन दो पक्षों में विभाजन इतना पूर्ण व व्यापक हुआ और उनमें इतना गहरा विरोध उत्पन्न हो गया कि वॉलटेयर (Voltaire) को ये शब्द लिखने पड़े—"उदार और रूढ़िवादियों की पुस्तकें पढ़ने में बड़ा आनन्द मिलता है, यदि उदार पक्ष वालों की बात सुने तो वे कहते हैं कि रूढ़िवादियों ने इंगलैण्ड के साथ विश्वासघात किया है, यदि रूढ़िवादियों की सुने तो उनका कहना है कि प्रत्येक उदार ने स्वार्थ के लिये राज्य का बलिदान कर दिया है। यदि इन दोनों की बात पर विश्वास किया जाय तो सारे देश में आगे चल कर अपने अपने सिद्धान्तों के अनुसार शासन के ढांचे को ढालने के लिये संघर्ष हुआ उसी से इंगलैण्ड के शासन विधान का इतिहास रंगा पड़ा है।

रानी अन्ने (Queen Anne) के शासन-काल में पार्लियामेण्ट में कभी उदार पक्ष वालों की व कभी रूढ़िवादियों की संख्या अधिक होती रही। रानी ने कभी मिली जुली मन्त्रिपरिषद् नियुक्त की, कभी केवल एक ही पक्ष के लोगों की, पर सन् १७०८ ई० के बाद सब मन्त्रिमण्डल में एक ही पक्ष के मन्त्री होने लगे।

**हैनोवर राज्य परिवार के शासन काल में राजनीतिक पक्षों की सरकारें**—जब सन् १७१४ ई० में ऐक्ट ग्राफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) के अनुसार जार्ज प्रथम जो हैनोवर राज्य परिवार का पहला इंगलैण्ड का राजा था, राजसिंहासन पर बैठा तो उस समय से मन्त्रिमंडल की शक्ति बढ़ने लगी। जार्ज प्रथम अंग्रेज़ी भाषा न जानता था इसलिये उसे सारा राज-कार्य प्रधान मन्त्री पर छोड़ने को विवश होना पड़ा। प्रधान मन्त्री ही मन्त्रि मण्डल की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था, क्योंकि राजा भाषा की जानकारी न होने से ऐसा करने म असमर्थ था। प्रधान मन्त्री ही इसलिये शासन-नीति की रूप रेखा निश्चित करने लगा। इस प्रकार अनायास ही शासन-सत्ता राजा के हाथ से निकल कर मन्त्रियो के हाथ में आ गई। जार्ज प्रथम के प्रथम मन्त्रिमण्डल में टाउन्सेण्ड (Townsend) के नेतृत्व में उदार मन्त्री थे। उस समय तक सन् १६९४ ई० के ट्रैनियल ऐक्ट (Triennial Act) के अन्तर्गत पार्लियामेण्ट के सदस्यों का निर्वाचन हर तीसरे वर्ष होता था। पर सन् १७१७ ई० में सैप्टीनियल ऐक्ट (Sertennial Act) पास हुआ जिसने हैनोवर परिवार को प्रोटेस्टेण्ट धर्मावलम्बियों का राज्याधिकार पक्का करने के साथ साथ पार्लियामेण्ट की अवधि सात वर्ष तक बढा दी। इस अवधि के बढ जाने से पार्लियामेण्ट राजा के नियन्त्रण से बाहर हो गई। सन् १७२१ ई० में लार्ड वालपोल (Walpole) ने अपना मन्त्रिमण्डल बनाया और स्वयं प्रधान मन्त्री बन कर अर्थ विभाग का काम अपने हाथ में लिया। वही इंगलैण्ड का प्रथम प्रधान मन्त्री था जिसने शासन नीति का सूत्र अपने हाथ से सभाला, मन्त्रि परिषद् की शासन नीति का निरीक्षण करने का काम करना आरम्भ किया, हाउस आफ कामन्स का नेतृत्व किया और आवश्यकता पड़ने पर उसके असम्मतिसूचक आदेश के सामने सिर झुकाया। जब सन् १७४२ ई० में हाउस आफ कामन्स में उसकी हार हुई तो उसने पद त्याग करदिया और पार्लियामेण्ट के प्रति मन्त्रि-परिषद् के उत्तरदायित्व का पहला उदाहरण उपस्थित किया। वालपोल प्रधान मन्त्री (Prime

Minister) की शक्ति बढ़ाने में बहुत सफल सिद्ध हुआ क्योंकि जार्ज प्रथम और द्वितीय दोनों अंग्रेजी भाषा और रीति रिवाजों से परिचित न थे।

**मन्त्रिमण्डल प्रणाली (Cabinet System) का जन्म**--वालपोल मन्त्रिमण्डल के प्रमुख सदस्यों ने एक छोटी परिषद् बनाई जिसका नाम कैबिनट (Cabinet) पड़ा। यह परिषद् प्रिवी कौंसिल से छोटी थी। इस कैबिनेट प्रणाली के जन्म का श्रेय पार्लियामेण्ट और राजा के बीच होने वाले उस संघर्ष को है जो चार्ल्स प्रथम के समय से भिन्न भिन्न रूपों में बराबर होता आ रहा था। पर केवल हैनोवर के दो राजाओं, जार्ज प्रथम और द्वितीय के समय में ही कैबिनेट को शासन प्रबन्ध में अपना सिक्का जमाने का अवसर मिला और तभी से राजा इसकी कार्यवाही के सभापतित्व के भार से मुक्त कर दिया गया। जब जार्ज तृतीय राजसिंहासन पर बैठा तो यह कैबिनट के कार्य में हस्तक्षेप करने लगा क्योंकि उसका पालन पोषण इंगलैण्ड में हुआ था और वह यहाँ के रीति-रिवाजों व राजनीतिक दलों की नीति से अच्छी तरह परिचित था। तीस वर्ष के समय बीतने के बाद यह हस्तक्षेप मन्त्रिमण्डल को बुरा लगने लगा। राजा और उदार पक्ष वालों (Whigs) में तनातनी बढ़ने लगी। कुछ समय के लिये इस तना-तनी में राजा की जीत हुई और उसने सन् १७७० ई० में रूढ़िवादी पक्ष के नेता लार्ड नार्थ को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। परन्तु इसी काल में अमरीकन स्वतन्त्रता का युद्ध हुआ और अमरीका स्थित तेरह उपनिवेश इंगलैण्ड के आधिपत्य से बाहर निकल गये और स्वतन्त्र हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि रूढ़िवादियों की लोकप्रियता समाप्त हो गई और उदार पक्ष फिर शक्तिशाली होने लगा। जार्ज तृतीय ने पुनः शासन शक्ति को हथियाने का प्रयत्न किया पर वह सफल न हुआ क्योंकि पिट (Pitt) ने हाउस आफ कामन्स के बहुमत की सहायता से एक मिला जुला मन्त्रिमण्डल बना डाला जिसने जार्ज तृतीय के हाथ में शासन शक्ति न जाने दी। पिट के पौरुष और दूरदर्शिता ने कैबिनेट की शक्ति को नष्ट होने से बचा लिया। जब राजा और कैबिनेट के बीच यह संघर्ष चल रहा था उस बीच के समय में हाउस आफ कामन्स ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और निर्वाचिता पर तथा अपनी कार्यपद्धति के निश्चय करने पर निजी स्वत्व प्राप्त कर लिया।

जार्ज तृतीय के शासन काल में ही, सन् १७६० ई० में एक ऐक्ट पास हुआ जिससे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पूर्णतया स्थापित हो गई। इस ऐक्ट में यह स्वीकार कर लिया गया कि सम्राट् की व उसके उत्तराधिकारियों की

मृत्यु हो जाने पर भी न्यायाधीश अपने पदो पर पूरी तरह सुरक्षित रहेंगे यदि उनका व्यवहार दोषरहित रहता है ।

**उन्नीसवीं शताब्दी के वैधानिक सुधार**—उन्नीसवी शताब्दी में ऐसे बहुत से वैधानिक परिवर्तन हुये जिनसे एक वास्तविक प्रजातन्त्र राज्य के स्थापित होने में बडी सहायता मिली । इन परिवर्तनो ने केन्द्रीय और स्थानीय शासन व विधान कार्य में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तो को प्रचलित किया । इन परिवर्तनो के मूल में कई कारण थे । पहला तो यह था कि फ्रास की राज्य-क्रान्ति ने साधारण यूरोपीय जनता के मस्तिष्को में बडी उथल-पुथल कर दी । वे अब राजा और कुलीनो को बिलकुल दूसरी दृष्टि से देखने लगे और देश की सरकार व साधारण जनता के अधिकारो से सम्बन्धित एक नई विचार धारा में बहने लगे थे । स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव के सिद्धान्तो का प्रचार सारे यूरोप में फैल चुका था, और यद्यपि सन् १८१५ ई० की वियना की काग्रेस ने राजाओ को फिर पदासीन कर व नैपोलियन की बनाई हुई व्यवस्था को तोड फोड कर फ्रास की क्रान्ति के किये हुये पर पानी फेरने का प्रयत्न किया परन्तु सन् १८४८ ई० का उदार-आन्दोलन (Liberal Movement) इन्ही सिद्धान्तो का प्रत्यक्ष परिमाण था । इगलैण्ड में यद्यपि राजनीतिज्ञो ने इन सिद्धान्तो के प्रचार को रोकने का प्रयत्न किया पर वे भी समझ गये कि क्रान्ति की लहर दब जाने के बाद शासन-पद्धति में सुधार करना ही होगा । दूसरे अठारहवी और उन्नीसवी शताब्दी के औद्योगिक विकास ने समाज का रूप ही बदल दिया था । इस समय भी पालिया-मेण्ट में कुलीन व्यक्ति या उनके प्रतिनिधि ही सदस्य होते थे । मतदान का अधिकार बहुत थोडे लोगो को प्राप्त था और पुराने नगरो के निवासी ही मत देने के अधिकारी होते थे । औद्योगिक उन्नति के परिणामस्वरूप नये बडे बडे औद्योगिक नगर बस गये थे जिनमें पुराने शहरो से या गावो से लोग आकर रहने लग गये थे । इन नये नगरो के प्रतिनिधि पालियामेण्ट में न होते थे, दूसरी ओर उन स्वशासित नगरो (Boroughs) को बहुत से प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था जिनकी जनसख्या नये नगरो में लोगो के चले जाने से बहुत घट गई थी । कही कही तो बैरनो (Barons) के मनोनीत व्यक्ति ही प्रतिनिधि नियुक्त हो जाते थे । किन्ही नगरो में कोई मतधारक (Voter) न होता था पर फिर भी उसके प्रतिनिधि पुराने कानून के आधार पर पालियामेण्ट में बैठते थे । इसका परिणाम यह हुआ कि ये पौकिट (Pocket) और रोटेन (Rotten) नगर बडे प्रभावशाली बने हुये थे पर बडे बडे नगर जैसे बर्मिन्घम आदि बिना प्रतिनिधित्व के ही रह जाते थे । यह स्थिति अधिक समय तक न रह सकती थी क्योंकि

इससे नये समृद्धिशाली नगरों में असन्तोष बढ़ रहा था। तीसरे, उन्नीसवीं शताब्दी के दार्शनिकों व राजनीतिज्ञों ने जनता के सामने नये विचार प्रस्तुत कर दिये थे जिससे ये लोग अपने सामाजिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो गये थे।

**सन् १८३२ के सुधार**—अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भी कुछ राजनीतिज्ञों ने शासन पद्धति में सुधार करने का प्रयत्न किया पर वे सफल न हुये। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी में पुरानी पद्धति काम न दे सकती थी। इसलिये १२ दिसम्बर सन् १८३१ को लार्ड जॉन रसेल (Lord John Russell) ने तीसरा सुधार विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया, (सन् १८३१ ई० में दो विधेयक पास न हो पाये थे) यह विधेयक हाउस आफ कामन्स में तीसरी बार २१ सितम्बर सन् १८३२ को पढ़ा गया। लार्ड्स ने भी इसका विरोध करना उचित न समझा और जब राजा ने यह धमकी दी कि वह हाउस आफ लार्ड्स में नये व्हिग पीयरों (Whig Peers) को बना कर विधेयक के समर्थकों की संख्या बढ़ा देगा तो इन लोगों ने उस विधेयक को पास कर दिया। इस अधिनियम (Act) से तीन प्रमुख परिवर्तन हुये। पहला यह कि ५६ पौकेट और रोटेन बरो जिनमें अलग अलग २००० से कम व्यक्ति निवास करते थे उनके प्रतिनिधित्व को समाप्त कर दिया। इन के १११ प्रतिनिधि हुआ करते थे। ये सब इस अधिनियम के द्वारा तोड़ दिये गये। दूसरे ३० बरो का एक एक प्रतिनिधि तोड़ दिया गया। एक के दो प्रतिनिधि तोड़ दिये गये। इस प्रकार जो १४३ स्थान रिक्त हुये उनको उन काउन्टियों और बरो में बांट दिया गया जिनका कोई प्रतिनिधि पार्लियामेण्ट में न होता था या जिनका प्रतिनिधित्व जनसंख्या के आधार पर अपर्याप्त था। दूसरा यह है कि मताधिकार विस्तृत कर दिया गया। वे सब लोग जो १० पौण्ड प्रतिवर्ष किराया देते थे या जो ५० पौंड प्रतिवर्ष के देने वाले पट्टेदार या आसामी थे उन सबको मताधिकार दे दिया गया। तीसरा यह कि भ्रष्टाचार और बेईमानी को रोकने के लिये निर्वाचन के नियम बना दिये गये। इस प्रकार सन् १८३२ ई० के पश्चात् हाउस आफ कामन्स में पहले से अधिक जनता का प्रतिनिधित्व होने लगा।

**सामाजिक सुधारों की मांग**—परन्तु १८३२ के सुधारों से उन लोगों को सन्तोष न हुआ जो श्रमजीवियों और साधारण जनता के अधिकारों की रक्षा करना चाहते थे। सर रोबर्ट ओवेन (Sir Robert Owen) का चलाया हुआ एक आन्दोलन पहले से ही हो रहा था जिसमें कारखाने में काम करने वाले व दूसरे श्रमजीवियों की दशा सुधारने की माग हो रही थी। यह एक अनोखी बात थी कि यह आन्दोलन एक ऐसे व्यक्ति ने आरम्भ किया जो स्वयं स्कॉटलैण्ड

में एक कपड़े के कारखाने का स्वामी था। सर रोबर्ट ओवन ने इस पर जोर दिया कि राज्य श्रमजीवियों के प्रति अपना कर्तव्य पालन करे। उसने स्वयं ही इस ओर कदम उठाया और अपने कारखाने में से १० साल से नीची उम्र वाले काम करते हुये बच्चों को हटा दिया, वयस्कों के लिये काम करने का समय कम करके निश्चित कर दिया, मजदूरों के लिये स्वास्थ्यवर्द्धक घर और प्रमोदोद्यान बनवाये और उनकी प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये सहकारी समितियां बनवाई। उसने दो पुस्तकें लिखी और प्रकाशित की, एक "न्यू व्यू आफ सोसायटी" (A New View of Society) सन् १८१३ ई० में और दूसरी "एक बुक आफ दी न्यू मोरल वर्ल्ड" (A Book of the New Moral World) सन् १८३६–४४ ई० में, इन पुस्तकों में सामाजिक सुधार के सिद्धान्तों का विवेचन किया। सन् १८३६ ई० में "लन्दन वर्कमेन्स एसोसियेशन" (London Workmen's Association) की स्थापना हुई जिसका कार्यक्रम उसके द्वारा निकाले हुये "पीपल्स चार्टर" (People's Charter) में दिया हुआ था।

**चार्टिस्ट आन्दोलन (The Chartist Movement)**—उपर्युक्त चार्टर का उद्देश्य साधारण जनता के हितों का साधन करना था, इसीलिये उसका नाम पीपिल्स चार्टर अर्थात् जनसाधारण का अधिकार-पत्र पड़ा। इस अधिकार-पत्र को प्रकाशन करने वाली सभा ने सारे देश के श्रमिकों से इन शब्दों में अपने उद्देश्यो का स्पष्टीकरण किया—"यदि हम राजनीतिक अधिकारों की समानता के लिये लड़ रहे हैं तो इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम किसी अन्यायपूर्ण कर को हटाना चाहते हैं या सम्पत्ति, शक्ति व प्रभाव को किसी दल के हाथ में दूसरों से छीन कर रखना चाहते हैं। हम यह सब इसलिये करते हैं जिससे हम अपने सामाजिक कष्टों के स्रोत को सुखाने में सफल हों और धीरे धीरे निवारण करते हुये हम अन्यायपूर्ण कानूनों के दण्ड से बच जायं।" इस अधिकार-पत्र के अनुगामी अपने को "चार्टिस्ट" कह कर पुकारते थे और उनका आन्दोलन "चार्टिस्ट आन्दोलन" के नाम से प्रसिद्ध है। इस चार्टर की मुख्य मांगें ये थीं:—सब वयस्को को मताधिकार मिलना चाहिये, पार्लियामेण्ट के सदस्यों का निर्वाचन प्रति वर्ष हो, निर्वाचन क्षेत्र समान माप के हों, गुप्त रीति से मतदान हो (जिससे मत देते समय धनी लोग छोटे लोगों पर अनुचित दबाव न डाल सकें), पार्लियामेण्ट की सदस्यता के लिये कोई सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता न हो और पार्लियामेण्ट के सदस्यों को वेतन मिले, जिससे निर्धन लोग भी निर्वाचन के लिये खड़े हो सकें और देश के शासन प्रबन्ध में अच्छी तरह हाथ बटा सकें।

लिबरल (उदार पक्ष) और कन्ज़र्वेटिव (रूढ़िवादी पक्ष) दोनों पक्षों ने मिल कर इस आन्दोलन का विरोध किया और फलतः यह कुछ ही दिनों में ठण्डा पड़ गया।

सन् १८६७ ई० का द्वितीय सुधार-ऐक्ट—यद्यपि चार्टिस्ट आन्दोलन का तुरन्त ही कोई प्रभाव न दिखाई पड़ा पर इसमें जिन सुधारों की माग की गई थी बहुत समय तक रोके न जा सके। सन् १८३२ के अधिनियम (ऐक्ट) से तत्कालीन समस्याओं का समाधान न हो सका। परिस्थिति उस समय बहुत बदल चुकी थी, उद्योग की बराबर उन्नति हो रही थी और उपयोगितावाद (Utilitarianism) की धूम थी जिसका सिद्धान्त यह था कि अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक सुख ही समाज का उद्देश्य है। इन सब के परिणामस्वरूप सन् १८६७ में द्वितीय सुधार-ऐक्ट पास हुआ। इससे पार्लियामेण्ट ने मताधिकार को और विस्तृत कर दिया। नगर में मताधिकार (Borough franchise) उन सब लोगों को दे दिया गया जो मकान बना कर एक वर्ष तक नगर में रहे हों और दरिद्र पोषणार्थ जो कर लगाया जाता था उसे चुकाया हो। वे लोग जो किरायेदार की तरह रहते थे उनको भी मताधिकार दिया गया यदि वे १० पौंड मकान का किराया देते थे। ग्यारह नगरों को मताधिकार से वंचित कर दिया गया और ३५ नगरों में प्रत्येक का प्रतिनिधित्व दो से घटा कर एक कर दिया गया। इस प्रकार जो स्थान खाली हुये वे बड़े नगरों को दे दिये गये। इस ऐक्ट से अल्पसंख्यकों को भी कुछ प्रतिनिधित्व मिल गया।

सन् १८८४ का सुधार-ऐक्ट—दूसरे सुधार ऐक्ट के चार वर्ष बाद सन् १८७२ ई० में फिर और सुधारों के लिये आन्दोलन उठा। उदार पक्ष के लोग जो अब लिबरल कहलाने लगे थे मताधिकार को और बढ़ाने की माग करने लगे। वे कहते थे कि निर्वाचन क्षेत्र बराबर माप के हों और पार्लियामेण्ट के सदस्यों को वेतन दिया जाय। ग्लैडस्टोन (Gladstone) उस समय प्रधान मन्त्री था। उसने सुधार करने की माग स्वीकार कर ली और ६ दिसम्बर सन् १८८४ ई० को तृतीय सुधार एक्ट पास हो गया। इस ऐक्ट का सरकारी नाम "रिप्रजेन्टेशन आफ पीपल्स ऐक्ट, १८८४" था। इस ऐक्ट से काउण्टी (जिला) में भी वही मताधिकार दे दिया गया जो सन् १८६७ ई० के ऐक्ट से नगरों के लिये दिया गया था। इस ऐक्ट से गाँव के श्रमजीवियों को भी मताधिकार मिल गया। इस ऐक्ट के पास होने से बीस लाख व्यक्तियों को मताधिकार मिला।

रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स ऐक्ट १८८५ (Redistribution of Seats Act 1885)—जब मतधारकों की संख्या बढ़ गई तो यह आवश्यक समझा गया कि निर्वाचन-क्षेत्रों को फिर से बनाया जाय। इसके लिये सन् १८८५ का रीडिस्ट्रीब्यूशन आफ सीट्स एक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट से पहले जो एक निर्वाचन क्षेत्र से दो प्रतिनिधि निर्वाचित होने की प्रथा थी वह तोड़ दी गयी और नये एक-प्रतिनिधि-निर्वाचन क्षेत्र बनाये गये। परन्तु २२ नगर और आक्सफोर्ड व कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालय प्रत्येक दो प्रतिनिधि चुन सकते थे। इनको छोड़ कर दूसरे जो बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्र थे उनको काट छांट कर एक-प्रतिनिधि-निर्वाचन क्षेत्रों में बदल दिता गया। यद्यपि सन् १८३६ का चार्टिस्ट आन्दोलन दवा दिया गया था पर उसकी बहुत सी मांगें सन् १८८५ ई० तक पूरी कर दी गईं।

स्थानीय-शासन में सुधार—स्थानीय शासन में भी उन्नीसवीं शताब्दी में कई सुधार हुये। उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक स्थानीय शासन कुलीनों के हाथ में था। लार्ड लैफ्टिनैण्ट (Lord Lieutenant) की सलाह से राजा कुलीन घराने के व्यक्तियों को जिलों में शान्ति और न्याय स्थापित करने के लिये नियुक्त करता था। सन् १८३५ ई० में एक म्यूनिसिपल कौरपोरेशन ऐक्ट (Municipal Corporation Act) पास हुआ जिससे इन कुलीन सत्ताओं को हटा कर उनके स्थान पर मेयर (Mayor), एल्डरमैन (Aldermen) और कौंसिलर्स (Councillors) को सारे अधिकार सौप दिये। सन् १८८८ में लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट (Local Government Act) पास हुआ। इस ऐक्ट से जिलों में पुरानी स्थानीय शासन-पद्धति तोड़ दी गई और उसके स्थान पर लोक निर्वाचित जिला संस्थायें बना दी गईं। इस ऐक्ट का प्रमुख उद्देश्य यही था कि जो नगर-शासन-पद्धति आत्म-शासित नगरों (Boroughs) में ही पहले प्रचलित थी वही पद्धति जिलों में भी प्रचलित कर दी जाय। प्रत्येक जिले की संस्था एक कौरपोरेशन बना दी गई। सन् १८९४ ई० के लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट (Local Government Act) ने प्रत्येक एडमिनिस्ट्रेटिव काउण्टी (Administrative County) को नागरिक और ग्राम्य छोटे जिलों में बांट दिया। इन ऐक्टों से जो स्थानीय शासन का रूप निश्चित हुआ वह बिना अधिक हेर फेर के अभी तक चला आ रहा है।

बीसवीं शताब्दी के सुधार—सन् १९१० ई० में हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्ड्स में जो मतभेद हुआ उससे व प्रथम महायुद्ध (१९१४–१८) के फलस्वरूप प्रजातन्त्र की बढ़ती हुई लहर से जो वैधानिक सुधार हुये उनका विस्तृत विवरण आगे जहां व्यवस्थापिका सभाओं और स्थानीय शासन के सम्बन्ध में लिखा गया है, किया जायगा।

न्याय-पद्धति का सुधार—पूर्व अध्याय में यह बतलाया जा चुका है कि हेनरी प्रथम के समय से इगलैण्ड में न्याय पद्धति का किस प्रकार विकास हुआ। पर यह स्पष्ट है कि इस विकास में कोई क्रम न था। फलत विभिन्न प्रकार के मुकदमों के लिये पृथक् पृथक् न्यायालय स्थापित कर दिये गये थे। सन १८७३ ई० में पार्लियामेण्ट ने सुप्रीम कोर्ट आफ ज्युडीकेचर (Supreme Court of Judicature) ऐक्ट पास किया जिससे न्यायपालिका का पुनर्संगठन हुआ। सब से ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय बनाया गया। क्वीन्स बेंच (Queen's Bench) का न्यायालय, कौमन प्लीज (Common Pleas), एक्सचेकर (Exchequer), चासरी (Chancerry), एडमिरल्टी (Admiralty) और प्रोबेट व डाइवोर्स (Probate and Divorce) के न्यायालय जो तब तक स्वतन्त्र थे अब सर्वोच्च न्यायालय के अग बना दिये गये और एक नया पुनर्विचार करने वाला न्यायालय भी बना दिया गया। कानून सम्बन्धी व साधारण न्याय (Equity) वाले दोनो तरह के मुकदमे एक ही न्यायालय में सुने जाने लगे।

## पाठ्य पुस्तकें

लगभग इङ्लैण्ड के इतिहास की प्रत्येक पुस्तक अगरेजी शासन विधान के विकास का वर्णन करती है और उसमें सम्राट्, मन्त्रिमण्डल, विधान मडल स्थानीय शासन और न्यायपालिका आदि का उल्लेख रहता ही है। फिर भी निम्नलिखित पुस्तकों का अध्ययन लाभदायक सिद्ध होगा।

Adams, G. B —Constitutional History of England (1934 Edition)

Bagehot, W.—Evolution of Parliament.

Cross, A L —Short History of England and Greater Britain.

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1939 Edition).

Maitland, F. W.—Constitutional History of England.

Montague, F. C.—Elements of English Constitutional History.

Pollard, A. F.—The Evolution of Parliament.

Puntambekar, S. V.—English Constitutional History (2 vols., 1935).

Smith G. B.—History of English Parliament (2 vols., 1892 ).

Taswell-Langmead, T. P.—English Constitutional History (9th ed).

Taylor, H. —Origin and Growth of English Constitution (2 vols., 1898).

Usher, R. G.—Institutional History of the House of Commons, 1547-1641 (1924).

White A. B.—The Making of the English Constitution (1925).

# अध्याय ५

## अङ्गरेजी शासन-विधान के विशेष लक्षण

'वैधानिक सिद्धान्त और उसके भिन्न भिन्न आकार केवल अध्ययन की क्रीड़ा भूमि नहीं हैं। ये एक ऐसे साधन हैं जो किन्ही निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये काम में लाये जाते हैं और उस अभिप्राय की सिद्धि के अनुकूल ही उनका रूप निर्धारित किया जाता है। जिस उदार भावना की अभिव्यक्ति मत से प्रथम लॉक ने की, उसकी ही रास्यात्मक अभिव्यंजना इंगलैण्ड के ढाई सौ वर्ष पुराने राज्य के रूप हुई।' (एच० जे० लास्की)

'हमारे शासन विधान का सार विधि (Law) है जिसका आदर किया जाता है और जो लागू किया जाता है। हमारे देश के विधि-निर्णय और न्यायालय व पार्लियामेण्ट का सर्वोच्च न्यायालय इन सब के विकास का श्रेय मध्ययुगीन अगरेजी राजाओ और उनके भृत्यो को है।' (जी० एम० ट्रैविलियन)

पिछले अध्याय में जो अगरेजी शासन विधान का सक्षिप्त इतिहास वर्णन क्या गया है उससे यह भली भाति प्रकट है कि अगरेजी शासन विधान की मुख विशेषता यह है कि उसका क्रमिक विकास हुआ है। इगलैण्ड के इतिहास किसी समय भी यह दिखाई नही पडता कि वहा के निवासियो ने कोई बडा रिवर्तन सहसा ही कर डाला हो और राजनैतिक पद्धति और सस्थाओ को बिल्कुल ये सिरे से प्रारम्भ किया या सगठित किया हो। क्रौमवैल के समय में जो थोडे मय के लिये गृहयुद्ध के फलस्वरूप कौमनवैल्थ की नवीनता रही वह उपर्युक्त नयम का केवल अपवाद ही कहा जा सकता है। कई शताब्दियो के इस लम्बे मिक विकास में प्रत्येक परिस्थिति अपना निजी प्रभाव राजकीय सस्थाओ र छोड गई। इसलिये अगरेजी शासन विधान का चित्र उस भवन के चित्र भिन्न दिखाई पडेगा जिसको पूर्व कल्पित अभिप्राय से विचारपूर्वक किसी क शिल्पी ढग पर बनाया गया हो। यह तो उस पुरानी गढी के समान है जिसमें त्येक आने वाली पीढी ने अपनी अपनी आवश्यकता के अनुसार कोई भीत या र्ज जोड दिया हो और इस बात का ध्यान न रखा हो कि ऐसा करने से भवन

की सुडौलता बनती या बिगडती है । इस लिये राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी की अंगरेजी विधान को एक स्थान पर पाने की अभिलाषा पूरी न हो तो आश्चर्य की कोई बात नही ।

**अंगरेजी शासन-विधान एक लेख्य नहीं**—आजकल प्राय सभी राष्ट्रो में कोई एक लेख्य होता है जिसमे उस राष्ट्र के शासन-सम्बन्धी मुख्य मुख्य सिद्धांत लिखे रहते हैं । उदाहरणार्थ, सयुक्त राष्ट्र का शासन विधान उस एक लेख्य में पाया जाता है जो फिलाडेलफिया के अभिसमय (Convention) में तैयार हुआ और जिसको उपराज्यो ने स्वीकार कर लिया था । इस लेख्य में थोड़े से सशोधन जो बाद में हुये, जोडने से शासन विधान का पूरा चित्र हमारे सामने आ जाता है । सन् १८७५ ई० के तीन आर्गेनिक विधियो (Organic Laws) में फ्रान्स के शासन विधान की रूपरेखा देखने को मिल सकती है पर अगरेजी शासन विधान किसी एक लेख्य या पार्लियामेण्ट से बनाये हुये कानून से नही जाना जा सकता, इसका परिचय पाने के लिय हमको उन सब सिद्धांतो की जानकारी करनी पडेगी जो सन् १२१५ ई० के मैग्ना कार्टा (Magna Carta) से लेकर सन् १९३६ ई० के राज्य त्याग ऐक्ट तक पार्लियामेण्ट ने बनाये हैं । परन्तु यदि विधान के बडे बडे सिद्धान्तो वाले प्रमुख कानूनो की ही गिनती की जाय तो वे ये है —

**मैग्ना कार्टा (Magna Carta 1215)**—इसने राजा के अधिकार कम कर दिये गये क्याकि इसके द्वारा बैरनो और पादरियो के कुछ अधिकार सुरक्षित हो गये कर लगाने पर सम्मति प्रकट करने के लिये एक राष्ट्रीय परिषद् (National Council)) का बुलाया जाना आवश्यक कर दिया और इससे २५ बैरनो की एक परिषद् बना दी गई जिसका काम यह था कि वह यह देखभाल करे कि इस चार्टर (Magna Carta) की शर्तों को नियात्मक रूप दिया जाय ।

**पिटीशन आफ राइट्स (Petition of Rights 1628)**—इसके द्वारा मैग्ना कार्टा से प्रदत्त अधिकारो की पुन घोषणा की गई । पार्लियामेण्ट की सम्मति के बिना स्वेच्छा से राजा जो कर लेता था, उस अधिकार को समाप्त कर दिया और बिना परीक्षा व विचार किए और कारण समझाये किसी व्यक्ति को वन्दी बनाने के राजा के अधिकार को अस्वीकृत कर दिया ।

हेबियस कौर्पस ऐक्ट (Habeas Corpus Act: 1679)—इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा हुई। यद्यपि वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत प्राचीन समय से मान्य था पर उसकी प्राप्ति के उपाय दोषपूर्ण व अपर्याप्त थे। इस ऐक्ट ने उन सब असुविधाओं व दोषों को दूर कर दिया और लोगों को एक ऐसे महत्वपूर्ण अधिकार का लाभ कराया जो दूसरे देशों में स्वयं शासन-विधान में उल्लिखित रहता है।

बिल आफ रायट्स (Bill of Rights: 1689)—यह ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) का परिणाम था। मैकाले के कथनानुसार इस क्रान्ति ने अन्तिम बार इस प्रश्न का निबटारा कर दिया कि लोकतत्व जो अंगरेजी राजकीय जीवन में फिट्ज़वाल्टर और डि मौन्टफोर्ट के समय में उत्पन्न हुआ, राजतत्व से दब जायगा या उसको धीरे धीरे बढ़ने की स्वतन्त्रता मिलेगी जिससे वह प्रबल हो कर सब पर अपना प्रभुत्व करने के योग्य हो जाय। मैकाले ने आगे चल कर कहा कि यद्यपि बिल आफ राइट्स ने कोई ऐसा कानून नहीं बनाया जो पहले न था पर उसमें उन सब अच्छे कानूनों का अंकुर था जो पिछली डेढ़ शताब्दी में पास हो चुके थे, या जो अच्छे कानून भविष्य में समाज की उन्नति व कल्याण के लिये आवश्यक समझे जायँ और जिनसे जनमत संतुष्ट होता हो।

दी ऐक्ट आफ सटिलमेंट (The Act of Settlement, 1701)—यह वास्तव में राजा और प्रजा के बीच एक प्रकार का प्रारम्भिक ठेका था क्योंकि इसने राजा के दैवी अधिकार को अमान्य ठहरा दिया और पार्लियामेण्ट के इस अधिकार को मान्य कर दिया कि वह राज्यसिंहासन पर बैठाने के लिये उत्तराधिकारी का निर्णय करे।

दी ऐक्ट आफ यूनियन (The Act of Union 1707)—इस ऐक्ट से इंगलैंड और स्कौटलैण्ड को मिला कर यूनाइटेड किंगडम आफ ग्रेट ब्रिटेन (United Kingdom of Great Britain) की स्थापना की गई।

दी ऐक्ट आफ यूनियन विद् आयर्लैंड (The Act of Union with Ireland, 1800)—इस ऐक्ट से आयरलैंड को इंगलैण्ड से नियमित रूप से संयुक्त कर दिया गया जिससे पार्लियामेण्ट के संगठन में कुछ परिवर्तन हुआ।

दी रिफार्म्स ऐक्टस (The Reforms Acts of 1832, 1867, 1884 and 1885)—इनसे मताधिकार विस्तृत हुआ जिससे हाउस आफ कामन्स वास्तव में लोक प्रतिनिधि सभा बनी।

रिप्रेजैन्टेशन आफ दी पीपल ऐक्टस (Representation of the People Acts of 1918 and 1928)—इनसे हाउस आफ कामन्स के लिये वयस्क मताधिकार दे दिया गया।

लोकल गवर्नमेंट ऐक्टस (Local Government Acts of 1888, 1894 and 1929)—इनसे स्थानीय स्वायत्त शासन की स्थापना व उन्नति हुई क्योंकि इनसे उन प्राचीन शासन संस्थाओं का पुनसंगठन हुआ जो प्राय आकस्मिक ढंग से स्थापित हो गई थी। इनके द्वारा देश में स्थानीय स्वायत्त शासन की एक निश्चित पद्धति का प्रचार हुआ।

दी जुडीकेचर ऐक्टस (The Judicature Acts of 1873, 1875, 1876 and 1894)—इनसे न्यायपालिका का पुनर्संगठन हुआ व न्यायक्षेत्र में जो अन्धाधुन्धी चलती आ रही थी उसके स्थान पर एक अच्छी व्यवस्था स्थापित हो गई।

पार्लियामेंट ऐक्ट (The Parliament Act of 1911)—इस ऐक्ट से हाउस आफ लार्डस् के अधिकार कम कर दिये गये जिससे हाउस आफ कामन्स ही सर्वप्रमुख सदन बन गया।

अंगरेजी शासन-विधान के सिद्धान्तो के परिचायक अधिनियमो (Acts) मे से प्रमुख अधिनियमो का ही वर्णन ऊपर किया गया है। इस वर्णन से विधान का मोटा स्वरूप समझ में आ जाता है। परन्तु शासन विधान का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी का इससे ही काम नही चल सकता। इसे पूरी तरह हृदयंगम करने के लिये उसे पार्लियामेण्ट के अभिलेखो (Records) और अनेक छोटे अधिनियमो की छानबीन करनी पड़ेगी। जैसा मैरियट (Marriot) ने कहा है "शासन विधान की निर्वाक्ता और अस्पष्टता को देखकर विदेशी लोग हैरान भी रहते है और प्रशसा भी करते है। स्थान स्थान पर उनको प्रामाणिक लेखो की अनुपस्थिति खटकती है पर फिर भी वे अपने सरल स्वभाव के कारण अगरेजी पद्धति की उपयोगिता को देखने और उसका समर्थन करने से नही चूकते।" शासन-विधान के बनाने में अगरेजो ने अपने परम्परागत स्वभाव का परित्याग नही किया है और कभी भी ऐसा परिवर्तन करने का साहस

नहीं किया जिससे उनका अपनी पुरानी संस्था और परिपाटी से सम्बन्ध टूट जाता हो। प्रत्येक आगे आने वाली परिस्थिति में उन्होंने केवल उतना ही परिवर्तन करना और समावेश जितने से नई परिस्थिति का सफलतापूर्वक सामना किया जा सके। इस प्रकार को बोटमी (Boutmy) ने इन शब्दों में बड़ी भली प्रकार समझाया है :—

"अंग्रेजों ने अपने शासन-विधान के भिन्न भिन्न भागों को वहीं छोड़ दिया जहाँ इतिहास की लहर ने उन्हें लाकर डाल दिया। उन्होंने इस बात का प्रयत्न नहीं किया कि इन टुकड़ों को एक स्थान पर इकट्ठा कर लिया जाय या उनका वर्गीकरण किया जाय और यदि कभी कमी दिखाई पड़े तो उसे पूरा कर लिया जाय। मूल लेखों में अन्वेषकों व परीक्षकों को इस बिखरे हुये संविधान से कोई सहारा नहीं मिलता। जो आलोचक भूलों की ओर उंगली उठाने के लिये व्यग्र हों उन्हें पर्याप्त सामग्री मिल सकती है, व जो सिद्धान्त विरोधी नियमों को धिक्कारने के लिये उत्सुक हों उन्हें भी कोई भय नहीं, उन्हें भी अपनी उत्सुकता पूरी करने का इस विधान में पूरा अवसर प्राप्त हो सकता है। इन्हीं भूलों व विरोधों के फलस्वरूप असम्बद्धता, उपयोगी असंगतियाँ रक्षा करने वाले विरोध सुरक्षित रखे जा सकते हैं। उनका मानव संस्थाओं में सुरक्षित रहना भी अद्भुत नहीं है क्योंकि प्रथम तो वे प्रकृति में ही वर्तमान हैं. इसके अतिरिक्त इनके होने से सामाजिक शक्तियों को क्रियात्मक होने का पूरा अवसर प्राप्त होने के साथ ही साथ अपनी मर्यादा का उल्लंघन करने का साहस नहीं होता, न उन्हें यह अवसर मिलता है कि सारे सामाजिक मन्दिर की नींव हिला दें। अंग्रेजों ने अपने संवैधानिक लेखों को वर्गीकरण न कर जो यह लाभ प्राप्त किया है उस पर उन्हें अभिमान है और वे सतर्क रहे हैं कि संविधान को एक स्थान पर एकत्रित व सुसम्बद्ध कर इस लाभ को खो न दिया जाय।'

**अलिखित संविधान**—यही निर्वाक्ता और अस्पष्टता व संविधान के दूर दूर बिखरे हुये टुकड़ों का होना, अंगरेजी शासन विधान को अलिखित संविधान का लक्षण प्रदान करता है। अंगरेजी शासन-विधान के अलिखित कहे जाने का अभिप्राय यह है कि संविधान किसी एक अधिनियम या लेख्य में नहीं मिल सकता। इसके अतिरिक्त सब अधिनियमों को जोड़ कर रखने से भी इस संविधान का पूर्ण रूप नहीं जाना जा सकता क्योंकि बहुत सी वैधानिक बातें अंगरेजी राजकीय समाज की परिपाटी, रीति-रिवाजों आदि में निहित हैं।

यह प्रश्न उठता है कि इन अंगरेजी समाज की रीति-रिवाजों का क्या महत्व है ? इस प्रश्न का उत्तर यों दिया जा सकता है। इंगलैण्ड में नियमबद्ध

कानून और वैधानिक-व्यवहार में बहुत अन्तर है, जिन विधि निर्बन्धो में दिये हुये सिद्धान्तो के अनुसार शासन विधान का ऊंचा भवन बन कर तैयार हुआ है, उनसे बहुत कुछ हट कर शासन पद्धति कार्यरूप होती है। पार्लियामेण्ट के विधि-निर्बन्धो से बहकने का उत्तरदायित्व इन्ही रीति-रिवाजो को है। इन सवैधानिक रीति-रिवाजो या प्रथाओ का अर्थ क्या है ? प्रथाये नियम तो है पर वे कानून या निर्बन्ध नही है जो किसी देश के शासन-विधान के अग हुआ करते है। आचार्य डायसी ने इन प्रथाओ की इस प्रकार परिभाषा की है—"ये वे सिद्धान्त या व्यावहारिक नियम है जो यद्यपि राजा, मन्त्रियो और दूसरे शासन पदाधिकारियो के कार्यो का नियन्त्रण करते है पर वास्तव में वे कानून नही है।" इस परिभाषा को स्पष्ट करने के लिये वह इन प्रथाओ के उदाहरण भी उपस्थित करता है। पहला यह कि 'राजा पार्लियामेण्ट के दोनो भवनो से पास किये हुये कानून को स्वीकार करने पर बाध्य है, उसे वह अस्वीकृत नही कर सकता।" दूसरा "हाउस आफ कामन्स के विश्वासपात्र न रहने पर मन्त्रियो को पदत्याग कर देना चाहिये।" पहले उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किस प्रकार कानून से मान्य राजा की विधायिनी शक्ति (Legislative Power) व्यवहार में उससे छीन ली गई है। दूसरे उदाहरण से यह प्रकट है कि यद्यपि सवैधानिक नियम के अनुसार राजा ही मन्त्रियो की स्वेच्छा से नियुक्ति करता है पर वे वास्तव में हाउस आफ कामन्स को उत्तरदायी हैं, जिसका व्यवहार में मतलब यह हुआ कि राजा उन्ही व्यक्तियो को मन्त्री चुन सकता है जो कामन्स के विश्वासपात्र है।

इस प्रकार सवैधानिक प्रथायें इगलैण्ड में बड़ा महत्व रखती हैं। इन प्रथाओ व कानूनो में केवल अन्तर यही है कि कानून लिखित हैं और प्रथायें अलिखित। इगलैण्ड मे सवैधानिक सम्बन्धो में प्रमुख प्रमुख सम्बन्ध प्रथाओ से ही मर्यादित है और इनके कारण कानून का रूप ही बदल जाता है।

**संविधान का लचीलापन**—अलिखित होने से और इसके व्यवहाररूप होने मे प्रथाओ का बडा महत्व रहने के कारण, अगरेजी शासन विधान बडा लचीला है। वैसे तो सभी एकात्मक (Unitary) शासन विधान लचीले होते हैं अर्थात् साधारण कानून की तरह से उनमें परिवर्तन व सशोधन हो जाता है, परन्तु इगलैण्ड का शासन-विधान जो मूलत एकात्मक है, ससार के वर्तमान शासन सविधानो में सबसे अधिक लचीला है, यह लचीलापन इस बात में नही है कि वह साधारण प्रणाली के द्वारा बदला जा सकता है वरन् यह लचीलापन

इस बात में भी है कि बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल झट उसका उपयोग हो सकता है। पार्लियामेण्ट की विधायिनी प्रभुता इतनी अधिक ऊँची है कि वह किसी भी विधि-निर्माण को बना सकती है चाहे उसका सम्बन्ध मरघट के मर की चोरी से, हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के परिवर्तन से या किसी अंग-रेजी उपनिवेश को स्वतन्त्रता देने से हो। इन सब के लिये एक ही प्रणाली अपनाई जाती है, किसी विशेष पद्धति का अनुकरण नहीं करना पड़ता। संविधान में परिवर्तन करने के लिये किसी विशेष पद्धति को अपनाने की आवश्यकता न होने के कारण संविधान प्रत्येक परिस्थिति के अनुकूल सहज ही बनाया जा सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण सन् १९३६ ई० का राजत्याग ऐक्ट (Abdication Act) था। उपस्थापित होने के आधे घण्टे के भीतर ही यह ऐक्ट पास हो गया और पार्लियामेण्ट ने एक राजा के राजत्याग को वैध बना दूसरे को राजमुकुट पहिना दिया। किसी दूसरे देश में ऐसा परिवर्तन करने के लिये एक बड़ी क्रान्ति की आवश्यकता हो जाती पर इगलैण्ड में अष्टम एडवर्ड के राजसिंहासन छोड़ने से राजकीय क्षेत्र में जरा सी भी उथल पुथल नहीं हुई। यह सब इगलैण्ड के शासन विधान के लचीलेपन के कारण ही सम्भव हो सका था।

**शासन विधान से स्थापित पार्लिमेंटरी प्रजातंत्र**—शासन सगठन की चोटी पर राजा के आसीन होने से और जैसी उसकी ख्याति व कीर्ति है, उससे साधारण दृष्टा को यह धारणा होगी कि इगलैण्ड का शासन विधान राज-सत्तात्मक (Monarchic) ढग का है। पर वास्तव में ऐसा नहीं है और ससदात्मक (Parliamentary) प्रजातन्त्र सरकार की ही स्थापना की गई है। कुछ लोग इसे नियन्त्रित राजसत्ता कहते हैं, दूसरे इसे राजसत्तात्मक-प्रजातन्त्र (Monarchic Democracy) कहकर वर्णन करते हैं। यह ठीक है कि सिद्धान्तत राजा ही विधायिनी, कार्यपालिका व न्यायपालिका शक्ति का स्वामी है, पर सवैधानिक प्रथाओ व कुछ कानूनो ने केवल उसे राज्य का सवैधानिक अध्यक्ष भर ही रहने दिया है। पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च प्रभुता से ससदात्मक कार्य-पालिका (Parliamentary Executive) का जन्म हुआ। मन्त्रि-परिषद् यद्यपि राजा द्वारा नियुक्त होती है पर वास्तव में वह कामन्स को उत्तरदायी है। यह सब उस सवैधानिक सघर्ष का फल है जो अप्रत्यक्ष रूप से कई शताब्दियो तक चलता रहा था।

**राजनीतिक पक्ष प्रणाली**—यदि ससदात्मक सरकार को सर्व प्रथम जन्म देने का श्रेय इगलैण्ड को दिया जाता है तो उसकी अनुगामिनी पक्ष-प्रणाली (Party System) के विकास का भी श्रेय उसी को है। पक्ष-

प्रणाली वास्तव में संसदात्मक कार्यपालिका या सरकार की सफलता के लिये नितान्त आवश्यक है। पिछले अध्याय मे यह वर्णन हो चुका है कि इगलैण्ड में विभिन्न राजनीतिक दलो का आविर्भाव किस प्रकार हुआ। किसी भी सूक्ष्मदर्शी अंगरेजी शासन विधान के विद्यार्थी को यह स्पष्ट हो जायगा कि विधानमण्डल में बिना राजनैतिक पक्षो के बने संसदात्मक सरकार का बनना असम्भव है।

अगरेजी शासन विधान इस प्रकार एक विकसित पक्ष प्रणाली पर आधारित है। इगलैण्ड में साधारण निर्वाचन के समय प्रारम्भ होने वाला राजनैतिक सघर्ष अमरीका के समान निर्वाचन के बाद समाप्त नही हो जाता। यह लड़ाई पार्लियामेण्ट के भीतर जारी रहती है जहा लगभग प्रत्येक प्रश्न पर सम्राट की सरकार व सम्राट का विरोधी दल बुद्धिरूपी तलवारो से लड़ते है और अपनी अपनी बात पक्की करने का प्रयत्न करते है। कार्यपालिका के ऊपर संसद् के नियत्रण का मूलमन्त्र ही यही है कि संसद् में सुसगठित व अनुशासित राजनीतिक पक्ष हो।

संसदात्मक कार्यकारिणी के सफल-कार्य होने के लिये दो और, केवल दो ही पक्ष आवश्यक है। इंगलैण्ड में बहुत समय तक उदार और अनुदार अथवा रूढिवादी दो ही पक्ष थे। पर बाद में सामाजिक और राजनीतिक छोटे छोटे भेदो के कारण ही दूसरे दल बन गये। ये नये दल रैडिकल (Radicals), होम रूलर्स (Home Rulers), यूनियनिस्ट (Unionists), लेबराइट्स (Labourites) और कम्यूनिस्ट (Communists) नामो से प्रसिद्ध हुये। पर इस समय तीन राजनीतिक दल है जो अच्छी तरह सगठित है, जिनके प्रतिनिधियो की पार्लियामेण्ट में अच्छी सख्या है और जिनका निश्चित राजनीतिक कार्यक्रम है। ये तीन राजनीतिक दल, अनुदार अथवा रूढिवादी (Conservative), उदार (Liberal) और श्रम (Labour) है। हम यहा उन सिद्धान्तो की व्याख्या करेंगे जिन पर इन तीनो पक्षो का सगठन हुआ है और जिनके कारण यह एक दूसरे से भिन्न है।

**अनुदार पक्ष (Conservative Party)**—कुछ समय पहले इगलैण्ड में अनुदार दल की सख्या सब से अधिक थी। "कन्जरवेटिज्म के सारभूत तत्व उन सस्थाओ मे मिलेंगे जिनका यह समर्थन करती है या इसके प्रगतिसम्बन्धी दृष्टिकोण से। सामाजिक सस्थाओं में कन्जरवेटिव पक्ष वाले लोग राजा, राष्ट्रीय एकता, ईसाई-धर्म-सघ (Church), एक शक्तिशाली शासक-वर्ग और वैयक्तिक सम्पत्ति की राज्य के हस्तक्षेप से स्वतन्त्रता इन सब बातो के

समर्थक हैं।"× अनुदार पक्ष के लोग यदि पार्लियामेण्ट से अधिक नहीं तो कम से कम उसके समान ही राजा को राष्ट्र व साम्राज्य की एकता का प्रतीक समझते हैं। राजा के प्रति उनकी भक्ति और उनका प्रेम ईश्वर-भक्ति से कुछ ही कम होगा। वे राष्ट्र भावना से पूरी तरह अभिप्रेत रहते हैं और दूसरे राष्ट्र या वर्ग को बिलकुल अविश्वास भरी दृष्टि से देखते हैं। इस पक्ष के लोगों का विश्वास है कि उनकी जाति सब जातियों में श्रेष्ठ है। यहां तक कि युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की जातियों को भी वह अपने बराबर स्थान नहीं देते। उन्हें अपनी राजकीय संस्थाओं व परम्पराओं की विशिष्टता पर भी बड़ा विश्वास और गर्व है। उनकी धारणा है कि उनकी जाति को ईश्वर ने दूसरे लोगों को उनकी इच्छा के विरुद्ध भी सभ्य बनाने के लिये भेजा है। वे अपने इस कार्य को सम्पादित करने में हिंसा व राक्षसी क्रूरता का भी उपयोग करने से नहीं हिचकते। देश की रक्षा और उसको महान् बनाने वाली बातों को प्रशंसा द्वारा ऊंचा उठाने में उनकी यह राष्ट्रीय-भावना व्यक्त हुआ करती है। महान् बनाने से उनका अभिप्राय राष्ट्र समृद्धि और सामरिक शक्ति को बढ़ाने से ही होता है न कि आत्मोन्नति से..........। साम्राज्य तो इनका जीवन है क्योंकि साम्राज्य से जाति की उस सामर्थ्य का निर्देश होता है जिससे वह दूसरों पर अपनी प्रभुता बढ़ाने में सफल होती है और इस सफलता को वे भारी आध्यात्मिक उन्नति का पर्यायवाची समझते हैं।⊛

इन सब बातों से स्पष्ट है कि कन्जरवेटिव दल के लोग वैदेशिक नीति में एक दृढ़ और सतत् बढ़ने वाले साम्राज्य के समर्थक हैं और ब्रिटिश साम्राज्य के आधीन राष्ट्रों की स्वतन्त्रता के विरोधी हैं।

**अनुदार पक्ष और ईसाई धर्म-संघ**—ये लोग हमेशा से इगलैण्ड के राष्ट्रीय ईसाई धर्म-संघ के भक्त रहे हैं, क्योंकि यह संघ प्रारम्भ से ही एक रूढ़िवादी संस्था रही है। टोरियों (जो कन्जरवेटिव लोगों के पूर्वगामी थे) की तो आवाज़ ही यह थी—*"यदि बिशप नहीं तो राजा नहीं।"* ये संघ के आसन को ऊंचा रखने के लिये सत्रहवीं शताब्दी में राजनैतिक लड़ाइयां भी लड़ चुके थे।

**अनुदार पक्ष और समाज**—सामाजिक क्षेत्र में इस पक्ष के लोग सदा से एक शासक-वर्ग के होने के समर्थक रहे हैं। उनकी धारणा यह है कि कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं कि जो इतने कुशल हैं कि उन्हें बिना लोकेच्छा का सहारा लिये शासन

---

×फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेण्ट, पृ० ५१६।

⊛फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५१७।

करने का अधिकार है। इसीलिये उन्होंने बराबर मताधिकार के विस्तृत करने और हाउस आफ कामन्स के अधिकार बढ़ाने का विरोध किया है। हाउस आफ कामन्स में साधारण जनता के प्रतिनिधि बैठ कर उच्च वर्गों पर शासन करते हैं। यह बात अनुदार पक्ष के लोगो को कैसे अच्छी लग सकती है। हाउस आफ लार्डस् में अनुदार पक्ष के लोगो का ही प्रभुत्व रहा है क्योंकि इगलैण्ड की सम्पत्ति और भूमि के अधिक भाग पर उन्ही का स्वामित्व है। वे इसी कारण से वैयक्तिक सम्पत्ति में राज्य के हस्तक्षेप के विरोधी है। सम्पत्ति और भूमि के स्वामित्व के ही कारण इस पक्ष के लोग राजघराने से सानिध्य प्राप्त किये हुये हैं और उसके द्वारा ये राज्य की शासन-नीति पर अपना प्रभाव डालने में सफल हो सके हैं।

पूजीपतिया और उद्योगपतियो की मध्यस्थता के द्वारा अनुदार लोग इगलैण्ड के समाचार पत्रो पर अपना नियत्रण रखते हैं। बडे बडे सभी समाचार पत्रो का वे ही सचालन करते हैं जिससे लोकमत पर अपना प्रभाव डालने में उन्हे बडी सुविधा रहती है। यह प्रभाव विशेषतया वैदेशिक नीति सम्बन्धी मामलो और साम्राज्य सम्बन्धी विषयो में अधिक रहता है।

उदार पक्ष (Liberal Party)—दूसरा राजनैतिक दल उदार लोगो का है। यद्यपि अब इसके अनुयायियो की सख्या अधिक नही है पर फिर भी यह पक्ष अनुदार पक्ष के समान ही प्राचीन है। उदार पक्ष का मूलमन्त्र "नये अनुभव के प्रति उदारता और मुक्त विकास का समर्थन" है। इगलैण्ड में उदार दल के सिद्धान्तो का उदय (Reformation Movement) सुधार आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ। उस समय वैयक्तिक विचार-स्वतन्त्रता का अधिकार बहुत मान्य हो चुका था। इसीलिये ये सिद्धान्त राष्ट्रीय धर्म-सघ और अनियन्त्रित शासन-सत्ता के कट्टर विरोधी थे यही कारण था कि व्हिग (लिबरलो के पूर्वगामी) लोग स्टूअर्ट राजाओ की निरकुशता से लडने के लिये खडे हुये, ग्लोरियस रिवोल्यूशन (Glorious Revolution) के जन्मदाता बने और उन्होने राजा की शक्ति को कम कर पार्लियामेण्ट की शक्ति को बढाया। उन्नीसवी शताब्दी के जितने भी वैधानिक सुधार हुये उनको उदार पक्ष की सरकार ने ही इगलैण्ड मे प्रचलित किया था क्योंकि उदार पक्ष की सदा से ही यह भावना रही है कि शासन-पद्धति में ही स्वतन्त्रता व अत्याचारीशासन के अकुर निहित हैं और उसी ओर अपना ध्यान रखना आवश्यक है। उदार सिद्धान्तो के लिये 'राज्य से पूर्व व्यक्ति अधिक महत्व रखता है। व्यक्ति में ही सृजन शक्ति एव प्रेरणा

का आविर्भाव होता है और व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर ही दूसरों के अनुभव को सत्य मानता है। इस सब सृष्टि का अन्तिम उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या में पूर्ण व्यक्तियों को उत्पन्न करना है। व्यक्ति अपना जीवन कैसा बनाये, इसका निर्णय वे नहीं कर सकते जिनके हाथ में शासन शक्ति है, पर व्यक्ति स्वयं ही अपने विवेक से इसका निश्चय कर उसे स्वीकार करेगा क्योंकि कोई भी निश्चय पूर्वक यह नहीं कह सकता कि अमुक ज्ञान या अनुभव अधिक सत्य, अधिक सुन्दर और अधिक कल्याणकारी है। जब ऐसा है तो सत्य की खोज की आशा इसी में है कि सब को समान अवसर दिया जाये जिससे सभी अपने विचार प्रकट कर सकें और अपनी निहित शक्तियों का विकास कर सकें। इस स्वतन्त्रता पर केवल उतना ही नियन्त्रण हो जितना इस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये नितान्त आवश्यक हो।"* यद्यपि उदार लोग राष्ट्र व जाति की भावना को स्वीकार करते हैं परन्तु वे साम्राज्य की विभिन्न जातियों को धीरे धीरे स्वतन्त्र करने के पक्ष में हैं। उन्होंने इस नीति को कार्यरूप करते हुये कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका को स्वतन्त्र सरकार बनाने दिया। घरेलू मामलों में उनका यह कहना है कि व्यापार और उद्योग की उन्नति कर साधारण जनता को अधिक सुविधायें दी जायें, नगर-पालन संस्थाओं को अधिक अधिकार दिये जायें और बेकारी समाप्त की जाये।

लिबरल दल की विशेषता ही यह है कि वह मध्य व निम्न वर्ग से सहानुभूति रखता है। यदि अनुदार पक्ष सम्पत्ति-वर्ग है तो उदार पक्ष बुद्धि-वर्ग है। ये अधिकतर मध्यवर्ग के लोग होते हैं। हाउस आफ लार्ड्स में इनकी संख्या बहुत है पर कामन्स में श्रम पक्ष ( Labour Party ) के प्रभाव के बढ़ने से इनकी गिनती कम होती जा रही है। उदार पक्ष का मार्ग अनुदार पक्ष और साम्राज्यवाद के बीच से होकर जाता है।

श्रम पक्ष (Labour Party)—पहले महायुद्ध के पश्चात् इंगलैण्ड में अनुदार पक्ष का सामना करने के लिये एक तीसरा राजनीतिक पक्ष शक्तिपूर्ण हुआ। यह दल श्रम पक्ष (Labour Party) के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें उदार पक्ष के बहुत से लोग आकर मिल गये। इस पक्ष का बनना पुराने दोनों राजनीतिक पक्षों को चुनौती देना था। इस पक्ष का आधार सिद्धान्त समाजवाद है इसलिये इस पक्ष का सगठन राजनीति में तब तक विशेषाधिकारी,

*फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५२३।

शासन विधान का एक आवश्यक अंग बन गई है।

अंगरेजी शासन विधान की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता निर्बन्ध शासन (Rule of Law) है। यह साधारण सार्वजनिक नीति-नियमों पर आधारित है और शताब्दियों से चले आने वाले राजा-प्रजा के संघर्ष के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। इंगलैण्ड में नागरिकों के अधिकार किसी एक अधिनियम या कानून में अन्तर्भूत नहीं हैं। कुछ अधिकार या तो किसी भी अधिनियम में समावेश नहीं किया गया है फिर भी वहां के नागरिक उन्हीं वैधानिक, धार्मिक और सामाजिक स्वातन्त्र्यों का उपभोग करते हैं जो अमरीकन या फ्रेंच नागरिकों को अपने राष्ट्र में उपलब्ध हैं। यह स्वतन्त्रता निर्बन्ध शासन से सुरक्षित रहती है। यह निर्बन्ध शासन इंगलैण्ड में सब से प्रथम उत्पन्न हुआ और इसके कारण अंगरेजी शासन-प्रणाली और यूरोपियन शासन-प्रणाली में भेद है।

आचार्य डायसी के अनुसार मोटे तौर पर निर्बन्ध शासन (Rule of Law) के तीन मूल सिद्धान्त हैं —

पहला, "यह कि किसी व्यक्ति को दण्ड नहीं दिया जा सकता या उसको शारीरिक कष्ट व साम्पत्तिक हानि नहीं पहुंचाई जा सकती जब तक उसने किसी निर्बन्ध को न तोड़ा हो और उसका यह अपराध राज्य की साधारण अदालतों के सामने विधिपूर्वक निर्णीत न हुआ हो।"*

इसका यह मतलब निकला कि निर्बन्ध-शासन के होने से राज्यतन्त्र सत्ताधिकारियों की स्वेच्छाचारिता से बचा रहेगा क्योंकि वे लोग जनता की स्वतन्त्रता को मन चाहा कुचल नहीं सकेंगे।

दूसरा, निर्बन्ध शासन यह निश्चित कर देता है कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी श्रेणी का हो या कैसा भी उसका प्रभुत्व हो, कानून से परे नहीं है और प्रत्येक नागरिक 'राज्य के सार्वजनिक विधि-निर्बन्धों के आधीन है व सार्वजनिक न्यायालयों के अधिकार-क्षेत्र के वशवर्ती है।"[१] अंगरेजी शासन प्रणाली की यह अनुपम विशेषता है और इसके जोड़ की कोई वस्तु यूरोपियन शासन-प्रणाली में नहीं मिलती। वहां सरकारी कर्मचारियों के अपराधों पर विशेष प्रशासन-न्यायालयों (Administrative Courts) में

* ला आफ दी कन्स्टीट्यूशन, पृ० १८३–८४।
१ पूर्व स्रोत।

विचार किया जाता है। इन प्रशासन-न्यायालयों की नियुक्ति प्रशासन-निर्बन्ध (Administrative Law) के अन्तर्गत की जाती है। आचार्य डायसी ने सार्वजनिक विधि निर्बन्धों की सर्वोच्चता का इस प्रकार वर्णन किया है—"हमारे यहां प्रत्येक कर्मचारी, प्रधान मन्त्री से लेकर कान्स्टेबिल और कर-संग्रहकर्ता तक, अपने अवैध कार्यों के लिये उतना ही उत्तरदायी है जितना और कोई नागरिक।"*

निर्बन्ध, विधि या कानून की दृष्टि में यह समानता इतनी पूर्ण है कि केवल राजा ही इसकी परिधि से बाहर समझा जाता है और उसका कोई कार्य अवैध नहीं समझा जाता। पर राजा के विषय में भी एक बचत है, वह यह है कि उसका कोई भी आदेश प्रजा पर तब तक लागू नहीं हो सकता जब तक कि उस आदेश पत्र पर किसी मन्त्री के हस्ताक्षर न हों। मन्त्री के हस्ताक्षर होने पर राजा के कृत्य का उत्तरदायित्व मन्त्री पर आ पड़ता है और मन्त्री देश के सार्वजनिक कानून की परिधि के भीतर है उससे परे नहीं है। ऐसे कई उदाहरण देखने को मिल सकते हैं जहां शासनाधिकारियों को अपनी राजकीय अवस्था में किये हुये अवैध कृत्यों के लिये सार्वजनिक न्यायालयों में साधारण ढंग पर ही विचार कर के दण्ड दिया गया है।

तीसरा—निर्बन्ध-शासन यह निर्देश करता रहता है कि "अंग्रेजों के शासन-विधान सम्बन्धी सिद्धान्त न्यायालयों द्वारा समय समय पर स्थिर किये गये हैं, जब जब विशिष्ट अभियोग उनके सम्मुख उपस्थित किये गये और उन्होंने साधारण व्यक्तियों के अधिकारों को निश्चित किया है।"

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि निर्बन्ध-प्रशासन किसी भी शासन कर्मचारी या साधारण नागरिक को विशिष्ट स्थान या अधिकार प्रदान नहीं करता। "जो व्यक्ति सरकार के अंग हैं वे मनचाहा नहीं कर सकते, उन्हें पार्लियामेण्ट के बनाये हुये नीति-निर्बन्धों के अनुसार ही अपनी शक्ति को उपयोग करने की स्वतन्त्रता है।"[1] यदि कोई राजकर्मचारी अपने अधिकार की सीमा का उल्लंघन करता है तो उस पर साधारण न्यायालय में अभियोग लगाया जा सकता है जहां सार्वजनिक कानून के अन्तर्गत उस पर लगाये हुये अभियोग पर विचार किया जायेगा

* पूर्व स्रोत, पृ० १८३–८४।
१ ह्रौगन और पौवेल गवर्नमेंट आफ ग्रेट ब्रिटेन, पृ० ६।

और यदि वह अपराधी सिद्ध हुआ, उसी न्याय-पद्धति से जिससे साधारण नागरिक दण्डित होते हैं, तो वह दण्डनीय होगा। यूरोप में ऐसा नहीं होता। वहाँ राजकर्मचारी यदि कोई अपराध करते हैं तो उन पर लगाये गये अभियोग की सुनवाई विशेष शासन न्यायालयों में होती है, साधारण सार्वजनिक न्यायालयों में नहीं होती।

इंगलैण्ड में इस प्रकार कार्यकारिणी सत्ता पर निर्वन्ध शासन (Rule of Law) का नियन्त्रण रहता है और उससे उनके अधिकार-उपभोग की मर्यादा बंधी रहती है, परन्तु हाल ही में इस निर्वन्ध शासन के प्रति आदर की कमी होने लगी है। आचार्य डायसी ने स्वयं ही स्वीकार किया है कि अब "राजनैतिक व सामाजिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अवैध साधनों का उपयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।" प्रथम तो हमें यह न भूलना चाहिये कि जब किसी राजकर्मचारी पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाता है और अपराधी सिद्ध होने पर यदि उसे किसी गैर-सरकारी नागरिक को दण्ड-स्वरूप क्षतिपूरक धन देना पड़ जाता है तो यह धन राजकोष से दे दिया जाता है, राजकर्मचारी स्वयं अपनी जेब से नहीं देता क्योंकि यह समझा जाता है कि वह राज्य का कार्यवाहक है और उसके कृत्यों के लिये राज्य को ही उत्तरदायी होना चाहिये। इससे राजकर्मचारी सतर्क नहीं रहता और अपने अधिकार का उपयोग कानून के अनुसार करने पर कड़ी दृष्टि नहीं रखता, क्योंकि अपराधी ठहराये जाने पर उसको कोई हानि होने का भय नहीं रहता। द्वितीय, हाल ही में पार्लियामेण्ट ने राजकर्मचारियों को बहुत से न्यायकारी अधिकार भी सौंप दिये हैं। उदाहरणार्थ, सन् १९०२ ई० का ऐजूकेशन ऐक्ट ऐसे अधिकार ऐजूकेशनल कमिश्नर्स को व फाइनेन्स ऐक्ट (१९१०) और नेशनल इन्शयोरेन्स ऐक्ट (१९११ व १९१२) दूसरे अफसरों को सौंपते हैं। १९११ के पार्लियामेण्ट के एक्ट से स्पीकर (Speaker) को बड़े विस्तृत अधिकार सौंप दिये गये हैं। इस ऐक्ट के अन्तर्गत स्पीकर का प्रमाण पत्र (Certificate) अन्तिम निर्णयकारी समझ लिया जाता है और उसके विरुद्ध किसी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता। इसके साथ साथ यदि यह स्मरण रक्खा जाय कि न्याय करते समय न्यायाधीश बराबर यह ध्यान रखता है कि चाहे दस अपराधी छूट जायं पर एक निरपराधी दोषी ठहर कर दण्डित न हो जाय, तो हमें यह ज्ञात हो जायगा कि राजकर्मचारियों को इतने विस्तृत स्वविवेकी (Discretionary) अधिकार

सुपुर्द करने से न्यायाधीश की शक्ति कितनी कम हो जाती हैं और इस प्रकार निर्बन्ध शासन का महत्व बहुत कुछ घट जाता है। इसके अतिरिक्त राजकर्मचारी कानून के अन्तर्गत नियम या उपनियम बनाने का अधिकार भी अधिकाधिक लेते जा रहे हैं। इस प्रकार इंगलैण्ड में ऐसी प्रणाली का आविर्भाव हो रहा है जो किसी क्षण भी व्यक्ति के लिये, जनता के व राजकर्मचारियों के लिये अन्यायकारी सिद्ध हो सकती है। सिद्धान्तों में एकरूपता नहीं रह गयी है क्योंकि निर्बन्ध शासन का स्थान इधर उधर के अनियमित सिद्धान्तों ने ले लिया है"।*

ऊपर हमने अंगरेजी शासन-विधान के प्रमुख लक्षणों का वर्णन कर दिया। यह शासन-विधान प्रतिक्षण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों में परिवर्तन के अनुसार नया रूप धारण करता रहता है। ऐसे संविधान के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को एक विशाल साहित्य की छान बीन करने के पश्चात इसका ठीक ठीक परिचय मिल सकता है।

## पाठ्य पुस्तकें

Anson W. R.—Law and Custom of the Constitution.

Begehot, W.—English Constitution.

Boutmy—English Constitution.

Boutmy—Studies in Constitutional Law.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution, 1939 Edition.

Finer, H.—Theory & Practice of Modern Government, chs. XII—XV.

Greaves, H.R.G.—The British Constitution, pp. 11-24.

Jennings, W.I.—The Law and the Constitution (1933).

Keith, A.B.—An Introduction to the British Constitutional Law, 1913.

*फाइनर—थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० १४४७।

Keith, A.B. – Constitution, Administration and Laws of the Empire (1924).

Laski, H.J.—Parliamentary Government in England (1938) chs. I & II.

Ogg, F.A.—English Government and Politics (1936) pp 57–81.

Taswell and Langmead—English Constitutional History.

# अध्याय ६

## पार्लियामेंट और विधान निर्माण

"इगलैण्ड में सविधान को बदलने का सर्वमान्य अधिकार पार्लियामेण्ट को है इसलिये सतत परिवर्तित होते रहने से वास्तव में उसका अस्तित्व ही नही है। पार्लियामेण्ट धारा सभा भी है और विधान सभा भी।"
(डि टोकविली)

"धार्मिक, सामाजिक, सामुद्रिक, सेना-सम्बन्धी, अपराध-सम्बन्धी जितने प्रकार के निर्बन्ध (कानून) हो सकते हैं, इनके बनाने, उनमें वृद्धि करने, कम करने, सशोधन करने, रद्द करने, पुनर्जीवित करने व व्याख्या करने का पार्लियामेण्ट को सर्वोच्च अनियन्त्रित अधिकार है। यही उस निरकुश अनियन्त्रित शक्ति को, जो प्रत्येक राज्य में किसी न किसी को सुपुर्द करनी पडती है, इस देश के शासन-विधान द्वारा प्रतिष्ठित किया गया है।"
(ब्लैकस्टोन की टीका से)

इगलैण्ड में विधि-निर्माण करने वाली संस्था पार्लियामेण्ट ही है। सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये और सिद्धान्तत स्वशासित राष्ट्रो (Dominions) के लिये भी, यह सर्वोच्च विधि-निर्माण अधिकार की स्वामिनी है। वास्तव में पार्लियामेण्ट के अन्तर्गत राजा, हाउस आफ कामन्स व हाउस आफ लार्डस् तीनो आते है और "पार्लियामेण्ट" शब्द से इन तीनो का बोध होना चाहिये। यह पार्लियामेण्ट के किसी अधिनियम (Statute) के शब्दो से स्पष्ट हो जायगा जहा विधि-निर्माण करने वाली शक्ति का निर्देश किया जाता है। प्रत्येक अधिनियम (Act or Statute) में यह शब्द पाये जाते है—"Be it therefore enacted by the King's Most Excellent Majesty, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons, in this present Parliament assembled; and by the authority of the same... ........." अर्थात् सम्राट राजकीय

स्काटलैंड के विश्वविद्यालय मिल कर तीन प्रतिनिधि चुनते थे। साधारण निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बनाये गये हैं कि उनकी जनसंख्या लगभग बराबर होती है। प्रत्येक में लगभग ५०००० मताधिकार होते हैं। सन् १९४८ में मत-दाताओं की कुल संख्या इस प्रकार बटी हुई थी: इंगलैंड और वेल्स ३२,८२३,६२८, स्काटलैंड, ३,४७१,६३५। इन संख्याओं में स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से कहीं अधिक है। इसका सन् १९२८ के बाद होने वाले निर्वाचनों के परिणाम पर बड़ा प्रभाव पड़ा क्यों कि स्त्रियों की प्रवृत्ति राजनीति को मदल बनाने की होती है। सन् १९४९ में कामन्स की संख्या ६२५ करदी गई है।

**पार्लियामेंट की अवधि**—सन् १६८८ की क्रान्ति के पूर्व सम्राट पर पार्लियामेण्ट के नियम पूर्वक बुलाने या भंग करने में कोई बन्धन नहीं था, पर १६८९ के बिल आफ राइट्स (Bill of Rights) ने यह निश्चित कर दिया कि पार्लियामेण्ट प्रति वर्ष बुलाई जाय। स्टुअर्ट राजा पार्लियामेण्ट के बुलाने में बिलकुल नियम परायण न थे और कभी कभी उन्होंने बिना किसी पार्लियामेण्ट के ही राज्य किया। पर सन् १६९४ के ऐक्ट ने प्रत्येक पार्लियामेण्ट की अवधि तीन वर्ष निश्चित कर दी। सन् १७१५ में जैकोबाइटों (Jacobites) की धूर्तता के डर से और इस भय से कि निर्वाचन से हैनोवर राजवंश की स्थिति डावाडोल न हो जाय, उदार (Whig) मन्त्रिमण्डल ने हाउस आफ लार्डस् में एक विधेयक रक्खा जिसके दोनों गृहों द्वारा स्वीकृत हो जाने से पार्लियामेण्ट की अवधि बढ़ कर सात वर्ष हो गई। यह वृद्धि इसलिये भी आवश्यक समझी गई क्योंकि सर जार्ज स्टील ने १७१५ की सप्तवार्षिक योजना का समर्थन करते हुये कहा था, "त्रिवार्षिक विधेयक के स्वीकृत होने के पश्चात देश में बराबर झगड़ा व मतभेद चलता चला आ रहा है। त्रिवार्षिक पार्लियामेण्ट का सत्र (Session) पिछले निर्वाचनों से उत्पन्न वैमनस्य का प्रतिशोध करने के लिये अनुचित निर्णय करने में लग जाता है। दूसरा सत्र (Session) कुछ काम करता है, तीसरे सत्र में जो कुछ थोड़ा बहुत दूसरे सत्र में काम किया जाता है, उसको पूरा करने में भी ढीलढाल पड जाती है और होने वाले निर्वाचन के डर से सदस्य आंख बन्द करके अपने अपने सिद्धान्तों के दास बन जाते हैं और उन्ही की कसौटी पर प्रत्येक प्रश्न की अच्छाई बुराई को परख प्रारम्भ कर देते हैं" इसके बाद एक बार फिर त्रिवार्षिक निर्वाचन की पुन स्थापना का प्रयत्न किया गया पर १९११ के पार्लियामेण्ट ऐक्ट (Parliament Act) ने पार्लियामेण्ट की अवधि को सात वर्ष से घटा कर पाच वर्ष कर दिया। उसी पार्लियामेण्ट ने सन् १९१६ में एक प्रस्ताव पास कर लिया जिससे इसने प्रथम महायुद्ध के

सकट के कारण पाच साल से आगे अपनी अवधि बढा ली । यह इसलिये उचित समझा गया क्योंकि उस समय युद्ध जीतने के उपायों पर एकचित्त होकर ध्यान देने की आवश्यकता थी और उस एकचित्तता में निर्वाचन करके गडबड हो सकती थी । इस प्रकार इस समय पार्लियामेण्ट (अर्थात् हाउस आफ कामन्स) की अवधि पाच वर्ष है । पर इससे पहले ही कभी कभी इसका विघटन हो जाता है यदि राजा किसी प्रधान मन्त्री का मतदाताओं के सम्मुख अपनी योजनाओं को रखने का प्रयास स्वीकृत कर ले। नीचे लिखी सारिणी से यह प्रकट हो जायगा कि किस प्रकार एक के बाद दूसरी पार्लियामेण्ट निश्चित समय से पूर्व ही समाप्त हो गई —

| पहली बैठक का दिनाक | विलयन का दिनाङ्क | अवधि | | |
|---|---|---|---|---|
| | | वर्ष | माह | दिन |
| १३ फरवरी १९०६ | १० जनवरी १९१० | ३ | ११ | २४ |
| १५ फरवरी १९१० | २८ नवम्बर १९१० | ० | ९ | १३ |
| ३१ जनवरी १९११ | २५ नवम्बर १९१८ | ७ | ९ | २५ |
| ४ फरवरी १९१९ | २६ अक्टूबर १९२२ | ३ | ८ | २२ |
| २० नवम्बर, १९२२ | १६ नवम्बर १९२३ | ० | ११ | २७ |
| ८ जनवरी, १९२४ | ९ अक्टूबर, १९२४ | ० | ९ | १ |
| २५ दिसम्बर, १९२४ | १० मई १९२९ | ४ | ५ | ७ |
| २५ जून, १९२९ | २४ अगस्त, १९३१ | २ | १ | २९ |
| ३ नवम्बर, १९३१ | २५ अक्टूबर, १९३५ | ३ | १ | २२ |
| २६ नवम्बर, १९३५ | १५ जून १९४५ | ९ | ६ | २० |
| २१ जलाई, १९४५ | ३ फरवरी १९५० | ४ | ६ | १२ |

इससे यह मालूम होगा कि नौ पार्लियामेण्टें ३८ वर्ष २ मास और १० दिन चलीं जिसका औसत प्रत्येक पार्लियामेण्ट के लिये ३ वर्ष १० मास और २१ दिन आता है। प्रथम युद्धोत्तर काल में यह औसत तीन वर्ष से भी कम आता है। पर सर रिचार्ड ने १९१४ में त्रिवार्षिक पार्लियामेण्ट की जो आलोचना की थी वह अब लागू नहीं होती क्योंकि अब परिस्थिति बदल गई है और निर्वाचन एसी निश्चित पक्ष प्रणाली पर होते हैं कि पार्लियामेण्ट के बहुमत वाले पक्ष को अपना कार्य-क्रम नये सिरे से प्रारम्भ करने की आवश्यकता नहीं है । उसका

व धर्माचार्यीय लार्ड, और कामन्स के लोगों की सम्मति से जो इस पार्लिया-मेण्ट में एकत्रित हुए हैं और उनके आदेश से यह अधिनियम बनाते हैं कि ..." इत्यादि इत्यादि ।

यद्यपि राजा में विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकार सिद्धान्त रूप में अब भी बने हुये हैं पर व्यवहार में वास्तविक निर्णयकारी सत्ता का उपभोग हाउस आफ कामन्स और हाउस आफ लार्डस् ही करते हैं। सन् १९११ के पार्लियामेण्ट ऐक्ट से तो हाउस आफ लार्डस् का भी प्रभाव इस विषय में बहुत कम हो गया है। इस अध्याय में हम पार्लियामेण्ट के दोनों गृहों की बनावट और उनके अधिकारों का अध्ययन करेंगे और साथ साथ यह भी दिखलायेंगे कि उनका पारस्परिक क्या सम्बन्ध है और विधेयों के पास करने की पद्धति क्या है।

## हाउस आफ कामन्स

गृह की सदस्य संख्या—हाउस आफ कामन्स प्रथम गृह है हालांकि निर्माण होने में इसका दूसरा नम्बर है क्योंकि हाउस आफ लार्डस् के स्थापित होने से बहुत समय पश्चात् इसका जन्म हुआ था। हाउस आफ कामन्स के संक्षिप्त इतिहास का हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं। सन् १२९५ ई० की मॉडल पार्लिया-मेण्ट (Model Parliament) में जब नगरों व ज़िलों का प्रतिनिधित्व प्रारम्भ हुआ तभी से समय समय पर विधान मण्डल की बनावट बदलती रही है। एडवर्ड के राज्यकाल में प्रत्येक शायर (Shire) से दो नाइट (Knights) अर्थात् कुल ७४ नाइट और २०० नागरिक पार्लियामण्ट के सदस्य होते थे। इसके बाद इस संख्या में घटती बढ़ती होती रही। सन् १३७८ ई० के लगभग हाउस आफ कामन्स एक पृथक् संस्था के रूप में एकत्रित होकर बैठने लगी। जब इंगलैण्ड और स्काटलैण्ड का संयोजन हुआ तो हाउस आफ कामन्स के तत्कालीन ५१३ सदस्यों में स्काटलैण्ड के ४५ प्रतिनिधि-सदस्य और जुड़ गये। सन् १८०० ई० में आयरलैण्ड भी मिला लिया गया और उसके भी १०० प्रतिनिधि जुड़ गये। सन् १९२८ ई० तक कामन्स के सदस्यों की संख्या ६७० थी पर उस वर्ष जो रिप्रेजेन्टेशन आफ पीपल ऐक्ट (Representation of People Act) अर्थात् लोक प्रतिनिधित्व सम्बन्धी अधिनियम पास हुआ उससे यह संख्या ६४० स्थिर कर दी गयी जो अब यह संख्या ६२५ है।

कामन्स में प्रतिनिधित्व—यह पहले ही कहा जा चुका है* कि

*अध्याय ४ देखिये।

सन् १८३२ से पहिले हाउस आफ कामन्स साधारण जनता का प्रतिनिधित्व न करती थी। इसमें केवल कुलीन वर्ग के लोग या उनके मनोनीत किये हुये व्यक्ति ही भरे हुये थे। सन् १८३२, १८६७ और १८८४ के सुधारों ने मताधिकार को विस्तृत किया और सन् १९१८ के ऐक्ट ने लगभग वयस्क-मताधिकार ही दे डाला था। सब पुरुष जो छ महीने निवास कर चुके हों या व्यापार-भवनों में रहते हों या विश्वविद्यालय की उपाधि पाये हुये हों, वे मत दे सकते थे। स्त्रियों को भी, यदि वे ३० वर्ष की आयु वाली हों, इस ऐक्ट से मताधिकार प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त बरो और काउण्टी अर्थात् नगर व ग्राम निर्वाचन क्षेत्रों में एक समान मताधिकार कर दिया गया। निर्वाचन-सम्बन्धी दूसरी कुछ महत्वपूर्ण बातें भी इस ऐक्ट द्वारा हुईं। उदाहरण के लिये यह स्थिर कर दिया गया कि यदि कोई उम्मीदवार डाले हुये मतों की कुल सख्या के आठवें भाग से भी कम मत प्राप्त करेगा तो उसकी १५० पौण्ड की जमानत जब्त करली जायगी। इगलैण्ड में प्रत्येक ७०००० मतधारकों के लिये और आयरलैण्ड में ४३००० मतदाताओं के लिये एक प्रतिनिधि चुना जा सकता था। इसके १० वर्ष बाद दूसरा सन् १९२८ का लोक प्रतिनिधित्व ऐक्ट पास हुआ। इस ऐक्ट के अनुसार सर्ववयस्क मताधिकार (Universal Adult Franchise) दे डाला गया और साम्पत्तिक योग्यता की शर्त हटा दी गई। अब प्रत्येक वयस्क स्त्री पुरुष को जो पहली जून को निर्वाचन-क्षेत्र मे रहता हो, जो अपना नाम मतदाताओं की सूची में लिये जाने से पहले कम से कम ३० दिन तक वहा निवास करता रहा हो और निर्वाचन क्षेत्र में ही या उससे सम्बन्धित पार्लियामेण्टरी काउन्टी या बरो में तीन मास का समय व्यतीत कर चुका हो, वह मतदान का अधिकारी है। व्यापार-भवनों में रहने वालों के लिये भवन की किराये से वार्षिक आय कम से कम १० पौण्ड होनी चाहिये। विश्वविद्यालय के निर्वाचन-क्षेत्र में सब उपाधि-प्राप्त स्नातक मत दे सकते हैं। एक ही व्यक्ति एक सामान्य निर्वाचन में दो क्षेत्रों से मत नहीं दे सकता अर्थात् वह एक निर्वाचन-क्षेत्र में निवासाधिकार के बल पर और उसी समय दूसरे क्षेत्र में व्यापार या विश्वविद्यालय की मत योग्यता के आधार पर मत देने का अधिकारी नहीं हो सकता।

**निर्वाचन क्षेत्र व निर्वाचक दल**—सन् १९४४ के कानून के अनुसार कामन्स के ६४० सदस्य इस प्रकार बटे हुये थे: इगलैण्ड ४६७, वेल्स ३६, स्काटलैण्ड ७४, उत्तरी आयरलैण्ड १३। निर्वाचन-क्षेत्रों की कुल सख्या ६२० थी जिनमें से ६०१ एक प्रतिनिधि वाले क्षेत्र थे, १८ दो प्रतिनिधि चुनने थे और

कार्य-क्रम पूर्व निश्चित करता है और सभी उससे परिचित रहते हैं । इससे प्रति-फल मन्त्रिपरिषद् का पार्लियामेण्ट पर इतना प्रभुत्व रहता है कि पार्लिया-मेण्ट, परिषद् के विचारों का केवल समर्थन भर कर देती है । सब विधिनिर्माण पदासीन नीति के अनुसार निर्धारित हुआ करता है ।

हाउस आफ कामन्स के सदस्यों का मनोनयन (Nomination)—कामन्स की निर्वाचन पद्धति का हम इन तीन शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन कर सकते हैं—(१) एक अभ्यर्थी का मनोनयन होना, (२) निर्वाचन-प्रचार और (३) मतदान व उसके परिणाम की घोषणा । जैसे ही पार्लियामेण्ट का विघटन होता है—चाहे उसकी अवधि पूरी होने के कारण या प्रधानमन्त्री के प्रस्ताव की राजा द्वारा स्वीकृति के फलस्वरूप, प्रत्येक राजनैतिक पक्ष निर्वाचन लड़ने की तैयारी आरम्भ करता है । यहां यह बतलाना ठीक होगा कि प्रत्येक पक्ष का एक राष्ट्रीय संगठन होता है जिसकी शाखायें प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में होती हैं । प्रत्येक पक्ष की सर्वोच्च राष्ट्रीय संस्था पक्ष का कार्यक्रम और शासन नीति की रूप-रेखा स्थिर करती है और उसे अपनी शाखाओं को समझा देती है । उसके पश्चात अभ्यर्थियों के चुनने का महत्वपूर्ण कार्य आरम्भ होता है। प्रत्येक राज-नैतिक पक्ष की स्थानीय शाखा अपने क्षेत्र में सफलता की सबसे अधिक सम्भावना वाले व्यक्ति का नाम प्रस्ताव करके भेजती है । ऐसे अभ्यर्थी के नाम का प्रस्ताव करने में स्थानीय संस्था उस व्यक्ति की लोकप्रियता, निर्वाचन-व्यय को सहने की शक्ति, पक्ष के प्रति उसकी सेवायें और उसके व्यवस्थापक होने की योग्यता, इन पर प्रमुखत विचार करती हैं । इन सब स्थानीय संस्थाओं द्वारा भेजे हुये नामों को राष्ट्रीय संस्था विधिपूर्वक स्वीकार करती हैं । यह आवश्यक नहीं है कि उम्मेदवार जिस निर्वाचन क्षेत्र में खड़ा हो वहा का निवासी भी हो पर उसे किसी न किसी क्षेत्र में मतदाता होने का अधिकार मिला हुआ होना चाहिये । क्षेत्र के मतदाताओं को निर्वाचन-सम्बन्धी राजकर्मचारी से प्राप्त मनो-नयन करने वाले पत्र पर उम्मीदवार (अभ्यर्थी) का नाम लिख कर हस्ताक्षर करना पडता है । एक ही निर्वाचन क्षेत्र से कितने ही उम्मेदवार खडे हो सकते है पर प्रत्येक उम्मेदवार को १५० पौण्ड प्रतिभूति (Security) के रूप में देने पडते हैं जो उस निर्वाचन क्षेत्र में पडे हुये मतों के आठवें भाग प्राप्त न होने पर जब्त कर लिये जाते हैं । पक्ष के बडे बडे नेता ऐसे क्षेत्रों में खडे किये जाते हैं जहा उस पक्ष का प्रभाव सबसे अधिक होता है और उसके उम्मीदवारों की जीत निश्चित कही जा सकती है, क्योंकि इस बात का ध्यान रखना पडता है कि पक्ष के उन नेताओं की हार न हो जिनका पार्लियामेण्ट में होना आवश्यक है । इन क्षेत्रों को उस पक्ष के सुरक्षित स्थान (Safe seat) कह कर पुकारा जाता

है। अधिकतर क्षेत्रो मे तीनो बडे बडे पक्ष अपना एक एक उम्मीदवार खडा करते हैं, इनके अतिरिक्त छोटे छोटे पक्ष कुछ क्षेत्रो में अपने उम्मीदवार खडे करते हैं। इनके अतिरिक्त स्वतन्त्र उम्मीदवार भी जो किसी पक्ष के सदस्य नही होते उन निर्वाचन क्षेत्रो मे खडे होते हैं जिनके निवासियो पर उनका अपनी पहली सेवाओ के कारण इतना प्रभाव है कि उन्हे उनका बहुमत पाने की आशा रहती है।

**निर्वाचन**—उम्मीदवारो के मनोनयन होने से पूर्व ही राजनैतिक पक्ष अपने अपने प्रचार में लग जाते हैं। जब उम्मीदवार का मनोनयन हो चुकता है तब राजनैतिक पक्ष अपने प्रचार में तीव्रता लाते हैं। यह प्रचार अनेको तरह से किया जाता है और जनता पर अपना प्रभाव डालने व उनकी रुचि अपनी ओर करने के लिये जितने भी साधन हो सकते हैं वे अपनाये जाते हैं। सभायें की जाती है, पर्चे बाँटे जाते हैं, समाचार पत्रों में, रेडियो पर, यहा तक कि थियेटर और सिनेमा में भी यह प्रचार किया जाता है। इस प्रचार मे जनता के सामने प्रत्येक पक्ष अपना कार्यक्रम रखता है और यह दिखाने का प्रयत्न करता है कि विपक्षी पक्षो के कार्यक्रम व नीति से उसका कार्यक्रम व नीति क्यो उत्तम है और किस प्रकार राज्यशक्ति उसके हाथ में आने से वह अपने कार्यक्रम के द्वारा जनता को सुखी और देश को समृद्धिशाली बना सकता है। सारे देश मे निर्वाचन के कारण एक हलचल उत्पन्न हो जाती है। इसी समय विचारो के सघर्ष द्वारा भविष्य में अपनाई जाने वाली शासन नीति को जनता परख कर नया रूप देती है। जिस दिन निर्वाचन होता है उस दिन तो चारो ओर कोलाहल व उत्तेजना रहती है। प्रत्येक पक्ष अन्तिम क्षणो में अपनी सारी शक्ति व चतुरता विजय की आशा में लगा देता है और जितने उपाय मतदाताओ को अपनी ओर खीचने में सफल हो सकते हैं उनका सहारा लिया जाता है, पर मतदाता निश्चित स्थान पर जाकर अपना मत गूढ शलाका (Secret ballot) पर देते हैं।

**निर्वाचन के फल की घोषणा**—जब मतदान कार्य समाप्त हो जाता है तब मतो की गिनती करने का काम आरम्भ होता है। जो उम्मीदवार सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करता है वही निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है। ऐसा निश्चय करने में इस बात का कोई महत्व नहीं दिया जाता कि इन मतो की कुल सख्या का कौनसा भाग है। इस प्रणाली को अपेक्षाकृत मताधिक्य (Relative majority system) कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस प्रणाली में केवल यही बात देखी जाती है कि जिस उम्मीदवार को सब की अपेक्षा अधिक मत मिले वही निर्वाचित हो। इस प्रणाली में यह

दोष है कि इसके आधार पर संगठित किया हुआ विधान-मंडल (Legislature) लोकमत को ठीक प्रकार से प्रदर्शित नहीं करता। कारण यह है कि जिस निर्वाचन क्षेत्र में दो से अधिक उम्मीदवार एक ही स्थान के लिये खड़े हुये हों वहां यह संभव है कि विजयी उम्मीदवार के पक्ष में कुल मतों का आधिक्य न हो अर्थात् जितने मत पड़े उनके आधे से अधिक मत उसे न मिले और फिर भी वह निर्वाचित हो जाय क्योंकि अपेक्षाकृत उसके पक्ष में पड़े हुये, मतों की संख्या दूसरों के पक्ष में पड़े हुये मतों की संख्या से अधिक है। उदाहरण के लिये हम यह मान लेते हैं कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में एक स्थान के लिये चार उम्मीदवार खड़े होते हैं क, ख, ग और घ। क को १५०००, ख को १४६००, ग को १४५०० और घ को ४१००, मत मिलते हैं। सो मतों के अपेक्षाकृत आधिक्य के कारण क निर्वाचित हो जायगा और यह सब मतदाताओं का प्रतिनिधित्व करेगा। यहां तक कि वह उन ३४५०० मतदाताओं का भी प्रतिनिधि समझा जायगा जिन्होंने उसके विरुद्ध मत दिया। इससे स्पष्ट हो जायगा कि ऐसे निर्वाचित सदस्य जनता के सच्चे प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते क्योंकि वे बहुमत का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

यह बात सन् १९२२ के नवम्बर में हुये सामान्य निर्वाचन से स्पष्ट हो जायगी। यहां केवल चार निर्वाचन क्षेत्रों के मतों के आंकड़े दिये जायेंगे —

ड्यूज़बेरी

| उम्मीदवार का नाम | दल का नाम | मतों की संख्या |
|---|---|---|
| रीले, बी | लेबर | ८,८२१ निर्वाचित |
| हार्वे, टी० ई० | लिबरल | ८,०६५ |
| पीक, ओ० | यूनियनिस्ट | ६,७४४ |
| | हडर्सफील्ड | |
| मार्शल | लिबरल | १५,८७६ निर्वाचित |
| हडसन | लेबर | १५,६७३ |
| साइक्स | नेशनल लिबरल | १५,२१२ |
| | कैन्ट मेडस्टोन | |
| बैलेयर्स | यूनियनिस्ट | ८ ६२८ निर्वाचित |
| ब्लैक | लिबरल | ८,८६५ |
| डाल्टन | लेबर | ८,००४ |

## पोर्ट्समाउथ सेन्ट्रल

| | | |
|---|---|---|
| प्रीवेट | यूनियनिस्ट | ७,६६६ निर्वाचित |
| फिशर | नेशनल लिबरल | ७,६५६ |
| ब्रैम्पटन | लिबरल | ७,१२६ |
| गौर्ड | लेबर | ६,१२६ |

उपर्युक्त प्रत्येक क्षेत्र मे निर्वाचित व्यक्ति को कुल मतो का बहुत थोडा अश ही प्राप्त हुआ और फिर भी वह जनता का प्रतिनिधि घोषित कर दिया गया।

यह देखा गया है कि अधिकतर क्षेत्रो मे दो या तीन उम्मीदवार खडे होते है। जब तीन उम्मीदवार खडे होते है तो इस बात की सम्भावना बहुत रहती है कि जनता को अपनी पसन्द का उम्मीदवार चुनने के लिये मिल जाय हालाकि तब भी यह हो सकता है कि जो उम्मीदवार निर्वाचको के समान ही विचार रखता हो वह दूसरी बातो में वाछनीय न हो और पार्लियामेण्ट का सदस्य बना कर भेजे जाने के लिये अयोग्य हो या किसी एक विषय में उसका दृष्टिकोण, निर्वाचक के दृष्टिकोण से प्रतिकूल हो। पर जहा दो ही व्यक्तियो में से एक को चुनना है वहा ऐसे बहुत से मतदाता होंगे जो उन दोनो मे किसी को पसन्द नही करते। उदाहरण के लिये उन मे से एक समाजवादी और दूसरा सरक्षणवादी (Protectionist) हो, और यह सम्भव है कि निर्वाचक यह समझता हो कि समाजवाद और सरक्षणवाद दोनो ही देश का अहित करेंगे। ऐसी दशा में यदि वह इनमें से एक को अपना मत दे तो वह ठीक सिद्ध न होगा, क्यों कि वह उस बात का समर्थन करेगा जिसमें अविश्वास ही नही, वरन् जिसका वह विरोधी भी है। यह प्रश्न उठता है कि ऐसी स्थिति में वह क्या करे। उसके सम्मुख दो उपाय है या तो वह किसी को मत न दे और अपने मताधिकार को व्यर्थ होने दे या उन दोनो में से अपेक्षाकृत अधिक वाछनीय को अपना मत दे। प्राय दूसरा उपाय ही काम मे लाया जाता है। पर उसका परिणाम यही होता है कि किसी भी निर्वाचित व्यक्ति के सम्बन्ध में यह नही कहा जा सकता कि उसने जो बहुमत प्राप्त किया है वह वास्तव में बहुसंख्यक निर्वाचको की वास्तविक इच्छा का प्रतीक है। यह बात सामूहिक रूप से सारे राष्ट्र के लिये लागू हो सकती है और यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि लोक-सभा जनता की वास्तविक इच्छा का प्रतिनिधित्व करती है।

अंगरेजी निर्वाचन-प्रणाली में एक दूसरी तरह से भी लोकमत की विकृति हो जाती है। जब तीन राजनैतिक पक्ष निर्वाचन में रहते हों तो यह सम्भव हो जाता है कि कोई पक्ष गिनती में सब से अधिक मत अपने पक्ष में प्राप्त करे पर फिर भी हाउस आफ कामन्स में एक भी स्थान उसको न मिल पावे। यह उस अवस्था में सम्भव है जब कि उस पक्ष के उम्मीदवार अधिकतर क्षेत्रों में मतों की थोड़ी थोड़ी कमी के कारण हार जाय और विपक्षी पक्ष किन्हीं क्षेत्रों में बहुत कमी के कारण हार जाय और दूसरों में थोड़ी अधिकता के कारण जीत जाय। ऐसा होने पर यह हो सकता है कि जो राजनैतिक पक्ष सारे देश की दृष्टि में रखने हुये तो अल्पसंख्यक हो फिर भी हाउस आफ कामन्स में उसका बहुमत हो जाय। प्रथम महायुद्ध के पश्चात् ऐसा दो बार हो चुका है। इसलिये निर्वाचन एक जुआ है जिसमें बहुत कुछ भविष्य पर छोड़ना पड़ता है। इस अनिश्चितता से राष्ट्रीय-जीवन व शासन-नीति पर बड़ा अहितकर प्रभाव पड़ता है। इस विकृति को हम उदाहरण के द्वारा यों समझा सकते हैं—सन् १९१८ का निर्वाचन लीजिये। उस समय मिली-जुली सरकार ने युद्ध-विजय के भारी प्रयास के पश्चात् जनता के समर्थन की प्रार्थना की। इस निर्वाचन में अपने विपक्षी पक्ष को करारी हार दी क्योंकि हाउस आफ कामन्स में विपक्षी दल के १३० स्थानों के मुकाबिले में इसको ४७२ स्थान मिले, फिर भी हिसाब लगाने से यह पता लगा कि विजयी पक्ष को डाले हुये मतों में केवल ५२ प्रतिशत मत प्राप्त हुये और विपक्षी दल को ४८ प्रतिशत। यदि प्राप्त हुये मतों के अनुपात से इन दोनों पक्षों को हाउस आफ कामन्स में स्थान दिये जाते तो सरकार का बहुमत ३४२ स्थानों से न होकर केवल ३० मतों से होता।

सन् १९२२ में मिली जुली सरकार के भग होने पर एक के बाद एक इस प्रकार तीन निर्वाचन थोड़े थोड़े समय के पश्चात् हुये, पहला १९२२ में, दूसरा १९२३ में और तीसरा १९२३ में। सन् १९२२ के निर्वाचन में अनुदार पक्ष को ३४७ स्थान मिले जो विपक्षी पक्षों के कुल प्राप्त स्थानों से सख्या में ७९ अधिक थे। फिर भी उन्हें कुल डाले हुये मतों के ३७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये, उदार पक्ष को २८.५ प्रतिशत और श्रम पक्ष को २९.५ प्रतिशत मिले। सबसे बहुसख्यक पक्ष होते हुये भी बचे हुये दोनों पक्षों के सयुक्त स्थानों से अधिक सख्या में स्थान अनुदार पक्ष को न मिलने चाहियें थे। इस सम्बन्ध में अधिक स्पष्ट करने के लिये कुछ आकड़े नीचे दिये जाते हैं —

विश्वविद्यालयों को छोड़कर क्षेत्रों में जहां निर्वाचन लड़ा गया

| दल | मतों की संख्या | जीते हुये स्थान | मतों के अनुपात से स्थान | प्रति-स्थान मतों की संख्या |
|---|---|---|---|---|
| कन्जरवेटिव | ५,३८१,४३३ | २९६ | २०८ | १८,१८० |
| लेबर व कोपरेटिव | ४,२३७,४९० | १३८ | १६४ | ३०,७०६ |
| लिबरल | २,६२१,१६८ | ५४ | १०१ | ४८,५४० |
| नेशनल लिबरल | १,५८५,३३७ | ५१ | ६१ | ३१,०८५ |
| स्वतन्त्र व दूसरे | ३३७,४४३ | ८ | १३ | ४२,१८० |
| कुल | १४,१६२,८७१ | ५४७ | ५४७ | |

इन आकड़ों से यह स्पष्ट है कि उदार पक्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी, उनके बाद स्वतन्त्र व दूसरों को और श्रमपक्ष को। अनुदार पक्ष को इन सबकी हानि से बहुत लाभ हुआ। इस प्रकार जो हाउस आफ कामन्स बना उससे यह ठीक ठीक पता न लग सकता था कि भिन्न भिन्न पक्षों को जनता का विश्वास किस मात्रा में प्राप्त है।

सन् १९२३ का निर्वाचन संरक्षण (Protection) के प्रश्न पर लड़ा गया। इसमें भी अनुदार पक्ष को पहले के समान ही ३८ प्रतिशत मत प्राप्त हुये पर निर्वाचन प्रणाली की कुछ ऐसी अनिश्चितता है कि अब की बार उन्हें ९० स्थान कम मिल पाये जिससे सब विपक्षी पक्षों के स्थानों के मुकाबिले में उनके १०० स्थान कम रहे। फिर भी उन्होंने जितने स्थान मतों की संख्या के अनुपात से उन्हें मिलने चाहिये थे उनसे २४ स्थान अधिक पाये और उदार पक्ष को २४ स्थान कम मिले। जिस प्रश्न पर यह निर्वाचन लड़ा गया, उसके होते हुये अनुदार पक्ष को मन्त्रिमण्डल से निकलना ही पड़ता इसलिए श्रम-पक्ष ने मन्त्रिमण्डल बनाया। इंगलैंड में पार्लियामेंट के आधुनिक इतिहास में यह पहला उदाहरण था जब अल्पमत वाले पक्ष ने शासन-सत्ता को अपने हाथ में संभाला हो।

यह है कि प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional representation) या द्वितीय-शलाका (Second ballot) प्रणाली का उपयोग किया जाय। द्वितीय-शलाका प्रणाली में यदि किसी क्षेत्र में किसी भी उम्मीदवार को सब विपक्षी दलों के कुल मतों से अधिक मत न मिलें, तो दूसरी बार निर्वाचन हो जिसमें वे ही दो अभ्यर्थी (उम्मीदवार) खड़े हों जिनको पहले निर्वाचन में अपेक्षाकृत अधिक मत मिले हों। इस दूसरे निर्वाचन में इन दोनों में से जिसको अधिक मत प्राप्त हों वही प्रतिनिधि घोषित कर दिया जाय। अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं और इनका उपयोग प्रजातन्त्री जर्मनी, बेलजियम, हालैंड, डेनमार्क, स्वीडन, नौर्वे, स्विटजरलैंण्ड व स्वतन्त्र आइरे में हुआ जहां इनसे कहीं पर कम व कहीं अधिक सफलता मिली। इस प्रणाली का उपयोग इगलैंड में पालियामेंट के सदस्यों के निर्वाचन में नहीं किया गया है क्योंकि इस प्रणाली की अच्छाई स्वीकार करते हुये भी उनकी यह धारणा है कि मानव क्षेत्र में तर्क या विज्ञान सच्चा पथप्रदर्शक नहीं सिद्ध होता। उनका कहना है कि यदि यह प्रणाली दूसरे देशों में सफल सिद्ध हुई है तो यह आवश्यक नहीं कि इगलैंड में भी वह लाभदायक सिद्ध होगी।

. **एकल संक्रमणीय मत-प्रणाली (Single transferable vote system)**—इगलैंड की अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली का समर्थन करने वाली सस्था आजकल एकल-सक्राम्य-मत-प्रणाली को अधिक महत्व देती है। यह प्रणाली अनुपाती प्रणाली की ही एक पद्धति है। इस पद्धति में वर्तमान दो या अधिक एक-प्रतिनिधिक क्षेत्रों को आपस में मिला कर कुछ बड़े बड़े निर्वाचन क्षेत्र इस प्रकार बना दिये जायगे कि प्रत्येक बड़े निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात अभ्यर्थी (उम्मेदवार) चुनें जा सकें। एक निर्वाचन क्षेत्र से कितने ही प्रतिनिधि चुने जा सकें पर प्रत्येक मतदाता को एक ही मत देने का अधिकार होगा। साथ ही साथ उसको मतदान-पत्र पर इस एक मत को देते समय यह स्पष्ट करने की भी स्वतन्त्रता होगी कि वह सर्वप्रथम किस उम्मीदवार को चाहता है, दूसरे नम्बर पर किसको। इसी प्रकार वह सब उम्मीदवारों के नाम के सामने अपनी रुचिसूचक १,२,३,४ आदि सख्या लिख देगा। यदि पहली पसन्द के उम्मीदवार को उस मतदाता के मत की आवश्यकता न हुई और वह उसके मत पाने से पहले ही निश्चित मतों की सख्या पा चुकने से निर्वाचित हो गया या उसके निर्वाचित होने की आशा ही नहीं है तो वह मत दूसरी पसन्द वाले उम्मीदवार को दे दिया जायगा।

इसी प्रकार वह मत यदि आवश्यक हो तो तीसरी, चौथी आदि पसन्द वाले उम्मीदवारो को दे दिया जायगा। मतदाता का मत किसी प्रकार भी व्यर्थ नही जायगा, वह किसी न किसी उम्मेदवार को निर्वाचित करने में उपयोगी सिद्ध होगा। इस प्रणाली की विशेषता यही है कि कोई भी मत व्यर्थ नही जाता यदि कोई कठिनाई है तो वह गिनने की पर उससे मतदाता को कोई कष्ट नही होता। गणना से पहले तो यह स्थिर करना पडता है कि निर्वाचित होने के लिये प्रत्येक उम्मीदवार को कम से कम कितने मत मिलने चाहिये। इसका निकालना बहुत सरल है जबकि हमें कुल प्रतिनिधियो की सख्या व कुल मतदाताओं की सख्या मालूम हो। इस प्रणाली से लोकमत का अधिक सच्चा परिचय मिलता है जो वर्तमान प्रणाली से नही मिल सकता। इससे प्रत्येक मतदाता को वास्तव में पसन्द करने का अवसर मिल सकता है।

**निर्बन्धनीय और एकत्रीभूत मत (Restrictive and cumulative vote)**—अनुपाती प्रणाली की दूसरी दो पद्धतिया निर्बन्धनीय मत-पद्धति और एकत्रीभूत मत पद्धति है। इन दोनो के लिये भी बहु-प्रतिनिधिक निर्वाचन-क्षेत्र होने चाहियें पर पहली पद्धति मे निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियो की सख्या से कम सख्या में मतधारक को मत देने का अधिकार होता है। दूसरी में उसको जितने प्रतिनिधि चुने जाने वाले हैं उतने ही मत देने का अधिकार होता है पर उसे इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह अपने सब मत केवल एक ही उम्मीदवार को दे दे या उनको सब में बाट दे।

अनुपाती प्रतिनिधिक-प्रणाली है तो अच्छी पर इससे अनेक पक्ष बन जायेंगे और दो पक्ष वाली सरकार-प्रणाली समाप्त हो जायगी। इस प्रतिनिधिक-प्रणाली से बहुत से पक्षो को बनने का बडा प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि सभी को अपने समर्थकों की सख्या के अनुपात से पार्लियामेंट में स्थान मिलने की आशा रहेगी। यहा यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या प्रतिनिधिक शासन प्रणाली को सफल-कार्य बनाने के लिये केवल दो पक्ष ही होने चाहियें। यह कहा जाता है कि अब भी तो इगलैंड मे तीन राजनैतिक पक्ष हैं, अनुपाती प्रणाली के अपनाने से इन तीनो पक्षो में स्थिरता आजायेगी और वे लोकमत के सब अगो का प्रतिनिधित्व कर सकेंगे। इस स्थिरता और सुरक्षा के होने पर ही शासन-नीति व शासन कार्य के गुण-दोषों की उचित आलोचना हो सकती है।

**क्या हाउस आफ कामन्स वास्तव मे सब वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है?**—सिद्धान्त रूप से लोकसभा को बिना किसी एक पक्ष को प्रधानता दिये समस्त जनता की इच्छा का प्रदर्शन करना चाहिये। इस सिद्धान्त पर यदि हाउस आफ कामन्स की रचना की परीक्षा करें तो यह स्पष्ट हो सकता है

सन् १९२४ के निर्वाचन में उदार पक्ष की हार आश्चर्यजनक थी, उनको केवल ४२ स्थान ही मिल सके जहां पहले उनको १०८ स्थान प्राप्त थे। यदि मतों के अनुपात से स्थान मिलते तो अब भी उनको ये १०८ स्थान मिल सकते थे, क्योंकि उन्हें कुल मतों के १७ प्रतिशत मत प्राप्त हुये थे। इसके विपरीत अनुदार पक्ष को ४१५ स्थान मिले जबकि उन्हें कुल में ४७ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुये थे और मतों के अनुपात से केवल २८६ स्थान ही मिल सकते थे। सन् १९२९ में श्रम पक्ष को २८८ स्थान मिले जबकि मतों के अनुपात से उन्हें २२४ स्थान ही मिल सकते थे क्योंकि उनके मतों की संख्या केवल ३६ प्रतिशत ही थी। इन दोनों निर्वाचनों के आंकड़े इस प्रकार हैं —

१९२४

| दल | मतों की संख्या | प्राप्त स्थानों की संख्या |
|---|---|---|
| कन्जरवेटिव | ७,४५१,१३० | ४१२ |
| लिबरल | ३,००८,४३८ | ४२ |
| लेबर | ५,४८८,३६० | १५१ |

१९२९

| दल | मतों की संख्या | प्राप्त स्थानों की संख्या |
|---|---|---|
| कन्जरवेटिव | ८,६५६,६३६ | २५६ |
| लिबरल | ५,३०६,४२६ | ५६ |
| लेबर | ८,३८५,३०१ | २८८ |

सन् १९३५ में १५ नवम्बर को जो हाउस आफ कामन्स चुन कर तैयार हुआ उसमें भी इसी प्रकार की निर्वाचन अद्भुतता थी जो नीचे दिये आंकड़ों से स्पष्ट है —

| दल का नाम | मतों की संख्या | स्थानों की संख्या |
|---|---|---|
| कन्जरवेटिव | १०,४९६,००० | ३७५ |
| नेशनल लिबरल | ८६६,००० | ३३ |
| नेशनल लेबर | ३४०,००० | ७ |
| नेशनल (सरकार) | ९७,००० | ५ |
| लेबर | ८,४३३,००० | १६८ |
| लिबरल | १,४३३,००० | १९ |
| दूसरे | ३०२,००० | ८ |

यद्यपि १९३५ में जो सरकार बनी वह अपने आपको राष्ट्रीय सरकार कहती थी, अर्थात् ऐसी सरकार जो राष्ट्र के सब पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हो, पर उसमें अनुदार पक्ष के इतने मन्त्री थे कि वह अनुदार सरकार ही कही जा सकती थी। इस सब विवरण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि दो पक्ष-प्रणाली के समाप्त होने पर जब बहुपक्ष प्रणाली (Multiparty system) का जन्म हुआ तो एक प्रतिनिधि निर्वाचन क्षेत्रों से अपेक्षाकृत मताधिक्य पद्धति से चुना हुआ हाउस आफ कामन्स सच्चे रूप से जनता का प्रतिनिधित्व न करने लगा।

**बहुसंख्यक मतदाताओं का मताधिकार से वंचित होना**—युद्धोत्तर निर्वाचन के विश्लेषण से यह भी प्रकट हो जायगा कि ब्रिटिश निर्वाचन प्रणाली में बहुसंख्यक व्यक्ति अपने मताधिकार के लाभ से वंचित रह जाते हैं। यदि हम उन व्यक्तियों की संख्या गिनें जो अपने क्षेत्र में केवल एक ही उम्मीदवार के खड़े होने के कारण अपने मताधिकार का उपयोग ही न कर सके, व उनकी जिनका प्रतिनिधि निर्वाचन में हार गया और उसके लिये दिया हुआ मत व्यर्थ हो गया, व उनकी संख्या जिन्होंने अपने मत का उपयोग ही नहीं किया क्योंकि उनको कोई ऐसा उम्मीदवार न मिला जिसकी नीति का वे समर्थन करते और उनकी संख्या गिनें जिन्होंने बेमन से अपना मत ऐसे उम्मीदवार को दिया जो उनके विचारों का प्रतिनिधित्व तो न करता था पर दूसरों से अधिक अनुकूल था, तो यह पता लग जायगा कि लगभग ७० प्रतिशत मतदाता ऐसे होंगे जो अपने मत का प्रभाव शासन सगठन पर न डाल सके होंगे या जिन्होंने ऐसी नीति का समर्थन कर दिया होगा जिसके वे विरोधी हैं।

निर्वाचन की इन्हीं न्याय प्रतिकूलता और असगतता को दूर करने के लिये इंगलैण्ड में कई सुधार के सुझाव उपस्थित किये गये। दूसरे देशों में तो इन सुधारों को कार्यान्वित भी किया गया पर इंगलैण्ड में अनुदार और श्रम दो बड़े पक्षों ने इन सुधारों पर अधिक ध्यान नहीं दिया है क्योंकि इनमें से प्रत्येक यह सोचता है कि यदि पुरानी पद्धति ही चलती रहे तो स्यात् उसको लाभ हो। दोनों ही यह आशा लगाये बैठे हैं कि उदार पक्ष कुछ दिनों में लोप हो जायगा और उसका स्थान सबको ही मिलेगा।

## निर्वाचन-प्रणाली के दोष-निवारक सुझाव

निर्वाचन-प्रणाली के जिन दोषों की ओर ऊपर ध्यान आकृष्ट किया है उनको कई उपायों से दूर किया जा सकता है। इन उपायों में से

कि यह सदन किन किन वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है। यदि इसकी सदस्यता का विश्लेषण किया जाय तो हमें कुछ रोचक बातें मालूम होंगी। ग्रीव्ज ने अपनी "दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन" नामक पुस्तक में लिखा है, "हाउस ऐसे दो विभागों में बटा हुआ है जो उसके बाहर सामाजिक वर्ग-विभाग से मिलते जुलते हैं। दोनों प्रमुख पक्षों के सदस्य एक ही सामाजिक वर्ग से नहीं आते। उनमें धन की, शिक्षा की, धार्मिक व्यवसाय की, सम्पत्ति की व अवकाश-उपयोग की विभिन्नता रहती है। और यदि ऐसा है तो इसमें आश्चर्य ही क्या है कि राजनीति के विषय में उन दोनों में मौलिक मतभेद हो और उनके राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य एक दूसरे के विरोधी हों।"* सन् १९३१ में हाउस के १८८ सदस्य *कम्पनियों के सञ्चालक-मण्डलों में ६६१ स्थानों पर आसीन* थे जिनमें से १५७ उन मण्डलों के सभापति के स्थान पर थे। इन १८८ *सदस्यों में* १६५ अनुदार पक्ष के लोग थे। बाकी २३ श्रमिक पक्ष के सदस्य थे जिनमें २० श्रमिक संघों के पदाधिकारी थे। अधिकतर उपाधि-प्राप्त पार्लियामेंट के सदस्य अनुदार पक्ष के सदस्य थे। अनुदार पक्ष साधारणतया उच्च श्रेणी के व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है श्रमिक (लेबर) पक्ष साधारण मनुष्य का। "यह स्मरण रखना चाहिये कि उच्च श्रेणी के व्यक्तियों की सामाजिक श्रेष्ठता और भूमि के स्वामित्व से मेल खाने वाली साधारण श्रेणी वालों की औद्योगिक या व्यापारिक प्रभुता पहले की तरह अब देखने को नहीं मिलती।" पहले जहा एक के हाथ में सामाजिक श्रेष्ठता और जागीर होती थी वहां दूसरे पक्ष के हाथ में उद्योग और व्यापार से कमाई हुई सम्पत्ति थी। "इस बात के न रहने से और दोनों प्रभुताओं को एक ही हाथ में कर लेने की इच्छा बलवती होने के कारण शासक पक्ष और विरोधी पक्ष के हितों का पहले जैसा अब ताना बाना नही बनता।'

**सदन का संगठन**—जब सामान्य निर्वाचन हो चुकता है तब नया सदन अपना संगठन करने के लिये एकत्रित होता है। सबसे पहला काम स्पीकर *(अध्यक्ष) का निर्वाचन करना होता है। किसी भी विधानमंडल के अध्यक्ष का* आसन ग्रहण करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति में दो गुणों की विशेष आवश्यकता है, निरपेक्षता और निर्णय करने की योग्यता। अध्यक्ष को कार्यप्रणाली के सब नियमों की जानकारी होनी चाहिये। यदि ये बातें न हो तो विधानमंडल केवल एक भीड़ रह जाती है जहां समय बर्बाद होता है बिना समुचित विचार हुये कानून बनते हैं और विधान मण्डल की उपयोगिता में विश्वास नही रहता।

---

* ग्रीव्ज दी ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ३।

भाग्यवश इगलैण्ड की पालियामेट का यह दावा सत्य सिद्ध हो चुका है कि उसका स्पीकर (अध्यक्ष) पक्षपात शून्य है। अध्यक्ष सदन की पूरी अवधि के लिये चुना जाता है। पर एक बार चुने जाने के बाद वह जितनी बार चुना जाना चाहे चुना जा सकता है। उसके चुनाव के लिये विभिन्न पक्षों के नियामक (Whips) पहले ही मिल कर समझौता कर लेते है और एक उम्मीदवार को चुन लेते है जिससे सदन मे चुनाव होते समय एकमत होकर अध्यक्ष का चुनाव हो। जिस क्षण अध्यक्ष चुन लिया जाता है तब से वह किसी पक्ष का सदस्य नही रहता और विधानमडल के सघर्ष में बिलकुल तटस्थ रहकर दोनो पक्षो के मध्य मे बराबर जाना रहता है। वह अनुशासन रखता है और वाद-विवाद को नियम-पूर्वक चलाने का काम करता है। इसीलिये इस पद की निरपेक्षता सर्वमान्य हो गई है और हर सामान्य निर्वाचन में अध्यक्ष का निर्वाचन क्षेत्र उसे बिना विरोध के चुन लेता है। केवल एक बार ही ऐसा हुआ कि श्रमिक दल (Labour Party) ने स्पीकर के विरुद्ध अपना उम्मीदवार खड़ा किया और उसमे वह हार भी गया। तब से स्पीकर की महत्ता और भी बढ गई है।

**अध्यक्ष (Speaker) के कर्तव्य**—इगलैंड में स्पीकर का पद बहुत प्राचीन है और १४वी शताब्दी से बिना कभी भग हुये चलता चला आ रहा है। स्पीकर के मुख्य कर्तव्य सदन की बैठकों में अध्यक्ष का काम करना है। इस काम में उसे सदन के काम को नियमानुकूल रखना पडता है और जब विधेयक (Bills) पास हो जाते है। तब उन्हे प्रमाणित करना पडता है। स्पीकर को अच्छा वेतन दिया जाता है, और अवकाश प्राप्त करने में पेंशन भी दी जाती है, साथ साथ लार्ड की उपाधि भी दी जाती है पर उसे पाने का कोई अधिकार नही होता, वह तो राजा की भेंट स्वरूप ही मिलती है।

सदन के दूसरे कर्मचारी भी होते है। उनमें से क्लर्क (clerk) सारे अभिलेखो (Records) की देख भाल करता है और उसी को विधेयक प्रश्न सम्बन्धी नोटिस पहुँचने चाहिये। वही स्पीकर के आदेश से प्रतिदिन का कार्यक्रम तैयार करता है। सारजेंट-एट-आर्म्स (Sergeant-at-Arms) सदन में स्पीकर के प्रवेश की घोषणा करता है और अनुशासन रखने में स्पीकर के आदेशो का पालन करता है।

**सदन की समितियाँ**—प्रत्येक नये सदन के सगठित हो चुकने पर कुछ समितियो का सगठन किया जाता है और प्रत्येक समिति को निश्चित कार्य

भार सौंप दिया जाता है। मुख्य समितियां ये छः स्थायी समितियां हैं जो प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में चुनी जाती हैं। जितने विधेयक सदन के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं वे सब पहले परीक्षा और सुझाव के लिये इन समितियों में से एक को भेज दिये जाते हैं। इनके अतिरिक्त जो विधेयक किसी भी समिति के अधिकार क्षेत्र में नहीं पड़ते उनके लिये दूसरी समितियां बनाई जाती हैं। विशेषकर वे विधेयक जिनमें कोई नव सिद्धान्त अन्तर्भूत होते हैं उनके लिये पृथक् समितियां बनाई जाती हैं। इन समितियों को "सेलेक्ट" (Select) समितियां कहते हैं। जो स्थायी छः समितियां हैं वे क्रमानुसार लोक-लेखा (Public Accounts) स्थायी आदेशों (Standing Orders) जनता के प्रार्थना-पत्रों (Select Public Petitions) स्थानीय विधान-निर्माण (Local Legislation) और विशेषाधिकारों (Privileges) से सम्बन्ध रखती हैं। छठी समिति सारे सदन की होती है। जब सदन समिति के रूप में अपनी कार्यवाही करता है उस समय स्पीकर अपने आसन से उठ जाता है, और दण्ड (Mace) आसन के नीचे रख दिया जाता है जो इस बात की सूचना देता है कि सदन का स्थगन (Adjournment) हो गया, और सभापति का आसन वह पुरुष लेता है जो इसके लिये विशेषतया चुना हुआ होता है। यह सभापति (Chairman) स्पीकर की भांति पक्षपात शून्य नहीं होता वरन् वह अपने पक्ष का सदस्य बना रहता है। जब सदन समिति के रूप में बैठकर काम करता है तब सदन के नियमों का कड़ाई के साथ पालन नहीं किया जाता। कोई सदस्य एक ही प्रश्न पर जितनी बार चाहे उतनी बार बोल सकता है, प्रस्तावों के समर्थन की आवश्यकता नहीं होती जिस विषय पर निर्णय हो चुका हो उस पर पुनः विचार हो सकता है। जब सदन समिति के रूप में अपना कार्य समाप्त कर चुकता है तो वह अपनी रिपोर्ट देने के लिये फिर से सदन के रूप में आ जाता है, स्पीकर अपना आसन ग्रहण कर लेता है, दण्ड फिर आसन पर रख दिया जाता है और पूर्ववत सदन का काम आरम्भ हो जाता है।

**समितियां कैसे नियुक्त की जाती हैं**—यद्यपि सिद्धान्त रूप से समितियों की नियुक्ति सदन में चुनाव के द्वारा हुई समझी जाती है पर व्यवहार में यह काम निर्वाचन समिति (Committee of selection) पर छोड़ दिया जाता है जिसमें ११ सदस्य होते हैं जो प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में दोनों दलों द्वारा छांट लिये जाते हैं। वास्तव में प्रधानमन्त्री और विरोधी पक्ष का नेता दोनों मिलकर इनके छांटने में सहमत हो लेते हैं। उसके पश्चात् ये नाम सदन में स्वीकृत हो जाते हैं। उसके बाद निर्वाचन समिति प्रत्येक स्थायी

और 'सलेक्ट' समिति के सदस्यो को चुनती है। चुनने समय बहुमत पक्ष के ही सब व्यक्ति नही चुन लिये जाते वरन् यह ध्यान रखा जाता है कि सदन में प्रत्येक पक्षो के सदस्य की गिनती के अनुपात से ही इन समितियो में उन पक्ष के व्यक्ति रहे।

सदन की गणपूरक सख्या (Quorum) अर्थात् सदस्यो की जिस सख्या में उपस्थिति के बिना कार्यारम्भ नही हो सकता वह ४० है। जब तक ४० सदस्य सदन मे उपस्थित न हो तो सदन वैधरूप से कार्यवाही नही कर सकता। जब गणपूरक सख्या नही होती तो एक घटी बजाई जाती है और इस घटी के बजने के दो मिनट के समय के भीतर सदस्य आकर यदि इस सख्या को पूरा नही करते तो स्पीकर सदन को स्थगित कर देता है।

**सदन मे कार्यक्रम के नियम**—अपने कार्यक्रम के सम्बन्ध मे सदन स्वय ही नियम बनाता है। इनम से कुछ ये है —वाद विवाद में दूसरे सदन में होने वाले वाद विवाद का कोई परिचय न दिया जाय, या न्यायालय द्वारा विचाराधीन विषय पर कोई आलोचना न की जाय, राजा का नाम अनादरपूर्वक या सदन में प्रभाव जमाने के हेतु न लिया जाय, देश-द्रोही या विद्रोहात्मक वचन न बोले जाय, न बाधा डालने वाली या विलम्बकारी चालें चली जाय, कोई सदस्य चाहे तो अपनी टिप्पणियां देख सकता है पर अपने व्याख्यान को पढ कर सुना नही सकता, दूसरे सदस्यों का नाम लेकर व्याख्यान में निर्देश नही किया जा सकता, और स्पीकर के आदेश की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सदन न वाद-विवाद को कम करने और कार्यवाही में शीघ्रता लाने के लिये बहुत से उपाय निश्चित कर रखे है। उनम से पहला यह है कि यदि कोई सदस्य अनावश्यक विलम्ब करने का प्रयत्न करे और कार्यवाही में रुकावट डाले तो स्पीकर अपराधी का नाम बता देता है। यदि इस सदस्य के विरुद्ध विलम्बन का प्रस्ताव रखा जाय और वह स्वीकृत हो जाय तो उस सदस्य को सदन से निश्चित समय के लिये बाहर निकाला जा सकता है। यह समय उस सत्र के बच हुये समय से अधिक नही हो सकता। दूसरा, वाद विवाद या व्याख्यान को समाप्त करने के लिये क्लोज़र (Closure) अर्थात समाप्ति का प्रस्ताव काम म लाया जाता है। इस प्रस्ताव के लिये कोई सदस्य यह कह दे 'कि अब प्रश्न पर मत निर्णय किया जाय' और यदि इस कथन को सभापति स्वीकार कर ले तो वह वाद विवाद को वही समाप्त कर देता है और इस प्रस्ताव को सदन के सामने रखता है। यदि समाप्ति के प्रस्ताव के समर्थन के लिये १०० सदस्य

खड़े हो जायं तो वह स्वीकृत समझा जाता है। गिलोटीन (Guillotine) कहलाने वाला उपाय भी वाद-विवाद को बन्द करने के लिये काम में लाया जाता है। इसके द्वारा व्याख्यानों पर समय-सम्बन्धी सीमा बांध दी जाती है। जब समिति रूप में सदन कार्य करता है तो उपस्थित संशोधनों में से अध्यक्ष कुछ संशोधनों को ही विचार करने के लिये छांट लेता है जिससे बचे हुये संशोधनों पर विचार करने का समय बच जाता है, क्योंकि उन पर विचार नहीं किया जाता इस युक्ति को कंगारू (Kangaroo) कहते हैं।

**सदस्यों के कर्तव्य (Obligations) और विशेषाधिकार (Privileges)**—सदस्यों के कुछ कर्तव्य और कुछ विशेषाधिकार होते हैं। कर्तव्यों में पहला तो यह है कि प्रत्येक सदस्य को सदन के कार्य में भाग लेने से पहले पार्लियामेंट की सामान्य शपथ लेनी पड़ती है जो इस प्रकार है "मैं ······ शपथ लेता हूँ कि मैं सम्राट् ······ व उसके उत्तराधिकारियों के प्रति विधान के अनुसार सच्ची भक्ति रखूँगा इसलिये ईश्वर मुझे शक्ति दे।" दूसरे, प्रत्येक सदस्य को सदन के नियमों का पालन करना पड़ता है और स्पीकर की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ती है। अधिकारों में, सदस्यों को १००० पौंड वार्षिक वेतन मिलता है, उन्हें बोलने की स्वतन्त्रता रहती है, पार्लिमेंट की जब बैठक हो रही हो उस समय व उससे ४० दिन पूर्व व पश्चात् तक उनको बन्दी नहीं बनाया जा सकता, उन्हें विधेयक और प्रस्तावों को रखने की स्वतन्त्रता रहती है और वे प्रश्न भी पूछ सकते हैं जिनका उत्तर मन्त्रिपरिषद् देती है।

**सदन के संस्था रूपी अधिकार**—सदन के जो संस्था-रूपी कुछ अधिकार होते हैं वे ये हैं। स्पीकर की मध्यस्थता से यह सामूहिक रूप से सम्राट् तक पहुंच सकता है। इसका यह अधिकार है कि इसकी कार्यवाही का अधिक से अधिक अनुकूल अर्थ लगाया जाय। स्पीकर चाहे तो दर्शकों को बाहर हटाने की आज्ञा दे सकता है, वह चाहे तो सदन की कार्यवाही के आलेख के जनता द्वारा प्रकाशन पर रोक लगा सकता है। सदन स्वयं ही अपनी रचना पर नियन्त्रण रखता है, यह अपने सदस्यों को या बाहर वालों को सदन के अनादर करने के अपराध का दण्ड दे सकता है।

## हाउस आफ लार्डस

"हाउस आफ लार्डस का जन्म राजनैतिक विकास की प्रथम प्रफुल्ल अचेतनावस्था में हुआ। बड़े बड़े जागीरदारों व विजयी सामन्तों के लिये यह स्वाभाविक था कि वे राजा को परामर्श देने का कार्यभार अपने ऊपर लेते और स्वाभाविक था उन विद्वान् सम्पत्तिवान् धर्मपुजारियो के लिये 'कि वे ग्रेट कौंसिल के शक्तिशाली वृत्त के भाग बनते" ।% वर्तमान हाउस आफ लार्डस उस एंग्लो-सेक्सन विटॅनगॅमौट (Witenagemot) का ऐतिहासिक प्रतिनिधि है जो नौर्मन काल में अपने पूर्व नाम को छोड़ कर मैग्नम कांसीलियम ( Magnum Concilium ) के नाम से प्रकट हुआ। बहुत प्राचीन समय से अब तक पीयरों (Pears) के बनाने का विशेषाधिकार राजा का ही रहा है। ये पीयर अपने आप ही, बिना किसी दूसरी आवश्यकता को पूरी किये हाउस आफ लार्डस में बैठने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

**हाउस आफ लाडस् नाम क्यों?**—यद्यपि ब्रिटिश हाउस आफ लार्डस् ऐतिहासिक दृष्टि से इगलैंड में ही नही वरन् सारे विश्व में प्रथम विधान मंडल है परन्तु अपने अधिकारो और कर्तव्यो के कारण यह दूसरा सदन कहलाता है। कभी कभी इसे 'हाउस आफ पीयर्स' कह कर भी पुकारा जाता है परन्तु ऐसा करना ठीक नही है क्योंकि सब पीयरो को हाउस में स्थान नही मिलता और न सब सदस्य पीयर ही होते हैं। पीयरेज (peerage) और हाउस आफ लार्डस् से एक ही वस्तु का भान नही होता। स्काटलैंड और आयरलैंड के सब पीयर हाउस आफ लार्डस् के सदस्य नही होते, उनके अतिरिक्त विशप (पादरी) और पुनर्विचार करने वाले न्यायाधीश लार्डस् पीयर नही होते पर वे हाउस के सदस्य होते हैं। पीयर की उपाधि पैतृक होती है और पिता से पुत्र को यह उपाधि व इससे सलग्न विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और हाउस आफ लार्डस् के सब लार्डस् को यह अधिकार प्राप्त नही होता।

**पीयर बनाने का राजकीय विशेषाधिकार**—जैसा पहले कहा जा चुका है है केवल राजा को ही यह विशेषाधिकार है कि वह पीयर बनावे, यही नही वह जितने पीयर बनाना चाहे बना सकता है। हा, पीयर बनाने की इस स्वतन्त्रता

---

%फाइनर : थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मोडर्न गवर्नमेंट, पृ० ६७८

पर कुछ नियन्त्रण अवश्य हैं। वे ये हैं—पहला, स्काटलैंड से सम्मिलित कराने वाले विधान के अनुसार स्काटलैंड का कोई नया पीयर नहीं बनाया जा सकता। दूसरे, आयरलैंड को मिलाने वाले विधान के अनुसार प्रत्येक तीन विलीन हुये पुराने पीयरों के स्थान पर एक नया पीयर बनाया जायगा उस समय तक जब तक कि वहां के पीयरों की संख्या घटते घटते १०० न रह जाय। तीसरे, राजा उस व्यक्ति को फिर से पीयर नहीं बना सकता जिसने पहले कभी अपनी पीयर की उपाधि वापिस कर दी हो। पर वास्तव में कोई व्यक्ति अपनी उपाधि वापिस नहीं कर सकता क्योंकि हाउस ने सन् १६६४ में यह प्रस्ताव पास कर दिया था कि कोई पीयर अपनी उपाधि को समाप्त नहीं कर सकता। चौथे, जागीर भेंट करने पर राजा पीयर की उपाधि को ऐसे नियमों से मर्यादित नहीं कर सकता जो अवैध हों अर्थात् जो विधान से मान्य न हों।

**हाउस आफ लार्डस में कौन कौन लोग होते हैं**—हाउस आफ लार्ड्स् में तीन श्रेणियों के सदस्य होते हैं (क) पार्लियामेंट में पैतृक अधिकार वाले लार्ड्स् जिनमें राजघराने के राजकुमारों के अतिरिक्त पांच प्रकार के इंगलैंड के पीयर होते हैं—ड्यूक, मारक्वेस, अर्ल, वाइकाउन्ट और बैरन। ये उपाधियां ज्येष्ठ पुत्र को पिता के पश्चात् प्राप्त होती हैं। (ख) बिना पैतृक अधिकार वाले लार्डस् जिनमें स्काटलैंड के पीयरों से चुने हुये १६ पीयर होते हैं और आयरलैंड के पीयरों द्वारा चुने हुये २८ आजीवन पीयर होते हैं, स्काटलैंड के बचे हुये पीयर हाउस आफ कामन्स की सदस्यता के लिये खड़े नहीं हो सकते पर आयरलैंड के पीयर हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होकर जाने के लिये खड़े हो सकते हैं। (ग) आजीवन लार्ड जिनमें २६ धर्माधिकारी लार्ड और छ लार्ड्स् आफ अपील इन औडिनरी (Lords of Appeal-in ordinary) जो १५ वर्ष तक बैरिस्टर रह चुके हों या जो किसी बड़े न्यायाधीश के पद पर आसीन रह चुके हों, होते हैं। धर्माधिकारी लार्डस् में कैंटरबरी और यार्क के दो बड़े पादरी और २४ छोटे पादरी होते हैं। लार्डस् आफ अपील (Lords of Appeal) की नियुक्ति राजा ही करता है और उनको ६००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। इन छ लार्डों को तभी अपने पद से हटाया जा सकता है जब पार्लियामेंट के दोनों सदन मिलकर ऐसा करने के लिये राजा से प्रार्थना करें। ये आजीवन लार्ड जब तक जीवित रहते हैं हाउस के सदस्य बने रहते हैं। पहले, पीयर लोग प्राक्सी (Proxy) अर्थात् दूसरे पुरुष के द्वारा अपना वोट हाउस में दे सकते थे पर सन् १८६८ के पश्चात् से यह प्रथा बन्द कर दी गई, अब अपना वोट (मत)

देने के लिये प्रत्यक पीयर को हाउस मे उपस्थित होना चाहिये।

**लार्डों के कर्तव्य और विशेषाधिकार**—पालियामेंट के लार्डों के कुछ कर्तव्य और कुछ विशषाधिकार भी होते हैं। प्रत्येक पीयर को, चाहे वह पालियामेंट का सदस्य हो या न हो, राजा के पास सीधी पहुच होती है। जो लार्ड २१ वर्ष की आयु वाला न हो या जिसने सन् १८६६ के शपथ विधान के अनुसार राजभक्ति की शपथ न ली हो वह हाउस में न बैठ सकता है न वोट (मत) दे सकता है। यदि किसी लार्ड को देशद्रोह या किसी दूसरे महापराध का दण्ड मिल चुका है तब वह उस समय तक हाउस में बैठकर वोट नही दे सकता जब तक कि वह दण्ड भुगत न चुका हो। जो व्यक्ति ब्रिटेन का नागरिक नही वह हाउस आफ लार्डस् में बैठने के लिये नही बुलाया जा सकता न किसी दिवालिया पीयर को बुलाया जाता है। एक बार जब पैतृकाधिकार वाले पीयर को बुलावा मिल जाता है तो वह बुलावे का अधिकार उसके उत्तराधिकारी को भी उसके बाद अपने आप मिल जाता है। रायपुर (विहार) के प्रथम लार्ड सिनहा की जब मृत्यु होगई (प्रथम लार्ड सिनहा हाउस आफ लार्डस् के सदस्य थे) तो उनके पुत्र और उत्तराधिकारी लार्ड सिनहा को जो अभी जीवित है, हाउस में आने का बुलावा न मिला क्योंकि उनसे यह सिद्ध करने को पूछा गया कि वे बहु-विवाह की अयोग्यता के अपराधी तो नही है। इस पर यह प्रश्न हाउस की विशेषाधिकार सम्बन्धी समिति (Committee of Privileges of the House of Lords) के सम्मुख रखा गया जिसका निर्णय लार्ड सिनहा के अनुकूल रहा और अब लार्ड सिनहा को बराबर हाउस के लिये बुलावा आता है और वे हाउस में बैठने के लिये जाते हैं। पालियामेंट की जब बैठक हो रही हो उस समय या किसी सत्र के चालीस दिन पूर्व और पश्चात तक हाउस आफ लार्डस् के किसी सदस्य को किसी अपराध के लिये पकडा नही जा सकता। यह सुविधा लार्डों के नौकरो को भी मिलती है और उनको भी सत्र के २० दिन पूर्व व २० दिन पश्चात् व जब बैठक हो रही हो पकडा नहीं जा सकता। प्रत्येक लार्ड को बोलने की स्वतन्त्रता होती है और उसे यह भी अधिकार होता है कि वह चाहे तो किसी प्रस्ताव पर अपनी अस्वीकृति को हाउस के आलेखो में लिखवा दे। उसे जूरी (jury) में काम करने के भार से मुक्त कर दिया जाता है, पर किसी पीयर की स्त्री हाउस म न बैठ सकती है और न वोट दे सकती है। हाउस की पूर्ण सदस्य-संख्या लगभग ८४० है किन्तु वास्तव में मताधिकारियो की संख्या लगभग १२० है।

**हाउस आफ लार्डस् के विशेषाधिकार**—सदस्य रूप में हाउस आफ लार्डस् को कुछ विशेषाधिकार प्राप्त हैं। हाउस का अनादर करने वाले व्यक्ति को हाउस अनिश्चित काल तक के लिये भी कारागृह भेज सकता है। अपने संगठन के विषय में यह स्वयं ही देखभाल करता है और इस अधिकार का उपयोग करने में यह नये पीयरों के नियमानुकूल बनने या न बनने पर विचार करके निर्णय दे सकता है। यहां तक कि हाउस यदि निर्णय करे तो किसी नये पीयर को, जो अयोग्य ठहरा दिया गया हो, हाउस में बैठने और कार्यवाही में भाग लेने से रोक सकता है और उसके स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है। सन् १९३६ से पूर्व यदि कोई लार्ड देशद्रोह या महापराध का दोषी कहा जाता और यदि वह यह कहता कि उसका मुकदमा लार्डों द्वारा ही सुना जाय तो हाउस ऐसे मुकदमे को सुनता था और निर्णय देता था। पर सन् १९३७ में एक ऐसा कानून लार्ड साके ने विधान मंडल में रक्खा जिसके पास हो जाने पर यह विशेषाधिकार समाप्त कर दिया गया। लार्ड साके (Lord Sankey) ने यह प्रस्ताव क्यों रक्खा, इसके पीछे एक छोटा सा इतिहास है। जब लार्ड डिक्लिफोर्ड पर मोटर दुर्घटना के फलस्वरूप मनुष्य हत्या का अपराध लगाया गया तो उन्होंने अपने विशेषाधिकार की मांग की। दिसम्बर १२ १९३५ को हाउस में मुकदमे की सुनवाई हुई और सुनवाई के अन्त में जब यह प्रश्न रक्खा गया कि बन्दी अपराधी है या नहीं तो ८४ पीयरों में से प्रत्येक ने खड़े होकर कहा "अपराधी नहीं", इससे सबको यह भावना होगई कि यह विशेषाधिकार "कानून के सम्मुख समता" के नियम का उल्लंघन करता है और फलस्वरूप लार्ड साके ने इसको तोड़ने का प्रस्ताव विधान मंडल में रख दिया।

**लार्डस् किसका प्रतिनिधित्व करते हैं**—हाउस आफ लार्डस् दूसरे सदन के रूप में बड़ी ही अप्रगतिशील संस्था है क्योंकि वह सम्पत्तिवर्ग का गढ़ है जहां से वे अपनी रक्षा करते रहे हैं। इसलिये यह सदन लोकमत का प्रतिनिधित्व नहीं करता। लार्डस अपने आप का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी लिये वे उन योजनाओं का विरोध करते रहे हैं जिनसे उनके या दूसरे धनिकों के अधिकारों पर आक्रमण होता हो। लार्डस् में बहुत से बड़े धनी हैं, यह इससे प्रकट हो जायगा कि 'सन् १९३१ में हाउस में २४६ जमींदार थे, बैंकों के डाइरेक्टर ६७, रेलों के ६४, कल के कार- खानों के ४६ और बीमा कम्पनियों के ११२। सन् १९२७ में प्रत्येक पीयर के पास औसतन् ३२,४००

एकड भूमि थी और २२७ पीयर कुल ७,३६२,००० एकड भूमि के स्वामी थे। ७६१ कम्पनियो मे ४२५ डाइरेक्टरो के पद पर २७२ लार्डस् आसीन थे।"* इसलिये यह आश्चर्य की बात नही कि कई अवसरो पर इस हाउस ने रुकावट डालने वाली चालें चली, विशेषकर सन् १८३२ और और १६१० में। जौन स्टूआर्ट मिल (John Stuart Mill) ने इसका वर्णन "एक बडी अोध दिलाने वाली छोटी सी असुविधा" कह कर किया था। ऐसा होते हुये भी अन्त में प्रगतिशील पीयरदल की जीत ही हुई है और रुकावटें हटा ली गई। पार्लियामेंट के लार्डो की सख्या ७४० है पर उनमें ७२० ही हाउस आफ लार्डस् में बैठ सकते है और वोट दे सकते है, बचे हुय नाबालिग (अप्राप्त वयस्क) या स्त्री होने क कारण अयोग्य है। सब पार्लियामेंट के लार्डों की अधिकतर सख्या उन पाच श्रेणियो में विभक्त है जिनको पैतृक अधिकार है। उदाहरण के लिये सन् १६४२ में २६ ड्यूक, ४० मार्क्वेस, १६६ अर्ल, ६७ वाइकाउन्ट और ३४४ बैरन थे। अधिकतर लार्ड हाउस में उपस्थित होने को उत्सुक नही रहते इसलिये सदन की औसतन उपस्थिति केवल ८० है। यह पता लगा है कि सन् १६३२ और १६३३ मे २८७ पीयर कभी भी उपस्थित नही हुयें और सन् १६१६ से १६३१ तक १११ पीयरो ने कभी अपना वोट देने की परवाह न की। जितने उपस्थित भी होते हैं उनमें से आधे कभी बोलने का प्रयत्न नही करते। इससे यह स्पष्ट है कि हाउस की कार्यवाही की ऐसी उपेक्षा ये लार्ड करते हैं कि कभी कभी इस सदन की उपयोगिता पर सन्देह होने लगता है, इसके वर्तमान स्वरूप को बदलने व इसमें सुधार करने के लिये कई प्रयत्न भी किये जा चुके है।

**हाउस आफ लार्डस् के सुधार**—ब्रिटिश राजनीति का एक महत्वपूर्ण प्रश्न हाउस आफ लार्डस् के सुधार का प्रश्न रहा है। सन् १८३२ तक तो हाउस आफ कामन्स भी साधारण जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करता था। पर पहले दो सुधार-विधानो (Acts) के पास हो जाने के पश्चात् हाउस आफ कामन्स तो वास्तविक प्रजातन्त्रात्मक सदन में परिवर्तित हो गया और हाउस आफ लार्डस की ओर सशक दृष्टि से देखने लगा क्योंकि यह भय था कि हाउस आफ लार्डस् प्रजातन्त्र की उन्नति में बाधक सिद्ध होगा। सन् १८६६ में और १८८८ के बीच में अधिकारों की दृष्टि से या सगठन के सम्बन्ध में या दोनों बातो में हाउस आफ

*ओग्ज: ब्रिटिश कन्स्टीट्यूशन, पृ० ५४।

लार्डस् के सुधार करने के लिये कई प्रयत्न किये गये। एक बार तो यह सुझाव रखा गया कि धर्माधिकारी पीयरों को समाप्त कर दिया जाये। पर इनमें से कोई भी प्रयत्न सफल न हुआ। सन् १९०६ में जब उदार पक्ष का मन्त्रिमण्डल बना तो अनुदार पक्ष के लोग हाउस आफ लार्डस् में अपने बहुमत के आधार पर महत्वपूर्ण उदार योजनाओं के पास होने में रोड़ा अटकाने लगे। इसके फलस्वरूप दोनों सदनों में विरोध उत्पन्न हो गया। कामन्स ने यह प्रस्ताव पास किया कि लार्डस् का विरोध होते हुये भी जनता के प्रतिनिधियों की इच्छा सर्वमान्य होनी चाहिये और उसी के अनुसार कार्य होना चाहिये। इसलिये सन् १९०८ में लार्डस् ने अपनी एक समिति नियुक्त की जिसके सभापति लार्ड रोज़बरी हुये। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह सुधार के लिये सुझाव उपस्थित करे। समिति ने यह सिफारिश की कि द्वितीय गृह (Upper House) की रचना निर्वाचन के द्वारा हो, पर इस सुझाव को कामन्स में उदार दल के बहुमत ने स्वीकार नहीं किया।

**ब्राइस समिति**—सन् १९११ में पार्लियामेण्ट एक्ट (Parliament Act) पास हुआ जिससे तुरन्त ही कुछ महत्वपूर्ण सुधार हुये और उसकी प्रस्तावना में यह वचन दिया गया कि भविष्य में हाउस आफ लार्डस के सुधार के लिये कोई वैधानिक कार्यवाही की जायगी यह प्रस्तावना इन शब्दों में थी "और क्या कि यह इच्छा है कि हाउस आफ लार्डस के स्थान पर एक द्वितीय गृह (Second chamber) पैतृक अधिकार के आधार पर न बना कर लोक सत्ता के आधार पर बनाया जाय परन्तु ऐसा परिवर्तन तुरन्त कार्यान्वित नहीं किया जा सकता ।" सन् १९१७ मे एक समिति नियुक्त हुई जिसके सभापति लार्ड ब्राइस थे। इस समिति को यह काम सौंपा गया कि वह हाउस आफ लार्डस के सुधार के सुझाव उपस्थित करे। इस ब्राइस समिति ने अपनी रिपोर्ट में यह सुझाव रखे —(१) द्वितीय गृह के अधिकार हाउस आफ कामन्स के अधिकारों के समान न हो जिससे वह हाउस आफ कामन्स का प्रतिद्वन्द्वी न बन सके (२) इस द्वितीय गृह को मन्त्रिमण्डल बनाने या बिगाड़ने की शक्ति न होनी चाहिये और (३) अर्थ-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के लिये इसे हाउस आफ कामन्स के बराबर अधिकार न मिलने चाहिये। भविष्य में द्वितीय गृह के संगठन के लिये समिति ने ये सिफारिशें कीं (क) किसी राजनैतिक मत को स्थायी प्रभुत्व न मिलना चाहिये (ख) इसका संगठन ऐसा हो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के विचार और दृष्टिकोण का इससे प्रदर्शन हो सके, और (ग) इसमें ऐसे व्यक्ति रखे जायें जो शारीरिक शक्ति न होने या प्रबल दलबन्दी के

अनुकूल स्वभाव न होने के कारण हाउस आफ कामन्स में जाना नही चाहते। समिति के विचार से इस द्वितीय गृह के निम्नलिखित कर्तव्य होने चाहियें —

(१) हाउस आफ कामन्स से आये हुये विधेयको (Bills) की परीक्षा करना और दुहराना। यह काम बडा आवश्यक हो गया है क्यो कि हाउस आफ कामन्स में काम इतना बढ गया है कि पिछले तीस वर्ष में कई अवसरो पर हाउस आफ कामन्स में वाद विवाद को कम करने के लिये विशेष नियम बनाने पडे और उनके अनुसार कार्यवाही करनी पडी।

(२) उन अविरोधी विधेयकों को प्रारम्भ करना जो यदि विचार करने के पश्चात् सुव्यवस्थित रूप में रख दिये जाय तो हाउस आफ कामन्स में सहज ही स्वीकृत हो जाय।

(३) किसी विधेयक के निर्वन्ध (Law) बनने में इतना ही और केवल इतना ही विलम्ब करना जिससे लोकमत को प्रकट होने का पर्याप्त समय मिल सके। उन विधेयको के सम्बन्ध में इसकी विशेष आवश्यकता है जो विधान के आधारभूत सिद्धान्तो में परिवर्तन करना चाहते हो या जो निर्वन्ध सम्बन्धी नये सिद्धान्त प्रचलित करते हो या जो ऐसे प्रश्न उटाते हो जिनके अनुकूल व विरोध लोकमत समान रूप से विभक्त हों।

(४) जिस समय हाउस आफ कामन्स में इतना काम हो कि वह महत्व पूर्ण और बडे प्रश्नो, उदाहरणार्थ जैसे वैदेशिक नीति के लिये समय न निकाल सके, तब उन प्रश्नो पर खुले ढग पर पूरी तरह वाद विवाद करना। ऐसा वाद-विवाद यदि उस सभा में हो जिसे कार्यकारिणी के भाग्य निर्णय करने का अधिकार न हो तो और भी लाभदायक होगा।

हाउस आफ लार्ड स के इस सुधार को कार्यान्वित करने के लिये ब्राइस समिति ने यह सिफारिश की कि नये द्वितीय गृह के सदस्यो की कुल सख्या ३२७ हो। इनमें से २४६ को कामन्स के सदस्य चुने। इस चुनाव के लिये कामन्स के सदस्यों को १३ प्रादेशिक भागो (Regional Divisions) में बाट कर प्रत्येक भाग से अपनी निश्चित सख्या का चुनने का काम दे दिया जाय। बचे हुये ८१ सदस्यो को दोनो आगारो की एक सम्मिलित समिति सब पीयरो (Peers) में से छाटे। इस द्वितीय आगार की अवधि १२ वर्ष रखी गई और प्रत्येक चार वर्ष पश्चात् एक तिहाई सदस्य हट जाय। कोई एक हाउस आफ कामन्स २४६ सदस्यो में एक तिहाई सदस्य निर्वाचित न करे, इसका अभिप्राय

यह था कि यह योजना क्रमानुसार धीरे-धीरे कार्यान्वित हो न कि तुरन्त कि
एक निश्चित समय पर। यह योजना भी केवल विचार ही रह गई, उस पर
कार्यवाही न की गई।

सन् १६२६ की योजनायें—सन् १६२८ में लार्ड केव (Cave
ने एक दूसरी योजना उपस्थित की। इस योजना का उद्देश्य हाउस आफ काम
के विरुद्ध हाउस आफ लार्ड्स को अधिक शक्तिशाली बनाना था। पर इस
बड़ा विरोध हुआ, सब ही ने इसको धिक्कारा। उसी वर्ष दिसम्बर में ला
क्लैरेण्डन (Lord Clarendon) ने फिर एक दूसरी योजना हाउस आ
लार्ड्स के सम्मुख रखी जिसका उद्देश्य यह था कि दक्षता पूर्वक शीघ्रता से कार्य
सम्पादन के लिए दोनों गृह में अधिक मेल रहें और एक दूसरे के सहायक रहें।
इस योजना के अनुसार सब पीयर (Peers) मिल कर अपने में से १५०
पीयर चुनें, दूसरे १५० पीयरों को राजा प्रत्येक पार्लियामेण्ट की अवधि तक
के लिये मनोनीत करना। मनोनीत करने में राजा यह ध्यान रखता कि पीयर
हाउस आफ कामन्स में विभिन्न पक्षों की संख्या के अनुपात से ही नियुक्त किये
जायें। इसके अतिरिक्त राजा को कुछ आजीवन पीयर बनाने का अधिकार भी
दिया गया था। पर यह योजना भी स्वीकृति की अन्तिम सीढ़ी तक न पहुंच सकी।

सैलिजबरी की सुधार योजनायें—सन् १६३३ में कतिपय वैधानिक
सिद्धान्तों का सहारा लेकर लार्ड सैलिजबरी ने हाउस आफ लार्ड्स के सुधार
का एक विधेयक पुरःस्थापित किया। इस विधेयक के सिद्धान्त ये थे कि अर्थ-
सम्बन्धी विषयों में जनता के प्रतिनिधियों की राय सर्वोच्च समझी जाय और
उनको अन्तिम स्वीकृति देने का अधिकार हो दूसरे विषयों में निर्बन्ध तभी
अन्तिम रूप से पास (पारित) हों, जब जनता विचारपूर्वक निर्णय करे। पैतृक अधि-
कार के सिद्धान्त में कमी लाने के लिये द्वितीय गृह (Second Chamber)
के सदस्यों की संख्या कम कर के ३२० रखी गई। इन ३२० सदस्यों में १५०
पैतृक अधिकार वाले पीयर, १५० दूसरे पार्लियामेण्ट के लार्ड जो पीयरों के
बाहर से चुने जाय, और बाकी रौयल पीयर (Royal Peers) न्याय लार्ड
(Law Lorn) और कुछ धर्माधिकारी रखे गये थे। इसके अतिरिक्त
मुद्रा-विधेयकों को प्रमाणित करने के हेतु सन् १६११ के ऐक्ट में निर्धारित
स्पीकर के अधिकार के स्थान पर इस योजना में प्रमाणित करने का अधिकार
दोनों सदनों की एक सम्मिलित समिति को दिया गया। यह भी प्रस्ताव किया
गया कि यदि किसी योजना को हाउस आफ लार्ड्स तीन बार पूर्ण बहुमत
(absolute majority) से रद्द कर दे तो उसके सम्बन्ध में निर्णय दूसरे

होने वाले हाउस आफ कामन्स पर छोड दिया जाय। यह योजना भी निर्बन्ध का रूप न पा सकी।

सुधार की आवश्यकता इतनी योजनाओ के असफल रहने के पश्चात् भी ज्यों की त्यो बनी हुई है क्यो कि हाउस आफ लार्ड् स द्वितीय गृह का कर्तव्य भली भाति पूरा नही करता। ऐसे आगार के दो मुख्य कार्य होते हैं, पहला, प्रथम गृह से आई हुई योजनाओ को दुहराना और उन पर पुनर्विचार का अवसर प्रदान करना। दूसरा, उन लोगो को राज्यकार्य में साझी होने की सुविधा देना जो हाउस आफ कामन्स में निर्वाचित होने के लिये निर्वाचन लड़ना नही चाहते। श्री ग्रीव्ज (Greeves) ने यह सुझाव रखा कि दोनो कार्य सिद्धान्तो को व्यवहार रूप दिया जा सकता है यदि (१) हाउस आफ कामन्स द्वारा पार्लियामेण्ट के लार्डो का चुनाव हो। यह चुनाव प्रत्येक पार्लियामेण्ट के पहिले सत्र के प्रथम मास मे हो और लार्ड पार्लियामेण्ट के विघटन होने तक अपने पदो पर स्थित रहे, (२) कामन्स में जिस पक्ष के जितने सदस्य हो वे अपनी सख्या के आधे के बराबर लार्डों को चुनें और (३) हाउस आफ कामन्स का स्पीकर निर्वाचन-पद्धति निश्चित करे। सुधार की कोई योजना भी स्वीकार की जाये पर यह निर्विवाद है कि हाउस आफ लार्ड् स का सुधार होना आवश्यक है जिससे यह व्यवस्थापक मण्डल का उपयोगी अग सिद्ध हो सके।

**हाउस आफ लार्डस् का संगठन**—हाउस आफ कामन्स की तरह हाउस आफ लार्ड् स का भी एक सगठन है। इसका सभापति लार्ड चान्सलर (Lord Chancellor) कहलाता है जो मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है। लार्ड चान्सलर को पीयर होना आवश्यक नही है इसलिये उसका आसन हाउस की परिधि से बाहर रहता है। उसका आसन वूसलैक (Woolsack) कहलाता है जिसका अर्थ है कि वह लार्ड् स के समान कीमती आसन पर न बैठने योग्य होने के कारण साधारण ऊनी बोरे के आसन पर बैठता है। पर साधारणतया जब कोई ऐसा व्यक्ति लार्ड चान्सलर बनाया जाता है तो पीयर न हो तो वह चान्सलर बनने के पश्चात् पीयर बना दिया जाता है। हाउस अपनी कार्य-पद्धति को स्वय ही निश्चित करता है। लार्ड चान्सलर को कार्य-पद्धति सम्बन्धी प्रश्न पर आदेश देने का अधिकार नही है, कम से कम तीन पीयरो की (quorum) अर्थात् गणपूरक-सख्या होनी है, पर साधारणतया किसी बैठक में ५० पीयरो के उपस्थित होने की आशा की जाती है। पीयर जब व्याख्यान देते है तो अध्यक्ष को अपना भाषण नहीं सुनाते वरन् सदन को। यदि लार्ड चान्सलर पीयर नही

होता तो उसे मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि वह पीयर होता है तो मत देने का अधिकार और पीयरों के समान उसे भी प्राप्त रहता है, पर उसे निर्णायक द्वितीय मत देने का अधिकार नहीं होता। यदि किसी प्रस्ताव के पक्ष व विरोध में मत बराबर हों तो वह प्रस्ताव गिर जाता है। लार्ड चान्सलर के अतिरिक्त एक व्यक्ति समितियों का अध्यक्ष भी होता है जो उस समय सभापति का स्थान ग्रहण करता है जब सदन समिति के रूप में कार्य करता है। यही व्यक्तिगत विधेयकों से सम्बन्धित सब कामों की देखभाल करता है। ग्रेट सील्स (Great Seals) अर्थात् राजमुद्रों से प्रमाणित अधिकार-पत्रों द्वारा एक जेंटिलमेन अशर आफ दी ब्लैक रौड (Gentleman Usher of the Black Road) नियुक्त किया जाता है। हाउस आफ लार्ड्स में जो अधिकार सूचक दण्ड(Mace) के रूप में काले रंग का एक डण्डा रखा जाता है उसी से इस पदाधिकारी का नाम पड़ा है। उसका मुख्य काम बन्दी बनाने की आज्ञाओं को कार्यान्वित करना, कामन्स के सदस्यों को आवश्यकता पड़ने पर हाउस के सामने उपस्थित करना और जिन व्यक्तियों को हाउस आफ लार्ड्स ने किसी अभियोग के सम्बन्ध में रोक रखा हो उनको सुरक्षित स्थान में बन्द रखना है। जब लार्ड चान्सलर हाउस में प्रवेश करता है या हाउस छोड़ कर जाता है तो सार्जेण्ट-एट आर्म्स, अधिकार-दण्ड (Mace) लेकर चलता है। हाउस का सर्व कार्यक्रम की रिपोर्ट और न्याय-सम्बन्धी निर्णय के आलेखों को सुरक्षित रखता है।

**हाउस आफ लार्ड्स के कर्त्तव्य**—हाउस आफ लार्ड्स के दो प्रकार के कर्तव्य हैं, एक निर्बन्धकारी (Legislative) और दूसरे न्यायकारी (Judicial)। निर्बन्धकारी सदन के रूप में हाउस आफ लार्ड्स को ही आरम्भ में राजा को निर्बन्धों के बनाने में परामर्श देने का अधिकार था। केवल सन् १३२२ में ही कामन्स की समाप्ति की इस काम में आवश्यकता समझी गई। १६ वीं शताब्दी के मध्य तक सिद्धान्तत व व्यवहार में दोनो सदनों को निर्बन्धकारी सत्ता की दृष्टि से समानाधिकारी समझा जाता था। परन्तु सन् १८६१ से अधिकतर निर्बन्धों के बनाने में, विशेष कर अर्थ-सम्बन्धी निर्बन्धों में हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार होने लगी। जब सन् १९०९ में लार्ड्स ने 'आर्थिक-विधेयक (Finance bill) के पास होने में रुकावट डाली तो प्रधान मन्त्री एस्क्विथ (Asquith) ने हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति को कम करने के लिये एक विधेयक प्रस्तुत किया। यह विधेयक सन् १९१२ के पार्लियामेण्ट एक्ट के स्वरूप में पास हो गया। इससे हाउस आफ लार्ड्स की विधायिनी शक्ति बहुत कम हो गई। यद्यपि हाउस आफ लार्ड्स अब भी निर्बन्ध-

निर्माण कार्य में भाग लेता है पर अब यह केवल एक द्वितीय आगार के समान है जो किसी योजना के बनने में देरी कर सकता है पर रुकावट नहीं डाल सकता।

**न्यायकारी कर्तव्य**—न्यायकारी संस्था के रूप मे हाउस आफ लार्ड्स का अधिकार-क्षेत्र दो प्रकार का है, प्रारम्भिक और पुनर्विचारक। सन् १९३६ तक उन पीयरो के मुकदमे, जो अपनी श्रेणी के ही न्यायाधीशो से सुने जाने की सुविधा की माग करते थे हाउस आफ लार्डस् मे ही आरम्भ होते थे, पर अब यह अधिकार समाप्त कर दिया गया है। प्रारम्भिक न्यायालय के रूप में हाउस इन मुकदमा के सुनने का काम करता था —(१) हाउस आफ कामन्स से लगाये हुये अभियोग (अब ऐसे अभियोग लगाने की प्रथा नहीं रही है) (२) उन लोगो के विवाहोच्छेद के मुकदमे जो आइरलैण्ड के निवासी हो (३) पीयर बनने के अधिकार सम्बन्धी मुकदमे (४) विशेषाधिकारो के विरुद्ध किये गये अपराधो के अभियोग (५) स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के पीयरा के निर्वाचन-सम्बन्धी झगडे पुनर्विचारक ( Court of appeal ) न्यायालय के रूप में हाउस आफ लार्ड्स सारे देश की अदालतो के निर्णयो पर पुनर्विचार कर सकता है परन्तु न्याय सम्बन्धी यह कार्य लार्डस् आफ अपील इन आर्डिनरी (Lords of Appeal-in Ordinary) ही करते है सम्पूर्ण हाउस इस काम को सम्पादन नही करता। जब अपीलो की सुनवाई होती है तब लार्ड चासलर जो लार्डस् आफ अपील इन आर्डिनरी में का एक लार्ड होता है सभापति का आसन ग्रहण करता है। परन्तु जब मुकदमो की प्रारम्भिक सुनवाई होती है तो लार्ड हाई स्टीवार्ड (Lord High Steward), जो प्रत्येक मुकदमे के लिये विशेषरूप से राज्याधिकार से नियुक्त होता है सभापति का काम करता है।

## पार्लियामेंट के अधिकार

**पार्लियामेंट की सर्वोच्च सत्ता**—प्रसिद्ध लेखक मेरियट (Marriot) ने पार्लियामेण्ट की महत्ता को इन शब्दा में वर्णन किया है 'किसी भी दृष्टि से परीक्षा की जाय तो यह ज्ञात होगा कि अगरेज़ी विधान-मण्डल ससार में सब से महत्वपूर्ण और रोचक सस्था है। प्राचीनता में इसके जोड की दूसरी सस्था नही है, इसका अधिकार-क्षेत्र बडा विशाल है और इसकी शक्ति की कोई मर्यादा नही है। अधिकारी होने के कारण और सर्वदा मानव जाति के एक चौथाई भाग के लिये विधि निर्बन्ध बनाते रहने से पार्लियामेण्ट (या या कहिये पार्लियामेण्ट स्थित राजा) अपने आप से ऊची किसी घरेलू सत्ता को नही मानती। इतन विशाल

अधिकारों की स्वामिनी पार्लियामेण्ट के जोड़ की दूसरी संस्था संसार में नहीं है।" आचार्य डायसी ने इस सर्वोच्च सत्ता का स्पष्टीकरण करने के लिये तीन बातें कही हैं (i) ऐसा कोई भी निर्बन्ध अर्थात् कानून नहीं है जिसे पार्लियामेण्ट न बना सकती हो (ii) ऐसा कोई निर्बन्ध नहीं जिसमें पार्लियामेण्ट संशोधन या परिवर्तन न कर सकती हो (iii) अंगरेजी शासन विधान में अवैधानिक और वैधानिक निर्बन्धों में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है। स्टैट्यूट आफ वेस्टमिनस्टर (Statute of Westminster) यद्यपि पार्लियामेण्ट के विशाल अधिकारों का एक उदाहरण है पर उसके पास हो जाने से पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च सत्ता में कमी आ गई क्योंकि उसके द्वारा औपनिवेशिक (Dominion) पार्लियामेण्टों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे अपने देश के लिये कोई भी निर्बन्ध बना सकती हैं चाहे वह निर्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के किसी एक्ट के विरुद्ध भी हो। पर इन स्वायत्त-शासन वाले देशों को छोड़ कर ब्रिटिश साम्राज्य के दूसरे भाग अब भी पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च सत्ता के अधीन हैं। ब्रिटिश साम्राज्य में (औपनिवेशिक राज्यों के बाहर) कोई न्यायालय ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के बनाये हुये निर्बन्धों के वैध-अवैध होने पर शंका नहीं कर सकता। विधान की दृष्टि से सर्वोच्च सत्ता पार्लियामेण्ट में है, पर राजनैतिक सर्वोच्च सत्ता ब्रिटेन की जनता के हाथ में है जो इस पार्लियामेण्ट को चुन कर जन्म देती है।

पार्लियामेण्ट का मुख्य काम आर्थिक व दूसरे प्रकार के निर्बन्धों को बनाना है। सब निर्बन्ध सिद्धान्ततः 'किंग इन पार्लियामेण्ट" (King in Parliament) अर्थात् राजा और पार्लियामेण्ट की सम्मति से बनते हैं परन्तु व्यवहार में हाउस आफ कामन्स के जनतन्त्रात्मक बनने से और राजा द्वारा सारे अधिकार पार्लियामेण्ट को सौंपे जाने से हाउस आफ कामन्स ही सब विधि निर्माण कार्य का सम्पादन करता है और मन्त्रिमण्डल पर नियंत्रण रखता है। इस शक्ति में १९११ के पश्चात् और भी अधिक वृद्धि हो गई है। राजा तो केवल इससे सन्तुष्ट रहने लग गया है कि उसको खर्च करने के लिये पर्याप्त धन मिलता है और शासन के उत्तरदायित्व के भार से वह मुक्त है। सन् १९११ से पहले भी हाउस आफ लार्डस् सब महत्वपूर्ण निर्बन्धों के विषय में हाउस आफ कामन्स की प्रभुता स्वीकार कर लेता था, विशेषकर अर्थ सम्बन्धी मामलों में हाउस आफ कामन्स वास्तविक शक्ति व अधिकार का उपभोग करता था यद्यपि हाउस आफ लार्डस् को परिवर्तन के सुझाव देने और अपना नियंत्रण रखने का कानूनी अधिकार प्राप्त था। एरस्किन (Erskine) ने बड़े स्पष्ट

शब्दों में राजा, हाउस ग्राफ लार्ड्स को ग्रौर हाउस ग्राफ कामन्स के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की है जो इस प्रकार है:—

"राजा मुद्रा चाहता है, कामन्स उसे मंजूर करता है और लार्डस् उस मंजूरी से सहमत होते है। पर कामन्स जब तक राजा को ग्रावश्यकता न हो मुद्रा की मंजूरी नही देते, न वे नये कर लगाते या पुरानों में वृद्धि करते है जब तक ऐसा करना ग्रनुदानों की मंजूरी के लिये ग्रावश्यक न हो या ग्रागम में कमी न पड़ गई हो। राजा को करों के प्रकार या उनके वितरण से कोई सरोकार नही रहता पर पार्लियामेंट के करारोपण का ग्राधार उन समाज-सेवाग्रों की ग्रावश्यकता है जिनको राजा ने ग्रपने वैधानिक परामर्शदाताग्रों के द्वारा निश्चित कर दिया है।"

**सन् १६११ का पार्लियामेंट एक्ट**—सन् १६०६ में ग्रर्थ-विधेयक के विषय में दोनों सदनों में जो विरोध उत्पन्न हुग्रा उसके फलस्वरूप सन् १६११ का पार्लियामेंट एक्ट एस्क्विथ के मन्त्रिमण्डल के प्रस्ताव करने पर बना। उस समय एस्क्विथ के उदार पक्ष को विरोधी पक्ष की ग्रपेक्षा १२७ सदस्यों का बहुमत प्राप्त था। यद्यपि प्रस्तावना में जिस सुधार की ग्राशा दिलाई गई थी वह सुधार ग्रभी तक नही हो पाया है पर इस एक्ट में दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्ध को निश्चित रूप से स्थिर कर दिया ग्रौर उस संदेह को समाप्त कर दिया जो हाउस ग्राफ लार्डस् के ग्रधिकारो के सम्बन्ध में जब तब हुग्रा करता था। पार्लियामेंट एक्ट द्वारा दोनों सदनों के पारस्परिक सम्बन्धो के बारे में निम्नलिखित वैधानिक परिवर्तन हुये:—

मुद्रा-विधेयको के ऊपर हाउस ग्राफ लार्डस् का कोई ग्रधिकार न रहा। ये मुद्रा विधेयक हाउस ग्राफ कामन्स में पास हो जाने के ३० दिन बाद पास हुए समझे जाते है चाहे हाउस ग्राफ लार्डस् ने उनका विरोध ही क्यों न किया हो। स्पीकर को इस एक्ट से यह ग्रधिकार दे दिया गया कि वह यह निर्णय करे कि कौनसा विधेयक साधारण विधेयक है ग्रौर कौनसा मुद्रा विधेयक। स्पीकर के इस निर्णय के विरुद्ध किसी भी न्यायालय में सुनवाई नहीं हो सकती। हाउस ग्राफ लार्डस् दूसरे विधेयको को, जो मुद्रा-विधेयक न हों दो वर्ष तक टाल सकता है। हाउस ग्राफ कामन्स को कानून बनाने या नियन्त्रित ग्रधिकार दे दिया गया है, इसमें केवल एक ही ग्रपवाद है। वह यह कि एक्ट से ही निश्चित पाँच वर्ष की ग्रपनी ग्रवधि को हाउस ग्राफ कामन्स बढ़ा नही सकता।

सन् १९११ पार्लियामेंट एक्ट इतना महत्त्वशाली है कि इसकी मुख्य मुख्य धाराओं का अनुवाद यहाँ दिया जाता है —

'क्योंकि यह आवश्यक है कि पार्लियामेंट के दोनों आगारों के सम्बन्ध को नियमित कर दिया जाय ।'

'और क्योंकि यह विचार हो रहा है कि हाउस आफ लार्ड्स के स्थान पर एक द्वितीय आगार संगठित किया जाय और जो पैतृकाधिकार पर न बनाया जा कर लोकसत्तात्मक ढंग पर बनाया जाय, पर ऐसे नये द्वितीय आगार बनाना अभी नहीं हो सकता ।'

'और क्यों कि ऐसे नये द्वितीय आगार बनाने पर नये आगार के अधिकारों की परिभाषा और मर्यादा स्थिर करनी होगी पर यह वाञ्छनीय है कि हाउस आफ लार्ड्स् के अधिकारों की मर्यादा का प्रावधान इस एक्ट में जैसा किया गया है कर दिया जावे ।

'इसलिये यह व्यवस्था की जाती है कि: १ (१) यदि कोई मुद्रा विधेयक हाउस आफ कामन्स से पास होकर हाउस आफ लार्ड्स् के सत्र के समाप्त होने से कम से कम एक मास पहले भेज दिया गया हो और वह विधेयक इस प्रकार पहुचने से एक मास के भीतर बिना संशोधन के पास न किया जाय, तो वह विधेयक हाउस आफ कामन्स का कोई विपरीत आदेश न होने पर, सम्राट् के सम्मुख उपस्थित किया जावेगा और सम्राट् के सम्मति सूचक हस्ताक्षर होने पर वह विधेयक एक्ट बन जायगा चाहे हाउस् आफ लार्डस ने उस विधेयक पर अपनी सम्मति न भी दी हो ।

(२) मुद्रा विधेयक वह सार्वजनिक विधेयक है जिसमें स्पीकर के मत से वही प्रावधान है जो आगे वर्णन किये हुये सब या इनमें से किसी एक विषय से सम्बन्ध रखते हों, कर का लगाना, तोडना, माफ करना बदलना या सुव्यवस्थित करना, ऋण चुकाने का भार या किसी दूसरे व्यय का भार, एकत्रित कोष पर, या पार्लियामेण्ट से दिये हुये धन पर डालना, ऐसे व्यय में कमी या वृद्धि करना या बिलकुल समाप्त कर देना, सार्वजनिक धन का दान, पर्यादान उगाहना, सुरक्षित रखना और उसका हिसाब रखना व हिसाब की जाच कराना, किसी ऋण

की प्रत्याभूति (guarantee) वढाना या उस ऋण का चुकाना, या इन सब विषयो से सम्बन्धित कोई कार्यवाही करना। इस धारा में, 'कर', सार्वजनिक 'धन' और ऋण" से स्थानीय संस्थाओं के 'कर', 'धन' और 'ऋण' से अभिप्राय न समझा जाय।

(३) जब कोई मुद्रा-विधेयक हाउस आफ लार्डस् के लिये या सम्राट् की सम्मति के लिये भेजा जाय तो उस पर स्पीकर का प्रमाण लेख होना चाहिये कि वह मुद्रा-विधेयक है। इस प्रकार प्रमाणित करने के पूर्व, स्पीकर यदि सम्भव हो तो निर्वाचन समिति द्वारा प्रति सत्र के आरम्भ में नियुक्त सभापतियो में से दो व्यक्तियो से सम्मति लेगा।

२ (१) यदि कोई सार्वजनिक विधेयक (जो मुद्रा-विधेयक न हो या जो पार्लियामेण्ट की अवधि ५ वर्ष से अधिक न वढाता हो) हाउस आफ कामन्स में लगातार तीन सत्रो में पास हो जाय (चाहे एक ही पार्लियामेण्ट मे या दूसरी में) और वह हाउस आफ लार्डस् के सत्र के समाप्त होने से एक मास पूर्व भेजा जाकर वहा उन सत्रो में से प्रत्येक सत्र में रद्द हो जाय तो वह विधेयक हाउस आफ लार्डस् मे तीसरे सत्र में रद्द होने पर हाउस आफ कामन्स के विपरीत आदेश न होने पर सम्राट् के सम्मुख सम्मति के लिये प्रस्तुत किया जावेगा और सम्मति मिलने पर एक्ट वन जायगा चाहे हाउस आफ लार्डस् ने उसे स्वीकार किया ही क्यो न हो। पर यह विधान लागू न होगा यदि उन तीनो सत्रो में से कामन्स के पहले सत्र के द्वितीय वाचन (Second Reading) के पश्चात् कामन्स के तीसरे सत्र तक जब यह विधेयक पास हुआ हो, २ वर्ष का समय न बीता हो।

२ (२) जब उपर्युक्त धारा के अनुसार विधेयक सम्राट के सम्मुख प्रस्तुत किया जावेगा तो उसके साथ कामन्स के स्पीकर का प्रमाण-पत्र होगा कि इस धारा के प्रावधानों की पूर्ति हो चुकी है।

२ (३) हाउस आफ लार्डस् में यदि विधेयक बिना संशोधन के या संशोधनों के साथ जो कामन्स ने मान लिये हों, पास न हो वह रद्द किया समझा जायगा।

२ (४) कोई विधेयक वही समझा जायगा जो पहले हाउस ग्राफ लार्डस् में भेजा गया था, यदि वह पहले विधेयक से मिलता जुलता हो या उसमें स्पीकर से प्रमाणित ऐसे परिवर्तन हों जो समय के बीतने के कारण आवश्यक हो गये हों या जो हाउस ग्राफ लार्डस् द्वारा किये हुये संशोधनों को मिलाने के लिये किये गये हों और यदि हाउस ग्राफ लार्डस् ने ऐसे संशोधन अपने तीसरे सत्र में कर दिये हों जो कामन्स को स्वीकार हों तो वह स्पीकर द्वारा प्रमाणित हो कर उस विधेयक में शामिल कर लिये जायेंगे जो विधेयक सम्राट की सम्मति के लिये प्रस्तुत किया गया हो।

पर हाउस ग्राफ कामन्स यदि उचित समझे तो अपने दूसरे और तीसरे सत्र में पास होने पर और दूसरे संशोधनों का सुझाव कर सकता है, बिना उनको विधेयक में शामिल किये हुये, और ये सुझाव किये हुये संशोधन हाउस ग्राफ लार्डस् में विचार के लिये रखे जायेंगे और वहां स्वीकार होने पर ये संशोधन वे संशोधन समझे जायेंगे जो हाउस ग्राफ लार्डस् ने किये हों और कामन्स ने स्वीकार कर लिये हों। परन्तु हाउस ग्राफ कामन्स के इस अधिकार प्रयोग से इस धारा के कार्यान्वित होने पर कोई प्रभाव न पड़ेगा यदि हाउस ग्राफ लार्डस् इस विधेयक को रद्द कर दे।

३—इस एक्ट के अनुसार स्पीकर का प्रमाण पत्र अन्तिम समझा जायगा और कोई न्यायालय उस पर विचार न कर सकेगा।

४, ५, ६

७—सन् १७१५ के सैप्टेनियल एक्ट के अन्तर्गत पार्लियामेण्ट की महत्तम अवधि के सात वर्ष के स्थान पर पांच वर्ष कर दिया जाय।

८—यह एक्ट पार्लियामेण्ट एक्ट १९११ के नाम से पुकारा जाय।'

## विधायिनी प्रक्रिया (Legislative Procedure)

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ब्रिटेन और उत्तरी आइरलैण्ड के लिये ही निर्बन्ध । बनाती पर ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशों के लिये भी बनाती है। पर इन

सब निर्बन्धो के बनाने में एक ही पद्धति अपनाई जाती है। जो निर्बन्ध पार्लियामेण्ट बनाती है उसमें किसी सार्वजनिक हित-सम्बन्धी विषय पर लोकमत की छाया देखने को मिल सकती है। यह निर्बन्ध बडी लम्बी कार्यवाही के बाद बन पाता है इसलिये बर्नेट का यह मत है कि "इंगलैण्ड का निर्बन्ध जनता की सब से बडी शिकायत है क्यो कि वह बडा लचीला और विलम्बकारी है"।

**विधेयक (Bill) और अधिनियम (Act) में क्या अन्तर है—** निर्बन्ध-निर्माण पद्धति वर्णन करने से पूर्व विधेयक और अधिनियम का अन्तर समझना आवश्यक है। विधेयक (Bill) उस निर्बन्ध के पूरे मसविदे का ढाचा होता है जिसके बनाने का विचार किया जा रहा हो। यह पहले पार्लियामेण्ट के किसी भी सदन में रखा जा सकता है, केवल मुद्रा-विधेयक कामन्स में ही और पीयरो के विशेषाधिकारो से सम्बन्ध रखने वाला विधेयक हाउस आफ लार्डस म ही प्रथम प्रस्तुत किया जाता है। जब विधेयक दोनो सदनो मे पास हो जाता है और सम्राट उस पर अपनी सम्मति प्रकट कर देता है तब वह एक्ट या अधिनियम कहलाता है।

**विधेयकों के प्रकार**—विधेयक दो प्रकार के होते है, सार्वजनिक विधेयक और व्यक्तिगत विधेयक। सार्वजनिक (Public) विधेयक उसे कहते हैं जो सारी जनता के हित से सम्बन्ध रखता है या उसके एक बडे भाग के हित से। व्यक्तिगत विधेयक किसी एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह सस्था या कम्पनी से सम्बन्ध रखता है। व्यक्तिगत विधेयक को उस विधेयक मे न मिला देना चाहिये जो किसी एक व्यवस्थापक व्यक्ति द्वारा धारा सभा में लाया गया हो। धारा सभा के किसी सदस्य द्वारा लाया हुआ विधेयक सार्वजनिक विधेयक भी हो सकता है और व्यक्तिगत भी, यदि वह किसी एक सस्था या कम्पनी के हित से ही सम्बन्ध रखता हो। पार्लियामेण्ट अपना अधिक समय उन्ही विधेयको पर विचार करने में व्यय करती है जो सरकार द्वारा उपस्थित किये गये हो। धारा सभा के सदस्य उन विधेयकों मे सशोधन का प्रस्ताव रख सकते है या उनकी आलोचना कर सकते है। सदस्यो द्वारा प्रस्तुत हुए विधेयको के पास होने की बहुत कम सम्भावना रहती है यदि सरकार उनका समर्थन न करे और सरकार ऐसा समर्थन बहुत कम करती है। यदि किसी मन्त्रिमण्डल को यह पता लग जाय कि सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया हुआ विधेयक वास्तव में लाभदायक होगा तो बाद में सरकार स्वय अपना विधेयक उपस्थित करती है जो सदस्य के विधेयक के सिद्धान्तो के आधार पर तैयार किया हुआ होता है।

**पार्लियामेंट के एक साधारण सदस्य का कार्य**—उपर्युक्त वर्णन से यह पता लग जायगा कि ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में गैर सरकारी सदस्यों का काम केवल इतना है कि वे सरकार द्वारा प्रस्तावित योजनाओं की आलोचना ही करते रहें या सार्वजनिक व व्यक्तिगत मामलों में सरकार से पूछ ताछ के लिये प्रश्न करते रहें। प्रत्येक सदस्य को मन्त्रिमण्डल या किसी मण्डल के किसी एक सदस्य से जानकारी के लिये प्रश्न पूछने का अधिकार होता है और मन्त्रियों को उन प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है तथा सूचना सामने रखनी पड़ती है यदि जनहित में ऐसा करना उचित हो। कोई रहस्य जिसका खुलासा करना जनहित-कारक न हो उसे बतलाने के लिये मन्त्री बाध्य नहीं होता। पार्लियामेण्ट के सदस्य सरकार की निन्दा का प्रस्ताव भी ला सकते हैं और यदि ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय तो मन्त्रि परिषद् पदत्याग कर देती है। आमतौर पर पार्लियामेण्ट तत्कालीन सरकार के वैधानिक कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगी रहती है।

**विधेयक का नोटिस**—किसी भी विधेयक को तैयार करने में पहली बात उसका मसविदा बनाना होता है। यह मसविदा सरकारी वकील जो "पार्लियामेण्टरी कौंसैल" कहलाता है तैयार करता है। किसी सदस्य द्वारा उपस्थित किया हुआ विधेयक या तो उस सदस्य द्वारा ही तैयार होता है या वह किसी दूसरे से तैयार करा लेता है। पर उस पर नाम उसका ही होना चाहिये। जब सदस्य के विधेयक को प्रस्तुत करने की आज्ञा मिल जाती है तो वह अपना मसविदा पब्लिक बिल आफिस में ले जाता है और हाउस के सामने रखने के लिये उसे एक फार्म भरना पड़ता है। हाउस में वह बार (Bar) के पास जाता है और स्पीकर के पुकारने पर कहता है "ए बिल सर"। तब यह बिल या विधेयक हाउस के क्लर्क को दिया जाता है जो उस विधेयक के संक्षिप्त नाम को जोर से पढ़ता है। उसके पश्चात् यह समझ लिया जाता है कि हाउस में विधेयक आ गया।

**विधेयक का प्रथम वाचन (First Reading)**—दूसरी सीढ़ी विधेयक का प्रथम वाचन होता है। सरकारी विधेयक को कोई मन्त्री उपस्थित करता है तो विस्तारपूर्वक उस विधेयक का तथ्य समझाता है। उसके व्याख्यान के पश्चात् वाद-विवाद होता है फिर मत निर्णय किया जाता है, पर सब विधेयकों में पहली रीडिंग (प्रथम वाचन) में कोई वाद विवाद नहीं होता। गैर सरकारी विधेयक की छपी कापियां सदस्यों को बांट दी जाती हैं, जो सदस्य उस विधेयक को पुन

स्थापित करता है वह तद्विषयक सम्बन्धी एक फार्म भर देता है और स्पीकर के पुकारने पर उसे उसके आसन के पास ले जाता है जहां क्लर्क उसके संक्षिप्त नाम को पढ़ता है, और इस प्रकार उसका प्रथम वाचन समाप्त हो जाता है।

**द्वितीय वाचन (Second Reading)**—उसके पश्चात् विधेयक का दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस द्वितीय वाचन में विधेयक के आधार भूत सिद्धान्तों और धाराओं पर विस्तारपूर्वक वाद विवाद होता है। पर द्वितीय वाचन में प्रस्ताव में यदि यह संशोधन कर दिया जाय कि इस विधेयक पर "तीन मास" (या और कोई समय की अवधि रख दी जाय जिससे उस सत्र में वह वाचन न हो सके) के पश्चात् विचार किया जाय और यदि यह संशोधन स्वीकृत हो जाय तो उसका अभिप्राय समझा जाता है कि विधेयक रद्द कर दिया गया। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत हुये विधेयकों में से बहुत से इसी प्रकार रद्द कर दिये जाते हैं। पर जो विधेयक द्वितीय वाचन में रद्द होने से बच जाता है वह एक समिति को भेज दिया जाता है। प्रत्येक मुद्रा विधेयक सदन की समिति के सामने रखा जाता है। यदि सदन आदेश दे तो वे विधेयक भी जो मुद्रा विधेयक न हो सदन की समिति के सम्मुख रखे जा सकते हैं। वरना वे सम्बन्धित स्थायी-समितियों के लिये भेज दिये जाते हैं। कभी कभी स्थायी समिति या सदन की समिति के सामने जाने से पूर्व कोई कोई विधेयक सैलेक्ट समिति के सामने भी रखे जा सकते हैं। समिति में विधेयक पर पूरी तरह से वाद विवाद होता है। प्रत्येक खण्ड को अलग अलग लेकर विचार होता है और उन पर संशोधनों के प्रस्ताव हो सकते हैं। जिससे उसके दोष दूर हो जाय। जब इस प्रकार समिति में विधेयक पास हो जाता है तो वह फिर सदन में प्रस्तुत किया जाता है और अब सदन उसके उपर विस्तार पूर्वक विचार करता आरम्भ करता है। प्रत्येक खण्ड को लेकर वाद विवाद होता है। यदि संशोधन के प्रस्ताव होते हैं और वे स्वीकार हो जाते हैं तो वे संशोधन विधेयक में कर दिये जाते हैं। कभी कभी विधेयक फिर दुबारा समिति को भेज दिया जाता है।

**तृतीय वाचन (Third Reading)**—इसके पश्चात् विधेयक का तीसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सारे विधेयक के रूप, सिद्धान्त व उपयोगिता पर विचार होता है। यदि इस समय संशोधन के प्रस्ताव हों और वे स्वीकार हो जाय तो विधेयक फिर समिति में भेज दिया जाता है। यदि तीसरे वाचन में द्वितीय वाचन से निकला हुआ विधेयक ज्यों का त्यों पास हो जाता

हैं तो वह दूसरे सदन में भेज दिया जाता है। वहां भी उस पर उसी क्रम से विचार होता है। जब दूसरे सदन में भी बिना संशोधन के वह विधेयक पास हो जाता है तो वह सम्राट की सम्मति हेतु रखा जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर वह एक्ट (अधिनियम) घोषित कर दिया जाता है।

यदि दूसरा सदन उस विधेयक में कुछ संशोधन कर देता है तो वह फिर प्रारम्भ करने वाले सदन में वापिस भेज दिया जाता है और यदि प्रारम्भ करने वाले सदन में ये संशोधन मान्य कर लिये जाते हैं तो विधेयक सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है।

**मुद्रा विधेयक के लिये कार्यक्रम**—मुद्रा विधेयक के लिये जो कार्यवाही की जाती है वह कुछ भिन्न होती है। कन्सोलिडेटेड फण्ड (Consolidated Fund) अर्थात् एकीकृत कोष वाली सेवाओं के लिये स्थायी अधिनियमों (Acts) द्वारा ही अनुदान स्वीकृत हो जाते हैं। पर सप्लाई (Supply), सेवाओं (Services) के लिये कार्यपालिका प्रतिवर्ष खर्चे के आंक (Estimates) बनाती है और पार्लियामेण्ट की स्वीकृति लेती है। मुद्रा विधयकों के सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों का पालन किया जाता है—(१) प्रत्येक विधेयक जो सार्वजनिक कोष में व्यय करने वाली योजना बनाता हो वह क्राउन (Crown) अर्थात् मन्त्रि परिषद् की ओर से प्रस्तावित होना चाहिये, उसे कोई साधारण सदस्य उपस्थित नहीं कर सकता (२) ऐसा प्रत्येक विधेयक आंक के रूप में होना चाहिये, (३) यह हाउस आफ कामन्स में ही प्रारम्भ होना चाहिये।

सप्लाईज (Supplies) अर्थात् अनुदानों की मांग सम्राट् के भाषण में की जाती है। अर्थमन्त्री (Chancellor of the Exchequer) उस के पश्चात् अपने बजट भाषण में उन सब मांगों को उपस्थित करता है। ये मांग हाउस की कमेटी आफ सप्लाईज (Committee of Supplies) या कमेटी आफ वेज एण्ड मीन्स (Committee of Ways & Means) में सामने लाई जा कर उन पर वाद विवाद होना आरम्भ होता है। उपर्युक्त दोनों समितियां सारे सदन की होती है अर्थात सारा सदन अपने को एक समिति के रूप में समझ कर काम करता है उस समय वाद विवाद आदि के बन्धन ढीले कर दिये जाते हैं। पर फिर भी कोई सदस्य खर्चे को बढ़ाने वाला प्रस्ताव नहीं कर सकता। यदि ऐसा करना वाछनीय समझा जाता है, तो उसका एक अनुपम ढग

हैं और वह यह है कि सम्बन्धित मन्त्री के वेतन मे कटौती का प्रस्ताव किया जाता है। कमेटी आफ सप्लाईज (Committee of Supplies) यह निर्णय करती है कि क्राउन (Crown) यानी कार्यकारिणी को कितना व्यय करने का अधिकार दिया जाय और कमेटी आफ वेज एण्ड मीन्स (Committee of Ways & means) यह निश्चित करती है कि किस प्रकार खर्च के लिये धन एकत्रित किया जाय। नया कर लगाने के सब प्रस्ताव आर्थिक विधेयक (Finance Bill) मे शामिल होते हैं और जब वह पास हो जाता है तो उसे आर्थिक विधान (Finance Act) कह कर पुकारते हैं।

सब मुद्रा विधेयकों को कार्यक्रम की उन सब सीढ़ियों को पार करना पड़ता है जो साधारण विधेयकों के लिये वर्णन की गई है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि सन् १६११ के पार्लियामेण्ट के अनुसार यदि मुद्रा विधेयक सत्र की समाप्ति के कम से कम एक मास पूर्व हाउस आफ लार्डस् में भेज दिया जाता है और वह एक मास के भीतर पास नही होता तो वह सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर अधिनियम बन जाता है। ऐसे मुद्राविधेयक को स्पीकर द्वारा प्रमाणित कराना पड़ता है कि वह मुद्राविधेयक है।

**दोनों सदनों का मतभेद किस प्रकार समाप्त किया जाता है**—सन् १६११ के पार्लियामेण्ट एक्ट के अनुसार हाउस आफ लार्डस् में यदि कोई मुद्रा-विधेयक एक मास के भीतर स्वीकार न हो तो वह अपने आप सम्राट की सम्मति पाकर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार दोनों सदनों का मतभेद समाप्त हो जाता है। यदि मतभेद साधारण विधेयक के सम्बन्ध में हो और हाउस आफ लार्डस् के संशोधनों को समाप्त न माने और यदि वह विधेयक एक ही सत्र में या एक से अधिक सत्रो मे कामन्स मे तीन बार पास हो जाय और प्रथम तथा तृतीय बार पास होने में १ वर्ष का अन्तर हो जैसा कि १६४६ के संशोधन से निश्चित है तो वह सम्राट की सम्मति के लिये भेज दिया जाता है और सम्मति प्राप्त होने पर एक्ट बन जाता है। इस प्रकार पास होने में केवल एक रुकावट है, वह यह कि कामन्स के पहली बार पास करते समय जो दूसरा वाचन हुआ था उससे लेकर तीसरी बार पास होने तक दो वर्ष का समय बीत चुका होना चाहिये। इसका निष्कर्ष यह है कि हाउस आफ लार्डस् और कामन्स में मतभेद केवल दो वर्ष तक रह सकता है और उस विधेयक के पास होने में दो वर्ष का विलम्ब हो सकता है।

यहां पर सम्राट की सम्मति के बारे में कुछ बातें कहनी आवश्यक हैं। सम्राट की सम्मति केवल एक बाह्य व्यवहार (formality) है, सन् १७०७ से लेकर अब तक यह सम्मति कभी भी नामंजूर नहीं हुई। यदि सम्राट किसी योजना के विरुद्ध हो तो वह मन्त्रिपरिषद् को समझा कर उन्हें इस योजना को प्रस्तुत करने से वंचित कर सकता है या वह चाहे तो परिषद् का विघटन कर नई परिषद् बना सकता है या पार्लियामेण्ट का विघटन कर जनता से अपील (नये चुनाव) कर सकता है। राजकी सम्मति (Royal Assent) देने के लिये या तो सम्राट स्वयं पार्लियामेण्ट में आता है या लार्ड चान्सलर और प्रेटसील द्वारा नियुक्त कमीशन द्वारा यह सम्मति दी जाती है। सन् १७०७ में अन्तिम बार यह सम्मति नहीं दी गई जब रानी ने स्काच मिलिशिया बिल को रद्द कर दिया था।

## पाठ्य पुस्तकें

Adams.—Constitutional History of England (1934 edition).

Champion, G. F. M.—An Introduction to the Procedure of the House of Commons (1939 edition).

Dicey, A. V.—The Law of the Constitution (1929 edition).

Finer, H.—Theory and Practice of Modern Government, chs. XVIII—XXI.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution chs. II III.

Humphreys, J. H.—Practical Aspects of Electoral Reform.

Ilbert, Sir C.—Parliament. Ito History, Constitution and Practice, (1911 edition).

Laski H. J.—Parliamentary Government in England, chs. 3-4.

May, Sir, T. E.—Parliamentary Practice (1924 edition).

Marriot, J. A. R.—English Political and Politics, chs. on Parliament and Legislation.

Poole, A.—English Constitutional History (edition IX), pp. 676—725.

# सातवाँ अध्याय

## कार्यपालिका : राजा और मंत्रिपरिषद्

"प्रत्येक श्रेष्ठ राजमुकुट कांटों का मुकुट है और इस पृथ्वीतल पर सर्वदा ऐसा ही रहेगा" (कार्लाइल)

"मन्त्रिपरिषद् आपस की समझदारी से जीवित रहती और अपना कार्य करती है, राजा से, पार्लियामेण्ट से, राष्ट्र से या आपस में एक दूसरे से या अपने प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करने वाली लिखित कानून या विधान की एक लकीर नहीं है' (ग्लैडस्टोन)

### राजा

सिद्धांतत इंगलैण्ड का राज्यतन्त्र निरकुश राज्यतन्त्र है क्या कि प्रत्येक कानून या निर्बन्ध पर राजा के हस्ताक्षर होने चाहिये मन्त्री राजा के मन्त्री कहलाते है, न्यायालय राजा की ही न्याय सस्थायें है पर बाह्यरूप स यह राज्यतन्त्र नियन्त्रित है क्याकि राजा का कोई आदेश तब तक वैध नही जब तक कोई मन्त्री उस पर अपने हस्ताक्षर न करे और राजा अपनी मन्त्रि परिषद् के परामर्श को सर्वदा स्वीकार करता है। व्यवहार में यह राज्यतन्त्र प्रजातन्त्र है राजा केवल एक रबड की मुहर ही के समान है राजनीतिक क्षेत्र में वह केवल इतना ही कर सकता है कि अपना परामर्श दे उत्साहित करे या चेतावनी दे, कानूना के बनाने वाले और मन्त्रि परिषदा का भाग्य निर्णय करन वाले तथा शासननीति को निश्चित करने वाले तो प्रजा के प्रतिनिधि और अन्तत स्वय प्रजा ही है। अगरेजी राजतन्त्र (Monarchy) के जोड की कोई शासन सत्ता किसी दूसरे देश में नही मिल सकती यह अपने ढग की निराली है।

*एग्लो-सेक्सन काल में राजा निरकुश था यद्यपि उस समय भी वह बुद्धि*-मानो की सलाह और सम्मति से ही कानून बनाता था। सन् १२१५ में बैरनो और पादरियो ने मिल कर जोन नामक राजा को मैग्ना कार्टा पर हस्ताक्षर करने के लिये बाध्य किया और इस प्रकार अगरेजो की स्वतन्त्रता के प्रथम अधिकार-पत्र का जन्म हुआ। उसके पश्चात् वैधानिक राजतन्त्र (Constitu-

tional Monarchy) की ओर धारा का प्रवाह आरम्भ हो गया। उस बहाव में कभी कभी किसी राजा ने शासन सूत्र को अपने हाथ में फिर से करने के लिये रोक लगाने का प्रयत्न किया। स्टूअर्ट-वंशीय राजाओं ने राजा के स्वेच्छाचारी शासनाधिकार का दावा किया और उसके समर्थन में राजा के दैवी अधिकार वाले सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसके फलस्वरूप राजाओं और पालियामेण्ट में संघर्ष बहुत दिन तक चला। पर अन्त में सन् १६४६ और १६८८ की शान्ति हो कर पालियामेण्ट की ही जीत हुई। जब जनता के प्रतिनिधि राजा से शासन सत्ता छीन लेने को लड़ रहे थे उस समय भी राजा के महत्व को कम नहीं समझा जाता था, यह बैकन (Bacon) द्वारा जेम्स प्रथम (James I) को दी हुई निम्नलिखित सलाह से प्रकट हो जायगा —

"पालियामेण्ट को एक आवश्यक वस्तु समझो पर यही नहीं उसे राजा और प्रजा को मिलाने वाला एक अनुपम और मूल्यवान साधन समझो जिससे बाहरी दुनिया को यह दिखाया जा सकता है कि अंगरेज अपने राजा को कितना प्यार करते हैं और उसका कितना आदर करते हैं और उसका राजा किस प्रकार अपनी प्रजा पर विश्वास रखता है, इसके साथ खुलासा ढंग पर बर्ताव करो जैसे किसी राजा को करना चाहिये न कि फेरीवाले व्यापारी की तरह संदेह की दृष्टि से। पालियामेण्ट से भय न करो, इसको बुलाने में चतुरता से काम लो पर उसे अपने समर्थकों से भरने का प्रयत्न न करो।

इसको वश में करने के लिये सारी चतुरता, मानव स्वभाव की जानकारी दृढ़ता और गौरव का प्रयोग करो शरारती और बदमाशों को उनके उपयुक्त स्थान पर रखो पर अनावश्यक अड़ंगा लगाने का प्रयत्न न करो, प्रकृति को अपना कार्य करने दो, और हालांकि तुम इसे धन के लिये ही चाहते हो पर दूसरों पर यह प्रकट न होने दो कि इसके बुलाने से तुम्हारा यही अभिप्राय है। कानून बनाने में अग्रसर हो। अपने पास कोई न कोई रोचक और प्रभावशाली सुधार या नीति का विषय तैयार रखो और पालियामेण्ट से कहो कि वह उसके सम्बन्ध में तुम्हारी सलाह दे। इस बात का ध्यान रखो कि ऐसे विधेयकों को बनवा कर तैयार करा लो जिनसे राजा के आदर में वृद्धि हो और उसकी देखभाल मान्य हो, ऐसे विधेयकों को बनवाने के लिये प्रयत्न न करो जो राजा व उसकी कृपा को सस्ती बना डालें पर ऐसे विषय उपस्थित करो जिनके ऊपर पालियामेण्ट कुछ काम करने में लगे क्यों कि खाली पेट केवल विनोदपूर्ण बातों से नहीं भरते।"

चौथे अध्याय में हम यह दिखला आये हैं कि किस प्रकार सन् १६८६ में और १६८८ में जिस बात को राजा ने स्वीकार नहीं किया उस पार्लियामेण्ट ने बरबस छीन लिया। १६८६ में बिल आफ राइट्स ( Bill of Rights ) और १७०१ में एक्ट आफ सैटिलमैण्ट (Act of Settlement) में राजा के अधिकारों की मर्यादा व राजा का उत्तराधिकार क्रम निश्चित कर दिया गया है। जब राज्य सिंहासन खाली होता है तो राजमुकुट सब से पहले ज्येष्ठ पुत्र को पहनाया जाता है। यदि ज्येष्ठ पुत्र जीवित न हो तो उसका बच्चा, लड़का हो या लड़की, राज सिंहासन पर बैठता है। उसके भी न होने पर दूसरे पुत्र को या उसके बच्चों को राजमुकुट पहनाया जाता है। इस प्रकार राज्य करने का अधिकार एक पैतृक है और राजसिंहासन कभी खाली नहीं रहता। "राजा मर गया, राजा चिरंजीवी रहे" ( The King in dead, Long live the King ) इस कानूनी सिद्धान्त का यही मतलब है कि यद्यपि एक व्यक्ति विशेष राजा मर गया पर राजसिंहासन खाली नहीं है, दूसरा उत्तराधिकारी राजा उस पर अपने आप ही कानून की दृष्टि से आसीन है। यह उत्तराधिकार अपने आप ही प्राप्त हो जाता है जैसा एडवर्ड अष्टम के प्रिवी कौंसिल में दिये उस भाषण से व्यक्त हो जायगा जो पञ्चम जार्ज की मृत्यु के पश्चात् दिया गया था। एडवर्ड अष्टम ने कहा " रे प्रिय पिता सम्राट् की मृत्यु से ब्रिटिश साम्राज्य को जो हानि हुई है उसके पश्चात् सर्वोच्च सत्ता के कर्तव्य का भार मेरे ऊपर आ पड़ा है' आगे चल कर उन्होंने कहा "२६ वर्ष पूर्व जब मेरे पिता इस आसन पर आये थे उन्होंने घोषणा की थी कि उनके जीवन का एक उद्देश्य यह रहेगा कि वे वैधानिक राज्य-तन्त्र को सुरक्षित रखें। इस बात में मैं स्वयं भी अपने पिता का अनुगामी बनूंगा और उनकी तरह अपने सारे जीवन भर अपनी प्रजा के सुख व कल्याण के लिये प्रयत्न करता रहूंगा। मुझे सारे साम्राज्य की प्रजा के प्रेम का सहारा है और मुझे विश्वास है कि उनकी पार्लियामेण्ट मेरे भारी काम में मुझे सहायता देगी और मैं प्रार्थना करता हूं कि ईश्वर इस काम में मुझे मार्ग दिखावे "

दूसरे दिन सेण्ट जेम्स नामक महल की खिड़की से निम्नलिखित संदेश सुनाया गया —

'क्यों कि सर्वशक्तिमान परमेश्वर ने हमारे राजा जार्ज पञ्चम को अपने पास बुला लिया है जिसने ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैण्ड का राजमुकुट अकेले और अधिकारी ढंग से राजकुमार एलबर्ट जार्ज को प्राप्त हो गया है, इसलिये

हम इस देश के याजक व अयाजक लार्ड, सम्राट की प्रिवी कौंसिल के लार्डों के साथ व दूसरे श्रेष्ठ पुरुषो, लन्दन के लार्ड मेयर, एल्डर मैन और नागरिकों के साथ एक स्वर, वाणी व अन्त करण से यह घोषणा करते हैं कि महान् व शक्तिवान राजकुमार एलबर्ट जार्ज एण्ड्रू पैट्रिक डैविड, हमारे पुनीत स्मृति वाले राजा की मृत्यु के पश्चात्, अधिकारी वैधानिक रूप मे एडवर्ड अष्टम हमारे राजा हुये, इत्यादि ।"

इस घोषणा व उस शपथ के शब्दो से जो प्रत्येक इंगलैण्ड के राजा को राज्याभिषेक के समय लेनी पड़ती है, प्रकट हो जायगा कि यद्यपि ब्रिटिश राज्यतन्त्र पैतृक है पर वह वास्तव में वैधानिक है और उसकी शक्ति की मर्यादा बधी हुई है ।

**राजा नाम के लिये कार्यपालिका सत्ता है—**राजा प्रजा पर शासन नही करता केवल राज्य करता है, वर्तमान राजतन्त्र का पहले जैसा ही गौरव अब भी है, शायद पहले से अधिक ही हो पर वास्तविक शक्ति मन्त्रि परिषद् के हाथ में है इंगलैण्ड में राज्यतन्त्र को "बाह्य रूपी कार्यकारिणी" (Formal Executive) कह सकते है क्योंकि राजा के नाम से सारी शासन-सत्ता का उपभोग मन्त्री लोग करते हैं जो पार्लियामण्ट को उत्तरदायी रहते है ।

**दूसरे राष्ट्रपतियों की अपेक्षा राजा की आय—**शासन-सत्ता को दूसरो के सौंपने के बदले में राजा को क्या मिला ? उस शासन की जिम्मेदारी के बोझ से मुक्ति मिल गई । वह पार्लियामेण्ट के काम में हस्तक्षेप नही करता और उसके बदले में पार्लियामेण्ट प्रतिवर्ष उसके लिये एक बहुत बडी रकम मजूर कर देती है जिससे वह बडे राजसी ठाठ-बाठ स रह सकता है । जार्ज षष्ठम को प्रतिवर्ष ८१०,००० पौंड मिलता है और इसके अतिरिक्त लंकास्टर की जागीर की आय जो ५ लाख के लगभग है मिलती है । कार्नवैल की जागीर से भी उसे एक लाख पौंड की आय है जिसमे से १६ ००० पौंड कुमारी एलिजाबैथ को व ड्यूक आफ ग्लौसेस्टर को दे दी जाती है । राजघरान के दूसरे सब लोगो को मिला कर प्रति वर्ष १००,००० पौंड दिया जाता है । इस प्रकार कुल ६,५०,००० पौंड का राजघराने का खर्चा है । इसके मुकाबिले में हालैण्ड के राजा की आय ५०,००० पौंड, इटली के राजा की १ ७५ ००० पौंड, नार्वे और स्वीडन के राजाओं की ३५,००० पौंड और ८५,००० पौंड थी । फ्रास के प्रैसीडेण्ड को ४५,००० पौण्ड और अमरीका के प्रैसीडण्ड को २०,००० पौण्ड मिलता है, इसके अलावा कुछ भत्ता और

दिया जाता है। इंगलैण्ड में राजा की निजी सम्पत्ति भी बहुत है जो विक्टोरिया के समय से प्राप्त होती चली आ रही है। वह अपनी सम्पत्ति को अन्य व्यक्तियों के समान बेच सकता है और खरीद सकता है।

**अंगरेजी राजतन्त्र कानून की दृष्टि में और वास्तव में**—कानून की दृष्टि में अब भी इंगलैण्ड का राजा उतना ही सर्वोच्च सर्वाधिकारी है जितना १६ वीं शताब्दी के अन्त में था। उसके कानूनी अधिकारों में कोई कमी नहीं आई है। वही सर्वोच्च कार्यकारिणी सत्ता है, वही पार्लियामेण्ट में अन्तिम विधायिनी शक्ति का स्वामी है और वह अब भी 'जस्टिस (न्याय) और 'ऑनर' (प्रतिष्ठा) का निर्झर" है। वह धर्म-संघ (Church) का अब भी अध्यक्ष है, अब भी वह राष्ट्र की सैन्यशक्ति का नायक है और साम्राज्य व राष्ट्र की एकता और गौरव उसमें मूर्तिमान है। राजनीतिज्ञ बेजहोट (Bagehot) ने विक्टोरिया के राज्य-काल में राजा की उन शक्तियों का संक्षिप्त वर्णन किया था जो वह बिना पार्लियामेण्ट की सम्मति के उपयोग कर सकता है। वह वर्णन इस प्रकार है "रानी सेना को भंग कर सकती थी, वह सेनापति से लेकर सब अफसरों को बर्खास्त कर सकती थी, सब नाविकों को भी अपने पद से हटा सकती थी, वह हमारे सब पोत और उनका सब सामान बेच सकती थी। वह कार्नवैल की जागीर देकर सुलह कर सकती थी और ब्रिटेन की विजय के लिये युद्ध कर सकती थी। वह इंगलैण्ड के प्रत्येक स्त्री पुरुष को पीयर (peer) बना सकती थी और प्रत्येक पैरिश (Parish) को यूनिवर्सिटी बना सकती थी। वह सब राजकीय कर्मचारियों को बर्खास्त कर सकती थी और सब अपराधियों को क्षमा कर सकती थी। संक्षेप में रानी सरकार के सारे काम कर सकती थी, बुरी लड़ाई या सुलह कर के राष्ट्र का अपमान करा सकती थी और समुद्री तथा दूसरी सेनाओं को तोड़ फोड़ कर हमको दूसरे राष्ट्रों के आक्रमण के लिये अरक्षित छोड़ सकती थी।' * इंगलैण्ड के राजा के अधिकारों की यह विस्तृत सूची है जिनको राजा आज भी काम में ला सकता है।

**वास्तव में राजा के अधिकार नियन्त्रित हैं**—पर व्यवहार में बड़ा अन्तर है। राजा का कोई भी आदेश कार्यान्वित नहीं हो सकता जब तक कोई मन्त्री उस आदेश पर हस्ताक्षर न कर दे और हस्ताक्षर करने पर वह मन्त्री उस आदेश का उत्तरदायी हो जाता है। राजा को अपने मन्त्रियों की सलाह माननी पड़ती

*बेजहोट इंगलिश कस्टीट्यूशन, पृष्ठ ३६।

है। हालांकि यह बात प्रथानुसार मान्य हो गई है, इसके पीछे कोई वैधानिक लिखित नियम नही है, पर फिर भी यह अगरेजी विधि-निर्बन्ध की ऐसी महत्व-पूर्ण अग बन गई है कि सन् १६३६ में अष्टम् एडवर्ड को राजसिहासन छोड़ने पर बाध्य होना पडा क्यो कि उसके मन्त्रियो ने उसे अपनी 'प्रेयसी' से विवाह करने के विचार को त्याग देने की सलाह दी। राजकर्मचारियो के बरखास्त करने का राजा का विशेषाधिकार इसी प्रकार प्रतिबन्धित है। हैल्सबरी ने प्रीरोगेटिव (Prerogative) अर्थात् राजा के विशेषाधिकार की परिभाषा इस प्रकार की है "प्रीरोगेटिव वह सर्वोच्च प्रतिष्ठा है जो प्राचीन प्रचलित नियमो से, पर उनकी परिधि के बाहर, राजकीय गौरव के कारण सब व्यक्तियों से अधिक राजा को मिलती है। इस प्रतिष्ठा के अन्तर्गत वे सब, स्वतन्त्रतायें, विशेषाधिकार, राजकीय ठाटबाठ और शान-शौकत हैं जो प्राचीन प्रचलित नियम के अनुसार इगलैण्ड के राजा को प्राप्त रहती हैं। जब इन विशेष राजकीय अधिकारो को काम में लाया जाता है तो न्यायालय को इनके अस्तित्व के सम्बन्ध में पूछताछ करने का अधिकार रहता है क्यो कि सन् १६१० में यह तय किया गया था कि "राजा को ऐसा कोई विशेषाधिकार नही जो देश के कानून से न दिया गया हो और वह किसी कानून, प्राचीन प्रचलित नियम, प्रथा या परिपाटी को अपनी घोषणा से नही बदल सकता। राजा के विशेषाधिकारो पर चाहे वे वैधानिक हो या कार्यकारी, कुछ तो राजा और जनता के पारस्परिक समझौतो से, कुछ निषेधक कानूनो से और कुछ अप्रचलित होने से प्रतिबन्ध लग गये हैं। उदाहरणार्थ, कानून का बनाना राजा का विशेषाधिकार है, सही, पर सन् १७०७ से अब तक पार्लियामेण्ट के बनाये हुय कानूनो पर राजसी सम्मति कभी भी मजूर नही हुई है। राजा अपने विशेषाधिकार से नये पीयर बना सकता है। जार्ज चतुर्थ ने अर्ल ग्रे को पीयर बनाने की यह आज्ञा दी थी—"राजा अर्ल ग्रे को व लार्ड ब्रोघम को यह अनुमति देता है कि वे इतने पीयर बनाईं जितने सुधार विधेयक को पास कराने के लिये पर्याप्त हो। पर पहले पीयरो के ज्येष्ठ पुत्रों को पीयर बनाया जाय।" यह सब ठीक है पर फिर भी राजा इस अधिकार को अभेदात्मक ढग पर काम मे नही ला सकता। इस बात को लार्ड लिन्धर्स्ट (Lord Lindhurst) ने स्पष्ट कर दिया था। उन्होने कहा "इस का यह मतलब नही है कि क्यो कि यह बिलकुल वैध (legal) है इसलिये विशेषाधिकार का यह या और कोई प्रयोग विधान के सिद्धान्तो के अनुकूल है। राजा चाहे तो इस अधिकार के बल पर एक दिन में १०० पीयर बनादे और यह बिलकुल वैध

समझा जायगा पर हम सब को यह समझना और जानना है कि राजा द्वारा विशेषाधिकार का ऐसा प्रयोग विधान के सिद्धान्तों का तोड़ना होगा जो निन्द्य समझा जायगा ।

इसलिये अब नये पीयर मन्त्रि परिषद् की सलाह से बनाये जाते हैं । राजा के दूसरे विशेषाधिकार भी इसी प्रकार प्रतिबन्धित हैं । सन् १६८८ की क्रान्ति के बाद राजा की स्थिति इस वाक्य में वर्णित है "राजा बनाया गया, राजा प्रतिबन्धित किया गया, राजा को वेतन दिया जाने लगा ।"

**राजा और न्यायपालिका**—यद्यपि राजा को न्याय का निर्झर कह कर पुकारा जाता है और न्यायालय सम्राट के न्यायालय कहलाते हैं पर सम्राट न्याय-प्रबन्ध में न हस्तक्षेप करता है, न कर सकता है । यद्यपि न्यायाधीश राजा के ही द्वारा बाह्यरूप से नियुक्त और पदच्युत किये जाते हैं पर वास्तव में उनकी नियुक्ति मन्त्रियों द्वारा ही होती है और साधारणतया पालियामेण्ट के दोनों सदनों के कहने पर अपने पद से हटाये जा सकते हैं । यह भी ठीक है कि अपराधियों को क्षमा प्रदान करने के विशेषाधिकार को कार्यरूप देता है । राजा को केवल उन बातों की सूचना भर दे दी जाती है जिन पर उसे अपने हस्ताक्षर करने होते हैं, उसका उत्तरदायित्व मन्त्री पर रहता है ।

**राजा और विधायिनी शक्ति**—राजा पालियामेण्ट का उद्घाटन और विघटन करता है पर यह काम वह केवल अपनी मर्जी के अनुसार ही नहीं करता, उसके इस अधिकार पर प्रचलित प्रथाओं के बन्धन लगे हुये हैं । उसे प्रतिवर्ष पालियामेण्ट बुलानी पड़ती है जिससे बजट पास हो सके और सेना सम्बन्धी अधिनियम (Act) स्वीकृत हो सके । सन् १६११ के पालियामेण्ट एक्ट से पालियामेण्ट की अवधि पाच वर्ष कर दी गई है । पालियामेण्ट स्वयं ही अपना कार्यक्रम निश्चित करती है । पालियामेण्ट के विघटन करने के अधिकार को काम में लाते समय राजा को राष्ट्र की इच्छा के अनुसार कार्य करना पड़ता है । विघटन के सम्बन्ध में ठीक वैधानिक स्थिति क्या है इसका विशद वर्णन अर्ल ग्रे और एस्क्विथ ने अपने १८ दिसम्बर सन् १६२३ के व्याख्यान में इस प्रकार किया था 'इस देश में पालियामेंट का विघटन करना राजा का विशेषाधिकार है । यह अधिकार कोरी सामान्तशाही के समय से चली आने वाली प्राचीन परिपाटी नहीं है, पर यह हमारी वैधानिक प्रणाली का एक उपयोगी अंग है जिसके जोड की कोई वस्तु किसी दूसरे देश में नहीं मिलती, उदाहरणार्थ संयुक्तराष्ट्र अमरीका में ।

इसका मतलब यह नहीं है कि राजा को इस अधिकार को कार्यान्वित करते समय स्वेच्छा से काम करना चाहिये और मन्त्रियों का परामर्श न लेना चाहिये, पर इस का मतलब यह अवश्य है कि जब तक राजा को ऐसे दूसरे मन्त्री मिल सकते हैं जो सरकार को चलाने के भार को अपने ऊपर लेने को तैयार हों, उस समय तक राजा किसी मन्त्री की ऐसी सलाह मानने को बाध्य नहीं जिससे प्रजा को एक के बाद दूसरे निर्वाचन के कुहराम से कष्ट उठाना पड़े।" राजा विघटन की तभी आज्ञा देता है जब वह यह अच्छे प्रकार समझ लेता है कि हाउस आफ कामन्स ने जनता का प्रतिनिधित्व करना बन्द कर दिया है। राजा को यदि पार्लियामेण्ट में कुछ कहना होता है तो वह सत्र के आरम्भ में या उसकी समाप्ति पर अपने राज्यसिंहासन से वक्तृता देकर या संदेश भेज कर कर सकता है। पार्लियामेण्ट का उद्घाटन करते, स्थगन करते या विघटन करते समय ही राजा हाउस आफ लार्ड्स् में, जहां कामन्स के सदस्य भी बुलाये जाते हैं, उपस्थित होता है। पर राजा के सारे संदेश व वक्तृतायें तत्कालीन मंत्रिपरिषद् तैयार करती है और उसी की शासन शक्ति उस संदेश आदि में बतलाई जाती है। पार्लियामेण्ट में वाद-विवाद होते समय राजा वहां उपस्थित नहीं हो सकता और यद्यपि सारे कानून राजा व पार्लियामेण्ट के नाम से ही बनते हैं पर वास्तव में केवल पार्लियामेण्ट या यों कहिये केवल हाउस आफ कामन्स ही कानूनों को बनाता है। हाउस आफ लार्ड्स् हस्तक्षेप नहीं कर सकता, राजा तो उससे भी कम हस्तक्षेप कर सकता है। यही नहीं बल्कि नये उपनिवेशों के शासन प्रबन्ध के लिये निकाली हुई घोषणायें व भारतवर्ष के लिये निकाले हुये आर्डर-इन-कौंसिल (**Orders-in-Council**) यद्यपि प्रिवी कौंसिल में स्थित राजा द्वारा निकाले हुये समझे जाते हैं पर वास्तव में मन्त्री ही उन सब को तैयार करते हैं।

इस सब वर्णन से यह न समझना चाहिये कि विधेय-निर्माण में राजा का प्रभाव नहीं के बराबर है। कई मन्त्रि परिषद् का अनुभव प्राप्त कर लेने से कभी कभी वह इस योग्य हो जाता है कि मन्त्रियों को किसी कार्य के करने या किसी विधेयक को पुनः स्थापित करने से समझा बुझा कर रोक दे। पर यदि पार्लियामेण्ट किसी योजना को पास कर दे तो फिर वह उस पर अपनी सम्मति देने से इन्कार नहीं करता। वह कानून से परे है अर्थात् वह किसी भी वैधानिक रीति से न्यायालय में उपस्थित नहीं कराया जा सकता और किसी अपराध का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उसके सब कार्यों का उत्तरदायी कोई न कोई मन्त्री ही होता है।

**राजा और कार्यपालिका शक्ति**—राज्य का अध्यक्ष होने से राजा मुख्य मजिस्ट्रेट होता है और कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। पर व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् ही कार्यपालिका सत्ता है। राजा प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है और उसके परामर्श से दूसरे मन्त्रियों को नियुक्त करता है, पर वास्तव में मन्त्री हाउस आफ कामन्स द्वारा ही नियुक्त होते हैं क्यों कि प्रधान मन्त्री की नियुक्त करते समय राजा को उस व्यक्ति को प्रधान मन्त्री स्वीकार करना पड़ता है जो कामन्स में बहुमत प्राप्त कर सके। बहुमत वही पायेगा जो कामन्स का विश्वास पात्र होगा अर्थात् जिसको कामन्स के अधिक सदस्य चाहते हों। मन्त्री राजा के मन्त्री कहलाते हैं पर व्यवहार में ये लोग राजा को उत्तरदायी न होकर कामन्स को उत्तरदायी होते है अर्थात् जनता के प्रतिनिधियों को। यदि कोई राजा अपनी इच्छा से किसी मन्त्रिमण्डल को हटावे तो उसका यह काम संविधान-विरुद्ध समझा जायगा। नाममात्र को वैदेशिक मामलों में भी यद्यपि ब्रिटिश राज-दूतों को राजा ही मनोनयन करके भेजता और विदेशी राजदूतों का स्वागत करता है पर वास्तव में ब्रिटिश राजदूतों की नियुक्ति मन्त्री मण्डल द्वारा ही होती है। महारानी विक्टोरिया व एडवर्ड सप्तम के राज्यकाल में वैदेशिक नीति में राजा का बड़ा प्रभाव था और ये लोग महत्वपूर्ण मामलों को समय समय पर हस्तक्षेप कर विदेशी राज्यों से सम्बन्ध स्थापित करने के बाद अपना बड़ा प्रभाव डालते थे पर उनका ऐसा करना कानूनी अधिकार से न हो कर उनकी वैयक्तिक योग्यता के कारण होता था।

**क्राउन और किंग का भेद**—अब तक हमने सुविधा के लिये क्राउन (Crown) और किंग (King) दोनों के लिये ही राजा शब्द का ही उपयोग किया है। पर इन दोनों शब्दों में अन्तर है और ब्रिटिश संविधान के इतिहास के विद्यार्थी को इस अन्तर को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। 'क्राउन' एक संस्था है जो कभी विघटित नहीं होती, 'किंग' एक व्यक्ति है जो उस संस्था का स्वामी होता है और जो मृत्यु से या किसी और प्रकार से किंग नहीं रहता। क्राउन साम्राज्य की एकता का प्रतीक है यह वह स्वर्ण-शृंखला है जो ब्रिटिश साम्राज्य के विभिन्न भागों को जोड़ कर रखती है प्रजा की भक्ति क्राउन के प्रति मानी जाती है। व्यक्ति-रूप से राजा (किंग) को समाज में बड़ा ऊंचा स्थान दिया जाता है। किंग को बहुत सी बातों का पता भी नहीं चलता जो क्राउन के नाम से की जाती है। क्राउन सर्वोच्च कार्यपालिका शक्ति है और उसके अधिकारों का उपभोग राजा अपने मन्त्रियों की सलाह से करता है। क्राउन की ख्याति और प्रभाव एक

ऐसे रहस्यमय वैभव से लिपटे हुये हैं जो इसके लम्बे इतिहास और परम्परा में व्याप्त है। इसकी स्थिति इसे शक्ति प्रदान करती है। ऐसी शक्ति जिसे वही व्यक्ति दबा सकता है जो बडे सुदृढ चरित्र वाला हो। नम्र स्वभाव वाला निर्बल भावुक व्यक्ति स्वय ही उसके प्रभाव में आ जायगा। क्राउन की स्थिति और प्रभाव को सक्षेप में इस प्रकार वर्णन किया जा सकता है क्राउन को यह अधिकार है कि उसे देश के भीतर व बाहर की राजनैतिक स्थिति से परिचित रखा जाय, इसीलिये सभी कानूनो और बहुत से सरकारी पत्रो पर उसके हस्ताक्षर की आवश्यकता रहती है। यह आपत्ति या प्रतिवाद कर सकता है, सुझाव दे सकता है, पर शासन प्रबन्ध में रुकावट नही डाल सकता। पहले मन्त्री राजा को सलाह देते थे किन्तु अब परिस्थिति बदल गई प्रतीत होती है क्यो कि अब राजा मन्त्रियो को सलाह देता है और शक्तिशाली राजा कभी कभी यह काम बडी अच्छी तरह करता भी है।

## मंत्रिपरिषद्

असली कार्यपालिका तो इगलैण्ड में मन्त्रिपरिषद् है जिसके ऊपर ब्रिटेन और उसके साम्राज्य के शासन प्रबन्ध का भारी बोझ रहता है। सरकार बराबर रहनी चाहिये इसलिये जब एक मन्त्रिपरिषद् पदत्याग कर देती है उसके स्थान पर दूसरी बना दी जाती है। आचार्य डायसी ने मन्त्रिपरिषद् के बारे में यह कहा है "यद्यपि राष्ट्र का प्रत्येक कार्य राजा के नाम से होता है पर वास्तविक कार्यपालिका सरकार मन्त्रिपरिषद् है, हा यह कोई भी इनकार नही कर सकता कि एक ऐसा अस्पष्ट घेरा भी है जिसके भीतर सविधान के अन्तर्गत साम्राज्ञी की वैयक्तिक इच्छा का बडा प्रभाव रहता है"। दूसरी राज्यसस्थाओ से तुलना करते हुये ग्लैडस्टान (Gladstone) ने मन्त्रि परिषद् के बारे में यह कहा था

"मन्त्रि परिषद् तीन मोड वाला वह कब्जा है जो ब्रिटिश सविधान के तीन अगो को अर्थात् राजा या रानी, लार्डस् और कामन्स को मिला कर कार्य में प्रवृत्त करता है। धक्का सम्भालने वाले यन्त्र की स्प्रिग के समान यह सम्पूर्ण भार को अपने ऊपर वहन करता है और इसके भीतर उस धक्के के पारस्परिक विरोधी तत्व लड भिड कर ठण्डे हो जाते हैं। आधुनिक समय में राजनैतिक ससार में यह एक अनुपम रचना है। इसकी अनुपमता इसके गौरव के कारण नही पर इसकी सूक्ष्मता, लचीलापन और बहुमुखी शक्ति की विविधता के कारण है जो राजा, पार्लियामेण्ट, राष्ट्र या सदस्यो के आपस के सम्बन्ध या अपने

प्रधान से इसका सम्बन्ध निश्चित करती हो, ऐसी लिखित संविधान की एक लकीर भी नहीं है पर केवल पारस्परिक समझ के आधार पर यह जीवित है और अपना काम कर रही है।"

**क्राउन की तीन कौंसिलें**—मन्त्रिपरिषद् अंगरेजी प्रथा, रीतिरिवाज और प्रचलित नियमों से उत्पन्न हुई एक बड़ी अनुपम संस्था है। इस समय क्राउन अर्थात् राजा की तीन कौंसिलों में से यह एक है, दूसरी दो में से एक हाउस आफ लार्ड्स् है और एक प्रिवी कौंसिल। हाउस आफ लार्ड्स् की उत्पत्ति आदि के सम्बन्ध में पहले ही वर्णन हो चुका है। वर्तमान मन्त्रिपरिषद् के कर्तव्यों को भली भाति समझने के लिये यहां आवश्यक है कि इसमें और प्रिवी कौंसिल में भेद स्पष्ट कर दिया जाय।

**क्यूरिया का प्रारम्भिक इतिहास**—नार्मन काल में राजा के परामर्श-दाताओं की एक स्थायी समिति थी जो न्याय, अर्थ तथा शासन सम्बन्धी व दूसरे परामर्श देने वाले कार्य करती थी। इस समिति का नाम क्यूरिया (Curia) था। जैसे जैसे समय बीतता गया और इस समिति का काम बढ़ा, इसका न्याय सम्बन्धी काम किंग्स बेंच और कामन प्लीज नामक दो न्याय संस्थाओं में बांट दिया गया और अर्थ सम्बन्धी (Financial) काम अर्थ विभाग या राजकोष विभाग (Exchequer) को सौंप दिया गया। बचे हुये काम जो सामान्य शासन और राजा को परामर्श देने से सम्बन्धित थे वे कंटीन्यूअल कौंसिल (Continual council) करने लगी। यह कन्टीन्यूअल कौंसिल (Continual council) हेनरी सप्तम के समय में बड़ी प्रख्यात हुई। इसके सदस्य प्रतिवर्ष चुने जाते थे, उनको वेतन दिया जाता था और उन्हें कौंसिल की बैठकों में उपस्थित होना पड़ता था। इसके कर्तव्य वे सब थे जो कार्यपालिका के हुआ करते हैं और इसलिये सरकार की यह कार्यपालिका परिषद् बन गई। एडवर्ड षष्टम के समय में यह प्रिवी कौंसिल के नाम से पुकारी जाने लगी। उसके पश्चात् ट्यूडर काल में यह छोटी छोटी समितियों में विभक्त होकर काम करने लगी थी। इसके सदस्यों की संख्या बदलती रही, सन् १५०६ में यह संख्या ११, १५४७ में २५, मेरी (Mary) के समय में ४६ पर एलिजाबेथ के समय में केवल १३ थी। जनता के प्रतिनिधि (हाउस आफ कामन्स) इस पर इसके सदस्यों के विरुद्ध अभियोग लगा कर इसका नियन्त्रण किया करते थे। सन् १८३३ में एक एक्ट से प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति (Judicial Committee) बना दी गई। इसी

प्रकार समय समय पर और भी समितियां और बोर्ड इसमें से बन कर अलग हो गये जैसे, बोर्ड आफ ऐज्यूकेशन (शिक्षा बोर्ड), स्थानीय बोर्ड इत्यादि।

**मन्त्रि परिषद् (Cabinet)**—षष्टम एडवर्ड के समय मे प्रिवी कौसिल की एक समिति को कुछ महत्वपूर्ण कार्यों के करने का भार सौप दिया गया था और इसलिये उसको 'कमिटी आफ स्टेट' (Committee of State) कह कर पुकारा जाता था। चार्ल्स द्वितीय ने कुछ विश्वस्त मन्त्रियो की एक समिति बनाई जिसका नाम "कैबल" (Cabal) रखा और जिसका काम राजा को परामर्श देना था। इसी समिति का बाद में कैबिनेट (Cabinet ) नाम पडा। यही कैबिनेट शासन नीति निश्चित करती थी जिसे प्रिवी कौसिल राजा की ओर से स्वीकार कर लेती थी और जिसके अनुसार विभिन्न शासन विभाग अपना काम करते थे। विलियम तृतीय के समय में कैबल के द्वारा काम करने की प्रणाली का विरोध होने लगा, इसलिये एक्ट आफ सैटिलमेण्ट (Act of Settlement) में यह निश्चय कर दिया गया कि प्रिवी कौसिल स्वय ही सब विषयो में निर्णय किया करे और अन्तिम निर्णय पर सब उपस्थित सदस्य अपने हस्ताक्षर किया करें। इस एक्ट ने यह भी निश्चत कर दिया कि सरकारी वेतन भोगी व्यक्ति पार्लियामेण्ट के सदस्य नही हो सकते, पर रानी ऐन के समय में इन अधिनियमो को रद्द कर दिया गया।

**हैनोवर राजवंश के समय की कैबिनेट अर्थात् मन्त्रि-परिषद्**—जार्ज प्रथम के राजसिंहासनारूढ होने पर मन्त्रिपरिषद् की बनावट और कार्यपद्धति मे बडा परिवर्तन हुआ। जार्ज प्रथम जर्मनी में स्थित हैनोवर प्रदेश का जागीरदार था। इगलैण्ड के राजसिंहासन पर हैनोवर वश के राजाओ में वह प्रथम था वह अग्रेजी भाषा से परिचित न था। उसने अपनी मन्त्रि परिषद् में उदार पक्ष के मुख्य नेता रखे पर अगरेजी भाषा से अनभिज्ञ रहने के कारण वह मन्त्रिपरिषद् की बैठको में शामिल न होता था और इस प्रकार शासन कार्य व उसकी नीति स्थिर करने में उसका हाथ न रहा। इस बात में उसका स्थान प्रधान मन्त्री ने ले लिया। जार्ज द्वितीय के समय में सर रावर्ट वालपोल ने मन्त्रिपरिषद्-प्रणाली को अच्छी तरह स्थापित कर सचालित कर दिया और उस प्रणाली को व्यवस्थित रूप दे दिया। जार्ज तृतीय को यह प्रणाली पसन्द न थी इसलिये टोरियो की सहायता से उसने इसे नष्ट करना चाहा। पर अमरीकन उपनिवेशों के हाथ से निकल जाने से राजा का वैयक्तिक शासन समाप्त हो गया और अनुदार पक्ष भी मन्त्रि-

परिषद् व पक्ष-प्रणाली का उतना ही भक्त हो गया जितना उदार पक्ष था। रानी विक्टोरिया ने भी कुछ दुविधा के बाद इस प्रणाली को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार राजा के ऊपर पूरा लोकनियन्त्रण हो गया।

मन्त्रिपरिषद् आजकल शासन की प्रेरणात्मक शक्ति है। यह इस सिद्धांत पर बराबर चली रहती है कि राजा की सरकार चलनी ही चाहिये। इसलिये जब एक मन्त्रिमण्डल पदच्युत हो जाता है तो दूसरा तुरन्त बन जाता है मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिये राजा पार्लियामेण्ट के राजनैतिक पक्षों में से उस पक्ष के नेता को बुला भेजता है जो पार्लियामेण्ट में अपनी ओर बहुमत को कर सके। (पार्लियामेण्ट से यहां हाउस आफ कामन्स ही समझना चाहिये) और उस नेता को राजा अपना प्रधानमन्त्री नियुक्त कर देता है। उसके पश्चात् प्रधान मन्त्री मन्त्रि परिषद् बनाता है। साधारण स्थिति में प्रधान मन्त्री अपने पक्ष के बड़े बड़े व्यक्तियों से सलाह लेता है और सलाह लेने के पश्चात् अपनी मन्त्रिपरिषद के मन्त्रियों के नाम राजा के सामने प्रस्तुत कर देता है जो विधिपूर्वक स्वीकृत हो जाते हैं और मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों के नाम गजट में छाप दिये जाते हैं। असाधारण स्थिति में मिली जुली (Coalition) मन्त्रिपरिषद् बनाई जाती है जिसमें सब राजनैतिक पक्षों के प्रमुख व्यक्ति रखे जाते हैं। यद्यपि प्रधान मन्त्री अपने साथी मन्त्रियों को चुनने में स्वतन्त्र है पर राजा तीन प्रकार से इस काम में अपना प्रभाव डाल सकता है। (१) किसी विशेष राजनीतिज्ञ के नाम का सुझाव देकर (२) प्रधान मन्त्री द्वारा प्रस्तावित किसी राजनीतिज्ञ को स्वीकार करने से इन्कार कर और (३) किसी पसन्द किये हुये राजनीतिज्ञ की अयोग्यता की कटुआलोचना कर। पर यह सब प्रभाव बलपूर्वक बाध्य करने के रूप में न हो कर केवल समझाने के रूप में डाला जाता है।

**कैबिनट अर्थात् मन्त्रिपरिषद् की रचना**—मन्त्रि परिषद् के बनाने का काम प्रधान मन्त्री के लिये बड़ा महत्वपूर्ण है। अधिकतर वह ऐसे व्यक्तियों को ही चुनता है जो योग्य व प्रभावशाली होते हैं पर कभी कभी इस काम में यह भी देखना पड़ जाता है कि अधिक से अधिक सुविधाजनक पसन्द कौनसी होगी। अनुभवी व्यक्तियों के अतिरिक्त ऐसे व्यक्ति भी छांट लिये जाते हैं जिनकी केवल यही योग्यता है कि वे प्रधानमन्त्री के मित्र रह चुके हैं। मिनिस्टर्स आफ दी क्राउन एक्ट (Ministers of the Crown Act) के पास हो जाने के बाद यह नियम हो गया है कि हाउस आफ लार्डस् मे भी कम से कम तीन कैबि-

नैट मन्त्री और तीन पार्लियामेण्टरी उपसचिव लेने चाहियें । इस एक्ट के अनुसार कैबिनैट मन्त्री ये कहे जाते हैं—प्रधान मन्त्री, अर्थ मन्त्री, कोषमन्त्री, गृह-मन्त्री, उपनिवेश मन्त्री, विदेश मन्त्री, डोमिनियन (Dominion) मन्त्री, युद्ध मन्त्री, वायुसेना मन्त्री, भारत मन्त्री, (अब यह पद टूट गया है क्यों कि भारत अब स्वतन्त्र है) स्काटलैण्ड का मन्त्री, नौसेना मन्त्री, व्यापार-बोर्ड का अध्यक्ष, कृषि मन्त्री, शिक्षा-बोर्ड का अध्यक्ष, स्वास्थ्य मन्त्री, श्रम-मन्त्री, यातायात मन्त्री, नियामक (Co-ordination) मन्त्री, कौंसिल का लार्ड प्रैसीडेण्ट, लार्ड प्रिवी सील, पोस्टमास्टर जनरल, निर्माण विभाग का प्रथम कमिश्नर और पेंशन मन्त्री । इनके वेतन एक्ट द्वारा निश्चित रहते है, क्यो कि हाउस आफ कामन्स में ही विभिन्न पक्षो का राजनैतिक सघर्ष चलता है, वही मन्त्रिमण्डल बनते और बिगडते हैं और जनता के प्रतिनिधियो के सामन सरकार को वही अपनी नीति के बारे में लगाये हुये अभियोगों का प्रतिवाद कर उनका औचित्य दिखलाना पडता है, इसलिये अधिकतर मन्त्री और पार्लियामेण्टरी उपसचिव हाउस आफ कामन्स के सदस्यो में से ही लिये जाते है ।

मन्त्रिपरिषद् के व्यक्तियों की नियुक्ति स्थायी नही होती क्यो कि समय समय पर प्रधान मन्त्री पुराने सदस्यो के स्थान पर नये मन्त्री नियुक्त करता रहता है । प्रधान मन्त्री को परिषद् बनाने का ही अधिकार नही वरन् उसमें समय समय पर परिवर्तन कर उसे पुनर्गठित करने का भी अधिकार है, यदि ऐसा करना उसके विचार में वाछनीय हो । यह तभी होता है जब या तो कोई मन्त्री किसी विशेष विपत्तिजनक परिस्थिति के कारण या साधारण रूप से पद-त्याग कर दे, किसी सामान्य निर्वाचन में सफल होने के पश्चात् कोई प्रधान मन्त्री अपनी परिषद् का पुनर्संगठन करना चाहे या जब प्रधान मन्त्री परिषद् को अधिक प्रभावपूर्ण बनाना चाहे । ऐसा करते समय प्रधान मन्त्री केवल अपने पक्ष के नेताओं से ही सलाह नही लेता वरन् उन मन्त्रियो और व्यक्तियों की सलाह भी लेता है जिन पर इस पुनर्संगठन का असर पडता हो ।

**प्रधान मन्त्री**—किसी मन्त्रिपरिषद् की शासन नीति क्या होगी और वह कितनी सफलीभूत सिद्ध होगी, यह प्रधान मन्त्री के पौरुष, व्यक्तित्व और उसकी योग्यता पर निर्भर रहता है । एक राजनीतिज्ञ ने कहा है कि कैबिनैट राज्यपोत का परिचालन करने वाला पहिया है और प्रधान मन्त्री उसका परि-चालक है । यह बडे आश्चर्य की बात है कि यद्यपि अगरेजी शासन विधान वाली पुस्तको में प्रधान मन्त्री के नाम व पद का इतना वर्णन पाया जाता है पर १६०५ तक यह नाम या पद मान्य न हुआ था और सन् १६१७ में ही जाकर वही कानून

में इसका समावेश हुआ । सन् १९३७ के वेतन सम्बन्धी एक्ट में प्रधान मन्त्री और प्रथम राजकोष मन्त्री के वेतन का वर्णन पाया जाता है । जब कोई राजनीतिज्ञ राजा से चुना जा कर मन्त्रिमण्डल बनाने का कार्यभार स्वीकार कर लेता है तो वह प्रधान मन्त्री बन जाता है । मन्त्रि परिषद् का वह प्रमुख व्यक्ति होता है । उसका मुख्य कार्य मन्त्रि परिषद् को बनाना, बुलाना, स्थगित करना और उसके अध्यक्ष का काम करना है । वह मन्त्रियों को नियुक्त करना और बरखास्त करना है, और अपने साथी मन्त्रियों की सलाह से शासन नीति की रूप रेखा निश्चित करता है । वह राजा को पार्लियामेण्ट के विघटन करने और सामान्य निर्वाचन करने की आज्ञा देने की सलाह देता है । यद्यपि कानून के अनुसार प्रधान मन्त्री की विघटन सम्बन्धी प्रार्थना का राजा विरोध कर सकता है पर वह केवल प्रधान मन्त्री को विघटन के विरुद्ध समझाने बुझाने तक ही अपने प्रभाव का उपयोग करता है। मन्त्रिमण्डल और राजा के बीच में प्रधान मन्त्री ही बातचीत का एक साधन है । उपाधि वितरण में उसका निर्णायक मत माना जाता है । शासन नीति सम्बन्धित विषयों पर पार्लियामेण्ट में उसकी ही बात अन्तिम निर्णय करने वाली समझी जाती है । इसलिये वही हाउस आफ कामन्स का सर्वमान्य नेता होता है । प्रधान मन्त्री ही सरकार की शासन नीति को जनता के सम्मुख घोषणा करता है और वही पत्रकारों के प्रतिनिधियों से मिलता है । वैदेशिक नीति का उत्तरदायित्व प्रमुख रूप से उसी के ऊपर रहता है चाहे वह वैदेशिक मामलों के विभाग का अध्यक्ष न हो पर फिर भी वैदेशिक नीति व वैदेशिक सम्बन्धों की रूप रेखा निश्चित करने में वह सक्रिय भाग ले सकता है । उदाहरणार्थ, चैम्बरलेन ने हिटलर से बातचीत कर म्यूनिक के समझौते पर हस्ताक्षर किये हालांकि विदेश मन्त्री लार्ड हेलीफैक्स थे । राजकोष के प्रथम लार्ड (First Lord of the Treasury) के पद के अतिरिक्त प्रधान मन्त्री और भी जो काम करना चाहे उसका भार अपने ऊपर ले सकता है ।

**मन्त्रि परिषद् का भीतरी संगठन**—मन्त्रिपरिषद् का भीतरी संगठन क्रमिक विकास के फलस्वरूप हो पाया है । पहले तो राजा ही मन्त्रिपरिषद् की बैठकों में अध्यक्ष का पद लेता था । जार्ज प्रथम के समय से यह प्रथा जाती रही और सब शक्ति प्रधान मन्त्री के हाथ में आ गई और वही अध्यक्ष का पद लेने लगा । मन्त्रि परिषद् की बैठकों में शासन-सम्बन्धी मामलों पर विचार होता है । मन्त्रिपरिषद् की बैठक बुलाना प्रधान मन्त्री की इच्छा पर रहता है । कोई भी मन्त्री बैठक बुलाने के लिये प्रार्थना कर सकता है पर प्रधान मन्त्री ऐसी

प्रार्थना को मानने या न मानने में बिलकुल स्वतन्त्र रहता है। बैठकों के होने का समय व दिन प्रधान मन्त्री ही निश्चय करता है पर परिषद् की बैठक में क्या कार्यवाही होगी उसका ब्योरा नही दिया जाता हालाकि सब मन्त्री जानते हैं कि किन विषयो पर विचार किया जावेगा। परिषद् की बैठक प्राय शाम के समय हुआ करती है। काम के बढ जाने से पहिले की अपेक्षा युद्धोत्तर काल में बैठको की सख्या बहुत बढ गई है। युद्ध के समय में तो प्रतिदिन बैठक होती थी।

**परिषद् की बैठकों में उपस्थिति**—परिषद् की बैठक के लिये कोई गणपूरक (Quorum) सख्या निश्चित नही है। प्रधान मन्त्री या और कोई मन्त्री अस्वस्थ होने पर अनुपस्थित रह सकते हैं। अनुपस्थित मन्त्री चाहे तो किसी विचाराधीन विषय पर अपना मत प्रधान मन्त्री को पत्र के रूप में भेज सकता है। जब प्रधान मन्त्री अनुपस्थित रहता है तो अध्यक्ष का काम वह मन्त्री करता है जो पुराना राजनीतिज्ञ हो या और किसी दूसरी प्रकार से प्रभावशाली हो। जब बैठक होती है तो मन्त्रियो के बैठने का कोई निश्चित क्रम नही है पर प्रभावशाली मन्त्री प्रधान मन्त्री के पास बैठते हैं।

**परिषद् में किन विषयों पर विचार होता है**—परिषद् सब महत्वपूर्ण विषयो पर विचार करती है। प्रत्येक मन्त्री अपने अपने विभाग के विषयो को परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है क्यो कि सारी परिषद् शासन-नीति को निश्चित करती है। "जो विषय परिषद् के सम्मुख रखे जाते हैं वे साधारणतया तत्कालीन राजनैतिक घटनाओ से सम्बन्ध रखते हैं। परिषद् के सदस्य छोटी छोटी बातो पर ध्यान न देकर अपनी बुद्धि व ध्यान उन बातो के सुलझाने पर केन्द्रित करते हैं जो उनके सम्मुख बडा महत्व रखती है।"* बजट और राजा का भाषण ये बडे महत्वपूर्ण विषयों में गिने जाते हैं, उसके बाद वैदेशिक नीति महत्वपूर्ण समझी जाती है। परिषद के निर्णय किसी लेख्य में नही लिखे जाते, हा निर्णयो की टिप्पणिया बनाली जाती हैं जो राजा को परामर्श देने, आगे होने वाले दूसरे मन्त्रिपरिषद् की सूचना के लिये और गलती व भ्रान्ति का निवारण करने के लिये काम देती हैं। मन्त्रियो को परिषद में टिप्पणिया बनाना मना है, केवल प्रधान मन्त्री ही टिप्पणिया लिख सकता है क्या कि उसे अपने व अपने साथी मन्त्रियों के विचार राजा को बतलाने में इनकी आवश्यकता रहती है। प्राय निर्णय मताधिक्य के द्वारा होता है पर प्रधान मन्त्री के विचारो को बडा

*यू दी इगलिश कैबिनेट सिस्टम, पृ० २४१।

महत्व दिया जाता है क्यों कि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो शासन नीति का निर्देश करता है। परिषद् की कार्यवाही गुप्त रखी जाती है।

**परिषद् सचियालय का काम**—परिषद् के साथ एक सचिवालय भी रहता है। इस सचिवालय के कर्तव्यों की सूची संक्षिप्त रूप में सन् १९१७ की युद्ध-परिषद् की रिपोर्ट में इस प्रकार दी है (१) युद्ध-परिषद् की कार्यवाही का विवरण रखना, (२) युद्ध-परिषद् के निर्णयों को उन विभागों को बतलाना जिन्हे उन निर्णयों को कार्यान्वित करना है या जो और किसी प्रकार उनमें सम्बन्धित है। (३) कार्यक्रम तैयार करना, मन्त्रियों व दूसरे व्यक्तियों की उपस्थिति का इन्तजाम करना जो उस कार्यक्रम से सम्बन्धित हों और विचाराधीन विषयों पर आवश्यक सूचना एकत्रित कर सब मन्त्रियों के पास भेजना (४) युद्ध परिषद् के काम से सम्बन्धित पत्र व्यवहार करना और (५) पूर्व धारा में वर्णित रिपोर्ट तैयार करना।*

**मन्त्रिपरिषद् की समितियां**—परिषद् के सम्मुख जब कोई विशेष प्रकार के मामले विचार के लिये आते हैं तो परिषद् उनको भली प्रकार निबटाने के लिये छोटी छोटी समितियों में बट जाती है। इन समितियों में एक महत्वपूर्ण समिति साम्राज्य-सुरक्षा समिति (Committee of Imperial Defence) है जिसमें नौसेना मन्त्री (Frist Lord of the Admiralty) युद्ध मन्त्री और वायु सेना मन्त्री के अतिरिक्त वे परिषद् के बाहर के व्यक्ति सदस्य हैं जिनको उनकी विशेषज्ञता के कारण प्रधान मन्त्री नियुक्त कर देता है। दूसरी समिति गृह-विषयों की है जो देश के भीतरी शासन प्रबन्ध के मामलो पर विचार करती है। कुछ एतदर्थ समितियां (Ad hoc Committees) भी होती हैं जो विशेष मामलों पर विचार करती और उन से सम्बन्धित विधेयकों को पार्लियामेण्ट में उपस्थित करने के लिये तैयार करती हैं।

**अन्तरीय परिषद् (Inner Cabinet)**—इतने बड़े साम्राज्य पर शासन करने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि शासन नीति का निर्माण-कार्य व उससे सम्बन्ध रखने वाले निर्णय गुप्त रखे जाय। पर ऐसा करना २३ सदस्यों वाली बडी संस्था में सम्भव नहीं हो सकता। इसलिये प्राय उन मामलों के लिये जिनका गुप्त रखना बहुत आवश्यक है एक अतरीय परिषद् होती है जिनमें कुछ प्रभावशाली मन्त्री होते हैं जिनकी राय लेने के बाद प्रधान मन्त्री

*यू. दी इंगलिश कैबिनेट सिस्टम, पृ० २५८।

मामलो को बडी परिषद् के विचारार्थ उपस्थित करता है। इसमें एक सुगमता यह भी होती है कि जब मन्त्रिपरिषद् में वाद-विवाद होता है तो प्रधान मन्त्री के मत को दृढ समर्थन प्राप्त हो जाता है।

**युद्ध-परिषद् (१९१६–१९)**—अन्तरीय परिषद् की आवश्यकता प्रथम महायुद्ध के समय में प्रतीत हुई जब युद्ध सम्बन्धी मामलो में तुरन्त निर्णय और परिषद् की कार्यवाही को गुप्त रखना अनिवार्य हो गया। लायड जार्ज ने प्रथम यह अन्तरीय परिषद् सन् १९१६ के दिसम्बर मास में बनाई जब मिस्टर एस्क्विथ ने लायड जार्ज से मत भेद होने के कारण पदत्याग किया। इस अन्तरीय परिषद् में जो युद्ध परिषद् के नाम से प्रसिद्ध हुई, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज के अतिरिक्त लार्ड कर्जन (प्रैसीडैण्ड आफ दी कौसिल), लार्ड मिलनर, मिस्टर आर्थर हैण्डरसन और मिस्टर बौनरला (अर्थ मन्त्री) थे। कुछ समय पश्चात् जनरल स्मट्स भी इसमें शामिल कर लिये गये जिससे युद्ध में साम्राज्य की दृढ एकता दिखला दी गई। इस प्रकार कार्यकारी शक्ति और उत्तरदायित्व २३ सदस्यो की मन्त्रिपरिषद् में न होकर ६ व्यक्तियो की एक छोटी युद्ध-परिषद् में केन्द्रित हो गई।

**सन् १९३९ की युद्ध परिषद्**—सन् १९३९ में जब इगलैण्ड ने जर्मनी से युद्ध करने की घोषणा की तो मिस्टर चैम्बरलैन ने अपनी युद्ध-परिषद् बनाई जिसमें ६ सदस्य थे चैम्बरलेन, लार्ड हैलीफैक्स, होर-बैलीशा, चर्चिल, सर चार्ल्स किंग्सले वुड, लार्ड चैटफील्ड, सर जौन साइमन, सर सैमुअल होर, लार्ड साके। एन्थोनी ईडिन को यद्यपि उसका सदस्य नही बनाया गया पर उन्हे बैठको में बुलाया जाता था। पर इस छोटी परिषद् को भी विरोधी पक्ष ने कटु आलोचना की और कहा कि युद्ध का अच्छी प्रकार सचालन करने के लिये यह बहुत विशाल सस्था है।

**मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमण्डल में भेद**—मन्त्रिपरिषद् १७ सदस्यों की छोटी सस्था है पर मन्त्रिमण्डल में इन १७ व्यक्तियो के अतिक्ति १५ अन्य मन्त्री जिनका कैबिनेट में स्थान नही है और कई पदाधिकारी और पालियामेण्टरी सेक्रटरी होते हैं। सन् १९१४ के युद्ध मे पूर्व मन्त्रिमण्डल में ६० से ७० व्यक्ति तक होते थे। पर युद्धोत्तर काल में सरकारी काम के बढ जाने से नये विभाग व नयी जगहें बनानी पडीं। नये मन्त्रिमण्डल में श्रम मन्त्री और पेंशन मन्त्री व

साथ नौपरिवहन (Shipping) मन्त्रीतर भी शामिल हो गये। एक वायु-यान बोर्ड भी बनाया गया और उसके पश्चात् राष्ट्रीय सेवा (National Service), पुनर्निर्माण (Reconstruction) यातायात और एकीकरण विभाग भी खुले। इन सब के खुल जाने के फलस्वरूप मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की संख्या १०० से अधिक हो गई। मन्त्रिमण्डल की संख्या किसी कानून से निश्चित नहीं होती पर यह केवल प्रधानमन्त्री से की हुई व्यवस्था पर निर्भर रहती है। जब मन्त्रिपरिषद् पदत्याग करती है तो मन्त्रिमण्डल के सब पार्लियामेण्टरी सेक्रटरी और दूसरे राजकर्मचारी जो मन्त्रिपरिषद् के आने पर नियुक्त हुये थे त्यागपत्र दे देते हैं।

सर सिडनी लो ने, अन्तरीय मन्त्रिपरिषद् और मन्त्रिमण्डल की रचना में जो भारी परिवर्तन हुआ है, उस पर लिखते हुये कहा है "शासन प्रबन्ध करने वाली पार्लियामेण्ट को उत्तरदायी, पार्लियामेण्ट के सदस्यों में से चुन कर बनाई, हाउस आफ कामन्स से निकट सम्बन्ध रखने वाली पक्ष-प्रणाली पर संगठित हुई और गुप्त रूप से मन्त्रणा करने वाली मन्त्रिपरिषद् के स्थान पर अब हमारे यहां ऐसी परिषद् है जो मन्त्रिमण्डल नहीं कही जा सकती और ऐसा मन्त्रि-मण्डल है जिसे मन्त्रिपरिषद् नहीं कह सकते। अब परिषद् (Inner cabinet) केवल निर्देश करती है, शासन नहीं करती, और मन्त्रिमण्डल ने सामूहिक उत्तर-दायित्व के स्थान पर वैयक्तिक उत्तरदायित्व का भार ले लिया है। अब अन्तरीय परिषद् व हाउस आफ कामन्स का सम्बन्ध बड़ा दूरवर्ती हो गया है और किन्हीं बातों में तो परिषद् हाउस से बिल्कुल स्वतन्त्र हो कर कार्य करती है क्यों कि यह परिषद् दलबन्दी के प्रतिबन्धों से दूर रहती है और अपनी गुप्त मन्त्रणाओं में देश के तथा साम्राज्य के उपराष्ट्रों के प्रतिनिधियों को भी बुलाती है।... और दूसरी अनेकों क्रान्तियों के समान यह क्रांति भी एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है। अन्तरीय परिषद् तो पहिले से ही थी हालांकि उसका अस्तित्व मान्य नहीं हुआ था। मिस्टर एस्क्विथ ने उसको व्यवस्थित रूप देकर मान्य कर दिया। उन्होंने इसके अमान्य गुप्त रूप को तोड़ने में एक कदम और आगे बढ़ाया और इस परिषद् का एक मन्त्री (सेक्रेटरी) भी नियुक्त कर दिया।"

**मन्त्री परिषद् का शासन प्रणाली में स्थान**—ब्रिटिश शासन प्रणाली में जो स्थान व शक्ति मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त है उसे देख कर राजनीतिज्ञों को आश्चर्य होता है और वे उसकी प्रशंसा भी करते हैं। यद्यपि सिद्धान्ततः

मन्त्रीपरिषद् पार्लियामेण्ट की सेवक है क्यों कि वह पार्लियामेण्ट (वस्तुत हाउस आफ कामन्स) की निश्चित की हुई नीति को कार्यान्वित करती है और उसी समय तक अपने स्थान पर आरूढ रहती है जब तक हाउस आफ कामन्स का उसमें विश्वास रहता है, पर व्यवहार में मन्त्रिपरिषद् सेवक न रह कर सदन की स्वामिनी बन जाती है और अनेकों प्रकार से उसका नियन्त्रण करती है। मन्त्रि-परिषद् में बहुमत वाले पक्ष के व्यक्ति ही होते हैं और प्रधान मन्त्री उन सबका नेता होता है। पक्ष की नियम निष्ठा के अनुसार पक्ष के छोटे बडे सब व्यक्ति हाउस में मन्त्रिपरिषद् की नीति का समर्थन करते हैं। मन्त्रिपरिषद् ही पक्ष के नियामकों (Whips) को यह बतलाती है कि पक्ष के सदस्य किसी योजना पर किसकी ओर अपना मत दें। इसके अतिरिक्त बहुमत वाला पक्ष स्वय भी उत्सुक रहता है कि उसकी परिषद् ही अधिक से अधिक समय तक पदासीन रहे इसलिये पक्ष के व्यक्ति स्वय भी पक्षनियामकों (Party-whips) की आज्ञाओ का अक्षरश, बिना हिचकिचाये, पालन करते हैं। ऐसा होने से पक्ष के सदस्यो की वैयक्तिक स्वतन्त्रता जाती रहती है। विशेषकर मन्त्रिपरिषद् की नीति की आलोचना करने के लिये तो वे बिलकुल मुह खोल ही नही सकते। मन्त्रिपरिषद् ही यह निर्णय करती है कि किस दिन गैर सरकारी विधेयकों पर विचार किया जा सकता है। सदन का अधिकतर समय तो परिषद् से प्रस्तुत की हुई साधारण तथा अर्थसम्बन्धी योजनाओ पर विचार करने में ही लगा रहता है। विरोधी पक्ष वाले चाहे तो परिषद् के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव सदन में रख सकते है पर मन्त्रिपरिषद् यह जानती है कि उसके पक्ष के व्यक्ति तो आख बन्द करके उसका समर्थन करेंगे और इस समर्थन के बल पर वह विरोध पक्ष की आलोचना ओर दोषारोपण को हस कर टाल सकती है। यदि किसी गैर सरकारी सदस्य को अपनी योजना हाउस में पास करानी हो तो उसे मन्त्रिपरिषद् को अपनी ओर झुकाना पडेगा वरना उसे अपनी योजना को स्वीकृत कराने की किञ्चित भी आशा न करनी चाहिये। इस प्रकार मन्त्रिपरिषद् सदन का नियन्त्रण करती है। इस नियन्त्रण को प्राय मन्त्रिपरिषद् की निरकुश सत्ता कह कर पुकारा जाता है। इसमें सन्देह नही कि इस समय हाउस मन्त्रिपरिषद् की इच्छा पर अपनी मुहर भर लगा देता है, यद्यपि कभी कभी परिषद् को अपनी नीति की कटु आलो-चना भी सुननी पड जाती है।

## पाठ्य पुस्तकें

Anson, W. R.—Law and Custom of the Constitution, chs. on *King, Cabinet and Ministers.*

Bagehot, W,—English Constitution, chs. I. VI, VIII, IX.

Courtnery,—Working Constitution of the United Kingdom, chs, XII—XIII.

Dicey, A. V.—Law of the Constitution (1936 edition) pp. XCVII, CXV—CXX, CXIII—IV, 156, 468—466.

Emden, Cecil. S.—Select Speeches on the Constitution, ( World Classics,) Vol. I pp. 1-66.

Finer, H.—Theory & Practice of Modern Governments, pp. 953-94 and 1110-28.

Greaves, H. R. G.—The British Constitution chs. IV and V.

Laki, H. J.—Parliamentary Government in England, chs, V and VIII.

Marriot, J. A. R.—English Political Institutions chs. III & V.

Muir, Ramsay—How Britain is Governed, chs. III

Yu Wengteh—The English Cabinet System ( 1936 edition ).

# आठवां अध्याय

'जितनी राजनैतिक परम्परायें इंगलैण्ड में वर्तमान हैं उनमें जो कम से कम विदित है पर जो सबसे अधिक जानने योग्य है वह परम्परा है जिससे विशेषज्ञ और अनाड़ी का सम्बन्ध स्थिर होता है।'
(प्रेसीडेण्ट लावेल)

'दृष्टिकोण, शक्ति, बुद्धि की तत्परता, मनुष्यों से निबटन की कुशलता, किसी कार्य को प्रारम्भ करने और उसकी जिम्मेदारी लेने को हर समय तत्पर रहना ये सब गुण तभी विकसित होते हैं जब राजकीय कर्मचारी को अपने कार्य की पृष्ठभूमि में वह ज्ञान होता है जिससे उसका मस्तिष्क विकसित हुआ है।' (लार्ड हल्देन)

## दी व्हाइट हाल

## (The White Hall)

**व्हाइट हाल क्या है**—यदि न० १० डाउनिंग स्ट्रीट में, जो ब्रिटिश प्रधान मन्त्री का राजकीय निवास स्थान है और जहां मन्त्रिपरिषद् की बैठकें प्रायः हुआ करती हैं, शासन नीति की रूपरेखा निश्चित होती है और वह नीति पार्लियामेण्ट में स्वीकृत होती है तो व्हाइट हाल में उस नीति के अनुसार राज कर्मचारियों और शासन विशेषज्ञों द्वारा शासन प्रबन्ध परिचालित होता है। व्हाइट हाल के अफसर अपने काम में लगे रहते हैं चाहे पार्लियामेण्ट में कैसा ही राजनैतिक संघर्ष क्यों न हो रहा हो और चाहे मन्त्रिपरिषद् में कैसी ही गुप्त मन्त्रणा क्यों न हो रही हो। कोई मन्त्रि-परिषद् जाय या रहे और शासन विभागों के अध्यक्ष अपने स्थान पर रहें या अलग हो जाय पर स्थायी शासन विशेषज्ञ अपने शासन-प्रबन्ध कार्य बराबर करते रहते हैं।

शासन नीति का निश्चय करना मन्त्रिपरिषद् का काम है, उसको कार्यान्वित करना और उसके सम्बन्ध में दिन प्रति दिन की कार्यवाही करना विविध प्रशासन विभागों पर छोड़ दिया जाता है।

**प्रशासन-विभागों के अध्यक्ष**—प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष होता है जो मन्त्रिमण्डल का सदस्य होता है। वही उस विभाग के कार्य प्रकार्य का

उत्तरदायी हुआ करता है। प्रत्येक विभाग में एक उपसचिव भी रहता है। प्रायः इन दोनों व्यक्तियों में एक हाउस ऑफ लार्ड्स से और एक हाउस ऑफ कामन्स से नियुक्त किया जाता है जिससे प्रत्येक सदन में ऐसा एक व्यक्ति रहे जो उस विभाग के कार्य के सम्बन्ध में प्रश्नों का उत्तर दे सके।

इन विभाग अध्यक्षों के अतिरिक्त, जो पालियामेण्ट के सदस्य होते हैं, एक बड़ी संख्या स्थायी राज्य कर्मचारियों की होती है। प्रायः पालियामेण्ट विभाग-अध्यक्षों को शासन विभाग के कार्य संचालन की जानकारी व अनुभव नहीं होता इसलिये ऐसे स्थायी अफसरों का होना बड़ा आवश्यक है जिनके ऊपर विभागाध्यक्ष विश्वास कर सकें और जो प्रत्येक विभाग के कार्य का क्रम बनाये रहें। वास्तव में ये ही लोग अधिकतर शासन प्रबन्ध चलाते हैं। ये लोग अपने काम के लिये सचिव या उपसचिव को उत्तरदायी रहते हैं, पर पालियामेण्ट को उत्तरदायी सचिव या उपसचिव को ही रहना पड़ता है।

वर्तमान प्रशासन-विभागों का धीरे धीरे विकास हुआ है। आरम्भ में जिन्हें हम अब सिविल सर्वेण्ट कहते हैं वे लोग कर वसूल करने वाले राजा के कोषमुन्शी या राजा का सन्देश प्रजा तक पहुंचाने वाले सेक्रेटरी होते थे। पर अब इन लोगों का वेतन राजा की आय से न दिया जाकर पालियामेण्ट में प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा मंजूर होता है। सन् १८४८ के बाद से ही विभागों के आगणन (Estimate) पालियामेण्ट के सामने रखे जाने लगे हैं। इन विभागों के कर्तव्य तो बहुत प्राचीन हैं केवल उनका आधार पहले से भिन्न है। *

पालियामेण्ट ही साधारणतया विविध विभागों के कर्तव्यों को निश्चित कर देती है। पालियामेण्ट के सदस्य और साधारण जनता प्रायः यह भूल जाती है कि जब कोई नयी सरकारी योजना तैयार होती है तो उसको कार्यान्वित करने के लिये किसी न किसी को नियुक्त करना पड़ता है। शासन-नीति या योजना तो पालियामेण्ट के एक्ट के रूप में आ गयी पर वह एक्ट स्वसंचालनशील तो होता नहीं। कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का सगठन उसे कार्यरूप देता है। जब पालियामेण्ट किसी एक्ट को पास करती है तो प्रायः यह भी निश्चित कर देती है कि किस विभाग में इसका सचालन किया जावेगा। कभी कभी एक नया विभाग ही खोलना पड़ जाता है।

इस समय निम्नलिखित प्रशासन-विभाग वर्तमान हैं जिनमें उनके सामने लिखा हुआ काम होता है :—

होम आफिस (गृह विभाग)—पुलिस, जेल, घरेलू शान्ति व सुव्यवस्था, कारखानो में श्रमिकों का काम की सुविधायें।

फौरिन आफिस (वैदेशिक विभाग)—विदेशी राज्यों से सम्बन्ध।

डोमिनियन आफिस—डोमिनियनों से सम्बन्ध, इम्पीरियल कान्फ्रेन्स का काम।

कोलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग)—उपनिवेशों का शासन प्रबन्ध।

वार आफिस (युद्ध विभाग)—सेना का प्रबन्ध।

एयर मिनिस्ट्री (वायु विभाग)—वायु सेना का प्रबन्ध तथा वायुयानों से यातायात सम्बन्धी शासन।

इण्डिया आफिस—भारतवर्ष का शासन (अब यह विभाग तोड़ दिया गया है।)

बर्मा आफिस—ब्रह्मा का शासन (यह भी ब्रह्मा की स्वतन्त्रता के पश्चात् तोड़ दिया गया है।)

एडमिरैलटी—(नौसेना विभाग)—नौसेना सम्बन्धी प्रशासन।

मिनिस्ट्री फार दी कौरडीनेशन आफ डिफेन्स—सुरक्षा सम्बन्धी विभागों का नयोजन।

बोर्ड आफ ट्रेड—(व्यापार विभाग)—व्यापारिक व औद्योगिक उन्नति।

मिनिस्ट्री आफ सप्लाई—युद्ध विभाग के लिये सामग्री जुटाना।

मिनिस्ट्री आफ हैल्थ—(स्वास्थ्य विभाग)—स्थानीय शासन, स्वास्थ्य, घर-निर्माण और नगर निर्माण।

मिनिस्ट्री आफ ट्रांसपोर्ट—(यातायात विभाग)—यातायात के साधनों का प्रबन्ध, सड़कें तार इत्यादि।

बोर्ड आफ एज्यूकेशन (शिक्षा विभाग))—शिक्षा प्रबन्ध।

मिनिस्ट्री आफ लेबर (श्रम विभाग)—बेकारी और रोजगार, श्रमिकों के झगड़े।

मिनिस्ट्री आफ पैंशन्स—पेंशनों का प्रबन्ध।

मिनिस्ट्री आफ एग्रीकलचर एण्ड फिशरीज (कृषि व मत्स्य विभाग)—कृषि व मछली पैदा कराने का प्रबन्ध, बाजार सम्बन्धी योजनाओं का प्रबन्ध।

ट्रेजरी (अर्थ विभाग)—आय-व्यय का प्रबन्ध।

स्काटलैंड विभाग—स्काटलैण्ड सम्बन्धित सब विभागों का प्रबन्ध।

आफिस आफ वर्क्स—सरकारी इमारतों, प्राचीन स्मृति सदन, शाही बाग आदि का प्रबन्ध।

कुछ दिनों से यह भावना बढ़ती जा रही है कि विभागों की संख्या बढ़ने से शासन-प्रबन्ध में अक्षमता (Inefficiency) आती जाती है इसलिये इस संख्या को कम करने के लिये विभागों का पुनर्गठन हो। इस सम्बन्ध में कई सुझाव रखे गये हैं पर अभी कोई कार्यान्वित नहीं हो पाया है।

अर्थ-विभाग को छोड़ कर जो सब विभागों का एक प्रकार से नियन्त्रण करता है, बचे हुये विभागों को चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है। प्रथम, वे विभाग हैं जो सरकार के मुख्य काम करते हैं जैसे सुरक्षा व शान्ति का प्रबन्ध। इस श्रेणी में युद्ध विभाग, नौसेना विभाग, वायुसेना विभाग, गृह विभाग व स्काटलैण्ड विभाग, दूसरी श्रेणी में वैदेशिक मामलों से सम्बन्ध रखने वाले, वैदेशिक विभाग, स्काटलैण्ड के सेक्रेटरी का आफिस, इण्डिया आफिस व कोलोनियल आफिस (उपनिवेश विभाग) रखे जा सकते हैं। तीसरी श्रेणी में व्यापारिक विभाग (बोर्ड आफ ट्रेड), श्रम विभाग, कृषि विभाग व यातायात विभाग और चौथी में शिक्षा विभाग व स्वास्थ्य विभाग। पोस्टमास्टर जनरल का दफ्तर तीसरी श्रेणी में रखा जा सकता है हालांकि उस का काम अर्थ-विभाग से सम्बन्धित है।

इन विभागों का सगठन विविध प्रकार का है। कुछ के ऊपर एक सचिव होता है जैसे गृह विभाग, वायु, वैदेशिक, युद्ध, स्काटलैण्ड, डोमिनियन, उपनिवेश, विभाग, दूसरे बोर्डों के रूप में सगठित हैं हालांकि उन पर एक ही व्यक्ति का नियन्त्रण रहता है जैसे अर्थ विभाग, शिक्षा विभाग, व्यापार विभाग, नौसेना विभाग। इनके अतिरिक्त कुछ के अध्यक्ष मन्त्री होते हैं जैसे कृषि, स्वास्थ्य यातायात तथा पेन्शन विभाग। प्रत्येक विभाग एक पृथक इकाई है पर उन विषयों के लिये जो एक से अधिक विभागों से सम्बन्धित हैं मिली जुली समितियां हैं जो उन विषयों पर विचार करती हैं और प्रबन्ध में एकरूपता लाती हैं। हाल ही में एकीकरण कराने वाला सगठन बहुत बढ़ गया है।

इस पुस्तक में सब विभागों के सगठन और कर्तव्यों का विस्तृत विवरण नहीं दिया जा सकता इसलिये मुख्य मुख्य विभागों का विवरण ही दिया जायगा।

**अर्थ विभाग (The Exchequer)**—यह सब से पुराना विभाग है। यह वह धुरी है जिस पर इगलैण्ड का सारा आर्थिक सगठन घूमता है। नार्मन काल में यह केवल राजा के करों को वसूल करने का काम करता था पर समय बीतने पर यह राज्य के कर वसूल करने का काम करने लगा, तब भी उस पर नियन्त्रण स्वयं राजा का ही रहा। सन् १६८९ में ही जा कर इस पर पार्लियामण्ट का

नियन्त्रण आरम्भ हुआ। पालियामेण्ट का नियत्रण इस रूप में रहता है कि बिना पालियामेण्ट की अनुमति के न तो राजकोष मे कोई धन आ सकता है न बाहर जा सकता है। चाहे मुद्रा कर लगाने के फलस्वरूप आवे या ऋण के द्वारा, सब राजकोष में पहले जमा किया जाता है। इस राशि में से एक पैनी भी बाहर नही दी जा सकती जब तक कि पालियामेण्ट की उसके लिये अनुमति न हो। कभी कभी पालियामेण्ट एक बार यह निश्चय कर देती है कि अमुक अमुक व्यय कोष में से बराबर दे दिया जाया करे पर अधिकतर व्यय प्रति वर्ष पालियामेण्ट मन्जूर करती है।

इस विभाग का अध्यक्ष अर्थमन्त्री, जिसे चान्सलर आफ दी एक्सचैकर कह कर पुकारते है, होता है, वह मन्त्रिपरिषद् का एक प्रमुख सदस्य होता है। विदेश-सचिव को छोड कर वही मन्त्रिपरिषद् मे सब से महत्वपूर्ण विभाग का अध्यक्ष होता है। यह आवश्यक नही है कि इस विभाग का अध्यक्ष ऐसा व्यक्ति हो जो मुद्रा सम्बन्धी मामलो का विशेषज्ञ हो क्यो कि उसको परामर्श देने के लिये कई विशेषज्ञ इस विभाग में रहते है जो प्रत्येक पेचीदा विषय में उचित सलाह दे सकते है। फिर भी चासलर को सख्याओ से प्रेम, उनको समझने और याद रखने की शक्ति और छोटी छोटी बातो म रुचि होना आवश्यक है। पर सब से बडी बात जो अर्थमन्त्री में होनी चाहिये वह है विचार करने में तत्परता और अपने विचार को भली भाति प्रकट करने की योग्यता। हाउस आफ कामन्स में सब ओर से प्रश्न पर प्रश्न किये जाते है और उसमें उन सब का उत्तर थोडे से शब्दो में ऐसे देने की योग्यता होनी चाहिये जिससे उत्तर का अभिप्राय सुगमता से समझ में आ जाय। क्यो कि प्राय प्रश्न इसलिये नही किये जाते कि उसको परेशान किया जाय बल्कि इसलिये कि साधारण पालियामेण्ट के सदस्य बहुत सी बातो को समझने नही पाते और प्रश्न के द्वारा समझने का प्रयास करते है। बहुत से व्यक्तियों में थोडे से शब्दो में किसी बात को समझने की योग्यता नहीं होती। वे समझाते समय उल्टा समझने वाले को और अधिक चक्कर में डाल देते है।

चासलर आफ दी एक्सचैकर इस प्राचीन विभाग का ही परम्परागत अध्यक्ष नही, वह तो ट्रैजरी अर्थात् राजकोष विभाग का भी वास्तविक अध्यक्ष होता है यहा अर्थ विभाग और राजकोष विभाग इन दोनो नामो से समझने में कुछ गडबड हो सकती है। सयुक्तराष्ट्र अमरीका मे ट्रैजरी नाम से पुकारा जाने वाला एक विभाग वाशिंगटन में है। उस विभाग का अध्यक्ष सेक्रटरी आफ दी ट्रेजरी कहलाता है जो प्रेसीडण्ट की मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है वही सयुक्त-

राष्ट्र अमरीका का अर्थ मन्त्री (Finance Minister) होता है। पर इंगलैण्ड में राजकोष एक बोर्ड या समिति के आधीन है और उस समिति का अध्यक्ष फर्स्ट लार्ड आफ दी ट्रेजरी (First Lord of the Treasury) होता है। यह पद प्रायः प्रधान मन्त्री ग्रहण करता है पर वास्तव में वह राजकोष का अध्यक्ष नहीं होता। यह बोर्ड केवल नाममात्र का बोर्ड है। इस बोर्ड तथा इसके अध्यक्ष का सारा काम चान्सलर आफ दी एक्सचैकर अर्थात् अर्थ मन्त्री ही करता है। अर्थमन्त्री ही यह देखता है कि खर्चों को पूरा करने के लिये आवश्यक मुद्रा कर आदि साधनों से एकत्रित हो और उसके लिये आवश्यक कानून आदि की योजना हो। सरकार की आय-व्यय सम्बन्धी नीति की उपयुक्तता को सिद्ध करने के लिये वही कामन्स में उस नीति पर दोषारोपण का उचित उत्तर देता है। इसके आय-व्यय सम्बन्धी प्रस्ताव केवल अर्थ विभाग के बनाये हुये प्रस्ताव ही नहीं होते, वे सारे मन्त्रिमण्डल की ओर से स्थिर किये हुये प्रस्ताव होते हैं। मन्त्रि परिषद् के सदस्य के नाते ऐसे प्रस्तावों को वह पहले परिषद् के सम्मुख उपस्थित करता है और वहां ऐसा हो सकता है कि वह अपने मित्रों के अनुरोध पर उन प्रस्तावों में परिवर्तन कर दे विशेषकर यदि ऐसा करना किसी महत्वपूर्ण विषय में आवश्यक हो, पर प्रायः मन्त्रीपरिषद् अर्थमन्त्री के प्रस्ताव का उचित आदर करती है। ऐसा करना अनिवार्य भी हो जाता है क्योंकि वे प्रस्ताव अर्थ विभाग के विशेषज्ञों द्वारा व अर्थ मन्त्री के बड़े विचार-पूर्वक अनुमान के फलस्वरूप बनाये हुये होते हैं इसलिये उन सब को जितना अर्थ मन्त्री समझता है, दूसरे मन्त्री उनकी पेचीदगी को उतना नहीं समझ सकते।

गृह विभाग—गृह विभाग या होम आफिस एक छोटा सा विभाग है जिसमें कई छोटे छोटे काम होते हैं। इसका अध्यक्ष होम सेक्रेटरी कहलाता है जो मन्त्रि परिषद् का सदस्य हुआ करता है। उसके आधीन एक उप सेक्रेटरी, बन्दी गृह-कमिश्नर, एक पुलिस कमिश्नर, चीफ इन्सपैक्टर आफ फैक्टरीज, आदि अफसर होते हैं। केवल होम सेक्रेटरी और उप-सक्रेटरी ही पार्लियामेण्ट के सदस्य होते हैं जो मन्त्रीपरिषद् के पदत्याग करने पर अपने पद से हट जाते हैं। दूसरे अफसर स्थायी अफसर होते हैं। वे मन्त्रीमण्डल के बदलने पर नहीं बदलते।

गृह विभाग का साधारण काम देश में शान्ति और सुव्यवस्था की रक्षा करना है। इस काम में पुलिस, पुलिस-न्यायालय, बन्दीगृह, क्षमा प्रदान, विदेशी व्यक्तियों का देशीयकरण करना, अपराधियों का प्रत्यर्पण (Extradition) आदि विषयों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है। इसके अतिरिक्त यह विभाग

कारखानों की देखभाल भी करता है और कारखानों से सम्बन्धित कानूनों को कार्यान्वित करता है। यह अनोखी सी बात है कि यह औद्योगिक कार्य भार गृह-विभाग पर डाला गया है, पर इसका एक ऐतिहासिक कारण है। एक शताब्दी पूर्व सन् १८३३ में जब पहले पहल फैक्टरी सम्बन्धी कानून पास हुये तो इनकी देख भाल करने वाले राजकर्मचारी गृह विभाग के आधीन कर दिये गये क्यों कि और किसी विभाग के आधीन करना सुकर न दिखाई पड़ता था। उस समय इन कारखानों के कानूनों के अन्तर्गत देख-भाल करने का काम पुलिस के काम जैसा समझा जाता था। आजकल इस काम का अधिक व्यापक उद्देश्य है और शान्ति-सुव्यवस्था से कोई उसका सरोकार नहीं पर फिर भी वह काम पहले की तरह अभी उसी विभाग में होता चला आ रहा है। यूरोप के राष्ट्रों की तरह गृह विभाग का इंगलैण्ड में स्थानीय शासन से कोई सम्बन्ध नहीं है, वह तो केवल वहां की पुलिस की देख-भाल ही करता है।

**वैदेशिक विभाग**—वैदेशिक विभाग का अध्यक्ष सैक्रेटरी आफ स्टेट फौर फोरिन एफेअर्ज (Secretary of State for Foreign Affairs) या वैदेशिक मन्त्री कहलाता है। वह सर्वदा मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है। कभी कभी इस पद का भार प्रधान मन्त्री भी अपने उपर ले लेता है। वैदेशिक मन्त्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेण्टरी उपसेक्रटरी, एक स्थायी उप-सेक्रटरी, कुछ परामर्शदाता आदि होते हैं। इनके अतिरिक्त एक बहुत बड़ी संख्या राजकर्मचारियों की होती है जो इस विभाग में काम करते हैं। इस विभाग का काम संसार के प्रत्येक विभाग से सम्बन्ध रखना है। काम के प्रकार पर आधारित न रह कर इस विभाग के काम का विभाजन देशों के आधार पर होता है अर्थात् इस विभाग का एक भाग अफ्रीका, दूसरा जापान, तीसरा अमरीका आदि से सम्बन्धित पत्र-व्यवहार आदि के काम को निबटाता है। युद्ध के समय में इस विभाग का महत्व बहुत बढ़ जाता है, यहां तक कि सब प्रशासन विभागों में सब से अधिक महत्व इसी विभाग का हो जाता है।

इस विभाग में सब देशों के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित होकर उसका निरीक्षण किया जाता है। उस निरीक्षण के आधार पर इस विभाग से विदेश स्थित अंगरेजी राजदूतों को आवश्यक आदेश भेजे जाते हैं। इंगलैण्ड स्थित विदेशों के राजदूतों से भी यही विभाग सम्पर्क रखता है। विदेशी राज्यों से संधि करना, अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में इंगलैण्ड के प्रतिनिधि नियुक्त करके भेजना आदि काम भी इसी विभाग में होते हैं। कुछ समय पहले इंगलैण्ड के व्यापारिक

प्रतिनिधियों की देखभाल भी इसी विभाग में होती थी पर इन प्रतिनिधियों का प्रमुख काम यानी विदेशी व्यापार की उन्नति और व्यापार सम्बन्धी सन्धियां की बातचीत करना अब बोर्ड आफ ट्रेड के विदेशी व्यापार विभाग द्वारा होता है। वैदेशिक विभाग केवल इंगलैण्ड सम्बन्धी विषयों से नहीं बर्तता बल्कि सारे ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल की ओर से कार्यवाही करता है।

श्रम-विभाग—यह नया विभाग है जो सन् १६१७ में स्थापित हुआ। आरम्भ से ही इस विभाग का अध्यक्ष श्रम मन्त्री मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता चला आ रहा है। इस विभाग के कर्तव्य बिलकुल नये नहीं हैं उनमें से बहुत से पहले बोर्ड आफ ट्रेड विभाग में निबटाये जाते थे। साधारणतः उद्योग सम्बन्धी मामलों से, जैसे श्रमिकों के सम्बन्ध में उठने वाले या कच्चे माल को जुटाने वाले प्रश्नों से, यह विभाग सम्पर्क रखता है। श्रमिकों और उद्योगपतियों के बीच झगड़ों को निबटाना, एम्प्लोयमेण्ट एक्सचेन्ज, बेकारी का बीमा, व्यापारिक समितियों और श्रमियों की संख्या एकत्रित करना आदि बातों से इस विभाग का सम्बन्ध रहता है। संक्षेप में यह विभाग उद्योगों में काम करने वालों की समस्याओं के सुलझाने ही का काम करता है उत्पादन, उसकी बिक्री या पूंजी आदि से इस विभाग का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। उद्योगी-न्यायालय सम्बन्धी सन् १६१६ के एक्ट के अन्तर्गत यही विभाग कार्यवाही करता है, उद्योग समितियां में भी इसका सम्बन्ध रहता है। ये समितियां इस विभाग के आश्रय में बनाई जाती हैं और इनमें उद्योगपतियों श्रमिकों व साधारण जनता के प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। जब यह समिति किसी उद्योग के लिये न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देती है तो श्रम विभाग यह आज्ञा निकाल देता है कि प्रत्येक उद्योगपति को वह मजदूरी अपने काम करने वालों को अवश्य देनी होगी। एम्प्लायमेण्ट एक्सचेन्ज सब से पहले सन् १६०६ में बनी थी। युद्ध के पश्चात् इनकी संख्या बहुत बढ़ गई और अब सारे देश में इनका जाल बिछा हुआ है। इसका काम मजदूरों को काम दिलाना और काम के लिये मजदूरों की व्यवस्था करना है। सन् १६२० में बेकारी बीमा एक्ट पास हो जाने से इस विभाग का काम और खर्चा और अधिक बढ़ गया है। बेकारी आधुनिक सामाजिक व आर्थिक संगठन का अपरिहार्य परिणाम है। बेकारी से पीड़ित व्यक्ति समाज की औद्योगिक सेना के सिपाही की तरह हैं जिनकी देख भाल करना राज्य का कर्तव्य हो जाता है। इसलिये बीमा के लिये एकत्रित धन इस सुरक्षित औद्योगिक सेना को ठीक प्रकार से रखने में व्यय किया जाता है। यह सुरक्षित औद्योगिक सेना किसी विशेष उद्योग के लिये ही नहीं रहती पर सारे समाज के हित के लिये ही सरकार इसका पालन पोषण

करती रहती हैं।

सब बातो के देखते हुये यह कहा जा सकता है कि श्रमिक विभाग काम दिलवाने और उद्योगपतियो व श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्ध को सहयोगपूर्ण बनाने का काम करता है। कुछ सीमा तक इन सम्बन्धो पर यह विभाग अपना नियन्त्रण भी रखता है पर अधिकतर प्रवृत्ति यह रहती है कि सरकारी नियन्त्रण न रह कर स्वत ही उद्योगपतियो व श्रमिको की सहयोग-समितिया आदि बने जिनमे वे स्वय आपस के मामलो को प्रेमपूर्वक निबटा ले।

**स्वास्थ्य विभाग**—यह विभाग सन् १६१६ मे स्थापित हुआ है। इसका काम स्वास्थ्य सम्बन्धी काम का निर्देशन करना है पर वास्तव में स्वास्थ्य सम्बन्धी काम की मात्रा बहुत थोडी है, प्रमुखत तो यह विभाग स्थानीय शासन मे सम्पर्क रखता है। जो काम पहले स्थानीय-शासन बोर्ड करता था वह इस विभाग ने ले लिया और इसको नेशनल इन्श्यौरेन्स कमिश्नरो के काम से मिला दिया। दूसरे शासन-विभागो से भी कुछ काम हट कर इस विभाग में आ गया। उदाहरणार्थ, शिक्षा विभाग से विद्यार्थियो के स्वास्थ्य की देखभाल का काम व गृह-विभाग से पागलो आदि के सम्बन्ध का काम। दूसरी ओर स्थानीय शासन का सब काम इस विभाग मे न आ कर दूसरे विभागो में भी बाट दिया गया जैसे ट्राम गाडियो का काम यातायात विभाग में कर दिया गया।

साधारणतया इस विभाग में निम्नलिखित काम होता है—स्थानीय शासन सस्थाओ के हिसाब की जाँच, छूतरोग सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाना, सक्रामक बीमारियो के रोकने का प्रबन्ध करना व दूसरी नगर व ग्राम की शासन-सस्थाओ से सम्बन्ध रखने वाली बातो की देखभाल करना।

इस विभाग के आधीन चार परामर्श दात्री समितिया स्थापित की गई हैं जो स्थानीय स्वास्थ्य प्रबन्ध, चिकित्सा तथा औषधि सम्बन्धी काम, मान्य-समितियो की कार्यवाही की देखभाल और सामान्य स्वास्थ्य की समस्याओ पर ध्यान रखती हैं। वृद्धावस्था की पेंशन का प्रबन्ध भी इस विभाग में होता है। अन्धो की देखभाल के लिये भी आयोजन है। वासस्थान (Housing) का प्रबन्ध इसका एक मुख्य काम है। अन्वेषण का आरम्भ व उसके लिये आवश्यक सहायता देने का अधिकार भी इस विभाग को दिया गया है। इस विभाग के मन्त्री को सहायता देने के लिये एक पार्लियामेण्टरी सेक्रटरी और अनेक चिकित्सा अफसर होते हैं।

सन् १९१८ में युद्ध काल में कई नये विभाग खोले गये थे पर उनमें से अधिकतर युद्ध के समाप्त होने पर तोड दिये गये। जो बचे, उनमें पेंशन विभाग व यातायात विभाग मुख्य थे जो स्थायी रूप से स्थापित हो गये। पेंशन विभाग सन् १९१६ में पार्लियामेण्ट के एक एक्ट द्वारा स्थापित हुआ और इसको पेंशन सम्बन्धी सारा काम युद्ध-विभाग, नौसेना विभाग व चैलसिया-कमिश्नरों से हटा कर सौंप दिया गया। एक दूसरा युद्धोत्तर विभाग जो बड़े महत्व का है वह वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण विभाग है। सन् १९१५ में इसके लिये एक समिति नियुक्त कर दी गई थी। इस समिति को यह काम दिया गया था कि वह पार्लियामेण्ट से मंजूर किये हुये अनुदानों को अर्थ विभाग के आदेशानुसार वैज्ञानिक व औद्योगिक अन्वेषण के काम में व्यय करे। इस समिति का अध्यक्ष कौंसिल का लार्ड प्रैसीडण्ट होता है। दूसरे सदस्यों में उपनिवेश मन्त्री, अर्थ मन्त्री, स्काटलैण्ड मन्त्री आयरलैण्ड का प्रधान सचिव, व्यापार बोर्ड के अध्यक्ष और पांच दूसरे व्यक्ति होते हैं। इस समिति की स्थापना के साथ ही साथ एक परामर्श देने वाली समिति व एक पृथक् विभाग भी स्थापित किया गया जिनको अन्वेषण सम्बन्धी सब प्रार्थना-पत्र भेजे जाते थे। विभाग के आश्रय में मुख्य मुख्य विषयों पर अन्वेषण करने के लिये विशेष बोर्ड भी नियुक्त किये गये जैसे ईंधन अन्वेषण बोर्ड (Fuel Research Board) आदि।

इन विभागों के अतिरिक्त कई दूसरे विभाग भी हैं जैसे व्यापार विभाग या बोर्ड आफ ट्रेड (जिसके दो भाग हैं (१) नौकरियों का प्रबन्ध व (२) व्यापार और उद्योग) कृषि विभाग शिक्षा विभाग, पोस्टमास्टर जनरल, कमिश्नर आफ वर्क्स इत्यादि। ये विभाग अपने अपने नाम के अनुसार काम करते हैं। प्रथम महायुद्ध के समय यह प्रथा चल गई कि किसी बड़े राजनीतिज्ञ को मन्त्रिपरिषद् का मन्त्री बना दिया जाता था पर उसके आधीन किसी शासन विभाग का प्रबन्ध न होता था। यह प्रथा द्वितीय महायुद्ध में भी चालू रही।

**इण्डिया आफिस**—सन् १९४७ के अगस्त मास तक इण्डिया आफिस सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया का कार्यालय था। सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इण्डिया की गिनती प्रमुख पांच सेक्रेटरियों में होती थी। इसके कार्यालय से ही भारतवर्ष के शासन प्रबन्ध का नियन्त्रण होता था। इसके आधीन दो उप-सेक्रेटरी, एक पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी और एक स्थायी सेक्रेटरी होता था। पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी पार्लियामेण्ट का सदस्य होता था पर मन्त्रिपरिषद् का सदस्य न बनाया जाता था। एक परामर्श देने वाली समिति भी थी जिसमें कम से कम

तीन और अधिक से अधिक छ व्यक्ति होते थे जिनको सेक्रटरी आफ स्टेट पाच वर्ष के लिये नियुक्त करता था। यह समिति सेक्रटरी को अपने काम को अच्छी प्रकार सम्पादित करने मे सलाह दिया करती थी। भारतवर्ष के सब मामलो में सेक्रेटरी आफ स्टेट सम्राट का वैधानिक सलाहकार था और वह गवर्नर जनरल व गवर्नरो के काम की देख भाल रखता तथा उनको आदेश देता था। वही इण्डियन सिविल सर्विस की नौकरियों के लिये भर्ती करता था और मन्त्रियो के समान भारतीय मामलो में पार्लियामेण्ट को उत्तरदायी था।

## सिविल सर्विस

सिविल सर्विस कार्यपालिका के हाथ व पैर है, जो कार्यशील बना, उसके उद्देश्य को सफल बनाने में सहायक होते हैं। सिविल सर्विस अपनी कार्य पटुता के लिये प्रसिद्ध है। इस सिविल सर्विस का प्राचीन इतिहास बडा रोचक है। सोलहवी शताब्दी से पूर्व ऐसे व्यक्ति देश के दूरवर्ती भागो में शासन प्रबन्ध करते थे जो राजा के दरबारियो में मनोनीत हुये होते थे। उस समय की प्रबन्ध प्रणाली बडी दोषपूर्ण व असफल थी। शासन कर्मचारियो का काम सोलहवी शताब्दी के बीच से १८वी शताब्दी के अन्त तक इतना खराब था कि केन्द्रीय शक्ति को बारम्बार नये कानून बनाने पडते थे जिनकी प्रस्तावना में शिकायते, झिडकिया, व धमकिया भरी रहती थी। स्थानीय अफसरो के काम की देखभाल करने वाले केन्द्रीय शासन के अफसर न होने से राज्य करो में बडा घाटा पडता था और प्रजा पर अनाचार तथा अत्याचार भी होता था। राज्य के कानून प्राय ऐसे व्यक्तियो के द्वारा कार्यान्वित होते थे जो इस कार्य में कुशल न होते थे और जिनको इस काम के लिये सरकार की ओर से कोई वेतन न मिलता था। उस समय न्यायकारी तथा कार्यकारी कर्तव्यो का पृथक् विभाजन न हुआ था।

स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियन्त्रण १६वी शताब्दी से आरम्भ होने लग गया था। यह नियन्त्रण अकाल पीडित व्यक्तियो के कष्ट को दूर करने के लिये पूअर ला (Poor Law) अर्थात् निर्धनो के कानून को अच्छी तरह कार्यान्वित करने के लिये विशेषरूप से आरम्भ किया गया। सन् १६३१ में निर्धन-सहाय सम्बन्धी सूचना एकत्रित करने के लिये तथा न्याय प्रबन्ध को सुधारने के लिये आदेश पुस्तक (Book of Orders) में तत्सम्बन्धी आदेश तथा निर्देश प्रकाशित किये गये। गृह-युद्ध के छिड जाने से इस केन्द्रीयकरण की गति रुक गई। १७वी व १८वी शताब्दी में पार्लियामेण्ट का ध्यान उपनिवेश-सम्बन्धी विषयो में लगा रहा। जब वैधानिक सुधार का समय आया तभी शासन-

प्रबन्ध सम्बन्धी सुधार हुये क्योंकि एक के बिना दूसरे में सुधार करना असम्भव था और दोनों ही बड़े दोषपूर्ण हो चुके थे। उस समय वेतन-भोगी राजकर्मचारियों की न कोई लिखा पढ़ी थी न हिसाब किताब। इसलिये केन्द्रीय शासन का उन पर नियंत्रण भी कैसे हो सकता था। बहुत से वेतन पाने वाले राजकर्मचारी अमरीकन उपनिवेश में जाकर मौज उड़ाया करते थे।

सन् १८५५ में वर्तमान सिविल सर्विस का श्रीगणेश हुआ। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मैकाले ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन भारतीय सिविल सर्विस की भरती के लिये जो योजना बनाई उसी के अनुरूप ब्रिटिश सिविल सर्विस को भी बना कर सुधार करने की योजना बनाई गई। लार्ड जान रसल (Lord John Russel) प्रधान मन्त्री व सर चार्ल्स वुड अर्थ-मन्त्री ने शासन प्रबन्ध के विभिन्न विभागों में पूछताछ करने का काम सरचार्ल्स ट्रैविलियन व सर स्टफार्ड नार्थकोट को सौंपा। उनकी रिपोर्ट सन् १८५३ में प्रकाशित हुई और इनकी योजना का बड़ा स्वागत हुआ। शासन की विभिन्न नौकरियों में भर्ती के लिये एक विशेष परीक्षा का आयोजन किया गया। उन्होंने यह सिफारिश भी की कि प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं के लिये सामान्य शिक्षा न कि विशेष शिक्षा का माप रखा जाय। इन परीक्षाओं का प्रबन्ध करने के लिये सन् १८५५ में एक सिविल सर्विस कमीशन की नियुक्ति कर दी गई। कमीशन को प्रतियोगिताओं की योग्यता, आयु, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा साधारण जानकारी आदि को निश्चय करने का भार सौंप दिया गया। पर कमीशन की परीक्षा में सफलता केवल अनुमतिदायक थी, वह सिविल सर्विस के लिये अनिवार्य न की गई थी क्यों कि बिना कमीशन के प्रमाणपत्र पाये हुये व्यक्ति यदि परिपक्व आयु के होने थे तो वे भी नौकरियों में भर्ती किये जा सकते थे।

सन् १८७० में कहीं जा कर नौकरियों में नियुक्ति करने की प्रणाली की ठीक व्यवस्था हो पाई जब (१) नौकरियों में भर्ती होने से पूर्व प्रतियोगितात्मक परीक्षा अनिवार्य कर दी गई (२) व्यवसायी पदों के कर्मचारियों के लिये इस परीक्षा के बन्धन हटाने का अधिकार कमीशन को दे दिया गया (३) कुछ कर्मचारियों की नियुक्ति सीधे राजा द्वारा होने का आयोजन कर दिया गया (४) विभागाध्यक्षों को यह अधिकार दे दिया गया कि कमीशन की सम्मति से वे कुछ पदों के लिये परीक्षा का प्रतिबन्ध हटा सकें और (५) अर्थ विभाग को विभागों के संगठन करने का अधिकार दे दिया गया। इसके पश्चात् भी

कई कमीशन नियुक्त किये गये जिन्होंने नौकरियों के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक नियमावली आदि बना कर सिविल सर्विस को बिलकुल व्यवस्थित रूप दे दिया।

वर्तमान सिविल सर्विस प्रणाली ने, जिसका मूलसिद्धान्त खुली प्रतियोगिता है, विभिन्न श्रेणियों के कुशल राजकर्मचारी प्रदान किये है। इस समय इंग्लैंड में लगभग ५ लाख या इससे भी अधिक व्यक्ति विभिन्न शासन विभागों में काम करते हैं। प्रबन्धकर्ता अफसर नौकरियों के लिये वही काम करते है जो काम शरीर में मस्तिष्क करता है और ये लोग अधिकतर आक्सफोर्ड और कैम्ब्रज के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाये हुये होते हैं।

राजकर्मचारियों को किसी राजनैतिक दल में शामिल होने की अनुमति नही होती। स्थायी नौकर होने के कारण उनका काम यही है कि मन्त्रियों व विभागाध्यक्षों की नीति और आज्ञाओं को उनके आदेशानुसार कार्यान्वित करें।

## पाठ्य पुस्तकें

Allen, C. K.—Bureaucracy Triumphant (1931).
Allen, C. K.—Law in Making. (1627).
Allen, C. K.—The Development of Civil Service (1922).
Cripps, Sir Stafford--Democracy up to date (1939)
Finer, H.—Theory and Practice of Modern Government, pp, 1163—1514.
Greaves, H. R. G.—The British Constitution, ch. VII.
Laski J. H.—Parliamentary Government in England (1938), pp. 309—359.
Low, Sir Sidney.—Governance of England, pp. 199—217.
Gretton,—The King's Government.
Marriot—English Political Institutions, ch, V.

# अध्याय १

## अंगरेजी न्यायपालिका

"पार्लियामेण्ट में एक्ट स्वयं-परिचालित नहीं होते; उन्हें प्रयोग में लाना पड़ता है। प्रयोग क्रिया के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा उनकी व्याख्या का भी समावेश किया जाता है क्योंकि ब्रिटिश शासन-विधान का यह सिद्धान्त है कि केवल स्पष्ट व संदेह रहित शब्द ही—और स्यात् वे भी नहीं—किसी व्यक्ति का यह अधिकार छीन सकते हैं कि वह धारा सभा के अभिप्राय को न्यायालय द्वारा स्थिर करा सकता है"

(एच० जे० लास्की)

"जहां न्यायाधीशों की दृष्टि के सामने ही न्याय का अन्याय से व सत्य का असत्य से हनन होता हो और न्यायाधीश किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह यह सब देखते रहते हों वहां न्यायाधीशों को मरा हुआ ही समझना चाहिये। न्याय के हनन से हनन करने वाले का नाश हो जायगा। न्याय की रक्षा से रक्षक की रक्षा होगी"

(स्वामी दयानन्द)

ब्रिटेन की न्याय प्रणाली परम्परागत नीति नियमों पर आधारित है जिसका मूलभूत सिद्धान्त है न्याय शासन (Rule of Law)। इस न्याय संगठन में वे संस्थायें और न्यायालय हैं जो समय समय पर प्राचीन काल में बिना किसी पूर्वनिश्चित युक्ति के स्थापित होते गये। इसीलिये इनका भूल-भुलैयां जैसा रूप हो गया था जिसको ठीक करने के लिये सन् १८६० के पश्चात् इसमें बड़ा सुधार करना पड़ा।

### विधि-शासन

### (Rule of Law)

अंगरेजी न्याय-संगठन तब तक अच्छी तरह बुद्धि गम्य नहीं हो सकता जब तक हमें रूल आफ ला अर्थात् विधि-शासन के इस मूलभूत सिद्धान्त* के

*प्रोफेसर डायसी द्वारा समझाये हुये तीन सिद्धान्तों को पिछले पृष्ठों पर देखिये।

सब अनुमानो को स्पष्टतया न समझ ले। इस सिद्धान्त से स्वेच्छाचार के स्थान पर विधिपूर्वक बनाये हुये कानून को प्रतिष्ठित कर दिया गया है। इसने कानून की दृष्टि में सब श्रेणियो व वर्गो के व्यक्तियो की समानता मान्य कर दी है। सब से बडी बात तो यह है कि शासन-विधान को भी इसने साधारण कानून की नीव पर ही खडा किया है।

**विधि-शासन के अपवाद**—विधि-शासन में कुछ अपवाद भी मान लिये गये है। इन अपवादो में राजा प्रथम है। 'राजा कोई गलती नही करता' इस कानूनी सिद्धान्त के अनुसार राजा पर कोई माल या फौजदारी का अभियोग नही लगाया जा सकता। यदि राजा कोई अपराध करता है तो उसे किसी न्यायालय में उपस्थित होने के लिये आदेश नही दिया जा सकता। उसे पागल करार देकर डाक्टरो की देख रेख में रखा जा सकता है पर किसी भी कानून से उस पर उसी के न्यायालयो में मुकदमा नही चलाया जा सकता। इसी प्रकार सम्पत्ति सम्बन्धी मामलो मे या प्रजा के किसी व्यक्ति की राजा द्वारा हानि हो जाय तो वह केवल राजा से प्रार्थना कर सकता है और राजा चाहे तो अपनी कृपा दृष्टि से, न कि प्रार्थी के अधिकार की रक्षा के लिये, उस क्षति को पूरा कर दे। इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नही है। दूसरे अपवाद मे राज्य के अफसर आते है। अपने सरकारी काम मे यदि वे कोई काम करते है जिससे किसी कानून का उल्लघन होता है तो वैयक्तिक रूप से उन पर कोई मुकदमा नही चलाया जा सकता। उसके ऐसे सब कामो के लिये राज्य ही जिम्मेदार समझा जाता है। तीसरे, यदि न्यायाधीश अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर भी अनजाने कोई अपराध कर दें तो वे वैयक्तिक रूप से अपराधी नहीं ठहराये जा सकते। छोटे मजिस्ट्रेट (Justices of the Peace) भी यदि द्वेषपूर्ण व्यवहार न करें तो अपने अधिकार क्षेत्र के भीतर किसी राजकीय कार्यवाही के लिये अपराधी नहीं ठहराये जा सकते।

**विधि-शासन से अनुमानित नागरिक अधिकार**—यह कहा जाता है कि इगलैण्ड में नागरिक अधिकारो की घोषणा के अभाव की पूर्ति विधि शासन द्वारा होती है। इस विधि शासन के सिद्धान्त से कुछ नागरिक अधिकार अनुमान द्वारा मान्य हो गये है जिनको न्यायालय निर्णय देते समय शिरोधार्य करते है। ये अधिकार है —(१) दैहिक स्वतन्त्रता का अधिकार (२) वाक् स्वातन्त्र्य का अधिकार (३) सार्वजनिक सभा करने का अधिकार। दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकार के कारण कोई भी व्यक्ति बिना किसी कानून-भग का अप-

राधी हुये बन्दी नहीं बनाया जा सकता और उसका अपराध साधारण न्याया-लय द्वारा निर्णीत होगा। कोई भी न्यायालय किसी व्यक्ति को दण्ड देने की आज्ञा नहीं दे सकता जब तक उस व्यक्ति का अपराध सिद्ध न हो जाय। प्रत्येक न्याया-लय अपराध सिद्ध करने में उस व्यक्ति को अपने बचाव का पूरा अवसर देगा। यदि कोई कर्मचारी किसी नागरिक को पकड़ कर जेल में बन्द कर दे तो वह नागरिक हैबियस कारपस की लिखित आज्ञा के लिये न्यायालय से प्रार्थना कर सकता है जिससे उसे न्यायालय के सम्मुख उपस्थित करना पड़ेगा। इसके पश्चात् उसके अपराध की परीक्षा प्रारम्भ होगी। विधि शासन के अनुसार व्यक्ति अपनी रक्षा के लिये बल प्रयोग करने का अधिकारी भी है। अपने ऊपर किये हुये आक्र-मण से बचने के लिये यदि वह बल प्रयोग करे तो वह उसका अपराधी नहीं समझा जायगा।

वाक्स्वातन्त्र्य का अधिकार इंगलैण्ड में विधि शासन द्वारा ही प्राप्त है जब कि फ्रांस, बेलजियम आदि देशों में इसका उल्लेख शासन विधान में कर दिया गया है। इंगलैण्ड में प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है कि वह जो चाहे सो कह सकता है और किसी के बारे में जो चाहे लिख सकता है। प्रतिबन्ध केवल यही है कि यदि वह कोई ऐसी बात कहे या लिख कर प्रकाशित करे जिसके कहने या प्रकाशित करने का उस कानून से अधिकार प्राप्त न हो। ऐसी दशा में वह दण्डनीय समझा जायगा। उदाहरण के लिये कोई ऐसी बात नहीं कही जा सकती जो किसी व्यक्ति की निन्दा करती हो, झगड़ा फिसाद फैलाती हो या धर्म के विरुद्ध हो। इंगलैण्ड में समाचार पत्रों पर कोई विशेष नियन्त्रण नहीं लगाये गये हैं, वे साधारण कानूनों से ही प्रतिबन्धित हैं।

जब दैहिक स्वतन्त्रता और वाक्स्वातन्त्र्य का अधिकार मान्य है तो सार्वजनिक सभा करने का अधिकार अपने आप ही सिद्ध है। दूसरे देशों में यह अधिकार शासन विधान द्वारा दिया जाता है। इसलिये जब तक शान्ति भंग होने का भय न हो (केवल सन्देह ही न हो) तब तक किसी भी सम्मेलन या सभा को होने दिया जाता है और उसे अवैध घोषित नहीं किया जाता। यदि उस सभा या सम्मेलन का उद्देश्य वैध है और सभा करने वालों का अभिप्राय ऐसा है जो किसी कानून के विरुद्ध नहीं है।

सब व्यक्ति एक ही कानून व एक प्रकार के न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में रहते हैं। सरकारी कर्मचारियों के लिये पृथक् न्यायालय नहीं बने हुये हैं। इन सब न्यायालयों में साधारण कानून के अनुसार ही अपराध की परीक्षा

की जाती है। इसलिये साधारण नागरिक को यदि किसी राजकर्मचारी से हानि पहुंचे तो वह किसी भी न्यायालय में उस कर्मचारी के विरुद्ध अभियोग लगा सकता है। इस प्रथा के विपरीत यूरोप के देशो में सरकारी कर्मचारियो पर लगाये हुये अभियोगो की सुनवाई के लिये प्रशासन-न्यायालय हैं जिनमें प्रशासन-न्याय (**Administrative Law**) के अनुसार, न कि साधारण कानून के अनुसार, अपराध की परीक्षा होती है।

विधि शासन प्रभुत्व अब कुछ समय से घटता जा रहा है। उसके कई कारण हैं। पहला तो यह कि हाल ही मे पार्लियामेण्ट ने कुछ ऐसे ऐक्ट पास कर दिये हैं जिनसे राजकर्मचारियो को न्याय करने के अधिकार दे दिये गये है। फैक्टरी ऐक्ट, ऐज्यूकेशन ऐक्ट के अन्तर्गत मामले न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के बाहर रख दिये गये हैं। उन मामलो मे उन विभागो के अफ्सर अपना निर्णय देकर तय करते हैं। दूसरे, मजदूर सघो की यह प्रवृत्ति बढती जा रही है कि वे अपने आन्तरिक सगठन में न्यायालयों का हस्तक्षेप सहन नही करना चाहते चाहे सगठन के नियमो से किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता कितनी ही प्रतिबन्धित होती हो। तीसरे, कुछ व्यक्ति यह कहते है कि उनके कार्य समाज के हितकारक हैं। हालाकि कानून की दृष्टि से वे हेय हैं। वे कानून का इसलिये विरोध करते हैं। चौथ, नियमावली बनाने, अस्थाई आदेश, आर्डर्स-इन कौंसिल आदि निकालने के अधिकार भी अधिकाधिक बढते जा रहे है। ये बहुत कुछ कानून के समान ही लागू होते हैं पर कोई न्यायालय इनके कार्य रुप करने में हस्तक्षेप नही कर सकता।

**अंगरेजी न्यायपालिका के दूसरे सिद्धान्त**—न्यायशासन के सिद्धान्त के अतिरिक्त अगरेजी न्याय-प्रणाली के कुछ दूसरे सिद्धान्त भी है जो दूसरी किसी न्याय-प्रणाली में नहीं मिलते। सारा न्याय सगठन इस प्रकार सगठित है कि सब व्यक्ति उस तक आसानी से पहुच सकते हैं। न्यायालय दो प्रकार के हैं माल व फौजदारी (व्यवहारी व दण्ड न्यायालय) और इन दोनों की कई श्रेणिया हैं, सब से छोटे न्यायालय, पुनर्विचार न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय। इन न्यायालयों के न्यायाधीश स्वतन्त्र व निरपेक्ष रहते हैं उन पर कार्यपालिका का किसी प्रकार का नियन्त्रण नही रहता न उनके काम मे वह हस्तक्षेप कर सकती है। परिणामस्वरूप सब के साथ एकसा न्याय किया जाता है। यह इसलिये सम्भव है क्यो कि न्यायाधीशो को तब तक उनके पद से हटाया नहीं जा सकता जब तक उन के विरुद्ध पक्की तरह से अपराध सिद्ध न हो गया हो। जब तक वे अपने पद पर रहते हैं उनके वेतन में कमी नही की जा सकती। पार्लियामेण्ट

के दोनों सदनों की प्रार्थना पर ही ये राजा द्वारा हटाये जा सकते हैं। इंगलैण्ड की न्यायपालिका के इतिहास में ऐक्ट आफ सैटिलमेण्ट से अब तक सिवाय लार्ड मैकल्सफील्ड के किसी भी न्यायाधीश की सच्चरित्रता पर सन्देह नहीं हुआ और पार्लियामेण्ट में न्यायाधीशों के पक्षपात व्यवहार के सम्बन्ध में वाद विवाद के बहुत कम अवसर प्राप्त हुये हैं। न्यायाधीश अयोग्य भले ही रहे हों पर बेईमान नहीं रहे।

**इंगलैण्ड में जूरी (पंच) प्रणाली**—अंगरेजी न्यायपालिका की एक और विशेषता है। वह है जूरी या पंचप्रणाली। इस प्रणाली का जन्म १२ वीं शताब्दी में हुआ। अब की तरह पहिले पञ्च गवाही सुन कर निर्णय न दिया करते थे, वे अपनी जानकारी के आधार पर ही या परम्परा का सहारा लेकर निर्णय दिया करते थे। बाद में गवाह की हैसियत को छोड़ कर वे केवल वास्तविकता का निर्णय करने वाले रह गये। १६ वीं शताब्दी में पंचों को असत्य निर्णय देने पर दण्ड भी दिया जाता था पर १६७० में इस प्रकार के दण्ड से मुक्ति कर दी गई। पंच प्रणाली अब दोनों माल व फौजदारी मुकदमों में प्रचलित है। पंच समुदाय में १२ व्यक्ति होते हैं जिनका यह कर्तव्य होता है कि वे वास्तविकता का पता लगावें और न्यायालय को निर्णय देकर सहायता करें। पंच समुदाय सारे मुकदमे को सुनता है और सुनने के बाद यह बतलाता है कि वह व्यक्ति जिस पर अभियोग लगाया गया है अपराधी है या नहीं।

**न्यायपालिका का संक्षिप्त इतिहास**—सैक्सन-काल में राजा की निर्बलता के कारण गांवों, नगरों व जिलों में न्यायप्रबन्ध राजा के नियंत्रण से परे रहता था और राजा की इन स्थानों के न्यायालय तक पहुंच न थी। जब नौर्मन विजय के पश्चात् नौर्मन राजाओं ने शान्ति स्थापित कर अपने आप को अच्छी तरह प्रतिष्ठित कर लिया तब से राजा की शक्ति का प्रभाव राज्य के कोने कोने में जमने लगा। पहले पहले तो राजा ने जहां तहां न्यायालय के काम में हस्तक्षेप करना आरम्भ किया। धीरे धीरे यह प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि हैनरी प्रथम जब गद्दी पर बैठा तो उसने न्याय प्रबंध को केन्द्रस्थ व सुव्यवस्थित करने का काम अपने हाथ में लिया। इस ओर कदम बढ़ाने में सब से पहला काम जो किया गया वह यह था कि भ्रमणशील न्यायाधीशों को घूम घूम कर अभियोगों की सुनवाई करने के लिये और उनका निबटारा करने के लिये चारों ओर भेजना आरम्भ किया। प्रायः ये न्यायाधीश क्यूरिया रेजिस (Curia Regis) के सदस्य होते थे और राजा इनसे देश की परिस्थिति के बारे में जानकारी भी प्राप्त कर लेता था। जब इन न्यायाधीशों का काम बढ़ा और क्यूरिया रेजिस को यह कठि

नाई होने लगी कि राजकीय शासन प्रबन्ध में राजा की सहायता के साथ साथ न्याय-सम्बन्धी यह काम भी भली प्रकार करे तो इस काम को पहले दो, फिर तीन शाखाओं में बांट दिया गया और प्रत्येक शाखा का काम पृथक् पृथक् व्यक्तियों को सौंप दिया गया। पर मैगनम कौंसिलियम (Magnum Concilium) सब मामलों, न्याय-सम्बन्धी व दूसरे शासन सम्बन्धी, में सर्वोच्च सत्ता बनी रही। जब यह पार्लियामेण्ट के रूप में परिणत हो गई तब भी इसके न्याय सम्बन्धी कर्तव्य ज्यों के त्यों बने रहे। इस प्रकार पार्लियामेण्ट के अतिरिक्त कई न्याय संस्थायें स्थापित हो गई जिनमें विभिन्न प्रकार के मुकदमों की सुनवाई होती थी। इस विकास को एक रेखा चित्र से आसानी से समझा जा सकता है।
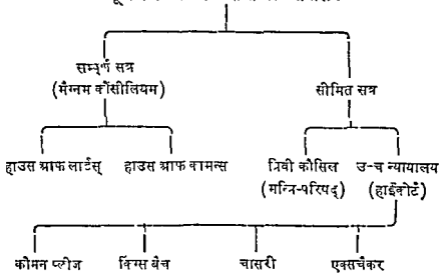
हाउस आफ लार्डस् और हाउस आफ कामन्स के इतिहास का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

एक्सचैकर क्यूरिया रेजिस का आर्थिक अंग था और उन मुकदमों को निबटाता था जो राजकीय कर आदि से सम्बन्ध रखते थे।

किंग्स बेंच को हैनरी द्वितीय ने सन् ११७८ में पृथक् रूप से स्थायी न्यायालय स्थापित किया। इसमें क्यूरिया के सदस्यों में से पांच व्यक्ति न्यायाधीश नियुक्त होते थे और इसके निबटाये हुये मुकदमों की अपील सीधी राजा के पास हो सकती थी।

मैग्ना कार्टा ने कौमन प्लीज के न्यायालयों की स्थापना का प्रबन्ध करा दिया था। इनमें समय समय पर प्रजा के लोगों पर पारस्परिक झगडों का निब-

प्राप्त होता था ।

उपर्युक्त तीनों न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुये थे । हेनरी तृतीय के समय में इन तीनों में पृथक पृथक न्यायाधीश नियुक्त कर दिये गये, पर इनके केन्द्रीकरण से केवल इसी बात की कमी थी कि शासन में समानता न थी और इनका अधिकार क्षेत्र स्पष्ट रूप से निश्चित न किया गया था । इस कमी को दूर करने के लिये पार्लियामेन्ट ने सन् १८७३ का जुडीकेचर ऐक्ट पास किया जिसमें और सुधारों के साथ साथ ये तीनों न्यायालय मिला कर एक न्यायालय के रूप में कर दिये गये । सन् १८८१ के एक दूसरे ऐक्ट से ये हाईकोर्ट उच्च न्यायालय के एक विभाग में मिला दिये गये ।

कोर्ट आफ चांसरी हेनरी सप्तम के अन्त में स्थापित हुई । कामन लॉ (Common Law) न्यायालयों के निर्णयों से लोगों को सन्तोष न होता था तो वे राजा से अपील करते थे और राजा उनकी अपीलों को चांसलर के पास भेज दिया करता था । इस प्रकार कुछ दिनों में चांसरी भी एक पृथक् न्याय कर्त्ता बन गई । सन् १८७३ के ऐक्ट से कोर्ट आफ चांसरी को उच्च न्यायालय यानी हाईकोर्ट का ही एक विभाग बना दिया ।

यद्यपि उपर्युक्त सब न्यायालय क्यूरिया रैजिस से ही उत्पन्न हुये पर फिर भी क्यूरिया न्यायकार्य करती रही और बड़े मुकदमों को निपटाती थी । जब हैनरी सप्तम सिंहासनारूढ़ हुआ तो उसने कौंसिल की एक समिति बनाई जिसको देश में शान्ति स्थापित करने के हेतु बड़े बड़े न्यायकारी व दण्ड देने वाले अधिकार दे दिये । यह समिति कोर्ट आफ स्टार चैम्बर के नाम से प्रसिद्ध हुई और इसकी स्थापना के पीछे जो उद्देश्य था वह राजनैतिक था न कि प्रशासनीय । बाद में इसका नाम हाई कमीशन कोर्ट पड़ा, पर इस ने बड़े कठोर दण्ड दिये जिससे यह बड़ी अप्रिय हो गई जिसके कारण पार्लियामेण्ट ने सन् १६४१ में इसे तोड़ दिया । पर इससे राजा का अधिकार जिससे वह अपनी प्रजा की प्रार्थना सुन सकता था नहीं छीना गया विशेष कर इंगलैण्ड से बाहर रहने वाली प्रजा की प्रार्थना सुनने का । इसलिये प्रिवी कौंसिल की जुडिशियल कमेटी की स्थापना हुई जो ब्रिटिश साम्राज्य की सब से ऊंची अदालत है ।

इन न्यायालयों के अतिरिक्त कुछ दूसरे न्यायालय भी स्थापित हुये जैसे कोर्ट आफ एडमिरल्टी, जिसमें समुद्र में किये हुये अपराधों के दण्ड की व्यवस्था होती थी, और धर्म न्यायालय जिनमें राजकीय धर्मसंघ के अधिकार क्षेत्र में आने वाले मामले निपटाये जाते थे ।

इन सारी न्याय संस्थाओं को एक सूत्र में बांधने के लिये व इनके संगठन और कार्य पद्धति में समानता लाने के लिये ही पार्लियामेण्ट ने सन् १८७३ और १८७६ के बीच न्यायपालिका का पुनर्संगठन किया ।

वर्तमान न्यायपालिका का संगठन नीचे दिये हुये रेखा चित्र से भली प्रकार समझ में आ जायगा ।

(१) फौजदारी या दण्ड-न्यायालय :—

(३) विशेष मुकदमों के न्यायालय.—

जुडिशियल कमेटी आफ प्रिवी कौंसिल

प्राइज कोर्ट
(युद्ध माल के लिये)

धर्म-न्यायालय

भारतवर्ष डोमिनियन्स व
उपनिवेशों का सर्वोच्च न्यायालय
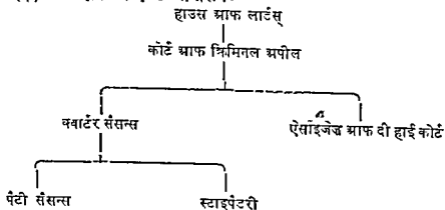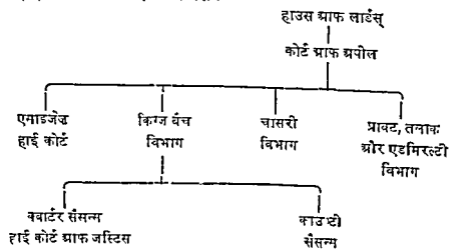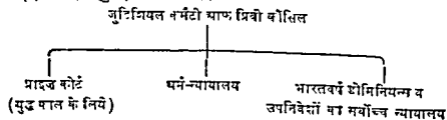
इंगलैण्ड में हाउस आफ लार्ड्स ही सर्वोच्च न्याय-संस्था है जहां माल व फौजदारी के मुकदमों की सुनवाई होती है। जब हाउस इस काम के लिये बैठता है तो लार्ड चान्सलर प्रधान का पद ग्रहण करता है और लार्ड्स आफ अपील इन आर्डिनरी व पीयर जो न्यायाधीशों का पद प्राप्त किये हुये होते हैं या कर चुके होते हैं उनकी उपस्थिति से ही सदन की बैठक सम्पन्न की जाती है चाहे और दूसरे पीयर उपस्थित हों या न हों। प्रिवी कौंसिल की जुडीशियल कमेटी में उपनिवेशों और डोमिनियनों के मुकदमों की अन्तिम अपील होती है। इस कमेटी का लार्ड चान्सलर भी सदस्य होता है और उसके अतिरिक्त वे लार्ड्स आफ अपील इन आर्डिनरी भी होते हैं जो हाउस आफ लार्ड्स में जब सदन अपील सुनने के लिये बैठता है, उपस्थित रहते हैं। इस कमेटी में साम्राज्य के जिस देश से मुकदमा आता है वहां का भी एक न्यायाधीश बैठता है।

कोर्ट आफ अपील में एक मास्टर आफ रोल्स और पांच लार्ड न्यायाधीश होते हैं। इस न्यायालय में कानून की व्याख्या-सम्बन्धी पुनर्विचार ही नहीं होता बल्कि घटना सम्बन्धी प्रश्नों पर भी पुनर्विचार होता है।

चान्सरी विभाग में पांच न्यायाधीश होते हैं और चान्सलर अध्यक्ष होता है। किंग्स बेंच विभाग में १५ न्यायाधीश होते हैं और प्रोबेट कोर्ट में दो। इस प्रकार हाईकोर्ट २३ न्यायाधीशों से बनती है। काम की सुविधा के लिये इसके विभाग कर दिये गये हैं जिनमें अपने अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत मुकदमों की सुनवाई होती है। प्रायः एक ही न्यायाधीश एक मुकदमे को सुनता है इसलिये हाईकोर्ट २३ न्यायालयों जितना काम करती है।

न्यायपालिका में लार्ड चान्सलर सबसे महत्वशाली व्यक्ति है क्यों कि बहुत से न्यायालयों का वह अपने पद के कारण ही अध्यक्ष होता है। इसके अतिरिक्त वह मन्त्रिपरिषद् का सदस्य भी होता है। उसका कानूनी ज्ञान बड़े ऊंचे दर्जे का होना है। उसको न्यायमन्त्री कहा जा सकता है क्योंकि वह परिषद् के साथ ही साथ अपना पद ग्रहण और पद-त्याग करता है। वह अपने पक्ष का सदस्य बना रहता है पर न्याय के मामलों में कानून का पक्का समर्थक बना रहता है।

काउण्टी कोर्टों में ५० पौण्ड तक के मुकदमों का निपटारा होता है, किन्हीं में १०० पौंड तक के मुकदमे भी सुने जाते हैं। जिन मुकदमों में २० पौण्ड से अधिक का प्रश्न हो उनकी अपील हाईकोर्ट में हो सकती है पर ५० पौण्ड से अधिक वाले मुकदमों की प्रथम सुनवाई हाईकोर्ट में ही होती है।

एसाइजेज (Assizes) वे भ्रमणशील न्यायालय हैं जिनके न्यायाधीश वर्ष में तीन या चार बार निश्चित नगरों में जाकर माल व फौजदारी के मुकदमे सुनते और तय करते हैं। इस काम के लिये काउण्टी को आठ जिलों

या सरकिटो (Circuits) में बाट दिया जाता है। ये न्यायालय बडे बडे अपराधो के मुकदमो की परीक्षा करते हैं। दूसरे छोटे मुकदमे क्वार्टर सैसन्स (Quarter Sessions) कहाने वाले न्यायालयो में सुने जाते हैं। इनमें उस काउण्टी के दो या दो से अधिक मजिस्ट्रेट न्याय करते है।

जैसे हमारे देश में कुछ उच्च व्यक्ति अपने नगर या जिले मे अवैतनिक मजिस्ट्रेट (Honorary Magistrate) बनाये जाते हैं ऐसे ही इगलैण्ड मे जस्टिसेज आफ दी पीस (Justices of the Peace) नियुक्त किये जाते हैं। वे कोई वेतन नही पाते और प्राय जीवन भर इस पद को ग्रहण किये रहते हैं। वे अपने नगर के छोटे मुकदमे सुनते और अपनी वुद्धि व सद्भावना के सहारे उनको तय करते है।

सब फौजदारी मुकदमो में पच-प्रणाली अपनायी जाती है। माल के मुकदमो में भी पचो की सहायता ली जा सकती है। पर छोटे-छोटे मुकदमो मे ऐसा नही किया जाता। प्राय २० पौण्ड से अधिक के मुकदमो में पाच पचो की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश जन्म भर के लिये नियुक्त किये जाते हैं और वे अपने काम में स्वतन्त्र व सुरक्षित रहते है। इन सब बातो के कारण अंग-रेज़ी न्यायपालिका राजनैतिक प्रभावो से परे और स्वतन्त्र है।

## पाठ्य पुस्तकें

Blackstone—Commentaries.

Carter, A. T.—History of the English Courts (1935 edition).

Dicey, A. V.—Law of English Constitution (1939 edition).

Finer, H.—Theory and Practice of Modern Government (Selected portions).

Greaves, H. R. G.—The British Constitution, pp. 211—221.

Holdsworth—History of English Law.

Laski H. J.—Parliamentary Government in England, ch. VII.

Marriot, J. A R.—English Political Institutions, ch. XII.

McIlwain, C H—High Court of Parliament and its Supremacy (1910).

Potter, H.—Historical Introduction to English Law and its Background (1932).

Poole, A. L—English Constitutional History (9th edition), pp. 130-161,726-743.).

# दसवां अध्याय

## अङ्गरेज़ी स्थानीय शासन

"स्वतन्त्र राष्ट्रों की शक्ति उनके नागरिकों की स्थानीय सभाओं में रहती है। विज्ञान के लिये जो काम प्रारम्भिक विद्यालय करते हैं वही काम नगर सभायें स्वतन्त्रता के लिये करती हैं। ये सभायें स्वतन्त्रता को जनता तक पहुंचाती हैं, ये मनुष्यों को यह सिखाती हैं कि इस स्वतन्त्रता का किस प्रकार प्रयोग व भोग किया जाय। कोई राष्ट्र स्वतन्त्र सरकार भले ही स्थापित कर ले पर स्थानीय शासन संस्थाओं के बिना उसमें स्वतन्त्रता की भावना नहीं रह सकती" (टौकविलि)

**स्थानीय शासन का प्रयोजन**—स्थानीय शासन स्वतन्त्रता उन्नति और सामाजिक नियन्त्रण के बीच समझौता-स्वरूप है। 'जिस श्रेणी में स्व-शासन, अनुपाती प्रतिनिधित्व आदि की युक्तियां आती हैं उसी में इसकी भी गिनती है। सामूहिक अभेदकारी उस व्यवहार के अत्याचार से इसके द्वारा ही बचत हो सकती है जिसमें व्यक्तियों की मौलिकता पर नाक भौंह सिकोड़े जाते हैं और उसको एकसा बनाने वाली प्रथाओं से कुचल कर नष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है।"*

स्थानीय शासन के बिना जनता में नागरिक भावना जाग्रत नहीं हो सकती और राष्ट्र की वही प्राकृतिक स्थिति होगी जिसका वर्णन हौब्स ने किया है। यह बात अब सब मानने लग गये हैं कि स्थानीय शासन नगर में हो या ग्राम, में, जिले में हो या प्रान्त में, जितना ही अच्छा होगा उतने ही वहां के निवासी सुखी व सम्पन्न रहेंगे। इसीलिये संसार के सब सभ्य देशों में (भारतवर्ष को छोड़ कर) शासन का बहुत बड़ा भाग राजधानियों में बैठी हुई सरकार द्वारा न होकर सारे देश में फैली हुई स्थानीय शासन संस्थाओं द्वारा सम्पादित होता है।

**अंगरेज़ी स्थानीय शासन का इतिहास**—स्थानीय स्वायत्त शासन इंगलैण्ड में सबसे प्राचीन है यहां तक कि संसार भर के स्थानीय लोकतन्त्र की यही प्रणाली जन्मदात्री है। इस प्रणाली का सब से अधिक लम्बा और

---

*हरमन फाइनर इंगलिश लोकल गवर्नमेण्ट (१९३३), पृ० ४।

ऋमिक इतिहास हैं। यह बडे लम्बे ऐतिहासकि विकास के परिणाम का फल है। सैक्सन काल में शायर, हण्ड्रेड, नगर (Townships) व बरो थे। नार्मन-विजय के पश्चात् शायर काउण्टी में, नगर मैनरो में और बरो सनद प्राप्त म्यूनिसिपैल्टियो अर्थात् नगर पालिकाओं में परिणत हो गये। दी हण्ड्रेड तो समाप्त ही हो गय। इसी बीच में पैरिश का जन्म हुआ और उसन नगरो (Townships) का स्थान ले लिया, यद्यपि प्रारम्भ में इसकी स्थापना का अभिप्राय धर्म सघ के मामलो की देखभाल करना भर था। १८ वी शताब्दी के अन्त तक केवल काउण्टी (County), बरो (Borough) और पैरिश (Parish) ही जीवित रह गये। काउन्टी का शासन जस्टिस आफ दी पीस (Justice of the Peace) करते थे और बरो का शासन उसका फ्रीमेन (Freeman) करता था। बरो और पैरिश का शासन-सगठन लोकतन्त्रात्मक था और लोग अपने अफसरो को स्वय ही चुनते थे। ट्यूडर और स्टुअर्ट राजाओ की निरकुशता का इस पर कोई हानिकारक प्रभाव नही पडा। पर १७ वी शताब्दी के अन्त में औद्योगिक क्रान्ति ने सारी परिस्थिति को बदल डाला, गावो के रहने वाले शहरो में जाकर रहने लगे जहा पर शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा, निर्धनो की देख भाल आदि की समस्यायें पेचीदा होने लगी। सरकार ने पुरानी सस्थाओं को तो न मिटाया पर नई सस्थाये बना दी जैसे स्थानीय सुधारक जिले जो स्वास्थ्य आदि सार्वजनिक सुविधाओ की देखभाल करते थे और पूअर ला यूनियन (Poor Law Union) आदि। इसका परिणाम यह हुआ कि इन स्थानीय सस्थाओ की सख्या सन् १८८३ में बढ कर २७,००० हो चुकी थी और उनका अधिकार क्षेत्र पृथक् पृथक् न हो कर एक दूसरे से मिले रहने से बडी अधाधुन्धी चल रही थी।

**१६ वीं शताब्दी में स्थानीय शासन का सुधार**—इन कठिनाइयो के कारण पर विशेषकर उदार आन्दोलन (Liberal Movement) के उठने से पार्लियामेण्ट ने स्थानीय शासन-सस्थाओं को नया रूप देकर उनमें सुधार करने का काम अपने हाथ में लिया। सब से पहले सन् १८८५ का कौरपोरेशन ऐक्ट पास हुआ जिससे बरो (नगरो) को स्थानीय शासन सम्बन्धी वह प्रणाली मिली जो अब तक बिना परिवर्तन के ज्यो की त्यों चलती आ रही है। सन् १८८८ के लोकल गवर्नमेण्ट ऐक्ट से काउण्टी के शासन का पुनर्संगठन किया गया और उनको वे अधिकार सौप दिये गये जो तब से पहले जस्टिसेज आफ दी पीस (Justices of the Peace) को प्राप्त थे। उसके पश्चात् सन् १८६४ के डिस्ट्रिक्ट एण्ड पैरिश कौंसिल ऐक्ट से उस समय तक जो छोटे छोटे विशेष

जिनके चलते आ रहे थे उनको छोड़ दिया।

इस प्रकार यह प्रकट है कि वर्तमान प्रणाली क्रमिक विकास का फल है। यह किसी क्रान्ति के फलस्वरूप प्राप्त नहीं हुआ है। इसकी स्थापना पार्लियामेण्ट के किसी एक ऐक्ट से न होकर कई ऐक्टों के बाद इसका वर्तमान रूप प्राप्त हुआ है। परन्तु यह सब होते हुये भी हम देखेंगे कि इस विषय में बहुत प्राचीन काल से यही प्रवृत्ति रही कि शासन क्षेत्र में स्थानीय स्वतन्त्रता की रक्षा व अधिकाधिक वृद्धि की जाय। यूरोप में इसके विपरीत यह प्रयत्न किया गया कि जहां तक हो सके शासन का केन्द्रीयकरण किया जाय। अमरीका की तरह इंगलैण्ड में स्थानीय शासन-कर्मचारियों पर अविश्वास रख कर कानून की सहायता से शासन के दोष मिटाने की प्रवृत्ति नहीं रही परन्तु इसके विपरीत नागरिकों के प्रतिनिधियों पर जनमत का दबाव डाल कर दोषों को सुधारने का प्रयत्न किया गया।

**स्थानीय शासन के वर्तमान क्षेत्र**—इस समय स्थानीय शासन के पांच मुख्य क्षेत्र हैं : पैरिश (Parish), रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District), अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District), बरो (Borough) और काउण्टी (County)। अंगरेजी स्थानीय शासन के सम्बन्ध में यह जानने योग्य बात है कि कोई भी स्थानीय शासन संस्था या अधिकारी व्यक्ति कानूनी अधिकार के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। उसकी इच्छा कानून की सीमा से प्रतिबन्धित रहती है। दूसरे, स्थानीय शासन स्वतन्त्र है श्रेणीबद्ध नहीं। प्रत्येक इकाई को अपने अधिकार क्षेत्र में इच्छानुसार काम करने की स्वतन्त्रता है, केवल शर्त यह है कि उसकी सब कार्यवाही सद्भावना से होनी चाहिये।

**रूरल पैरिश (Rural Parish)**—पैरिश कई प्रकार के हैं असैनिक (Civil) पैरिश, धर्म पुजारियों के पैरिश और भूमिकर पैरिश। स्थानीय शासन में हमारा अभिप्राय केवल असैनिक पैरिश से ही है। असैनिक पैरिश के भी दो विभिन्न रूप हैं एक ग्रामीण दूसरा नागरिक। दूसरा तो अरबन डिस्ट्रिक्ट के शासन में मिल कर विलीन हो गया पर पहला अभी तक चलता चला आ रहा है। इसका शासन संगठन निजी है। ग्रामीण पैरिश छोटे बड़े कई प्रकार के हैं। जिस ग्रामीण पैरिश में ३०० निवासी से अधिक हैं वहां साधारणतया एक पैरिश कौंसिल रहती है, जहां ३०० से कम लोग रहते हैं ऐसे एक से अधिक पैरिशों को मिला कर उनके लिये एक पैरिश कौंसिल बना दी जाती है। कौंसिल में ५ से कम व १० से अधिक सदस्य नहीं होते। इसकी अवधि

एक वर्ष होती है और सदस्यों का निर्वाचन मार्च में पैरिश के वार्षिक सम्मेलन में होता है। वोट हाथ उठा कर दिये जाते हैं। कौंसिल की कम से कम तीन बैठकें एक वर्ष में होनी चाहिये। पैरिश कौन्सिल के अधिकार विभिन्न प्रकार के और बहुत कुछ विस्तृत हैं पर उन पर डिस्ट्रिक्ट कौंसिल और काउण्टी कौंसिल, इन दो उच्चाधिकारी संस्थाओं का नियन्त्रण रहता है। वे पैरिश सभाभवन, पुस्तका आदि का इन्तजाम कर सकती हैं। शिक्षा, सार्वजनिक निर्माण उद्यान आदि का प्रबन्ध भी कर सकती हैं। पेरिश में कर लगाने का भी अधिकार उन्हें रहता है पर कर एक पौंड में ३ पेंस से अधिक न होना चाहिये। पैरिश के हिसाब किताब की जाच स्वास्थ्य-विभाग के डिस्ट्रिक्ट आडीटर करते हैं।

**रूरल डिस्ट्रिक्ट (Rural District)**—जितने ग्राम पैरिश हैं वे सब रूरल डिस्ट्रिक्ट अर्थात् ग्राम जिलों में सगठित हैं। इन ग्राम जिलों की अपनी अपनी प्रतिनिधिक कौंसिलें हैं। इन कौंसिलों में ३०० निवासियों वाले पैरिश का एक प्रतिनिधि होता है। इन प्रतिनिधियों का निर्वाचन तीन साल के लिये होता है और सब प्रतिनिधियों में से एक तिहाई प्रति वर्ष अपने पद से हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाता है। चुनाव शलाका पद्धति द्वारा होता है हाथ उठा कर नहीं। कौंसिल का सभापति जस्टिस आफ दी पीस भी होता है। कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी व्यक्ति को या बाहर के व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिल की एक महीने में एक बैठक अवश्य होती है। अधिकतर काम कौंसिल की समितियां करती हैं। सफाई, जल, जन-स्वास्थ्य आदि का प्रबन्ध, छोटी सड़कों की देखभाल व मरम्मत, कुछ लाइसेन्सों (अनुज्ञापन) का देना आदि काम ये कौंसिलें करती हैं। उद्योग के बढ़ने से इन संस्थाओं के कर्तव्य और महिमा कम होती जा रही है। यदि कौंसिलें अपनी कम से कम कार्यवाही को पूरा करने में बेपरवाही दिखाती हैं तो केन्द्रीय सरकार उन्हें भला बुरा कह कर उनके हिसाब की जांच करा कर या कानून के द्वारा, उनके काम में हस्तक्षेप कर सकती है।

**अरबन डिस्ट्रिक्ट (Urban District)**—नगर-जिले की कौंसिल बनावट में व अधिकार में लगभग ग्रामीण जिले की कौंसिल से मिलती जुलती है। किन्तु ग्राम जिला का क्षेत्रफल नगर जिले से बहुत अधिक होता है। नगर में जितने पैरिश (मोहल्ले) होते हैं उनका एक प्रतिनिधि कम से कम अवश्य नगर-जिले की कौंसिल का सदस्य होता है। कौंसिल को छोटी सड़कों, मकानों, सफाई, जनस्वास्थ्य और लाइसेन्स देने आदि के सम्बन्ध में स्थानीय अधिकार होते हैं। नगर-जिले व बरो में कोई विशेष अन्तर नहीं होता केवल म्यूनिसिपल

कारपोरेशन ऐक्ट के अन्तर्गत उसे वर्ग का रूप नहीं दिया होता। प्रत्येक वरो नगर-जिला अवश्य होता है। वरो और नगर-जिले की कौंसिल का ढांचा एक समान ही होता है।

काउन्टी (County)—सब ग्राम व नगर-जिलों को मिला कर एक काउन्टी बनती है। स्थानीय शासन की यह सब से बड़ी इकाई है। यह दो प्रकार की होती है—ऐतिहासिक काउन्टी (Historical Counties) की सीमा प्राचीन काल से निश्चित है। ये न्याय-प्रबन्ध की इकाई हैं। ऐसी ५२ काउन्टी इस समय वर्तमान हैं। पार्लियामेण्ट के चुनाव के लिये ये ही निर्वाचन क्षेत्र का काम देती हैं। ऐसी काउन्टी के लिये एक लार्ड लैफ्टिनेण्ट और एक शैरिफ होता है जिनका कोई काम नहीं होता। ये केवल दिखावे के अफसर हैं उन्हें कोई वेतन भी नहीं मिलता। इन काउन्टियों में कोई कौंसिल या और कोई ऐसा अफसर नहीं होता जो इनका प्रबन्ध करे। प्रशासन काउन्टी (Administrative County) की एक कौंसिल होती है जिसमें सभापति, एल्डरमैन (Aldrmen) और कौंसिलर्स होते हैं। कौंसिलर्स का चुनाव करने के लिये सारी काउन्टी को निर्वाचन क्षेत्रों में बांट दिया जाता है और प्रत्येक क्षेत्र से एक प्रतिनिधि चुना जाता है। इसलिये जनसंख्या के अनुसार प्रत्येक काउन्टी के कौंसिलर्स की संख्या भिन्न भिन्न है। ये कौंसिलर्स अपनी संख्या के छटवें हिस्से के बराबर अपने में से ही एल्डरमैन चुन लेते हैं। ये एल्डरमैन बाहर के व्यक्ति भी चुने जा सकते हैं। कौंसिलर्स तीन साल तक और एल्डरमैन ६ साल तक अपने पद पर रहते हैं। परन्तु दोनों को मत देने का अधिकार एक समान है। दोनों मिल कर अपने में से किसी एक को या बाहरी व्यक्ति को अपना सभापति चुनते हैं। काउन्टी कौंसिल साल में कम से कम चार बार अपनी सभा करती है। इसके अधिकार विस्तृत हैं और विभिन्न प्रकार के काम इसको करने पड़ते हैं। यह ग्राम-जिलों की कौंसिल के काम की देख भाल करती है। बड़ी सड़कों की मरम्मत, पुलों की मरम्मत, आश्रमों, बाल-अपराधियों के चरित्र सुधारने के स्कूल व औद्योगिक स्कूलों का खोलना, पुलिस का इन्तजाम करना, काउन्टी के भवनों की देख रेख करना आदि काम इस कौंसिल को करने पड़ते हैं। शिक्षा का काम केवल इसी को करना पड़ता है, वृद्धावस्था की पेंशन का काम भी यही करती है। यही कर लगा सकती है। इसका सब काम समितियों द्वारा होता है। प्रत्येक सेवा के लिये एक स्थायी समिति होती है जो विस्तार पूर्वक सब बातों की छान बीन करती है और प्रबन्ध योजना बनाती है। इन समितियों के अतिरिक्त स्थायी कर्मचारियों द्वारा भी काम होता है ये कर्मचारी पक्ष पद्धति के आधार पर नियुक्त

नही होते। कौसिल इन को स्वय नियुक्त करती है परन्तु ये सिविल के अन्तर्गत नही गिने जाते। कौंसिल स्वास्थ्य अफसर को छोड कर इन में से किसी को अपने पद से हटा सकती है। अमरीका की तरह इगलैण्ड में स्थानीय शासन कर्मचारियो को अपने पदो पर बने रहने के लिये प्रति वर्ष राजनीति के पचडे में पडने की आवश्यकता नही होती क्यो कि उनकी नियुक्ति योग्यता के आधार पर होती है और वे स्थायी रूप से अपने पद पर सुरक्षित रहते हैं। इसीलिये इगलैण्ड का स्थानीय शासन प्रबन्ध बहुत उत्तम है और अमरीका की अपेक्षा बहुत अधिक अच्छा है।

**नगर बरो (Urban Boroughs)**—नगरो में बरो सब से अधिक महत्वशाली है। प्रत्येक बरो एक चार्टर से स्थापित हुआ होता है। यह चार्टर बडी पेचदार लम्बी कार्यवाही के पश्चात् प्रदान किया जाता है। चार्टर लेने के लिये निम्नलिखित बाते पूरी करनी पडती है।

(१) जिस नगर-जिला को यह चार्टर लेना हो वहा के निवासी या वहा की कौंसिल स्वय इसके लिये एक प्रार्थना-पत्र भेजती है।

(२) इस प्रार्थना का नोटिस जनता की जानकारी के लिये लदन गजट में छाप दिया जाता है।

(३) उस प्रार्थना के विरोध में यदि किसी को कुछ कहना होता है तो उसके लिये एक मास का समय दिया जाता है।

(४) एक कमिश्नर तब जाच करता है और अपनी रिपोर्ट देता है।

(५) यह रिपोर्ट स्वास्थ्य मिनिस्ट्री के पास आलोचना और सलाह के लिये भेज दी जाती है।

(६) चार्टर का मसविदा विस्तृत योजना और एक मानचित्र तैयार किया जाता है।

(७) तब प्रिवी कौंसिल से उन्हे स्वीकृत कराया जाता है।

(८) यदि चार्टर की प्रार्थना का किसी ने विरोध किया हो तो चार्टर देने के निर्णय पार्लियामेण्ट से समर्थन कराने की भी आवश्यकता पडती है।

चार्टर इसलिये मागा जाता है क्योकि बरो का चार्टर के मिल जाने से कई सुविधायें प्राप्त हो जाती है। बरो नगर की कारपोरेशन है जिसकी शाश्वत उत्तराधिकार (Perpetual Succession) निजी मुद्रा (Seal), नगर-भवन, विशिष्ट चिन्ह और दूसरी परिचायक विभूतिया होती है। नगर जिले की अपेक्षा बरो को यह विशेष सुविधा प्राप्त रहती है कि वह 'अच्छे शासन के हित में दिये हुये सामान्य अधिकार के बल पर उप विधि बना सकता है। बरो को स्थानीय शासन सस्थाओ में बडा ऊचा स्थान प्राप्त रहता है। यह कहा

जाता है कि जब किसी नगर के निवासी बरो के रूप में संगठित हो जाते हैं तो वे स्थानीय शासन में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। बरो में कौंसिल अधिक बड़ी होती है इसलिये अधिक व्यक्ति शासन में भाग ले सकते हैं।

**बरो का शासन**—बरो का प्रबन्ध एक कौंसिल की सहायता से होता है। बरो के अधिकार शासन ला, कार्पोरेशन ऐक्टा और पार्लियामेण्ट के स्थानीय शासन सम्बन्धी या वैयक्तिक कानूनों से प्राप्त रहते हैं। कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन विभागों के आदेश से भी मिल जाते हैं। पार्लियामेण्ट इन विभागों को इन आदेशों के देने की अनुमति दे चुकी होती है। इनके कारण नगरपालिकाओं (Municipalities) के अधिकारों में समानता न रह कर विभिन्नता आ जाती है। बरो कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। निर्वाचन के लिये बरो को वार्डों में बांट दिया जाता है और गूढ़ शलाका (Secret ballot) द्वारा निर्वाचन होता है। पक्ष प्रणाली (Party system) पर यह निर्वाचन होने वाला नहीं समझा जाता फिर भी पक्षवादी का असर आये बिना नहीं रहता। कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन हो जाने के पश्चात् ये सदस्य आपस में या बाहर से अपनी संख्या के छठे भाग के बराबर संख्या में व्यक्तियों को चुनते हैं जो एल्डरमैन (Aldrmen) कहलाते हैं व छः साल के लिये चुने जाते हैं और उनमें से आधे तीन वर्ष बाद हट जाते हैं। कौंसिलर्स और एल्डरमैन दोनों के समान अधिकार हैं परन्तु अधिक अनुभवी होने के कारण नीति निर्णय में एल्डरमैन का अधिक प्रभाव रहता है। एल्डरमैन और कौंसिलर्स मिलकर एक व्यक्ति को चुनते हैं जो मेयर (Mayor) कहलाता है। उसका निर्वाचन एक साल के लिये होता है पर एक ही व्यक्ति पुनर्निर्वाचन के लिये फिर खड़ा हो सकता है। प्रायः प्रतिवर्ष एक नया व्यक्ति ही चुना जाता है क्योंकि यह पद प्रतिष्ठा व सम्मान का है। मेयर नाम-मात्र के लिये नगर का अध्यक्ष रहता है। वह कार्यकारी प्रधानाधिकारी नहीं होता। वह किसी नयी नीति को कार्यान्वित करने के लिये किसी पक्ष का प्रतिनिधित्व करने के लिये निर्वाचित नहीं किया जाता है। कौंसिल पर न वह अपना प्रभुत्व जमा सकता है न उसकी बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है। वह बरो के अफसरों या कर्मचारियों की नियुक्ति भी नहीं करता। केवल एक आडीटर (Auditor) अर्थात् लेखा परीक्षक और अस्थायी नगर रक्षक की नियुक्ति ही वह कर सकता है। वह आय व्यय का लेखा (Budget) बनाने में कोई काम नहीं करता। कौंसिल अपना काम स्थायी समितियों द्वारा करती है। प्रत्येक नगर में १ से १२ तक समितियां हो सकती हैं। कानून से इनके सदस्यों की संख्या निर्धारित नहीं होती पर स्थायी आदेशों से यह संख्या प्रतिबन्धित है। विशेष विषयों पर विचार करने के लिये

भी अलग समितियां बना दी जाती हैं। बरो कौंसिल और काउन्टी कौंसिल की मिली जुली समितियां भी होती हैं। ये समितियां बड़ा काम करती हैं, हालांकि इनको अन्तिम निर्णय का अधिकार नहीं होता, ये परामर्श ही दे सकती हैं। समितियों में आपस में मतभेद होने पर कौंसिल अपने निर्णय से मतभेद को मिटाती है।

**कौंसिल के अधिकार**—कौंसिल को उप-विधियां (Bye-laws) बनाने का अधिकार रहता है जिनमें से कुछ के लिये केन्द्रीय सरकार के किसी विभाग की स्वीकृति लेनी पड़ती है। अर्थसम्बन्धी मामलों में कौंसिल ही प्रमुखतः अधिकारी है। बरो के फण्डों की रक्षक भी कौंसिल रहती है। कुछ मदों के लिये कौंसिल को केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य विभाग की अनुमति लेनी पड़ती है और कुछ मामलों के लिये कौंसिल को अनिवार्य रूप से खर्चा करना पड़ता है। यदि बरो के पास पर्याप्त फण्ड नहीं होता जिनसे उपर्युक्त खर्चा हो सके तो उसे स्थानीय टैक्स लगाने का अधिकार रहता है। प्रति वर्ष सब विभिन्न समितियां पदाधिकारियों से परामर्श कर अनुमान से अपने वार्षिक व्यय तैयार करती हैं। तब आर्थिक समिति उस की परीक्षा कर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन करती है और उसे बजट का रूप देती है जो कौंसिल के सामने रखा जाता है और साधारण बहुमत से स्वीकृत हो जाता है। यद्यपि कर्ज लेने का अधिकार पार्लियामेण्ट पृथक् पृथक् बरो की योग्यतानुसार प्रदान करती है किन्तु फिर भी केन्द्रीय सरकार इस कार्य के लिये कुछ नियम बना देती है। कौंसिल के प्रबन्ध-कार्य के अन्तर्गत सड़कों का बनवाना, पानी का इन्तजाम सार्वजनिक स्वास्थ्य, मनोविनोद की सुविधायें देना, उद्यान शिक्षणालय व दूसरे सार्वजनिक भवनों का बनवाना, लाइसेन्सों का देना, निर्धनों की देख भाल करना आदि काम आते हैं। पुलिस, शिक्षा तथा मद्य लाइसेन्सों पर कौंसिल का अधिकार नहीं होता। सफाई के सम्बन्ध में कौंसिल ही स्थानीय अधिकारी संस्था है। यह श्रमिकों के लिये मकान बनवाती है और उनकी मरम्मत आदि की देखभाल करती है। यह बाजारों का नियमन करती है और उच्चाधिकारियों की नियुक्ति करती है।

**प्रशासन काउन्टी (Administrative County)**—जब कोई बरो बहुत बड़ा हो जाता है और उसकी संख्या बढ़ जाती है तो उसे काउण्टी से पृथक् कर दिया जाता है और वह स्वयं ही एक प्रशासन काउण्टी बन जाता है। तब इसको काउण्टी बरो के रूप में संगठित कर दिया जाता है। उसकी कौंसिल के लगभग वही कर्तव्य व अधिकार होते हैं जो बरो कौंसिल के होते हैं।

उपर्युक्त वर्णन से यह प्रकट हो जायगा कि इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं का गोरखधन्धा सा बना हुआ है। परन्तु इंगलैण्ड में इन संस्थाओं के

राजकर्मचारियों को एक श्रेणी के नियंत्रण में नहीं रहना पड़ता जैसा फ्रांस में होता है। उदाहरण के लिये पैरिश (Parish) की कई छोटे बड़े राज्यपदाधिकारियों के अत्याचार का कष्ट उठाना पड़ता है वरन् उसका सम्बन्ध सीधे केन्द्रीय सरकार से रहता है। इंगलैण्ड की पेचीदा स्थानीय शासन प्रणाली को निम्नलिखित रेखाचित्र से सुगमता से समझाया जा सकता है —

ऐतिहासिक काउन्टी

काउण्टी बरो — प्रशासन बरो

बरो — अरबन डिस्ट्रिक्ट — रूरल डिस्ट्रिक्ट

अरबन पैरिश — रूरल पैरिश

पुअर ला यूनियन
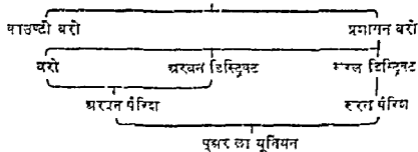
इंगलैण्ड में केन्द्रीय सरकार सामान्य नियन्त्रण रखती है पर शासन प्रबन्ध स्थानीय शासन संस्थाओं पर छोड़ दिया जाता है। स्थानीय संस्थाओं के शासन प्रबन्ध की देख भाल केन्द्रीय सरकार के विभिन्न शासन विभाग करते हैं। इससे यह भ्रम न होना चाहिये कि केन्द्रीय सरकार और स्थानीय शासन संस्थाओं के कर्तव्यों या उद्देश्यों में भिन्नता है। उन दोनों का एक ही उद्देश्य है और वह यह है कि देश पर अच्छे से अच्छे ढंग से शासन किया जाय और जनता को अधिक से अधिक सुख पहुंचाया जाय। इसलिये वे दोनों बड़े प्रेम व मित्रता से सब काम करते हैं।

**इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण**— इंगलैंड में स्थानीय शासन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियन्त्रण न तो यूरोप के समान कड़ा है न अमरीका की तरह बिलकुल ढीला है। यूरोप की नगर-पालिकाओं (Municipalities) जैसा अंगरेजी नगरपालिकाओं पर धारा सभा का नियंत्रण नहीं रहता परन्तु उनके काम में प्रशासन सम्बन्धी केन्द्रीय सरकार का हस्तक्षेप अधिक रहा करता है। अंगरेजी बरो को बहुत से विस्तृत अधिकार सौंपे हुये रहते हैं परन्तु उन अधिकारों को कार्यरूप देने में व्हाइट हाल में स्थित किसी न किसी केन्द्रीय सरकारी विभाग का उस पर नियन्त्रण रहता है। वह बरो उन अधिकारों को स्वेच्छानुसार नहीं भोग सकता। यह हम पहले ही बतला चुके हैं कि अंगरेजी शासन संस्थायें श्रेणी-बद्ध (Hierarchical) नहीं हैं। फ्रांस में स्थिति इसके बिलकुल विरुद्ध है। उदाहरणार्थ फ्रांस में कई अधिकारी, लगभग हिन्दू देवताओं की श्रेणी के समान, छोटी से छोटी स्थानीय शासन की

इकाई सम्पूर्ण पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। इंगलैण्ड में सब से प्रथम इस बात की सफलता प्राप्त हुई थी कि स्थानीय शासन की विकेन्द्रित प्रणाली के साथ शासन की उत्तमता व व्यवस्था भी हो। स्थानीय स्वायत्त-शासन दो प्रकार की कही जाती है, एक अंगरेजी, दूसरी यूरोपीय। अंगरेजी प्रणाली में स्थानीय संस्थायें स्वयं अपनी नीति निर्धारित करती हैं, केवल उन पर केन्द्रीय सरकार का सामान्य नियन्त्रण रहता है। योग्यता के नियमों के अनुसार अपने कर्मचारियों का वे स्वयं ही नियुक्त करती हैं और खर्चे का अधिकतर भाग वे स्वयं ही टैक्स लगा कर पूरा करती हैं। असल में उनका एक पृथक् शासन संगठन और शासन प्रणाली ही है। वे केन्द्रीय सरकार की कोरी आधीन संस्थायें ही नहीं हैं। यूरोपीय स्थानीय शासन प्रणाली में इसके विपरीत, स्थानीय शासन का प्रमुख अधिकारी, जनता के चुने हुये प्रतिनिधियों का सेवक नहीं होता वरन् वह केन्द्रीय सरकार का अफसर ही होता है, जिसे अमुक स्थान पर केन्द्रीय सरकार के आदेशों को कार्यान्वित करने के लिये नियुक्त कर दिया जाता है। इसलिये यूरोप में स्थानीय शासन में केन्द्रीय सरकार की ही प्रेरक शक्ति काम करती है न कि जनता की।

अमरीका में जहां इंगलैण्ड जैसा अलिखित एकात्मक शासन विधान होकर लिखित व संघात्मक शासन विधान है, वहां स्थानीय शासन संस्थाओं को अधिक स्वतन्त्रता मिली हुई है। वहां नगरपालिकाओं पर केन्द्रीय अर्थात् संघ-सरकार की धारा सभा का अधिक आधिपत्य रहता है परन्तु निश्चित प्रशासन मर्यादा के भीतर वे स्वेच्छानुसार कार्य करने को स्वतन्त्र रहती हैं यदि हम उसे स्थानीय शासन की अराजकता कहें तो अनुचित न होगा। परन्तु अमरीकन स्थानीय शासन प्रणाली अन्तर्वर्ती युग से गुजर रही है। नित नई योजनायें बनायी जाती हैं और ठुकरा दी जाती हैं। इंगलैण्ड और अमरीका की प्रणालियों में भेद का कारण यह है कि अमरीका में जनता अपनी सरकार का *विश्वास नहीं करती* और उसके अधिकारों को बहुत सीमित कर देती है। इंगलैण्ड में सरकार जनता पर विश्वास नहीं करती और लोकसत्ता के क्षेत्र को बढ़ाने से हिचकती है।

इंगलैण्ड में स्थानीय शासन संस्थाओं के ऊपर जितना नियन्त्रण स्वास्थ्य विभाग का है उतना किसी दूसरे विभाग का नहीं है पर फिर भी यह नियन्त्रण फ्रांस के गृह विभाग का सा कठोर नहीं है। मुनरो (Munro) के कथनानुसार यह स्वास्थ्य विभाग स्थानीय शासन के इंजन का काम नहीं करता, केवल संतुलन-चक्र का काम ही करता है। स्वास्थ्य विभाग का काम यह नहीं है कि

शासन-संगठन की रूप-रेखा निश्चित करने पर उसका इतना ही काम है कि वह यह देखता रहे कि नगर कौंसिल या दूसरी अधिकारी संस्थायें उस शासन पत्र को अच्छी तरह परियोजित करती हैं या नहीं। स्वास्थ्य विभाग को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक स्वास्थ्य, निर्धन-विधि (Poor Law), गवाई, सीमायें और दूसरी नई शासन संस्थाओं के बारे मे कानून बनावे। यह विभाग पार्लियामेण्ट के एजेण्ट की तरह काम करता है और पार्लियामेण्ट ही इस विभाग के अधिकारियों को छीन सकती है। शासन-संस्थाओं की उप-विधियों को स्वास्थ्य विभाग रद्द कर सकता है परन्तु प्रायः वही उप-विधि अस्वीकृत होती है जो राष्ट्रीय विधियों के प्रतिकूल पड़ती है। यह विभाग पार्लियामेण्ट व स्थानीय संस्थाओं, दोनों को शासन व अर्थ सम्बन्धी मामलों में सलाह देता है। यह इन संस्थाओं के विरुद्ध व्यक्तियों की प्रार्थनाओं पर विचार कर निर्णय भी देता है। इस विभाग को अर्थ सम्बन्धी बड़े विस्तृत अधिकार हैं। इसको ऋण की स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है। यातायात विभाग के अतिरिक्त और जिन जिन सेवाओं के लिये ऋण की संस्थाओं को आवश्यकता होती है उसे मञ्जूर करने का अधिकार स्वास्थ्य-विभाग को होता है। इस विभाग को यह भी अधिकार है कि प्रत्येक वर्ष में निश्चित उसके खर्चे का ब्यौरा मगा कर देखे। स्वास्थ्य विभाग के अतिरिक्त बोर्ड आफ ट्रेड इन संस्थाओं के व्यापार और उद्योग की उन्नति में सहायता देता है। माप तौल व गैस और बिजली के ऊपर भी इस विभाग का सामान्य नियन्त्रण रहता है। यातायात विभाग बिजली की गाड़ियों, रेल, बिजली प्रकाश, आदि से सम्बन्ध रखता है। होम आफिस पेंशन, तरुण अपराधियों के न्यायालयों, उत्पादि-वलि (Excise), पुलिस, रजिस्ट्रेशन, आचार, निर्वाचन, कारखाने और खानों से सम्बन्ध रखता है। पुलिस का प्रबन्ध करना इस विभाग का मुख्य काम है। केन्द्रीय सरकार के दूसरे विभाग स्थानीय शासन की दूसरी शाखाओं का नियन्त्रण करते हैं।

**पार्लियामेण्ट का नियंत्रण**—पार्लियामेण्ट स्थानीय-शासन-इकाइयों पर अधिक आधिपत्य रखती है। जिस जिस सेवा की योजना की जाती है उसके लिये पार्लियामेण्ट कानून से तत्सम्बन्धी एक केन्द्रीय शासन विभाग स्थापित कर देती है। इस कानून का आदेशों द्वारा व नियम-उपनियमों द्वारा वह शासन विभाग कार्यान्वित करता है। प्रत्येक केन्द्रीय शासन विभाग में अफसरों की एक बड़ी भारी संख्या होती है जिसका यही काम है कि वह अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों से स्थानीय शासन संस्थाओं की सहायता करे। पार्लियामेण्ट ही प्रोविंसियल तथा स्पेशल आर्डर्स से या प्राइवेट विधेयकों से स्थानीय शासन संस्थाओं को बहुत से

अधिकार प्रदान करती है। स्थानीय संस्थाओं के क्षेत्रों में परिवर्तन करने के लिये, उप-विधियों के बनाने और नयी शासन प्रणालियों की स्थापना करने के लिये केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति आवश्यक है। स्थानीय शासनाधिकारियों की योग्यता व अवधि को हाउस आफ कामन्स ही निश्चित करता है क्यों कि इस सम्बन्ध में लोग स्थानीय संस्थाओं का विश्वास नहीं करते। जब कोई शासन-संस्था अपने कर्तव्य को पूरा नहीं करती तो पार्लियामेण्ट हाईकोर्ट के आदेश से उस संस्था का प्रबन्ध न्यायालय के अधीन रख सकती है। केन्द्रीय सरकार कानून के तोड़ने या उसकी ठीक व्याख्या करने के प्रश्नों में अपना निर्णय देती है। केन्द्रीय सरकार स्थानीय मामलों की छानबीन करा सकती है और रिपोर्ट प्रकाशित करती है। उनके आय-व्यय की जाँच करना और संस्थाओं के लिये ऋण देना भी केन्द्रीय सरकार का ही काम है। केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण इसलिये और अधिक बढ़ता जाता है क्यों कि राष्ट्रीय कोष से अब इन संस्थाओं को सहायक-अनुदान देने की रीति चल पड़ी है। जब सरकार इनको धन से सहायता करती है तो उनके ऊपर अपनी शर्तें लादने का अधिकार भी प्राप्त कर लेती है।

पर केन्द्रीय सरकार अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करती और प्रायः इन संस्थाओं की स्वतन्त्रता का समुचित आदर करती है। उसकी यही इच्छा रहती है कि ये संस्थायें इस स्वतन्त्रता का बिना हस्तक्षेप के सदुपयोग करें। जब तक बरो कौंसिल अपने वैध अधिकारों की सीमा के भीतर काम करती है तब तक केन्द्रीय हस्तक्षेप से बची रहती है, जब इस सीमा का उल्लंघन जाने या अनजाने करती है तो केन्द्रीय हस्तक्षेप का स्वागत ही करना चाहिये न कि उसके प्रति विरोध। फिर भी अंगरेजी जनता इस हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करती और उसका विरोध करती है। प्रायः यह कहा जाता है कि स्थानीय संस्थाओं में जो स्थानीय व्यक्ति हैं वे स्थानीय मामलों को हाउस आफ कामन्स के सदस्यों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझते हैं। पिछले चालीस वर्षों में विकेन्द्रीकरण की मात्रा बढ़ाने के लिये समय समय पर प्रयत्न किये गये परन्तु कोई विशेष परिवर्तन अभी तक नहीं हो पाया है। सन् १८६८ में काउण्टी कौंसिलों को कुछ विषयों के सौंपने का प्रस्ताव काउण्टी कौंसिल एसोसियेशन ने किया था। सन् १९२० की डिवौल्यूशन कान्फ्रेंस के द्वारा यह प्रस्ताव रखा गया कि पार्लियामेण्ट के ढंग पर स्थानीय धारा सभायें स्थापित की जायें। तीसरी, मैकडौनैल्ड की योजना थी जिसमें यह कहा गया कि प्रदेशीय एक सदन वाली (Regioned Unicameral) धारा सभायें बनाई जायें जिनमें पार्लियामेण्ट के चुने हुये व्यक्ति सदस्य हों।

## लन्दन का शासन प्रबन्ध

लन्दन का स्थानीय-शासन उसके ऐतिहासिक विकास, उसके आकार और कुछ दूसरे विषयों में सामान्य से अलग ढंग का अनुपम है। शासन प्रबन्ध के लिये लन्दन तीन भागों में बटा हुआ है। ये भाग जनसंख्या व क्षेत्रफल में एक दूसरे से बहुत ही भिन्न हैं और उनका शासन संगठन भी एक दूसरे से भिन्न है। इन तीनों भागों को सिटी आफ लन्दन, काउन्टी आफ लन्दन और लन्दन मेट्रोपोलिटन डिस्ट्रिक्ट कहते हैं।

**सीटी आफ लन्दन**—सिटी आफ लन्दन एक कारपोरेशन है जिसमें नगर के फ्रीमेन (Freemen) हैं। उसका शासन प्रबन्ध लार्ड मेयर और तीन समितियों द्वारा होता है। इन तीनों समितियों को कोर्ट आफ एल्डरमैन, कोर्ट आफ कामन कौंसिल और कोर्ट आफ कामन हाल कहते हैं। कोर्टआफ एल्डरमैन में लार्ड मेयर (Lord Mayor) और २० आजीवन-एल्डरमैन होते हैं। इनके अधिकार नहीं के बराबर हैं। यह शहर के लोगों को सुरक्षित रखती है। काउन्टी कामन कौंसिल सिटी की मुख्य शासन-संस्था है। इसमें २०६ कौंसिलर्स होते हैं जिनका सालाना चुनाव होता है और २६ वही एल्डरमैन होते हैं जो कोर्ट आफ एल्डरमैन में होते हैं। यह संस्था नगर के लिये उप-विधियां (Bye Laws) बनाती है और अग्नि-रक्षा, नालियां, पानी, सार्वजनिक स्वास्थ्य और शहर की रेलों को छोड़ कर सब काम करती है। प्रत्येक सेवा के लिये पृथक् पृथक् समिति बनी हुई है और उसके स्थायी कर्मचारी हैं जिनको कौंसिल नियुक्त करती है। कोर्ट आफ कामन हाल में लार्ड मेयर एल्डरमैन शेरिफ और लन्दन के सब लाइवरीमैन (Liverymen) होते हैं। साल में एक बार इसकी बैठक होती है जब यह अपने दो ज्येष्ठ एल्डरमैनों का नाम कोर्ट आफ एल्डरमैन के पास लार्ड मेयर के पद के लिये प्रस्ताव करके भेजती है। कोर्ट आफ एल्डरमैन इन दोनों में से एक को लार्ड मेयर चुनती है। लार्ड मेयर को कोई स्वतन्त्र अधिकार नहीं मिले हुये हैं। उसका पद अवैतनिक है। वह केवल सम्मानसूचक है। वह नगर के किसी पदाधिकारी की नियुक्ति नहीं करता और न कोई दूसरा कार्यकारी कर्तव्य करता है। वह तीनों कौंसिलों की बैठकों में केवल अध्यक्ष का काम करता है और उत्सवों में नगर का प्रतिनिधित्व करता है।

**काउण्टी आफ लन्दन**—लन्दन की प्रशासन काउण्टी का शासन एक काउण्टी कौंसिल करती है जिसमें १२४ निर्वाचित सदस्य व २० एल्डरमैन होते हैं। कौंसिल के सदस्य तीन वर्ष के लिये चुने जाते हैं और चुने जाने के बाद वे अपने में से या बाहर से एल्डरमैन चुनते हैं जो ६ वर्ष तक अपने पद पर बने रहते हैं, केवल प्रति तीन वर्ष बाद उन में से आधे हट जाते हैं। कौंसिल के निर्वाचित सदस्य

और एल्डरमैन मिल कर अपने में से या बाहर से किसी व्यक्ति को सभापति चुनते हैं। कौंसिलमें और एल्डरमैनों को समान अधिकार मिले होते हैं केवल शिष्टाचार की दृष्टि से ही उनमें भेद होता हैं। कौंसिल में तीन दल हैं म्युनिसिपल रिफौर्म्स (Municipal Reforms), प्रोग्रेसिव्ज (Progressives) और लेबर (Labour)। कौंसिल स्वयं शासनाधिकारिणी संस्था है और स्वयं अपने कर्मचारियों को नियुक्त करती है। कौंसिल का अधिक समय सामान्य शासन सिद्धान्तों को निश्चित करने में ही व्यतीत हो जाता है। उनको कार्यान्वित करने का भार समितियों पर छोड दिया जाता है। इसके लिये १८ स्थायी समितियां बनी हुई हैं और एक कार्यकारिणी समिति भी है। इस कार्यकारिणी समिति में १८ स्थायी समितियों के सभापति रहते हैं। इन समितियों के सभापति व उपसभापतियों को कौंसिल चुनती है। अधिकतर समितियां अपनी उपसमितियां बना देती हैं जिनमें से कुछ को शासन सम्बन्धी अन्तिम निर्णय करने का अधिकार भी रहता है। ये समितियां केवल परामर्श देने वाली संस्थायें हैं, उनको ऋण आदि लेने का अधिकार नहीं होता। कौंसिल का कार्यक्रम पार्लियामेण्टरी ढग पर चलता है।

**लन्दन काउन्टी कौंसिल के कर्तव्य**—काउन्टी कौंसिल के अधिकार में राजधानी सम्बन्धी सब सडकें रहती हैं। नालियों व कूडे आदि का प्रबन्ध भी इसी के हाथ में रहता है। सुरंगा नाव के पुलों व दूसरे पुलों, अग्नि-रक्षा, सफाई, सार्वजनिक स्वास्थ्य गृह-निर्माण, म्यूनिसिपल-गृह, शिक्षा, मनोविनोद के उद्यान, मेले आदि का प्रबन्ध भी ये कौंसिल ही करती है। यह ट्रामवे चलाती है, पर मोटरों और भूमि के नीचे चलने वाली रेल गाडियों पर इसका आधिपत्य नहीं है। अपने सब कामों में यह बिलकुल तत्रहीन नही रहती क्योंकि सरकार का इस पर नियंत्रण रहता है। फिर भी इसने बडे बडे काम किये हैं और लन्दन के शासन सम्बन्धी कई कानूनों के बनने में इसने बडी सहायता दी है।

**लन्दन मैट्रोपोलिटन बरो**—सन् १८९९ के लन्दन गवर्नमेण्ट ऐक्ट के अनुसार लन्दन को २८ मैट्रोपोलिटन बरो में बांट दिया गया है। प्रत्येक बरो में एक कौंसिल है जिसमें मेयर एल्डरमैन और दूसरे सदस्य होते हैं। दूसरे बरो-कौंसिलों की अपेक्षा इनके अधिकार अधिक सीमित हैं। कौंसिल मुख्य मुख्य सडकों को बनवाती हैं व उनकी सफाई मरम्मत व उन पर प्रकाश आदि का प्रबन्ध भी कराती हैं। सार्वजनिक स्नानगृहों, वाचनालयों श्रमिकों के रहने के मकानों और स्थानीय समाधिक्षेत्रों का भार इसी के ऊपर रहता है।

इन तीन शासन संस्थाओं के अतिरिक्त कई स्वतन्त्र बोर्ड भी हैं जैसे पानी-बोर्ड, मैट्रोपोलिटन आश्रम बोर्ड आदि। जिस शासन में इतनी पृथक् पृथक्

स्वतन्त्र संस्थायें हों यह स्वभावतः सन्तोषजनक नहीं हो सकता। इसको अधिक उत्तम बनाने के लिये सारे संगठन को अधिक सीधा-सादा बनाने की आवश्यकता है। लन्दन का शासन, प्रशासन-काउण्टी के शासन से कहीं अधिक विशाल हो गया है इसलिये ग्रेटर लन्दन (Greater London) शासनसंस्थाओं का एक गोरखधन्धा बन गया है जिसको समझने में राजधानी में शासन के अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को बड़ी असुविधा पड़ती है।

संक्षेप में इंगलैण्ड में वर्तमान स्थानीय शासन एक लम्बे क्रमिक विकास के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है। एंग्लो-सैक्सन काल से अब तक यह विकास इतना आकस्मिक ढंग से हुआ है कि बहुत सी अनोखी समय-भ्रमकारक बातें पाई जाती हैं। इन स्थानीय संस्थाओं में अब भी इतनी स्वतन्त्रता पाई जाती है कि लोग अपने मत व असुविधाओं को खुल कर प्रकट कर सकते हैं। इन संस्थाओं पर केन्द्रीय नियंत्रण न कठोर है और न बहुत ढीला। लन्दन का शासन संगठन इंगलैण्ड में ही नहीं वरन् संसार में अनुपम है। कुछ समय से समाजवादी प्रवृत्ति के कारण स्थानीय शासन संगठन में सुधार करने की माग की जाने लगी है। इंगलैण्ड में स्थानीय जीवन का स्तर इतना नीचा हो गया है कि इसके बड़े उत्साही समर्थक भी इसकी टीका टिप्पणी करने लगे हैं और इस शासन की खुले ढंग से बुराई करते हैं।

## पाठ्य पुस्तकें

Bagehot, W —The English Constitution
Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government (Portion dealing with Local Government in Great Britain)
Harris, G Montagu—Municipal self government in Britain (1939 Ed)
Harris, P A —London and its Government (1933)
Laski, H J —A Century of Municipal Progress (1935)
Lowell, A L —Government of England
Maud, J P R —Local Government in England (1932)
Muir, Ramsay—How Britain is Governed (Constable London) Ch on Local Government
Munro, W B —Government of Europe (1930) (Macmillan), pp 316—335
Munro, W B —Governments of European Cities (Macmillan) Chs on Local Government
Ogg, F A—Governments of Europe (Macmillan) Chs on Local Government
Robson R A —The Development of Local Government (1931)
Sidney Low—Government of England (Chs on Local Government)

# ग्यारहवाँ अध्याय

## डोमिनियन स्टेटस

## (Dominion Status)

"वह समाज जिसमें थोडी सी भी राष्ट्रीयता की भावना वर्तमान है दूसरे राष्ट्र की आधीनता में सम्भवत. अधिक हठी और अपने कार्यों के लिये कम जिम्मेदार सिद्ध होगा, उस स्थिति की अपेक्षा जब कि अपनी समस्याओं के सुलझाने का भार पूर्णरूप से उस ही के ऊपर हो।" (राइट ऑनरेबिल जे० जी० लैथम)

"आप कुछ भी कहे पर स्वराज्य सब प्रकार से सब से उत्तम है। विदेशी सरकार पूर्णतया धार्मिक पक्षपात से रहित हो, देशी व विदेशी व्यक्तियों के प्रति समान व्यवहार करती हों, प्रजा के लिये माता पिता के समान दयालु, हितैषी और न्यायप्रिय हो पर फिर भी वह उसको पूर्णरूप से सुखी नही बना सकती।" (स्वामी दयानन्द)

**ब्रिटिश साम्राज्य**—क्षेत्रफल, जनसख्या, निवासियों की भाषा, रीति-रिवाज, रहन सहन, आर्थिक व सास्कृतिक विभिन्नता आदि को दृष्टि में रखते हुये ब्रिटिश साम्राज्य समार के राजनैतिक इतिहास में सब से आश्चर्यजनक घटना है। इसका क्षेत्रफल १,३२,६०,००० वर्गमील है जो कुल स्थलभूमि का पाचवा भाग है। इसकी जनसख्या ४८७० लाख है जो ससार की जन सख्या का पाचवा भाग है। ब्रिटिश साम्राज्य का आधुनिक नाम ब्रिटिश कामनवैल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of Nations) हो गया है। इस कौमनवैल्थ अर्थात् राष्ट्रमण्डल के अन्तर्गत ये देश है (१) यूनाइटेड किंगडम आफ ब्रिटेन और उत्तरी आयरलैण्ड (२) स्वायत्त शासन करने वाले उपराष्ट्र (Dominion) जैसे, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड दक्षिणी अफ्रीका, आइर (दक्षिणी आयरलैण्ड) (३) भारतवर्ष और ब्रह्मा (४) उपनिवेश-साम्राज्य जिसमे क्राउन कौलोनीज़ (Crown Colonies), प्रौटैक्टरेट्स (Protectorates) व मैण्डेटैड प्रदेश (Mandated territories) गिने जाते है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् कामन वैल्थ के आकार प्रकार में बड़ा परिवर्तन हो चुका है। भारतवर्ष को स्वतन्त्रता मिलने

के साथ साथ एक नये उपराष्ट्र (Dominion) का जन्म हुआ जिसे पाकिस्तान कह कर पुकारा जाता है। ब्रह्मा व लंका भी स्वतन्त्र घोषित कर दिये गये हैं। न्यूफाउण्डलैण्ड ने कनाडा में शामिल होने का निश्चय कर लिया है जिससे वह अब कौमनवैल्थ का पृथक् सदस्य न रह कर कनाडा का ही एक प्रान्त बन जायगा। आइर (Eire) अर्थात् दक्षिणी आयरलैण्ड ने अपने आपको लोकतन्त्र-गण राज्य (Republic) घोषित कर कौमनवैल्थ से पृथक् रहने का निश्चय कर लिया है। भारतवर्ष ने भी अपने आपको लोकतन्त्र गणराज्य के रूप में सगठित करने की इच्छा घोषित कर दी है। साम्राज्य के पूर्व-सदस्यों को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात् कौमनवैल्थ की रचना में जो परिवर्तन हुये उन पर विचार करने के लिये अप्रैल सन् १९४९ ई० में लन्दन में कामनवैल्थ के प्रधानमन्त्रियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में प्रमुखतः इस प्रश्न पर विचार हुआ कि भारतवर्ष को गण राज्य के रूप में रह कर कामनवैल्थ में स्थान मिल सकता है या नहीं। सम्मेलन के अन्त में २६ अप्रैल को जो घोषणा की गई उसके अनुसार उसमें यह कहा गया कि इंगलैण्ड का राजा (Crown) कामनवैल्थ में स्वेच्छा से रहने वाले राष्ट्रों के ससर्ग भर का प्रतीक है। इस घोषणा से कामनवैल्थ के बधन को बहुत अधिक ढीला और व्यापक बना दिया जिससे इसमें उन राष्ट्रों को भी रहने की सुविधा प्रदान कर दी गई जो लोकतन्त्र राष्ट्र के रूप में रहना चाहते हैं और ब्रिटेन के राजा की सत्ता स्वीकार करना नहीं चाहते।

ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सगठन ऐसा अपूर्व है कि उसको राजनीति शास्त्र के किसी पूर्व परिचित नाम से नहीं पुकारा जा सकता। 'न यह राष्ट्र है न सघ शासन। इसका कोई लिखित शासन विधान नहीं न कोई पार्लियामेण्ट, न कोई निजी सामूहिक सरकार, न निजी सरक्षक सेना या कार्यकारिणी सत्ता। इसकी उत्पत्ति ऐतिहासिक घटनाओं और क्रमिक विकास के फलस्वरूप हुई है न कि किसी पूर्व निश्चित रचना शैली के अनुसार। अब भी इसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध का विकास क्रम बराबर चल रहा है।

**साम्राज्य की स्थापना के आधारभूत अभिप्राय**—अंग्रेजों ने पिछली तीन शताब्दियों में अनेक अभिप्रायों की सिद्धि के लिये इस साम्राज्य की स्थापना की थी। सक्षेप में हम इन्हें व्यापार-वृद्धि बढ़ती हुई जन-सख्या के लिये स्थान अपराधियों को दूर बसाने के लिये स्थान और जलवायु तथा स्थल सेनाओं को रखने के लिये सामरिक स्थान प्राप्त करना ही कह सकते हैं। इस लम्बे समय में ब्रिटिश उपनिवेश नीति में कई परिवर्तन हुये।

**समुद्रपार स्तिथि साम्राज्य से इगलैंड को लाभ**--इगलैण्ड को अपने समुद्रपार साम्राज्य से वडा महत्व व आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ। प्रथम लाभ यह था कि उपनिवेशो मे कर के रूप में इगलैण्ड को बहुत सा धन मिलता था। प्रारम्भ मे ब्रिटेन ने उपनिवेशो पर कर न लगाया था पर बाद में क्राति के फलस्वरूप जो युद्ध हुये उनमे ब्रिटेन की आर्थिक अवस्था ऐसी गिर गई कि उसे उत्तरी अमरीका के उपनिवेशो पर कर लगाना पडा। इस का परिणाम यह हुआ कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेश ब्रिटेन का विरोध करने लगे और अन्त में अमरीकन स्वतन्त्रता-युद्ध हुआ जिसमे अमरीका ब्रिटेन के आधिपत्य मे निकल गया। दूसरे इन उपनिवेशो मे ब्रिटेन ने अपनी नाविक व स्थल सेना के अड्डे बना रखे थे, जिससे ब्रिटेन के व्यापार मार्गों की रक्षा होती थी। जिब्राल्टर, माल्टा आदि अब भी ब्रिटिश साम्राज्य के सैनिक अड्डे है। तीसरे, ब्रिटेन को इन उपनिवेशो से व्यापार करने में सुविधा रहती थी। यूरोप के आधुनिक राष्ट्रो को जब यह प्रतीत हुआ कि उपनिवेशो से कर उगाहना सम्भव नही है तो उन्होने उन्हे व्यापार व उद्योग की उन्नति का साधन बनाने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये कई प्रकार की चाले चली गईं। आधीन उपनिवेशो से, स्वामी-राष्ट्र ने दूसरे राष्ट्रो के जलयानो के व्यापार करने पर रोक लगा दी। उपनिवेशो पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि वे स्वामी-राष्ट्र से ही व्यापार कर सकते है ससार के और किसी देश से नही कर सकते। औपनिवेशिक एकाधिकार की नीति का जिस कडाई के साथ स्पेन ने पालन किया उतना दूसरे किसी यूरोपियन राष्ट्र ने नही किया पर फिर भी ब्रिटेन की नीति अधिक उन्नत नही थी। ब्राइन एडवर्ड ने अपनी 'वैस्ट इण्डीज का इतिहास नामक पुस्तक में लिखा है कि यूरोप के सब सामुद्रिक राष्ट्रो (जिसमें इगलैण्ड भी शामिल है) की औपनिवेशिक नीति का मूलमन्त्र व्यापारिक एकाधिकार था। यह एकाधिकार बडा व्यापक था। इसके अन्तर्गत उपनिवेश को सब प्रकार की वस्तुओ को देना उनके कच्चे माल को खरीदना और उससे पक्के माल का बनाना आदि सब बाते आती थी। उपनिवेशो के निवासी अपनी आवश्यकता की वस्तुओ को दूसरे देशो से न मगा सकते थे, उन्हे अपनी मुख्य उपज स्वामी-राष्ट्र को ही बेचनी पडती थी और उन्हे पक्का माल बनाने का अधिकार न था, केवल स्वामी-राष्ट्र ही उनके कच्चे माल को अपने कारखानों में पक्का करके उससे लाभ उठा सकता था। यह अन्तिम नीति इतनी कडाई के साथ बरती गई कि अर्ल चैथम को पार्लियामेण्ट में एक बार यह शिकायत करने पर बाध्य होना पडा कि उत्तरी अमरीका के उपनिवेशो के निवासियो को

घोड़े की नाल में लगने वाली कील भी बनाने का अधिकार नहीं है। इन उपनिवेशों से एक लाभ यह भी था कि स्वामी-राष्ट्र की बढ़ती हुई आवश्यकता से अधिक जन-संख्या को बाहर जाकर बसने का अवसर व सुविधा मिले। इन उपनिवेशों से यह भी सुविधा थी कि स्वामी-राष्ट्र के अपराधी इनमें भेज दिये जाते थे। इंगलैण्ड अपने अपराधियों को आस्ट्रेलिया भेजा करता था। इन सब लाभों के अतिरिक्त साम्राज्य से गौरव की प्राप्ति भी होती थी।

परन्तु यह नीति जिससे उपनिवेशों को इंगलैण्ड के स्वार्थ-साधन का ही क्षेत्र माना जाता था न कि उपनिवेश के निवासियों का कल्याण-साधन, बहुत दिन न चली। इस नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ। उपनिवेशों की प्राकृतिक समृद्धि का जो उपयोग हुआ उससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधरने लगी और सामाजिक विकास भी हुआ। उपनिवेशों के निवासी स्वामी-राष्ट्र के अनुचित हस्तक्षेप का विरोध करने लगे। सब से बड़ी झगड़े की जड़ उपनिवेश-निवासियों की यह माग थी जिससे वे अपनी मातृभूमि इंगलैण्ड की लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं को अपने यहा स्थापित करना चाहते थे और इंगलैण्ड इस माग का विरोध करता था। जार्ज तृतीय के मन्त्रिया ने उपनिवेशों पर पालियामेण्ट का प्रभुत्व सुरक्षित रखने की चिन्ता में अमरीका के १३ उपनिवेशों पर नये कर लगाये जिससे उपनिवेश-निवासियों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता पर किये गये इस आघात का विरोध किया और "बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं" इस ब्रिटिश प्रजातन्त्र के प्रथम सिद्धान्त की दुहाई देना आरम्भ किया। ब्रिटिश पालियामेण्ट में दूरदर्शी राजनीतिज्ञ मौजूद थे जिनका उपनिवेशों पर बिना उन्हें प्रतिनिधित्व दिये कर लगाने की बुराइयों का आभास मिल चुका था। उदाहरणार्थ लार्ड कैमडन (Lord Camden) ने इस विषय पर बोलते हुये पालियामेण्ट में कहा था.... "किसी मनुष्य की वस्तु पूर्णतया उस ही की है, दूसरे किसी मनुष्य को उस वस्तु को उससे बिना उसकी सम्मति के लेने का अधिकार नहीं है, वह सम्मति चाहे स्पष्ट हो या अस्पष्ट। जो कोई भी ऐसा करने का प्रयत्न करता है वह हानि पहुचाता है, जो कोई ऐसा करता है वह डाका डालता है, वह स्वाधीनता व पराधीनता के भेद को फेंक कर चूर चूर करता है। कर लगाना और प्रतिनिधित्व देना इस शासन विधान के लिये अत्यावश्यक है और विधान के साथ ही साथ उसका जन्म भी हुआ है। माई लार्डस्, मैं चुनौती देता हू कि मुझे कोई भी ऐसा समय बतलावे जब पालियामेण्ट ने किसी व्यक्ति पर बिना

उस व्यक्ति या पार्लियामेण्ट में प्रतिनिधित्व हुये कर लगाया हो।"※ आठ वर्ष बाद हाउस आफ कामन्स में एक प्रस्ताव रखा गया जिससे विरोधी पक्ष ने अमरीकन चाय कर ऐक्ट को रद्द करना चाहा। यह प्रस्ताव बहुमत से गिर गया और पास न हो सका। एडमण्ड बर्क ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुये सरकार की नीति की इन शब्दों में कटु आलोचना की "महोदय दूसरी ओर बैठ हुये महानुभाव अपनी योग्यता को सामने लायें और उनमें से जो सबसे अधिक कुशल व्यक्ति हो, खड़ा होकर मुझे बतलाये कि अमरीकनों के पास स्वतन्त्रता का कौनसा चिन्ह है और परतन्त्रता का कौनसा कलंक उस पर नहीं है, यदि व्यापार पर जितनी भी रुकावटें हो सकती हैं उनको लगा कर उन उद्योगशील निर्धनों को बाध कर रखा जाय और साथ साथ बिना उनको प्रतिनिधित्व दिये आपकी स्वेच्छा से लादे हुये करों का ढोने वाला टट्टू भी बनाया जाय।........अमरीका में बसने वाला अंगरेज यह समझेगा कि यह दासता है, यह दासता कानूनी है, ऐसा समझने से उसके मन व मस्तिष्क पर पड़े आघात की क्षतिपूर्ति न होगी।"१ पर उस समय की सरकार ने दूसरी ही नीति को अपनाना ठीक समझा जिससे स्थिति सकटपूर्ण हो गई। अन्ततोगत्वा अमरीकी स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ा जिससे इंगलैण्ड को उन १३ उपनिवेशो से हाथ धोना पड़ा।

**डरहम की रिपोर्ट और औपनिवेशिक नीति में परिवर्तन**—इस महंगे अनुभव ने ब्रिटेन की १९वीं शताब्दी की औपनिवेशिक नीति में बड़ा भारी परिवर्तन कर उसका बिलकुल रूप ही बदल दिया। इस नीति परिवर्तन का सूत्रपात लार्ड डरहम की उस रिपोर्ट से हुआ जो उन्होंने कनाडा की राजनैतिक कठिनाइयो को दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार के सम्मुख उपस्थित की थी। इस महत्वशाली रिपोर्ट के अन्तिम शब्द ये थे. "यदि उस विवेक के विधान में जिससे इस जगत का नियमन होता है, यह लिखा हुआ है कि ये देश सर्वदा ब्रिटिश साम्राज्य के अंग नहीं रहेंगे तो हमें अपने सम्मान की रक्षा के लिये ऐसा कदम उठाना उचित है जिससे जब ये देश हम से अलग हो तो अमरीका महाद्वीप में ये ही ऐसे देश न रह जायें जिनमें अपने शासन भार सभालने की योग्यता न हो।" इस प्रकार

---

※ Speech in the House of Lords; 24th Feb. 1766.
१ " " " 19th April 1774.

लार्ड डरहम ने उपनिवेशों के शासन की उस उत्तम नीति का समर्थन किया जिस से यह उपनिवेश कुछ समय बाद अपना शासन भार स्वयं अपने ऊपर लेने में योग्य हो जाय। सर सी॰ पी॰ लूकस ने इस कथन की आलोचना करते हुये कहा कि "ये शब्द कनाडा व अमरीका के बाहर भी लागू होते हैं। इसमें निहित भावना किसी देश-प्रदेश की सीमा से बंधी हुई नहीं है। यह ब्रिटिश साम्राज्य की जीती जागती शक्ति है।" इन शब्दों में एक अंगरेज ने अपनी जाति वालों को यह सन्देश दिया था कि हमारे लिये सब से आवश्यक बात यह है कि हम अपने पीछे वह वसीयत छोड़ जायें जो सब समय और सब तरह से महान् और उत्तम हो।'* सन् १८४० ई॰ में ब्रिटेन ने कनाडा के लिये ऐसे शासन विधान की व्यवस्था की, जिससे आगे चल कर सन् १८६७ ई॰ में कनाडा में संघ शासन प्रणाली स्थापित की गई और वह एक स्वशासित उपनिवेश बन गया। इस में संशय नहीं कि १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में औपनिवेशिक नीति में बड़ा परिवर्तन हुआ पर फिर भी बहुत से उपनिवेशों की स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ।

**१९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में औपनिवेशिक नीति**—ग्रेट ब्रिटेन के २,०००,००० निवासियों ने बाहर जाकर इन उपनिवेशों को बसाया था और कुछ अंगरेजों को यह विश्वास होने लगा था कि ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति बड़ी दोषपूर्ण है। इस ओर जनता का भी ध्यान आकर्षित होने लगा। यह विश्वास दृढ़ होने लगा कि इन उपनिवेशों की शासन प्रणाली में वे सब दोष हैं जो निरंकुश शासन में हुआ करते हैं इसका कारण यह था कि शासन-सूत्र ऐसे व्यक्तियों के हाथ में था जिनको शासित व्यक्तियों की समृद्धि व सुख में तनिक भी रुचि नहीं थी जो उनसे दूर रहते थे और जिन्हें उनकी दशा का अनुभव न था। इनके ऊपर उन सब बुरी बातों का प्रभाव था जो स्वतन्त्रता और लोक प्रशासन के अभाव में फैल जाया करती हैं। शासन करने वाले व्यक्ति अपनी शासन शक्ति का उस दोषपूर्ण ढंग से उपयोग करते थे जिस प्रकार स्वेच्छाचारी निरंकुश शक्ति का उपयोग दूरस्थित निवासियों पर हुआ करता है। परन्तु १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उपनिवेशों की शासन नीति में सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

---

* Sir C. P. Lucas in his Introduction to Lord Durham's Report.

ग्लैडस्टन जो उदारपक्ष का प्रसिद्ध प्रधानमन्त्री था उसने २६ अप्रैल सन् १८७० को हाउस आफ कामन्स में सरकार की औपनिवेशिक नीति का इन शब्दों में स्पष्टीकरण किया था —

"हमें यूरोपियन देशों द्वारा उनके उपनिवेशों पर लगाई हुई प्रतिबन्धों वाली नीति का अनुभव हो चुका था। पहले का यह अनुभव ही हमारा पथ-प्रदर्शक न था परन्तु हमें बहुत भारी चेतावनी भी मिल चुकी थी विशेषकर कनाडा के सम्बन्ध में। इसलिये हमारे समय के इतिहास में यह एक गौरवपूर्ण अध्याय है कि हमारे राजनीतिज्ञों का, बिना दलबन्दी का विचार किये, यह सतत प्रयत्न रहा है कि ऐसी नीति कार्यान्वित की जाय जिससे जब कभी भी ये उपनिवेश पृथक हो तो उस विपत्ति और कलक से बचाव हो जाय जो हिंसा और रक्त प्रवाह द्वारा पृथक होने पर उत्पन्न होता है। यही नीति अब भी अपनाई जा रही है। यह जैसा समझा जाता है कोई नई नीति नही है किन्तु उन्ही पुराने सिद्धान्तो को फिर से लागू करना है जिनको विभिन्न राजनीति के समर्थक सत्ताधारियो ने स्वीकार कर स्थापित किया है और जो सर्व-सम्मति से मान्य हो चुके है। यही बात उस नीति के बारे में सत्य है जो हमने अपनाई है। इस नीति से मातृभूमि व उपनिवेशो के पारस्परिक सम्बन्ध शिथिल एव कटु न होकर इसके विपरीत ऐसे मैत्रीपूर्ण हो जायगे कि जब कभी पृथक होने का समय आवेगा तो शाति पूर्वक पृथक्करण हो सकता है और साथ ही साथ इस बात का सबसे अधिक अवसर रहता है कि पृथक होने के पश्चात् अनिश्चित काल तक उन उपनिवशो से स्वतन्त्रतापूर्वक सम्बन्ध चलता रहे। इसी आधार पर हमने अपने पूर्वगामियो के समान अपनी औपनिवेशिक नीति को स्थिर किया है। स्वतन्त्रता और स्वेच्छा हमारे पारस्परिक सम्बन्ध के मुख्य चिन्ह हैं और हमारी नीति से यह न समझना चाहिये कि हम छिपे ढग से उपनिवेशो को दूर करने के पूर्वनिश्चित उद्देश्य को पूरा करना चाहते है वरन् यह नीति अद्वितीय न भी हो तब भी वह सबसे उत्तम व सच्चा साधन है जिससे हम उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा कर सकते हैं।"

ब्रिटिश औपनिवेशिक नीति में इस परिवर्तन के हो जाने से ब्रिटेन और उसके समुद्रपार स्थित उपनिवेशो में सहयोग की सम्भावना बढ गई। इसलिए रानी विक्टोरिया की जयन्ती के अवसर पर पहला औपनिवेशिक सम्मेलन बुलाया गया। यह सम्मेलन ब्रिटेन और उपनिवेशो के समान हित वाले मामलो पर विचार करने के लिए बुलाया गया था। सब उपनिवेशो के

प्रतिनिधियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया और इस अवसर पर बहुत सी बातों में ब्रिटिश मन्त्रीमण्डल से बातचीत कर लाभ उठाया। इसके दस वर्ष बाद सन् १८९७ में दूसरा औपनिवेशिक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें कनाडा, न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, न्यूजीलैंड, क्वीन्सलैंड, केप कोलोनी, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, न्यू फाउंडलैंड, टसमानिया, पश्चिमी आस्ट्रेलिया और नैटाल के प्रधानमन्त्री उपस्थित हुए। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य उपनिवेशों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना था न कि किन्हीं ऐसे निर्णयों पर पहुँचना जो उपनिवेशों पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगाते हों और जिन्हें कार्यान्वित करने के लिये वे उपनिवेश इच्छुक न हों। इस विचार-विनिमय का एक परिणाम यह हुआ कि साम्राज्य संघ शासन (Imperial federation) का विचार निश्चित ढंग से ठुकरा दिया गया। परन्तु सुरक्षा, व्यापार व विदेश नीति सम्बन्धी विषयों में पारस्परिक सहयोग के कई अच्छे सुझाव रखे गये।

सन् १९०२ में जब सप्तम एडवर्ड के राजतिलक का उत्सव मनाया गया तब तीसरा सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि सहयोग की भावना को बराबर जाग्रत रखने के लिये एक स्थायी परामर्श देने वाली समिति की स्थापना की जाय। इस समय तक ये उपनिवेश स्वायत्त-शासन की बाल्यावस्था को पार कर चुके थे और ब्रिटिश पार्लियामेंट से प्रदत्त प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं को सफलतापूर्वक चला चुके थे। इसलिये ब्रिटेन को अब इन पूर्ण विकसित उपनिवेशों पर साम्राज्य के भीतर रहने वाले राष्ट्रों से मुकाबिला करना पड़ता था। इस सम्मेलन के पश्चात् सन् १९०७ में एक और सम्मेलन हुआ जो बड़ा महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। इसने इस बात पर जोर दिया कि साम्राज्य की उन्नति जितनी राजनैतिक संगठन पर निर्भर है उतनी ही आर्थिक सहयोग पर भी। साम्राज्य के इतिहास में इस सम्मेलन ने एक नये युग का प्रारम्भ किया क्योंकि इसने अपने आप को इम्पीरियल कान्फ्रेंस अर्थात् साम्राज्य-सम्मेलन के रूप में परिवर्तित कर लिया और स्वायत्त-शासन करने वाले उपनिवेशों को डोमिनियन (Dominion) अर्थात् उपराष्ट्र की उपाधि दे दी जिससे उनके उन्नत पद का समुचित आदर कर दिया गया"* इस सम्मेलन में यह भी निर्णय हुआ कि साम्राज्य सम्मेलन प्रति चार वर्ष बाद हुआ करे। सन् १९११ में द्वितीय-साम्राज्य-सम्मेलन हुआ पर युद्ध के कारण १९१५ में होने वाला सम्मेलन न हो सका।

* कीथ: कान्स्टीट्यूशन, एड्मिनिस्ट्रेशन एण्ड लॉ आफ़ दी एम्पायर, पृ० १०३

सन् १९१७ का साम्राज्य-सम्मेलन—सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पूर्व कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और दक्षिणी अफ्रीका पार्लियामेंट के विभिन्न एक्टो के अनुसार स्वायत्त-शासन वाले उपनिवेश हो चुके थे जिनमें उत्तरदायी सरकारें शासन करती थी। युद्ध मे जिस स्वेच्छानृत अनुराग और भक्ति का इन उपनिवेशो ने प्रदर्शन किया उससे ब्रिटिश राजनीतिज्ञो को उस बुद्धिमानी का पर्याप्त परिचय मिल गया जिसके द्वारा उन्होंने लार्ड डरहम की रिपोर्ट में सुझाई गई उत्तरदायी स्वायत्त शासन देने की नीति को कार्यान्वित किया। सन् १९१७ के सम्मेलन में यह निर्णय हुआ कि इगलैण्ड और उपनिवेशो के बीच यदि शासन विधान सम्बन्धी परिवर्तन हो तो घरेलू मामलो में पूर्ण अधिकार व स्वायत्त-शासन के साथ साथ इस आधार पर आगे बढा जाय कि डोमिनियन इम्पीरियल कामनवेल्थ (Imperial Commonwealth) के स्वतन्त्र देश हैं, इस परिवर्तन से यह भी स्वीकार कर लिया जाना चाहिये कि वैदेशिक नीति और विदेशी सम्बन्धो के बारे में उन्हे भी अपनी राय देने का अधिकार है। इसके साथ साथ ऐसा भी आयोजन होना चाहिये जिससे साम्राज्य के समान हित वाले मामलो मे बराबर पारस्परिक परामर्श सम्भव हो सके और उस परामर्श से फल-स्वरूप ऐसी सम्मिलित कार्यवाही हो सके जिसका निर्णय विभिन्न सरकारें कार्यान्वित करें।

सन् १९२१ में फिर एक सम्मेलन हुआ हालाकि सन् १९१७ व १९१८ की युद्ध परिषद बराबर डोमिनियन प्रधान मन्त्रियो से युद्ध-सम्बन्धी महत्वपूर्ण विषयो पर परामर्श करती रही थी। सन् १९२६ के सम्मेलन ने एक नया कदम उठाया और लार्ड बालफोर की अध्यक्षता में एक समिति की स्थापना की जिसको अन्तर्साम्राज्य सम्बन्धो के बारे में छान बीन करने का काम सौंपा गया। पूर्ण सत्ताधिकारी डोमिनियनो का साम्राज्य में क्या स्थान हो, इस विषय पर समिति ने एक बहुत महत्वपूर्ण निर्णय किया जिसको बालफोर-घोषणा (Balfour Declaration) के नाम से पुकारा जाता है। इस समिति ने उपनिवेशो के पद की यह व्याख्या की —"ये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वतन्त्र समाज हैं जो पद में एक दूसरे के बराबर हैं, अपने घरेलू व वैदेशिक मामलो में किसी प्रकार भी एक दूसरे के अधीन नही है यद्यपि राजमुकुट के प्रति एक समान भक्तिभाव रखने से वे एक दूसरे से मिले हुये है और ब्रिटिश कौमनवेल्थ आफ नेशन्स (British Commonwealth of Nations) अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल के स्वेच्छा से बने हुये सदस्य हैं।' इस समिति ने साथ ही साथ यह मत प्रकट किया कि उस समय (१९२६ में)

जो प्रबन्ध चल रहा था वह इस घोषणा में वर्णित स्थिति के अनुसार न था। कुछ ऐसे प्रतिबन्ध उस समय मौजूद थे जिनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करना था, विशेषकर राजकी उपाधियों और गवर्नर जनरल के पद के सबंध में। इस समिति के सुभाव पर सम्मेलन ने एक समिति बनाने की सिफारिश की जिसमें ब्रिटेन और डोमीनियनों के प्रतिनिधि हों और जो इस प्रश्न पर विचार करे और अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें। तदनुसार लन्दन में सन् १६२८ में एक कान्फ्रेंस डोमिनियनों के कानूनों और व्यापार पोतों से सम्बन्धित कानून (Merchant Shipping Legislation) के कार्यान्वित होने की परीक्षा करने के लिए एकत्रित हुई। उसने अपनी रिपोर्ट तैयार की जो सन् १६३० के साम्राज्य-सम्मेलन में विचारार्थ उपस्थित की गई। इस सम्मेलन ने इस रिपोर्ट में की गई अधिकतर सिफारिशों को स्वीकार कर लिया और यह सुभाव सामने रखा कि पार्लियामेंट समानता के पद को, जो बालफोर-घोषणा में दिया हुआ था, कानून द्वारा अंगीकार करे और उन वैधानिक प्रतिबन्धों को हटावे जिससे डोमिनियन इस पद को प्राप्त कर सकें।

**१६३१ की वैस्टमिंस्टर व्यवस्था (Statute of Westminister of 1931)**—तदनुसार पार्लियामेंट ने वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था स्वीकार की जिस पर राजा ने सम्मति सूचक हस्ताक्षर सन् १६३१ में किये। इस व्यवस्था के पास हो जाने से, जो ब्रिटिश शासन-विधान के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी, उपनिवेश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल (British Commonwealth of Nations) में ग्रेट ब्रिटेन के बराबरी के पद पर स्थित हो गये। यह समानता का पद घरेलू व अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही विषयों में इनको प्राप्त हो गया।

सन् १८६७ के कनाडा के शासन-सम्बन्धी एक्ट (British North America Act) से लेकर सन् १६०६ तक जब दक्षिणी अफ्रीका में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गई बराबर औपनिवेशिक सरकारों के अधिकारों व शक्तियों पर कुछ कानूनी प्रतिबन्ध बने हुये थे। ये प्रतिबन्ध व्यवस्था सम्बन्धी, प्रशासन व न्याय-सम्बन्धी थे। जितने कानून पास होते थे उन पर राजा की स्वीकृति लेना आवश्यक होता था। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधि होता था इसलिये राजा के नाम से डोमिनियन धारासभा द्वारा पास किये कानून पर अपनी स्वीकृति रोक सकता था। दूसरे गवर्नर-जनरल राजा के नाम से डोमिनियन मन्त्रिमण्डल की इच्छा का निरादर कर दिया करता था, इंगलैण्ड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुए कानून के विरुद्ध डोमिनियन पार्लिया

मेंट कोई कानून न बना सकती थी, न डोमिनियन पार्लियामेंट १८६४ ई० के व्यापार-पोत एक्ट (Merchant Shipping Act) के विरुद्ध या कौलोनियल लौज वैलिडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act of 1865) के विरुद्ध कोई कानून बना सकती थी। न्याय-क्षेत्र में यह प्रतिबन्ध था कि डोमिनियन न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति में अपील हो सकती थी। कनाडा की पार्लियामेंट ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट १८६७ (British North America Act 1867) में संशोधन न कर सकती थी, ऐसा करने के लिये ब्रिटिश पार्लियामेंट का मुंह देखना पड़ता था। वेस्टमिन्स्टर की व्यवस्था ने कई महत्वपूर्ण कानूनी परिवर्तन किये - इस व्यवस्था के स्वीकृत हो जाने के पश्चात् किसी भी डोमिनियन पार्लियामेंट के बनाये हुए कानून के लिये १८६५ का कौलोनियल लाज वैलिडिटी एक्ट (Colonial Laws Validity Act) लागू न हो सकता था। न किसी उपनिवेश का कानून इसलिये रद्द समझा जा सकता था क्योंकि वह किसी वर्तमान या भविष्य में बनने वाले इंगलैंड के कानून के विरुद्ध है। डोमिनियन पार्लियामेंट को यह अधिकार भी दे दिया गया कि वह अपने यहां लागू इंगलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुए कानून में यदि चाहे तो संशोधन कर सकती है या उसे रद्द कर सकती हैं। इस व्यवस्था के पश्चात् इंगलैंड की पार्लियामेंट का कोई भी कानून डोमिनियन में लागू न हो सकता था जब तक कि अमुक डोमिनियन ने इसके हेतु प्रार्थना न की हो और अपने यहां उस कानून को लागू करने के लिये सहमत न हो। इस प्रकार वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था (Statute of Westminster) ने उपनिवेशों के व्यवस्थापन कार्य के ऊपर से वे सब प्रतिबन्ध हटा लिये जो कौलोनियल लाज़ वैलिडिटी एक्ट से लगे हुए थे। संक्षेप में इस व्यवस्था ने अपना शासन अपने आप करने वाली डोमिनियनों के पद की व्याख्या कर दी और निश्चित कर दिया कि ये डोमिनियन अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, दक्षिणी आयरलैंड, न्यूज़ीलैंड व न्यूफाउण्डलैंड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल (British Commonwealth of Nations) में ब्रिटेन के बराबरी के पद वाली हैं। सन् १७७३ की उपनिवेश सम्बन्धी नीति और १९३१ की इस वैस्टमिंस्टर व्यवस्था में बड़ा भारी अन्तर हो गया।

**उपनिवेशों में राजा का स्थान**—वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था की प्रस्तावना में यह घोषणा की गई थी कि इंगलैंड का राजमुकुट (Crown) ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के सदस्यों के स्वेच्छाकृत सम्मिलन का परिचायक चिन्ह

हैं और क्योंकि यह सब सदस्य समान राजभक्ति के कारण एक दूसरे से संयुक्त हैं इसलिए राजसिंहासन सम्बन्धी उत्तराधिकार व राजकीय पदवियों आदि के बारे में यदि किसी वर्तमान कानून में परिवर्तन हो तो उस पर इंगलैंड की पार्लियामेंट की सम्मति के साथ साथ डोमिनियनों की पार्लियामेंटों की भी सम्मति ली जाया करे। डोमिनियनों में राजा के स्थान का एक नवीन अर्थ हो गया। वह अब प्रत्येक डोमिनियन का राजा समझा जाने लगा। उदाहरणार्थ कनाडा में जो राजा का अधिकार है वे कनाडा के राजा के रूप में हैं न कि इंगलैंड के राजा के रूप में। इसलिये कनाडा का राजा कनाडा के मन्त्रियों की सलाह से कनाडा के शासन सम्बन्धी मामलों में कार्य करता है। सन् १९३२ में जब राजा ने लन्दन में स्थित कुछ नये दक्षिणी अफ्रीका के सरकारी भवनों का उद्घाटन किया उस समय राजा के पार्श्व में इंगलैंड का गृहमन्त्री न था वरन् दक्षिण अफ्रीका की सरकार का प्रतिनिधि था। इसी प्रकार जब सम्राट् १९३९ में कनाडा गया तो उसने स्वयं सब राजकी कार्य किये। वह कनाडा की पार्लियामेंट में स्वयं उपस्थित हुआ, विधेयकों का प्रवर्तन किया और कनाडा भेजे हुए अमरीकी राजदूत के अधिकार-पत्रों को ग्रहण किया। उसने कनाडा की प्रिवी कौंसिल की बैठक में भाग लिया। यह सब उसने कनाडा के राजा की हैसियत से किया न कि इंगलैंड के राजा की हैसियत से।

उपनिवेशों की बाह्य संज्ञा—वैसे तो सन् १९३१ से पूर्व भी उपनिवेश वैदेशिक मामलों में पूर्ण सत्ताधारी की तरह ही व्यवहार करते थे पर वेस्टमिंस्टर की व्यवस्था से इसको वैध रूप दे दिया गया। उनकी इस स्वतन्त्रता का परिचय उस समय मिला जब वे स्वतन्त्र रूप से लीग आफ नेशन्स (League of Nations) अर्थात् राष्ट्रसंघ की सदस्य हुये और उनको लीग की कौंसिल में निर्वाचित स्थान दिया गया। सन् १९३६ में जब राजत्याग एक्ट पास हुआ तो डोमिनियनों की सम्मति पहिले से ही मन्त्री परिषद ने प्राप्त कर ली थी क्योंकि इस एक्ट से राजतन्त्र में एक महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन किया गया था। जब सन् १९३९ में युद्ध की घोषणा हुई तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की दृष्टि से उपनिवेशों की वैधानिक स्थिति की परीक्षा का समय आया। इंगलैंड ने न कि उपनिवेशों ने ३ सितम्बर सन् १९३९ को युद्ध की घोषणा की। आस्ट्रेलिया ने ५ सितम्बर को घोषणा की। दक्षिणी अफ्रीका में जनरल हर्ट्जोग के मन्त्रिमण्डल ने पार्लियामेंट में तटस्थ रहने का प्रस्ताव उपस्थित किया जो अस्वीकृत होगया। प्रस्ताव के अनुकूल ६७ मत थे और ८० विरुद्ध थे। मन्त्रीमण्डल ने त्याग पत्र

दे दिया और जनरल स्मट्स ने नया मन्त्रीमण्डल बनाया। उसके पश्चात् ६ सितम्बर को दक्षिणी अफ्रीका ने युद्ध की घोषणा की। कनाडा की पार्लियामेंट ने युद्ध में भाग लेने के प्रश्न पर विचार किया और ६ सितम्बर को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा का अनुमोदन किया। आयरलैंड की पार्लियामेंट ने अपनी तटस्थता की घोषणा की। ये सब निर्णय डोमिनियनो ने स्वय किये, ब्रिटेन का इस सम्बन्ध में उनके ऊपर कोई दबाव न डाला गया था।

कई उपनिवेश विदेशो में अपने निजी राजदूत रखते हैं। व्यापारिक तथा दूसरे सम्बन्धित विषयो में उन्होने विदेशी राष्ट्रों से स्वतत्र समझौते किये हैं। कुछ राजनीतिज्ञो का तो यहा तक कहना है कि वैस्टमिस्टर की व्यवस्था से उपनिवेशो को ब्रिटिश राष्ट्र-सगठन से पृथक होने का अधिकार भी प्राप्त हो गया है। दक्षिणी अफ्रीका में इस ओर कुछ बातचीत चली थी पर यह सम्भव नही मालूम होता कि कोई डोमिनियन पृथक होने का निश्चय करेगी और सगठन की सुरक्षा सम्बन्धी सहायता को खोयेगी।

**औपनिवेशिक गवर्नर जनरल**—वैस्टमिस्टर की व्यवस्था पास हो जाने के पश्चात् औपनिवेशिक गवर्नर जनरल के पद का महत्व बढ गया है। वह अब इगलैण्ड के राजा का नही वरन् कनाडा के राजा का प्रतिनिधित्व करता है। गवर्नर जनरल की नियुक्ति राजा द्वारा होती है पर उसके चुनने में उसी डोमिनियन से मन्त्रियो से वह परामर्श लेता है जिसके गवर्नर जनरल को नियुक्त करना हो। सन् १९३० के साम्राज्य सम्मेलन (Imperial Conference) ने उपनिवेशो को यह अधिकार दे दिया था कि वे अपने गवर्नर जनरल का स्वय चुनाव कर लें। इसके बाद ही आस्ट्रेलिया में सर आइजक आइज़क्स (Sir Issac Issacs) व कनाडा म लार्ड बैसबौरो (Lord Bess-borough) आस्ट्रेलिया व कनाडा के मन्त्रियो की सलाह से गवर्नर-जनरल नियुक्त किये गये। औपनिवेशिक गवर्नर-जनरल को अब सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) की मध्यस्थता से छुट्टी नही मिलती, औपनिवेशिक प्रधानमन्त्री ही यह कार्य करता है। इस प्रकार उपनिवेश के राजा का प्रतिनिधित्व करने वाला गवर्नर-जनरल उसी प्रकार केवल वैधानिक अध्यक्ष है जो अपने मन्त्रि-मण्डल की सलाह से कार्य करता है, जैसे इगलैण्ड का राजा ब्रिटिश मन्त्रि-परिषद् की सलाह से काम करता है।

ब्रिटिश शासन पद्धति इतनी लचीली है कि इसके अन्तर्गत महत्वपूर्ण वैधानिक परिवर्तन भी स्थिति के अनुकूल स्थान पा लेते है। १५ अगस्त १९४७ को भारत और पाकिस्तान के दो डोमिनियन भी वैस्टमिस्टर का

व्यवस्था के अनुसार कामनवेल्थ में सम्मिलित हो गये, उधर लंका (Ceylon) ने भी औपनिवेशिक पद प्राप्त कर लिया। परन्तु जब भारत में विधान परिषद् (Constituent Assembly) ने भारत को लोकतन्त्र (Republic) बनाने का निश्चय कर लिया तो अप्रैल १९४९ में लन्दन में उपनिवेशों और इंगलैण्ड के प्रधान मन्त्रियों का एक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन के समाप्त होने पर यह महत्त्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत के लोकतन्त्र (Republic) होने पर भी भारत को कामनवेल्थ (Commonwealth) का पूर्ण सदस्य माना जायगा। केवल ब्रिटिश राजा को कामनवेल्थ के ऐक्य का चिन्ह भारत समझेगा, इससे अधिक नहीं। दिसम्बर १९४९ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून बनाकर घोषित किया कि भारतवासियों को (भारत के प्रजातन्त्र घोषित होने के पश्चात् भी) ब्रिटेन में वे ही अधिकार और स्वत्व प्राप्त रहेंगे जो पहले थे। २६ जनवरी १९५० को भारत, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से लोकतन्त्र बन गया, फिर भी यह कामनवेल्थ का वैसा ही सदस्य है जैसे आस्ट्रेलिया व कनाडा।

## पाठ्य पुस्तकें


Borden, R. L—Canada and the Commonwealth (Oxford 1929)

Dawson, R. M—Constitutional Issues in Canada (Oxford 1933)

Emden, C S—Selected Speeches on the Constitution (Oxford 1919)

Evatt, H V.—The King and his Dominion Governors (Oxford 1936)

Hughes, H—National Sovereignty and Judicial Autonomy in the British Common-wealth (P.S King 1931)

Keith A. B—Letters on Imperial Relations etc. (Macmilllan 1929)

Keith, A. B—Sovereignty of the British Dominions (Macmillan 1935)

Keith, A. B.—Constitutional Law of the British Dominions (macmillan 1938)

Keith, A. B.—The Dominions as Sovereign States (Macmillan 1938)

Palmer, G. E. H.-Consultation and Cooperation in the British Commonwealth (Oxford 1934)

Wheare, K. C—The Statute of Westminster (Oxford 2nd Edition)

# अध्याय १२

## कनाडा का शासन विधान

"संघ शासन की विशेषता यह है कि इससे एक ऐसी शासन पद्धति प्राप्त हो गई जिससे फ्रांसीसी अपना पृथक राष्ट्रीय जीवन सुरक्षित रखते हुये इस योग्य बने रहें कि वे अंगरेज़ों के साथ मिल कर रह सकें और कनाडा की विशेष राष्ट्रीयता में उनके हिस्सेदार बन कर उस राजभक्ति व अनुराग का परिचय दें जो जाति व समूह की सीमा को लाँघ कर सारी डोमिनियन के प्रति दृढ़ हो जावे।"

(अलैग्जैण्डर ब्रैडी)

कनाडा ब्रिटिश साम्राज्य में सबसे पहला उपनिवेश था जिसको उपनिवेश का रूप प्राप्त हुआ और जहां संघ शासन स्थापित हुआ। इसके शासन विधान में इसीलिए कुछ नवीन बातें भी मिलेंगी। इस नवीनता का एक विशेष कारण यह है कि कनाडा में फ्रांसीसी लोगों की संख्या अधिक है। ये लोग क्विबक के प्रान्त में बहुत अधिक संख्या में रहते हैं जिससे वहां इनका बहुमत है।

### शासन विधान का इतिहास

कनाडा के उपनिवेश को फ्रांसीसियों ने ही सन् १६०८ में बसाया था। प्रारम्भ में इसका शासन फ्रांस के एक सूबे की तरह फ्रांस के राजा द्वारा होता था। पर जब यूरोप में फ्रांसीसियों और अंगरेजों में सप्त वर्षीय युद्ध छिड़ा तो कनाडा में इन दोनों जातियों के लोगों में लड़ाई प्रारम्भ हो गई। जनरल वुल्फ ने १७५९ में क्विबक पर आक्रमण किया और उस पर अपना अधिकार कर लिया। एक वर्ष बाद मौंट्रीयल भी अंगरेजों के हाथ आ गया। सन् १७६३ को पैरिस की संधि से फ्रांस ने इंगलैंड के राजा को कनाडा सौंप दिया परन्तु साथ ही साथ यह समझौता भी हुआ कि कनाडा के लोगों को कैथोलिक सम्प्रदाय में रहने की स्वतन्त्रता रहे। इसके पश्चात कनाडा का एक गवर्नर नियुक्त कर दिया गया और उसकी सहायता करने के लिये एक कौंसिल व एक असेम्बली भी बना दी गई। परन्तु इसके बाद अंगरेज एक बड़ी संख्या में कनाडा में आकर बस गये। जिससे राजनैतिक समस्या अधिक पेचीदा हो गई। न बहुसंख्यक फ्रांसीसी शासन

द्धति से सन्तुष्ट थे और न अल्प-सख्यक अंगरेज। सन् १७७४ में ब्रिटिश लियामेंट ने क्विबेक एक्ट (Quebec Act) पास किया जिससे रोमन थलिक सम्प्रदाय के अनुयायियों की बहुत सी शिकायतों को दूर कर दिया या। जब अमरीकी स्वतन्त्रता युद्ध हुआ तो कनाडा की राजनीति में और ी परिवर्तन हुआ क्योंकि अमरीका से बहुत से ब्रिटिश राजभक्ति रखने वाले गरेज कनाडा में आकर बस गये थे। ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १७९१ में र एक शासन-विधान अधिनियम पास किया। इस एक्ट से कनाडा को दो न्तों में विभाजित कर दिया गया, एक ऊपरी कनाडा जिसमें अगरेज बहु-ख्यक निवासी थे और दूसरा निचला कनाडा जिसमें फ़ासीसी बहुसख्या म हते थे। प्रत्येक प्रांत में एक निर्वाचित असेम्बली और पैतृक कौंसिल बनाने ी योजना कर दी गई। गवर्नर को स्वतन्त्र अधिकार दे दिया गया क्योंकि ह बिना धारासभा की अनुमति की प्रतीक्षा किये खर्च के लिये मालगुजारी और सेना-अनुदानो को ले सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कनाडा ी कार्यपालिका (Executive) स्वतन्त्र और अनुत्तरदायी बना दी गई और वह कलोनियल आफिस से निर्देश प्राप्त करती थी जो सहस्रो मील दूर स्थित होने से वास्तविक स्थिति से पूर्ण अनभिज्ञ रहता था। निचले कनाडा में अगरेजो की प्रधानता कौंसिल में थी और फ़ासीसियो की असेम्बली मे। इसलिये ये दोनो सदन एक दूसरे से अधिक अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहते थे। इसके फलस्वरूप प्राय प्रतिनिधिक असेम्बली और अनुत्तरदायी ार्यपालिका में ऐसी मुठभेड हो जाती थी कि कार्यवाही आगे चलने से रुक जाती थी। अगरेज-फ़ासीसी विरोध निचले कनाडा में भयकर रूप धारण करने लगा और फ़ासीसियो के नेता व असेम्बली के निर्वाचित स्पीकर पैपीनो (Papineau) ने विद्रोह खडा कर दिया। यह विद्रोह दबा दिया गया। पैपीनो भाग गया पर असतोष की आग सुलगती रही। ऊपरी कनाडा मे भी असन्तोष था और वहा भी बहुसख्यक अगरेज शासन मे लोकाधिकार प्राप्त करने के लिये आवाज उठा रहे थे।*

लार्ड डरहम की रिपोर्ट—इस जटिल समस्या का सामना करने लिये कनाडा के शासन-विधान का स्थगन कर दिया और लार्ड डरहम को समस्त शासनाधिकारो से सुसज्जित कर कनाडा भेजा। अपनी नियुक्ति से दो वर्ष के भीतर लार्ड डरहम ने सारी स्थिति का अध्ययन किया और उसके पश्चात् ब्रिटिश सरकार को अपनी प्रसिद्ध रिपोर्ट भेजी जिससे ब्रिटिश

---

* शर्मा : फ़ेडरल पालिटी, पृ० ८६

औपनिवेशिक नीति में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ। लार्ड डरहम ने अपनी रिपोर्ट में सेना के बुरे संगठन व अंगरेजों और फ्रांसीसियों में बीस वैमनस्य के कारण न्याय के पथ-भ्रष्ट होने की शिकायत की। रिपोर्ट में यह भी बतलाया गया कि गवर्नर किस प्रकार औपनिवेशिक आफिस ( Colonlal Office ) पर निर्भर रहता था और कार्यपालिका किस प्रकार अनुत्तरदायी और स्वेच्छाचारी थी। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिये रिपोर्ट में यह सुझाव रखा गया कि प्रारम्भ में एक दो गवर्नरी भी हो जायें परन्तु इस उपनिवेश को ऐसी शासन प्रणाली दी जाय जिससे उत्तरदायी सरकार बन सके। लार्ड डरहम को यह आशा थी कि ऐसी उत्तरदायी सरकार बनने से ही अंगरेज और फ्रांसीसी एक दूसरे के विचारों और भावनाओं का आदर करना सीखेंगे।

लार्ड डरहम की रिपोर्ट में दिये हुये सब सुझावों को यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार न किया परन्तु पार्लियामेंट ने सन् १८४० में एक एक्ट पास किया जिससे ऊपरी और निचले कनाडा को फिर से संयुक्त कर दिया। इस एक्ट की प्रस्तावना में यह स्पष्ट था कि उस समय ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो चला था कि दोनों प्रान्तों के मिलाने से कनाडा की राजनैतिक स्थिति सुधर जायगी और शांति स्थापित हो जायगी। लगभग बीस वर्ष तक इस नई व्यवस्था को चालू रखा गया। परन्तु दोनों भागों की जनसंख्या की बनावट में जो भेद और उन दोनों के हितों में जो विभिन्नता थी उससे यह योजना सफल न हो सकी और नई नई समस्यायें खड़ी हो गई। कनाडा के निवासी इससे संतुष्ट न हुये और उनको यह आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि, अमरीका स्थित सब उपनिवेशों को एक संघ-शासन प्रणाली के द्वारा संगठित किया जाय।

क्विबैक का प्रस्ताव व उसके पश्चात्—यातायात के मार्गों के खुलने और पश्चिम की ओर कृषि के बढ़ने से उपनिवेश-निवासी एक दूसरे के अधिक पास आ गये। सन् १८६० में इन सब उपनिवेशों को मिलाने के लिये प्रकट-रूप से आन्दोलन होने लगा। सन् १८६४ में सब बड़े बड़े उपनिवेशों के प्रतिनिधि २४ अक्तूबर के दिन क्विबैक में एकत्रित हुये और उन्होंने मिलकर प्रसिद्ध क्विबैक प्रस्ताव पास किये जिनमें संयुक्त एवं वृहत् कनाडा के संघात्मक शासन विधान के मुख्य मुख्य सिद्धान्तों की रूपरेखा तैयार की गई। मुख्य मुख्य उपनिवेशों के प्रतिनिधि इसके पश्चात् इंगलैंड गये जिससे वे ब्रिटिश सरकार के साथ अपनी शासन विधान सम्बन्धी समस्याओं पर बातचीत कर सकें। इस बातचीत का फल यह हुआ कि पार्लियामेंट ने सन् १८६७

में ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट (British North America Act) पास करके कनाडा के लिए ऐसा शासन विधान बनाया जिससे संघ शासन स्थापित हो। "सन् १८६७ का एक्ट ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति में एक नवीन सिद्धांत का प्रवर्तक था। इससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् ने अमरीकन राज्यक्रांति से एक सबक सीखने में चूक नहीं की। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सम्राट के प्रति निष्ठा रखते हुए भी उपनिवेश ऐसी शासन प्रणाली का विकास कर सकते थे जिसमें उन्हें अपनी आकांक्षायें पूरी करने का पर्याप्त अवसर मिले। कनाडा की संघ-शासन योजना से साम्राज्य के दूसरे उपनिवेशों के लिये भी उदाहरण उपस्थित हो गया और जल्दी ही इसके अनुकूल उन्होंने कार्यवाही की।"

## सन् १८६७ का शासन-विधान

**शासन-विधान के सिद्धान्त**—जैसा पहले कहा जा चुका है १८६७ का ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट सन् १८६४ के प्रसिद्ध क्विबैक-प्रस्तावों के आधार पर बनाया गया था। तीसरा प्रस्ताव इस प्रकार था —"सामान्य शासन के विधान बनाने में यह सम्मेलन मातृभूमि से (इंगलैंड) से सर्वदा के लिये सम्बन्ध स्थापित करने के अभिप्राय को दृष्टि में रखते हुए इन प्रांतों के हितों की साधना के लिये जहाँ तक सम्भव है ब्रिटिश शासन विधान का अनुकरण करना चाहता है।"● उपनिवेशों की इस इच्छा को एक्ट की प्रस्तावना में भी अंतर्निवेश कर दिया गया था। इस प्रकार ब्रिटिश शासन विधान का अनुकरण करने वाला कनाडा का शासन-विधान बहुत-सी ब्रिटिश परम्परागत बातों को भी मानता है। कनाडा के शासन विधान की मुख्य २ विशेषतायें ये हैं —

(१) यह संसदात्मक कार्यपालिका की स्थापना करता है न कि अध्यक्षात्मक की जैसी कि संयुक्त राष्ट्र अमरीका में पाई जाती है।

(२) संघ संसद (Parliament) के दूसरे सदन में वे सीनेटर सदस्य होते हैं जिनको गवर्नर जनरल उनके जीवन भर के लिये नियुक्त करता है। "पार्लियामेंट" शब्द इंगलैंड से ही लिया गया है और सीनेट की आजीवन-सदस्यता से यह प्रयत्न किया गया है कि उसको किसी सीमा तक हाउस आफ लार्ड्स के समान रखा जाय।

(३) संघ सरकार के अधिकार इकाइयों के अधिकारों से अधिक हैं। इन इकाइयों का नाम प्रान्त (Province) रखा गया है न कि —

● फेडरल पौलिटी, पृष्ठ ६०

(State) क्योंकि पहले नाम से यह बोध सा होता है कि वे केन्द्रीय सरकार के आधीन हैं। सब अवशिष्ट अधिकार केन्द्रीय सरकार को सौंपे गये हैं।

(४) ब्रिटिश शासन विधान का जहां तक समय हो अनुकरण किया जाय, इस उद्देश्य से एक्ट में यह व्यवस्था की गई है कि कनाडा की एक प्रिवी कौंसिल बनाई जाय जो ब्रिटिश प्रिवी कौंसिल के समान हो। कनाडा के शासन-विधान की यह विशेषता दूसरे उपनिवेशों के शासन विधान में नहीं पाई जाती।

(५) शासन-विधान का संशोधन सिद्धान्तत ब्रिटिश पार्लियामेंट ही कर सकती है। इस बात में भी यह विधान दूसरे शासन-विधानों से भिन्न है।

(६) कनाडा की न्याय-पालिका के अधिकार भी आस्ट्रेलिया की न्याय-पालिका के अधिकारों से कम हैं हालांकि वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के बाद सिद्धान्त व व्यवहार में बहुत कुछ अन्तर हो गया है।

ब्रिटिश साम्राज्य में कनाडा पहला देश था जिसमें संघ-शासन स्थापित हुआ। इसलिए सन् १८६७ में उत्पन्न होने वाली ब्रिटिश संघ-शासन प्रणाली में कुछ अद्वितीय बातें देखने को मिलती हैं। सबसे प्रथम बात तो यह है कि कि कनाडा ने पार्लियामेंटरी ढंग की सरकार पसंद की। दूसरे, ब्रिटिश सम्राट् कार्य-पालिका का अध्यक्ष रखा गया है। निर्णयकारी शक्ति भी ब्रिटिश सम्राट् और डोमिनियन धारासभा में निहित कर दी गई है।

सन् १८६७ के संघ शासन विधान से क्विबेक प्रान्त के निवासी फ्रांसीसियों को अपना शासन भार स्वयं संभालने का अवसर मिला। परन्तु समय के बीतने से कनाडा के ब्रिटिश और फ्रांसीसी निवासियों के पारस्परिक जातीय भेद बहुत कुछ मिट गये। यहां तक कि निचले कनाडा अर्थात् क्विबेक प्रान्त के निवासी फ्रांसीसी अब अपने आपको फ्रांसीसी न कह कर कनाडा निवासी कहते हैं। जहां तक उनके फ्रांस के नाते की बात है वे १८ वीं शताब्दी के फ्रांस का अपने आपको समझते हैं न कि बीसवीं शताब्दी का। सन् १७८६ की फ्रांस की क्रांति के समय से और विशेषकर उस समय से जब फ्रांस में वर्तमान प्रजातन्त्र स्थापित हुआ, उनके ऊपर फ्रांसीसी राजनैतिक संस्थाओं या विचारों का बहुत कम प्रभाव पड़ा है। इसका कारण यह है कि यद्यपि शिक्षित व्यक्ति अब भी फ्रांसीसी पुस्तकों को पढ़ते हैं परन्तु पिछले चालीस वर्षों से शासन करने वाले प्रजातन्त्रवादियों के पादरी विरोधी रुख ने उनके मन में फ्रांस के प्रति उदासीनता उत्पन्न कर दी है।* यह सच है कि कनाडा की ये

* ब्राइस- मौडर्न डेमोक्रेसीज, प्रथम भाग, पृ० ५२१

दोनों जातियां मिलकर एक नही हुई न यह सम्भव है कि वे मिल जायं फिर भी १८४० के पहले का वैरभाव अब लगभग समाप्त हो चुका है। इस सब का श्रेय १८६७ के शासन विधान को है जिससे उन्हें अलग रहने और साथ साथ एक ही डोमिनियन सरकार में समान हिस्सेदार रहने का अवसर मिला है।

## संघ सरकार

जैसा पहले बतला चुके है संघ सरकार की शक्तियां प्रांतीय सरकार की शक्तियों से अधिक हैं। जितने विस्तृत अधिकार कनाडा में संघ सरकार को मिले हुए हैं, वैसे बहुत कम संघ-शासन-विधान केन्द्रीय सत्ता को देते हैं।[1] विधान के १६ वें अनुच्छेद के अनुसार निम्नलिखित विषयों में संघ सरकार को ही अनन्य रूप से पूर्ण अधिकार प्राप्त है (१) राज्य ऋण और जायदाद (२) व्यापार का नियम (३) किसी भी रीति से कर वसूल कर मुद्रा एकत्रित करना (४) राज्य के मान के आधार पर ऋण उधार लेना (५) डाक सेवायें, (६) जनगणना और सांख्यिकी (Statistics) (७) स्थल व जल सेना व सुरक्षा, (८) कनाडा की सरकार के कर्मचारियों के वेतन निश्चित करना और उसके दिये जाने का प्रबन्ध करना, (९) विपदसूचक संकेतों, आकाश द्वीपों, तैरते हुए निशानों का प्रबन्ध करना, (१०) नौतरण व नौपरिवहन, (११) छूत की बीमारियों वाले पोत से संसर्ग निषेध और नाविक चिकित्सालयों की स्थापना, (१२) सागर तट व देश के भीतर की मछलियां, (१३) किसी प्रांत और दूसरे ब्रिटिश देश या विदेश के बीच या दो प्रांतों के बीच नाव से पार जाने की व्यवस्था, (१४) चलार्थ (Currency) व मुद्रा, (१५) बैंकें और नोटों का निकालना, (१६) सेविंग बैंकें, (१७) भार व माप, (१८) प्रतिज्ञा अर्थ-पत्र व हुंडी, (१९) ब्याज, (२०) ऋण चुकाने की कानूनी वस्तु, (२१) दिवालियापन, (२२) अन्वेषणों के सुरक्षित प्रयोगाधिकार, (२३) प्रतिलिप्याधिकार, (२४) मूल निवासी और उनके लिये सुरक्षित भूमि, (२५) जानपद बनाना और अन्यदेशीय निवासी, (२६) विवाह और तलाक, (२७) केवल दण्ड देने वाले न्यायालयों की स्थापना छोड़ कर परंतु दण्ड-विषयों में कार्य-प्रणाली के निश्चित करने के काम को शामिल कर दण्डविधि, (२८) शोधनालयों की स्थापना व उनकी देखभाल करना, और (२९) वे विषय जो स्पष्टतया प्रान्तों को दिये हुये विषयों में से निकाल कर एक्ट में बतला दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त वे विषय जो उपर्युक्त विषयों के अन्तर्गत आते हों

[1] डौसनः कौन्स्टीट्यूशनल इश्यूज इन कनाडा १९०६–१९३१, पृ० ४११

वे स्थानीय विषयों की उस श्रेणी में नहीं समझे जायेंगे जो प्रान्तों को ही विशेष सौंप दिये गये हैं।*

**प्रान्तों पर संघ-सरकार का नियंत्रण**—संघ सरकार प्रान्तों की सरकारों के ऊपर इस बात से नियंत्रण रखती है कि वही प्रान्तों के गवर्नरों को नियुक्त करती है। यह नियंत्रण गवर्नर जनरल-इन-कौंसिल (Governor-General-in-Council) के द्वारा किया जाता है। गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल गवर्नरों को हटा सकता है और प्रान्तीय धारा सभा द्वारा बनाये हुये कानून को रद्द कर सकता है। अभी तक गवर्नर-जनरल ने केवल दो गवर्नरों को ही उनके पदों से अलग किया है। परन्तु संघ शासन स्थापित होने से तीस वर्ष तक कानूनों के रद्द करने के अधिकार का खुले तौर पर प्रयोग किया गया और उस समय यह समझा जाने लगा कि प्रान्तीय स्थानीय स्वतन्त्रता के लिये यह अधिकार बड़ा घातक है। यद्यपि इस अधिकार में कानूनी ढंग से कोई कमी नहीं आई है परन्तु पिछली शताब्दी के अन्त होने के बाद इसका अधिक प्रयोग नहीं किया गया है। हाल में डोमिनियन सरकार प्रान्तीय सरकारों के ऊपर एक नया नियंत्रण रखने लग गई है जिस नियंत्रण के लिए विधान ने कोई विचार न किया था। डोमीनियन सरकार प्रान्तीय सरकारों की सहायता के लिये अनुदान देती है और ऐसे अनुदान देते समय संघ सरकार प्रान्तीय क्षेत्र वाले विषयों में प्रान्तीय सरकार पर प्रतिबन्ध लगा देती है जिसे प्रान्तीय सरकारें मान लेती हैं क्योंकि ऐसा न करने से उन्हें अनुदान नहीं मिलता और वे नई योजनायें कार्यान्वित नहीं कर सकती।

**संघ विधान मण्डल**—कनाडा में निर्बन्धकारी सत्ता राजा और पार्लियामेंट में निहित है।

संघ (डोमीनियन) विधान मण्डल कनाडा में दो सदनों वाला है और लगभग ब्रिटिश ढंग पर संगठित है। दोनों सदनों में से एक को हाउस आफ कामन्स (House of Commons) कह कर पुकारा जाता है और दूसरे को सीनेट (Senate)। दोनों सदनों को मिलाकर पार्लियामेंट कहा जाता है। पार्लियामेंट की व्यवस्था सम्बन्धी शक्तियों का पहले ही वर्णन किया जा चुका है।

**प्रथम सदन में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त**—सन् १९४७ के प्रतिनिधित्व के एक्ट के अनुसार इस समय कनाडा के हाउस में २५५ प्रतिनिधियों को स्थान दिया गया, जिनमें ८३ ओन्टेरियो के, ७३ क्विबैक के, २० सस्कैचुवान

---

* डॉसन . इश्यूज इन कनाडा . पृ० ४२२

के १६ मैनीटोबा के, १७ एलबर्टा के, १८ ब्रिटिश कोलम्बिया के, नोवास्कोशिया के १३, न्यू ब्रुन्सविक के १०, प्रिंस एडवर्ड द्वीप के ४, और यूकन का १ प्रतिनिधि होता है। अभी हाल ही में १ मार्च १९४९ को यह निश्चय हुआ कि न्यूफाउण्डलैंड द्वीप भी कनाडा में मिलाकर उसका एक प्रान्त बना दिया जाय और इस प्रकार उसके भी आठ प्रतिनिधि हाउस में बैठने लगे हैं जिससे कुल प्रतिनिधियों की संख्या भी बढ़कर २६३ हो गई है। प्रारम्भ में (विधान की ३७ वीं धारा के अनुसार) हाउस के सदस्यों की संख्या १८१ ही रक्खी गयी थी परन्तु ५१ वीं धारा में यह आयोजन कर दिया गया है कि कनाडा की पार्लियामेंट प्रति दस वर्षीय जनगणना के पश्चात् प्रतिनिधियों की संख्या को आगे बतलाये हुये नियमों के अनुसार घटा बढ़ा सकती है। वे नियम ये हैं कि क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या ६५ में कोई परिवर्तन न होगा। दूसरे प्रान्तों में प्रतिनिधि जनसंख्या के उसी अनुपात से होंगे जो अनुपात क्विबैक की जन-संख्या और ६५ में होगा। इस घटती बढ़ती में किसी भी प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या तब तक न घटाई जायेगी जब तक कि जन-संख्या ५ प्रतिशत या उससे अधिक न घटी हो, परन्तु क्विबैक के प्रतिनिधियों की संख्या किसी दशा में भी ६५ से कम न की जायगी। इसका अर्थ यह निकला कि हाउस में प्रतिनिधियों की संख्या मालूम करने के लिये कनाडा की जनसंख्या में उस संख्या से भाग देना पड़ेगा जो हमें क्विबैक की जनसंख्या में ६५ से भाग देने से लब्धि के रूप में प्राप्त होती है। इसको हम अधिक स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार भी बतला सकते हैं—

$$\text{हाउस के सदस्यों की संख्या} = \frac{\text{कनाडा की जन-संख्या}}{\frac{\text{क्विबैक की जन-संख्या}}{६५}}$$

इस प्रकार गणित करने से यह मालूम होता है कि इस समय कनाडा के हाउस में प्रत्येक प्रतिनिधि ३६००० व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। प्रत्येक दशवर्षीय जनगणना में जनगणना की प्राकृतिक वृद्धि से व नये प्रान्तों के संघ शासन में आने से हाउस में प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ती रही है और इस समय यह संख्या २६३ है, सदन की बैठक में गणपूरक संख्या २० है। सदन अपना स्पीकर अर्थात् सभापति स्वयं ही चुनता है। सदन की अवधि पांच वर्ष है परन्तु इसके पहले ही इसका विघटन हो सकता है यदि गवर्नर जनरल प्रधान मन्त्री की इस सम्बन्ध में सलाह मान ले। सदन के निर्णय बहुमत से होते हैं। स्पीकर को मत देने का तभी अधिकार

है जब किसी प्रश्न के अनुकूल व उसके विरोध में बराबर मत हों, अन्यथा नहीं। सदन के प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रौढ़-मताधिकार के आधार पर होता है। सन् १९२० के डोमिनियन एक्ट ( Dominion Act ) के अनुसार प्रत्येक प्रौढ़ पुरुष व स्त्री को मत देने का अधिकार है यदि वह अपने आप को ब्रिटिश जानपद मानता हो और यदि वह कनाडा में दो वर्ष व अपने निर्वाचन क्षेत्र में दो मास से वास करता हो।

**सीनेट का संगठन**—सीनेट या दूसरे सदन में इस समय १०२ सदस्य हैं जो इस प्रकार वितरित हैं, ओन्टेरियो २४, क्विबेक २४, समुद्री प्रान्त २४ ( नोवास्कोशिया १०, न्यू ब्रन्सविक १०, प्रिंस एडवर्ड द्वीप ४ ), चौथा प्रान्त समूह २४ (प्रत्येक में ६) और न्यूफाउण्डलेंड के ६ प्रतिनिधि। कनाडा निवासी सीनेट को ब्रिटिश हाउस आफ लार्ड्स के ढंग पर बनाना चाहते थे परन्तु हाउस आफ लार्ड्स की पैतृक सदस्यता के अभाव में सीनेट के सदस्यों का गवर्नर जनरल उनके जीवन भर के लिये नियुक्त करता है। सीनेट के सदस्यों की नियुक्ति मन्त्रिमण्डल की सिफारिश पर ही की जाती है। इसलिये यदि कोई स्थान रिक्त होता है तो वह उन्हीं व्यक्तियों को मिलता है जिन्होंने पदारूढ़ पार्टी अर्थात् पक्ष की पूर्वकाल में किसी प्रकार सेवा की हो। यही कारण है कि सीनेट को मन्त्रिमण्डल का रिश्वती पद कहा जाता है।

**सीनेट के सदस्य की योग्यतायें**—सीनेट का सदस्य बनने के लिये व्यक्ति में उच्च योग्यतायें होनी चाहियें। ये योग्यतायें विधान की २३ वीं धारा में वर्णित हैं। सीनेट का सदस्य ३० वर्ष की आयु का होना चाहिये। वह या तो जन्म से ही ब्रिटिश जानपद हो या ब्रिटिश पार्लियामेंट या कनाडा की किसी धारा सभा के किसी कानून से जानपद बन गया हो। क्विबेक के प्रतिनिधि को उस निर्वाचन क्षेत्र का निवासी भी होना आवश्यक है जिसके प्रतिनिधित्व के लिए वह नियुक्त हुआ हो।

**गवर्नर-जनरल के मनोनीत सदस्य**—मृत्यु या त्यागपत्र के कारण यदि सीनेट में कोई स्थान रिक्त होता है तो गवर्नर जनरल उस रिक्त स्थान को भरने के लिये कार्यवाही आरम्भ करता है। इसके अतिरिक्त जब दोनों सदनों में ऐसी मुठभेड़ हो जाय कि कार्य सचालन रुक जाय उस समय गवर्नर-जनरल सम्राट की ओर से चार से लेकर ८ तक सीनेट में नये सदस्यों की नियुक्ति कर सकता है जिससे कार्यावरोध की अवस्था मिट जाये और आगे कार्यवाही चल सके। यदि सीनेट का कोई सदस्य जो लगातार सत्रों में अनुपस्थित रहे, यदि वह किसी दूसरी सत्ता के प्रति अपनी निष्ठा रखना आरम्भ

कर दे, यदि वह देशद्रोही या अपराधी हो जाय, यदि वह दिवालिया घोषित हो जाय या यदि वह जायदाद-सम्बन्धी योग्यता रखना बन्द कर दे तो वह सीनेट का सदस्य नहीं रहता।

सीनेट के स्पीकर की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा होती है। सीनेट में गणपूरक संख्या १५ है। स्पीकर को एक मत देने का अधिकार होता है पर यदि किसी प्रश्न पर अनुकूल और विरुद्ध मत बराबर होते हैं तो निर्णय विरोध में समझा जाता है। सीनेट केवल संशोधनार्थ दोहराने वाला सदन है, यह प्रान्तीय हितों की देखभाल करने का काम नहीं करता।

**सीनेट का संगठन और उसकी कार्यपद्धति**—कनाडा की पार्लियामेंट की कार्यप्रणाली के नियम ब्रिटिश पार्लियामेंट के वैसे ही नियमों से बहुत मिलते जुलते हैं। दोनों देशों में प्रथम सदन में ही वास्तव में राजनैतिक संघर्ष चलता है और वहीं मन्त्रिमण्डल के भाग्य का निर्णय होता है। 'कनाडा में हाउस आफ कामन्स ही सबसे अधिक कार्यशील वैधानिक चित्रों का चितेरा है और स्यात् ही कोई ऐसा सत्र होता हो जिसमें राजनीति-शास्त्र की चित्रशाला के लिये कोई नया चित्र न बना हो। कभी गवर्नर जनरल के पद को नया रूप दिया जाता है, दूसरे समय कभी सिविल सर्विस के सुधार के सम्बन्ध में पुराने विचारों पर नया रंग चढ़ा दिया जाता है और कभी साम्राज्य के वैदेशिक सम्बन्धों के बारे में सदस्यों की कल्पना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार चित्रशाला की दीवारें जल्दी भरती जा रही हैं।"* हाउस आफ कामन्स और सीनेट को समान अधिकार हैं परन्तु धन विधेयक हाउस आफ कामन्स में ही प्रारम्भ होते हैं। जब कोई विधेयक दोनों सदनों में स्वीकार हो जाता है तो कानून बनने से पूर्व गवर्नर-जनरल की सम्मति उसे प्राप्त होना आवश्यक है। व्यवहार में यह सम्मति कभी रोकी नहीं जाती और कनाडा की पार्लियामेंट को कनाडा के लिये व्यवस्था करने का पूर्ण अधिकार है।

## संघ-कार्यपालिका

**कार्यपालिका और राजा**—ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट की ९ वीं धारा यह है 'कनाडा की ओर कनाडा में कार्यपालिका सत्ता व अधिकार रानी में निहित बने रहने की घोषणा की जाती है।" जब यह एक्ट पास हुआ था उस समय ब्रिटिश राजा इस सत्ता के उपभोग का अधिकारी समझा गया था। परन्तु जब कनाडा के अन्तर्राष्ट्रीय या यों कहिये कि साम्राज्य-सम्बन्धी पद में

* कांस्टिट्यूशनल इश्यूज़ इन कनाडा, पृ० २३९

परिवर्तन हुआ तो राजा से अभिप्राय सम्राट न समझा जाकर कनाडा का राजा समझा जाने लगा। अमल में सरकार के कार्यकारी विभाग के समान दूसरे सभी विभागों में विधान की विभिन्न धाराओं से प्रचलित वैधानिक-पद्धति का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। इंगलैंड की तरह कनाडा में भी बहुत सी वैधानिक प्रथाएं हैं जिनका अध्ययन किये बिना वास्तविक शासन-पद्धति समझ में नहीं आ सकती।

**कनाडा की प्रिवी कौंसिल**—विधान की ११ वी धारा के अनुसार 'कनाडा की सरकार को सहायता देने व परामर्श देने के लिये एक कौंसिल होगी जिसका 'नाम कनाडा के लिये रानी की प्रिवी कौंसिल' नाम होगा और जो व्यक्ति इस कौंसिल के सदस्य होने जा रहे हों वे समय समय पर गवर्नर जनरल द्वारा चुने जाकर बुलाये जायेंगे और उन्हें प्रिवी कौंसिल के सदस्य बनने की शपथ लेनी पड़ेगी और इस कौंसिल के सदस्य समय समय पर गवर्नर-जनरल द्वारा हटाये जा सकेंगे।" ब्रिटिश शासन-विधान के ढांचे का जितना अनुकरण कनाडा ने प्रिवी कौंसिल की स्थापना करने में किया है उतना किसी और दूसरी बात में नहीं किया। पर कनाडा की प्रिवी कौंसिल न्याय सम्बन्धी कार्य नहीं करती।

**मन्त्रिमण्डल ही वास्तविक कार्यपालिका है**—व्यवहार में गवर्नर-जनरल केवल वैधानिक कार्यकारी अध्यक्ष है, वास्तव मे कार्य करने वाली तो कार्यपालिका समिति है जिसको डोमिनियन कैबिनेट कहते है, जिसमें कनाडा के राजा के मन्त्री सदस्य होते है और प्रधान मन्त्री अध्यक्ष होता है। मन्त्री-परिषद् ( कैबिनेट ) हाउस आफ कामन्स में बहुमत रखने वाले दल के नेताओं को मन्त्री नियुक्त करके बनाई जाती है। जैसे ब्रिटेन में राजा प्रधान मन्त्री की नियुक्ति करता है उसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल कनाडा के प्रधान मन्त्री को नियुक्त करता है। नियुक्त हो जाने के पश्चात् प्रधान मन्त्री अपने मित्रों का चुनाव इस प्रकार करता है कि प्रत्येक प्रान्त का एक प्रतिनिधि मन्त्रिमण्डल में अवश्य हो। हालांकि इस सिद्धान्त का कड़ाई के साथ पालन करने में योग्य व्यक्ति परिषद् मे नहीं आ पाते परन्तु परिषद् को सघात्मक रूप देने से यह पक्का हो जाता है कि परिषद् को सदन के बहुमत का समर्थन प्राप्त होता रहता है। परिषद् हाउस को उत्तरदायी है, इसलिये यदि हाउस इसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या इसकी नीति का समर्थन न करे तो इसे पदत्याग कर देना पड़ता है। परन्तु प्रधान मन्त्री ऐसा होने से पूर्व गवर्नर-जनरल से यह प्रार्थना कर सकता है कि वह सदन का विघटन कर दे और

नया सामान्य निर्वाचन करे जिससे जनता का मत मालूम हो जाय। पहले तो ऐसी प्रार्थनाएँ प्राय अस्वीकार कर दी जाती थी जैसा कि सन् १८५८ व १८६० में किया गया। क्षमादान के विशेषाधिकार का उपयोग करने में भी गवर्नर-जनरल ने प्रधान मन्त्री की सलाह मानने से इन्कार कर दिया था। परन्तु समय के बीतने से सब बातें बदल गई है और अब गवर्नर-जनरल व मन्त्रिपरिषद् के सम्बन्धो में बराबर उन्नति होती चली आ रही है। "ब्रिटेन में जैसे राजा है उसी प्रकार कनाडा में गवर्नर-जनरल सरकार की सब से महत्वशाली मूर्ति है। अपने मूल आदर्श अर्थात् ब्रिटिश सम्राट के समान उसका इतिहास भी निर-कुशता से धीरे धीरे, बिना प्रदर्शन हुये व अनचाहे घटते घटते बिलकुल शक्ति-हीन होने की कहानी से भरा हुआ है,"* इस परिवर्तन से विधान के लेख पर कोई प्रभाव नही पडा क्योकि वह वैसा ही अब भी वर्तमान है जैसा १८६७ में था, केवल शासन-व्यवहार ही उससे प्रभावित हुआ है।" गवर्नर को जो निश्चित अधिकार दिये गये थे या जो शक्तिया रीत्यानुसार उसकी समझी जाती थी वे या तो विधिपूर्वक बदल दी गयी या अधिकतर चुपचाप त्याग दी गयो। पूर्ववर्ती उदाहरण छूटते गये और उनके स्थान पर नये उदाहरणो की सख्या बढने लगी। इन सब के पीछे जो प्रेरक शक्ति थी वह कनाडा निवासियो का यह आग्रह था कि स्वायत्त शासन की अधिकाधिक मात्रा बढे। गवर्नर-जनरल की स्थिति पर इस इच्छा ने दो प्रकार से आघात किया। सरकार पर अधिक प्रजातन्त्रात्मक नियन्त्रण की इच्छा के बलवती होने से उसका महत्व कम होने लगा क्योकि वही सरकार-सगठन की जजीर में केवल सत्रहीन कडी के समान था। दूसरे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विकास के कारण उसके साम्राज्य सम्बन्धी कार्य बहुत कम हो गय'।[1] इस प्रकार वास्तविक कार्यपालिका सत्ता अब एक उत्तरदायी मन्त्रीपरिषद् के हाथ में आगई। यह परिषद् धारा सभा को मार्ग दिखलाती, देश पर शासन करती और दूसरी बातो में वही स्थान ग्रहण किये हुये है, जो ब्रिटेन मे ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त है। गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट अब कनाडा की मन्त्रिपरिषद् की सलाह से करता है जिसके साथ उसे वैधानिक-अध्यक्ष के समान बर्तना पडता है। इस प्रकार वह अब ब्रिटिश सरकार का मातहत कर्मचारी नही रह गया है।

मंत्रिपरिषद् की बनावट—मन्त्रिपरिषद् ही इसलिए कनाडा में वास्तविक शासन करती है। इस मे इस समय १७ मन्त्री है जो इस प्रकार है प्रधान

*डास्न्युरनम इश्यूज इन कनाडा, पृ० ६५

[1] ,, ,, ,, पृ ३६

मंत्री, अर्थ मंत्री, पोस्टमास्टर जनरल, व्यापार मंत्री, सेक्रेटरी आफ स्टेट, सार्वजनिक सुरक्षा व स्वास्थ्य मंत्री, वेतन मंत्री, माल मंत्री, मत्स्य मंत्री, श्रम मंत्री, यातायात मंत्री, कृषि मंत्री और दो अतिरिक्त मंत्री। प्रधान मंत्री को १५००० पौंड प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। दूसरे साधारण मंत्रियों को १०००० पौंड प्रतिवर्ष मिलता है। अतिरिक्त मंत्रियों को जिनके पास कोई शासन विभाग नहीं होता, कोई वेतन नहीं मिलता। मंत्रियों के अतिरिक्त उप-सचिव भी होते हैं। मंत्रिपरिषद् संगठित रूप में कार्य करती है और हाउस में संयुक्त रूप में उत्तरदायी रहती है हालांकि मंत्री व्यक्तिगत जिम्मेदारी से छूटे नहीं रहते। ब्रिटेन की तरह मंत्रिपरिषद् दल प्रणाली के अनुसार कार्य करती है।

सिविल सर्विस—यदि परिषद् सरकार की सामान्य शासन नीति का निर्देश करती है तो उसके कार्यान्वित करने का काम सिविल सर्विस के अफसरों पर छोड़ दिया जाता है। कनाडा में सिविल सर्विस कमिश्नरों की एक स्वतन्त्र संस्था है, वे अपने पद से दोनों सदनों के निर्णय से हटाये जा सकते हैं। उनको परीक्षा सम्बन्धी विस्तृत अधिकार मिले हुए हैं और पदोन्नति देना आदि सब सिद्धान्ततः उन्हीं के हाथों में रहता है हालांकि विभाग के उपाध्यक्ष को अपनी राय देने का अवसर दिया जाता है। यह प्रणाली दोषरहित नहीं कही जा सकती, विशेषकर इसलिये क्योंकि मंत्रिमण्डल को यह सुविधा नहीं रहती कि अयोग्य व्यक्तियों का उनके पद से सरलता से हटा सके। सन् १९१८ से पूर्व सामान्य निर्वाचन के पश्चात् एक बड़ी संख्या में अफसरों को उनके पद से हटाया जाया करता था। अब कमीशन की नियुक्ति के पश्चात् नौकरी की निर्विघ्नता सुरक्षित कर दी गई है।

## कनाडा की न्यायपालिका

जब ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट पास हुआ तो उसके बाद कुछ दिनों तक न्यायपालिका शासन-संगठन की पृथक शाखा न थी जैसा इसे होना चाहिए था। 'न्यायाधीश राजनीति में खुल कर भाग लेते थे और उपनिवेशों के शासन करने वाले गुट्ट के समर्थक रहते थे।' वे कानून बनाने व शासन का संचालन करने में भाग लेते थे। ऐसी स्थिति में स्वभावतः इस प्रणाली में बड़े दोष थे इसलिये जब उत्तरदायी शासन की मांग की गई तो उसमें यह भी कहा गया कि ब्रिटिश ढंग की न्यायपालिका बने। लार्ड डरहम ने भी अपनी रिपोर्ट में यह शिकायत की कि फ्रांसीसी और अंग्रेज बसने वालों के जातीय वैरभाव के कारण न्याय की दुर्गति होती है। "इसी कारण से न्याय का मार्ग रुक जाता है, किसी भी राजनैतिक मुकदमे में ठीक ठीक निर्णय की आशा

नहं की जाती, न्यायालय भी दोनों जातियों के विचार से दो प्रतिकूल दलों में विभाजित हैं जिनमें से किसी से भी प्रतिकूल दल के साधारण व्यक्ति न्याय की आशा नहीं रखते।"⊛ जब लार्ड डरहम ने यह बात लिखी तब से स्थिति बिलकुल बदल गई है। कानून के द्वारा व प्रथा के बल पर न्याय-सम्बन्धी निष्पक्षता व स्वतन्त्रता की परम्परा सुरक्षित व विकसित होती चली आ रही है। इस मामले में भी ब्रिटिश परम्परा ने कनाडा के इतिहास पर बडा प्रभाव डाला है।

इस समय कनाडा में न्यायालयों की चार श्रेणियाँ हैं। सबसे ऊपर कनाडा का सर्वोच्च न्यायालय है जिसके न्यायाधीश को गवर्नर जनरल नियुक्त करता है और वे सद्व्यवहार करते समय तक अपने पदों पर बने रहते है। उनको दोनों सदनों के प्रस्ताव पर ही हटाया जा सकता है। दूसरे न्यायालय को एक्सचेकर (Exchequer) न्यायालय कहते हैं, वह भी केन्द्रीय सरकार के आधीन है। इनके अतिरिक्त प्रान्तों में प्रान्तीय उच्च न्यायालय हैं और उनके नीचे जिले की कचहरियाँ हैं। इन सब न्यायाधीशों की नियुक्ति, वेतन या पदच्युत करने का जहाँ तक सम्बन्ध है केन्द्रीय सरकार के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत है। बचे हुए विषयों में वे प्रान्तीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में है। सीढी के अन्तिम डंड पर छोटे छोटे प्रान्तीय न्यायालय हैं जो पूरी तरह से प्रान्तीय नियन्त्रण में है। सर्वोच्च न्यायालय कनाडा का अन्तिम पुनर्विचारक न्यायालय है परन्तु प्रान्तीय उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध सीधे सम्राट की प्रिवी कौंसिल की न्याय-समिति में अपील हो सकती है। जैसे जैसे कनाडा में राष्ट्रीय भावना जाग्रत होती जाती है इस प्रकार की अपीलों की संख्या कम होती जा रही है। परन्तु यह अधिकार अब भी वर्तमान है और इसके कारण यह लाभ भी हुआ कि प्रिवी कौंसल की न्याय समिति कनाडा में न्याय सम्बन्धी एकरूपता स्थापित करने के योग्य बनी रही है। जब प्रिवी कौंसिल में ये अपीलें सुनी जाती है तो उस समय और न्यायाधीशों के साथ कनाडा का एक न्यायाधीश भी बैठता है।

---

⊛ लार्ड डरहम की रिपोर्ट से

## प्रान्तीय सरकारें

कनाडा में नीचे लिखे प्रान्त हैं—

| प्रान्त | कुल क्षेत्रफल, वर्ग मीलों में, भूमि व जल | सन् १९४१ की जन-संख्या |
|---|---|---|
| प्रिंस एडवर्ड द्वीप | २,१८४ | ९५,०४७ |
| नोवा स्कोशिया | २१,०६८ | ५,७७,९६२ |
| न्यु ब्रन्सविक | २७,९८५ | ४,५७,४०१ |
| क्विबेक | ५,९४,८६० | ३,३३१,८८२ |
| ओन्टैरियो | ४,१२,५८२ | ३७,८७,६५५ |
| मैनीटोबा | २,४६,५१२ | ७,२९,७४४ |
| ब्रिटिश कोलम्बिया | ३,६६,२५५ | ८,१७,८६१ |
| एलबर्टा | २,५५,२८५ | ७,९६,१६९ |
| सस्कैचुवान | २,५१,७०० | ८,९५,९९२ |
| यूकन | २,०७,०७६ | ४,९१४ |
| उत्तर-पश्चिमी प्रदेश (केन्द्रीय नियन्त्रण में) | १ ३०४,०३ | १२,०२८ |
| न्यू फाउंडलैंड | ४२,७३४ | ३,२१,१७१ |
| कुलयोग | ३७,३२,१८४ | १,१८,२७,८२६ |

उनकी शक्तियाँ—प्रान्तीय शासन-विधानों का क्या नया रूप होगा यह सामान्यतया ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट में निश्चित है। इसके अतिरिक्त प्रांतों को विशेष शक्तियां भी दी हुई हैं। एक्ट की ९२ वी धारा के अनुसार प्रांतीय विधान-मंडलों को निम्नलिखित विषयों के अन्तर्गत आने वाले मामलों के सम्बन्ध में कानून बनाने के अनन्य अधिकार हैं।

(१) लैफ्टीनेन्ट गवर्नर के पद को छोड़ कर प्रान्तीय शासन विधान में समय समय पर संशोधन करना।

(२) प्रान्तीय आवश्यकताओं के लिये प्रान्त में प्रत्यक्ष कर लगाना।

(३) प्रान्त की धन सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

(४) प्रान्तीय सरकारी पदों की स्थापना करना और उन पर अफसरों को नियुक्त कर उन्हें वेतन देना।

(५) प्रान्तीय भूमि व उस पर उगे हुये वन व लकडी की देखभाल करना और वेचना।

(६) प्रान्त में बन्दीगृहो की स्थापना करना व उनकी देखभाल करना।

(७) प्रान्त मे अस्पतालो, आश्रमो आदि की स्थापना, प्रबन्ध व देख-भाल रखना।

(८) नगरपालिकायें।

(९) दुकानो, सरायो, भोजनालयो आदि के लाइसेन्स देना जिससे प्रान्तीय, स्थानीय व नागरिक कामो के लिये धन इक्ट्ठा हो सके।

(१०) स्थानीय निर्माण व योजनायें, निम्नलिखित को छोड कर —

(क) जलपोत, रेल, नहर, तार या और दूसरी योजनायें जो प्रान्त के वाहर तक जाती हो या एक प्रान्त को दूसरे प्रान्त से मिलाती हो,

(ख) जलपोत जो किसी ब्रिटिश या अन्य देश के बीच चलते हो,

(ग) वे योजनायें जो यद्यपि प्रान्त में ही स्थित हो पर उनके पूरी होने से पूर्व या वाद जिनको कनाडा की सरकार ने सारे कनाडा या एक से अधिक प्रान्त के हितार्थ घोपित कर दिया हो।

(११) प्रान्तीय लाभ के लिये कम्पनियो को सगठित करना।

(१२) विवाहो को मान्य करना।

(१३) प्रान्त में जायदाद सम्बन्धी व नागरिक सवन्धी अधिकार।

(१४) प्रान्त में न्याय का प्रवन्ध करना और उसके लिये न्यायालयो को स्थापित कर उनका प्रवन्ध करना व उनमें कार्य-प्रणाली को निश्चित करना। ये न्यायालय व्यवहार व अपराध सवन्धी दोनो प्रकार के हो सकते ह।

(१५) इस धारा में गिनाये हुए विपयो के अतर्गत आने वाले मामलो के सम्बन्ध में किसी प्रान्तीय कानून को लागू करने के लिए जुर्माना करके व कारावास करके दण्ड देना।

(१६) सामान्यता वे सव मामले जो प्रान्त में स्थानीय या वैयक्तिक प्रकार के हो।

इन उपर्युक्त दावियो को वर्तने के अतिरिक्त कुछ शर्तों के साथ, जिनसे प्रान्तीय सरकार का अधिकार कम हो जाता है, प्रान्तीय धारा सभा प्रान्त के भीतर शिक्षा सम्बन्धी कानून बना सकती है। नोवास्कोशिया, ओंटेरियो और न्यू ब्रुन्सविक प्रान्तो में केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि

यह जायदाद व व्यावहारिक अधिकारों के संबन्ध में एक समान कानून बना सकती है, प्रान्तीय विधान मण्डल कृषि व विदेशियों के बसाने के संबंध में कानून बना सकती है। इससे यह प्रकट है कि समवर्ती शक्तियों का क्षेत्र बड़ा विस्तृत है।

प्रान्तीय विधान मंडल—प्रत्येक प्रान्त का अपना विधान मण्डल या व्यवस्थापन मण्डल है जिसमें एक या दो सदन और लेफ्टिनेंट गवर्नर होता है। इस विधान मण्डल की रचना व उसकी शक्तियों के संबंध में शासन विधान में विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि वह किसी प्रान्तीय कानून के लिए अपनी अनुमति न दे। ऐसा होने पर उस कानून को लागू नहीं किया जा सकता। केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय अधिनियम को रद्द करने का अधिकार मिलने से प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के बहुत कुछ अधीन हो जाती हैं।

प्रान्तीय अध्यक्ष—प्रान्तीय सरकार का अध्यक्ष लेफ्टिनेंट गवर्नर होता है जिसकी नियुक्ति ब्रिटिश सम्राट नहीं करता वरन् गवर्नर जनरल मन्त्रिपरिषद् की सलाह से करता है। गवर्नर जनरल किसी भी लेफ्टिनेंट गवर्नर को उसके पद से हटा सकता है, जिससे प्रान्त का मान और भी नीची श्रेणी का हो जाता है। प्रान्तीय गवर्नर केवल वैधानिक अध्यक्ष है। वास्तविक शासन शक्ति प्रान्तीय मन्त्रि-परिषद् के हाथ में रहती है जो प्रान्तीय धारा सभा को उत्तरदायी होती है।

प्रत्येक प्रान्त में उच्च जिले के न्यायालय हैं जो कुछ मामलों में, जैसे न्यायाधीशों की नियुक्ति, उनका पद से हटाया जाना व उनका वेतन, केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में रहते हैं। इनके अतिरिक्त छोटे प्रान्तीय न्यायालय हैं जो पूरी तरह से प्रान्तीय सरकार के नियन्त्रण में हैं।

संक्षेप में यह कहना चाहिये कि कनाडा में प्रान्तीय सरकारों की सत्ता इतनी प्रतिबन्धित है जितनी संघात्मक शासन विधान में न होनी चाहिये थी। केन्द्रीय सरकार को विस्तृत व्यवस्थापन अधिकारों के अतिरिक्त अवशिष्ट शक्तियां भी सौंपी हुई हैं। केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय कानूनों को रद्द कर सकती है। यह प्रान्तीय गवर्नरों की नियुक्ति करती है और उन्हें उनके पद से हटा सकती है, यद्यपि कि अभी तक केवल दो बार ही ऐसा हुआ है। प्रान्तीय न्यायपालिका की उच्च श्रेणियों पर भी इसका नियन्त्रण रहता है। आगम के प्राप्त कराने वाले अधिकार दोनों सरकारों में इस प्रकार बांटे गये हैं कि प्रान्तीय सरकार को प्रायः केन्द्रीय सरकार का मुंह देखना पड़ता

है और उसके दिये हुए धन से ही अपनी योजनायें पूरी करनी पडती हैं। सर्वोच्च-न्यायालय के निर्णयो ने तो प्रातीय सरकारो की शक्तियों को और भी अधिक सीमित कर दिया है।

## शासन-विधान का संशोधन

जैसा पहले कहा जा चुका है प्रातो के हितो में विभेद होने के कारण ही कनाडा का शासन विधान संघात्मक बनाया गया था। अंगरेज और फ्रासीसी प्रवासियो के सघर्ष को मिटाने का उद्देश्य ही वह मुख्य कारण था जिससे चार प्रातो को सघीभूत किया गया, दूसरे प्रान्तो के मिलने में यही कारण वर्तमान न था। इसलिये ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट ने न डोमिनियन पार्लियामेंट को न किसी प्रातीय धारा सभा को यह शक्ति दी कि वह शासन विधान में परिवर्तन कर सके। क्योकि डर यह था कि ऐसी शक्ति के उपयोग से किसी प्रात के हितो की हानि करने का प्रयत्न किया जा सकता था। एक्ट में यह निश्चित कर दिया गया है कि ब्रिटिश पार्लियामेंट ही संविधान में संशोधन कर सकती है। सघ में यदि कोई नया प्रात आना चाहे तो कनाडा की पार्लियामेंट इसके लिए प्रार्थना करेगी और ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक्ट से ही इसकी अनुमति मिलेगी। हालाकि संशोधन करने में ब्रिटिश पार्लियामेंट कनाडा की पार्लियामेंट व विभिन्न प्रान्तीय विधानमण्डलो में प्रकट किये गये कनाडा निवासियो के दृष्टिकोण व विचारो का समुचित आदर करती है पर सिद्धान्तत शासन विधान में संशोधन करने का अधिकार डोमिनियन को नही दिया गया है। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था से दूसरी डोमिनियन पार्लियामेण्टो की निर्वन्धकारी सत्ता अधिक विस्तृत कर दी गई है और उन पर पूर्व समय से चले आने वाले कुछ प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं, परन्तु कनाडा के सम्बन्ध में फिर भी कुछ विशेष बन्धन ज्यो के त्यो रखे हैं। व्यवस्था की ७ वी धारा से यह प्रगट हो जायगा कि यद्यपि कनाडा की पार्लियामेण्ट ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के किसी एक्ट के विरुद्ध भी कानून बना सकती है जहा तक उस एक्ट का कनाडा से सम्बन्ध है, परन्तु सन् १८६७ व १९३० के बीच में कनाडा के शासन विधान को निश्चित करने वाले या उसमें संशोधन करने वाले जो एक्ट पास हुए हो उनको बदलने का अधिकार कनाडा की पार्लियामेण्ट को नही दिया गया है। पर आश्चर्य की बात तो यह है कि दूसरे खण्ड मे प्रातीय विधानमण्डलो को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपने अधिकार-क्षेत्र में कोई भी कानून बना सकते हैं चाहे वह ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के किसी कानून के विरुद्ध ही

क्यों न हो। प्रान्तीय विधानमण्डल अपने शासन विधान को बदल सकते हैं केवल लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के पद के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं कर सकते। इससे प्रान्तीय विधानमण्डलों के अधिकार प्रान्तीय क्षेत्र में बढ़ा दिये गये। यद्यपि १८६७ के विधान ने केन्द्रीय पार्लियामेण्ट को अधिक शक्तिशाली बनाया था और अवशिष्ट शक्तियाँ भी उसी को दे दी थी पर वेस्टमिनिस्टर की व्यवस्था ने केन्द्रीय पार्लियामेण्ट को कम अधिकार और प्रान्तीय विधान मण्डलों को अधिक अधिकार दे दिये। बहुत सम्भव है क्विबेक के प्रान्त को सन्तुष्ट करने के लिये ही ऐसा किया हो।

## राजनैतिक पक्ष

जैसा ब्रिटेन में है "कनाडा के लिखित विधान में राजनैतिक पक्षों का कोई विवर्णन नहीं है इसलिये उनका संगठन व कार्यवाहियाँ कानून से अनियंत्रित हैं। कनाडा में संयुक्त-राज्य अमरीका की तरह पक्षों की कार्यवाहियों को कानून से नियन्त्रित करने की आवश्यकता अभी नहीं पड़ी है क्योंकि यद्यपि इन पक्षों में बहुत-सी बुराइयाँ हैं पर वे इतनी कष्टदायक सिद्ध नहीं हुई हैं जितनी संयुक्त-राज्य अमरीका में। फिर भी यह कहना होगा कि ये अनियन्त्रित अनुत्तरदायी अर्धगुप्त संस्थायें ही बहुत सी बातों में वास्तव में शासन करती हैं। सरकार की प्रेरक शक्ति बहुमत वाले पक्ष के संगठन व उसके नेताओं में बसती है। ये लोग ही पिस्टन ( Piston ), कारब्युरेटर ( Carburettor ) और स्पार्क-प्लग ( Spark plug ) ही क्या, सभी कुछ हैं जो सुन्दर मोटर के इंजन के ढक्कन के नीचे ढके रहते हैं और मोटर गाड़ी को चलाते हैं और जिनकी परिचालन क्रिया को वे ही चतुर मिस्त्री समझ सकते हैं जो इस काम में अपना जीवन भर बिता देते हैं।"* इन शब्दों में आचार्य डॉसन ने कनाडा की शासन प्रणाली में पक्षों की महत्ता का वर्णन किया है।

संघ शासन के प्रारम्भिक काल में ही कनाडा के राजनीतिज्ञों ने ब्रिटेन की पक्ष प्रणाली को अपने यहाँ अपना लिया था यहाँ तक कि उनका नाम भी ब्रिटेन की तरह अनुदारदल (Conservative Party) और उदार-दल (Liberal Party) रखा। कनाडा निवासियों को ऐसी पार्लियामेंट्री प्रणाली के अन्तर्गत काम करना पड़ा कि जिसमें निश्चित कार्यक्रम वाले राजनीतिक पक्षों के बनाने की आवश्यकता रही। पर पक्षों के कार्यक्रम में जो बातें रखी गईं वे केवल अनायास ही उसमें स्थान पा गईं। अनुदारपक्ष

---

* कॉन्स्टिट्यूशनल इश्यूज इन कनाडा, पृ० ३५।

सरक्षणवादी हुए और उदारपक्ष ने उसका विरोध किया। कनाडा की पक्ष प्रणाली में ध्यान में रखने वाली बात यह है कि एक ही पक्ष बडे लम्बे समय तक सत्ता का भोग करता रहता है अर्थात् एक ही पक्ष की मन्त्रिपरिषद् बहुत समय तक पदासीन रहती है।

केवल पिछले बीस वर्षों म ही ऐसा हुआ है कि राजनीतिक पक्ष अधिक प्रख्यात हुए हैं, कुछ तो श्रमिक पक्ष के सगठन हो जाने से और कुछ इस कारण से कि कृषक-वर्ग निश्चित उद्देश्यों के साथ एक राजनीतिक सस्था में सगठित हो गया है।

**कृषक पक्ष**—इस पक्ष के प्रारम्भिक उद्देश्य ये थे ससार में स्थायी शाति का प्रयत्न, साम्राज्य के नियन्त्रण का विरोध, कौमनवैल्थ मे बराबरी पर जोर, प्राकृतिक साधन व समृद्धि का विकास, विशेषकर कृषि का विकास, सब वस्तुओ पर लगे हुए करो मे घटती, राज्य की मालगुजारी को उस जमीन पर कर लगा कर बढाना जिसका मूल्य बिना उसमें कुछ किये बढ गया हो, घटता-बढता व्यक्तिगत कर लगाना, पैतृक सम्पत्ति व व्यापार के लाभ पर कर लगाना, केन्द्रीय, प्रांतीय व स्थानीय योजनाओ द्वारा बेकारी को कम करना, कृषि सम्बन्धी सहकारी योजनाय बनाना, युद्ध-समय के निर्वाचन एक्ट को रद्द कर अधिक स्वतन्त्रता देना, उपाधि देना बन्द करना, सीनेट का सुधार करना, आश्रय देना बन्द करना निर्वाचन मे किये हुए खर्च को प्रकाशित करवाना, समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता अनुपाती प्रतिनिधित्व, लोकनिर्णय (Referendum) निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) व प्रत्याहरण (Recall) प्रचलित करना, स्त्रिया को पालियामेंट में निर्वाचन होने का अधिकार देना। इन सब में से कुछ बातें स्वीकृत होकर प्रचलित हो गई हैं फिर भी भविष्य में कृषकपक्ष को बहुत सी बातो के लिए लडना है।

**श्रमिक पक्ष**—यह पक्ष अपने नाम को सार्थक करने के लिये जैसा ससार में और जगह वैसे ही कनाडा में सम्पत्ति अधिकारो को मानव-अधिकारो से गौढ मानता है। इस पक्ष का कहना है कि प्राकृतिक साधनों का राष्ट्रीयकरण किया जाय, उसी प्रकार बडे बडे उद्योगों या बैंकों का भी राष्ट्रीयकरण किया जाय, बेकारो के लिये काम और बेकारी के समय जीवन-यापन के लिये धन मिलना चाहिए युद्ध से लौटे हुए सिपाहियों के जीवन निर्वाह के लिये कुछ व्यवस्था होनी चाहिए, बिना धर्मविभेद, वर्गविभेद आदि के सबको बराबर सामाजिक अधिकार मिलने चाहिए, समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता, बोलने की स्वतन्त्रता, सम्मेलन करने की स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये, प्रवास सम्बन्धी एक्ट

को रद्द कर देना चाहिये, श्रमिकों का संगठित होने का अधिकार रहना चाहिये, ज़मीन की बढ़ी हुई कीमतों पर कर लगाना, थोड़ी आय पर घटाना और जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर से कर हटाना चाहिए। वे अनुपाती-प्रतिनिधि-प्रणाली के समर्थक हैं, सीनेट को तोड़ना चाहते हैं, राष्ट्रीय सेना संगठन के विरुद्ध और जनता की प्रजातन्त्रात्मक लीग स्थापित करने के समर्थक हैं।

**उदारपक्ष व अनुदारपक्ष**—इन दोनों पक्षों के कार्यक्रम अप्रगतिशील हैं। इन दोनों के कार्यक्रमों में बहुत कुछ समानता है पर मतभेद करों के सम्बन्ध में, श्रमिक वर्ग के प्रति नीति के सम्बन्ध में और कुछ दूसरी छोटी बातों में है। वास्तव में इन दोनों पक्षों में मतभेद यही है कि अनुदार पक्ष यह चाहता है कि भारी कर लगा कर देश के उद्योग-धन्धों की रक्षा की जाय और इसके विरुद्ध उदार पक्ष वाले बिना किसी रोक टोक के या कर लगाये माल के आयात-निर्यात के पक्ष में हैं।

पक्षों के नेता अपने पक्षों पर पर्याप्त नियन्त्रण रखते हैं और प्रचलित पार्लियामेंट्री प्रथा के अनुसार चलने का पूरा प्रयत्न करते हैं।

## पाठ्य पुस्तकें

Bordn, R. L.—Canadian Constitutional Studies (Marfleet Lectures Oxford, 1921)

Bautinot, John—Canada (*T. Fisher & Unwin, 1917*)

Bradley, A.G.—Canada (Williams & Norgate London)

Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol. I chs. XXIII-XXVII

Clement, *W. H. P.—The Law of the Canadian Constitution (London)*

Dawson, R. M.—Constitutional Issues in Canada (Oxford 1933)

Durham Lord—Report on the Affairs of British North America

Egerton, H. E—Federation of Unions in the British Empire pp. 17-39 and 121-161

Sharma, B. M.—Federal Polity, chs. II, III, IV (Lucknow 1931)

Keith, A.B—The Constitutional Law of the British Dominions ( Macmillan 1933 )

# अध्याय १३

## आस्ट्रेलिया का संघ-शासन

"प्रस्तावना के प्रारम्भिक शब्दों में यह कहा है कि आस्ट्रेलिया का शासन विधान की इच्छा की नींव पर बनाया गया है! ग्रेट ब्रिटेन व आयरलैंड की पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुए पृष्ठ से इसको कानून का बाना पहिनाया गया है।" *(रिगन और गारन)*

## शासन-विधान का इतिहास

विस्तार व जनसंख्या—आस्ट्रेलिया एक ऐसा द्वीप प्रदेश है जिसको पूर्णतया विदेशियों ने ही आबाद बनाया है। यह सब महाद्वीपों में सब से छोटा है। इसका क्षेत्रफल २,९७४,५८१ वर्गमील और ३० जून सन् १९४७ म इसकी जनसख्या का अनुमान ७,५७९,३५८ था। दूसरी कई बातों में भी यह दूसरे महाद्वीपों से भिन्न है। इसके निवासी अधिकतर अंग-रेज ही हैं। उनकी सख्या ९८ प्रतिशत है। इसमें एक बड़ा मैदान है जो न तो कृषि के लिये अधिक उपजाऊ है न उसमें खनिज पदार्थ आदि ही पाये जाते हैं।

महाद्वीप की खोज और उसमें बाहर के लोगों का बसना—इस महाद्वीप को कैप्टेन कुक, एक अंगरेज नाविक ने खोज निकाला था और सन् १७८८ में न्यू साउथ वेल्ज (New South Wales) का उपनिवेश सब से प्रथम स्थापित हुआ जहा अगरज आकर बसने लगे। समुद्री किनारे के मैदान में ही इन लोगों ने कृषि करना आरम्भ किया पर इनके बाद सोने और चादी की खानों के मिलने से ब्रिटेन से एक बड़ी सख्या में लोग आकर्षित हुए और आकर बसने लगे।

बहुत समय तक तो लोग इसी समुद्र तट के मैदान में ही रहे और तब तक सब बस्तियाँ सिडनी (Sydney) में स्थित एक केन्द्रीय शासन में रहीं। बाद में लोग महाद्वीप के भीतर घुसे और जनसख्या बढने लगी जिससे सन् १८२५ में टसमानिया द्वीप को पृथक करना पडा। कुछ समय के पश्चात् न्यू साउथ वेल्स से विक्टोरिया (Victoria) उपनिवेश भी पृथक

हो गया । जब सन् १८४८ ई० में विक्टोरिया का पृथकीकरण स्वीकृत हुआ । उस समय उपनिवेश मन्त्री अर्ल ग्रे (Earl Grey) ने जो शब्द कहे, वे आस्ट्रेलिया के भविष्य सूचक थे । उन्होने कहा —"स्थानीय मामलो के प्रबन्ध के लिये आयोजन करते समय यह आवश्यक है कि हम उन सब बातो का जो स्थानीय न होकर सब के हितो से सम्बन्ध रखती है, प्रबन्ध करना न भूल जायँ... .....कुछ ऐसे प्रश्न है जो सामूहिक रूप से आस्ट्रेलिया में स्थानीय कहे जा सकते है पर किसी एक उपनिवेश के लिये वे स्थानीय नही कहे जा सकते हालाकि उस सामूहिक हित में सब का हिस्सा हो" ऐसे मामलो को हाथ में लेने के लिये उन्होने यह दिखलाया कि एक केन्द्रीय शासन की आस्ट्रेलिया में आवश्यकता है।

**आस्ट्रेलिया की संस्थायें इंगलैंड से लाई गई**—उपनिवेश-वासी पहले अपने देश मे श्रमिक वर्ग के मध्य व उच्च श्रेणी के लोगो में से थे। इसलिये अपनी मेहनत और साहस से उन्होंने देश की प्राकृतिक समृद्धि का विकास किया । यद्यपि वे ऐसे लोग न थे जो पहले ही से पार्लियामेंट्री शासन-प्रणाली में कुशल हो पर ब्रिटिश परम्परागत भावनाओ व विचारो को अवश्य अपने साथ लाये थे । जब ब्रिटेन ने आस्ट्रेलियन उपनिवेशो को प्रतिनिधिक स्वायत्त शासन वाली सस्थायें प्रदान की तो इन लोगो ने उन्हे अपनी विशेष परिस्थितियो के अनुकूल बनाने के लिये उनमें थोडा परिवर्तन कर दिया जिससे वे ब्रिटिश नमूने से बहुत कुछ फिर भी मिलती रही । न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) विक्टोरिया (Victoria), टस्मानिया (Tasmania) व दक्षिणी आस्ट्रेलिया (South Australia) १८५५-५६ में स्वतन्त्र उपनिवेश बन गये । क्वान्सलैंड सन् १८५६-६० और पश्चिमी आस्ट्रेलिया सन् १८६० ई० में स्वतन्त्र हुये । विविध उपनिवेशो की कौंसिलो ने जो शासन विधान का ढाचा अपने लिये तैयार किया था उसके विशेष लक्षणो का समावेश प्रत्येक उपनिवेश को शासन विधान देने वाले पार्लियामेंट के एक्ट मे कर दिया गया था, जिससे निवासियो को अपने ही ढाचे को सचालित करने का काम करना पडा । ब्राइस ने आस्ट्रेलिया के प्रजातन्त्र का इन शब्दो में वर्णन किया है "आदर्श लोकतन्त्र जैसी कोई वस्तु नही है क्योकि हर एक देश में उसकी प्राकृतिक बनावट व स्थिति तथा परम्परागत सस्थायें उस देश व राष्ट्र के राजनैतिक विकास पर एसा प्रभाव डालती है कि उसकी शासन प्रणाली अपने ढग की अनुपम होती है । परन्तु यदि ऐसे देश व उसकी सरकार को चुना जाय जिसमें हमें यह देखने को

जिस सके कि स्वाधीन निवासी बाहरी प्रभावों से अप्रभावित रह कर अ परम्परा प्राप्त विचारों से प्रवाहित रहते हुए किस मार्ग का अवलम्बन कर आगे बढ़ते हैं, तो वह देश आस्ट्रेलिया होगा। लोकतन्त्र देशों में यह सब नया है। यह उस मार्ग पर सब से तेज व सब से आगे चल चुका है जिस लोकसमूह से अमर्यादित शासन की प्राप्ति होती है। और जगह की अपेक्षा यहां हमें उन प्रवृत्तियों के अध्ययन की अधिक सामग्री मिलेगी जो ऐसे अमर्यादित शासन के नित्यप्रति के व्यवहार में प्रकट हुआ करती हैं।"*

**संघ शासन के विचार का आरम्भ**—हालांकि आस्ट्रेलिया के लोकतंत्र की प्रवृत्ति आरम्भ में एक केन्द्रात्मक (Unitary) बनने की ओर थी क्योंकि प्रत्येक उपनिवेश की पृथक सरकार थी पर कुछ घटनाओं के कारण यह आवश्यकता हुई कि इन उपनिवेशों में इनके भविष्य की रक्षा के हेतु कुछ पारस्परिक सहयोग होना चाहिये। घटनायें ये थी कि जर्मनी ने न्यूगिनी द्वीप पर अधिकार कर लिया, न्यूकैलेडोनिया से फ्रांसीसी अपराधी भाग कर आस्ट्रेलिया में आ गये और फ्रांस ने न्यू हैब्रीडीज द्वीप समूह में अपना शासन चाहा। इन सब बातों ने आस्ट्रेलिया निवासियों को भयभीत बना दिया। इन लोगों के सम्मुख कनाडा का उदाहरण उपस्थित था जहां सन् १८६७ के एक्ट से उपनिवेशों को संघात्मक इकाई में संगठित किया जा चुका था। इसके अतिरिक्त संयुक्त-राज्य अमरीका का भी उदाहरण था। न्यू साउथ वेल्स के फ्री ट्रेड (Free Trade) दल के नेता सर हैनरी पार्क्स ने आस्ट्रेलिया-संघ निर्माण का कार्य पक्की तरह से अपने हाथ में लिया। सन् १८८३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने फैडरल कौंसिल आफ आस्ट्रलेशिया एक्ट (Federal Council of Australasia Act) पास किया जिससे आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों की एक फैडरल कौंसिल (Federal Council) अर्थात् संघ-समिति बना दी गई।

**संघ-समिति के कर्तव्य व शक्तियां**—इस समिति को आस्ट्रेलिया व प्रशांत महासागर के द्वीपसमूहों के बीच सम्बन्धों, अपराधियों के निवेश, आस्ट्रेलिया के सागर में मछली मारना (प्रदेश सीमा के बाहर), उपनिवेश की सीमा के बाहर न्यायालयों की आज्ञा व निर्णयों का कार्यान्वित करना, इन सब बातों में कानून व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया। इस समिति को सुरक्षा, प्रत्याधिकार पेटेन्ट, हुण्डी, विवाह व तलाक, जानपद बनाना और दूसरे मामलों में भी व्युत्पन्न अधिकार था जिसको दो या अधिक उपनिवेश

* मोडर्न डेमोक्रेसीज पुस्तक I, पृ० २८१

इसे सौंपना चाहें। आशा यह थी कि इस एक्ट को कुछ वर्ष तक कार्यान्वित करने से आस्ट्रेलिया-सघ स्थापित करने का मार्ग खुल जायगा। परन्तु इस सघ समिति से वह आशा पूरी नही हुई। न्यूसाउथ वेल्स व दक्षिणी आस्ट्रेलिया की उदासीनता, जिसके कारण उन्होने इस समिति मे भाग न लिया इस असफलता का कारण था ही पर उसके अतिरिक्त और भी कई असफलता के कारण थे। इस समिति में कई दोष थे, इसके सदस्य उपनिवेशो की सरकारो से मनोनीत होते थे, यह समिति न तो सेना भर्ती कर सकती थी न कोई सेना रख सकती थी। यह कानून बना सकती थी पर उनका पालन कराना इसके हाथ में न था। इसकी सदस्यता उपनिवेशो की इच्छा पर छोड दी गई थी।

परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् सन् १८८९ मे मेजर जनरल बीवन एडवर्ड्स (Beven Edwards) की रिपोर्ट प्रकाशित होने से आस्ट्रेलिया-सघ निर्माण करने का फिर प्रयत्न आरम्भ हुआ। बीवन एडवार्ड्स को ब्रिटिश सरकार ने आस्ट्रेलिया की सुरक्षा के सबंध में रिपोर्ट तैयार करने को नियुक्त किया था। इन्होने आस्ट्रेलिया के सब उपनिवेशो के लिये एक सयुक्त सेना बनाने की सिफारिश की थी। सर हैनरी पार्क्स ने फिर सघ सबधी प्रश्न को उठाया और सब उपनिवेशो के प्रधान मत्रियो को एक तार भेजा जिसमें एक सयुक्त सेना के सगठन, उपनिवेशो के मध्य आयात निर्यात करो को कम करने और कुछ मामलो में सब उपनिवेशों में समान कानून होने पर जोर दिया गया। सर हैनरी पार्क्स की प्रार्थना पर उपनिवेशो के मन्त्री मैलबोर्न (Melbourne) में एकत्रित हुये और वहाँ परामर्श करने के पश्चात् सिडनी में एक सम्मेलन किया। इस सम्मेलन की अन्तिम बैठक में कौमनवैल्थ बिल (Commonwealth Bill) का ढाचा तैयार हुआ परन्तु जनता का समर्थन प्राप्त न होने के कारण यह प्रश्न वही ठण्डा हो गया। लोकमत को अनुकूल बनाने के लिये इसके पश्चात् एक फैडरल लीग (Federal League) अर्थात् सघ-समेलन बनाया गया जिसने सारे महाद्वीप में सघ-शासन स्थापित करने के विचार का प्रचार किया। सन् १८९३ मे आस्ट्रेलिया को आर्थिक विपत्ति का सामना करना पडा और वह विपत्ति लाभकर ही सिद्ध हुई क्योंकि उसमे यह पूरी तरह प्रकट हो गया कि जल्दी ही उपनिवेशो के मध्य इस प्रकार के सकटो का सफलतापूर्वक सामना करने के लिए कोई निकट सबध स्थापित होना आवश्यक है। उपनिवेशो के प्रधान मन्त्री इस स्थिति पर परामर्श करने के लिये होबार्ट नगर में एकत्रित हुये (१८९७) और अन्त में उन्होंने

एक अपील निकाली जिसमें उपनिवेशों की सरकारों से प्रार्थना की गई कि वे विधान-सम्मेलन के लिये अपने अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजें। इस प्रार्थना को सब उपनिवेशों ने स्वीकार किया और सम्मेलन एडिलेड नगर में हुआ जिसमें मुख्यता १८९१ के मसविदे के आधार पर एक शासन विधान का ढाचा तैयार किया गया। यह भी निश्चय यहीं हुआ कि इस नये मसविदे को लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किया जाये और यदि प्रत्येक उपनिवेश में कुछ निश्चित कम से कम मत उसके पक्ष में हो तो, उपनिवेश उस मसविदे को मानने को बाध्य समझे जायें। इस लोक निर्णय में यद्यपि बहुमत सब उपनिवेशों में मसविदे के पक्ष मे था पर न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) में कम से कम संख्या ८०,००० मत की प्राप्त न हो सकी क्योंकि कुल ७१,९६५ मत ही उसके पक्ष में प्राप्त हुये। एक बार फिर प्रयत्न किया गया जिसमे न्यू साउथ वेल्स के प्रधान मन्त्री श्री रीड का समर्थन प्राप्त हो। मसविदे में कुछ साधारण संशोधन कर दिये गये। यह संशोधित मसविदा फिर १० जून १८९९ को लोक निर्णय के लिये रखा गया और सब उपनिवेशों में बहुत अधिक मतो से स्वीकार हो गया। इस प्रकार सब उपनिवेशा न एक आस्ट्रेलिया भर की मिली-जुली संघातमक सरकार की स्थापना के विचार का समर्थन किया। अब वह समय आ गया था जब दस वर्ष के इस सारे प्रयत्न को सफलीभूत किया जाय।

उपनिवेशा की सरकार के प्रतिनिधि इगलैंड गये और वहा ब्रिटिश सरकार को इस बात में राजी करने में सफल हुए कि उनके मसविदे को लगभग जैसा का तैसा स्वीकार कर संघ शासन स्थापित करने की उनकी इच्छा को पूरा किया जाय। उपनिवेश मंत्री श्री चेम्बरलन ने १४ मार्च १९०० को पार्लियामेंट में कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया बिल (Commonwealth of Australia Bill) पेश किया। आस्ट्रेलिया के संघ की विशेषता का उन्होंने इस प्रकार वर्णन किया— 'यह विधेयक जो आस्ट्रेलिया के सब से योग्य राजनीतिज्ञो के परिश्रम का फल है, उस महाद्वीप को अगरेजी भाषा बोलने वाले राष्ट्रो की गिनती में आने योग्य बना देगा। अब वह एस महाद्वीपो का ढेर न रहेगा जो एक दूसरे से पृथक और पूर्णतया स्वतंत्र हा जिस अवस्था मे यह कोई भी अस्वीकार न करेगा, आपस की प्रतिस्पर्धा से एक बडी विपत्ति आ सकती थी या कम से कम पारस्परिक विरोध के कारण वे सब निर्बल हो सकते थे।"*
विधेयक में अपनाई गई सपूर्ण आस्ट्रेलिया के लिय केवल एक नीति की विवेचना

* न्यूटन—फडरल एण्ड यूनीफाइड कान्स्टीट्यूशन्स, पृ० ३२१ १२

करने के पश्चात् उन्होने कहा हमे विश्वास है कि यह आस्ट्रेलिया के हित में ही होगी और हमारे लिये यही सबसे बडी बात रही है। परन्तु हम इसे अस्वीकार नही कर सकते कि यह हमारे हित में भी रहेगी। हमको विश्वास है कि उन उपनिवेशो व हमारे बीच जो भविष्य मे सम्बन्ध रहेंगे वे अधिक सीधे सादे हो जायेगे, उनकी आवृत्ति बढ जायेगी और रुकावटें दूर हो जायेंगी, और वे सबध उस समय अधिक मैत्रीपूर्ण होगे जब हम पृथक पृथक छ स्वतत्र सरकारो से परामर्श करने के स्थान पर एक केन्द्रीय सरकार से व्यवहार करेंगे। जो आस्ट्रेलिया के हित में हैं वह सारे ब्रिटिश साम्राज्य के लिये भी हितकारी है।"× विधेयक को स्वीकार करने की आवश्यकता बतलाते हुए उन्होंने कहा "यह विधेयक बिना हम से पूछे तैयार किया गया है। मुख्य मुख्य बातो में अधिकतर इसमें आस्ट्रेलिया के निवासियो की इच्छा का समावेश है········ हम मानते हैं कि अपने मामलों में वे ही सर्वोतम निर्णय कर सकते हैं और हम इस बात से सतुष्ट हैं कि उनके प्रतिनिधियो के विचारो को इन मामलो में सर्वोपरि स्वीकार कर लेना चाहिए और जिस विधेयक को मैं सदन मे रखने जा रहा हू वह ६६ प्रतिशत उन विचारो का ही फल है। मैं समझता हूँ और यह कह सकता हू कि इस विधेयक का अधिकतर भाग ····· वही है जो आस्ट्रेलिया में लोक-निर्णय से स्वीकार हुआ है।"[1] थोडे से परिवर्तनो के साथ ब्रिटिश पार्लियामेट ने उस विधेयक को पास कर "कोमनवैल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट" के नाम से घोषित किया। इसी एक्ट में आस्ट्रेलिया का वर्तमान सघ-शासन विधान दिया हुआ है।

## सन् १६०० का शासन-विधान

इस सविधान के रचने वाले के सम्मुख ससार में प्रचलित तीन सघ-शासन-विधान थे, सयुक्त राज्य अमरीका का स्विट्जरलैंड का व कनाडा का, और अपनी वैधानिक कठिनाइयो पर जीत पाने के लिये उन्होने इन देशों के अनुभव से लाभ उठाया। सयुक्त राज्य अमरीका की तरह, पर कनाडा व स्विट्जरलैंड के विपरीत आस्ट्रेलिया में भाषा, जाति या धर्म विभेदो की समस्या न सुलझानी थी। परिश्रमशील व साहसी लोग होने के कारण उनकी राजनीति में आर्थिक हित को ही सर्वोपरि स्थान प्राप्त था। आस्ट्रेलिया में "श्रमिक वर्ग ने कानून से स्थापित सरकार को अपने हाथ में पहले कर लिया फिर अपनी शासन कुशलता का परिचय दिया। राज्य ने कानून से काम के घटे व मजदूरी

× फेडरल एण्ड यूनिफाइड कॉन्स्टीट्यूशन्स पृ० ३१२

1 " " " पृ० ३१६-३१७

निश्चित कर सारे उद्योग-धन्धों पर अपना प्रभुत्व बढ़ाने का प्रयत्न किया। अन्य देशों के लोगों का बाहुल्य होने से और आदिवासियों की कोई बड़ी समस्या न होने से उन्होंने ऐसे शासन विधान के बनाने में सफलता पाई जो वास्तव में अपनी अच्छाई के कारण 'समय की सब से अर्वाचीन उत्पत्ति" कह कर पुकारा जाता है।

शासन-विधान की प्रस्तावना में कहा गया है कि "न्यू साउथ वेल्स, विक्टोरिया, दक्षिणी आस्ट्रेलिया, क्वीन्सलैंड और टसमानिया ईश्वर की दया का भरोसा रखकर ब्रिटिश ताजतन्त्र के नीचे अविघटनशील संघ शासन में संगठित होने पर सहमत हुये हैं"। इससे प्रकट है कि यद्यपि शासन-विधान पार्लियामेंट के एक्ट से बना है, इसको अपनी सारी शक्ति व अधिकार संघ में आने वाले उपनिवेशों की जनता से ही प्राप्त है। कामनवेल्थ (Commonwealth) की स्थापना की है जिस शब्द से एक ऐसे राज्य संगठन का बोध होता है जो संघ शासन की अपेक्षा अधिक लोकतन्त्रात्मक है। संघ को अविघटनशील घोषित कर दिया गया है जिससे संघ से सम्बन्धविच्छेद कर पृथक होने के प्रश्न को सदा के लिये समाप्त कर दिया है।O पश्चिमी आस्ट्रेलिया संघ शासन में आने को उत्सुक न था इसीलिये एक्ट की प्रस्तावना में इसका नाम नहीं है पर एक्ट में नये सदस्यों के बनने का आयोजन कर दिया गया था (धारा १२१-१२४ देखो)। परन्तु एक्ट के पास हो जाने के पश्चात् पश्चिमी आस्ट्रेलिया में भी संघ शासन में आने के लिये कार्यवाही की गई। यह प्रश्न लोक निर्णय के लिये रखा गया और जनता ने २५,१०६ के बहुमत से संघ में शामिल होने का निर्णय किया। इसके पश्चात् सम्राज्ञी ने १७ सितम्बर १९०१ का दिन संघ-शासन-विधान के कार्यरूप देने का श्रीगणेश करने के लिये निश्चित किया। बीसवीं शताब्दी का यह पहला दिवस था जो आस्ट्रेलिया की राष्ट्रीयता के जन्म के लिये विशेष अर्थपूर्ण व महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसीलिये यह वास्तव में "समय की सब से अर्वाचीन उत्पत्ति" है।

संघ शासन में आने से पूर्व आस्ट्रेलिया के उपनिवेश-राज्य अपने आन्तरिक मामलों में एक दूसरे से स्वतन्त्र थे। वे स्वतन्त्रता को खोने के लिये तैयार न होते थे। इसी लिये शक्ति विभाजन (Division of Powers) में उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका के शासन विधान का अनुकरण किया और केन्द्रीय सरकार को निश्चित शक्तियाँ सौंपी गईं।

आस्ट्रेलिया का शासन विधान आधुनिक विधानों में सबसे अधिक

---

O इसके विपरीत कुछ समय बाद पश्चिमी आस्ट्रेलिया की पृथक होने की माग हुई।

प्रजातन्त्रात्मक है। इसमें जनता को बहुत सी बातों में पर्याप्त अधिकार दिये हुये हैं। उदाहरण के लिये सीनेट के लिये निर्वाचन, लोक निर्णय द्वारा सविधान-सशोधन आदि।

## संघ-सरकार

शासन-विधान से एक केन्द्रीय सघ-सरकार की स्थापना कर उसको निश्चित विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक सत्ता सौप दी गई है। क्योंकि केन्द्रीय सरकार की सृष्टि उपराज्यो ने की है, शेष व अन्तिम शक्तियाँ उपराज्यो ने अपने पास ही रखी है। हालाकि ऐसा करना आस्ट्रेलिया की वैधानिक समस्याओ को सुलझाने के लिये उस समय सर्वोत्तम साधन समझा गया था। परन्तु अनुभव ने सघ-सरकार पर अविश्वास रखने की उसी गलती को दिखला दिया है जो अमरीका में की गई थी। सविधान के कार्य-भूत होने से यह स्पष्ट हो गया "कि साधारण से साधारण मन्तव्य यदि सविधान की लिखावट के पेचीदा व सीमित शब्दो में रखा जाय" तो व्यर्थ हो जाता है। यह बात विशेषतया सविधान से अभिप्रेत उपराज्यो की राज्यकर-विषयक व आर्थिक आधीनता के विषय में सिद्ध हुई।" ○

**संघ सरकार को शक्तियाँ**—सघ सरकार की शक्तियाँ आस्ट्रेलिया में वही है जो कनाडा मे औपनिवेशिक सरकार को दी गई है। निम्नलिखित शक्तियाँ ऐसी है जो कनाडा में सघ सरकार को स्पष्टतया नही सौंपी गई है—

१—वस्तुओ के उत्पादन व निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिये सरकारी सहायता। ऐसी सहायता सब उपराष्ट्रो में एक समान होगी।

२—समुद्रतट-प्रदेश की सीमा से बाहर मछली मारने का अधिकार।

३—सरकारी बीमा।

४—वृद्धावस्था व अशक्त व्यक्तियो को पेंशन।

५—बाहरी मामले।

६—एक उपराज्य की सीमा से बाहर तक फैले हुये औद्योगिक झगडो को निपटाने व रोकने के लिये पचफैसला या राजीनामा आदि।

७—वे मामले जिनके सम्बन्ध में ब्रिटिश पार्लियामेंट या आस्ट्रेलिया की सघ-समितिसविधान बनते समय कार्यवाही कर सकती थी, उनमें उन सब उपराज्यो की पार्लियामेंटो की प्रार्थना पर कार्यवाही करना जो उस कार्यवाही से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हो।

---

○सेनेक्ट कन्स्टीट्यूशन्स आफ दी वर्ल्ड, पृ० ३५७

८—संविधान से जो शक्ति पार्लियामेंट, संघ कार्यपालिका या न्याय-पालिका को या किसी शासन विभाग या अफसर को प्रदान की हो उनके उपभोग के सम्बन्ध में आवश्यक अधिकारों का प्रयोग करने की शक्ति संघ सरकार को है।

९—किसी भी उपराज्य से अपने अधिकार में रहने वाले काम के लिये उचित शर्तों पर जायदाद खरीदना, जैसे रेल इत्यादि।

१०—सेना संबंधी कामों में उपराज्यों की रेलों पर आवश्यक नियन्त्रण रखना।

कुछ अधिकार ऐसे भी हैं जो कनाडा की संघ सरकार को प्राप्त हैं परन्तु आस्ट्रेलिया की संघ सरकार को स्पष्टतया नहीं दिये गये हैं जैसे—

१—नौचरण व नौपरिवहन।

२—समुद्रतट व देश के भीतर मछली मारना।

३—दण्ड विधि (Criminal Law)।

४—वे अधिकार जो उपराज्यों के अधिकारों की गिनती से बचे हों शेषाधिकार (Residuary powers)।

**संघ सरकार में शामिल प्रदेश**—संघ-सरकार कुछ प्रदेशों को अपने ही शासन में रखती है। दक्षिणी आस्ट्रेलिया ने अपना उत्तरी प्रदेश को पहली जनवरी सन् १९११ को संघ सरकार को सुपुर्द कर दिया था, इस प्रदेश ५२३,६२० वर्ग मील है परन्तु इसमें केवल १०,८६८ निवासी रहते हैं। पैपुआ (Papua) जो पहली ब्रिटिश गाइना (British Guinea) के नाम से प्रसिद्ध था संघ सरकार के आधिपत्य में पैपुआ ऐक्ट (Papua Act) में दी हुई शर्तों पर सितम्बर १, सन् १९०६ को आया। पैपुआ की जन-संख्या ३,०३,२३६ और क्षेत्रफल ९०,५४० वर्ग मील है। न्यू गाइना (New Guinea) का कुछ भाग संघ सरकार को जर्मनी से वार्साई की सन्धि के अन्तर्गत संरक्षित प्रदेश की तरह प्राप्त हुआ था। संघ-प्रदेश जिसमें संघ सरकार की राजधानी केनबेरा है, न्यू साउथ वेल्स (New South Wales) से सन् १९११ में खरीद लिया गया था। इसका क्षेत्रफल ९३६ वर्ग मील है और जन-संख्या १६,९०५ है। जिन प्रदेशों पर संघ सरकार का पूर्ण आधिपत्य है उनके शासन-प्रबन्ध के लिये संघ सरकार ने पृथक-पृथक प्रबन्ध कर दिया है।

**संघ-सरकार की आर्थिक-शक्तियां**—आर्थिक शक्तियों के विषय में आस्ट्रेलिया की संघ सरकार, संयुक्त राज्य अमरीका की सरकार से अधिक

शक्तिशाली है। इसकी कर लगाने की शक्ति असीमित है। जब तक यह कर प्रत्येक उपराज्य में एक समान है। आयात-निर्यात करों पर उसे पूरा अधिकार है। संघ बनने के समय उपाराज्यों के तत्कालीन ऋण का भार संघ सरकार ने अपने ऊपर ले लिया था परन्तु साथ ही साथ स्वयं रुपया उधार लेने की शक्ति भी प्राप्त कर ली थी। पर पहले दस वर्ष तक आयात-निर्यात् कर से जो आमदनी हुई उसका एक चौथाई भाग ही संघ सरकार ने अपने पास रखा, बचा हुआ प्रतिमास उपराष्ट्रों को लौटा दिया जाता था। इस प्रकार अमरीका की अपेक्षा इसके आर्थिक अधिकार अधिक हैं पर कनाडा की सरकार की अपेक्षा कम है। यह भी सच है कि श्रमिक पक्ष की सरकार बनने से केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। अमेरिका में भी सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों ने केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बना दिया है जैसे अमेरिका में अंगीभूत होने वाली इकाइयां उपराज्य (State) कहलाती हैं, वैसा ही आस्ट्रेलिया में भी है, जिससे कनाडा के प्रान्तों की अपेक्षा उनके ऊँचे पद का निर्देश होता है।

## संघ विधान मंडल

आस्ट्रेलिया की विधायिनी सत्ता पालियामेंट में विहित है। पालियामेंट मे, राजा, प्रतिनिधि सदन ( House of Representatives) और सीनेट (Senate), इन तीनों की गिनती की जाती है। गवर्नर जनरल राजा का प्रतिनिधित्व करता है और वह उन अधिकारों का प्रयोग करता है जो सम्राट ने उसको सौंप दिये हों। गवर्नर जनरल पालियामेंट के सम्मिलित होने का समय निश्चित करता है और अपनी घोषणा के द्वारा उसका अवसान भी करता है। उसी प्रकार से वह प्रतिनिधि सदन का विघटन भी करता है पालियामेंट साल में कम से कम एक बार अपनी बैठक अवश्य करती है।

**सीनेट**—सीनेट में जो संघ का उपरी सदन है, आरम्भ में ३६ सदस्य थे। प्रत्येक उपराज्य ६ सदस्यों को चुन कर भेजता था परन्तु १९४८ के प्रतिनिधि अधिनियम से यह सख्या ६० कर दी गई है और प्रत्येक उपराज्य के १० सदस्य है। इनकी नियुक्ति ६ साल के लिये होती है और आधे हर तीन साल बाद हट जाते हैं। इस प्रकार यह अविच्छिन्न सख्या है। सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन के लिये प्रत्येक उपराज्य एक निर्वाचन क्षेत्र रहता है पर मतदाता एक बार ही मतदान कर सकता है। यदि दोनो सदनों में मतभेद हो जाय तो सीनेट का विघटन हो सकता है। यह एक विशेषता है जो और राज्यसंगठनों में नहीं पाई जाती। इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलिया की सीनेट की और दूसरी

विशेषता है जिससे मालूम यह पड़ता है कि दूसरी सभाओं (सीनेटों) की अपेक्षा अधिक लोकतन्त्रात्मक है। सीनेट के निर्वाचन के लिये प्रत्येक प्रौढ़ नागरिक मताधिकारी है और कोई भी व्यक्ति जो प्रतिनिधि सदन का सदस्य बनने योग्य है वह सीनेट के निर्वाचन के लिए खड़ा हो सकता है। कनाडा की सीनेट की अपेक्षा, जिसमें गवर्नर जनरल से मनोनीत व्यक्ति अपनी सम्पत्ति की योग्यता के सहारे सदस्य होते हैं और अपने जीवन भर सदस्य बने रहते हैं, आस्ट्रेलिया की सीनेट अधिक लोक-तन्त्रात्मक है। उपराज्यों की सीनेट में बराबर संख्या में प्रतिनिधि भेजने का यह अर्थ लगाया गया कि उपराज्यों की प्रभुता (Sovereignty) सर्वमान्य है और साथ ही साथ उपराज्यों के अधिकारों की रक्षा प्रत्याभूत समझी गई।

क्या सीनेट उपराज्य-प्रभुता का द्योतक है—व्यवहार में स्थिति भिन्न है "सीनेट से जो आशा की जाती थी वह पूरी नहीं हुई। इसने उपराज्यों के हितों की रक्षा नहीं की है क्योंकि उन हितों पर कोई प्रश्न ही न उठा .. ... न यह ज्ञानी पुरुषों का सदन रहा क्योंकि कुशल राजनीतिज्ञ प्रतिनिधि सदन में चले जाते हैं जहां संघर्ष के पश्चात् मंत्रिपद मिलता है। वैदेशिक नीति या उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति पर नियन्त्रण जैसा कोई विशेष कर्तव्य न होने के कारण, जिनसे अमरीकन सीनेट को कुछ शक्ति प्राप्त है, आस्ट्रेलिया की सीनेट प्रतिनिधि-सदन की एक निम्न श्रेणी की प्रतिलिपि भर हो है।"*

सीनेट में आकस्मिक रिक्त स्थानों का भरना—आकस्मिक रिक्त स्थानों को भरने के लिये जिस उपराज्य के सदस्य का स्थान रिक्त हुआ हो उसके दोनों सदन मिली जुली बैठक में एक व्यक्ति को उस स्थान के बचे हुए समय तक के भरने के लिये चुन लेते हैं। यदि उपराज्य की पार्लियामेंट की बैठक न हो रही हो तो उपराज्य का गवर्नर अपनी कार्यपालिका की सलाह से एक व्यक्ति को सीनेट का सदस्य नियुक्त कर सकता है और वह व्यक्ति के चुने जाने तक, जो कोई भी पहले हो, अपने स्थान पर बना रहेगा। यदि कोई सीनेट का सदस्य लगातार दो सत्रों में उपस्थित न रहेगा तो वह सीनेट का सदस्य न रहेगा कोई भी सीनेट का सदस्य अपना त्यागपत्र सीनेट के सभापति या उसकी अनुपस्थिति में गवर्नर जनरल को भेज कर अपने पद का त्याग कर सकता है।

गणपूरक और मतदान—सीनेट अपना सभापति स्वयं चुनती है।

---

*माडर्न डेमोक्रेसीज़ भाग II पृ०२०४

सब प्रश्न बहुमत से निर्णित होते हैं। प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार है। सभापति को भी एक मत देने का अधिकार है। परन्तु जब पक्ष व विपक्ष नें मत बराबर होते हैं तो प्रस्ताव अस्वीकृत समझा जाता है। सीनेट की गणपूर्ति उनकी तिहाई संख्या है।

प्रतिनिधि सदन—प्रतिनिधि सदन ( House of Representatives) में सन् १६४८ के प्रतिनिधि कानून के अनुसार इस समय १२१ सदस्य हैं जो उपराज्यो मे जनसंख्या के आधार पर वितरित हैं। न्यू साउथ वेल्ज के ४७, विक्टोरिया के ३३, क्वीन्सलैंड के १८, दक्षिणी आस्ट्रेलिया के १०, पश्चिमी आस्ट्रेलिया के ८ और टसमानिया के ५ प्रतिनिधि इस सदन के लिये चुने जाते हैं। सन् १६२२ के एक्ट के अनुसार उत्तरी प्रदेश के लिये तथा १६३२ से संघीय राजधानी का बिना मताधिकार वाला एक सदस्य बैठता है। सदन की अवधि तीन वर्ष है पर संविधान के अन्तर्गत और प्रचलित प्रथा के अनुसार मंत्रमण्डिल को सलाह देने पर गवर्नर-जनरल इस अवधि से पूर्व ही सदन का विघटन कर सकता है। प्रतिनिधियों के चुनाव में प्रत्येक प्रौढ व्यक्ति, पुरुष या स्त्री, मत दे सकता है। प्रतिनिधि बनने के लिये व्यक्ति की २१ वर्ष की आयु होनी चाहिये, उसे मतदान का अधिकार होना चाहिये और वह कामनवेल्थ का तीन वर्ष का निवासी होना चाहिये। इसके अतिरिक्त उसे जन्मत या कानून द्वारा बनाया हुआ ब्रिटिश जानपद होना चाहिये।

, यह प्रतिनिधि सभा अपना सभापति स्वयं ही चुनती है। सभापति को साधारण तथा मत देने का अधिकार नहीं होता पर जब पक्ष व विपक्ष में मत बराबर होते हैं तो उसे निर्णय देने का अधिकार है। सभा के सब निर्णय बहुमत से होते हैं और अपनी कार्यपद्धति के नियम सभा स्वयं बनाती है।

कोई भी व्यक्ति एक ही समय में सीनेट और प्रतिनिधि सदन का सदस्य नहीं हो सकता। सीनेट या प्रतिनिधि सदन का सदस्य अपनी सदस्यता खो बैठता है जब वह किसी परराष्ट्र का जानपद हो जाता है, दिवालिया घोषित हो जाता है, देशद्रोह का अपराधी सिद्ध होकर दण्डित हो जाता है या राज्य से किये हुये किसी ठेके में उसका कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष हित बध जाता है। अन्तिम शर्त में अपवाद यह है कि २५ सदस्यों से अधिक सदस्यों वाली कम्पनी के सदस्य के नाते यदि उसका राज्य के ठेके में कोई हित है तो वह अपनी सदस्यता न खोयेगा। सीनेट व प्रतिनिधि सदन का प्रत्येक सदस्य प्रतिमास १००० पौंड भत्ते के रूप में

जाता है और जब तक वह सदस्य बना रहता है, सदस्यता के साधारण अधिकार, सुविधायें व सुविधायें भोगता है।

**विधान मण्डल की शक्तियाँ**—दोनों सदनों को समान शक्तियाँ प्राप्त हैं पर कर लगाने वाले व आगम से सम्बन्ध रखने वाले, अर्थात् मुद्रा-विधेयक, निचले सदन में प्रारम्भ होते हैं। कर लगाने वाले या राज-कोष से साधारण वार्षिक सेवाओं के लिये धन का प्रयोग करने वाले विधेयकों में सीनेट संशोधन नहीं कर सकती। सीनेट किसी भी विधेयक में ऐसा संशोधन नहीं कर सकती जो जनता पर प्रस्तावित वार्षिक भार को बढ़ा दे। "राजकीय जीवन में निचला सदन ही शक्ति-केन्द्र है पर इसकी शक्ति उस समय से घट गई जब श्रमिकों के गुप्त दल की स्थापना हुई क्योंकि इस गुप्त दल में सीनेट के श्रमिक-सदस्य व निचले सदन के श्रमिक सदस्य मिलकर नीति का निर्णय पहले से ही कर लेते हैं और प्रतिनिधि सदन की कार्य-वाही व्यर्थ सी रहती है।"[1] यह गुप्त दल ही शक्ति का केन्द्र बन गया है।

**दोनो सदनों के मतभेद को सुलझाने का उपाय**—जब दोनों सदनों की शक्तियां समान हैं तो सम्भव है कि उनमें कभी मतभेद हो जाये और उनमें से कोई भी अपना मत बदलने को तैयार न हो। ऐसे मतभेद का समाधान करने की रीति संविधान की ५७ वी धारा में दी हुई है। यदि निचला सदन किसी विधेयक को पास करे और सीनेट उसे पास न करे, रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को स्वीकार न हो और यदि वह सदन तीन महीने बाद उसी सत्र में या दूसरे सत्र में उसी विधेय को सीनेट के द्वारा किये हुये या सुझाये हुये संशोधनों सहित या उनके बि पुन पास कर दे और सीनेट उसे रद्द कर दे या पास न कर या ऐसे संशोध से पास करे जो निचले सदन को पसन्द न हो तो गवर्नर-जनरल सीन और प्रतिनिधि-सदन दोनो का एक साथ विघटन कर दे। पर ऐसा विघट निचले सदन की अवधि की साधारण समाप्ति के छ मास पूर्व या समय में नही हो सकता।

यदि ऐसे विघटन और नये निर्वाचन के पश्चात् निचला सदन उस प्रस्तावि विधेयक को सीनेट से सुझाये हुये या सीनेट द्वारा स्वीकारे या समावेश किये हु संशोधनों के साथ या बिना उनके पास कर दे और सीनेट उसे पास न करे र रद्द कर दे या ऐसे संशोधनों से पास करे जो निचले सदन को स्वीकार्य न ह गवर्नर जनरल दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में सदस्य मिलकर विचार करें

[1] मॉडर्न डेमोक्रेसीज़ भाग II पृ० २०३

और मिलकर ही मत देंगे। वे चाहें तो एक सदन के द्वारा किये हुये और दूसरे से अस्वीकार हुये संशोधनों पर विचार करें या न करें। सीनेट व प्रतिनिधि-सदन की कुल संख्या के परम बहुमत ( absolute majority ) से जो संशोधन स्वीकृत हो जायेंगे वे ही पास समझे जायेंगे। इससे यह स्पष्ट है कि आस्ट्रेलिया की सीनेट को कनाडा या अमरीका की सीनेट से अधिक शक्तियां मिली हुई हैं। सीनेट के सदस्यों की योग्यता व उनके निर्वाचन की प्रजातंत्रात्मक विशेषता देखते हुए यही आशा की जाती थी।

**गवर्नर जनरल की सम्मति**--जब दोनों सदन किसी कानून को पास कर देते हैं तो लागू होने के पूर्व उसे गवर्नर जनरल की सम्मति प्राप्त होनी चाहिये। गवर्नर जनरल यदि चाहे तो अपनी सिफारिशों के साथ उस कानून को पार्लियामेंट के पास भेज सकता है जिससे उस पर फिर विचार हो या वह उसे सम्राट की अस्वीकृति के लिये, जो एक वर्ष के भीतर मिल जानी चाहिये, अपने पास रख सकता है। वैस्टमिंस्टर की व्यवस्था के पास होने के पश्चात् आस्ट्रेलिया की पार्लियामेंट की व्यवस्था सम्बन्धी शक्तियों पर जो प्रतिबन्ध लगे हुए थे वे हट गये हैं।

## संघ-कार्यपालिका

संघ की कार्यपालिका सत्ता राजा ( इंगलैंड के क्राउन के रूप में नहीं वरन् कौमनवैल्थ के क्राउन के रूप में ) में विहित है और इस सत्ता का भोग गवर्नर-जनरल राजा का प्रतिनिधि होने के नाते करता है। गवर्नर-जनरल नौसेना व स्थल सेना का सेनापति भी है।

कनाडा की तरह आस्ट्रेलिया के संघ-शासन संविधान में भी शासन कार्य में गवर्नर-जनरल को मंत्रणा देने के लिये एक कार्यपालिका परिषद् का आयोजन है। इस परिषद् के सदस्यों को गवर्नर-जनरल आमंत्रित कर उन्हें कार्यपालिका परिषद् के सदस्य बनने की शपथ दिलाता है। ये सदस्य उसके अनुग्रह प्राप्त करते रहने तक अपने पद पर स्थित रहते हैं। यह तो संविधान का आयोजन है पर व्यवहार में जो होता है वह यह है कि गवर्नर प्रतिनिधि सदन में जो पक्ष बहुमत प्राप्त पक्ष होता है उसके नेता को बुलाकर प्रधानमंत्री नियुक्त करता है और प्रधानमंत्री तब अपने पक्ष के लोगों की सलाह से अपने मित्र मंत्रियों को चुनता है जिन्हें गवर्नर-जनरल विधिवत् कार्यपालिका के सलाहकार नियुक्त कर देता है। इस समय प्रधानमंत्री समेत कुल कार्यपालिका परिषद् के सदस्य ११ हैं। प्रधानमंत्री अपने लिये जो काम या शासन विभाग चाहता है रख लेता है। दूसरे मंत्रियों में ये होते हैं, परिषद्

या उपसभापति और सीनेट का नेता, व्यापार-मंत्री, एटॉर्नी-जनरल, उद्योग मंत्री, वैदेशिक कार्य मंत्री, पोस्टमास्टर जनरल, आयात निर्यात कर व व्यापार मंत्री, कोषाध्यक्ष व विकास और वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अन्वेषण का प्रबन्ध करने वाले मंत्री, वायुयान व निर्माण मंत्री, सुरक्षा मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री और गृह मंत्री। प्रधान मंत्री जिस प्रकार चाहता है इन कार्य विभागों को अपने साथी मंत्रियों में बांटता है। वह परिषद् का अध्यक्ष रहता है और उसकी नीति निर्धारित करता है। उसे ४००० पौंड प्रति वर्ष वेतन मिलता है। कुछ मंत्री ऐसे भी नियुक्त किये जा सकते हैं जिनको किसी शासन विभाग का कार्य नहीं सौंपा जाता। वैधानिक प्रथा के अनुसार परिषद् प्रतिनिधि सदन को उत्तरदायी है और उसका विश्वास खोने पर पद त्याग कर देती है। परिषद् ही सामान्य शासन नीति निश्चित करती है और सिविल सर्विस उस नीति को कार्यरूप देती है।

**मंत्रि परिषद् की रचना**—परिषद् के बनाने में प्रधान मंत्री उपराज्यों की इच्छा का समुचित आदर करता है और ऐसा प्रयत्न करता है कि प्रत्येक उपराज्य का कम से कम एक व्यक्ति मंत्री अवश्य हो। परिषद् सामुदायिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त पर कार्य करती है पर यदि कोई मंत्री अपने मित्रों से कोई मौलिक मतभेद रखता है तो वह पद त्याग कर देता है। परिषद् स्वयं ही अपनी नीति निर्धारित करती है और विधान मण्डल के कार्य में उसके मार्ग प्रदर्शक का कार्य करती है। पर श्रमिक पक्ष के मंत्रिमंडल के पदारूढ़ होने पर यह नीति, पक्ष की गुप्त समिति द्वारा निर्धारित होने लगी है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि कामनवैल्थ की वास्तविक कार्यपालिका सत्ता मंत्रिपरिषद् में विहित है हालांकि सिद्धान्ततः यह गवर्नर-जनरल में विहित है। गवर्नर-जनरल परिषद् की बैठक में उपस्थित नहीं होता। वैधानिक प्रथानुसार परिषद् इतनी महत्व पूर्ण होती जा रही है कि गवर्नर-जनरल की नियुक्ति भी सम्राट उसकी सलाह से ही करता है।

## संघ-न्याय पालिका

संघ की न्यायकारी सत्ता आस्ट्रेलिया की हाईकोर्ट और दूसरे न्यायालयों में जिनको संघ पार्लियामेंट आवश्यक अधिकारों से शक्ति सम्पन्न बनाती है, विहित है। संघ में हाईकोर्ट सर्वोच्च न्याय संस्था है। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश व छः और न्यायाधीश होते हैं। इन सब को गवर्नर जनरल नियुक्त

करता है और ये न्यायाधीश जब तक सदाचार बर्तते हैं अपने पद पर सुरक्षित रहते है। यदि एक ही सत्र में दोनो सदन गवर्नर-जनरल से प्रार्थना करें कि किसी न्यायाधीश को उसके सिद्ध हुये दुराचार या अयोग्यता के कारण पद से हटा दिया जाय तो गवर्नर जनरल मन्त्रिमण्डल की सलाह से उसे हटा सकता है। जब तक न्यायाधीश अपने पद पर रहते हैं उनका वेतन कम नही किया जा सकता। इन सब शर्तों से न्यायपालिका में स्वतन्त्रता व निरपेक्षता बनी रहती है। हाईकोर्ट अपने निर्णयो की निरपेक्षता के लिये प्रख्यात हो गई है इसलिये अमरीकन उपराज्यो की तरह यहा इस बात का कोई पक्का प्रयत्न नही किया गया है कि न्यायाधीशो की नियुक्ति निर्वाचन के द्वारा हो। हाईकोर्ट के प्रारम्भिक अधिकार का भोग करने वाले न्यायाधीशो के निर्णयो पर, उन छोटे न्यायालयो के निर्णयो पर, उन छोटे न्यायालयो के निर्णयो पर जो सघ-अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत कार्य करते है और उन मुकदमो पर जो उपराज्य के सर्वोच्च न्यायालयो के पुनर्विचार करने के लिए भेजे गए हो, पुनर्विचार करने का हाईकोर्ट को अधिकार है। और इस पुनर्विचार के पश्चात् हाईकोर्ट का निर्णय अन्तिम माना जाता है।

**हाईकोर्ट की शक्तियाँ**—यदि हाईकोर्ट स्वमही प्रमाण-पत्र द्वारा अनुमति दे तो उसके निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौसिल की न्याय समिति में अपील की जा सकती है। पर राजा स्वय भी प्रिवी कौसिल मे अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। आगे कहे हुए विषयो में हाईकोर्ट प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार का प्रयोग करती है जब किसी ऐसी सधि के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो जो वैदेशिक प्रतिनिधियो से सम्बन्ध रखता हो, या जिसमें सघ सरकार वा उसकी ओर से कोई व्यक्तिवादी या प्रतिवादी हो, जब दो उपराज्यो वा उसके निवासियो या एक उपराज्य के किसी निवासी के बीच झगडा हो, या जब किसी सघ सरकार के अफसर के विरुद्ध यह आज्ञापत्र मागा जा रहा हो कि उस अफसर की आज्ञाओं का पालन न हो।

पार्लियामेंट कानून बना कर किसी भी विषय में हाईकोर्ट को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार दे सकती है यदि वह विषय शासन विधान के अन्तर्गत उठा हो, या नावाधिकरण क्षेत्राधिकार तथा सामुद्रिक क्षेत्राधिकार सम्बन्धी पार्लियामेंट के किसी कानून के अन्तर्गत कोई प्रश्न उठा हो या जब उस विषय का सम्बन्ध ऐसे मामले से हो जो दो या अधिक उपराज्यो के कानून के भीतर आता है।

इससे यह प्रकट है कि हालाकि हाईकोर्ट के निर्णयो के विरुद्ध प्रिवी कौसिल में अपील हो सकती है, पर अधिकारक्षेत्र की दृष्टि से यह हाईकोर्ट बहुत कुछ

अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय से मिलती जुलती हैं और इसकी शक्तियाँ कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय से निश्चय ही अधिक हैं। प्राय प्रिवी कौंसिल में अपील करने की अनुमति देने से इन्कार कर हाईकोर्ट ने वह स्वतन्त्रता व महत्ता प्राप्त करली है जो कनाडा की हाईकोर्ट को प्राप्त नहीं है।

## संविधान का संशोधन

संविधान-संशोधन की रीति कनाडा की रीति से भिन्न और अमरीकन रीति से मिलती जुलती है। कनाडा के संविधान में संशोधन ब्रिटिश पार्लियामेंट ही कर सकती है, कम-से-कम सिद्धान्त तो यही ठीक है। परन्तु आस्ट्रेलिया का शासन विधान अधिक और नम्यात्मक है, उसका संशोधन आगे दी हुई दो रीतियों में से किसी एक के अनुसार हो सकता है।

(१) प्रस्तावित संशोधन पहले दोनों सदनों में परम मताधिक्य से पास होना चाहिये। उसके दो मास के बाद पर छ मास से पहले वह संशोधन प्रत्येक उपराज्य के उन निर्वाचकों के सम्मुख रखा जाना चाहिये जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों को चुनते हैं।

(२) यदि प्रस्तावित संशोधन एक सदन में परम मताधिक्य से पास हो जाय पर दूसरा सदन उसे पास न करे, या रद्द कर दे या ऐसे परिवर्तन करके पास करे जो पहले सदन को पसन्द न हो और यदि तीन मास बीतने पर पहला सदन उस प्रस्तावित संशोधन को फिर परम मताधिक्य से पास कर दे (उसी सत्र में या अगले सत्र में) और यदि दूसरा सदन पूर्व सदन की पसन्द के अनुसार उसे पास न करने पर अड़ा रहे, तो गवर्नर जनरल पूर्व सदन से अन्तिम बार प्रस्तावित संशोधन को बिना उन परिवर्तनों के या उन परिवर्तनो के साथ जो बाद में दोनो सदनों ने मान लिये हों, उपराज्यो के निर्वाचको के सम्मुख रख सकता है जो प्रतिनिधि सदन के सदस्यों के चुनाव में भाग ले सकते हैं।

संशोधन का प्रस्ताव निर्वाचको के सम्मुख रखे जाने पर यदि बहुसख्यक उपराज्यो के बहुसख्यक मतदाता और सारे आस्ट्रेलिया सघ के मतदाताओ की अधिक सख्या उस संशोधन को स्वीकार कर लें तो वह प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। इसके पश्चात् यह स्वीकृत प्रस्ताव सम्राट की ओर से सम्मति देने के लिये गवर्नर जनरल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्मति अब व्यवहार में रोकी नही जा सकती।

**संविधान-संशोधन के सम्बन्ध मे पार्लियामेंट पर प्रतिबन्ध**— पार्लियामेंट विधान-संशोधन के द्वारा किसी भी केन्द्रीय सदन में किसी

उपराज्य के अनुपाती प्रतिनिधित्व को या प्रतिनिधि-सदन मे उसके प्रतिनिधियों की कम से कम सख्या को घटा नही सकती। न किसी उपराज्य की सीमा न सविधान के वे प्रविधान जिनसे उपराज्य का पद स्थिर हुआ हो, बदले जा सकते है, जब तक उस उपराज्य में मतदाताओ के बहुसख्यको ने इसे स्वीकार न कर लिया हो।

## उपराज्य और स्थानीय शासन

आस्ट्रेलिया सघ में छ उपराज्य है जिनकी राजधानी व जनसख्या नीचे सारिणी में दी है—

| उपराज्य का नाम | राजधानी | क्षेत्रफल (वर्ग मीलो में) | जनसख्या (३१-१२-४७ को अनुमानित |
|---|---|---|---|
| न्यू साउथ वेल्स | सिडनी | ३०९,४३३ | २६,८४,८३८ |
| विक्टोरिया | मेलबोर्न | ८७,८८४ | २०,५४,७०१ |
| क्वीन्सलैंड | ब्रिजबेन | ६७०,५०० | ११,०६,४१५ |
| दक्षिणी आस्ट्रेलिया | ऐडिलेड | ८८०,०७० | ६,४६,०७३ |
| पश्चिमी आस्ट्रेलिया | पर्थ | ९७५,९२० | ५,०२,४८० |
| टसमानिया | होबार्ट | २६,२१५ | २,५७,०७८ |

सघ सरकार उत्तरी प्रदेश सघ-राजधानी प्रदेश पैपुआ और सरक्षित प्रदेशो पर स्वय शासन करती है।

**संघ स्थापित होने से पूर्व उपराज्य स्वतंत्र थे**—कामनवेल्थ आफ आस्ट्रेलिया एक्ट जिससे आस्ट्रेलिया म सघ शासन की स्थापना हुई, उसके पास होने के पूर्व आस्ट्रेलिया के प्रात एक दूसरे के आश्रित न थे। उनमें उत्तरदायी स्वायत्त शासन होता था और वे ब्रिटिश पालियामेंट की आधीनता स्वीकार करते थे पर आपस में वे एक दूसरे के आधीन न थे। तात्पर्य यह है कि उनकी वही स्थिति थी जो सयुक्त राष्ट्र अमरीका के उपराज्यो की सन् १७७७ मे पूर्व थी। यह हम पहले ही बतला चुके है कि प्रत्येक प्रात या राज्य की जनता की स्पष्ट इच्छा से ही सघ की स्थापना हुई। इसलिये सघ की स्थापना राज्यो की सम्मति से हुई और उन्होने केवल वही अधिकार व शक्तियां केन्द्रीय सरकार को सुपुर्द किये जिनको उन्होने देश के हित मे आवश्यक समझा। सन् १६०० के एक्ट ने इसीलिये राज्यो के स्वतन्त्र पद को मान्य स्वीकार कर यह निश्चय कर दिया कि उनका शासन विधान वही रहेगा जो

संघ की स्थापना के समय या संघ में शामिल होने के समय वर्तमान था। यह शासन विधान उसी संविधान में दी हुई पद्धति से बदला अवश्य जा सकता है।

**उपराज्यों की शक्तियां**—प्रत्येक राष्ट्र की वे शक्तियां सुरक्षित हैं जो सन् १६०० के शासन विधान द्वारा संघ सरकार को नहीं दे दी गई हैं। ऐसी ही स्थिति संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उपराज्यों की है। इसके विपरीत कनाडा में शेष शक्तियां प्रांतों को न देकर औपनिवेशिक सरकार को दी गई हैं और प्रांतों को वे ही शक्तियां व अधिकार प्राप्त हैं जो ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट ने उनको दिये हैं। इस प्रकार अमरीका संघ व आस्ट्रेलिया संघ की अर्गाभूत इकाइयों का पद कनाडा के प्रांतों के पद से ऊंचा है। आस्ट्रेलिया व संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उपराज्यों के बनाये हुये अधिनियमों का संघ सरकार रद्द नहीं कर सकती पर कनाडा में गवर्नर-जनरल किसी भी प्रांतीय अधिनियम को रद्द कर सकता है।

**गवर्नर**—अमरीका में उपराजकीय शासन के अध्यक्ष को जो गवर्नर कहलाता है, जनता चुनती है और वह संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के प्रेसीडेंट के किसी प्रकार भी आधीन नहीं होता। पर आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में एक गवर्नर होता है जिसको सम्राट् नियुक्त करता है और जो न तो उपराज्य की जनता को न गवर्नर जनरल को उत्तरदायी होता है, परन्तु कनाडा में प्रांत का शासनाध्यक्ष लेफ्टिनेंट गवर्नर कहलाता है और गवर्नर-जनरल द्वारा ही नियुक्त होता है व हटाया जाता है। इसलिये यह गवर्नर जनरल का मातहत ही है। उपराज्यों की न्यायपालिका आस्ट्रेलिया व कनाडा के प्रान्तों के न्यायपालिकाओं की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र है, व संघ न्यायपालिका के उतने आधीन नहीं जितने कि कनाडा में है। संक्षेप में अमरीका के उपराज्यों का अधिक से अधिक अधिकार और स्वतन्त्रता है, उससे कम शक्तिशाली और स्वतन्त्र आस्ट्रे-लिया के उपराज्य हैं और सब से कम शक्तिशाली कनाडा के प्रांत हैं।

**उपराज्यों के विधान मण्डल**—आस्ट्रेलिया में प्रत्येक उपराज्य में दो सदन का विधान मंडल है। ऊपरी सदन कौंसिल और निचला सदन असेम्बली के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों में से असेम्बली ही अधिक प्रभाव शाली है। यह आय-व्यय पर नियंत्रण रखती है और मंत्रिमण्डलों को बनाती बिगाड़ती है। इसलिये इसी में योग्य व सामर्थ्यवान् व्यक्ति आने का प्रयत्न करते हैं। यद्यपि राष्ट्रीय संघ सरकार के बन जाने से उपराज्यों की असेम्बलियों का पहला सा महत्व नहीं रहा पर अब भी उनका इतना महत्व है कि कम से कम बड़े उपराज्यों में वे व्यक्ति जो जनमत से शीघ्र प्रभावित होते हैं, जो

व्यवहार कुशल हैं और राजनैतिक युद्ध लडना जानते हैं, इनमें निर्वाचित होकर आते हैं"।[x] पर कौंसिलें, चाहे वे लम्बी अवधि वाली हों या थोडी अवधि वाली, शात सस्थाएँ है। उनकी बैठक थोडे समय के लिये ही होती है और मन्त्रिमण्डल के बनने बिगडने से उनका सम्बन्ध न होने से वे अधिक महत्व नही रखती। जब दोनो सदनो में कार्यवरोधक मतभेद हो जाता है उस समय ही ये राजनीति में थोडा सा भाग लेती हैं सो भी बहुत साधारण सा। ये कौसिल अमरीकन उपराज्यो की सीनेटो से बहुत कम मिलती जुलती है न उनकी तुलना फ्रास की सीनेट से की जा सकती है क्योकि उनमें बहुत थोडी सख्या में ऐसे व्यक्ति पाये जाते हैं जो राजनीति में विख्यात हो। पर फिर भी उन्होंने जो काम अब तक किया है वह उनके अस्तित्व के समर्थन मे पर्याप्त है। उन्होने जल्दबाज विधायको को बाध्य कर दिया है कि वे अपने प्रस्तावो पर पुनर्विचार कर सशोधन करें और उनका पुनर्निर्माण करें।

उपराज्यो को विधायिनी शक्ति—उपराज्यो की विधायिनी शक्ति कनाडा के प्रातो के अधिकार से अधिक है पर अमरीकन उपराज्यो के अधिकारो से कम है। सघ सरकार को जो मामले नही सौंपे गये है उन सब मे उपराज्यो को कानून बनाने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त कुछ समवर्ती शक्तिया (Concurrent powers) भी हैं जिनका उपभोग वे सघ पालियामट के साथ साथ करती है। यदि उपराज्य का कानून सघ-कानून के विरुद्ध हो, तो उपराज्य का कानून जहाँ तक ऐसा विरोध है अमान्य हो जाता है। सविधान की ११४ व ११५ वी धारा के अनुसार उपराज्य कोई स्थल या जल सेना बिना पालियामट की सम्मति से न भर्ती करेगा न सगठन व पालन करेगा। न उपराज्य सघ सरकार की सम्पत्ति पर कोई कर लगायेगा। सघ सरकार भी उपराज्यो की सम्पत्ति पर कोई कर न लगायेगी। ११५ वी धारा से उपराज्य के मुद्रा बनाने पर निषध लगाया गया है। कोई उपराज्य सिवाय सोने और चादी के सिक्को के दूसरी किसी वस्तु को ऋण चुकाने का माध्यम न बनायेगा। सविधान की ११६ वी धारा के अनुसार कौमनवल्थ ऐसा कोई कानून न पास करेगी जिससे किसी धर्मविशष को मान्य ठहराया जाय या कोई धर्म व्यवहार लोगो पर लादा जाय या किसी धर्म के आचरण पर रोक लगाई जाय। एक दूसरी धारा के अनुसार सघ सरकार उपराज्य की कार्य-पालिका की प्रार्थना पर उपराज्य की बाहरी आक्रमण या भीतरी विद्रोह से रक्षा करेगी।

---

x मार्न्स डमोक्रेसीज, भाग II, पृ० २०१-२

उपराज्य की कार्यपालिका सत्ता गवर्नर में निहित है जो उपराज्य की मन्त्रिपरिषद की सिफारिश पर सीधे सम्राट् द्वारा नियुक्त होता है। उपराज्य का निवासी उसी उपराज्य का गवर्नर नहीं बनाया जाता। गवर्नर केवल वैधानिक अध्यक्ष ही होता है वास्तव में तो मन्त्रिपरिषद ही सब काम करती है। यह परिषद् साधारण रीति से बनती है और असेम्बली को उत्तरदायी होती है।

*न्याय सगठन*—प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक न्याय सगठन है जिसकी चोटी पर एक सर्वोच्च न्यायालय रहता है और इसके निर्णयों की अपील सघ-हाईकोर्ट में होती है।

सघ पालियामेंट में नये उपराज्यो को शामिल कर सकती है और नये उपराज्य स्थापित कर सकती है।

हालाकि आस्ट्रेलिया के उपराज्यो की स्वतन्त्रता की मात्रा बहुत है, इतना होते हुये भी पश्चिमी आस्ट्रेलिया ने विद्रोह करने की ठानी। वहा के विधान मडल ने सन् १९३२ में एक एक्ट पास किया जिसके अन्तर्गत सघ से पृथक होने के प्रश्न पर लोकनिर्णय लिया गया। इस लोक निर्णय में ६७९८७ मत पृथक होने के पक्ष में अपेक्षाकृत अधिक पडे। जब मताधिक्य से इस प्रकार जनमत पृथक्कीकरण की ओर झुका हुआ सिद्ध हुआ तो उपराज्य की सरकार ने यह प्रश्न ब्रिटिश सरकार के सामने रखा पर ब्रिटिश सरकार ने सब बातो को विचार कर यह निर्णय किया कि उपराज्य का सघ से पृथक होना सघशासन प्रणाली के विरुद्ध है और इसलिए पश्चिमी आस्ट्रेलिया की माग अस्वीकृत कर दी। ब्रिटिश सरकार के इस निर्णय ने ब्रिटिश सघ प्रणाली पर बडा प्रभाव डाला है।

## राजनैतिक पक्ष

**प्रारम्भ में पक्षो का अभाव**—जब पृथक पृथक आस्ट्रेलिया के उपनिवेशो को उत्तरदायी स्वायत्त शासन का अधिकार मिला उस समय ब्रिटेन में जैसी शासन सस्थायें थी वैसी ही इन उपनिवेशो में भी बनाई गई। इन शासन सस्थाओ का सचालन एक सुसगठित पक्ष प्रणाली पर निर्भर करता है। जब एक सगठित पक्ष की पदासीन सरकार का विरोध करने के लिये एक सुसगठित अल्पसख्यक पक्ष रहता है तो निश्चय ही वाद-विवाद रुचि पूर्ण होता है और योजनाओ के गुण दोष का विचार भी भली भाति होता है। पर प्रारम्भ में उपनिवेशो के बसने वालो में आपस के कोई विरोधी हित न थे। उनमें अधिकतर क्या ९९ प्रतिशत अगरेज थे इसलिये जाति, भाषा व सस्कृति

का भेद न था। वे ऐसे देश में आकर बसे थे जो बिल्कुल नया था और विस्तृत भूमि प्रदेश उनके सामने खुला पड़ा था जिसे वे मन-चाहा काम में ला सक्ते थे। ऐसी स्थिति में उन्हे अपने आपको राजनैतिक पक्षों मे सगठित करने का समय या अवसर ही न था। "परिणाम यह हुआ कि कुछ समय तक बडी गडबड चलती रही। मन्त्रिमण्डल बनते थे और बिगडते थे और किसी भी मन्त्रिमण्डल को बहुत समय तक समर्थन पाने का भरोसा न रहता था।"* विक्टोरिया में सात वर्ष में आठ मन्त्रिमण्डल बने और बिगडे और दक्षिणी आस्ट्रेलिया मे ४० वर्ष में ४१ मन्त्रिमण्डल।

**पक्षों के आधारभूत आर्थिक प्रश्न**— उत्तरदायी शासन के प्रारम्भिक काल में प्रौढ मताधिकार के मिल जाने के कारण वैधानिक प्रश्नो का अस्तित्व ही न था। इसलिये जिन प्रश्नो पर राजनीतिज्ञो मे भेद उत्पन्न हुआ, वे आर्थिक प्रश्न थे। सरक्षणवादियो व निःशुल्क व्यापारवादियो के दो पक्ष पहले से ही चले आ रहे थे। सरक्षणवादियो की न्यू साउथ वेल्स मे प्रधानता थी और निःशुल्क व्यापारवादियो की विक्टोरिया मे। केवल १६ वी शताब्दी के अन्त में ही आस्ट्रेलिया की राजनीति में नये प्रश्नो का आविर्भाव हुआ। श्रमिको के नेताओ ने अपना सगठन करना आरम्भ किया और ऐसे सब सगठनो की तरह उन्होने भी आठ घटे के काम और अधिक मजदूरी मिलने की माग सामने रखी। "प्रत्येक उपनिवेश मे छोटे-छोटे अनेक पूर्वस्थित सघो को मिला कर व्यापार व श्रमिक समितियां बनने लगी और उनके नेता इस प्रकार राजनीति में भाग लेने लगे जो पूर्व समय के मजदूर सघियो को स्यात् पसन्द न था।"✪ ये श्रमिक सघ बडे होने लगे और उन्होने विधान-मडलो में कुछ स्थान प्राप्त करने में सफलता भी पाई। उनका सगठन बहुत दृढ होने के कारण मन्त्रिमण्डलों को कभी कभी उनकी मांगें स्वीकार करनी पडती थी।

सघ पार्लियामेंट के लिये जब प्रथम निर्वाचन हुआ तो दोनो सदनों की १११ सीटों में से २४ श्रमिक पक्ष को मिलीं। दूसरे पक्ष वही सरक्षणवादी और निःशुल्क व्यापारवादी थे। पर इन दोनों मे के किसी की भी सख्या इतनी न थी जो उनके अतिरिक्त पक्षो की सख्या से अधिक होती है। अर्थात् उनका परम मताधिक्य न होने से श्रमिक पक्ष के हाथ में ही शक्ति प्राप्त करने की कुंजी थी। इसीलिये प्रारम्भ मे मन्त्रिमण्डल थोडे समय तक ही

* डु॰ ऋ॰ रॉबर्ट्सन, डेवलपमेंट आफ आस्ट्रेलिया, पृ॰ १६३

✪ माडर्न डेमोक्रेसीज, भाग II, पृ॰ २२४

अपने स्थान पर टिक पाते थे। श्रमिक पक्ष के शक्तिशाली हो जाने के कारण दूसरे दो पक्षों ने मिल जाने में ही अपना श्रेय समझा। उनके मिल जाने का कारण उनके दृष्टिकोण की समानता न थी पर कारण यह था कि वे दोनों ही समाजवाद के विरोधी थे। सन् १९१० के निर्वाचन में श्रमिक पक्ष के प्रतिनिधियों का प्रतिनिधि सदन में काम चलाऊ मताधिक्य था और सीनेट में वह बहुसंख्यक थे। इसलिये श्रमिक पक्ष का मन्त्रिमण्डल बना।

"इस प्रकार इस त्रिभुजाकार संघर्ष का अन्त हुआ जिसके कारण संघ शासन की स्थापना के पश्चात् दस वर्षों में छः बार मन्त्रिमण्डल में परिवर्तन हुए जिसके कारण मन्त्रिमण्डलों में अस्थिरता रहती थी व षड्यन्त्र आदि को प्रोत्साहन मिलता था। इसके पश्चात् पुराने दोनों पक्ष मिलकर एक हो गये और उन्होंने अपना नाम राष्ट्रीय पक्ष रखा। उपराज्यों की विधान मंडलों में भी ऐसी ही घटनायें हुई जिसके फलस्वरूप केवल दो ही राजनैतिक पक्ष श्रमिक और राष्ट्रीय रह गये।

कुछ समय के बाद कृषकों ने श्रमिक-पक्ष के कुछ सदस्यों को अपनी तरफ मिला कर अपना पृथक संगठन किया। राष्ट्रीय पक्ष ने भी अपना नाम बदल कर यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी (United Australia Party) रख लिया और ऐसा कार्यक्रम बनाया जो समाजवाद विरोधी था। इस प्रकार अब आस्ट्रेलिया में तीन राजनैतिक पक्ष हैं। श्रमिक-पक्ष सबसे अधिक दृढ़ और सुसंगठित पक्ष है इसीलिये इसकी सबसे अधिक ख्याति है। सारे देश के प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में इसकी ट्रेड यूनियन कौंसिल (Trade Union Council) और पोलिटिकल लेबर लीग (Political Labour League) है। इस कौंसिल के सदस्य को पक्ष के कौंसिल के संविधान पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं जिसके अनुसार सदस्य को कड़े अनुशासन में रहना पड़ता है। उपराज्यों के विधानमंडलों के निर्वाचन होने के पहले ही इन कौंसिलों व लीगों के प्रतिनिधि मिलकर निर्वाचन का कार्यक्रम विचार करने के बाद निश्चय करते हैं। जब एक बार यह कार्यक्रम बहुमत से स्वीकार हो जाता है तब सबको इसे मान कर काम करना पड़ता है। विधान मंडल के उम्मेदवारों को एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करने पड़ते हैं कि विधान-मंडल में पक्ष की गुप्त समिति की आज्ञा का पालन करेंगे। यही नहीं विधान मंडल पद त्याग करने वाले कोरे त्यागपत्र पर उनके हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं। ये त्यागपत्र गुप्त समिति के पास रखे रहते हैं और भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर काम में लाये जाते हैं।

इसी प्रकार सब संघ पालियामेंट के लिये निर्वाचन होता है, हरएक उपराज्य में स्थित पक्ष के केन्द्रीय सगठन के छ प्रतिनिधि एक सम्मेलन में एकत्रित होते हैं और केन्द्रीय निर्वाचनो के लिये अपना नीति सम्बन्धी एक घोषणा पत्र व कार्यक्रम तैयार करते हैं। जिन व्यक्तियो को उम्मेदवार चुना जाता है वे प्रतिज्ञापत्रो व त्याग-पत्रो पर हस्ताक्षर करते है, जैसा उपराज्यो के निर्वाचनो में होता है।

निर्वाचनो के समाप्त हो जाने पर सघ-विधान मण्डलो में व उपराज्य विधान मण्डलो मे श्रमिक पक्ष के सब सदस्य सगठित रुप से कार्य करते है और कडे अनुशासन में रहते हैं। वे सप्ताह मे कम से कम एक बार बन्द कमरे में एकत्रित होकर विधानमडल में जो योजनाय विचाराधीन हो उन पर अपना क्या दृष्टिकोण हो, यह यह निश्चय करते है। जब श्रमिक पक्ष का ही मन्त्रि-मण्डल होता है तब भी यह बैठकें होती है और यह गुप्त समिति ही, न कि मन्त्रिमण्डल सरकार की नीति का निर्णय करती है। मन्त्रिपरिषद् के बनाने में यह समिति ही मन्त्रियों को चुनती हैं। प्रधान मत्री को अपने मित्र-मन्त्रियो के चुनने की स्वतनता नही रहती। प्रत्येक मत्री अपने शासन प्रबन्ध के लिये समिति को उत्तरदायी रहना है न कि प्रधान मत्री को। जब इस पक्ष की विधान मडल में बहुत अधिक सख्या होती है तब तो इसके कडे अनुसान व दृढ सगठन के कारण विरोधी पक्ष शक्तिहीन हो जाता है। हालाकि यह प्रणाली समदात्मक शासन पद्धति की भावना पर कुठाराघात करती है पर इससे शासन में स्थिरता व शक्ति अवश्य आ जाती है।

यूनाइटेड आस्ट्रेलिया पार्टी ने भी श्रमिक पक्ष जैसा सगठन उपराज्यो में व संघ में बना रखा है। परन्तु आस्ट्रेलिया की जैसी वर्तमान स्थिति है उसम श्रमिक पक्ष का कार्यक्रम अधिक आकर्षक है जिससे जनमत उसके साथ है।

इन राजनैतिक पक्षो के कार्यक्रम ऐसे है कि उपराज्य अपने पृथक व्यक्तित्व को भूलते जा रहे है। प्रतिनिधि-सदन तथा सीनेट में अब मतभेद किसी उपराज्य विशेष के हित-अहित के आधार पर नही होता पर अधिक व्यापक विषयो पर होता है जो सारे सघ के हित से सम्बन्धित है। इससे आस्ट्रेलिया में सघ शासन प्रणाली पर महत्वशाली प्रभाव पड रहा है। उप-राज्यों की पृथकत्व भावना के स्थान पर केन्द्रीय सरकार की शक्ति अब बढती जा रही है। इस सब का अधिक श्रेय विशेषकर श्रमिक-पक्ष को है जिसकी नीति ही आस्ट्रेलिया को एक दृढ सम्बन्ध सूत्र मे बाधना है।

## पाठ्य पुस्तकें

Bryce, Viscount—Modern Democracies, Vol. II chs. XLVI—LII (Macmillan & Co. 1923)

Cramp, K. R.—The State and Federal Constitution of Australia (1914 Sydney).

Egerton, H E—Federations and Unions in the British Empire pp 40–67, and 185-230 (Oxford)

Hunt, E.M.—American Precedents in the Australian Commonwealth (1930 Columbia).

Keith, A. B.—The Constitution, Administration & Laws of the Empire (Collins 1924).

Newton, A. P.—Federal and Unified Constitutions, pp. 295-301, 311-358 and Introduction.

Portus, G. V.—Studies in the Australian Constitution 1933 (London).

Quick & Garron—Annotated Constitution of the Australian Commonwealth (London 1901).

Sharma, B. M.—Federal Polity, Chs II C (vi), III & IV, (U. I P. H Lucknow 1931)

Wheare, K. C—The Statute of Westminster, (Oxford 1933).

Wood, F. L W—The Constitutional Development of Australia pp200-251(Harrap, London 1933)

Select Constitutions of the World pp. 309-352

# अध्याय १४

## दक्षिण अफ्रीका का संघ-शासन

"उपनिवेशों का यह संघ दक्षिण-अफ्रीका में बसने वाली जातियों को मिलाकर एक करने के काम में बड़ी उन्नति का परिचायक है। दक्षिण अफ्रीका के निवासियों में कुछ अंगरेज है, कुछ डच हैं और कुछ फ्रांसीसी। इनके पूर्व पुरुषों ने इतिहास के लम्बे समय में बड़े बड़े कष्ट सहे और स्वतंत्रता के लिये संघर्ष किया। उन्होंने कारावास, निर्वासन व सम्पत्ति-हरण, यह सब सहा और युद्ध के मैदान में व फांसी के तख्ते पर चढ़ कर नागरिक व धार्मिक स्वतंत्रता के लिये प्राण त्याग किया।" (दी अर्ल आफ क्रू)

### शासन विधान का इतिहास

ब्रिटिश साम्राज्य के स्वायत्त-शासन वाले उपनिवेशो में दक्षिण अफ्रीका में सब से अन्त में सघ शासन की स्थापना हुई।

सन् १६०० तक—दक्षिण अफ्रीका का क्षेत्रफल ४७२,४६५ वर्ग मील, और जनसख्या ११ ४१८,३४६ है जिसमें से २,३७२,६६० यूरोपियन लोग है और बचे हुये वहा के मूल निवासी हैं। यूरोपियनो में ५८ प्रतिशत डच भाषा की अपभ्र श भाषा जो अफ्रीकास कहलाती है, बोलते हैं और शेष अंगरेजी भाषा बोलते हैं। दक्षिण अफ्रीका में सबसे प्रथम डच लोग आकर बसे थे और उन्होंने केप कालोनी (Cape Colony) की स्थापना की। सन् १८१४ में हालैंड ने इसे अंगरेजों को अर्पण कर दिया। बाद में अंगरेजों के आने से केप कालोनी में अंगरेजो की सख्या बढ़ गई और यहाँ उद्योग की बड़ी उन्नति हुई।

डच लोगो ने जब यह देखा कि केप कालोनी में अंगरेजो के बहुसख्यक होने से उनका भविष्य आशाजनक नही है, तो वे उत्तर की ओर चलने लगे और एक दूसरे डच स्वतन्त्र-राज्य की स्थापना की जिसका नाम ओरेन्ज रिवर कोलोनी (Orange River Colony) रखा और जिसको अंगरेजो ने सन् १६०० में अपने उपनिवेशो में शामिल कर लिया। जब और भीतरी प्रदेश में सोने व चांदी की खानों का पता लगा तो

इन डच वासियों ने उत्तर की ओर बढ़ना आरम्भ किया और एक तीसरे डच स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की जिसे ट्रान्सवाल (Transvaal) कहते हैं। इस राज्य को भी अंग्रेजों ने अपने राज्य में सन् १६०० में मिला लिया। दक्षिण अफ्रीका के बोअर युद्ध (Boer War) में डचों को अंग्रेजो ने हरा दिया जिसके फलस्वरूप ये उपनिवेश भी इंगलैंड के हाथ में आ गये और वह दक्षिण अफ्रीका का स्वामी बन बैठा।

चार स्वावलम्बी उपनिवेश—दक्षिण अफ्रीका के चारों उपनिवेशों (केप कालोनी, ओरेन्ज रिवर कालोनी, ट्रान्सवाल व नैटाल) का शासन प्रबन्ध एक दूसरे से बहुत दिनो तक पृथक पृथक चलता रहा। ऐतिहासिक विकास के भेद के अतिरिक्त इन उपनिवेशो के बहुत से हितो में पारस्परिक विरोध था जिससे वे एक दूसरे से अधिकाधिक दूर हटते जाते थे। इनकी आर्थिक स्थिति एक समान न थी। ट्रान्सवाल व्यापार में सबसे आगे था और डेलगोआ खाडी से सब व्यापार करता था। नैटाल का व्यापार डरबन बन्दरगाह के द्वारा होता था और केप कालोनी का केपटाउन द्वारा। इन उपनिवेशो की रेलो ने किरायो को घटा बढ़ाकर एक दूसरे को हानि पहुचाना आरम्भ किया जिससे एक बडे सघर्ष की सम्भावना होने लगी। इसके अतिरिक्त इनकी कर-सम्बन्धी नीति में मौलिक विभिन्नता थी। ट्रान्सवाल नि शुल्क व्यापार के पक्ष में था पर नैटाल और केप कालोनी सरक्षण चाहते थे, इसलिये नही कि उससे उनकी आय बढती पर वे यह भी चाहते थे कि उनके समुद्रतट के नगरो में उद्योग की उन्नति हो। तीसरी बात यह थी कि मूलनिवासियो के प्रति इन तीनो उपनिवेशो की नीति में बडा भेद था। गोरे लोगो व मूलनिवासियो की सख्या में १ व ४ का अनुपात होने से यह बडा भय था कि चारो उपनिवेशो की विभिन्न नीति से देश के लिय कोई बडी विपत्ति न खडी हो जाय।

संघ बनाने के प्रयत्न का आरम्भ—जो बातें इन उपनिवेशो को एक दूसरे से पृथक करती जा रही थी उन्हीं से यह भावना जागृत हुई कि सब इकाइयो का सघीकरण आवश्यक है। जब सीमा-कर सघ (Customs Union) बनाने के सब प्रयत्न विफल हो गये तो इस निरन्तर फूट व अलगाव के परिणामो से सजग रहने वाली केप प्रात की असेम्बली ने जून सन् १८७१ में एक प्रस्ताव पास किया जिसका आशय यह था कि ऐसी योजना बनाई जावे जिससे सारा दक्षिण अफ्रीका कुछ प्रातो में बाट दिया जाय और उनके ऊपर केन्द्रीय सघ सरकार की स्थापना हो। जब सघ योजना को पर्याप्त

समर्थन प्राप्त हो गया हो तो ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक अनुमति-दायक ऐक्ट पास कर दिया (The South African Confederation Act, 1877)। इस अधिनियम के उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुये अर्ल कारनार्वन ने कहा था "प्रस्तुत विधेयक केवल ढाचे और सिद्धात के रूप में है। इसमें आगामी सघ का ढांचा दिया हुआ है, शेष विस्तार विधेयक की बातें ब्रिटिश सरकार और स्थानीय सरकार के बीच तय होने को छोड दी गई हैं। मुख्य रूप से यह विधेयक अनुमतिदायक ही है, इससे उपनिवेशो पर किसी प्रकार का दवाव नही डाला जायगा पर साथ साथ उनको सघ बनाने का पूरा अवसर प्राप्त रहेगा, यदि वे ऐसा हितकारक समझें"। इस अधिनियम में यह उपबन्ध कर दिया गया था कि यदि इस अधिनियम के पास होने के पाच वर्ष तक अधिनियम के अनुसार सघ न बनावें तो अधिनियम स्वय ही समाप्त हो जायगा। और क्योंकि उपनिवेशो ने यह सघ नही बनाया यह अधिनियम सन् १८८२ में समाप्त हो गया।

**सन् १९०३ की उपनिवेशो की कांफ्रेंस**—सन् १८८४ में अफीकदर नेशनल पार्टी का सगठन हुआ जिसका उद्देश्य यह था कि सब यूरोपियनो को एक सघ सरकार की आधीनता में सगठित किया जाय। "पर डचो और अंग्रेजो में बढते हुये विरोध से ऐसे सघ की स्थापना असम्भव हो गई।" इसी बीच म आर्थिक समस्या इतनी महत्वपूर्ण बन गई कि सन् १९०३ में निराक्रम्य-सघ कांफ्रेंस बुलाई गई इसने निराक्रम्यसघ स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया रेल के किराये के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई और मूलनिवासियो के प्रश्न पर सहमत होने का प्रयत्न किया। इस पर ब्रिटिश सरकार ने एक परिषद आदेश (Order-in-Council) जारी कर दिया। जिससे दक्षिण अफ्रीका में इटर-कालोनियल कौंसिल (Inter-colonial-Council) रेल व दूसरे आर्थिक प्रश्नो के हाथ में लेने के लिये बनाई गई। तीन वर्ष के बाद १९०६ म निराक्रम्य सम्मेलन हुआ और निराक्रम्य-सघ स्थापित करने का प्रस्ताव पास किया। पर सन् १८७१ से लेकर किसी प्रकार के सघ के लिये भी जो प्रयत्न हुए वे उपनिवेश सरकारो द्वारा ही आरम्भ हुए थे, जनता की उसमें कोई राय न ली गई थी, इसलिए वे सब निष्फल रहे। सन् १९०७ के जन मास में दक्षिण अफ्रीका के हाई कमिश्नर अर्ल सैलबोर्न ने केप कालोनी के गवर्नर का एक पत्र भेजा जिसमें उन्होंने अपना यह दृढ मत प्रकट किया कि यदि सघ का प्रयत्न सफल होगा, तो वह तभी, जब जनता स्वय इस प्रश्न को अपने हाथ में लेकर चले। सघ की आवश्यकता पर जोर देते हुए

उन्होंने लिखा 'सर्वश्रेष्ठ देश का संयोजन करना कोई ऐसा कार्य, नहीं जिसे किसी दूसरे सुविधापूर्ण अवसर के लिए टाला जा सकता हो। यदि उपनिवेशों को जैसे का तैसा छोड़ दिया जाय तो उनके दिन पर दिन पक्के व स्थायी होने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती और अन्त में एक दृढ़ संयोजन की सम्भावना असम्भव हो जाती है" ।

सन् १६०८ की कांफ्रेंस—सन् १६०८ की मई में उपनिवेशों की कान्फेंस फिर हुई और रेल के किराये व कर सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हुआ। पर संयुक्त राष्ट्र अमरीका की अनापोलिस कान्फ्रेंस के समान यहां भी यह प्रस्ताव पास हुआ कि 'इस कान्फेंस की राय में दक्षिण अफ्रीका का सर्वोच्च हित-साधन व उसकी समृद्धि ब्रिटेन की छत्रछाया में उपनिवेशों के संघीभूत होने से प्राप्त हो सकती है।" इस कान्फ्रेंस में यह प्रस्ताव भी पास हुआ कि उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन हो जो संविधान का प्रारूप तैयार करे। इन सिफारिशों को स्वीकार करते हुए चारों उपनिवेशों व रोडेशिया की विधान मंडलों ने अपने अपने प्रतिनिधि नियुक्त किए। ये ३३ प्रतिनिधि १२ अक्टूबर सन् १६०८ को डरबन नगर में एक सम्मेलन में एकत्रित हुए। इन प्रतिनिधियों में बहुत से ऐसे थे जो बोअर युद्ध में एक दूसरे के विरुद्ध लड़े थे और क्योंकि उन्हें ऐसे मामलों पर विचार करना था जिस पर आपस में भारी मतभेद था, उन्होंने अपनी बैठकें गुप्त रखीं। पहले डरबन में वाद विवाद प्रारम्भ हुआ फिर सम्मेलन हट कर केपटाउन में निश्चय हुआ। इसके सामने बहुत ही जटिल समस्यायें थीं। जाति-विभेद आर्थिक मतभेद और विभिन्न अधिनियम-प्रणालियां ये सब इतने महत्वपूर्ण प्रश्न थे कि उनको हल करना और तब संघ की शर्तों पर सबको सहमत करना बड़ा कठिन काम था। अन्त में एक संविधान का प्रारूप तैयार हुआ और उपनिवेशों की पालियामेंटों के सम्मुख रखा गया। ट्रांसवाल की पालियामेंट ने इसे बिना संशोधन के पास कर दिया। औरेंज रीवर कालोनी ने कुछ संशोधनों के सुझाव किये जो साधारण थे। केप कालोनी में कुछ विशेष महत्वपूर्ण संशोधन किये जो समान अधिकार देने व अनुपाती प्रतिनिधित्व को मिटाने से सम्बन्ध रखते थे। नेटाल ने तो ऐसे संशोधन किये कि उनके परिणाम स्वरूप सम्मेलन का काम ही रुक गया।

सम्मेलन का अधिवेशन फिर ब्लौमफोन्टेन में इन सब संशोधनों पर विचार करने के लिए हुआ। प्रारूप में कुछ परिवर्तन कर दिये गये और प्रारूप सब प्रतिनिधियों ने स्वीकार कर लिया। यह परिवर्तित प्रारूप फिर उपनिवेशों की पालियामेंटों के सामने रखा गया। ट्रांसवाल, औरेंज रिवर

कालोनी और केप कालोनी ने इसी को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया पर नैटाल ने जो संघ से सशंकित था, इसे जनमत के लिए रखा। इस लोकनिर्णय के परिणाम के सम्बद्ध में तरह-तरह की आशंकायें रहते हुए भी नैटाल की जनता ने अधिक बहुमत से इसे स्वीकार किया।

इस प्रकार सम्मेलन का सबसे कठिन कार्य सफलता पूर्वक समाप्त हुआ। तब उपनिवेशो के प्रतिनिधि इंगलैंड गए और प्रारुप को पालियामेंट के सामने प्रस्तुत कराया। पालियामेंट ने इसे स्वीकार कर यूनियन आफ साउथ अफ्रीका एक्ट (Union of South Africa Act) २० सितम्बर सन् १६०६ को पास किया। ३१ मई सन् १६१० को चारों उपनिवेश विधिपूर्वक एक संघ मे सम्बद्ध हो गये जिससे उनकी समस्यायें सदा के लिये हल हो गई। इस संघर्ष को दक्षिण अफ्रीका का संघ (Union of South Africa) कहते है।

तब से संघ की पालियामेंट अर्थात् ससद ने १६०६ के शासन-विधान मे १६ संशोधन किये है, कुछ साधारण केवल शाब्दिक व कुछ अधिक महत्व-पूर्ण। सन् १६३४ में जो सशोधन हुआ वह स्टेटस आफ दी यूनियन एक्ट (Status of the Union Act) के द्वारा हुआ। इससे वेस्टमिंस्टर व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया। इस एक्ट की दूसरी धारा थी "यूनियन की पालियामेंट यूनियन में सबसे सार्वभौम विधायनी शक्ति होगी और किसी दूसरे कानून के होते हुए भी इगलैंड को पालियामेंट का कोई कानून ११ दिसम्बर सन् १६३१ के बाद यूनियन के कानून के रूप में मान्य न होगा जब तक उस को यूनियन की पालियामेंट के एक्ट (अधिनियम) से मान्य न ठहराया गया हो।"

## सन् १६०६ का शासन-विधान

**शासन-विधान की विशेपतायें**—"शासन-विधान की प्रमुख विशेषता स्यात् अनागत पर इसका भरोसा है।"* ये श्री ब्राड के वचन हैं जो राष्ट्रीय सम्मेलन में ट्रासवाल प्रतिनिधि-मडल के मन्त्री थे। इसमें कुछ सच्चाई भी हैं। सघर्ष के बनने से पूर्व इसके हिस्सेदार डच व अंग्रेज दोनो एक दूसरे की ओर से व सरकार की ओर से अत्यन्त सदिग्ध चित्त रहते थे फिर भी भविष्य का भरोसा कर उन्होंने एक दूसरे के दृष्टिकोण का आदर करने के लिए अनेक बातों में समझौता किया। उस समय की स्थिति में कोई भी यह नही कह सकता था कि उनमें इतना निकट सबन्ध स्थापित हो सकेगा। सम्मेलन के

* यूनियन आफ साउथ अफ्रीका ० ११४

प्रतिनिधियों ने वास्तव में ऐसा शासन-विधान बना कर विस्मयकारक काम किया, क्योंकि संघ-शासन की बहुत सी विशेषताओं को रखते हुए भी इसकी मूलभावना एकात्मक है।

*एकात्मक विशेषतायें*—यह केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तियां देता और प्रांतों को केवल प्रशासन इकाइयों जैसा पद देता है जो अपने विधायिनी कार्यकारी व न्यायिक कार्यों के लिए केन्द्रीय-सत्ता पर निर्भर रहती हैं। यूनियन की प्रांतीय सरकारें अधिकतर केन्द्र से सौंपी हुई शक्तियों का उपभोग करती हैं और उनकी विधायिनी योजनायें केवल अध्यादेश (Ordinances) ही होते हैं, अधिनियम (Law) नहीं होते। प्रांतीय कार्यपालिकाओं के अध्यक्ष प्रशासक (Administrators) कहलाते हैं न कि गवर्नर या लैफ्टिनैण्ट गवर्नर। संघ सरकार प्रांतीय सरकारों को कोई भी शक्ति सौंप सकती है। संविधान की प्रस्तावना में संघ की प्रजा की इच्छा के बारे में कुछ भी नहीं कहा गया है हालांकि शासन विधान का प्रारूप उपनिवेशी सरकारों के प्रतिनिधियों ने बनाया था और कम से कम एक उपनिवेश नैटाल में यह मसविदा लोक निर्णय के लिये भी रखा गया था।

*संघात्मक विशेषतायें*—यद्यपि राज्य सगठन की मूलभावना एकात्मक (Unitary) है पर इसमें कुछ बातें ऐसी हैं जिनसे यह संघात्मक प्रतीत होता है। स्वयं प्रस्तावना में भी स्थानीय मामलों में व ऐसे मामलों में जो प्रांतीय व्यवस्थापन और प्रशासन के लिए आरक्षित हों अधिनियम व प्रशासन सत्ता वाले प्रान्तों के स्थापित करने के लिए कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि केन्द्रीय सरकार को असीमित अधिकार नहीं है। डच और अंग्रेजी दोनों भाषायें मान्य हैं जिनमें सब सरकारी आलेख छपते हैं। कनाडा में भी फ्रांसीसी व अंग्रेजी भाषायें फ्रांसीसी व अंग्रेज बसने वालों को संतुष्ट करने के लिए मान्य करनी पड़ी थीं। इसके विपरीत आस्ट्रेलिया में भाषा का प्रश्न न था न वहां जाति-सम्बन्धी समस्या सुलझानी थी। दक्षिण अफ्रीका में सीनेट असेम्बली दोनों सघागार प्रान्तीय आधार पर बनी हैं जो निःसन्देह संघात्मक गुण है। संघ की राजधानी स्थापित करने में भी समझौता हुआ है, केपटाउन में विधान-मंडल स्थित है प्रिटोरिया में कार्यपालिका रहती है और ब्लोम फौनटीन में सर्वोच्च न्यायालय स्थित है। इस व्यवस्था से प्रान्तों का मान रखने का प्रयत्न किया गया है पर इससे अधिक व्यय होता है और प्रशासन भी अच्छे ढंग से नहीं हो पाता*। मूलवासियों के प्रतिनिधि सम्बन्धी, शिक्षा व मताधिकार

---

*कीथ कन्स्टीट्यूशनल ला आफ दी डोमिनिअन्स, पृ० २६२

सम्बन्धी सब विषय अनन्यरूप से सब प्रान्तो के लिए उपेक्षित है। प्रातो की सीमायें वही है जो सघ बनने से पूर्व उपनिवेशो की थी। सीनेट मे सब प्रान्तो को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है हालाकि केन्द्रीय सरकार द्वारा आठ सीनेट सदस्यो के मनोनीत किये जाने का भी प्रावधान है। यह सब समझौते की आधारभूत विशेषतायें सविधान को सघात्मक रूप प्रदान करती है।

आस्ट्रेलिया के सविधान के विपरीत दक्षिण अफ्रीका के सविधान में कार्यपालिका का वर्णन पार्लियामेंट के वर्णन से पूर्व किया गया है। यह बहुत कुछ डच लोगो की उस प्रवृत्ति का परिणाम है जिसके वश होकर वे समय विशेष की स्थिति सरकार पर अधिक भरोसा करते है। उनमें यह दृढ भावना है कि सरकार की आलोचना करना विश्वासघात है।

**मिला जुला शासन विधान**—सब बातो को ध्यान मे रखते हुए यह स्पष्ट है कि शासन विधान एकात्मक व सघात्मक सिद्धान्तो का अनुपम समन्वय है जिसका उद्देश्य दो यूरोपियन जातियो को मिलाना है। और यद्यपि तब से अब तक डच व अग्रज मिलकर एक नही हुए (हो भी कैसे सकते थे) फिर भी ब्रिटिश दक्षिण अफ्रीका ने भूतकालिक नीतियों के लिखने वाले देवदूत को कम से कम विलाप करने के लिए काफी मसाला दे दिया है"[1]।

## संघ सरकार

यद्यपि सघ सरकार की सृष्टि स्वतत्र प्रान्तो के द्वारा ही हुई है पर प्रान्तीय सरकारो के ऊपर इसका पूर्ण अधिकार है। सघ शासन विधान ने इन प्रान्तीय सरकारो के स्तर को केवल स्थानीय शासन सस्थाये भर रहने दिया है। इसलिए *मताधिकार व नीची श्रेणियो में शिक्षा आदि के अतिरिक्त* केन्द्रीय सरकार की शक्ति पर कोई बडी रोक-थाम नही है।

**संघ विधान मडल**—सघ की विधायिनी शक्ति पार्लियामेंट मे विहित है। जो राजा, सीनेट व असम्बली तीनो को मिलाकर कही जाती है। पार्लियामेंट की शक्ति सुव्यवस्था व सुशासन के लिए सब प्रकार के अधिनियम अर्थात् कानून बनाने का अधिकार है*। इसके विपरीत सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, आस्ट्रलिया व कनाडा में केन्द्रीय विधानमडलो के अधिकारो की सीमा नियत कर दी गई है और कही कही समवर्ती व शेष शक्तियां भी उन्हें दे दी गई है।

**सीनेट**—सीनट सघ पार्लियामेंट का उपरी सदन है। इसका सगठन

---

[1] इगरटन- फेडरेश स एण्ड यूनियन्स इन ब्रिटिश एम्पायर पृ० ८१।

* साउथ अफ्रीका एक्ट १६०६ की ५६ वीं धारा।

अनुपम है। यद्यपि चारों प्रान्तों में से हर एक को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है अर्थात् प्रत्येक ८ प्रतिनिधि भेज सकता है, पर गवर्नर जनरल भी ८ सदस्यों को मनोनीत करता है जो दस वर्ष तक सदस्य बने रहते हैं। इस प्रकार सीनेट के सदस्यों की कुल संख्या ४० है। गवर्नर जनरल के मनोनीत सदस्यों में आधे केवल इसलिए चुने जाते हैं कि उन्हें अपने सरकारी पद के नाते या और किसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका की सवर्ण जातियों की युक्तिसंगत आवश्यकताओं व इच्छाओं की पूर्ण जानकारी है (एक्ट की २४ (ii) धारा)। यह इसलिए आवश्यक समझा गया क्योंकि सवर्ण जातियों जो दक्षिण अफ्रीका की जन संख्या का ८० प्रतिशत भाग है प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व से वंचित हैं और वहां स्वायत्त शासन का अर्थ गोरे लोगों के शासन से ही है।

**सीनेट के सदस्यों का निर्वाचन**—प्रथम सीनेट के सदस्यों को चुनने के लिए एक ऐसी अनुपम रीति अपनाई गई जो किसी दूसरे शासन विधान में नहीं मिलती। प्रत्येक प्रांत के दोनों सदनों ने मिलकर अपने आठ प्रतिनिधि चुने जो दस वर्ष तक सीनेट के सदस्य नियुक्त हुए। इस वर्ष के समय में यदि किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो तो बची हुई अवधि के लिये प्रांतीय कौंसिल उसको भरती थी। एक्ट की २४ की धारा से बाद की सीनेटों के संगठित करने की रीति निश्चित कर दी गई थी। यह रचना इस प्रकार थी गवर्नर जनरल के मनोनीत आठ सदस्य व प्रत्येक प्रांत के आठ प्रतिनिधि जिनको प्रांतीय कौंसिल के सदस्य व उस प्रांत के केन्द्रीय विधानमंडल के सदस्य मिलकर चुनते थे। इस प्रकार इस समय प्रांतीय सीनेट के सदस्य न जनता द्वारा सीधे चुने जाते हैं न केवल प्रांतीय कौंसिल द्वारा पर वे ऐसे निर्वाचनक्षेत्र से चुने जाते हैं जिसमें प्रांतीय कौंसिल के सदस्य व केन्द्रीय विधानमंडल में उस प्रांत के प्रतिनिधि होते हैं। इससे स्पष्ट है कि दक्षिणी अफ्रीका की सीनेट दूसरे संघ शासनों की सीनेटों की अपेक्षा अधिक संघात्मक ढंग पर निर्मित होती है।

**सीनेट के सदस्यों की योग्यता**—सीनेट के सदस्यों की आयु तीस वर्ष की होनी चाहिए, उसे असेम्बली के सदस्यों को निर्वाचित करने वाला मतदाता (Voter) होना चाहिए, संघ का पांच वर्ष का निवासी होना चाहिये, यूरोपियन जाति का ब्रिटिश जानपद होना चाहिए और बन्धक सम्पत्ति के अतिरिक्त ५०० पौंड या उससे अधिक मूल्य की अचल सम्पत्ति का स्वामी होना चाहिए। इस प्रकार आस्ट्रेलिया और अमरीका की सीनेट की अपेक्षा अफ्रीका की सीनेट कम लोकतन्त्रात्मक है।

**सीनेट की कार्यपद्धति**—सीनेट की अवधि दस साल की है। यह

अपना सभापति स्वय चुन लेती है। गणपूरक सख्या के लिए १२ सदस्यो का उपस्थित होना आवश्यक है। सब निर्णय मताधिक्य से होते है। सभापति केवल तभी अपना निर्णायक मत दे सकता है जब किसी प्रश्न के पक्ष व विपक्ष में मतो की सख्या बराबर हो, अन्यथा नही।

**हाउस आफ असेम्बली**—यह पार्लियामेंट का निचला सदन है जिसमें इस समय १५० सदस्य है। यह सख्या सन् १९३१ की जनगणना के सम्बन्ध में नियुक्त छठे परिसीमन कमीशन (Delimitation Commission) की सिफारिश पर निश्चित की गई थी। इन सदस्यो का निर्वाचन प्रातीय निर्वाचन-क्षेत्रो से होता है। सन् १९४६ के निश्चय के अनुसार ये सदस्य इस सख्या में प्रत्येक प्रात से चुने जाते है --केप आफ गुड होप अर्थात् उत्तमाशा अन्तरीप से ५५, नेटाल मे १६, ट्रासवाल से ६६ और औरज फ्री स्टेट से १३।

प्रथम असेम्बली में प्रातीय प्रतिनिधियो की सख्या यो ही मनचाही ढग पर निश्चित कर दी गई थी। केप व ट्रासवाल को (उनकी गोरे निवासियो की सख्या देखते हुये) कम प्रतिनिधित्व दिया गया जिससे नैटाल और औरेंज फ्री स्टेट को अधिक प्रतिनिधित्व मिल सके। सविधान ने प्रत्येक प्रात को एक पृथक इकाई मान लिया है (जो एक सघात्मक गुण है) और इसके लिए यह प्रावधान कर दिया है कि सघ स्थापना के दस वर्ष तक या उस समय तक जब असेम्बली के सदस्यो की सख्या १२० तक पहुँच जाय (सन् १९१० में यह सख्या १११ थी) जो कोई भी लम्बा समय हो, किसी भी प्रात के प्रतिनिधियो की सख्या कम नही की जायगी। यह भी निश्चय कर दिया गया है कि प्रति पांच वर्ष बाद यूरोपिय निवासियो की गणना की जाय और सबसे हाल की प्राप्त सख्या के आधार पर असेम्बली के सदस्यो की सख्या में निम्नलिखित योजनानुसार परिवर्तन कर दिया जायगा —

(1) सबसे प्रथम सन् १९०४ की जनगणना के अनुसार यूरोपियन प्रौढ पुरुषो की सख्या म (यह सख्या ३४९, ८३७ थी) प्रथम असेम्बली के सदस्यों की सख्या (यह सख्या १११ थी) से भाग देकर सघ का आनुपातिक हिस्सा निश्चित कर लिया जाय। इस प्रकार निश्चित हुआ प्रत्येक सदस्य का हिस्सा ३१५१ है।

(ii) प्रति पाच वर्ष बाद यूरोपियन प्रौढ पुरुषो की गणना की जायगी और यदि किसी प्रान्त म उनकी सख्या बढ जाय तो प्रत्येक ३१५१ की बढती के लिये उस प्रान्त के प्रतिनिधियो की सख्या में एक व्यक्ति बढा दिया जायगा। परन्तु प्रतिनिधियो की सख्या में यह वृद्धि उस समय तक न की जायेगी जब

तब उस प्रान्त में यूरोपियन और पुरुषों की संख्या ३१५१ से तत्कालीन प्रतिनिधियों की संख्या से गुणा करने से प्राप्त संख्या जितनी अधिक हो उसी हिसाब से प्रतिनिधियों की संख्या की वृद्धि की जायेगी। यह प्रतिबन्ध इसलिये आवश्यक था क्योंकि प्रारम्भ में प्रत्येक प्रान्त के लिये निश्चित प्रतिनिधियों की संख्या अनुपाती हिस्से के आधार पर निर्णीत न हुई थी, दो प्रान्तों को अपने हिस्से से कम और दो को अधिक प्रतिनिधित्व मिला हुआ था।

**मताधिकार और सदस्यों की योग्यतायें**—असेम्बली के मतदाताओं की योग्यतायें सन् १९३० के ३८ वें और सन् १९३१ के ४१ वें एक्ट में निश्चित हैं। पहले एक्ट से सब और यूरोपियन स्त्रियां भी मताधिकारिणी बना दी गईं। दूसरे से केप व नेटाल प्रान्त में मतदाता के सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता की शर्त दूर कर दी गई। इस प्रकार यूरोपियनों के लिये प्रौढ़मताधिकार प्रचलित है। असेम्बली के सदस्य प्रत्येक प्रान्त के एक प्रतिनिधिक निर्वाचन क्षेत्रों से चुने जाते हैं। प्रति पांच वर्ष बाद गवर्नर-जनरल से नियुक्त सर्वोच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों का परिसीमन कमीशन (Delimitation Commission) इन निर्वाचन क्षेत्रों का पुनर्संगठन करता है। प्रान्त को निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित करने में कमीशन यातायात के मार्गों, प्राकृतिक स्थिति, वर्तमान क्षेत्र सीमाओं, हितों की भिन्नता या समानता तथा आबादी का घनत्व या विरलत्व (Sparsity) आदि का उचित ध्यान रखता है। निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन मतधारकों की निश्चित संख्या (अर्थात् ३१५१) के आधार पर किया जाता है पर कमीशन आवश्यकता पड़ने पर इस संख्या से कम या अधिक संख्या के आधार पर भी विभाजन कर सकता है। यदि यह कमी या अधिकता निश्चित संख्या के १५ प्रतिशत की सीमा के भीतर हो। कमीशन जब ब्यौरेवार अपने प्रस्ताव तैयार कर लेता है, तो गवर्नर-जनरल उनकी घोषणा कर उन्हें अन्तिम निर्णय का रूप दे देता है।

असेम्बली के उम्मीदवार का असेम्बली के सदस्यों के चुनने वाला मतदाता होना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि वह यूनियन में पांच वर्ष तक रह चुका हो और यूरोपियन जाति का ब्रिटिश अधीन हो।

**असेम्बली का संगठन**—असेम्बली की अवधि पांच वर्ष है पर गवर्नर-जनरल इस अवधि से पूर्व भी उसका विघटन कर सकता है। असेम्बली अपने सदस्यों में से एक को अपना स्पीकर अर्थात् सभापति चुनती है। कम से कम ३० सदस्यों का गणपूरक होता है। असेम्बली के सब निर्णय मताधिक्य

से होते हैं। स्पीकर को मतो को पक्ष व विपक्ष में संख्या बराबर होने पर ही मत देने का अधिकार है अन्यथा नही।

प्रत्येक सदस्य को सदन म स्थान ग्रहण करने के पूर्व निष्ठा की शपथ लेनी पडती है। कोई भी व्यक्ति एक समय में दोनो सदनो का सदस्य नही हो सकता पर मंत्री जो एक सदन का सदस्य है दूसरे सदन मे भी भाषण दे सकता है पर वहा मत देने का अधिकार उसे नही होता। यदि कोई सदस्य ऐसा अपराध कर डाले जिसके लिये उसे कम से कम एक वर्ष के कारावास का दण्ड मिले और उसे इस कारावास के दण्ड को जुर्माने के रूप मे बदलवाने की स्वतन्त्रता न दी गई हो तो वह असेम्बली का सदस्य नही रहता।

कोई सदस्य दिवालिया घोषित होने पर मानसिक रोग से पीडित कहे जाने पर या किसी लाभदायक सरकारी पद पर आसीन किये जाने पर भी सदस्य नही रहता। पर अंतिम निर्योग्यता मंत्रियो, पेंशन पाने वालो और अवकाश प्राप्त सैनिक अफसरो पर लागू नही समझी जाती। सीनेट और असेम्बली के प्रत्येक सदस्य को कुछ भत्ता मिलता है और सदस्य रहने के समय आमतौर पर मिलने वाली सब मुक्तियाँ, अधिकार व सुविधायें प्राप्त रहती हैं।

**पार्लियामेंट स्वयं अपने नियम बनाती है**—प्रत्येक सदन स्वयं ही अपने काम करने के नियमो व कार्यपद्धति को निश्चित करता है। दोनो सदनो की शक्तियाँ एक समान हैं पर मुद्राविधेयक असेम्बली में ही प्रथम रखे जाते हैं। जब दोनो सदन किसी विधेयक को पास कर देते हैं तो वह गवर्नर जनरल की अनुमति के लिये भेजा जाता है। गवर्नर जनरल को यह अधिकार है कि पार्लियामेंट के पास हुए किसी विधेयक में, पार्लियामेंट से उसमे संशोधन करने की सिफारिश करे। वह किसी भी विधेयक को सम्राट की अनुमति के लिये आरक्षित कर सकता है पर यह अनुमति एक वर्ष के भीतर ही मिलनी चाहिये।

**दोनो सदनो का पारस्परिक सम्बन्ध**—यदि असेम्बली किसी विधेयक को पास कर दे और सीनेट उसे पास करने से इन्कार करे या उसे ऐसे संशोधनो से पास करे जिन्हे असेम्बली मानने को तैयार नही है, तो वह विधेयक असेम्बली को वापस भेज दिया जाता है। यदि उसी सत्र में असेम्बली उसे ऐसे रूप में फिर पास करे जो सीनेट को नापसन्द हो तो गवर्नर-जनरल सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता है। इस संयुक्त अधिवेशन में असेम्बली

से अन्तिम बार प्रस्तावित योजना पर व ऐसे संशोधनों पर जिनका एक सदन ने प्रस्ताव किया हो पर दूसरे ने न माना हो विचार किया जाता है यदि दोनों सदनों के सदस्यों की संख्या के बहुमत से कोई संशोधन स्वीकार होता है तो यह दोनों सदनों से पास किया हुआ समझा जाता है और यदि विधेयक संशोधन सहित उपस्थित सदस्यों के बहुमत से स्वीकार हो जाता है तो विधिपूर्वक पास समझा जाता है। उसके बाद यह गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिये भेज दिया जाता है।

दोनों सदनों में मतभेद को मिटाने वाली पद्धति आस्ट्रेलिया की तत्सम्बन्धी पद्धति से अधिक सरल है इसलिये अधिक उत्तम है और व्यवस्थापन कार्य में सहायता देती है।

## संघ-कार्यपालिका

स्टेटस आफ दी यूनियन एक्ट (Status of the Union Act) की चौथी धारा के प्रथम खंड के अनुसार आन्तरिक व बाहरी सब मामलों में संघ की कार्यपालिका सत्ता राजा में विहित है जो संघ के मन्त्रियों की सलाह से कार्य करता है। राजा इस सत्ता का व्यावहारिक प्रयोग स्वयं कर सकता है या अपने प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल द्वारा करा सकता है। खंड ( २ ) में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि एक्ट में जहां कहीं राजा का वर्णन है उससे संघ के मन्त्रियों की सलाह पर कार्य करने वाला राजा का ही अर्थ लगाना चाहिये।

अब गवर्नर-जनरल केवल संघ का वैधानिक अध्यक्ष भर ही रह गया है और राजा के नाम से संघ की सब सेनाओं का सेनापति होता है।

संघ के शासन कार्य में गवर्नर जनरल को सलाह देने के लिये मन्त्रियों की एक कार्यपालिका कौंसिल है। इस कौंसिल के सदस्यों को गवर्नर जनरल चुनता है और चुने जाने पर शपथ लेकर कौंसिल के सदस्य का स्थान ग्रहण करवाता है। कम से कम सिद्धांतत गवर्नर जनरल का अनुग्रह रहने समय तक ये सदस्य अपने पद पर आसीन रहते हैं। कार्यपालिका के सदस्य जो जो मन्त्री कहलाते हैं, चुनने में गवर्नर-जनरल प्रचलित वैधानिक प्रथा के अनुसार पार्लियामेंट में बहुमत वाले पक्ष के नेता को प्रधान मन्त्री का पद स्वीकार करने के लिये बुलाता है। यह प्रधान मन्त्री तब अपने साथी मन्त्रियों को चुनता है और उनके नाम गवर्नर-जनरल को भेजता है जो उन्हें स्वीकार कर मन्त्री नियुक्त कर देता है। मन्त्रियों का सगठित रूप मन्त्रिपरिषद् कहलाता है। ये मन्त्री आगे वर्णन किये हुए शासन विभागों का प्रबन्ध व देखभाल करते हैं। वैदेशिक

विभाग, आन्तरिक विभाग, स्वास्थ्य व शिक्षा विभाग, खान विभाग, रेल व सुरक्षा विभाग, अर्थ-विभाग, न्याय-विभाग, श्रम-विभाग, कृषि विभाग, भूमि-विभाग, तार डाक व लोक निर्माण विभाग और मूल निवासियों के मामलों का विभाग।

मन्त्रिपरिषद् सामुदायिक रूप में असेम्बली को उत्तरदायी है और उसका विश्वास खोने पर पदत्याग कर देती हैं। रेल, बन्दरगाह व डाकखाने का प्रबन्ध एक बोर्ड के द्वारा होता है जिसका अध्यक्ष तत्सम्बन्धी मंत्री होता है। दिन प्रतिदिन के शासन सचालन के लिये सिविल सर्विस के कर्मचारियों की बड़ी सख्या है। डच और अगरेजी दोनों भाषायें राजभाषायें मानी जाती हैं।

## संघ-न्यायपालिका

सघ का सामान्य कानून अगरेजी कानून नही, वरन् हालैंड का रोमन डच कानून है जो अधिकतर लिखित है। पर कुछ मामलो मे, जैसे व्यापार, कम्पनिया, प्रतिलिप्याधिकार आदि में अगरेजी कानून वर्ता जाता है। हा अगरेजी कानून अप्रकट रूप से व्यावहारिक व अपराध सम्बन्धी पद्धति पर अपना धीरे धीरे प्रभाव अवश्य डाल रहा है और बीमा व दूसरे व्यापारिक मामलो में निश्चयरूप से उसी के अनुसार कार्य होने लगा है।

विधान की ६५ वी धारा से एक सर्वोन्च न्यायालय की स्थापना की गई है। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश व चार छोटे न्यायाधीश होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के अधीन प्रातीय उच्च न्यायालय के अधीन भ्रमण-शील (Circuit Court) व मजिस्ट्रेट के न्यायालय हैं। गवर्नर जनरल कौंसिल की सलाह से सब न्यायाधीशों को नियुक्त करता है। ये लोग सद्व्यव-हार करते रहते समय तक अपने पद पर बने रहते हैं। और केवल तभी अपने पद से हटाये जा सकते हैं जब पार्लियामेंट के दोनों सदन तदर्थ एक ही सत्र मे किय जाने का निश्चय कर।

सर्वोच्च न्यायालय का पुर्नविचार विभाग सारे सघ का सबसे ऊँचा अपील सुनने वाला न्यायालय है जिसकी बैठकें औरेंज फ्री स्टेट की राजधानी ब्लोमफोन्टीन नगर म होती हैं। साधारणतया दक्षिण अफ्रीका के किसी उच्च न्यायालय के पुर्नविचारक विभाग के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल की न्याय समिति म अपील नही की जाती, पर राजा को अब भी इस सम्बन्ध में अपने विशेषाधिकार द्वारा ऐसी अपील की अनुमति देने का अधिकार है।

प्रान्तीय उच्च न्यायालयो को सब प्रान्तीय मामलो में प्रारम्भिक क्षेत्रा-धिकार रहने के अतिरिक्त उन सब मामलो में भी क्षेत्राधिकार है (क) जिनमें

सघ सरकार या सघ सरकार की ओर से कोई व्यक्ति, जो मुकदमा चला रहा हो या जिस पर मुकदमा चलाया गया हो, वादी या प्रतिवादी हो, और (ब) जिनमें किसी प्रान्तीय अधिनियम के वैध होने न होने का प्रश्न उठता है। असेम्बली के व प्रान्तीय कौंसिल के निर्वाचनों से सम्बन्धित मामले भी इन्हीं के क्षेत्राधिकार में हैं।

सघ का सर्वोच्च न्यायालय सब उच्च न्यायालयों व प्रान्तीय न्यायालयों में बरते जाने वाली कार्यपद्धति के सम्बन्ध में नियम निर्धारित करता है। इसके निर्णयों व आज्ञाओं का प्रत्येक प्रान्त में पालन होना है। इससे स्पष्ट है कि दक्षिण अफ्रीका सघ के सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति आस्ट्रेलिया के सर्वोच्च न्यायालय से अधिक है, परन्तु दक्षिण अफ्रीका में सर्वोच्च न्यायालय को सविधान की व्याख्या करने और सघ अधिनियमों के वैध-अवैध होने का निर्णय करने का अधिकार नहीं है।

## प्रान्तीय व स्थानीय सरकारें

सघ स्थापित होने से पूर्व के चार उपनिवेश सघ के प्रान्त बन गये थे और अब भी वे चार ही प्रान्त सघ के सदस्य हैं। उत्तमाशा अन्तरीप का प्रान्त, नैटाल, ट्रासवाल व ऑरेंज फ्री स्टेट। प्रान्तों को कुछ थोड़े से अधिकार हैं और उनको बहुत कुछ ऐसा स्थान प्राप्त है जैसा केन्द्रीय सरकार के आधीन प्रशासन इकाइयों को प्राप्त रहता है। प्रत्येक प्रान्त में एक विधान कौंसिल है जिसके सदस्यों की सख्या उस प्रान्त के सघ असेम्बली में बैठने वाले प्रतिनिधियों की सख्या के बराबर होती है। किन्तु यह सख्या किसी भी दशा में २५ से कम नहीं होती। इस समय इन प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों की सख्यायें इस प्रकार हैं—केप आफ गुड होप प्रान्त में ६१, नैटाल में ७५, ट्रासवाल में ५७ और ऑरेंज फ्री स्टेट में २५। सब प्रान्तों में यूरोपियन निवासियों को प्रौढ मताधिकार दिया गया है। प्रान्त का निवासी कोई भी मतदाता कौंसिल का सदस्य बनने के लिये उम्मेदवार खड़ा हो सकता है। प्रत्येक कौंसिल की अवधि पाच साल है और यह अवधि समय के बीतने पर ही समाप्त होती है और किसी प्रकार नहीं क्योंकि प्रान्तों में कार्यपालिका विधान मण्डल को उत्तरदायी नहीं है। प्रान्तीय कौंसिल वर्ष में एक बार अवश्य अपनी बैठक करती है। यह अपने सदस्यों में से अपना सभापति चुनती है और अपनी कार्यपद्धति के नियम स्वय बनाती है जो गवर्नर जनरल की अनुमति पाने के पूर्व लागू नहीं होते। कौंसिल के सदस्यों का सामान्य भत्ता मिलता

है और कौसिल में वाक् स्वतन्त्रता के अतिरिक्त सामान्य सुविधायें व मुक्तियां प्राप्त है। कौसिल मे सब प्रश्नो पर बहुमत से निर्णय होता है।

सन् १९०६ के सविधान की ८५ वी धारा के अन्तर्गत कौसिलो को निम्नलिखित विषयों में अधिनियम बनाने का अधिकार है:—

(१) प्रान्तीय आवश्यकताओ के लिए मुद्रा एकत्रित करने के लिए प्रत्यक्ष कर लगाना।

(२) पालियामेंट से बनाए हुए अधिनियमो के अनकूल और गवर्नर-जनरल व मत्रि परिषद् की अनुमति से प्रात की केवल निजी आकलन (credit) पर ऋण लेना।

(३) पांच साल तक उच्च शिक्षा को छोड़कर शेष शिक्षा का प्रबन्ध। उसके बाद जब तक पालियामेंट इसका कोई दूसरा प्रबन्ध न करे यही प्रबन्ध चलाते रहना।

(४) पालियामेंट से निर्णीत शर्तों के अनुसार कृषि का प्रबन्ध करना।

(५) धर्मार्थ सस्थाओ और चिकित्सालयों की स्थापना, भरण-पोषण व प्रबन्ध।

(६) नगर सस्थायें, प्रदेश कौसिलें व दूसरी इसी प्रकार की स्थानीय सस्थाये।

(७) प्रात के भीतर (रेल व बन्दरगाह और ऐसे निर्माणो को छोड कर जो प्रात की सीमा के बाहर तक फैलते हो) निर्माण कार्य करना। किन्तु यह सब पालियामेट का उस शक्ति के आधीन है जिसके द्वारा वह किसी भी लोक-निर्माण को राष्ट्रीय घोषित कर सकती है और उसकी देख-भाल आदि के लिये प्रातीय कौसिल द्वारा या किसी और प्रकार से प्रबन्ध करा सकती है।

(८) सडकें, पुल आदि—उन पुलो को छोडकर जो दो प्रान्तो को मिलाते हो।

(९) बाजारू पशुओ का बाडा।

(१०) मछली व बनजीवो की रक्षा।

(११) इस धारा में वर्णित विषयो के अन्तर्गत मामलो से सम्बन्धित किसी प्रान्तीय अधिनियम को कार्यान्वित करने के लिए जुर्माने या कारावास के दण्ड का विधान करना।

(१२) सामान्यत. वे सब विषय जो गवर्नर-जनरल-इन-कौसिल

(Governor-General-in-Council) की राय में केवल वैधानिक या स्थानीय सरकार में है।

(११) ऐसे सब विषय जिनके सम्बन्ध में पार्लियामेंट किसी कानून से अधिनियम बनाने की शक्ति किसी प्रान्तीय कौंसिल को सौंप दे।

यह बड़ी रोचक बात है कि संयुक्त-राष्ट्र अमरीका व आस्ट्रेलिया के संविधान में जहां केन्द्रीय सरकार की शक्तियां परिगणित कर दी हैं और जिनका विशेषतया विवरण संविधान में दे दिया गया है, शक्तियों की व्याख्या करने वाली धारा के अन्तिम शब्द ऐसे हैं जिनसे केन्द्रीय सरकार की शक्तियों को बढ़ाने का अवसर मिला हुआ है। दक्षिण अफ्रीका के संघ-शासन-विधान में भी ऐसे ही अन्तिम शब्द हैं पर उनसे प्रान्तीय सरकारों की शक्तियों को बढ़ाने का अवसर दिया गया है जैसा उपर्युक्त (१२) व (१३) अनुच्छेदों से स्पष्ट है। संयुक्त राज्य अमरीका व आस्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकारों ने अनुभव के आधार पर अपनी शक्तियां बढ़ा ली हैं पर दक्षिण अफ्रीका में यह प्रवृत्ति विपरीत दिशा में है। वहां प्रान्तीय सरकारों ने सन् १९१० के पश्चात् नई शक्तियां प्राप्त कर ली हैं। इन नई शक्तियों में से कुछ ये हैं हानिकारक वनस्पतियों व कीड़ों का नाश करना, गन्ने, चाय, अंगूर की कृषि करना, कृषि-संस्थाओं को अनुदान देना, पुस्तकालय कौतुकागार (Museums) और कुछ प्रजाभवन, निर्धनों की देख-भाल, दुकानों के समय का नियमन छोटे नगर बसाना व उनका प्रबन्ध करना आदि। केप प्रान्त में औद्योगिक संस्थाओं में श्रम अधिनियमों को लगाना और उन्हें कार्यान्वित कराना।* प्रान्तीय कौंसिलें गाड़ियां, घुड़दौड़ व मनोविनोद के स्थानों को लाइसेंस देती और उन पर नियन्त्रण रखती हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षणालयों की फीस चिकित्सालय की फीस और दूसरी बहुत सी फीस भी लगाती हैं। जब कभी कोई प्रान्तीय कौंसिल किसी ऐसे नये कानून को बनाना आवश्यक समझती है जिसके बनाने का अधिकार उसे स्वयं प्राप्त नहीं है तो वह संघ पार्लियामेंट से उस कानून को बनाने की प्रार्थना कर सकती है।

एक महत्वपूर्ण वैधानिक स्थिति ऐसी है जिसमें दक्षिण अफ्रीका की प्रान्तीय कौंसिलें आस्ट्रेलिया या संयुक्त राज्य अमेरिका के उपराज्यों की विधान मंडलों की अपेक्षा केन्द्रीय सरकार के अधिक अधीन हैं। प्रान्तीय विधान मंडल का बनाया हुआ कानून अध्यादेश (Ordinance) कहलाता है अधिनियम अर्थात् कानून (Law) नहीं। इस अधिनियम का भी कोई

---

*कीथ कन्स्टीट्यूशन, एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड लाज आफ दी एम्पायर पृ० २३२

प्रभाव नहीं होता जब तक गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल अपनी अनुमति उसके लिये न दे। यदि पास होने के एक वर्ष के समय के भीतर यह अनुमति न प्राप्त हो तो अधिनियम समाप्त हो जाता है। 'यह अनुमति केवल बाध्य व्यवहार ही नही होता। किन्तु इसका बडा महत्व रहता है क्योंकि इसका उपयोग इस नियम के पालन कराने मे किया जा सकता है और किया गया है कि मूलनिवासियो से सम्बन्धित मामलों का और विशेषकर उन मामलो का जिनका प्रभाव एशिया निवासियो पर पडता है नियन्त्रण व प्रबन्ध गवर्नर-जनरल इन-कौंसिल के कौंसिल के अधिकार मे हो। प्रान्तीय अधिनियम उसी हद तक वैध समझे जाते हैं जहाँ तक वे पार्लियामेंट के किसी अधिनियम के विरुद्ध नही होते और इन अधिनियमों के स्थान पर पार्लियामेंट अपने अधिनियम बनाकर उनको व्यय कर सकती है"।[१] प्रांत अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत अपना आगम एकत्रित करते है और सन् १९१३ के आर्थिक सम्बन्धो वाले एक्ट (Financial Relation Act) के अनुसार वे संघ राज्य-कोष से आर्थिक सहायता भी पाते हैं। प्रान्तों के आगम का अधिकतर भाग इस आर्थिक सहायता से ही प्राप्त होता है।

दक्षिण-अफ्रीका-संघ की इकाइयां दूसरे संघ शासनो की इकाइयो से जितनी कार्यकारी सत्ता के सम्बन्ध में भिन्न है उतनी किसी और बात में नही है। प्रत्येक प्रांत में गवर्नर जनरल इन-कौंसिल से पांच वर्ष के लिये नियुक्त एक प्रशासक (Administrator) होता है। यह प्रशासक ही प्रांतीय कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है। हर प्रांत म एक कार्यपालिका समिति होती है जिसमें प्रांतीय कौंसिल के सदस्यो म से कौंसिल द्वारा निर्वाचित या किसी और प्रकार से चुने हुए चार सदस्य होते है। प्रशासक (Administrator) इस समिति का सभापति होता है। प्रांतीय समिति गवर्नर-जनरल-इन-कौंसिल की स्वीकृति से इस समिति के सदस्यो का वेतन निश्चित करती हैं। प्रशासक व समिति के सदस्य प्रांतीय कौंसिल की कार्यवाही में भाग ले सकते है और उनमें से जो कौंसिल के सदस्य हैं व अपना वोट (मत) भी दे सकते हैं।

प्रशासक कार्यपालिका समिति की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करता है। समिति के सब निर्णय बहुमत से होते हैं जिनमें प्रशासक का मत भी शामिल होता है। पक्ष व विपक्ष म मत बराबर

१ उपा पुस्तक पृ० २

होने पर प्रशासक को निर्णायक मत देने का भी अधिकार प्राप्त है। प्रान्त के सब कर्मचारियों की नियुक्ति आदि का प्रबन्ध यही समिति करती है। "उन सब मामलों में जिनके विषय में प्रांतीय कौंसिल को कोई शक्ति हस्तान्तरित या सुपुर्द नहीं की गई है, प्रशासक आदेश मिलने पर गवर्नर-जनरल की ओर से कार्य करेगा और ऐसा करते समय यह आवश्यक नहीं कि प्रशासक कार्यकारिणी समिति के दूसरे सदस्यों से सलाह लें" *। दूसरे सब मामलों में समिति का पूरा नियंत्रण रहता है पर एक ही राजनैतिक पक्ष के व्यक्तियों से गठित न होने के कारण विधान-मंडल को यह मंत्रिपरिषद् की तरह उत्तरदायी नहीं है। इस बात में ये प्रांत स्विट्ज़रलैंड के कैन्टनों से बहुत कुछ मिलते हैं।

प्रांतों को न्यायमण्डल पर कोई अधिकार नहीं है। केवल छोटे छोटे न्यायालय ही प्रांतीय अधिकार में हैं। न्यायकारी सब सत्ता संघ-सरकार को प्राप्त है।

हर प्रांत में नगरपालिकायें (Municipal Boards) और स्थानीय संस्थायें हैं जो स्थानीय हित सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करती हैं। ऐसी नगरपालिकायें केप प्रांत में १३६ और ओरेंज फ्री स्टेट में ६४ हैं। हर नगरपालिकाओं में एक मेयर और कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं।

## शासन विधान का संशोधन

संघ शासन विधान के रचने वालों ने दक्षिण अफ्रीका में कनाडा का संविधान संशोधन पद्धति की अपेक्षा आस्ट्रेलिया की पद्धति अपनाना अधिक वांछनीय समझा। संविधान की १५२ वीं धारा संघ पार्लियामेंट को निम्नलिखित दो शर्तों पर संविधान की किसी धारा को रद्द करने या बदलने की शक्ति देती है।

(१) पार्लियामेंट किसी ऐसे प्रविधान को रद्द या परिवर्तित नहीं कर सकती जिसको कार्यान्वित करने के लिये समय की एक निश्चित अवधि रखी गई हो। ऐसे प्रावधान प्रथम असेम्बली व सीनेट के संगठन के बारे में है और अब उसका कोई महत्व नहीं क्योंकि एक्ट के पास होने के पश्चात् अब बहुत समय बीत चुका है।

(२) पार्लियामेंट असेम्बली में प्रत्येक प्रांत के प्रतिनिधियों की संख्या के अनुपात को बदल या मिटा नहीं सकती जब तक कि कुल सदस्यों की संख्या १५० तक न पहुँच जाय या सब के बनने के पश्चात् दस

* विधान की ७४ वीं धारा।

वर्ष का समय न बीत जाय, जो कोई भी अपेक्षाकृत अधिक समय ले। और क्योंकि यह संख्या १५० तक पहुँच चुकी है, यह प्रतिबन्ध भी बेकार हो गया है। पार्लियामेंट केप व दूसरे प्रांतो मे असेम्बली के निर्वाचको की योग्यताओ मे परिवर्तन नही कर सकती, न यह कोई ऐसा कानून बना सकती है जिससे डच और अगरेजी दोनो राजभाषायें न रहें जब तक कि इन परिवर्तनो के करने वाला विधेयक पार्लियामेंट की संयुक्त बैठक मे पास न हुआ हो और तृतीय वाचन मे पार्लियामेंट के सदस्यो की सख्या के दो-तिहाई बहुमत ने स्वीकृत न किया हो।

पिछले तीस वर्षो मे पार्लियामेंट ने शासन-विधान में कई सशोधन किये हैं किन्तु वे सब साधारण ढग के ही थे। या तो वे मताधिकार के सम्बन्ध में थे या उनसे प्रांतीय सरकारों को अधिक शक्तिया सौंपी गई थी। कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण-अफ्रीका तीनो उपनिवेशो मे दक्षिण-अफ्रीका ने सविधान सशोधन का सरलतम तरीका अपनाया है। यह सविधान की एकात्मक भावना के अनुकूल ही था।

## राजनैतिक पक्ष

साम्राज्य में उपनिवेशो को बनाये रखने के कार्य मे दक्षिण अफ्रीका ने ब्रिटेन के मार्ग में अनेक बाधायें उत्पन्न की थी। इस सघर्ष का महत्तम उत्कर्ष सन् १८९९-१९०० के बोअर-युद्ध में हुआ जिसका अन्त ३१ मई सन् १९०२ की वेरीनिंगिग (Vereeniging) की सधि से हुआ। पर सौभाग्य से बोअरों व नेता जनरल स्मट्स बोथा, हर्टज़ोग और डीवट ने अपने वचन का पालन किया और सधि की शर्तों को पूरा किया। किन्तु उन्होने हैट वाक (Het Walk) नामक एक राजनैतिक पक्ष का सगठन किया जिसका उद्देश्य ट्रासवाल और ऑरेंज रिवर कालोनी को स्वायत्त शासनाधिकार दिलाना था। जब सन् १९०९ में चारो उपनिवेश मिलकर सघ में सगठित हो गये, लार्ड-ग्लैडस्टोन (इगलैंड के प्रसिद्ध उदारपक्ष के नेता का पुत्र) सघ का प्रथम गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। केप टाउन में पहुँच कर लार्ड ग्लैडस्टोन ने अपनी प्रथम मत्रिपरिषद् बनाने के हेतु नेताओ से बातचीत करना प्रारम्भ किया और २१ मई सन् १९१० को जनरल बोथा को जो उस समय ट्रासवाल में प्रधानमत्री थे, मत्रिमण्डल का सगठन करने के लिये आमंत्रित किया। इसी समय से बोथा व कुछ दूसरे नेताओ में मतभेद उत्पन्न हो गया। यह मतभेद सामान्य शासन नीति के सम्बन्ध में ही था। बोथा का यह विचार था कि यदि नये दक्षिण अफ्रीका का जन्म उस महाद्वीप में एक शुभतम घटना सिद्ध करना है, तो तत्काल स्थित

चारों प्रांतों के मंत्रिमण्डलों के प्रमुख मंत्रियों को संघ मंत्रिमण्डल में शामिल किया जाय जिससे डच और अंग्रेज दोनों जातियों के सहयोग से उत्पन्न शिशु-शासन विधान को कार्यान्वित किया, जा सके और उस सहयोग को अक्षुण रखा जा सके। इसके विपरीत कुछ लोग बोथा के मित्र डाक्टर जेमिसन के साथ थे जो कहते थे कि सबसे योग्य व्यक्ति ही मंत्रिमण्डल में रखे जाय चाहे उससे अंग्रेजी बहुमत वाले प्रांतों के सहयोग की हानि ही क्यों न हो जाय।

अन्त में बोथा ने अपना निर्णय कर लिया और अपने मंत्रिमण्डल में केप से चार, औरेंज फ्री स्टेट से दो (जनरल हर्टजोग को मिलाकर जो न्याय-मंत्री बनाये गये) नेटाल से एक और ट्रांसवाल से तीन मंत्री लिये। नेटाल से लिये हुये जनरल स्मट्स जो (जनरल बोथा के अभिन्न मित्र और सहायक थे) सुरक्षा, खानों व आन्तरिक मामलों के मंत्री हुये। स्वयं श्री बोथा संघ के प्रथम प्रधान मंत्री बने। १९१० के जून मास में उन्होंने एक सन्देश निकाला और दक्षिण अफ्रीका पक्ष (South Africa Party) के बनने की घोषणा की जिसमें हेट वाक (Het Walk) अर्थात् 'जनता' नामक राजनैतिक पक्ष को मिला दिया गया। इस राजनैतिक पक्ष का मुख्य उद्देश्य सारे संघ की भलाई के लिए काम करना था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये निम्नलिखित साधन अपनाने का विचार था। (१) डचों और अंग्रेजों दोनों का सहयोग प्राप्त करना (२) सब वर्गों के लोगों से मेल स्थापित करना और (३) ब्रिटिश साम्राज्य में संघ के लिए एक ऊँचा स्थान प्राप्त करना। दो साल तक जनरल बोथा का मंत्रिमण्डल अच्छी प्रकार काम करता रहा क्योंकि असेम्बली में उसे बहुमत का समर्थन प्राप्त था। श्री मेरीमेन को जो केप प्रांत के प्रधान मंत्री थे बोथा ने अपने मंत्रिमण्डल में एक पद देना चाहा पर उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और उन्होंने असेम्बली में विरोधी पक्ष का नेतृत्व करना उचित समझा। इस प्रकार संघ पार्लियामेंट ने पक्ष प्रणाली पर अपना काम प्रारम्भ किया।

दक्षिण अफ्रीका में यह सब लोगों को अच्छी तरह ज्ञात था कि फ्री स्टेट में अपने जनरल हर्टजोग ने अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति से अंग्रेजों को विरोधी बना लिया था। परन्तु जनरल बोथा के प्रभुत्व-सम्पन्न प्रभाव ने जनरल हर्टजोग को मंत्रि-परिषद् बनने के बाद कुछ समय तक अपनी अंग्रेज विरोधी प्रवृत्ति को प्रकट करने से रोके रखा। किन्तु यह अधिक दिन तक न चली और जनरल हार्टजोग ने अपने व्याख्यानों में यह कहा कि उनके लिये संघ का हित साम्राज्य के हित से अधिक प्रिय है। बिना मंत्रिमण्डल की सलाह से ऐसी बात कह देने से ही मंत्रिपरिषद् के एकयाभाव पर बड़ा आघात लगा और

बोथा के बार बार प्रयत्न करने पर भी जनरल हर्टजोग के विचारों के संबंध में दूसरे लोगों के मन का समाधान न हो सका और सरकार को विपत्ति का सामना करना पडा। जनरल हर्टजोग ने पदत्याग करने से मना कर दिया इसलिये जनरल बोथा ने स्वयं अपना त्यागपत्र दे दिया और उस मंत्रिमण्डल की दिसम्बर सन् १९१२ में इतिश्री हो गई। गवर्नर-जनरल ग्लैडस्टन ने फिर जनरल बोथा को नया मंत्रिमण्डल बनाने के लिये आमंत्रित किया और जनरल बोथा ने हर्टजोग को छोडकर अपने सब पुराने सहयोगियों को मंत्री नियुक्त किया। जनरल बोथा व जनरल हर्टजोग के इस विलगाव ने उनके व उनके अनुगामियों के मौलिक व मेल न खाने वाले राजनैतिक आदर्शों के विभेद को सब पर प्रकट कर दिया। जनरल बोथा की दक्षिण अफ्रीका पार्टी समझती थी कि "दक्षिण अफ्रीका का भविष्य ब्रिटिश साम्राज्य में रह कर ही उज्जवल हो सकता है" इसके विपरीत हर्टजोग के अनुयायी उस साम्राज्य के बाहर एक प्रजातन्त्र सत्ता स्थापित करने में ही देश का कल्याण सम्भव समझते थे। मंत्रिमण्डल से निकाले जाने के बाद तुरन्त ही जनरलहर्टजोग ने एक नये राजनैतिक पक्ष का संगठन किया जो नेशनलिस्ट (Nationalist) कहलाये। इनका उद्देश्य डचों की शक्ति को बढा कर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दक्षिण अफ्रीका की स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना था। साउथ अफ्रीका पार्टी (South Africa Party) की कांग्रेस ने जनरल बोथा की नीति का समर्थन किया।

सन् १९१४ में युद्ध के आरम्भ होने के तुरन्त बाद ही जनरल बोथा ने जर्मनी के आधीन दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका पर आक्रमण कर उसे ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के लिये तैयारी की। अगस्त २६, सन् १९१४ को नेशनल पार्टी (हर्ट जोग पार्टी) ने प्रिटोरिया में सम्मिलित होकर एक मत से इस विचाराधीन आक्रमण की निन्दा की। जब नेशनलिस्ट इस प्रकार युद्ध में भाग लेने का विरोध कर रहे थे संघ के दूसरे भागों में जर्मन प्रदेश को हथियाने का प्रयत्न उतनी ही तत्परता से चल रहा था जितना उसे अत्यावश्यक समझा जा रहा था।" जब यूरोप में युद्ध समाप्त हुआ और सब राजनीतिज्ञ वार्साई में सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करने एकत्रित हुए उस समय जनरल बोथा ने प्रधान-मन्त्री होने के कारण दक्षिण अफ्रीका का प्रतिनिधित्व किया। हर्टजोग के साथियों ने साउथ अफ्रीका पार्टी के विरुद्ध अपनी शक्ति बढाने में कोई कसर न छोडी। लौटने के पश्चात् एक पखवारे के भीतर ही बोथा का शरीरान्त हो गया और उनके स्थान पर जनरल स्मट्स प्रधानमन्त्री हुए। यद्यपि दक्षिण अफ्रीका पार्टी की संख्या बहुत कम हो गई थी परन्तु असेम्बली में इतनी संख्या

अवश्य रही कि वे सन् १९२४ तक यूनियनिस्ट (Unionist) पक्ष के सहयोग से मन्त्रिमण्डल बनाने में सफल रहे। उस वर्ष जब निर्वाचन हुआ तो उसमें स्मट्स की सरकार हार गई और नेशनलिस्टों ने बहुमत प्राप्त करके हर्टजोग की अध्यक्षता में मन्त्रिमण्डल बनाया। शासन सत्ता में इस परिवर्तन के होने से साम्राज्य से पृथक होने के आन्दोलन ने जोर पकड़ा और इस ओर पहला कदम उठाने के लिये झण्डा सम्बन्धी विरोध आरम्भ किया। हर्टजोग के अनुयायी चाहते थे कि यूनियन जैक (Union Jack) के बदले संघ का निजी झण्डा अपनाया जाय। इस सम्बन्ध में जब समझौता होकर एक योजना स्वीकार हो गई तो यह आन्दोलन समाप्त हो गया। सन् १९२६ व १९३० के बीच जो साम्राज्य सम्मेलन हुए उनसे ही दक्षिण अफ्रीका के सम्मान को बढ़ाने में पर्याप्त सफलता मिल चुकी थी किन्तु सन् १९३१ की वेस्टमिन्स्टर व्यवस्था से तो नेशनलिस्टों की सब मांगें पूरी हो गईं। यद्यपि दोनों पक्षों के आदर्शों का विभेद बहुत कुछ मिट गया है फिर भी राजनैतिक संघर्ष व विरोध का भय बना ही रहेगा क्योंकि जब तक ये दोनों जीवित हैं और उनमें पारस्परिक मेल का अभाव है तब तक वे अपने अपने भिन्न राजनैतिक अस्तित्व की रक्षा के लिये या तो पुरानी फूट को फिर से जगाते रहेंगे या पुराने ढंग पर नये झगड़ों को खड़ा करने का प्रयत्न करेंगे*।" और जब तक जनरल हर्टजोग राजनैतिक रंगमंच पर रहेंगे तब तक इन दोनों पक्षों के मिलने की सम्भावना नहीं है क्योंकि पिछले १५ वर्षों में जब वह दक्षिण अफ्रीका के प्रधानमन्त्री रहे, उन्होंने अपने राजनैतिक विरोधियों, जिनके नेता जनरल स्मट्स थे, मतभेदों को बहुत कुछ बढ़ा चढ़ा दिया था। सच बात तो यह है कि १९१० से ही दक्षिण अफ्रीका के राजनैतिक पक्षों का प्रश्न वैयक्तिक दृष्टिकोण की विभिन्नता की समस्या थी। नेशनलिस्टों में प्रजातन्त्रीवर्ग अब भी प्रजातंत्र (Republic) के आदर्श का पुजारी है। जब सन् १९३९ में ब्रिटेन ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की उस समय जनरल हर्टजोग ने संघ असेम्बली में संघ के तटस्थ रहने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव रखा जो ६७ के विरुद्ध ८० मतों से अस्वीकृत हो गया। जनरल हार्टजोग ने इस पर पद त्याग कर दिया और जनरल स्मट्स ने नया मन्त्रिमण्डल बनाया। दक्षिण अफ्रीका में श्रमिक पक्ष अभी बहुत ही मामूली स्थिति में है और उसका अभी कोई प्रभाव नहीं है। आजकल डाक्टर मलान की अध्यक्षता में शुद्ध नेशनलिस्ट पक्ष का मन्त्रिमण्डल दक्षिण अफ्रीका में शासन सत्ता को सम्भाले हुए है।

* हीम फेयर साउथ अफ्रीका पृष्ठ २३०

## पाठ्य पुस्तकें

Brand, R. H.—The Union of South Afiica (Oxford 1909).

Egerton, H. E.—Federations and Unions in the British Empire. pp. 68-102 and 231-291 (Oxford 1911).

Engelenburg, F.V.—General Louis Botha, chs. XIV, XVI, XX, XXI, & XXIII—XXXVIII, (George Harrop 1929).

Hofmeyr, J.H —South Africa, chs. VII, & XI—XV, (Ernest Benn 1931).

Sharma, B. M.—Federal Polity, ch. II C, (vii) & chs. III & IV, (Lucknow 1931).

Newton, A. P.—Federal & Unified Constitutions (Longmans 1923)

Select Constitutions of the World, pp. 309-352

Statesman's Year Book (Latest Number)

# अध्याय १५

## आयरलैंड

"सब परिस्थितियों का विचार करके और सब सेनापतियों के विचार के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मित्र आयरलैंड से हमें शांतिकाल में व युद्धकाल में सन् १९२१ की संधि में दिये हुये हमारे उन कानूनी अधिकारों से अधिक मूल्यवान् सिद्ध होगा जिनकी रक्षा अधिकाधिक मनमुटाव की कीमत पर ही हो सकती थी।"

*(नैविल चैंबरलेन)*

आयरलैंड के द्वीप में जो अटलांटिक महासागर में इंगलैंड के पश्चिम में स्थित है दो भाग हैं और इन दोनों की अपनी अपनी पृथक् शासन सत्ता है इनमें से आइर (Irish Republic) का क्षेत्रफल १७,०२८,४८४ वर्ग मील और जनसंख्या २,९५३,४५२ है और उत्तरी आयरलैंड का क्षेत्रफल ३,३५२,२५१ वर्ग मील और जनसंख्या १२,७९,७४५ है। उत्तरी आयरलैंड में अधिकतर प्रोटेस्टेन्ट मत को मानने वाले व दक्षिणी आयरलैंड में अधिकतर कैथलिक सम्प्रदाय के अनुयायी बसते हैं।

### संवैधानिक इतिहास

आयरलैंड के संवैधानिक इतिहास के चार युग—आयरलैंड के संवैधानिक इतिहास को हम चार युगों में बाँट सकते हैं। पहला ब्रिटिश विजय से लेकर सन् १८०० तक दूसरा १८०० से लेकर १९२१ तक, तीसरा १९२१ से लेकर १९३७ तक, और चौथा १९३७ से। पहले युग में आयरलैंड को अंगरेजों ने जीता, उसको अपने आधीन रखा और अंत में अपने राज्य में मिला लिया। सन् १९०० से १९२१ तक आयरलैंड ने होम-रूल (Home Rule) अर्थात् स्वराज्य लेने का भीष्म प्रयत्न किया पर आयरलैंड की राष्ट्रीयता को कुचल दिया गया और अंत में दोनों देशों में एक सन्धि हो गई। सन् १९२१ की सन्धि से एक अर्ध स्वतंत्र राज्य का प्रारम्भ हुआ जिस स्थिति को उत्कट राष्ट्रवादियों ने जिनके नेता डिवेलरा थे, स्वीकार नहीं किया। सन् १९३७ में आयरलैंड ने स्वयं अपना शासन विधान बनाया, और नामतः तो नहीं, पर कार्यतः स्वतन्त्र होकर ब्रिटिश साम्राज्य की छत्र छाया से बाहर सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न जीवन आरम्भ किया।

**आयरलैंड पर अँगरेजों की विजय**—सन् ११६८ में हेनरी द्वितीय ने डरमोट के इस प्रस्ताव को कि आयरलैण्ड पर आक्रमण करने के लिये एक सेना भेजी जाय तुरन्त ही स्वीकार कर लिया क्योंकि हेनरी द्वितीय की पहले से ही आयरलैण्ड पर आँख लगी हुई थी। डरमोट, लीन्स्टर (Leinster) का निर्वासित राजा था। सन् ११७० में वार्थोलोम्यू दिवस से एक दिन पूर्व स्ट्रोंगवो (Strongbow) वाटर फोर्ड के पास सेना लेकर पहुँच गया, आयरलैण्ड की सेना को हराया और डब्लिन नगर को अपने अधिकार में कर लिया। हेनरी द्वितीय ने विजित प्रदेश में अपने न्यायालय स्थापित किये हालांकि अँगरेजी व आयरलैण्ड की दोनों न्याय प्रणाली साथ साथ चलती रही। इस भेद को डाल कर राज्य करने वाली नीति का बडा भयंकर परिणाम हुआ। हेनरी द्वितीय के उत्तराधिकारियों के पास इतना समय न था कि वे आयरलैण्ड के शासन प्रबन्ध की देखभाल करते इसलिये १३ वी शताब्दी की समृद्धि धीरे धीरे १४ वी शताब्दी की निर्धनता में परिणित हो गई। इस बीच में आयरलैण्ड को दबाने के लिये कई सेनायें भेजी गई और उनको विभिन्न मात्रा में सफलता प्राप्त हुई।

**ट्यूडर काल**—ट्यूडरवंशी राजाओं में हेनरी सप्तम को यह श्रेय प्राप्त हुआ कि उसने मैत्रीपूर्ण रीति से आयरलैण्ड के सरदारों को अपनी ओर मिला लिया। एलिजाबेथ के राज्यकाल में दो बार ऐसा हुआ कि आयरलैण्ड में अँगरेजी शासन के ऊपर विपत्ति आई और दोनों बार अल्सटर के ओनिलो (O'Neills) ने ही इस शासन का अन्त करने का प्रयत्न किया। इस अवसर से पोप ने व स्पेन के राजा फिलिप ने लाभ उठाने का निश्चय किया क्योंकि उन्होंने यह सोचा कि आयरलैण्ड में इगलैण्ड की रानी के विरुद्ध संघर्ष करने का अड्डा बनाया जाय। किन्तु सन् १५८८ में स्पेन के आरमेडा (जहाजी बेडा) के नष्ट हो जाने से एलिजाबेथ के वैरियों की योजना विफल हो गई। आयरलैण्ड में अँगरेजी प्रणाली को प्रचलित करने का जो प्रयत्न किया उसको जेम्स प्रथम ने पूरा किया। उसने अँगरेजों को आयरलैण्ड में बसाया। वह यही समय था जब अल्स्टर (Ulster) में स्कौच लोग आकर बसे और जो आयरलैंड व इगलैण्ड के बीच फूट व संघर्ष के कारण बने और अब भी वैधानिक कठिनाई उत्पन्न कर रहे हैं।

**केथोलिक व प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायों के अनुयायियों में झगड़ा**—जब चार्ल्स प्रथम इगलैंड का राजा हुआ तो उसने वैन्टवर्थ (Wentworth) को आयरलैंड के निवासियों की दशा सुधारने के लिए भेजा। उसका

निश्चित उद्देश्य यह था कि आयरलैंड में निरंकुश शासन की नींव पक्की कर दे, उसका कहना था कि प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय का हित ही आयरलैंड का सबसे बड़ा हित है किन्तु इतने पर भी उसको कट्टर प्रोटेस्टेंटों (protestants) के विरुद्ध आयरलैंड के रोमन कैथोलिकों को भड़काने में हिचकिचाहट न हुई। अंग्रेज आयरलैंड के रोमन कैथोलिकों के हित का चार्ल्स प्रथम के हित से मेल देखने लगे और स्थिति बहुत बिगड़ने लगी। विद्रोह की आग भड़की। स्पेन व पोप ने उसे भड़काने में सहायता की। यह विद्रोह तभी शान्त हुआ जब चार्ल्स प्रथम को फांसी लग जाने के बाद क्रोमवेल (Cromwell) ने इसको शान्त करने का प्रयत्न आरम्भ किया। वह अपनी सेना लेकर डब्लिन में उतरा, उस पर अपना अधिकार किया और आयरलैंड के निवासियों से बदला लेने के लिए ड्रोघेडा की ओर बढ़ा। अक्टूबर सन् १६४१ के पश्चात् होने वाले विद्रोह से जिनकी जायदाद शामिल थी वह जब्त कर ली गई और नवम्बर ३० सन् १६६० की घोषणा से जिन लोगों ने दूसरों की जमीनें हथिया ली थीं उन्हें कानूनी रूप से वे जमीनें वापस दी गईं।

आयरलैंड फिर एक बार दो शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वियों में संघर्ष का क्षेत्र बना। जेम्स द्वितीय इंगलैंड से भाग कर १४ वें लुई से जाकर मिल गया था जिसने विलियम तृतीय के विरुद्ध उसे सहायता देना आरम्भ किया। सन् १६६६ में लुई से यह प्रस्ताव किया गया कि यदि वह आयर निवासियों की अंग्रेजों के विरुद्ध सहायता करे तो वे उसके आधीन रहने को तैयार हैं। इस पर सन् १६८६ में लुई ने आयरलैंड में एक सेना भेजने का निश्चय किया। ऐसा करने से उसका अभिप्राय जेम्स द्वितीय को राजसिंहासन दिलाना न था वरन् विलियम तृतीय को परेशान करना था। एक ओर उत्तरी आयरलैंड में स्थित डैरी नाम के एक छोटे नगर के घेरे में लुई की सारी आशाओं पर पानी फिरा जा रहा था दूसरी ओर जेम्स द्वितीय ७ मई सन् १६८६ के दिन डब्लिन में अपनी प्रथम पार्लियामेंट कर रहा था। समय ने पलटा खाया, जेम्स द्वितीय के समर्थकों (Jacobites) को करारी हार खाना पड़ी। बॉयन के युद्ध से विलियम तृतीय के पक्ष में निर्णय हुआ और लिमेरिक की सन्धि (१६९१) से विद्रोह का अन्त हुआ। उसके पश्चात् विलियम तृतीय ने आयरलैंड पर अपराधी कानून लाद जिससे भीतर ही भीतर अंग्रेजों और आयरलैंड निवासियों का विलगाव बढ़ता गया।

**१८ वीं शताब्दी में**—१८ वीं शताब्दी में आयरलैंड में अंग्रेजी राज्य पक्का हो गया। धीरे धीरे आयरलैंड की समृद्धि घटने लगी। कृषि का

स्थान चरागाह ने ले लिया और भूमि विषयक झंझटो व धार्मिक मनमुटावों ने आयर निवासियों की समस्या को और भी अधिक जटिल बना दिया। इसी बीच में औद्योगिक क्रांति के परिणामो की भयंकरता भी अधिक स्पष्ट होने लगी। उद्योग सम्बन्धी व पार्लियामेंट के नियन्त्रणों से जनता में असन्तोष फैलने लगा। उसके बाद ही अमरीकन स्वतन्त्रता युद्ध ने आयरलैंड की स्वतन्त्रता के आंदोलन को प्रोत्साहन दिया। यह स्वतन्त्रता मुख्यतः धर्म की स्वतन्त्रता थी जिस पर प्रोटेस्टेन्ट बुरी तरह आघात कर रहे थे। फ्रांस की क्रांति ने भी आयरलैंड के आन्दोलन की आग में घी का काम किया। नैपोलियन ने इंगलैंड के विरुद्ध आयरलैंड के विद्रोह से लाभ उठाना चाहा। किन्तु इसी बीच में प्रधानमन्त्री पिट लन्दन और डब्लिन में स्थित दो पार्लियामेंटो के रहने से भय-भीत परिणाम के प्रति जागरूक हुआ और उसने आयरलैंड की पार्लियामेंट को मिटाने का निश्चय कर लिया। इस निश्चय के फलस्वरूप आयरलैंड को मिलाने वाला सन् १८०० ई० का एक्ट पास हुआ। हाउस आफ कामन्स में १०० स्थान आयरलैंड को दिये गये। हाउस आफ पीअर्स (House of Peers) में २१ पीयर व आयरलैंड के धर्ममठ के ४ पादरी आयरलैंड का प्रतिनिधित्व करने लगे। आयरलैंड की पार्लियामेंट को तोड दिया गया।

पिट (Pitt) ने आयर निवासियों को दिये हुए वचनों को पूरा करने का प्रयत्न किया किन्तु जार्ज तृतीय ने इस कार्य में बड़ी बाधा डाली। इस समय सौभाग्य से आयरलैंड को डेनियल ओकोनेल (Daniel O'Connell) जैसा कुशल नेता मिल गया। उसके सामने तीन उद्देश्य थे (१) रोमन कैथोलिको की दशा का सुधार (२) धर्ममठ की आर्थिक सहायता बन्द करना और (३) पार्लियामेंट को पुनर्जीवित करना।

**होम रूल के लिये संघर्ष**—ओकोनेल को यह अच्छी प्रकार प्रतीत हो गया कि आयर निवासियो का उद्धार आयरलैंड की पार्लियामेंट के फिर से स्थापित होने से ही सम्भव है। इसलिये अप्रैल सन् १८४० में उसने रिपील एसोशियन नामक एक सस्था बनाई जिसका उद्देश्य इगलैंड और आयरलैंड के एकीकरण को मिटाना था। उसने एक बडा आन्दोलन खडा किया किन्तु अल्स्टर (Ulster) मे इसका कडा विरोध हुआ क्योकि यहा के निवासी अधिकतर प्रोटेस्टेन्ट थे।

इसी समय के लगभग सन् १८४६ के अकाल मे आयरलैंड के किसानो की बडी दीन अवस्था हो गई। जमीदारो ने उन्हे जमीन का किराया न चुकाने के कारण बेदखल कर दिया। ये किसान तीन बातो के भूखे थे। उचित

जमीन का किराया, पट्टे की स्थिरता और बेचने की स्वतन्त्रता। इन मांगों का जमींदारों ने विरोध किया। अमरीका में आयरलैंड वासियों ने फेनियन समाज (Society of the Feunian) स्थापित किया जिसके सदस्यों को यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वे नामतः नहीं किन्तु वास्तव स्थापित आयरलैंड के राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखेंगे और आवश्यकता पड़ने पर उसकी स्वतन्त्रता व एकता के लिये लड़ने को तैयार रहेंगे। सन् १८६३ में शिकागो में फेनियन समाज का बड़ा भारी सम्मेलन हुआ। जिससे आयरलैंड में अमरीकन आंदोलन को बड़ा प्रोत्साहन मिला। किन्तु फिनियन समाज की कार्यवाहियों को रोकने के लिये सरकार ने दमननीति का प्रयोग किया।

सन् १८६८ के निर्वाचनों में इंगलैंड में ग्लैडस्टोन की जीत हुई। उसने पदारूढ़ होने के कुछ दिन बाद ही आयरलैंड के धर्म ( Irish church ) के राजकीय सम्बन्ध को तोड़ने वाली और उसको कुनिर्गहित करनेवाली योजना प्रस्तुत की और स्वीकार करा ली। सन् १८७० में उसने भूमि सम्बन्धी एक्ट (Land Act) पास करा लिया जिससे किसानों और जमींदारों की तनातनी दूर हुई।

सन् १८७३ में होम रूल एसोसिएशन (Home Rule Association) के सन् १८७० के अधिवेशन के फलस्वरूप आयरिश होम रूल लीग स्थापित हुई। इस एसोसियेशन के ये उद्देश्य थे —

"अपने देश के लिये आयरलैंड में एकत्रित एक ऐसी पार्लियामेंट द्वारा अपने शासन प्रबन्ध करने का अधिकार प्राप्त करना जिसमें साम्राज्ञी व उसके उत्तराधिकारी हों और आयरलैंड के लार्ड्स और कामन्स हों।"

"उस पार्लियामेंट को संघात्मक प्रणाली के अन्तर्गत यह अधिकार दिलाना कि वह आयरलैंड के भीतरी शासन के लिये कानून बना सके और आयरलैंड की आय व दूसरी सम्पत्ति पर नियन्त्रण रख सके। प्रतिबन्ध केवल इतना रहे कि अंगरेजी सरकार के शासन-व्यय का उचित भाग उसको दिया जाया करे"।

"एक साम्राज्य सम्बन्धी पार्लियामेंट को उपनिवेश व आधीन प्रदेशों से सम्बन्धित प्रश्नों से निबटने का अधिकार दिया जाय साम्राज्य व विदेशी राष्ट्रों के बीच सब बातों की देख-भाल व साम्राज्य की सुरक्षा आदि का प्रबन्ध यही पार्लियामेंट किया करे"।

"दोनों देशों के सम्बन्धों का बिना सम्राट के विशेषाधिकारों में हस्तक्षेप

किये या विधान के सिद्धान्तों को तोड़े हुये उपर्युक्त उद्देश्यो के अनुकूल व्यवस्थित करना" ।

इस प्रकार सन् १८७५ में चार्ल्स स्टिवार्ट पार्नेल (Charles Stewart Parnell) जो बाद में आयरलैंड का बिना अभिषेक किया हुआ राजा (Uncrowned King) प्रसिद्ध हुआ और जो बहुत सी बातों मे ओ'कोनल (O' Connel) से भिन्न था, किसानों का नेता हुआ। उसके भडकाने वाले व्याख्यानो ने विप्लवकारियों (Anarchists) की कार्य-वाहियों को बडा प्रोत्साहन दिया फलत वह कैद कर लिया गया ।

सन् १८८५ में ग्लैडस्टोन ने आइरिश होम रूल बिल (Irish Home Rule Bill) जो बट (Butt) के सुझाव के अनुसार सस्यात्मक ढग का था, पार्लियामेंट के सम्मुख रखा। किन्तु ग्लैडस्टोन के मित्रो ने इसका विरोध किया और यह विधेयक पास न हुआ। इस विधयक के विपक्ष म ३४३ और पक्ष में ३१३ वोट पडे। इसके पश्चात् सामान्य निर्वाचन हुआ और यूनियनिस्ट ( Unionists ) पक्ष के लोगो का मन्त्रिमण्डल बना। किन्तु वे मन्त्रिपद पर अधिक दिन न जम पाये और उनका स्थान सन् १८९० में ग्लैडस्टोन के नेतृत्व मे उदार पक्ष वालो ने लिया जिनका द्वितीय होम रूल बिल भी पहले की तरह अस्वीकृत हुआ। किन्तु सन् १९०६ के निर्वाचन में उदारदल वालो को बहुत अधिक सख्या में पार्लियामेंट मे स्थान मिले और सर हैनरी बैनरमैन कैम्पबैल ने प्रधान मन्त्री का पद लेकर शासन सूत्र सम्भाला ।

उदारदल वालो ने सन् १९१२ का होम रूल बिल फिर उपस्थित किया जो कुछ विरोध के पश्चात सन १९१४ म पास होकर घोषित हो गया। इससे आयरलैन्ड म फूट फैल गई। अल्टर ( Ulster ) ने इसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया क्योकि वह इगलैण्ड से किसी प्रकार भी पृथक किये जाने का विरोधी था। इसके विपरीत दक्षिणी आयरलैड ने इस बिल का स्वागत किया। इस प्रकार एक गृह युद्ध खडा हो गया और दोनो ओर से लडाई का सामान बाहर से मगा कर इकट्ठा किया जाने लगा। किन्तु इसी बीच म सन १९१४ का युद्ध छिड गया और आयरलैण्ड कुछ दिना के लिये अपनी समस्यायें भूल कर साम्राज्य रक्षा के हेतु कटिबद्ध हो गया। स्यात् यह आशा रही हो कि होम रूल अर्थात स्वराज्य फ्लैन्डर्स के रणक्षेत्र में प्राप्त होगा न कि आयरलैंड म।

एक ओर तो सरकार क्रातिकारी आन्दोलन का दमन करने की कार्य-वाही कर रही थी, दूसरी ओर उसने आयरलैड के सब राजनैतिक पक्षो, वर्गों

व धर्मावलम्बियों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन सन् १९१७ में बुलाया। दुर्भाग्यवश इस सम्मेलन की रिपोर्ट जिस दिन सभापति ने प्रधान मन्त्री के हाथ में दी उसी दिन आयरलैंड में अनिवार्य सैनिक भर्ती की घोषणा की गई। इस घोषणा से बड़ी गड़बड़ी मची। जिससे शान्ति पूर्वक समझौते की सम्भावना बिलकुल जाती रही। आयर निवासियों का कहना था कि उनके प्रतिनिधियों के अतिरिक्त किसी को यह अधिकार नहीं कि वह बलपूर्वक सैनिक भर्ती की आज्ञा दे। इसके अतिरिक्त यह भी एक बात थी कि स्वयं इंगलैंड में ऐसी भर्ती नहीं हो रही थी।

सन् १९१६ के ईस्टर सप्ताह के पश्चात् आयर निवासियों के सामाजिक जीवन में आदरपूर्ण स्थान सिन फेन (Sinn Fein) को प्राप्त हो चुका था। किन्तु इन घटनाओं के पश्चात् यह आदर और बढ़ गया और राष्ट्रीय आयर पर उसका प्रभुत्व अच्छी तरह जम गया। इसी बीच में पार्लियामेंट के आयर निवासी सदस्यों ने जो सन् १९१८ में निर्वाचित हुए थे पार्लियामेंट की बैठक में जाना अस्वीकार कर दिया। ये लोग वहां न जाकर डेल्याअरन (Deil Eireann) के नाम से डबलिन में एकत्रित हुये और उन्होंने आइर-प्रजातन्त्र राष्ट्र की रक्षा की शपथ ली। एक अस्थायी सरकार की स्थापना की, एक प्रजातंत्री-राष्ट्र ऋण उधार लिया और कई यूरोपियन राजधानियों में अपने दूत भेज कर नये राष्ट्र की मान्यता स्वीकार कराने का प्रयत्न होने लगा। पंच फैसला करने वाले न्यायालय स्थापित किये गये और एक नई स्थानिक शासन पद्धति प्रचलित की गई। ब्रिटिश सरकार ने सिनफन (Sinn Fein) की इस चुनौती का सामना करने की ठानी। उसने डेल्या रअन को कुचल डाला। उन समाचारपत्रों के विरुद्ध कड़ी कारवाही की जिन्होंने नये प्रजातन्त्र राष्ट्र का प्रचार किया और नये पंच फैसला करने वाले न्याया लयों को अवैध घोषित किया। इसके बदले में सिन फन ने ब्रिटिश फौजों पर छुट फुट आक्रमण करना प्रारम्भ किया। किन्तु सन १९२० में सन् १९१४ के एक्ट को बदलने हुये एक एक्ट को पास किया जिसमें उत्तरी व दक्षिणी आयरलैंड की दो पृथक पृथक पार्लियामेंट बनाने की योजना तैयार की। एक साल बाद लायड जार्ज ने (Lloyd George) डे विलेरा का जो सन् १९१७ से डेल्यारअन का सभापति रह चुका था बातचीत करने के लिये लन्दन बुलाया। इस बातचीत में सम्मिलित होने के लिये उत्तरी आयरलैंड के प्रधानमन्त्री सर जेम्स क्रेग को भी आमन्त्रित किया। इस कान्फ्रेंस के सदस्यों की संख्या बढ़ती चली गई और इसकी कार्यवाही कई दिन तक चलती रही। अन्त

में ६ दिसम्बर सन् १९२१ को ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड में संधि हो गई और एक संधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गये।

सन् १९२१ की संधि बड़ी महत्वपूर्ण थी क्योंकि इसके द्वारा आयरलैंड के राष्ट्रवादियों की सब मांगें स्वीकार करली गई। केवल दो बातें अस्वीकार की गई, एक तो साम्राज्य से पृथक होना और दूसरी उत्तरी आयरलैण्ड को उसकी इच्छा के विरुद्ध गणराज्य (Republic) में शामिल करना। पहली धारा में आयरलैण्ड को ब्रिटिश साम्राज्य में वही स्थान दिया गया जो आस्ट्रेलिया, कनाडा व दक्षिण अफ्रीका को मिला हुआ था। उसका नाम भी आइरिश फ्री स्टेट (Irish Free State) रख दिया गया।* बाहरी रूप से उत्तरी आयरलैण्ड फ्री स्टेट का भाग मान लिया गया। किन्तु यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि पार्लियामेंट द्वारा सन्धि के अनुमोदन के एक मास पश्चात् यदि उत्तरी आयरलैंड की पार्लियामेण्ट के दोनो सदन सम्राट् को यह प्रार्थनापत्र भेजें कि फ्री स्टेट की पार्लियामेंट व सरकार की शक्तियाँ उत्तरी आयरलैंड में लागू न हो तो ऐसी शक्तियाँ लागू नही होंगी। सन्धि ने एक अस्थायी सरकार बनने का प्रविधान कर दिया गया जो शासन-विधान बनने तक शासन का संचालन करेगी। इस अस्थायी सरकार को शासन-सम्बन्धी सब शक्तियाँ सौप दी गई।

डि वैलेरा (De Valera) ने इस सन्धि का विरोध किया। किन्तु विलियम कौसग्रेव (William Cosgrave) ने जो मन्त्रिमंडल का सभापति चुना गया सन्धि का समर्थन करने वाले पक्ष का नेतृत्व सम्भाला। नई स्थायी सरकार ने शान्ति व व्यवस्था स्थापित करने की दृढ प्रतिज्ञा की और सन्धि की शर्तों के अनुसार काम करने का प्रण किया। घौल्यारअन के लिए नये निर्वाचनों में सन्धि के ९२ समर्थक (जिसमें कौसग्रेव पक्ष के ४८ प्रतिनिधि थे) और कुछ विरोधी निर्वाचित हुए। अस्थायी सरकार ने एक शासन-विधान बनाया जिसको ब्रिटिश सरकार ने स्वीकार कर लिया। यह शासन-विधान ६ दिसम्बर सन् १९२२ को सम्राट की घोषणा से लागू किया गया।

**सन् १९२२ का शासन-विधान**—सन् १९२२ के शासन-विधान में कुछ बड़ी महत्वपूर्ण विशेषतायें थी जो दूसरे विधानों में उस समय न पाई जाती थी। संविधान से आयर निवासी जनता को सम्पूर्ण सत्ताधिकारी मान लिया गया था। आयर भाषा राज्य-भाषा मान्य कर दी गई हालांकि अंगरेजी

* 'डोमिनियन' या 'कौलोनी' शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया।

भाषा को भी समान पद दिया हुआ था । नागरिक अधिकारों की व्याख्या कर दी गई थी । विधान मण्डल में दो सदन थे, एक धौल्यारअन (निचला सदन) और दूसरा सीनेट (Seanad Eireann) (ऊपरी सदन) दोनों सदनों को मिला कर एयरक्टास (Oireachtas) नाम रखा गया। एयरक्टास गतानुदर्शी ( Expost facto ) कानून अर्थात् वह कानून जो किसी बीती हुई तिथि से लागू होता हो नहीं बना सकती थी। आक्रमण होने की स्थिति के अतिरिक्त युद्ध करने के लिये इसकी सम्मति भी आवश्यक थी। विधान-संशोधन संधि की शर्तों के अन्तर्गत एयरक्टास कर सकती थी। किन्तु यह संशोधन यदि विधान लागू होने वाली तिथि से ८ वर्ष के भीतर दोनों सदन स्वीकार करें तो वह तब तक लागू न होगा जब तक यह निर्णय (Referendum) स्वीकार न हो जाय। इस लोक निर्णय में रजिस्टर्ड मत-दाताओं में बहुसंख्या मतदाताओं द्वारा मत पड़ने चाहिये और संशोधन के पक्ष में डल पड़े हुए मतों के दो तिहाई मत अवश्य होने चाहिये। संविधान में यह भी प्रविधान था कि जनता स्वयं भी विधान संशोधन व कानून का प्रस्ताव कर सकती है। इस प्रविधान से व दूसरी शक्तियों से जो संविधान ने प्रजा को सौंपी थी आयरलैंड के निवासियों को इतनी स्वतन्त्रता दे दी गई थी जितनी ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में किसी दूसरे प्रजावर्ग को नहीं प्राप्त थी।

कार्यपालिका—सन् १९२२ के शासन विधान की नवीनता उसके द्वारा स्थिर कार्यपालिका के संगठन में थी। इस कार्यपालिका में ५ से लेकर ७ तक मन्त्री होते थे जिनको सम्राट का प्रतिनिधि कौंसिल के प्रेसीडेंट द्वारा मनोनीत किये जाने पर नियुक्त करता था, मन्त्रियों की यह कौंसिल धौल्यारअन अर्थात् निचले सदन का उत्तरदायी थी। यद्यपि कौंसिल का अध्यक्ष ( President ) दूसरे डोमिनियनों की प्रथा के अनुसार मन्त्रियों को स्वयं नियुक्त न करता था परन्तु और दूसरी सब बातों में वही सत्ताधारी रहता था। इस कार्य सदन कौंसिल के सब मन्त्री धौल्यारअन के ही सदस्य होते थे। इस प्रकार आयरलैंड का शासन विधान अध्यक्षात्मक शासन विधानों की श्रेणी में न आकर मन्त्रिपरिषदात्मक संविधानों की श्रेणी में ही गिना जाता था, यह कार्यपालिका कौंसिल सामुदायिक रूप से धौल्यारअन को उत्तरदायी रहती थी।

संविधान की ५५ व ५६ वीं धारा में कार्यपालिका कौंसिल में एक महत्वपूर्ण और नवीन तत्त्व का प्रवेश हुआ। धौल्यारअन (Dail Eirenn) को यह अधिकार दे दिया गया कि वह विधानमंडल के बाहर से कुछ व्यक्तियों

को मन्त्री मनोनीत कर सकती थी। इसकी एक प्रतिनिधिक समिति इन व्यक्तियो का नाम चुन कर इसके सम्मुख रखती थी जिनको यह स्वीकार कर सकती थी या रद्द कर देती थी। कौंसिल के मन्त्रियो व इन मनोनीत मंत्रियों की कुल संख्या १२ से अधिक न हो सकती थी। इस प्रकार मन्त्रिमण्डल में १२ मन्त्री होते थे जिनमें से कौंसिल के, जो वास्तविक मन्त्रि-परिषद थी, मन्त्रियों की संख्या ७ से अधिक न हो सकती थी। जो मंत्री कौंसिल के सदस्य न होते थे वे वैयक्तिक रूप मे अपने शासन-विभाग के काम के लिये उत्तरदायी रहते थे। वे लोग अपने पदो पर तभी तक रह सकते थे जब तक घौल्यारअन की अवधि समाप्त न हो। उन्हे इस पद से घौल्यारअन ही हटा सकती थी। किन्तु वह भी कथित कारणों के आधार पर ही ऐसा कर सकती थी।

सम्राट का प्रतिनिधि आयरिश फ़्री स्टेट का गवर्नर-जनरल कहलाता था। यह गवर्नर-जनरल केवल संवैधानिक रूप से ही राज्य का अध्यक्ष था वास्तविक शासन-सूत्र घौल्यारअन को उत्तरदायी कार्यपालिका कौंसिल के हाथ में ही था।

न्यायपालिका—संविधान की ६४-७२ तक धारायें न्यायपालिका के संगठन से सम्बन्ध रखती हैं। न्याय-पालिका में प्रारम्भिक न्यायालय और पुनर्विचारक न्यायालय दोनो थे। दूसरे न्यायालय को सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) कहा जाता था। इस न्यायपालिका को पार्लियामेंट (oireachtas) संगठित करती थी। प्रारम्भिक न्यायालयों में एक उच्च न्यायालय भी था जिसको सब विषयों में, चाहे वे व्यावहारिक हो या अपराध से सम्बन्ध रखते हो, और अधिनियम सम्बन्धी हो या वास्तविकता सम्बन्धी, प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार था। संविधान के अन्तर्गत किसी अधिनियम अर्थात् कानून को वैध अवैध ठहराने के प्रश्नो पर उस न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) सब मामलो में पुनर्विचारक न्यायालय था।

डिवैलरा व उसके फीनाफोल (सिनफेन पक्ष का दूसरा नाम) नामक दल ने न तो सन्धि का और न उस पर आधारित शासन-विधान का समर्थन किया। इसके विपरीत कौसग्रेव व उसके साथी सन्धि को मानने और शासन विधान को सफल कार्य करने पर तुले हुए थे।

सन् १९२३ के निर्वाचन मे कौसग्रेव (Cosgrave) के पक्ष को ६३ और फीना फेल पक्ष को ४४ स्थान ही घौल्यारअन में पाए

निर्णायक शक्ति कृषक, श्रमिक व स्वतन्त्र पक्ष वालों के हाथ में रह गई जिनको कुल मिलाकर ४६ स्थान प्राप्त थे।

कुछ समय तक डी वैलरा और उनके पक्ष के लोगों ने निष्ठा की शपथ लेना स्वीकार न किया और वे डेल से बाहर ही रहकर ब्रिटिश राष्ट्र मण्डल से पृथक रहने वाली आयर की स्वतन्त्रता के लिए लड़ते रहे। किन्तु फिर उन्होंने अपनी चाल बदली और डिवैलरा के कहने से उनके मित्र प्रजातन्त्री प्रतिनिधियों (Republican Deputies) ने शपथ पर हस्ताक्षर कर दिये और मन में समझ लिया कि यह शपथ कोरा शब्दाडम्बर है। इस प्रकार वे डेल में बैठने लगे।

सन् १९२७ में नया निर्वाचन हुआ, इस निर्वाचन में किसी भी पक्ष को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हुआ। किन्तु कौसग्रेव पक्ष अधिक संख्या में था इसलिए कौसग्रेव फिर एक बार कौंसिल का अध्यक्ष चुन लिया गया। प्रजातन्त्री पक्ष ने घौल्यारअन में रहकर वैधानिक चालों से लड़ना निश्चित किया किन्तु पदासीन पक्ष से किसी प्रकार का भी सामाजिक सम्बन्ध न रखने का प्रण कर लिया।

सरकार की तीन योजनाओं ने प्रजातन्त्री पक्ष को अपना प्रभाव बढ़ाने का अच्छा अवसर दिया। पहला तो यह कि लोक सुरक्षा विधेयक (Public Safety Bill) द्वारा सरकार ने अपने हाथ में पच-निर्णय प्रणाली तोड़ने की और मृत्युदण्ड के अधिकारी सैनिक न्यायालय स्थापित करने की शक्ति ले ली। दूसरे, दो वर्ष बाद संसार भर में आर्थिक संकट आया जिसका आयर पर भी प्रभाव पड़ा। तीसरे सरकार ने करों की मात्रा बढ़ा दी। प्रजातन्त्री पक्ष ने सरकार की फिजूल खर्ची दिखलाकर व ब्रिटेन की ओर उनकी नीति का झुकाव दिखलाकर उनको धिक्कारना प्रारम्भ किया जिससे उनका निजी प्रभाव बढ़ने लगा।

सन् १९३२ के निर्वाचन में फीना फेल पक्ष के ७२ प्रतिनिधि घौल्यारअन के लिए चुन लिए गये जब कि कुल स्थान १५३ थे। डिवैलरा ने श्रमिक पक्ष के सहयोग से शासन-सूत्र अपने हाथ में करने का निश्चय किया। मार्च ९ सन् १९३२ को घौल्यारअन ने उसे कौंसिल का अध्यक्ष चुन लिया। पदारूढ़ होने के एक सप्ताह के भीतर ही उसने शपथ को मिटाने के संकल्प की घोषणा कर दी। घौल्यारअन ने इस सम्बन्ध में आवश्यक योजना पास कर दी और ऊपरले सदन ने भी चुपचाप अपनी सम्मति दे दी हालांकि यह डर था कि वह स्या्

अड गा लगाये। शासन विधान में भी कुछ सुधार किए गये जिनमें से सबसे महत्वपूर्ण वह था जिससे सीनेट तोड़ दी गई।

डिवैलेरा ने अपनी शक्ति, प्रभाव, देश भक्ति व दृढ़ता का आयर प्रजातन्त्र राष्ट्र के निर्माण करने में पूरा प्रयोग किया। सन् १६२२ के शासन विधान में उसने कई परिवर्तन किए जिनमें से मुख्य वह था जिससे विधान की ५० वीं धारा में 'सन्धि के अन्तर्गत" अर्थ वाले शब्द हटा दिए गये जिसका परिणाम यह हुआ कि सविधान में किसी भी धारा का जोड़ना या किसी धारा का सशोधन सम्भव हो गया चाहे वह धारा या स शोधन सन्धि की शर्तों के विरुद्ध ही क्यों न हो।

इसके अतिरिक्त डिवैलेरा ने एक नये शासन विधान का प्रारूप तैयार किया। इस नये शासन विधान का विधेयक पार्लियामेण्ट (Ovreachtas) से स्वीकृत हो जाने के पश्चात् लोक निर्णय के लिए प्रस्तुत किया गया। इस लोक निर्णय से यह सविधान स्वीकार हुआ। इस प्रकार २६ दिसम्बर सन् १६३७ से आयर प्रजातन्त्र राष्ट्र का जन्म हुआ।

## सन् १६३८ का आयर राष्ट्र

आयर प्रजातन्त्र के सविधान में दी हुई प्रस्तावना से यह स्पष्ट है कि सविधान को आयर की जनता ने बनाकर स्वय अपने हित के लिए अपनाया है। यह प्रस्तावना लोक प्रभुता का परिचायक है। प्रस्तावना में आगे चलकर सविधान के उद्देश्यों का वर्णन किया है जो ये थे (१) सार्वजनिक सुख को बढ़ाना (२) व्यक्ति की स्वतन्त्रता व महानता की रक्षा करना (३) सच्चे सामाजिक सगठन को प्राप्त करना (४) देश की एकता को पुन प्राप्त करना और (५) दूसरे राष्ट्रों से मित्रता व प्रेम बढ़ाना।

**संविधान जनता द्वारा ही दी हुई देन**—ब्रिटिश राष्ट्रमडल के तीनो उपनिवेशो के शासन विधान की व्यवस्था अन्तिमत ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने ही की थी और शासन सविधान दूसरा की देन थे (हालांकि आस्ट्रेलिया का शासन सविधान वहाँ की जनता न तैयार किया था और लोक निर्णय के द्वारा उसे स्वीकार किया गया था)। किन्तु आयर के सविधान की तैयारी व व्यवस्था आयर की जनता ने ही की थी और अपने आपको उन्होंने स्वय ही यह सविधान प्रदान किया था। यह वह भेंट न थी जिसकी इच्छा उन लोगों ने की हो और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने उसे उन्हें अनुग्रह रूप प्रदान किया हो, यह निम्नलिखित धाराओं से स्पष्ट है—

"आयर के निवासी अपने राज्य संगठन के रूप को चुनने, दूसरे राष्ट्रों से अपने सम्बन्ध के रूप को निश्चित करने और अपनी प्रतिभा व परम्परा के अनुकूल अपने राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक जीवन को विकसित करने के सर्वोपरि व अखण्ड अधिकार की दृढ़तापूर्वक घोषणा करते हैं (प्रथम धारा)। आयरलैंड सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न, स्वतन्त्र प्रजातन्त्री राज्य है" (पांचवीं धारा)।

"(१) सरकार की विधायिनी, कार्यकारिणी व न्यायकारिणी सब शक्तियां ईश्वर की अधीनता में जनता से निसृत है। जनता का ही यह अधिकार है कि वह शासकों की नियुक्ति करे और अन्तिम लोकहित व कल्याण की दृष्टि से राष्ट्रनीति के सब प्रश्नों पर निर्णय करे।"

"(२) इन शक्तियों को इस संविधान से स्थापित राष्ट्र के अंग ही कार्यान्वित कर सकते हैं।"

संविधान में कहीं भी सम्राट या ब्रिटिश साम्राज्य का नाम तक नहीं है राष्ट्र का अध्यक्ष जनता द्वारा निर्वाचित होता है। अपने वैदेशिक सम्बन्धों व अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में आयर राष्ट्र का ब्रिटिश साम्राज्य की घरेलू नीति से कोई वास्ता नहीं रह गया है। वह स्वयं ही अपनी संसद (Oireachtas) द्वारा निश्चित की हुई अन्तर्राष्ट्रीय नीति का पालन करता है। एयरचयास (Oirechtas) की स्वीकृति के बिना राजकोष से व्यय कराने वाला कोई अन्तर्राष्ट्रीय समझौता राष्ट्र को मान्य न होगा, न ऐसा समझौता राष्ट्र के घरेलू कानून का भाग समझा जायगा।

**नागरिकों के अधिकार**—सन् १९३७ के शासन विधान में मौलिक अधिकार पांच श्रेणियों में बांट दिये गये हैं (१) वैयक्तिक अधिकार (४० वीं धारा) (२) कुटुम्ब सम्बन्धी अधिकार (४१ वीं धारा) व (३) शिक्षा सम्बन्धी (४४ वीं धारा)। वैयक्तिक अधिकारों में सब नागरिक अधिनियम (Law) को लागू करते समय समान समझे जाते हैं। उनका जीवन शरीर, सम्पत्ति, उनके निवासस्थान की अलंघ्यता, बिना हथियार के शान्ति पूर्वक उनका एकत्रित होना तथा समुदाय या संघ बनाकर रहना इत्यादि बातें इन अधिकारों से प्राप्त कराने का प्रयत्न किया जाता है। ४१ वीं धारा में कुटुम्ब को समाज की प्रारम्भिक व मुख्य इकाई माना गया है और यह ऐसी नैतिक संस्था है जिसको अखण्ड अधिकार है, जो किसी भी राजकीय कानून से नहीं छीने जा सकते और जो उस कानून से पूर्ववर्ती तथा उत्कृष्ट समझे जाते हैं। राष्ट्र के हित में कुटुम्ब का होना अनिवार्य होने से उसके अस्तित्व की रक्षा के लिए हर प्रकार की सुविधा का आयोजन कर दिया गया है। राज्य के

हित में गृहिणी का बडा महत्व होने से यह नियम वना दिया गया है कि माताओं को आर्थिक आवश्यकतावश मजदूरी करने पर बाध्य न होने दिया जायगा जिस से उनके गृह-कार्य में असुविधा हो। विवाह प्रथा की रक्षा की गई है, विवाहोच्छेद करने का निषेध है।

राज्य ने 'माता पिता के इस कर्तव्य व अधिकार को मान्य कर दिया है कि वे अपने साधनो के अनुसार अपनी सन्तान की धार्मिक, सामाजिक व नैतिक शिक्षा का जैसा चाहे वैसा प्रबन्ध कर सकते है"। वे जिस शिक्षालय मे अपनी सन्तान को भेजना चाहे भेज सकते है और उन्हे किन्ही विशेष शिक्षालयो में सन्तान को भेजने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। राज्य केवल न्यूनतम नैतिक बौद्धिक व सामाजिक शिक्षा अनिवार्य करता है। प्राथमिक शिक्षा नि शुल्क है और राज्य की ओर से ऐसे व्यक्तियो व संस्थाओ को सहायता देने का प्रबन्ध है जो शिक्षा-प्रसार म निजी प्रयत्न करते हैं।

(४) राज्य यह स्वीकार करता है कि बौद्धिक प्राणी होने से मनुष्य के सम्पत्ति सम्बन्धी कुछ नैसर्गिक अधिकार है जो राजकीय कानून से श्रेष्ठ हैं। इसलिए राज्य ने अपने ऊपर यह प्रतिबन्ध लगा लिया है कि वह ऐसा कोई कानून नही बनायेगा जिससे वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार समाप्त होता हो। इस अधिकार या नियम सामाजिक न्याय व हित की दृष्टि से अवश्य किया जा सकता है और वह लोकहित की आवश्यकता से प्रतिबन्धित है।

राज्य समाज की शान्ति और नैतिक व्यवहार के अनुकूल किसी भी धार्मिक सम्प्रदाय के मानने व किसी भी जीविका-साधन को अपनाने की स्वतन्त्रता देता है। राज्य ने किसी भी सम्प्रदाय विशेष को आर्थिक सहायता न देने, न धर्म के आधार पर भेद रखने या निर्योग्यताय लादने का वचन दिया है। प्रत्येक धर्म मठ को यह स्वतन्त्रता दे दी गई है कि वह अपना प्रबन्ध तथा सम्पत्ति उपार्जन स्वय करे और उससे धार्मिक व दातव्य संस्थाय स्थापित करे।

आयर राज्य की अधिकार-सीमा—शासन विधान की दूसरी धारा आयर-राष्ट्र की प्रादेशिक सीमाय निश्चित करती है। इसी सीमा के अन्तर्गत आयरलैंड का सारा द्वीप उससे लगे हुए सब द्वीप, व राज्य-क्षत्रीय समुद्र है। सारे द्वीप के भीतर उत्तरी आयरलैंड की ६ काउन्टी भी गिनी जाती है जो अभी तक आयरलैंड के प्रजातन्त्री शासन के अधिकार से बाहर है और जिनकी पृथक सरकार है।

राज्य का राष्ट्रीय नाम आयर (Eire) है, अंग्रेजी भाषा में इसका अर्थ आयरलैंड है। सन् १९२२ के संविधान का आइरिश फ्री स्टेट नाम अब

नहीं रह गया है। राष्ट्रीय झंडा हरे, नारंगी व श्वेत रंग का तिरंगा है और प्रादेशिक भाषा प्रथम राष्ट्र भाषा है, अंग्रेजी द्वितीय राष्ट्र भाषा है। प्रजातन्त्री शासन-विधान के लागू होने के समय आयरलैंड में जो व्यक्ति नागरिक थे वे आयर के नागरिक समझे जाते हैं। जानपद बनने के नियम कानून से स्थिर हो सकते हैं। नागरिक अधिकारों के बदले में नागरिकों से यह आशा की जाती है कि वे राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखेंगे और राज्य के प्रति विश्वासघात न करेंगे। ये संविधान के अनुसार नागरिकों के मौलिक कर्तव्य हैं।

## कार्यपालिका

राज्याध्यक्ष—प्रजातन्त्री शासन विधान में राजा या सम्राट् का कोई वर्णन नहीं है। राज्य की अध्यक्षता प्रेसीडेंट को सुपुर्द है। प्रेसीडेंट राज्य में सब व्यक्तियों से ऊपर समझा जाता है। प्रेसीडेंट अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली पर एकल-संक्राम्य मत (Single Transferable Vote) से गुप्त इशारा द्वारा सात वर्ष के लिए सीधे प्रजा द्वारा चुना जाता है। जो व्यक्ति निचले आगार के सदस्यों का निर्वाचन कर सकते हैं वे ही प्रेसीडेंट का भी निर्वाचन करते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में सन् १६४० तक प्रचलित प्रथा के अनुसार कोई प्रेसीडेंट केवल एक बार ही पुनर्निर्वाचित हो सकता था परन्तु अब आयरलैंड के शासन-विधान में ही यह निश्चित कर दिया है कि "प्रेसीडेंट का पुनर्निर्वाचन हो सकता है परन्तु केवल एक बार ही"। ३५ वर्ष का कोई भी नागरिक प्रेसीडेंट के निर्वाचन के लिए खडा हो सकता है।

प्रेसीडेंट के पद के लिए उम्मीदवारों को धारासभाओं के कम से कम २० व्यक्ति मनोनीत कर सकते हैं या वे कम से कम चार प्रशासन काउन्टीयों (Administrative Counties) की कौंसिलों से मनोनीत होना चाहिए अवकाश प्राप्त प्रेसीडेंट स्वयं अपने आपको मनोनीत कर सकते हैं।

नाम निर्देशन कैसे होता है—प्रेसीडेंट दोनों सदनों में से किसी का सदस्य नहीं रह सकता, किन्तु यदि कोई सदस्य प्रेसीडेंट निर्वाचित हो जाय तो उसे विधानमंडल का स्थान छोडना पडता है। प्रेसीडेंट किसी वेतन भोगी पद पर भी नहीं रह सकता। विधानमंडल दोनों सदनों के सदस्यों सर्वोच्च न्यायालय व हाईकोर्ट के न्यायाधीशों और अन्य श्रेष्ठ नागरिकों के सम्मुख प्रेसीडेंट इस बात की शपथ लेता है कि (१) वह आयरलैंड के शासन विधान की रक्षा करेगा और उसके विधि अधिनियमों का समर्थन करेगा (२) वह शासन-विधान व उसके अन्तर्गत बनाये हुए विधि अधिनियमों के अनुसार अपने कर्तव्यों का सच्चे मन से पालन करेगा और (३) वह अपनी सामर्थ्य व योग्यता को आयरलैंड की प्रजा की सेवा व हित के लिए समर्पित करेगा।

**उस पर अभियोग कैसे लगाया जाता है**—प्रेसीडेंट के रहने के लिए एक सरकारी भवन डब्लिन नगर में या उसके आसपास दिया जाता है। उसका वेतन या भत्ता कानून से निश्चित होता है। उसके ऊपर दुराचार का अभियोग लगाया जा सकता है। अपने सदस्यों में से ३० व्यक्तियों से लिखित सूचना मिलने पर विधान मडल का कोई भी सदन प्रेसीडेंट के विरुद्ध अभियोग के प्रस्ताव पर विचार कर सकता है। किन्तु यह प्रस्ताव तभी पास हो सकता है जब उस सदन के कुल सदस्यों में से दो तिहाई सदस्य उसे स्वीकार करें। उसके बाद उस अभियोग की जाँच दूसरा सदन स्वयं करता है या दूसरो से करवाता है। यदि यह अभियोग इस सदन के दो तिहाई सदस्यो की राय में सिद्ध हुआ समझा जाता है तो प्रेसीडेंट अपने पद से हटा दिया जाता है।

**प्रेसिडेन्ट की शक्तियाँ**—ब्रिटिश सम्राट आयरलैंड के प्रेसीडेंट की तरह दुराचरण करने पर अभियोग लगाकर अपने पद से हटाया नही जा सकता परन्तु ब्रिटिश सम्राट् के समान प्रेसीडेंट अपने पद के कर्तव्यो को पूरा करने और अपनी शक्तियो को कार्यान्वित करने में विधान मडल या किसी न्यायालय को उत्तरदायी नहीं है उन बातो को छोडकर जिनमें उसे स्वेच्छा से कार्य करना पडता है या कौंसिल आफ स्टेट से सम्बन्धित काम करने पडते है, प्रेसीडेंट अपनी शक्तियो व अधिकारो को सरकार की सलाह से ही काम मे लाता है। शासन-विधान के अन्तर्गत अधिनियम द्वारा प्रेसीडेंट को अतिरिक्त शक्तियाँ भी प्रदान की जा सकती हैं।

घोल्यारअन (Dail Eireann) द्वारा नामनिर्देशित व्यक्ति को प्रेसीडेंट प्रधान मत्री नियुक्त करता है और प्रधानमत्री द्वारा नामनिर्देशित किए जाने पर घोल्यारअन की पूर्व स्वीकृति से वह सरकार के दूसरे मंत्रियो को नियुक्त करता है। प्रधान मत्री के परामर्श से प्रेसीडेंट (१) सरकार के किसी मत्री का त्याग पत्र स्वीकार कर उसकी नियुक्ति रद्द करता है और (२) घोल्यारअन (Dail Eireann) का अधिवेशन करने की आज्ञा देता है, वह उसका विघटन करता है। यदि वह समझे कि प्रधान मत्री पर घोल्यारअन के बहुसख्या पक्ष का विश्वास नहीं है तो वह प्रधान मत्री की सलाह को ठुकरा कर घोल्यारअन का विघटन करने से मना कर सकता है। प्रेसीडेंट किसी भी समय कौंसिल आफ स्टेट की सम्मति से एक या दोनो सदनो का अधिवेशन बुला सकता है।

दूसरे राज्यो के अध्यक्षो के समान आयरलैंड का प्रेसीडेंट भी विधान-मडल से पास हुए विधेयको पर अपने हस्ताक्षर कर उन्हें अधिनियम या कानून घोषित करता है। वह कानून के अनुसार राज्य के संन्यदलों को आदेश देता

है, सेना के अफसरों को अधिकार विभूषित करता है। क्षमा (Pardon) अधिकार का काम में लाता है या अपराधी के लिए दिए हुये दंड को घटाने या उसका रूप बदलने की अपनी शक्ति का उपयोग करता है।

कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) अर्थात् राज्यपरिषद की सलाह लेकर विधानमंडल के दोनों सदनों को संदेश या व्याख्यान द्वारा राष्ट्रीय महत्व की बातों पर अपने विचारों की सूचना दे सकता है। वह किसी ऐसे महत्वपूर्ण विषय में सारे राष्ट्र की प्रजा को संदेश सुना सकता है किन्तु ऐसा सन्देश सरकार से पहिले स्वीकृत होना चाहिए।

**शक्तियों पर प्रतिबन्ध**—यद्यपि विधान प्रेसीडेंट के अधिकार बहुत विस्तृत हैं पर व्यवहार में दो प्रकार से प्रतिबंधित हैं (१) कौंसिल आफ स्टेट अर्थात् राज्यपरिषद के रहने से और (२) मंत्रिपरिषद की शक्तियों से। इन दोनों के कारण प्रेसीडेंट केवल एक संवैधानिक अध्यक्ष भर ही रह जाता है।

प्रेसीडेंट की अनुपस्थिति में उसकी शक्तियों को एक कमीशन (Commission) कार्यान्वित करता है जिसमें प्रधान न्यायाधीश (उसकी अनुपस्थिति में हाईकोर्ट का प्रेसीडेंट) डौल्यारअन का सभापति (या उप-सभापति) और सीनेट का सभापति (या उपसभापति), ये तीन सदस्य होते हैं।

**राज्य परिषद्**—(Council of State) कौंसिल आफ स्टेट अर्थात् राज्य-परिषद एक नवीन संस्था है। यद्यपि कुछ अंशों में इसके परामर्श सम्बन्धी कर्तव्यों को देखते हुए ब्रिटेन या कनाडा की प्रिवी कौंसिल से मिलती जुलती है या यह जापान की जेनरो (Genro) के समान है किन्तु इसकी रचना इनसे बिल्कुल भिन्न रीति पर होती है। इसमें ४ लोग सदस्य रहते हैं (१) पदेन (Ex-officio)—प्रधानमंत्री उप प्रधानमंत्री, प्रधान न्यायाधीश हाईकोर्ट का प्रेसीडेंट डौल्यारअन का सभापति सीनेट का सभापति और महान्यायवादी (Attorney General) (२) प्रत्येक व्यक्ति जो प्रेसीडेंट, प्रधान मंत्री प्रधान न्यायाधीश या पूर्वगामी कार्यपालिका कौंसिल का सभापति रहा हो और परिषद का सदस्य बनाना स्वीकार करता हो, और (३) वे दूसरे व्यक्ति जिनको प्रेसीडेंट राज्य परिषद् का सदस्य नियुक्त करे।

प्रेसीडेन्ट को शासन विधान ने यह अधिकार दिया है कि वह स्वेच्छावश किसी समय भी अपने आदेश से जिन किन्हीं व्यक्तियों को वह योग्य समझे उपर्युक्त श्रेणी (३) के अन्तर्गत राज्य परिषद् के सदस्य नियुक्त कर सकता है परन्तु इन सदस्यों की संख्या सात से अधिक न होनी चाहिए।

राज्य परिषद् के प्रत्येक सदस्य को परिषद् में प्रथम बार उपस्थित होने पर यह शपथ लेनी पडती है कि वह अपने कार्य को निष्ठापूर्वक निष्कपट भाव से सम्पादन करेगा। प्रेसीडेंट से नियुक्त किया हुआ राज्य परिषद् का सदस्य प्रेसीडेंट को अपना त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकता है और प्रेसीडेंट ऐसा करने का पर्याप्त कारण रहने पर अपने आदेश से ऐसे सदस्य की सदस्यता समाप्त कर सकता है।

प्रेसीडेंट राज्य परिषद् का अधिवेशन जब चाहे या जहां चाहे वहां बुला सकता है। परिषद् की शक्तिया केवल मन्त्रणा देने तक ही सीमित है। किन्तु प्रेसीडेंट की कुछ ऐसी शक्तिया और कुछ ऐसे कर्तव्य है जिनको वह राज्य परिषद् की मन्त्रणा के पश्चात् ही कार्यान्वित कर सकता है। इन बातो में उसे परिषद् का अधिवेशन बुला कर उसके सामने अपना विचार रखना पडता है और उपस्थित सदस्यो को अपने विचार प्रकट करने का अवसर देना पडता है। ऐसा किये विना प्रेसीडेंट उन विशिष्ट शक्तियो का उपयोग नही कर सकता, यह स्मरण रखने योग्य बात है कि राज्यपरिषद् केवल परामर्श देने वाली होने से व उसमें प्रधानमन्त्री के रहने से मन्त्रिपरिषद् की प्रतिद्वन्दी नही हो सकती।

कार्यपालिका—सविधान की २८ वी धारा से राज्य की कार्यपालिका सत्ता का सचालन सरकार द्वारा होता है जिसमें न सात से कम न १५ से अधिक सदस्य हो सकते है। इन सदस्यो को प्रेसीडेंट सविधान के अनुसार नियुक्त करता है। सरकार सामुदायिक रूप से धौल्यारअन (Daileireann) को उत्तरदायी रहती है। यही प्रतिवर्ष आगम व व्यय का लेखा तैयार करती है और धौल्यारअन के सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत करती है।

प्रधानमंत्री (The Taoiseach)—सरकार के अध्यक्ष प्रधानमन्त्री को टैओसिच कहा जाता है। वह प्रेसीडेंट को घरेलू व वैदेशिक नीति के सब मामलो में सूचित रखता है। वह उपप्रधान मन्त्री का नाम निर्देशन करता है जो उसकी अस्थायी अनुपस्थिति मे उसका काम सभालता है। सरकार के सब सदस्यों को विधानमडल के दोना सदनो में से एक का सदस्य अवश्य होना चाहिये किन्तु प्रधानमत्री, उपप्रधान मत्री व अर्थ मत्री को धौल्यारअन का सदस्य होना अनिवार्य है और सरकार के दो मत्रियो से अधिक सीनेट के सदस्य नही हो सकते। सरकार के प्रत्येक सदस्य को किसी भी सदन में बोलने का अधिकार है।

प्रधानमत्री प्रेसीडेन्ट को अपना त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकता है

किन्तु दूसरे मंत्री प्रेसीडेंट के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने के लिये प्रधानमंत्री को ही अपना त्यागपत्र देकर पद त्याग कर सकते हैं। इन दूसरी श्रेणी के त्यागपत्रों पर प्रेसीडेंट प्रधानमंत्री की सलाह से निर्णय करता है, प्रधानमंत्री कभी भी किसी मंत्री से पद त्याग करने के लिये कह सकता है यदि ऐसे कारण उपस्थित हो जायें जो उसकी राय में उसे पद त्याग कराने के लिये पर्याप्त हैं। यदि ऐसा कहे जाने पर कोई मंत्री त्यागपत्र न दे तो प्रेसीडेंट उसे मंत्रिपद से हटा सकता है। यदि प्रधानमंत्री डौयलआयरन (Daileireann) में बहुसंख्यक पक्ष का विश्वासपात्र नहीं रहता तो उसे पद त्याग करना पड़ता है। यदि उसकी सलाह से प्रेसीडेंट डौयलआयरन का विघटन न करे और सामान्य निर्वाचन करने की घोषणा न करे तो भी उसे पदत्याग करना होता है। प्रधानमंत्री के पदत्याग करने से सरकार के सब सदस्यों का पदत्याग समझा जाता है किन्तु ये लोग दूसरे नये सदस्यों के नियुक्त होने तक अपने पदों पर स्थित बने रहते हैं।

शासन-संगठन, कार्य वितरण, शासन विभाग, मंत्रिया (सरकार के सदस्यों) के नाम, किसी सदस्य की अनुपस्थिति में उसके कार्य की देखभाल, सदस्यों का वेतन ये सब बातें विधानमंडल अधिनियम द्वारा निश्चित करती हैं।

संक्षेप में यह कहना चाहिये कि आयरलैंड की सरकार उत्तरदायी मंत्रिपरिषद् है जो लोकसभा को सामुदायिक रूप से उत्तरदायी है।

## विधानमंडल

राष्ट्रीय संसद (National Parliament)—आयरलैण्ड का विधानमंडल एयरचयास (Oireachatas) नाम से पुकारा जाता है। यह मण्डल प्रेसीडेंट प्रतिनिधि सभा डौयलआयरन (Daileireann) और सीनेट (Seanad Eireann) तीनों को मिला कर पुकारा जाता है। विधानमण्डल की बैठकें डब्लिन (Dublin) नगर के पास होती हैं। किन्तु किसी और दूसरे स्थान पर भी ये बैठकें हो सकती हैं। सारे राष्ट्र की व्यवस्था करने वाला यह एक ही मंडल है किन्तु इसके आधीन निम्न श्रेणी के विधान मण्डलों के बनाने का प्रबन्ध हो सकता है जो इस सम्बन्ध में कुछ अधिकार व शक्तियों से विभूषित किए जा सकते हैं। संसद् (oireachtas) ऐसा अधिनियम बना सकती है जिससे प्रजा के सामाजिक व आर्थिक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाली व्यावसायिक कौंसिलें स्थापित हों। संसद इन कौंसिलों के

अधिकार, कर्तव्य, शक्तियां और संसद व सरकार से उनके सम्बन्ध की रूप-रेखा निश्चित कर सकती है।

संसद का कोई भी अधिनियम जहाँ तक शासन विधान के प्रतिकूल हो अवैध समझा जाता है। संसद गतानुदर्शी (Ex post facto) अधिनियम नहीं बना सकती। सेना की भर्ती करना तथा उसके भरण पोषण करने का अधिकार अनन्यरूप से संसद को ही प्राप्त है।

संसद (Oireachatas) की एक वर्ष में एक बैठक अवश्य होती है किन्तु दोनों सदनों में से कोई भी सदन विशेष विपत्ति की स्थिति में अपने दो-तिहाई सदस्यों की सम्मति से गुप्त बैठक करने का निर्णय कर सकती है। प्रत्येक सदन को अधिकार है कि वह अपने सभापति व उपसभापति को चुने और उनका वेतन निश्चित करे स्थायी नियम व कार्यपद्धति का निश्चय करे जिसमें उसके सदस्य स्वतन्त्रतापूर्वक वाद-विवाद कर सकें और ऐसे व्यक्तियों से रक्षा कर सकें जो उन्हें अपना कर्तव्य पालन करने में झंझट डालते हों या भ्रष्टाचार कराने का प्रयत्न करते हों। प्रत्येक सदन में बहुमत से सब निर्णय होते हैं, सभापति केवल तभी अपना मत दे सकता है जब दोनों ओर के मत बराबर हों। सदन को आते समय और वहाँ से जाते समय सदस्यों को किसी अपराध के लिए पकड़ा नहीं जा सकता। सदन में कही हुई बातों के सम्बन्ध में वे केवल सदन के क्षेत्राधिकार में रहते हैं, उनके विरुद्ध कोई न्यायालय कार्यवाही नहीं कर सकता। उन्हें अपने काम के लिये भत्ता मिलता है और बिना किराया दिये सफर कर सकते हैं। एक व्यक्ति एक ही समय में दोनों सदनों का सदस्य नहीं हो सकता।

हर नागरिक चाहे स्त्री हो या पुरुष जिसकी आयु २१ वर्ष की हो यदि किसी और कारण से नियोग्य न हो तो निचले सदन (Daileire-ann) का सदस्य बन सकता है या उसके सदस्यों के निर्वाचन में मत दे सकता है। वह सीनेट का सदस्य भी बन सकता है। प्रत्येक मतदाता को केवल एक मत देने का अधिकार होता है।

**प्रथम सदन**—डैल्यारअन में १४७ सदस्य हैं जो अनुपाती प्रतिनिधित्व (Proportional representation) प्रणाली के अनुसार एकल-संक्राम्य मत (Single transferable Vote) से चुने जाते हैं। निर्वाचन-क्षेत्र साधारण विधि द्वारा निश्चित किये जाते हैं और प्रति २०००० से लेकर ३०००० मतदाताओं को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाता है। प्रतिनिधि व मतदाताओं का यह अनुपात सब निर्वाचन-क्षेत्रों में बराबर है।

प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र को कम-से-कम तीन प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। प्रति १२ वर्ष बाद निर्वाचन-क्षेत्र का पुनर्संगठन होता है किन्तु ऐसे पुनर्संगठन से तत्कालीन लोकसभा की अवधि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने दिया जाता। लोकसभा की साधारण अवधि सात वर्ष है, यदि इस समय से पूर्व ही उसका विघटन न हो जाय। अधिनियम द्वारा ही इस सात वर्ष की अवधि कम की जा सकती है। लोकसभा के विघटन से तीन दिन के भीतर ही सामान्य निर्वाचन होना है और जहा तक सम्भव हो एक ही दिन में सारे देश में निर्वाचन होता है। नयी लोकसभा निर्वाचन होने वाले दिन से तीस दिन के भीतर अपनी बैठक करती है। अधिनियम द्वारा यह प्रावधान कर दिया है कि लोकसभा का सभापति सामान्य निर्वाचन म बिना निर्वाचन में भाग लिये ही निर्वाचित हो जाता है। लोकसभा (Dail Eireann) को ही आगम-व्यय (Revenue & Expenditure) पर विचार करने का अधिकार है किन्तु वह तभी जब सरकार उसका लेखा लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत करे।

द्वितीय सदन—द्वितीय सदन अर्थात् सीनेट (Seanad Eireann) में ६० सदस्य हैं जिनमें से ११ सदस्यो को उनकी पूर्व स्वीकृति लेकर प्रधान मन्त्री मनोनीत करता है। बचे हुए सदस्यो को *निम्नलिखित सस्थायें निर्वाचित* करती है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| आयरलैंड का राष्ट्रीय विश्वविद्यालय | ... | ... | ३ |
| डब्लिन विश्वविद्यालय ... | .. | ... | ३ |
| उम्मेदवारो की पाँच तालिकाएँ .. | ... | ... | ४३ |

सब निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली द्वारा होते हैं। विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियो के मताधिकार को अधिनियम द्वारा निश्चित किया जाता है। ४३ सदस्यो को चुनने के हेतु जो तालिकायें (Panels) बनाई जाती हैं वे ऐसे तैयार की जाती हैं कि उनमें ऐसे व्यक्ति हो जिन्हे आगे कही हुई बातो का सूक्ष्म ज्ञान या व्यवहारिक ज्ञान हो (१) राष्ट्रभाषा, संस्कृति साहित्य, कला, कृषि, शिक्षा या इनसे मिल-जुल विषय जिन्हे अधिनियम से निश्चित कर दिया गया हो, (२) कृषि आदि व मात्स्यिकी (Panely Fisheries) (३) सगठित व असंगठित श्रमिक (४) उद्योग, व्यापार बैंक, हिसाब किताब, इञ्जीनियरिंग व वस्तु शास्त्र, (५) लोक-प्रकाशन व समाज-सेवा आदि। प्रत्येक तालिका से पाँच से कम व ११ से अधिक सदस्य नहीं चुने जाते किन्तु अधिनियम द्वारा ऐसा आयोजन किया जा सकता है कि तालिकाओं में

से कुछ सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष रूप से किसी व्यवसाय-सम्बन्धी संस्था द्वारा हो ।

**अधिनियम कैसे बनता है:**—मुद्रा विधेयक को छोड कर किसी भी सदन में कोई विधेयक प्रस्तावित हो सकता है, मुद्रा विधेयक का प्रस्ताव लोकसभा ( Dail Eireann ) में ही हो सकता है। लोकसभा मे प्रस्तावित कोई भी विधेयक यदि वह मुद्रा विधेयक नही है लोकसभा से पास होने पर सीनेट में भेजा जाता है जहा उसमें सशोधन किये जा सकते है। ऐसे सशोधनो के होने पर लोकसभा फिर उन सशोधनो पर विचार करती है। यदि कोई विधेयक सीनेट में आरम्भ हुआ हो और वहाँ पास होने पर लोक सभा द्वारा सशोधित हुआ हो तो वह सशोधित विधेयक ऐसे समझा जायगा मानो वह लोकसभा में प्रस्तावित हुआ है। एक सदन से पास हुआ विधेयक दूसरे सदन से स्वीकृत होने पर दोनो सदनों द्वारा पास हुआ समझा जाता है।

**मुद्रा-विधेयक**—लोकसभा ( Seanad Eireann ) से पास होने पर मुद्रा-विधेयक सीनट के विचारार्थ भेजा जाता है। सीनेट ( Seanad Eireann ) ऐसे विधेयक के मिलन से २१ दिन के भीतर उसमे परिवर्तनो का सुझाव कर सकती है। इन सुझावों मे से लोकसभा सब को या कुछ को अस्वीकृत कर सकती है। यदि सीनेट ( Seanad Eireann ) २१ दिन के भीतर एसे विधेयक को न लौटा सके या ऐसी सिफारिशो के सुझाव के साथ लौटावे जो लोकसभा को स्वीकार्य न हो, तो २१ दिन के समाप्त होने पर ऐसा विधेयक दोनों सदनो से पास किया हुआ समझ लिया जाता है। इस से यह स्पष्ट है कि सीनेट किसी मुद्रा विधेयक के पास होने में अधिक से अधिक २१ दिन की देरी कर सकती है।

यदि कोई विधेयक किसी कर के लगाने हटाने, वढाने घटाने या नियमित करने, किसी ऋण के चुकाने या किसी दूसरे काम के लिये राज्यकोष में कोई रकम लेने या रकम को वढाने घटाने या मिटाने से सम्बन्ध रखता हो, या वह राज्यकोष की रक्षा आय व्यय का हिसाब व उसकी जाच, किसी ऋण के लने या चुकाने या इन सब बातों के आधीन मामलो से सम्बन्धित हो तो वह मुद्रा विधेयक कहलाता है। लोकसभा के सभापति की राय में यदि कोई विधेयक मुद्रा विधयक है तो वह उसके मुद्रा विधेयक होने का प्रमाणपत्र देता है। यह प्रमाणपत्र इस सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णयकारी समझा जाता है। यदि सीनेट अपनी बैठक में जिसमें कम से कम ३० सदस्य उपस्थित हो यह प्रस्ताव पास करे कि, विधयक के मुद्रा विधेयक होने या न होने का

प्रश्न विशेषाधिकार समिति (Committee of Privileges) के निर्णय के लिये सौंपा जाय, तो सभापति का प्रमाण-पत्र इस विषय में निर्णायक नहीं समझा जाता और दोनों सदनों में से बराबर संख्या में सदस्यों को लेकर बनी हुई विशेषाधिकार-समिति को इस प्रश्न का निपटारा करने का काम दे दिया जाता है। इस समिति का सभापति सर्वोच्च न्यायालय का न्यायाधीश होता है। वह सब समय उसी स्थिति में अपना निर्णायक मत दे सकता है जब दोनों पक्षों के मत बराबर हों।

दोनों सदनों के मत विरोध को दूर करना:— जिस दिन लोकसभा (Dail Eireann) किसी विधेयक को जो मुद्रा विधेयक नहीं है। सीनेट के पास भेजती है उसके ९० दिन की अवधि के भीतर सीनेट को चाहिये कि वह उस विधेयक पर विचार करे। इस अवधि को दोनों सदनों की सहमति से बढ़ाया जा सकता है। यदि इस निश्चित अवधि के भीतर सीनेट (Seanad Eireann) विधेयक को अस्वीकृत कर देती है या ऐसे संशोधनों सहित पास करती है जो लोकसभा को पसन्द नहीं है और यदि उपर्युक्त अवधि की समाप्ति के १८० दिन के भीतर लोकसभा तदर्थ प्रस्ताव पास कर देती है तो वह विधेयक प्रस्ताव पास होने के दिन दोनों सदनों से पास समझा जाता है।

यदि प्रधानमन्त्री प्रेसीडेंट, लोकसभा व सीनेट के सभापतियों को लिख कर संदेश भेजे कि सरकार की राय में कोई विधेयक लोक शान्ति व सुरक्षा के लिये आवश्यक है या यह कि घरेलू व बाहरी विपत्तिपूर्ण स्थिति को ध्यान में रख कर विधेयक के विचारार्थ निश्चित समय को कम कर दिया जाय तो यदि वह विधेयक शासन विधान में संशोधन नहीं करता संविधान की २८ वीं धारा के अनुसार उस पर विचार करने के लिये सीनेट को दिया हुआ समय घटाया जा सकता है। ऐसा करने के लिये पहले लोकसभा तदर्थ प्रस्ताव पास करेगी और यदि प्रेसीडेंट राज्य-परिषद् (Council of State) की सलाह से इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेता है तो प्रस्ताव के अनुसार समय कम कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में यदि सीनेट घटी हुई समय की अवधि के भीतर उस विधेयक को नामंजूर कर दे या उसे ऐसे संशोधनों से पास करे जो लोकसभा को स्वीकार्य न हों या न उसे पास करे न रद्द करे, तो वह विधेयक घटी हुई अवधि के समाप्त होने पर दोनों सदनों द्वारा पास समझा जाता है। इस प्रकार पास हुआ विधेयक केवल ९० दिन तक कानून के रूप में लागू हो सकता है यदि इस समय के समाप्त होने से पहले ही दोनों सदन प्रस्ताव द्वारा उस अधिनियम की अवधि न बढ़ा दें। यदि

ऐसा प्रस्ताव पास हो जाय तो वह अधिनियम प्रस्ताव में दिये हुये समय तक लागू रहेगा।

उपर्युक्त जितने सीनेट पर प्रतिबन्ध हैं उनसे सीनेट केवल दुहराने वाला सदन ही बन कर रह गया है जो कानूनों के बनने में देरी लगा सकता है, उन्हे रोक नही सकता।

**प्रेसीडेन्ट के हस्ताक्षर**—संविधान में संशोधन न करने वाला जब कोई विधेयक दोनो सदनों से पास हो जाता है या पास हुआ समझा जाता है तो प्रधानमन्त्री उसे प्रेसीडेंट के सामने रखता है। प्रेसीडेंट विधेयक के प्रस्तुत किये जाने से पाच दिन पहले उस पर हस्ताक्षर नही कर सकता न सात दिन के बाद उस पर हस्ताक्षर हो सकते हैं। प्रेसीडेंट के हस्ताक्षर होने पर वह विधेयक कानून घोषित हो जाता है। सीनेट की पूर्व स्वीकृति लेकर सरकार पाच दिन से पहले भी विधेयक पर हस्ताक्षर करा सकती है।

शासन-विधान का सशोधन न करने वाले विधेयक के पास होने के चार दिन के समय के भीतर यदि दोनो सदनो की सयुक्त वैठक में सीनेट के बहुसख्यक सदस्य व लोकसभा के एक-तिहाई सदस्य मिल कर प्रेसीडेंट को यह प्रार्थना भेजें कि विधेयक राष्ट्र के लिये इतना महत्वपूर्ण है कि उस पर लोकेच्छा जानना आवश्यक है तो प्रेसीडेंट उस विधेयक पर अपने हस्ताक्षर न करेगा। वह राज्यपरिषद् से सलाह लेगा और दस दिन के भीतर यह निश्चय करेगा कि वह उस विधेयक पर हस्ताक्षर कर उसे अधिनियम अर्थात् कानून घोषित करे या न करे। घोषित न करने का निर्णय हो जाने पर वह उस निर्णय की सूचना प्रधानमन्त्री व दोनो सदनो के सभापतियो को भेज देता है। ऐसा विधेयक केवल तभी अधिनियम बन सकता है यदि प्रेसीडेंट के निर्णय से १८ मास के भीतर (१) सविधान की ४७ वी धारा के दूसरे अनुच्छेद के अनुसार लोक निर्णय* द्वारा प्रजा ने उसे स्वीकार कर लिया हो, या (२) अपने विघटन व पुनर्संङ्गठन के पश्चात् धोन्यारअन (Dail Eireann) ने उसे फिर पास कर दिया हो। इस प्रकार स्वीकृत होने पर प्रेसीडेंट उस पर हस्ताक्षर कर उसे अधिनियम घोषित कर देता है।

**संविधान का संशोधन**—४६ वी धारा के अनुसार निश्चित प्रणाली से

* यदि लोकनिर्णय में पड़े हुये मतों की सख्या विधेयक के विरुद्ध हो तो वह प्रजा द्वारा अस्वीकृत समझा जाता है परन्तु शर्त यह भी है कि यह सख्या कुल मतदाताओं की संख्या का एक तिहाई भाग अवश्य होना चाहिये वरना वह विधेयक स्वीकृत समझा जायगा।

संविधान का संशोधन हो सकता है। संशोधन का प्रस्ताव विधेयक रूप में लोकसभा (Dail Eireann) में आरम्भ होना चाहिये। इस विधेयक में सिवाय विधान-संशोधन के प्रस्ताव के दूसरा कोई प्रस्ताव न होना चाहिये। जब यह विधेयक दोनों सदनों से पास कर दिया जाता है या उनसे पास हुआ समझा जाता है, तब यह लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत किया जाता है। इस लोक निर्णय में दिये हुये मतों की अधिक संख्या उस अधिनियम बनाने के पक्ष में पड़ी हो तो यह संशोधन का प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता है। तब प्रेसीडेंट उस पर अपने हस्ताक्षर कर उसे अधिनियम घोषित कर देता है।

विधान की ३४-३९ वीं धारायें न्यायप्रबन्ध, न्यायालयों की रचना, उनके अधिकार क्षेत्र, न्यायाधीशों की नियुक्ति व अपराधों की जांच से सम्बन्ध रखती हैं।

न्यायालय दो प्रकार के हैं। एक तो प्रारम्भिक न्यायालय (जिनमें एक हाई कोर्ट जिसको १९२२ के विधान में वर्णित शक्तियां प्राप्त हैं और स्थानीय क्षेत्राधिकार के न्यायालय शामिल हैं) और दूसरा पुनर्विचारक न्यायालय जिसे सर्वोच्च न्यायालय कहते हैं। सन् १९२२ के संविधान की अपेक्षा इस विधान में यह नवीनता है कि अब प्रेसीडेंट न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है क्योंकि अब सम्राट के प्रतिनिधि का अस्तित्व नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त अब इन न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध सम्राट की कौंसिल में अपील करने का अधिकार भी नहीं रह गया है। इसलिये सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के निर्णय अन्तिम निर्णय होते हैं। दूसरी बातों में, न्यायालयों के पूर्ववत अधिकार क्षेत्र व महत्ता है न्यायाधीशों की स्वतन्त्रता, उनके पद की अवधि (सिवाय इसके कि वे दुराचारी सिद्ध होने पर दोनों सदनों की प्रार्थना पर प्रेसीडेंट द्वारा हटाये जा सकते हैं) व उनके वेतन की मात्रा सुरक्षित कर दी गई है।

प्रत्येक व्यक्ति को जो न्यायाधीश नियुक्त हुआ हो यह शपथ लेनी पड़ती है कि वह सर्वशक्तिमान् परमात्मा के सम्मुख यह वचन देता है कि वह बिना भय, विद्वेष, प्रीति या पक्षपात के अपना कार्य करेगा और शासन-विधान की रक्षा व समर्थन करेगा। जो न्यायाधीश नियुक्त होने से पूर्व या उससे दस दिन के भीतर ऐसी घोषणा करने से इन्कार करता है वह अपने पद से हटा हुआ समझा जाता है।

निम्नलिखित बातें अधिनियम द्वारा नियमित रहती हैं —

(1) सर्वोच्च न्यायालय व हाईकोर्ट के न्यायाधीशों की संख्या और इनका वेतन, पेंशन व अवकाश पाने की आयु।

(ii) अन्य न्यायालयो के न्यायाधीशो की सख्या व उनकी अवधि, और

(iii) इन न्यायालयो की रचना व सगठन, क्षेत्राधिकार निश्चित करना व अन्य कार्यपद्धति सम्बन्धी मामले।

सविधान में यह भी आयोजन कर दिया गया है कि अधिनियम द्वारा विशेष न्यायालय भी स्थापित किये जा सकते है जिनम उन अपराधो की जाच होगी, जिनमें, उसी अधिनियम के अनुसार, सामान्य न्यायालय समुचित रूप से न्याय प्रबन्ध और शान्ति व सुरक्षा की रक्षा नही कर सकते। अधिनियम द्वारा इन विशेष न्यायालयो की रचना, शक्तियाँ अधिकार-क्षेत्र व कार्यपद्धति निश्चित की जा सकती है। सविधान से सैनिक न्यायालयो के स्थापित करने की भी अनुमति प्राप्त है। ये न्यायालय सैनिक कानून के विरुद्ध किये गये अपराधो की जाच करते है। इसके अतिरिक्त वे युद्ध या हिंसात्मक विद्रोह सम्बन्धी अपराधो के दण्ड का भी निर्णय करते हैं।

## पाठ्य पुस्तकें

Gwynn, D R —The Irish Free State 1922-27

Macneill—Studies in the Constitution of the Irish Free State (1925)

Phillips, W.A —The Revolution in Ireland 1906-1923

Ryan, D —Unique Dictator-A Study of Eman de Valera (1936)

Sharma B M.—Recent Experiments in Constitution Making chs II (U. I. P. H Lucknow (1938)

The Constitution of Eire (1937)

The Statesman's Year Book (Latest Edition)

---

# संयुक्त-राज्य अमेरिका

## अध्याय १६

### संयुक्त-राज्य अमेरिका का संघ-शासन

"जैसे अमेरिका अंगरेजी बन गया वैसे ही उपनिवेशों में अंगरेजी संस्थायें अमरीकी बन गईं। इन संस्थाओं ने पृथक पृथक उपनिवेशों के राजनैतिक जीवन की नयी स्थितियों व नई सुविधाओं के अनुकूल अपने आप को ढाल लिया; ये उपनिवेश प्रारम्भ में कठिनाइयों से लड़े, फिर विस्तृत हुए और अन्त में विजयी हुए। इन्होंने बिना अंग्रेजी स्वभाव छोड़े अमेरिकन रूप व रस प्राप्त कर लिया।"

(वुड्रो विलसन)

संयुक्त-राज्य अमेरिका नई दुनिया की सबसे बड़ी इकाई है। इसका क्षेत्रफल ३,६७३,६६० वर्ग मील है और जनसंख्या १४६,५७१,००० है। इन संख्याओं में संयुक्त राज्य के आधीन उपनिवेशों व प्रदेशों की भी संख्यायें शामिल हैं। संघ के ४८ उपराज्यों का ही कुल क्षेत्रफल २,६७३,७७६ वर्ग मील है और जनसंख्या १२२,७७५,०४६ है। यह देश पश्चिम में प्रशान्त महासागर व पूर्व में अटलांटिक महासागर के मध्य स्थित है। इसकी भौगोलिक विभिन्नता से बहुत सी राजनैतिक समस्याएँ खड़ी हुईं और इसी से उन समस्याओं के सुलझाने की रीति भी निश्चित हुई। लगभग प्रत्येक राष्ट्रीय प्रश्न में भौगोलिक परिस्थिति ने संयुक्त राज्य के राजनैतिक जीवन पर अपना प्रभाव डाला है। आधुनिक युग में संयुक्त राज्य अमेरिका का ही प्रथम ऐसा उदाहरण है जहाँ ऐसी पृथक इकाइयों को मिलाकर एक वास्तविक जनतान्त्रिक संघ राज्य की स्थापना हुई जिनके हितों का स्वतन्त्रता-युद्ध (War of Independence) से पूर्व कहीं भी मेल न होना था।

### शासन-विधान का इतिहास

**पूर्वकालीन उपनिवेश**—संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन को समझ

का सबसे महान राज्य-शासन प्रयोग समझा जाता है। प्रारम्भ में अटलांटिक के तट पर अंग्रेजों द्वारा बसाये हुए १३ उपनिवेश थे। इन उपनिवेशों में अंग्रेजों के अतिरिक्त यूरोप की कुछ दूसरी जातियों के लोग भी आकर बसे थे पर उनकी संख्या अधिक न थी। ये प्रवासी अपने साथ अपनी मातृभूमि की राजनैतिक संस्थायें भी लाये थे और भावनायें भी। इस बात का नई दुनिया के इतिहास पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। ये उपनिवेश तीन प्रकार के थे—

(१) सम्राट् के उपनिवेश (Crown Colonies) जिनमें न्यू हैम्पशायर, न्यूयार्क, न्यूजर्सी, उत्तरी व दक्षिणी कैरोलीना और जोर्जिया शामिल थे। प्रत्येक में गवर्नर शासन करता था जो सम्राट की शक्ति का अधीन था। उसकी सहायता करने के लिए एक कौंसिल होती थी।

(२) स्वाम्याधीन उपनिवेश (Proprietory Colonies) जिन में पेंसिलवेनिया, डेलावेयर और मेरीलेंड शामिल थे। उनका शासन ऐसे व्यक्तियों के आधीन था जिन्होंने शासन करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। उन व्यक्तियों का इन उपनिवेशों से वही सम्बन्ध था जो सम्राट का अपने उपनिवेशों से।

(३) चार्टर उपनिवेश (Charter Colonies) इसमें रोडद्वीप और कनेक्टीकट शामिल थे। इनका शासन वहाँ के नागरिकों को सीधे सम्राट ने अपनी आज्ञा से सुपुर्द कर दिया था।

**उपनिवेश मे समानताएँ**—शासन-संगठन की साधारण विभिन्नताएँ इन उपनिवेशों में पाई जाती थी परन्तु समानताएँ अधिक थी। "सब उपनिवेशों में निर्वाचित असेम्बलियों और राजसत्ता में नियुक्त गवर्नर व उसकी कौंसिल के बीच झगड़ा चलता रहता था। गवर्नरों को ऊपर से ऐसे आदेश मिलते थे जो प्राय उपनिवेशों के रहने वालों के विचारों से या उनके हितो से मेल न खाते थे। उपनिवेश निवासी निस्सन्देह सम्राट के प्रतिनिधियों को हैरान करके युद्ध करते थे। किन्तु साथ ही साथ यह भी बात थी कि जो अफसर इंगलैंड से भेजे जाते थे वे विवेकहीन होते थे जिसका परिणाम यह होता था कि वह अनावश्यक ही अमेरिकन भावनाओं पर आघात किया करते थे।"* इसका परिणाम यह हुआ था कि शासक व शासितों के हितो में बड़ा भेद संघर्ष खड़ा हो गया। अन्त में लोग असेम्बलों को अपना मित्र और गवर्नर को अपना बैरी मानने लगे। दूसरे शब्दों में, विधानमंडल लोकप्रिय हो गई और कार्यपालिका लोक-अप्रिय बन गई। ... ... ... • इस

*टी एच० रीट फौर्म्स एण्ड फंक्शन्स आफ अमेरिकन गवर्नमेंट पृ० १०-१८

संघर्ष का एक परिणाम यह हुआ कि असेम्बली अर्थात् विधानमण्डल का अध्यक्ष जो स्पीकर के नाम से विख्यात था और जो सभा का नेता व लोकेच्छा से शक्ति पाया हुआ सब से बड़ा अफसर था, राज्य संगठन में सब से प्रभावशाली राजनैतिक नेता बन गया।*

**उपनिवेश-निवासी अँगरेजी संस्थायें चाहते थे**—उपनिवेश निवासियों ने अपनी मातृभूमि की राजनैतिक संस्थाओं को जहां तक सम्भव हो सका, अपने नये देश में चलाने का प्रयत्न किया। उनकी सब से मूल्यवान् पैतृक सम्पत्ति 'इंगलिश कामन ला'' थी, जिसके अन्तर्गत अँगरेजों के वे सब मौलिक अधिकार सुरक्षित हैं जिन्हें राजा भी नहीं छीन सकता और एक समय तो वे इतने आदरणीय थे कि यह माना जाता था कि ब्रिटिश पार्लियामेंट का अधिनियम भी उनको नहीं मिटा सकता'। अन्त में इन्हीं अधिकारियों के ऊपर झगड़ा यहां तक बढ़ा कि उपनिवेशों व मातृभूमि में विच्छेद हो गया। सन् १७५०-७५ के बीच में उपनिवेश-वासियों ने ब्रिटिश पार्लियामेंट की उन अधिकारों के कुचलने की अनधिकार चेष्टा के विरुद्ध अपना असन्तोष प्रकट किया। उन्होंने सम्राट व पार्लियामेंट से लगाये हुए करों का देना अस्वीकार कर दिया और 'बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर नहीं'' के सिद्धान्त पर अड़ गये जो अँगरेजों की राजनैतिक बाइबिल का प्रथम आदेश है।

**'मातृभूमि' के विरुद्ध युद्ध घोषणा**—अन्त में इन १३ उपनिवेशों ने इंगलैंड और उसके सम्राट के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और ४ जुलाई सन् १७७६ को एक मत होकर यह घोषणा प्रकाशित की—

"यह कि ये संगठित उपनिवेश स्वतन्त्र व मुक्त राज्य हैं और उनका यह अधिकार है कि वह स्वतन्त्र व मुक्त रहें, यह कि वे ब्रिटिश सम्राट के प्रति किसी प्रकार की निष्ठा से प्रतिबन्धित नहीं हैं यह कि ग्रेट ब्रिटेन व उनके बीच राजनैतिक यातायात बन्द है और बिलकुल बन्द होना चाहिए और यह कि स्वाधीन और मुक्त राज्य होने से उन्हें युद्ध सन्धि सुलह और वे सब बातें और कार्य करने का अधिकार है जिन्हें मुक्त व स्वतन्त्र राज्य अधिकारी होने से वे कर सकते हैं।"

इस प्रसिद्ध घोषणा में 'मुक्त व स्वतन्त्र राज्य अधिकारी होने से कर सकते हैं'' शब्दों का उपनिवेशों के वैधानिक संघर्ष पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

---

*उसी पुस्तक में पृ० १६।

कनाडा में पैपीनाऊ और भारतवर्ष में बी० बी० पटेल का भी ऐसा ही उदाहरण है।

२उसी पुस्तक में पृ० २१।

अपनी स्वतंत्रता की घोषणा करने के बाद तुरन्त ही उपनिवेश-वासियों ने सब से प्रथम अपना ध्यान संगठित होकर युद्ध करने की ओर दिया। इस अभिप्राय की सिद्धि के लिये उन्होंने जून सन् १७७६ को एक समिति नियुक्त कर संघ की नियमावली का लेख बनवाया। इस नियमावली को राज्यों की कांग्रेस ने १५ नवम्बर सन् १७७७ को स्वीकार किया। यद्यपि इस नियमावली को अनुसमर्थन (Ratification) अर्थात् अनुमोदन सब राज्य १७८१ से पूर्व न कर पाये किन्तु उसको कांग्रेस में पास होने के बाद तुरन्त ही लागू कर दिया गया। इस नियमावली की पहली धारा से संघ का नाम 'संयुक्त-राष्ट्र अमरीका' रख दिया गया। यही नाम अब तक ज्यों का त्यों चला आ रहा है। दूसरी धारा में यह लिखा था कि प्रत्येक राज्य अपनी उस स्वतंत्रता व सत्ता, और हर प्रकार की शक्ति व अधिकार का स्वामी है जिसको सब स्थापित कर संयुक्त-राज्य की कांग्रेस को नहीं सौंपा गया है। इससे स्पष्ट है कि राज्य अपने व्यक्तित्व की रक्षा करने में कितने संदेही व सावधान थे और वे कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही संगठित हुये जो तीसरी धारा में दिये हुये थे। तीसरी धारा यह थी पूर्ववर्णित राज्य इसके द्वारा पृथक रूप के पारस्परिक मित्रता सुरक्षा अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा और पारस्परिक सामान्य हितपूर्ति करने वाले दृढ़ संगठन में प्रवेश करते हैं और यह प्रतिज्ञा करते हैं कि धर्म, सेना व्यापार या और किसी बहाने से किये हुये आक्रमण किये जाने पर या बल प्रयोग किये जाने पर व एक दूसरे की सहायता करेंगे'। कांग्रेस ही एक ऐसी सार्वजनिक संस्था थी जिसकी स्थापना की गई। इसमें प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि थे। कम से कम दो और अधिक से अधिक ७ प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार प्रत्येक राज्य को मिला हुआ था। प्रत्येक राज्य को केवल एक मत ही देने का अधिकार था चाहे उसके प्रतिनिधियों की संख्या कुछ भी हो। राज्य के प्रतिनिधियों का बहुमत राज्य की इच्छा का द्योतक समझा जाता था। यदि किसी राज्य के प्रतिनिधियों में दोनों ओर के मत बराबर होते थे तो राज्य का मत रद्द समझा जाता था। कांग्रेस के अधिवेशन काल के अतिरिक्त समय में एक समिति कार्यसंचालन करती थी। इस समिति में प्रत्येक राज्य का एक प्रतिनिधि होता था और यह समिति वह सब कार्य कर सकती थी जिसको करने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त था। कांग्रेस अपना सभापति जिसे प्रेसीडेंट कहा जाता था स्वयं चुनती थी। किन्तु प्रेसीडेंट को कार्य संचालन का अधिकार न दिया गया था क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि प्रेसीडेंट के रूप में उन पर दूसरे प्रकार का राजा बैठा दिया जाय।*

*रीड-फोर्स एण्ड फन्क्शन्स आफ अमेरिकन गवर्नमेंट पृ० २६

यह वास्तविक स्थायी संघ न था—निस्सन्देह उपनिवेश-वासियों की इच्छा तो यही थी कि एक स्थायी संघ की स्थापना हो "परन्तु संविधान की जो नियमावली बनाई गई उसमें राज्यों का वास्तविक एकीकरण नहीं हुआ। प्रारम्भ से ही ये बालू की रस्सी के समान थे जो किसी को बांध सकने में असमर्थ थी।........उनके नियमों के अनुसार कांग्रेस संघ की शक्ति को कार्यान्वित करती थी। कांग्रेस की समितियां ही इस संघ के कार्यकारी व न्यायकारी अंग थे। वास्तव में इसे कार्यकारी अंगों की आवश्यकता ही न थी क्योंकि इसे कार्य संचालन के कोई अधिकार ही न थे। इसका काम केवल परामर्श देना था न कि आदेश देना। यह राज्यों का हर बात में मुंह देखती थी। संघ का संविधान केवल एक अन्तर्राष्ट्रीय समझौते के समान था।"[1] कोई भी महत्वपूर्ण प्रस्ताव तब तक पास न समझा जाता था जब तक कि ६ राज्य उससे सहमत न हों। कई राज्यों ने अपने प्रतिनिधि ही न भेजे थे इस लिये संघ का योगार्पण जाता रहा और कांग्रेस की शक्ति भी जाती रही। कांग्रेस राज्यों से मुद्रा, मांग सकती थी पर उन्हें देने पर बाध्य न कर सकती थी, यह उनसे सेना की मांग कर सकती थी परन्तु उसके पास कोई ऐसा साधन न था जिससे वह उन्हें उस मांग को पूरा करने पर बाध्य कर सकती। यह संधि व समझौता कर सकती थी पर उसकी शर्तों का पूरा करना राज्यों पर छोड़ना पड़ता था। यह ऋण ले सकती थी किन्तु उसे चुकाने के लिये उसे राज्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। यह एक ऐसी संस्था थी जिसे बहुत से विस्तृत अधिकारों से विभूषित किया जाता था परन्तु उन्हें कार्यान्वित करने की शक्ति नहीं दी गई थी। कांग्रेस केवल परामर्श देने वाली संस्था ही थी। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् यह राज्यों को एक सूत्र में बांधने में असफल रही।

"इस काम करने की असमर्थता के कारण ही वर्तमान अधिक पूर्ण व अधिक दृढ़ राज्य संगठन की स्थापना सम्भव हुई"[2] मेरीलैंड (Maryland) और वर्जिनिया (Virginia) के राज्यों में पोटोमेक (Potomac) नदी में नौका चलाने के सम्बन्ध में झगड़ा हो गया। इस झगड़े को निबटाने के लिये जो कमिश्नर नियुक्त किये गये उन्होंने यह सिफारिश की कि एक दूसरा कमीशन नियुक्त किया जाय जो दोनों राज्यों से लगाये हुये आयात-निर्यात-करों के प्रश्न में छानबीन करे। इस पर विर्जिनिया ने व्यापार सम्बन्धी संघ के अधिकारों को अधिक विस्तृत करने पर विचार करने के लिये एक

---

१ विलसन—दी स्टेट (१९०० की आवृत्ति) पैरा १०६७

२ उसी पुस्तक में पैरा १०६६

सम्मेलन बुलाया। सन् १७८६ में यह सम्मेलन एनापोलिस नगर में हुआ जिसमें केवल पांच राज्यों ने ही अपने प्रतिनिधि भेजे। सम्मेलन ने अन्य प्रतिनिधियों के आने का इन्तजार न करके एक प्रस्ताव स्वीकार किया और सम्मेलन समाप्त कर दिया। प्रस्ताव यह था कि कांग्रेस मब राज्यो के प्रतिनिधियो का एक सम्मेलन फिलाडेलफिया नगर में बुलावे जो सघ के विधान में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार करे क्योंकि उसके बिना इसकी राय में सघ का शांति पूर्वक चलना असम्भव था।

**फिलाडेलफिया सम्मेलन**—तदनुसार कांग्रेस ने सन् १७८७ का प्रसिद्ध फिलाडेलफिया सम्मेलन बुलाया। सम्मेलन में जो प्रतिनिधि उपस्थित हुये वे सब लोक-कार्य में अनुभवी व्यक्ति थे इसलिये उन्होंने सारी समस्या को बड़े अच्छे ढग से वस्तुस्थिति को देखते हुये सुलझाना आरम्भ किया। उनका उद्देश्य "एक दृढ केन्द्रीय सरकार की स्थापना करना था जिसके साथ साथ राज्य की अधिक से अधिक स्वतन्त्रता भी सुरक्षित रहे। कई दिनों के वाद-विवाद के पश्चात् उन्होंने सन् १७८७ के सविधान का मसविदा तैयार किया। इस सविधान ने सयुक्त राज्य की सरकार का रूप ही बदल दिया क्योंकि इससे केन्द्रीय सरकार को सीधे उपराष्ट्रों के नागरिकों से सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति प्रदान कर दी गई।

## १७८७ का शासन-विधान

इस मसविदे को कांग्रेस ने राज्यों की स्वीकृति के लिये भेजा और जून २१, सन् १७८७ को जब नवें उपराज्य (न्यु हैम्पशायर) ने इसे स्वीकार कर लिया तो तुरन्त ही नौ उपराज्यों में इसे लागू कर दिया गया। इस नये शासन-विधान के अन्तर्गत प्रथम कांग्रेस का अधिवेशन ४ मार्च सन् १७८९ को हुआ।

**विधान सर्वोच्च अधिनियम है :**—इस सविधान का सबसे महत्वपूर्ण भाग इसकी प्रस्तावना है। इस प्रस्तावना में कहा गया है कि सब राज्यों की प्रजा सयुक्त-राज्य अमरीका के लिये यह सविधान स्थापित करती है। पूर्ववर्ती सघ के सविधान की अपेक्षा नये विधान में यह एक महत्वपूर्ण सुधार था क्योंकि पुराने विधान में लोकमत को कोई स्थान न दिया गया था। दूसरी महत्वपूर्ण बात छटे अनुच्छेद की धारा २ मे दी हुई है जिसमें कहा गया है कि यह सविधान और इसके अन्तर्गत बनाये हुये निर्बन्ध व वे सब सधियां सयुक्त-राष्ट्र अमरीका की सत्ता के अन्तर्गत की जायेंगी, राष्ट्र का सर्वोच्च अधिनियम समझी जायेंगी। प्रत्येक उपराष्ट्र में न्यायाधीश उनके प्रावधानों

के अनुसार निर्णय दिया करते थे कि उपराज्य का विधान या कोई नियम उनके विरुद्ध हो सकता न हो।" इस धारा से संविधान बहुत ही सुरक्षित और संघ का शासन बहुत ही दृढ़ हो गया, क्योंकि जब कभी संघ सरकार के या किसी उपराज्य के कानून का संविधान से विरोध पड़ता होता है, संविधान की ही विजय होती है, और इन मामलों में अन्तिम निर्णय सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के हाथ में रहता है जो पूर्णतया स्वतन्त्र न्यायालय है।

शासन-विधान की अन्य विशेषताएँ—यह शासन विधान आधुनिक राष्ट्रों के संविधानों में सब से संक्षिप्त है। अमरीका ने इसमें दो प्रमुख सिद्धान्तों को सुरक्षित रखा है, पहला लोकमतता व दूसरा संघ में उपराज्यों की समानता। उन्होंने इसमें पूर्णतया शक्ति-विभाजन के सिद्धान्त को अपनाया है। आगे चल कर ज्ञात होगा कि कार्यकारी, विधायिनी व न्यायिक सत्ता एक दूसरे से बिल्कुल पृथक है। यह बहुत ही कठिन परिवर्तनशील संविधान है। अब तक केवल २२ ही संशोधन इसमें हुये हैं। इसमें "बन्धन व सन्तुलन की पद्धति" (system of checks & balance) रखी गई है। इसकी कुछ प्रविधानों की आलोचना की जाती है जैसे, सीनेट को सन्धि व नियुक्ति करने की शक्ति प्रदान करना उचित नहीं समझा जाता। किन्तु यह ध्यान में रखने की बात है कि सन् १७८७ के विधान निर्माता उस समय की परिस्थितियों का सामना करने के लिए योजना बना रहे थे इसलिए *केवल की सरकार को आज के मापदण्ड से मापना है।* संविधान का सचालन बहुत असंतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ है और इसके चलते के समय से राज्य की उत्तरोत्तर वृद्धि हुई और वह समृद्धिशाली हुआ। यह सच है कि प्राय १६० वर्ष के इस लम्बे समय में भयंकर विवाद खड़े हुये और यह प्रतीत हुआ था कि सन् १८६१ का गृहयुद्ध संघ को तितर बितर कर देगा किन्तु फिर भी इसका कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों सहित अब तक बराबर बना रहना इस बात का प्रमाण है कि यह फ्रांस के शासन विधान से अधिक दृढ़ है क्योंकि उतने ही समय में फ्रांस के शासन विधान में कई बड़े परिवर्तन हो चुके हैं।

## संघ-सरकार की शक्तियां

संयुक्त राज्य अमरीका की संघ-सरकार की शक्तियां निश्चित रूप से

* पौर्म एण्ड फकरान्त आफ अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ४३

स्थिर की हुई है जिन्हे उस सरकार के भिन्न-भिन्न अंग कार्यान्वित करते हैं। विधायिनी शक्ति, अर्थात् कांग्रेस (जिसमें सीनेट व प्रतिनिधि सदन दो सभायें हैं) की प्रथम अनुच्छेद की ८वीं धारा के अनुसार निम्नलिखित शक्तियां हैं—

विविध प्रकार के कर लगाना और मुद्रा एकत्रित करना, ऋण चुकाना संयुक्त-राज्य की सुरक्षा और सार्वजनिक हित साधन का प्रबन्ध करना, किन्तु सब प्रकार के कर सारे संयुक्त-राज्य में एक समान होंगे।

संयुक्त-राज्य की सम्पत्ति के आधार पर ऋण लेना।

विदेशी राष्ट्रों से उपराष्ट्रों के बीच व मूल निवासियों से व्यापार सम्बन्धी नियमन करना।

नागरिक बनाने व दिवालिया निश्चित करने वाले एक समान नियम व अधिनियम सारे संयुक्त राज्य के लिये बनाना।

मुद्रा बनाना, उसका मूल्य स्थिर करना, विदेशी मुद्रा का मूल्य स्थिर करना, और माप तौल स्थिर करना।

संयुक्त राज्य के नकली प्रचलित मुद्रा व ऋण के प्रमाणपत्रों को बनाने पर दण्ड का विधान करना।

डाकघर स्थापित करना और डाक मार्ग बनवाना।

लेखकों व वैज्ञानिकों को अपने लेख व अन्वेषण के उपयोग का कुछ समय के लिये अनन्य अधिकार देकर उपयोगी कला व विज्ञान की उन्नति करना। सर्वोच्च न्यायालय से छोटे संघ न्यायालय स्थापित करना।

समुद्री लूट-पाट की व्याख्या करना व उसके लिये दण्ड का विधान करना, अन्त राष्ट्रीय अधिनियम के विरुद्ध किये अपराधों के लिये दण्ड देना।

युद्ध की घोषणा करना, बदला लेने के आज्ञापत्र देना और युद्ध में प्राप्त सम्पत्ति के सम्बन्ध में नियम बनाना।

सेना एकत्रित करना व शिक्षित करके तैयार रखना। किन्तु इस काम के लिये दो वर्ष से अधिक समय के लिये एक साथ मुद्रा का आयोजन नहीं हो सकता।

जल सेना संगठित कर उसका भरण पोषण करना।

स्थल सेना व जल सेना के शासन व नियमन सम्बन्धी नियम बनाना।

संघ के अधिनियमों को कार्यान्वित करने के लिये, विद्रोह को दबाने के लिये, और आक्रमण से रक्षा के लिये सेना बुलाने का आयोजन करना।

सेना को सगठित, शिक्षित व सुसज्जित करने और उसके उस भाग पर नियन्त्रण रखने का आयोजन करना जो संयुक्त राज्य की सेवा में उपयोग किया जा रहा हो। उपराज्यों को, बचे हुये सेना के भाग को, काग्रेस द्वारा निश्चित शिक्षण के अनुसार शिक्षित करने का व सेना के अफसरों को नियुक्त करने का अधिकार देना।

ऐसे जिले में जिसका क्षेत्रफल १० वर्ग मील से अधिक न हो, जिसको उपराज्यों ने संघ सरकार के सुपुर्द कर दिया हो व काग्रेस ने स्वीकार कर लिया हो, और इस प्रकार स्वीकृत होकर जो सघ सरकार का निवास-स्थान बन गया हो, उसमें अनन्य रूप से शासन करना। वैसा ही शासन उन सब जगहों में करना जो सघ सरकार ने उपराज्यों की विधानमडल की सम्मति से खरीद ली हो और जिनमें किले, बारूदखानें, शस्त्रागार, बन्दरगाह व दूसरी आवश्यक इमारतें बनी हों। और उन सब नियमों को बनाना जो पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक व उचित हों और उन दूसरी शक्तियों को कार्यरूप देने के लिये आवश्यक व उचित हो जो सविधान ने सयुक्त-राज्य की सरकार या उसके किसी शासन विभाग या अफसर में विहित कर दी हो।

प्रथम अनुच्छेद की ९ वी धारा ने नकारात्मक प्रतिबन्ध लगा कर काग्रेस की शक्तिया और भी कम कर दी है जैसे —

(१) जब तक वास्तव में विद्रोह या आक्रमण न हुआ हो काग्रेस अपराधी को न्यायालय में उपस्थित किये जाने का आदेश दिलवाने की सुविधा को स्थगित नही कर सकती।

(२) यह कोई गतानुदर्शी अधिनियम पास नहीं कर सकती।

(३) यह उच्चता की कोई उपाधि नही दे सकती।

सन् १७८७ में जब सविधान का निर्माण हुआ नागरिकों के अधिकारो को सविधान में घोषित करने का प्रश्न इतना महत्वशाली न हुआ था क्योंकि उस समय सघ सरकार की शक्तियों के विरुद्ध उपराष्ट्रों के क्या अधिकार होने चाहिये, यह प्रश्न अधिक महत्व रखता था। चार वर्ष बाद सन् १७९१ में लगभग १० सशोधन सविधान में किये गये जिनमें से नौ सशोधनो से नागरिकों के अधिकार प्रत्याभूत (Guaranteed) हुये और इस प्रकार सघ सरकार की स्वेच्छाचारिता पर अकुश रख दिया गया। इन सशोधनो से निम्नलिखित बातें निश्चित हो गई —

(१) कांग्रेस ऐसा कोई अधिनियम न बनायेगी जिससे कोई धर्म विशेष प्रतिष्ठित होता हो या स्वतन्त्रता पूर्वक उसके अनुसार आचरण करने पर रोक लगती हो, या वक्तृता देने, छापने व प्रकाशित करने, या जनता के शान्ति पूर्वक समुदाय बनाकर रहने या सरकार से अपनी तकलीफो की शिकायत करने की स्वतन्त्रता कम होती हो।

(२) स्वतन्त्र राज्य की रक्षा के लिये शिक्षित सेना आवश्यक होने से जनता का अपने पास अस्त्र रखने का अधिकार नही छीना जायेगा।

(३) शान्ति के समय में कोई सैनिक किसी घर में उसके स्वामी की सम्मति के बिना न ठहराया जायेगा और युद्ध समय में भी सिवाय अधिनियमानुसार ढग के किसी दूसरे ढग पर कोई सैनिक न ठहराया जायगा।

(४) किसी व्यक्ति का शरीर घर, उसके कागज व सामान बिना कारण न कुर्क किया जा सकता है न उसकी तलाशी ली जा सकती है।

(५) नरहत्या या अन्य बदनाम करने वाले अपराधो की जाच पचो द्वारा होगी।

(६) सब अपराधी अभियोगो की जाच जल्दी से जल्दी खुले ढग पर निरपेक्ष पचो द्वारा होगी।

(७) २० डालर से अधिक मत्य के अभियोगो में पचो द्वारा जाच होने का अधिकार सुरक्षित रहेगा।

(८) बहुत अधिक जमानत न मागी जायगी न बहुत अधिक जुर्माना किया जायगा और न निर्दयतापूर्ण या असाधारण दण्ड ही दिया जायगा।

(९) शासन में किन्ही अधिकारो की गिनती हो जाने का यह अर्थ न लगाया जायगा कि बचे हुये जनता के अधिकार मान्य नही है या वे कम आदरणीय है।

सन् १८७० में पास हुये १५वें सशोधन में यह कहा है कि सयुक्त-राज्य के किसी नागरिक को मताधिकार से वचित न किया जायगा न उस अधिकार को सीमित किया जायगा क्योकि वह किसी विशेष जाति, वर्ण का है या पूर्व दासता की स्थिति में रहा है। सन् १९२० में किये गये १९ वें सशोधन से स्त्री पुरुष दोनो को मताधिकार दे दिया गया।

**शक्तियो की सीमा स्थिर करना.**—सन १७९१ में हुये सविधान के दसवें सशोधन में कहा गया है कि सविधान ने जिन शक्तियो को सघ सरकार के सुपुर्द नही किया है व जिन शक्तियो का उपराज्यो द्वारा कार्यान्वित किये

जाने का संविधान से निषेध किया गया है वे शक्तियाँ उपराज्यों या जनता के लिये सुरक्षित हैं। किन्तु संघ सरकार की शक्तियां पर इन सब प्रतिबन्धों के रहते हुये और शेष शक्तियां उपराज्यों को दिये जाने पर भी संघ सरकार की शक्ति धीरे-धीरे कई कारणों वश बढ़ती जा रही है। पहला कारण यह है कि न्यायाधीश मार्शल की अध्यक्षता में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्थ-निहित शक्तियों का सिद्धान्त प्रतिपादित किया और संविधान की धाराओं का ऐसा व्यापक अर्थ लगाया कि केन्द्रीय सरकार को अत्यन्त शक्तिशाली बना दिया। दूसरे अन्त राष्ट्रीय सम्बन्धों के बढ़ने और अन्त राष्ट्रीय व्यापार की उन्नति होने से संघ सरकार ने बिना उपराज्यों के अधिकारों के समर्थकों को अप्रसन्न किये अपनी शक्तियों को बहुत बढ़ा लिया है। तीसरे संविधान को व्यवहार में लाने से जो अनुभव हुआ उससे फलस्वरूप जो संशोधन किये गये उनसे संघ सरकार की शक्ति बढ़ गई। उदाहरण के लिये, प्रथम अनुच्छेद की नवीं धारा के पैरा ४ को लीजिये। इसके अनुसार संघ सरकार कुछ कड़ी शर्तों के पालन करने पर ही प्रत्यक्ष कर लगा सकती थी, किन्तु १६ वें संशोधन ने यह शर्तें हटा दीं और कांग्रेस को यह शक्ति दे दी कि वह किसी प्रकार से प्राप्त हुई आमदनी पर कर लगा सकती है और इस कर से प्राप्त धन को किसी भी धारणा या संख्या का ध्यान रख उपराज्यों में न बांटा जायगा। अन्तिम कारण यह है कि संसार की परिस्थिति ही कुछ समय से ऐसी हो गई है जैसे, प्रशांत महासागर की समस्या, आर्थिक संकट और अन्त राष्ट्रीय व्यापार, कि उसका प्रभाव सब राष्ट्रों पर पड़ा है और परिणाम-स्वरूप संघ सरकार ने प्रजा की अस्पष्ट सम्मति से अधिकाधिक शक्ति अपने हाथ में कर ली है।

## संघ-विधानमण्डल

संयुक्त राज्य अमेरिका की कांग्रेस संघ की विधायिनी शाखा है। इसमें दो सदन हैं, एक प्रतिनिधि सदन और दूसरी सीनेट अर्थात् राज्य-परिषद्। इन दोनो सदनो की शक्तियां रचना व पारस्परिक सम्बन्ध मूल विधान (१७८७) के प्रथम अनुच्छेद और १९१३ के १७ वें संशोधन में दिये हुये हैं।

: प्रतिनिधि सदन ( House of Representatives ) कांग्रेस का निचला सदन है जिसके सदस्य जनता से सीधे निर्वाचित होते हैं। प्रारम्भ में यह आयोजन था कि प्रत्येक ३०००० नागरिकों की संख्या एक प्रतिनिधि चुनेगी, किसी भी उपराज्य का कम से कम एक प्रतिनिधि अवश्य चुना जायेगा और यह कि प्रति १० वर्ष की गणना द्वारा प्रतिनिधियों की

संख्या कम या अधिक की जायगी हालांकि निर्वाचकों व प्रतिनिधियों की संख्या का अनुपात सब उपराज्यों में एक समान ही होगा। तदनुसार प्रतिनिधियों की प्रारम्भिक संख्या जो ६५ था प्रति दस वर्ष के बाद बढ़ती गई क्योंकि नये उपराज्य संघ में आते गये और पुरानों में जनसंख्या बढ़ती गई। १४ वें संशोधन से निर्वाचन-सम्बन्धी कुछ परिवर्तन किये गये क्योंकि आबादी इतनी तेजी से बढ़ी कि यदि २०००० निर्वाचक एक एक प्रतिनिधि चुनते तो प्रतिनिधि सदन में सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो जाती कि उसको सभालना और कार्य संचालन करना कठिन हो जाता। आगार की वर्तमान संख्या ४३५ है जो सन् १९१० की जनगणना के आधार पर निश्चित की गई है। सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार प्रत्येक प्रतिनिधि ३०२, ९८९ मतधारकों का प्रतिनिधित्व करता है। यह ४३५ सदस्य विविध उपराज्यों से इन संख्याओं में निर्वाचित होकर आते हैं। अलाबामा ९, ऐरीज़ोना २ आर्कनसास ७ कैलीफोर्निया २३ कोलोरैडो ४ कनैक्टीकट ६ डैलावेयर १, फ्लोरीडा ६, जॉर्जिया ११, इदाहो २, ईलियोनिस २६ इंडियाना ११, आइओवा ८, कन्सास ६, कैन्टकी ९, लुइसियाना ८, मेन ३ मेरीलैंड ६, मैसाच्यूसैट्स १४ मिचीगन १७, मिनेसोटा ९ मिससिपी ७ मिस्सौरी १३ मोन्टाना २ नैब्रास्का ४, नेवादा १, न्यूहैम्पशायर २ न्यूजरसी १४ न्यूमैक्सिको २ न्यूयार्क ४५ नार्थकैरोलीना १२, नार्थडैकोटा २ ओहियो २३ ओक्लहामा ८ ओरीगन ४, पैनसिल्वेनिया ३३, रोड आइलंड २, साउथ कैरोलीना ६ साउथ डैकोटा २, टैनीसी १०, टैक्सास २१, उटा २ वरमोन्ट १ विरजीनिया ९ वाशिंगटन ६ पश्चिमी विरजीनिया ६, विसकौंसिन १० और व्योमिंग १।

निर्वाचन क्षेत्र—कांग्रेस प्रत्येक उपराज्य से चुने जाने वाले प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करती है किन्तु उन प्रतिनिधियों को चुनने के लिये निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन प्रत्येक उपराज्य अपने आप करता है। इस कार्य में उपराज्य का विधानमण्डल प्राय किसी राजनीति पक्ष के लाभार्थ निर्वाचन क्षेत्रों में परिवर्तन कर दिया करती है। उदाहरण के लिये यदि परिसीमन विधयक पर विचार करते समय विधानमण्डल में रिपब्लीकन (Republican) पक्ष का बहुमत है तो वे लोग डेमोक्रटिक (Democratic) पक्ष के बहुमत वाले जिलों को मिलाकर कम से कम निर्वाचन क्षेत्रों में इकट्ठा कर देंगे जिससे आने वाले निर्वाचन में अधिक से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों से रिपब्लिकन (Republican) प्रतिनिधि चुने जायें"*। जब डेमोक्रेट

*हैरिसन—दी अमरीकन गवर्नमेन्ट, पृ० ३०५।

(Democrat) पक्ष का बहुमत होता है तो वे भी अपने पक्ष में इसी प्रकार निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन करते हैं। सदन जनसंख्या के आधार पर गठित होता है इसलिए उपराज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या में बड़ा अन्तर देखने को मिलता है, उदाहरणार्थ, पूरे व्योमिंग (Wyoming) उपराज्य से केवल एक प्रतिनिधि चुना जाता है क्योंकि इसकी जनसंख्या २५०,७४२ (१९५० की जनगणना) है किन्तु अकेला न्यूयार्क (New York) नगर २५ प्रतिनिधि चुनता है।

मताधिकार—२१ वर्ष की आयु के नागरिक अधिकार-प्राप्त सब व्यक्ति मत दे सकते हैं। सदन की अवधि दो वर्ष है इसलिए प्रति दो वर्ष पश्चात् नये प्रतिनिधियों का चुनाव होता है। यह चुनाव नवम्बर मास में होता है किन्तु नये प्रतिनिधि अगली ३ जनवरी को जाकर सदन में अपना स्थान पाते हैं क्योंकि इसी दिनांक से नये सदन का जीवन प्रारम्भ होता है।

स्थानीय प्रतिनिधित्व—प्रतिनिधि जिन क्षेत्रों से निर्वाचित होते हैं उन्हीं के निवासी भी होते हैं इसलिए वास्तव में वे उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं हालांकि ऐसे क्षेत्र में जो इतना उन्नत नहीं कि एक योग्य व्यवस्थापक उत्पन्न कर सके इस पद्धति के कारण अयोग्य व्यक्ति का निर्वाचन करना पड़ता है। इस पद्धति से बहुत से योग्य व्यक्ति प्रतिनिधि बनने से वंचित रह जाते हैं। प्राय ऐसा देखा गया है कि कुछ क्षेत्रों में बहुत से योग्य व्यक्ति मिलते हैं और दूसरों में कोई भी नहीं होता। अतएव जब कोई उम्मेदवार अपने क्षेत्र में हार जाने से प्रतिनिधि नहीं चुना जाता तो उसके लिए कोई दूसरा क्षेत्र नहीं रह जाता। यह ठीक है कि लोकसभा के सदस्य व्यवहार-कुशल, अनुभवी व स्वाभाविक सामर्थ्य के व्यक्ति होते हैं जिनमें आधे से अधिक विश्वविद्यालय के स्नातक होते हैं। फिर भी कांग्रेस की सदस्यता योग्य व्यक्तियों की अधिक संख्या को आकर्षित नहीं करती। कारण यह है कि इन प्रतिनिधियों से मतधारक सब प्रकार की आशा रखते हैं। कोई पेंशन चाहता है तो कोई पदवी, तीसरा अपने उद्योग में सहायता और इनके अतिरिक्त स्थानीय काम के लिए उन्हें राजकीय अनुदान दिलाने का प्रयत्न भी करना पड़ता है। यह सब काम बड़ा उकताने वाला और अरुचिकर होता है।

प्रतिनिधियों का पारिश्रमिक—प्रत्येक प्रतिनिधि को १२५०० डालर वार्षिक आय मिलती है, २५०० डालर अलाउन्स और ३२०० डालर एक क्लर्क रखने के लिए मिलते हैं, कागज वगैरह लेखन सामग्री के लिए १२५ डालर और सफर खर्च २० सेंट (Cent) प्रति मील के हिसाब से दिया जाता

है। अन्तिम मद में ही प्रशान्त महासागर के तट से आने वाले प्रतिनिधि का भत्ता २५०० डालर हो जाता है। यह प्रतिनिधि सदन दुनिया में सब से अधिक व्यय-साध्य व्यवस्थापक संस्था है। प्रतिनिधियों को अपने पत्र आदि बिना डाक खर्च दिए भेजने का अधिकार है। सदन को जाते समय वहाँ से लौटते समय उनको किसी अपराध के लिए पकड़ा नही जा सकता। जब तक अपराध देशद्रोह, विद्रोह या हत्या की श्रेणी का न हो। उन्हे सदन मे बोलने की स्वतन्त्रता रहती है परन्तु अभद्र वचनो के लिए किसी भी सदस्य को सदन के दो तिहाई सदस्यो की सम्मति से बाहर निकाला जा सकता है।

**सदन अपनी कार्यपद्धति स्वयं निर्धारित करता है**—सदन को अपनी कार्यपद्धति पर पूर्ण स्वत्व प्राप्त है। यह अपनी कार्यवाही का दैनिक लेख रखता है जिसे समय समय पर छाप कर प्रकाशित किया जाता है। कभी कभी जब कार्यवाही गुप्त रखने का निश्चय किया जाता है तो उसका विवरण प्रकाशित नही होने दिया जाता। वार्षिक अधिवेशन दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार को प्रारम्भ होता है। सदन के निजी डाकघर, भोजनालय व कार्यालय होते है।

**सदन के अफसर**—नया सदन निर्वाचन होने के पश्चात् ३ जनवरी को अपनी प्रथम बैठक करता है और सबसे पहला काम स्पीकर (सभापति) क्लर्क, चैपलेंन, पोस्टमास्टर, सार्जेन्ट-एट-आर्म्स व द्वारपाल को चुनना होता है। यह चुनाव पक्ष प्रणाली पर ही होता है। प्रत्येक पक्ष अपने अपने उम्मेदवार खड़ा करता है और बहुमत वाले पक्ष की जीत होती है। निर्वाचित स्पीकर रीत्यानुसार सदन के सब से पुराने सदस्य से शपथ दिलाने की प्रार्थना करता है। बड़ी हर्ष ध्वनि के मध्य जब चारो ओर से अभिवादन सूचक रूमाल हिलते होते हैं और चित्रकारो के कैमरो की ध्वनि गूँजती है, वह क्लर्क से पदसूचक हथौड़ा लेता है। उसके पश्चात् कुछ थोड़े से शब्दो में सदस्यो को धन्यवाद देकर स्पीकर के कर्तव्य को सुचारु रूप से पूरा करने की शपथ लेता है। उसके पश्चात् वर्णक्रमानुसार सदस्यो के नाम पुकार कर उन्हे शपथ लेने को कहा जाता है। जब सब सदस्य शपथ ले चुकते है तब कुछ दूसरे अफसर चुने जाते है। उसके पश्चात् सदन के संगठित हो चुकने की घोषणा कर दी जाती है।

पहले जब सदस्यो की संख्या कम थी प्रत्येक प्रतिनिधि के लिए एक कुर्सी व मेज मिलती थी जिस पर रखकर वह अपनी लिखा पढी व दूसरा काम कर सकता था, किन्तु अब संख्या के बढ जाने से सदन मे स्थान की कमी

हो गई और स्पीकर को चुनने में कठिनाई भी होने लगी। फलतः मेज अब सदन से हटा दी गई है। पूर्व समय में स्पीकर (Speaker) को कई काम करने का अधिकार था, यहां तक कि सदन की समितियां भी वही नियुक्त करता था। वह इतना शक्तिशाली था कि उसे 'जार' की पदवी दी जाने लगी थी। किन्तु कैनन (Cannon १८९९-१९११) के स्पीकर निर्वाचित होने के बाद सदन ने इस निरंकुशता को समाप्त करने का प्रयत्न किया। श्री कैनन कहा करते थे कि 'स्पीकर सदन की ही कठपुतली है और सदन जब चाहे तब उसके महत्व को गिरा सकता है।"

**सदन की समितियाँ**—सदस्यों की संख्या अधिक होने के कारण समिति पद्धति द्वारा काम करने की रीति अपनाई जाती है। इसकी समितियों की संख्या १९ है जिनमें बहुसंख्यक व अल्पसंख्यक दोनों पक्षों के सदस्य होते हैं। ये समितियां स्थायी समितियां कहलाती हैं। किन्तु इनमें से कुल ६ या ७ समितियां ही उल्लेखनीय हैं। सबसे प्रभावपूर्ण नियोजन विनियोग समिति (Appropriation Committee) और साधन समिति ( Ways & Means Committee) ही हैं। छोटी समितियों की बैठकें मुश्किल से हुआ करती हैं। समितियों का महत्व सदन में विचाराधीन विधेयक या प्रस्ताव पर निर्भर रहता है, जब जैसा विधेयक या प्रस्ताव विचाराधीन होता है उस समय उस विषय से सम्बन्धित समिति महत्वपूर्ण बन जाती है।

**व्यवस्थापन कार्य प्रणाली**—प्रत्येक विधेयक प्रथम वाचन के पश्चात् रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए उससे सम्बन्धित समिति के सुपुर्द हो जाता है। समिति उसकी परीक्षा व सुधार करना आरम्भ करती है। समिति से लौटने पर पांच सूचियों में से एक में इसका नाम रख दिया जाता है। इनमें पहली सूची जिसका नाम संघ सूची (Union Calendar) है सारे सदन की समिति से सम्बन्ध रखती है। यह समिति उन विधेयकों पर विचार करती है जो आय-व्यय से सम्बन्ध रखते हैं और जिन पर स्थायी समिति की अनुकूल रिपोर्ट होती है। दूसरी सूची सदन सूची (House Calendar) कहलाती है। इसमें वे सार्वजनिक विधेयक होते हैं जिनको संघ सूची में स्थान नहीं मिलता, तीसरी सूची सारे सदन की समिति की सूची ( Calendar of the Committee of the Whole House) होती है जिसमें सब प्राइवेट (Private) विधेयक रखे जाते हैं। चौथी सूची में वे योजनायें होती हैं जो सर्वसम्मति से प्रस्तुत की जाती हैं और पांचवी सूची में समितियों को दिये हुए आदेश मिलते हैं। इस प्रकार किसी भी सूची में रखे जाने के बाद विधेयक का

दूसरा वाचन प्रारम्भ होता है। इस वाचन में सदस्य संशोधन के प्रस्ताव सामने रखते हैं और उन पर अपने विचार प्रकट करते हैं। किसी एक योजना पर कोई सदस्य एक बार बोल सकता है और वह भी एक घंटे से अधिक नहीं। जब कांग्रेस के सत्र (Session) की समाप्ति का समय आता है उस समय कांग्रेस की कार्यवाही का एक मनोरम दृश्य देखने को मिलता है। प्रायः इस समाप्ति से पहले ही काम की बड़ी अधिकता रहती है। पर विरोधी पक्ष भी उस समय अपनी विलम्बकारी चालें चलता है। आखिरी रात को इन चालों का मजा देखने में आता है। सारी रात की बैठक बड़ी असुविधाजनक होती है और प्रायः गणपूरक नहीं रहता। उस समय सदस्य आकर, धूम्रपान कर, आपस में ठिठोली कर या झगड कर जगने का प्रयत्न करते हैं पर व्यवस्थापन कार्य नहीं होने देते। तीसरे वाचन के पश्चात् स्पीकर योजना पर मत लेना आरम्भ करता है। मत देने की तीन रीतियाँ हैं।

(१) मुखोच्चारण के स्वर से, यदि दूसरे दो ढंग अपनाने की मांग न की जाय तो प्रायः उसी से निर्णय किया जाता है।

(२) सदस्यों को, स्पीकर द्वारा नियुक्त गिनने वाले व्यक्तियों के सामने चलाने से (गण पूरक के पाँचवें भाग के बराबर सख्या में सदस्यों से इसकी मांग हो सकती है) और

(३) सब सदस्यों का नाम पुकार कर और उनसे 'हाँ' या 'ना' कहलवाकर। इसमें बडी देर लगती है। विरोधी पक्ष इस ढंग को अंड़गा लगाने के लिए प्रयोग कराने का प्रयत्न करता है। उपस्थित सदस्यों के पाचवें भाग से माग किये जाने पर यह ढंग काम में लाया जाता है।

दोनों सदनों का पारस्परिक विरोध—जब सदन से कोई योजना स्वीकृत हो जाती है, तब वह सीनेट को भेज दी जाती है। यदि सीनेट इसे अस्वीकार कर देती है तो वह वहीं समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि सीनेट उसमें सुधार कर सकती है तो यह वापस प्रतिनिधि सदन के विचारार्थ लौटा दी जाती है। यदि लोक सभा (House of Representatives) अर्थात् प्रतिनिधि सदन इन संशोधनों को अस्वीकार करता है तो इसकी सूचना सीनेट को दे दी जाती है। सीनेट इस सूचना के मिलने पर चाहे तो बराबर सख्या में दोनों सदनों के सदस्यों की कान्फ्रेंस बुलाने की माग कर सकती है। इन सदस्यों को 'मैनेजर' कहते हैं। इस कान्फ्रेंस में किसी समझौते पर पहुँचने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार जब योजना अन्ततः स्वीकार हो जात

उस योजना या विधेयक स्पीकर और सीनेट के सभापति के हस्ताक्षर होने के लिये प्रस्तुत किया जाता है। हस्ताक्षर होने पर यह प्रेसीडेंट के पास भेज दिया जाता है। यदि प्रेसीडेंट उससे सहमत होता है तो वह उस पर सम्मति सूचक हस्ताक्षर कर देता है और वह विधेयक अधिनियम (Law) बन जाता है। किन्तु यदि प्रेसीडेंट उससे सहमत नहीं होता तो वह विरुद्ध युक्तियाँ देकर उसे उसी सदन को लौटा देता है जिसमें वह विधेयक प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार लौटाये जाने पर यदि पृथक पृथक दोनों सदन दो तिहाई मताधिक्य से उसे पास कर दें तो वह विधेयक प्रेसीडेंट की असम्मति होने के बावजूद अधिनियम बन जाता है। यदि प्रेसीडेंट किसी विधेयक पर दस दिन के भीतर हस्ताक्षर नहीं करता या प्रतिवाद करके नहीं लौटाता तो वह विधेयक अपने आप अधिनियम बन जाता है। किन्तु कांग्रेस के सत्र के अन्तिम दस दिनों में जो विधेयक प्रेसीडेंट के पास पहुँचते हैं वे तभी अधिनियम बन सकते हैं जब प्रेसीडेंट उन पर अपने हस्ताक्षर कर देता है। इस प्रकार इन विधेयकों को प्रेसीडेंट हस्ताक्षर न कर अपनी जेब में रख कर चुपचाप रहने से ही रद्द कर सकता है। अधिनियम बन जाने के बाद प्रत्येक विधेयक सेक्रेटरी आफ स्टेट के दफ्तर में जमा हो जाता है।

सब मुद्रा विधेयक प्रतिनिधि सदन में प्रारम्भ होते हैं। सीनेट को उनमें संशोधन करने का अधिकार अवश्य है। प्रेसीडेंट के चुनाव के अंतिम दिन तक यदि किसी उम्मेदवार को आवश्यक मताधिक्य प्राप्त नहीं होता तो प्रतिनिधि सदन ही किसी व्यक्ति को प्रेसीडेंट चुनता है।

**दूसरा सदन**— अमेरिकन संघ विधानमण्डल का दूसरा सदन सीनेट कहलाता है। यह उपराज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। उपराज्यों की समानता इसे मान्य है क्योंकि प्रत्येक उपराज्य को इसमें दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। विधान की रचना होते समय उन लोगों ने जो उपराज्यों के अधिकारों के समर्थक थे यह जोर दिया कि सब उपराज्यों को इकाई रूप में समान समझा जाय। उनकी यह मांग पारस्परिक मेल और प्रेम भाव बनाये रखने के हेतु स्वीकार कर ली गई थी। 'दी फेडरलिस्ट' नामक ग्रन्थ के रचयिता का यह कहना ठीक ही है कि प्रत्येक उपराज्य को एक वोट (मत) देना उनकी अवशिष्ट सत्ता को वैधानिक मान्यता प्रदान करता है और साथ साथ उस अवशिष्ट सत्ता की रक्षा करने के हेतु वह एक अस्त्र भी है।"* आगे चलकर वे फिर कहते हैं कि अनुचित अधिनियमों के बनने में यह एक और रुकावट डाली

*फैडरलिस्ट अध्याय ५२

गई है हालांकि वे यह मानते हैं कि ऐसी पेचदार रुकावट है अनिवार्य भी सिद्ध हो सकती है और लाभदायक भी। प्रारम्भ में यह निर्णय हुआ था कि सीनेट के सदस्यों को उपराज्यों की विधानमंडल पृथक्-पृथक् चुना करेंगी किन्तु १७ वें संशोधन से इसमें कुछ परिवर्तन हो गया है और अब इन सदस्यों का चुनाव उपराज्यों की जनता स्वयं करती है। जब अस्थायी रूप से किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है तो उपराज्य की सरकार निर्वाचन होने समय तक के लिये उस स्थान को अपने मनोनीत व्यक्ति से भर सकती है।

**सीनेट के सदस्यों की योग्यताएँ**—सीनेट के उम्मेदवार को ३० वर्ष की आयु का होना चाहिये। वह संयुक्त राज्य का ९ वर्ष नागरिक रह चुका हो और निर्वाचन के समय उस राज्य में रहता हो जहाँ से वह निर्वाचित हुआ है। विधानमण्डल के अधिक संख्या वाले सदन के निर्वाचन में जो लोग मत देने के अधिकारी होते हैं वे ही इन सीनेट के सदस्यों के निर्वाचन में भाग ले सकते हैं।

**सीनेट के सदस्यों को प्राप्त सुविधायें**—प्रारम्भ में जब संघ में केवल १३ ही उपराज्य थे सीनेट के सदस्यों की संख्या २६ थी किन्तु उपराज्य की संख्या के बढ़ने से सीनेट के सदस्यों की संख्या भी बढ़ती गई और इस समय ४६ उपराज्यों से ९८ सीनेट के सदस्य चुने जाते हैं। सीनेट के सदस्य ६ वर्ष तक सदस्य बने रहते हैं, प्रति दो वर्ष बाद एक तिहाई सदस्य हट जाते हैं। अतएव सीनट सर्वदा जीवित रहती है। सीनेट के सदस्यों को प्रतिनिधियों के समान ही १२५०० डालर का पारिश्रमिक मिलता है। उनको प्रतिनिधियों के समान ही बोलने की स्वतन्त्रता और पकड़े जाने से मुक्ति मिलती रहती है। 'वे धन कमाने के लिये किसी सरकारी विभाग (Executive Department) में वकालत नहीं कर सकते। वे संयुक्त राज्य के किसी सरकारी पद पर नियुक्त नहीं किये जा सकते जिसका वेतन उस समय बढ़ाया गया हो जब वे सीनेट के सदस्य थे*। यदि कोई सीनेटर (सीनेट का सदस्य) ऐसे किसी सरकारी पद को स्वीकार कर लेता है तो उसे घटे हुये वेतन पर काम करना पड़ता है।

**सभापति**—संयुक्त राज्य का उप-राष्ट्रपति (Vice-President) अर्थात् उपाध्यक्ष जिसको सीधे जनता चुनती है सीनेट का सभापति होता है। किन्तु निर्णायक मत (Casting Vote) देने के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार या शक्ति उसे नहीं होती। उपाध्यक्ष की अनुपस्थिति में स—

---

* दी अमरीकन गवर्नमेन्ट, पृ० ३२१

का आसन ग्रहण करने के लिये सीनेट अपने में से ही किसी सदस्य को अनुपस्थिति भर के समय के लिए सभापति चुन लेती है। यह अस्थायी सभापति (President Pro Tempore) उपाध्यक्ष के बराबर ही वेतन पाता है। सीनेट के नये निर्वाचित सदस्यों को उपाध्यक्ष ही शपथ दिलवाता है। क्योंकि एक बार में किसी उपराज्य से दो में से केवल एक सीनेटर ही नया चुना जा सकता है, शपथ लेते समय पूर्व सीनेटर नये सीनेटर को उपाध्यक्ष की मेज के पास ले जाता है। कभी कभी पूर्व सीनेटर और नये सीनेटर में बड़ा वैर भाव रहता है, वैयक्तिक और राजनीतिक भी, जिससे वे आपस में एक दूसरे का अभिवादन भी नहीं करते।

सीनेट की शक्तियाँ—सीनेट की शक्तियां बड़ी विस्तृत हैं। यह प्रतिनिधि सदन से अधिक शक्तिशाली है। सीनेट विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक तीनों प्रकार की सत्ता का उपभोग करती है। विधायक सदन की स्थिति से यह प्रतिनिधि-सदन के बराबर ही शक्तिशाली है। अन्तर केवल इतना ही है कि मुद्रा विधेयक प्रतिनिधि सदन में ही प्रारम्भ होना है, सीनेट में नहीं हो सकता। कार्यकारी क्षेत्र में प्रेसीडेंट जिन समझौतों व सधियों को करता है वे सीनेट के दो तिहाई मताधिक्य से स्वीकृत होनी चाहियें। सीनेट ने जो सबसे महत्वपूर्ण संधियां अनुसमर्थित (ratified) की और जिनसे संसार का ध्यान आकर्षित हुआ वे थीं जो अस्त्र परिसीमन कांग्रेस के परिणामस्वरूप हुईं। चतुर्शक्ति संधि (Four Power Pact) भी ऐसी ही संधि थी जिसका सीनेट ने अनुसमर्थन किया। सीनेट ने प्रेसीडेंट विलसन के उस प्रस्ताव को रद्द कर दिया था कि अमरीका राष्ट्र संघ (League of Nations) की सदस्यता स्वीकार करले और उस विशेष अवसर पर सीनेट ने अपनी कार्यकारिणी सत्ता का प्रेसीडेंट के विरुद्ध प्रदर्शन किया। जिन संघ-सरकार के अफसरों की प्रेसीडेंट नियुक्ति करता है। उनकी नियुक्ति में सीनेट की सम्मति लेना आवश्यक है। इन कार्यकारी शक्तियों को सीनेट में विहित करने को ठीक ठहराते हुए ब्राइस ने कहा है वैदेशिक नीति का परिचालन व नियुक्ति करने का अधिकार एक प्रेसीडेंट के सुपुर्द करना सरते से अच्छा न होगा जो चार वर्ष तक अपने पद से हटाया नहीं जा सकता, जिसके मंत्री विधानमंडल में नहीं बैठते और उसको उत्तरदायी नहीं होते। न ये शक्तियां ऐसी अल्पजीवी और बहुसंख्यक संस्था को सुपुर्द की जा सकती थी जैसा कि प्रतिनिधि सदन है जो राष्ट्र को पर्याप्त रूप से उत्तरदायी नहीं बन सकता और जो अपनी बड़ी कार्य नियमावलि के कारण विधयकों पर व दूसरी

समस्याओं पर इतनी अच्छी तरह वाद-विवाद नहीं कर सकता जिससे जनता व देश को उनका स्पष्ट ज्ञान हो जाय"O। न्यायिक सत्ताधारी होने के नाते सीनेट न्यायालय के रूप में संघ सरकार के अफसरों पर लगाये हुये अभियोगों की जांच करती है। सर्वोच्च न्यायालय के प्रमुख न्यायाधीश पर व अन्य न्यायाधीशों पर लगाये गये अभियोग की जाच भी सीनेट ही करती है। अब तक सीनेट ने ऐसे नौ अभियोगों की जाच की है जिनमें प्रेसीडेंट एन्ड्रू जौन्सन और न्यायाधीश सैमूअल चेज के अभियोग भी शामिल है। ये दोनों जांच के पश्चात् मुक्त कर दिये गये। जार्ज वाशिंगटन ने एक बार सीनेट को वह तश्तरी बताया था जिसमें प्रतिनिधि सदन में पकाई हुई चाय ठंडी होती है।

**सीनेट सबसे शक्तिशाली दूसरा सदन है**—कुछ लोग अमेरिकन सीनेट को दुनिया का सबसे शक्तिशाली ऊपरी सदन बताते है क्योंकि सीनेट को उन बहुत सी बातों के करने का अधिकार है जो न हाउस आफ लार्ड्स (House of Lords) कर सकता है न फ्रांस की सीनेट या स्विस-सीनेट कर सकती है। अमेरिका की सीनेट की शक्ति और प्रभाव का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार किया जाता है 'कुछ ऐसी बातें है जिन्हे प्रेसीडेंट और सीनेट बिना प्रतिनिधि-सदन की सम्मति से कर सकते है या प्रतिनिधि-सदन व सीनेट प्रेसीडेंट की सम्मति के बिना कर सकते है किन्तु वह बातें अपेक्षाकृत बहुत थोडी है जिन्हे प्रेसीडेंट और प्रतिनिधि-सदन बिना सीनेट की सम्मति के कर सकते हैं *। सीनेट की उपयोगिता का वर्णन करते हुये राजनीतिज्ञ ब्राइस ने लिखा है यह प्रतिनिधि सदन से अधिक परिवर्तन विरोधी नही है, इसमें २० वर्ष पहिले की अपेक्षा धनी व्यक्तियों की सख्या कम है और अब इसे धनी वर्ग से सहानुभूति नही रह गई है। इसके सदस्यों की सख्या कम होने के कारण जहाँ योग्य व्यक्तियों को इसमे आकर अपनी सामर्थ्य व योग्यता दिखाने व ख्याति प्राप्त करने का अधिक अवसर मिलता है, वहाँ यह सरकार के शासन-यत्र के परिचालन में स्थिरता भी लाती है क्योंकि इस के अधिकतर सदस्य चार या छ वर्ष तक अपने स्थानों पर सुरक्षित रहने से लोक आवेगों से जल्दी ही चचल नही होते। इसमें चाहे कुछ भी दोष हो किन्तु इसका अस्तित्व अपरिहार्य है।[१]

O मौडर्न डैमोक्रेसीज, पुस्तक २, पृ० ६६

* दी अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ३१७

१ मौडर्न डैमोक्रेसीज, पुस्तक २, पृ० ६६

यह बात निस्सन्देह है कि सीनेट ने कई राष्ट्रनेताओं को जन्म दिया है। संयुक्त-राज्य अमरीका के कई व्यक्ति प्रेसीडेंट होने से पूर्व सीनेट के सदस्य रह चुके थे। इनमें मुनरो, जैक्सन, हैरीसन पीयर्स, हार्डिंग के नाम उल्लेखनीय हैं।

**सीनेट अपनी कार्यप्रणाली स्वयं निर्धारित करती है**—अपना कार्य करने के लिए सीनेट ने स्वयं अपने नियम बना रखे हैं। विभिन्न प्रस्तावों व विधेयकों पर विचार करने के लिए सीनेट की स्थायी समितियाँ हैं जिनकी संख्या १५ है। प्रत्येक समिति में बहुसंख्यक पक्ष के ही लोग अधिक संख्या में रहते हैं। कौन व्यक्ति सदस्य बनाये जायेंगे यह प्रत्येक पक्ष की गुप्त समिति (Caucus) निश्चित करती है। सीनेट का सदस्य जितनी देर चाहे सीनेट में बोल सकता है। संयुक्त राज्य अमरीका की सीनेट ही दुनिया में ऐसी विधान-मंडल है, जहां वाक्स्वतन्त्रता पर कुछ भी रोक नहीं है। सीनेटर जब एक बार बोलने को खड़ा हो जाता है तो वह जब तक बोलना चाहे बात करता है। वह दूसरे सीनेटर को अपनी वक्तृता में हाथ बटाने को कह सकता है और उसकी वक्तृता समाप्त होने के पश्चात् वह फिर अपनी वक्तृता जारी रख सकता है। कभी कभी चमड़े जैसे मजबूत फेफड़े वाले सीनेटरों ने इस अधिकार का ऐसा उपयोग किया है कि सत्र की समाप्ति के समय जिस योजना पर बोलना आरम्भ किया उस पर इतनी देर तक बोले कि सत्रावसान होने से वह योजना वहीं समाप्त हो गई*। जब कोई सीनेटर किसी योजना के विरुद्ध होता है तो वह इसी अधिकार का प्रयोग कर उसे समाप्त कर देता है। अल्प-संख्यक पक्ष प्रायः यही तरीका काम में लाता है। इसको फिलीबस्टर (Filibuster) कहते हैं। एक समय सीनेटर स्मूट जो ऊटा उपराज्य (Utah) का प्रतिनिधि था बिना अपना मंच से हटे ही सारी रात बोलता रहा। एक दूसरे अवसर पर टैक्सास का सीनेटर शेपर्ड राष्ट्र-संघ (League of Nations) के कार्य का निरीक्षण करते हुये ६ घंटे और ५० मिनट तक बोलता रहा और इतने समय तक वह न बैठा न आराम किया, यहां तक कि पानी तक न पिया[1]। सन् १६०८ में विसकान्सिन के सीनेटर ला फौलिट और दूसरे सीनेटरों ने एल्डरिच मुद्रा सम्बन्धी विधेयक (Currency Bill) का ऐसा विरोध किया कि सीनेट की बैठक २६ मई की दोपहर को आरम्भ होने के पश्चात् ३० घंटे तक चलती रही। वाक्-स्वातन्त्र्य के इस दुरुपयोग के होते हुये भी (यदि हम इसे दुरुपयोग कहे) सीनेट ने

* फोर्म एण्ड फंक्शन्स आफ अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २६४-२६५

[1] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ३२४

इस नियम को अभी तक बदलने का प्रयत्न नहीं किया है और इस अधिकार को अक्षुण्ण रखा है। साधारणतया सीनेट की बैठकों में दर्शकों के लिये कोई बाधा नहीं होती। किन्तु प्राय महत्वपूर्ण शासन कार्य होने पर गुप्त बैठकें भी होती हैं जिनमें सामान्य जनता को जाने की आज्ञा नहीं होती।

सीनेट में बीते हुए दिनों के स्मृति चिन्ह अभी तक रहते आ रहे हैं। बहुत दिनों पहिले सीनेटरों ने जो मेजें काम में लाई थी उन्हें कुछ सीनेटर अब भी गर्व के साथ प्रयोग में लाते हैं। उन दिनों सभापति की मेज पर सूंघनी की डिबिया रखी जाया करती थी। वह डिबिया अब भी वैसे ही रखी जाती है हालांकि उसे अब कोई काम में नहीं लाता। इसी तरह पहले स्याही सुखानेवाले कागज का आविष्कार न होने से रेत की डिबिया सीनेटरों की मेजों पर रखी जाती थी। ये अब भी उसी तरह वहां मिलेंगी। यद्यपि वे अब प्रयोग में नहीं लाई जातीं।

सीनेट में एक और अद्भुत प्रथा प्रचलित है वह यह है कि सीनेटर को आज्ञा मांगने का अधिकार है कि उसकी लिखी हुई वक्तृता जिसका एक शब्द भी सीनेट में न पढ़ा गया हो। कांग्रेस के आलेखों में इस रूप में शामिल करदी जाय मानो वह सीनेट में पढ़ी गई हो। कुछ सीनेटर तो इस लिखित पर न बोली हुई वक्तृता में प्रशंसा सूचक क्षेपकों तक को उस जगह लिख देते हैं जहां वे समझते हैं कि श्रोता यदि वक्तृता को सुनते तो करतल-ध्वनि आदि में प्रशंसा करते, जिससे वह वक्तृता वास्तव में बोली हुई प्रतीत होने लगती है। दुनिया में किसी और देश के विधानमंडल में ऐसी प्रथा प्रचलित नहीं मिलेगी। ऐसी लिखित वक्तृता यदि लेख के रूप में किसी समाचार-पत्र या पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी होती है तो वह सीनेट के आलेख में शामिल नहीं की जा सकती है। सन् १९२६ के फरवरी मास में सीनेटर मकैलर ( Mckeller ) ने यह चाहा कि विश्व-युद्ध ऋण समझौते पर लिखा उसका लेख आलेख में शामिल कर लिया जाय। सभापति ने इस पर आपत्ति की और प्रश्न किया कि क्या सीनेटर ने स्वयं उस लेख को लिखा है। सीनेटर ने उत्तर में कहा कि यह सही है कि लेख उसने ही लिखा है। इस पर सभापति ने कहा कि "अतएव सीनेट के नियमों के अनुसार सभापति की समझ में यह आता है कि सीनटर के बिना पढ़े हुए इसे छापा नहीं जा सकता" ।○

कांग्रेस का प्रभाव—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कांग्रेस के महत्व के बारे में

○ दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ३२०

यह संक्षिप्त वर्णन दिया है । "यह सदन उपद्रवकारी व जल्दबाज संस्था सिद्ध नहीं हुई जिसका संविधान निर्माताओं को भय बना हुआ था । इसमें आवेगों की आंधी बहुत कम उठती है । उपद्रव आदि के दृश्य तो देखने में ही नहीं आये । राजनीतिक दलों का अनुशासन कठोर रहता है । शिष्टता का वातावरण सदा बना रहता है, कार्य प्रणाली की अवज्ञा नहीं की जाती और इने गिने व्यक्तियों के हाथ में शक्ति रहती है । यह असाधारण रूप से निर्वाचकों और विशेष कर विभिन्न राजनीतिक दलों की इच्छाओं को जानने व उन्हें पूरी करने को उत्सुक रहती है ।" [1] इस कथन के होते हुए भी यह सच है कि प्रखर बुद्धि वाले व्यक्ति कांग्रेस में निर्वाचित होने को उत्सुक नहीं रहते । इसका एक विशेष कारण यह है कि अमरीका में ऐसे व्यक्तियों के लिये दूसरे अधिक आकर्षक कार्यक्षेत्र खुले हैं जहां वे अपनी प्रतिभा का उपयोग कर सकते हैं । लोक यात्रा के जितने विभिन्न मार्ग अमरीका में हैं, स्यात् और किसी देश में न मिलेंगे जिनमें महत्वाकांक्षी सामर्थ्यवान व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति कर सकते हैं । प्रचुर धन राशि लाने वाले औद्योगिक व्यवसाय, अच्छी फीस देने वाला वकीलों का कार्य व विश्व विद्यालयों के ऊंचे पद जहां युवकों को मार्ग दिखलाने में ही अपने जीवन का श्रेय समझने वाले व्यक्तियों को ख्याति प्राप्त होती है, जीवनयापन के ये कतिपय साधन प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिये प्रचुरमात्रा में उपलब्ध हैं ।

## संघ कार्यपालिका

संविधान में यह लिखा हुआ है कि 'कार्यपालिका शक्ति संयुक्त राज्य अमरीका के प्रेसीडेन्ट में विहित रहेगी । वह चार वर्ष तक अपने पद पर स्थित रहेगा ।" दिन प्रतिदिन के व्यवहार में शासन विभागों के अध्यक्ष ही शासन कार्य करते हैं । कांग्रेस इन शासन विभागों को जन्म देती है और उन पर अपना नियन्त्रण रखती है ।

**प्रेसीडेंट पद के लिये योग्यतायें**—प्रेसीडेंट पद के उम्मेदवार में कुछ योग्यतायें होना आवश्यक है । ये संविधान के अनुच्छेद की धारा के ५ वें पैरा में दी हुई हैं । जिसमें लिखा है कि कोई भी व्यक्ति जो इस विधान के अंगीकार होने के समय संयुक्त राज्य अमेरिका का नागरिक नहीं है प्रेसीडेंट के पद के योग्य न समझा जायगा । न वह व्यक्ति इसके योग्य समझा जायगा जो ३५ वर्ष की आयु का न हो और १४ वर्ष तक संयुक्त राज्य अमरीका का

[1] मौडर्न डैमोक्रेसीज, पु० २, पृष्ठ ६७

निवासी रह चुका हो।" इन योग्यताओं के अतिरिक्त इस पद के उम्मेदवार देखते समय राजनीतिक पक्ष ऐसे व्यक्ति को ही छांटते हैं जो अधिक से अधिक मतदाताओं को अपने पक्ष में करने में सफल हो सकता हो। इसलिये यह उम्मेदवार ऐसा होना चाहिए जो सामाजिक जीवन के किसी क्षेत्र में सफल कार्य सिद्ध हुआ हो, चाहे कांग्रेस में, किसी उपराज्य के गवर्नर के पद पर, किसी बड़े नगर के मेयर के पद पर, मन्त्रिपद पर, स्यात् राजदूत या न्यायाधीश के पद पर या वह एक असाधारण ख्याति प्राप्त पत्रकार रहा हो।"०

प्रेसीडेन्ट के पद की अवधि—एक प्रेसीडेंट का कार्यकाल ४ वर्ष है। संविधान में एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा गया है। किंतु संयुक्त-राज्य के प्रथम प्रेसीडेंट जार्ज वाशिंगटन तथा टौमस जैफरसन ने यह प्रथा चला दी थी कि एक ही व्यक्ति का प्रेसीडेंट के पद के लिये एक बार ही पुनर्निर्वाचन हो सकता है। सन् १९४० तक कोई भी व्यक्ति लगातार दो बार प्रेसीडेंट न चुना गया था। सन् १८७५ में जनरल ग्रांट तीसरी बार चुने जाने के लिये कुछ कुछ इच्छुक था परन्तु प्रतिनिधि-सदन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास करके उस इच्छा की जड़ ही खोद दी "इस सभा की समझ में प्रेसीडेंट वाशिंगटन व अन्य संयुक्त-राज्य के प्रेसीडेंटों ने प्रेसीडेंट के पद से दूसरे कार्यकाल से पश्चात् अवकाश लेने का जो उदाहरण रखा था वह सर्वमान्य होकर हमारी प्रजातन्त्र शासन प्रणाली का ऐसा अंग बन चुका है कि इस चिरकाल सम्मानित प्रथा के प्रतिकूल चलना अविवेकपूर्ण, देशप्रेम के विरुद्ध और हमारी स्वतंत्र संस्थाओं के लिये भयपूर्ण होगा।" थियोडोर रूज़वेल्ट (Theodore Roosevelt) लगातार तीसरी बार निर्वाचन के लिये खड़ा हुआ किन्तु उसके प्रतिद्वन्दी उम्मेदवार ने उसको निर्वाचन में सफल न होने दिया। किन्तु सन् १९४० में फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट (Franklin D Roosevelt) जिसका कार्यकाल सन् १९४१ में समाप्त हो रहा था, यूरोपियन युद्ध-जनित विपत्ति-पूर्ण अन्त राष्ट्रीय स्थिति के कारण तीसरी बार प्रेसीडेंट निर्वाचित हो गया और सन् १९४४ में वह चौथी बार निर्वाचित हुआ क्योंकि दूसरा महासमर समाप्त नहीं हुआ था और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति गंभीर और जटिल थी। अब सन् १९५१ के विधान संशोधन से यह निश्चित कर दिया गया है कि कोई भी व्यक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका का राष्ट्रपति दो बार से अधिक नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रचलित प्रथा पर आघात लगा, प्रेसीडेंट का कार्यकाल ३६६ दिन वाले वर्ष के पश्चात् आने वाले वर्ष की

० मौडर्न डैमोक्रैसीज़, पुस्तक पृष्ठ ७३

२० जनवरी की दोपहर को समाप्त होता है। यह दिनांक शासन-विधान में १८ वें संशोधन से निश्चित हुई थी।

**निर्वाचन कैसे होता है**—प्रेसीडेंट का निर्वाचन सीधे जनता नहीं करती किन्तु प्रेसीडेंट-निर्वाचक करते हैं। इन प्रेसीडेंट-निर्वाचकों को ३६६ दिन वाले वर्ष के दिसम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन जनता स्वयं चुनती है। किन्तु प्रेसीडेंट के चुनाव की लड़ाई पांच छ मास पूर्व मई या जून से ही प्रारम्भ हो जाती है। दुनिया में यह सब से बड़ी राजनीतिक लड़ाई समझी जाती है। फिर भी "अमरीकन राजकीय जीवन की यह विशेषता है कि पूर्व शासक के आसन छोड़ने और नये शासक के आसनारूढ़ होने से अशान्ति की एक लहर भी नहीं उठती"। इसका कारण यह है कि अमरीकन जनता मतदान की सन्दूक (Ballot Box) की विजय को शान्ति पूर्वक शिरोधार्य कर लेती है।

**प्रेसीडेन्ट निर्वाचकों का चुनाव**—प्रेसीडेन्ट-निर्वाचकों के चुनाव की तिथि से कुछ मास पूर्व राजनैतिक पक्ष सारे देश में अपना प्रचार आरम्भ कर देते हैं। वे गत ग्रीष्म-ऋतु में प्रेसीडेन्ट व उप-प्रेसीडेंट के पदों के लिये अपने अपने उम्मेदवार निश्चित कर चुके होते हैं। नवम्बर मास में प्रथम सोमवार के बाद आने वाले मंगलवार के दिन सब मतधारक व्यक्ति अपने अपने उपराज्य में एकत्रित होकर इन निर्वाचकों के चुनाव के लिये अपना मत देते हैं। इस निर्वाचन में उम्मीदवारों की योग्यता पर कुछ ध्यान नहीं दिया जाता केवल उनका किस पक्ष से सम्बन्ध है इसी का ध्यान रखा जाता है। मतधारक अपने अपने झुकाव के अनुकूल रिपब्लिकन (Republican) या डेमोक्रेट (Democrat) पक्ष के उम्मेदवारों को निर्वाचक बनाने के लिये अपना मत देते हैं। किसी उपराज्य से चुने जाने वाले प्रेसीडेंट-निर्वाचकों की संख्या उस उपराज्य के प्रतिनिधि-सदन में बैठने वाले निवासी व सीनेट में भेजे हुये प्रतिनिधियों (सीनेटरों) की संख्या के योग के बराबर होनी है।

**प्रेसीडेन्ट और उप-प्रेसीडेन्ट का निर्वाचन**—ये प्रेसीडेंट-निर्वाचक दिसम्बर मास के दूसरे बुधवार के बाद आने वाले सोमवार के दिन अपने अपने उपराज्य की राजधानी में एकत्रित होकर प्रेसीडेंट व उप-प्रेसीडेंट चुनने के लिये अपना मत देते हैं। इसलिये निर्वाचन के परिणाम के सम्बन्ध में तीन प्रमाण-पत्र तैयार किये जाते हैं एक जिले के न्यायालय में रख दिया जाता है, दूसरा सीनेट के प्रेसीडेंट को डाक से भेज दिया जाता है और तीसरा उसी को पत्रवाहक के द्वारा भेजा जाता है। इसके बाद ६ जनवरी को सीनेट

व प्रतिनिधि-सदन की संयुक्त बैठक में कांग्रेस का अधिवेशन होता है। सीनेट का सभापति उन प्रमाणपत्रों को खोलता है। तब दोनों सदनों से दो दो व्यक्ति इन्हें गिनने के लिये नियुक्त किये जाते हैं। जो उम्मेदवार सब प्रेसीडेंट निर्वाचकों का मताधिक्य प्राप्त करते हैं वे प्रेसीडेंट और उप-प्रेसीडेंट घोषित कर दिये जाते हैं। इन निर्वाचकों की संख्या ५३१ है इसलिये जिस प्रेसीडेंट पद के उम्मेदवार को या उप-प्रेसीडेंट के उम्मेदवार को २६६ या अधिक मत मिल जाते हैं, वह प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है। किन्तु यदि इतने मत पाने वाला कोई उम्मेदवार न हो तो प्रथम अधिकतम मत पाने वाले उम्मेदवारों म से प्रतिनिधि-सदन एक को प्रेसीडेंट चुन लेता है। इसी प्रकार सीनेट उप-प्रेसीडेंट को चुनती है। इस चुनाव मे उपराज्य मे सब प्रतिनिधियों को एक ही मत देने का अधिकार होता है और जो उम्मेदवार बहुसंख्यक उपराज्यों के मत प्राप्त करता है वह प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है। यदि प्रतिनिधि-सदन ४ मार्च तक किसी को प्रेसीडेंट नही चुन पाता तो पूर्व उप-प्रेसीडेंट अपने आप प्रेसीडेंट बन जाता है और जो उप-प्रेसीडेंट के पद का उम्मेदवार इस पद के चुनाव में अधिकतम मत प्राप्त करे वह सीनेट द्वारा उप-प्रेसीडेंट घोषित कर दिया जाता है।

इस प्रणाली से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट (अथवा अध्यक्ष या उपाध्यक्ष) के चुनाव के लिए प्रसीडेंट-निर्वाचकों का मताधिक्य ही आवश्यक है, प्रजा के प्राथमिक मतदाताओं का मताधिक्य होना आवश्यक नही है। सन् १८७६ म हेज (Hayes) और सन् १८८८ में हरिसन (Harrison) प्रेजीडेंट निर्वाचकों के बहुमत से चुने गए थे किन्तु उनके विरोधी टिल्डैन और क्लीविलैंड को प्रजा का बहुमत प्राप्त था। प्राथमिक मतदाताओं ने अधिक संख्या में इनको चुनना चाहा था किन्तु प्रसीडट-निर्वाचकों की अधिक सख्या ने हेज और हैरीसन को पसन्द किया। प्रेसीडेंट की मृत्यु होने पर उसके पदत्याग करने पर या हटाये जाने पर उप प्रेसीडेंट (उपाध्यक्ष) अपने आप प्रेसीडेंट बन जाता है। यदि एस अवसर पर उप-प्रसीडेंट भी इस योग्य न हो कि प्रेसीडेंट बना दिया जाय, उसके पदत्याग करने से, मृत्यु होने से, अस्वस्थ या हटाए जाने से तो सेक्रेटरी आफ स्टेट (Secretary of State) अन्तरिम प्रेसीडेंट बन जाता है। यदि वह यह कार्यभार नही ले सकता तो युद्ध सेक्रेटरी प्रेसीडेंट का पद ग्रहण करता है। इसी क्रम से एटोरनी जनरल (Attorney General) अर्थात् महा न्यायवादी, पोस्टमास्टर जनरल, नौसेना सेक्रेटरी गृह सेक्रेटरी आवश्यकता पडने पर पद के लिए नियुक्त होते हैं* ।

* स्टेट पैरा १३२३ (१६०० का संस्करण)

**शपथ**—निर्वाचन समाप्त होने के पश्चात् अभिषेक के लिए प्रेसीडेंट को एक जलूस के साथ ले जाया जाता है। उसे यह शपथ लेनी पड़ती है 'मैं यह शपथ लेता हूँ (या प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं प्रेसीडेंट के कार्य को निष्ठापूर्वक करूँगा और अपनी सारी योग्यता से संयुक्त-राज्य के संविधान को बनाये रखूँगा उसकी रक्षा करूँगा और उसकी रक्षा के लिए प्रयत्न करूँगा।"

**प्रेसीडेंट का वेतन**—प्रेसीडेंट को एक लाख डोलर का वार्षिक वेतन दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष यात्रा खर्च के लिए ४०,००० डोलर, ३६००० डोलर लेखन सामग्री, तार टेलीफोन आदि के लिए और २००० डोलर छपाई आदि के लिए दिया जाता है। प्रेसीडेंट के रहने के ह्वाइट हाउस (White House) नाम का एक सुन्दर भवन मिला हुआ है जो १७ एकड़ भूमि घेरे हुए है और जिस पर प्रतिवर्ष १२४००० डोलर खर्च किया जाता है। एक विशेष पुलिस का जत्था, जिसमें तीन अफसर व ३० सिपाही रहते हैं, ७५००० डौलर के खर्च पर रक्षा के लिए रखा जाता है। तिस पर भी उसके उच्चपद के कारण प्रेसीडेंट का व्यक्तिगत खर्च इतना अधिक है कि जब वह ह्वाइट हाउस को छोड़ता है तो उसमें प्रवेश करने के समय की अपेक्षा अधिक निर्धन होकर जाता है।

**प्रेसीडेंट अत्यन्त लोकप्रिय व्यक्ति होता है**—साधारणतया प्रेसीडेंट राज्य का सबसे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति होता है। दुनिया में जितने चित्र उसके लिये जाते हैं उतने किसी दूसरे व्यक्ति के नहीं लिये जाते। कई बार वह चलित चित्रों में भी दिखाई देता है। यह कहा जाता है कि वाशिंगटन नगर के एक दुकानदार के पास प्रेसीडेंट विल्सन के चित्र की १४००० प्रतिलिपियाँ थी। प्रेसीडेंट की डाक का थैला दुनिया के किसी भी शासनाध्यक्ष की डाक की अपेक्षा अधिक भारी होता है। प्रतिदिन पत्रों व तारों की संख्या ३००० से ४००० तक होती है जिनमें से केवल २०० ही प्रेसीडेंट तक पहुँचते हैं शेष उसका सेक्रेटरी देखता है। "स्यात् दुनिया में ऐसा कोई दूसरा अफसर न होगा जिसके पास उतने प्रार्थना-पत्र आते हों जितने अमरीका के प्रसीडेंट के पास आते हैं। प्राय इनमें मनचले लेखकों की हास्यपूर्ण चुटकियां भी रहती हैं। सामान्यत प्रेसीडेंटों को अनेकों वस्तुएँ भेंटस्वरूप प्राप्त होती हैं। प्रसीडेंट हार्डिंज की मृत्यु के पश्चात् ह्वाइट हाउस के तीन कमरों में भरी हुई ऐसी उपहार-वस्तुओं को बाधने में और भेजने में दो सप्ताह का समय लगा। प्रेसीडेंट से मिलने वालों की सख्या बहुत अधिक होती है। प्रेसीडेंट हार्डिंज के समय में १४०,००० व्यक्ति प्रेसीडेंट से मिलने आए। 'यदि प्रेसीडेंट यह

चालाकी न सीखे कि मिलने वाले व्यक्ति को अवसर न देकर स्वयं उसका हाथ पहले पकड़ ले तो निश्चय ही हस्तमर्दन करते करते उसकी बाँह मूज जाय"* ।

सब से शक्तिशाली शासनाध्यक्ष—"अमरीका के प्रेसीडेंट पर जितनी जिम्मेदारियाँ हैं और उसकी जितनी शक्ति हैं उतनी इस देश में या दुनिया के किसी दूसरे देश में किसी व्यक्ति को नहीं है। वह दुनिया के शासकों में सबसे प्रथम है"।[१] प्रेसीडेंट की शक्ति का उपर्युक्त वर्णन बिलकुल सत्य है, इसमें यदि कोई अपवाद है तो वे कम्पनियों के डाइरेक्टर हैं जिन्होंने पिछले कुछ वर्षों से अपने हाथ में बहुत शक्ति केन्द्रित कर रखी है। प्रेसीडेंट की शक्ति में विशेषता इस बात की है कि उसका वैधानिक महत्व बहुत है और उसे लोक समर्थन प्राप्त रहता है। एक समय जो यह भय हुआ था कि प्रेसीडेंट स्यात निरंकुश शासन बन जाय, वह निर्मूल सिद्ध हुआ है "...... राष्ट्र के मन में अमेरिकन शासन के सिद्धान्तों की जड़ें इतनी गहरी जमी हुई हैं कि उनको उल्लंघन करने की थोड़ी सी भी प्रवृत्ति से विरोध की आँधी चलने लगेगी'[०]। ब्रिटिश सम्राट अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है। उसका कोई भी कार्य तब तक वैध नहीं होता जब तक उसका समर्थन मन्त्रियों में से कोई न करे। वह राज्य करता है पर शासन नहीं करता। उसके बारे में यह कहा जाता है कि वह कोई अपराध नहीं कर सकता। इस कथन में बहुत सच्चाई है क्योंकि शासन के मामले में वह स्वयं कोई आज्ञा नहीं देता। सब शासन शक्ति मन्त्रिमंडल के पास रहती है। इस मन्त्रिमंडल का अध्यक्ष प्रधान मन्त्री होता है और वही प्रमुख शासक रहता है। सम्राट का व्याख्यान भी मन्त्रिमंडल तैयार करता है जिसमें इसकी शासन नीति रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेंट भी अपनी सरकार का दिखावटी अध्यक्ष है, वहाँ भी सारी शासन शक्ति मन्त्रिपरिषद् के हाथ में रहती है। फ्रांस का प्रेसीडेंट न राज्य करता है न शासन करता है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमरीका के प्रेसीडेंट के पास कई शक्तियाँ हैं और वह वास्तव में शासन करता है।

विधायिनी शक्तियाँ (Legislative Powers)—प्रेसीडेंट अपने संदेशों द्वारा कांग्रेस के सम्मुख अधिनियम सम्बन्धी प्रस्ताव रखता है। पहले प्रेसीडेंट प्रतिनिधि सदन और सीनेट का संयुक्त बैठक में स्वयं जाकर कांग्रेस

---

* हैर्मायिन दी अमरीकन गवर्नमेंट पृ० ५६ ५७

१ उसी पुस्तक में पृ० ५९

० मौडर्न डमोक्रेसीज पु० २, पृ० ७६

को अपना संदेश दिया करता था। बाद में यह प्रथा छोड़ दी गई और केवल यह संदेश उसकी ओर से पढ़ कर सुना दिया जाने लगा। किन्तु प्रेसीडेंट विलसन ने स्वयं जाकर अपने संदेश देने की प्रथा को फिर चालू किया। यह संयुक्त अधिवेशन प्रतिनिधि-सदन के भवन में होता है। 'कभी कभी प्रेसीडेंट का संदेश किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन कर देता है कि वह सांविधानिक के रूप में मान्य हो जाता है और इस प्रकार वह सिद्धान्त या नियम देश के संविधान का वैसा ही भाग बन जाता है मानों संविधान में विधि पूर्वक उसे शामिल कर लिया गया हो"[1]। जो सिद्धान्त मुनरो सिद्धान्त (Monroe Doctrine) के नाम से प्रसिद्ध है उसकी सृष्टि प्रेसीडेंट मुनरो के द्वारा इसी प्रकार हुई थी। प्रेसीडेंट मुनरो ने यह घोषणा की कि "संयुक्त राज्य अमरीका पश्चिमी गोलार्द्ध में यूरोपियन राज्यों के आधिपत्य और प्रभाव का बढ़ना सहन नहीं करेगा" प्रेसीडेंट के ये संदेश कांग्रेस के विधायी कार्य पर बड़ा प्रभाव डालते हैं, विशेषकर उस समय जब प्रेसीडेंट के ही पक्ष का कांग्रेस में बहुमत होता है।

**प्रेसीडेंट का प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power)**—प्रेसीडेंट कांग्रेस के बनाए हुए विधेयकों को रद्द भी कर सकता है। जो विधेयक दोनों सदनों से स्वीकार हो चुका हो, उसे प्रेसीडेंट अपनी विरुद्ध युक्तियों सहित दस दिनों के भीतर लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाया हुआ विधेयक तब तक कानून नहीं बन सकता जब तक कि दोनों सदनों में दो तिहाई मत से वह फिर जैसे का तैसा पास न हो जाय। यदि दो तिहाई मत से वह पास न हो तो वह रद्द समझा जाता है। प्रेसीडेंट कांग्रेस का अतिरिक्त अधिवेशन कर सकता है।

**प्रतिषेधात्मक अधिकार (Veto Power) का महत्व**—उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडेंट की विधायिनी शक्ति ७१ प्रतिनिधियों और १५ सीनेटरों के बराबर है (प्रतिनिधियों की संख्या ४३५ और सीनेट की ९६ है)। ऐसी शक्ति न ब्रिटिश सम्राट के पास में है न फ्रांस के प्रेसीडेंट के पास। अमरीका के प्रेसीडेंट ने सन् १७८९ व १९२५ के बीच में ६०० बार इस शक्ति का प्रयोग किया। राजशास्त्री हरमन फाइनर ने प्रतिषेधात्मक शक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है "यह ऐसी शक्ति है जिसमें कुछ व्यय नहीं करना पड़ता और जिसके प्रयोग करने में सफलता की आशा तो रहती है, दण्ड का भय नहीं रहता। देश में विधानमंडल में लड़ी हुई व्यवस्था सम्बन्धी लड़ाई को कांग्रेस का

[1] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० ६५

कोई भी पक्ष केवल इतने समय मे हार सकता है जितनी देर में प्रेसीडेंट 'नही' व कुछ दूसरे व्याख्यात्मक शब्द लिखने में लगावे। इस नही' का उल्लघन पुनर्विचार और दो तिहाई मत से ही हो सकता है जो काग्रेस की वहुलता और दोनो सदनो में पक्षो की विभिन्नता के कारण सम्भव नही है।"० असल मे प्रेसीडट ने विधायक कार्य का वहुत कुछ नेतृत्व अपने हाथ में कर लिया है।

कार्यकारिणी शक्तियां—शासन क्षेत्रो मे प्रेसीडेंट की शक्तियां वडी विस्तृत है। वह राष्ट्र का प्रमुख मजिस्ट्रेट अर्थात् शासक है। वह सेना का मुख्य सेनापति है। विदेशी राजदूतो को वह ही स्वीकार करता है तथा अपने राजदूतो की नियुक्ति भी वह ही करता है। वह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो की भी नियुक्ति करता है। उसका यह प्रमुख काम रहता है कि वह यह देखे कि सयुक्त-राज्य अमरीका के कानूनों का भली भाँति पालन हो रहा है। सीनेट की अन्तिम स्वीकृति से वह सधि कर सकता है। पर-राष्ट्र विभाग का वह अकेला कर्त्ता-धर्ता है। इस नियन्त्रित शक्ति का वह इस प्रकार प्रयोग कर सकता है कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय जिससे कांग्रेस को सिवाय प्रेसीडेंट की नीति का समर्थन करने के और कोई चारा ही न रह जाय। शासन-सम्बन्धी नियुक्तियो में उसे सीनेट से सलाह लेनी पडती है। व्यवहार में वह जिस उपराज्य मे नियुक्ति करनी होती है उसी के सीनेटरो से सलाह लिया करता है। किन्तु जब सीनेट की बैठक न हो रही हो, उस समय अस्थायी रूप से रिक्त पदो के भरने का उसे पूरा अधिकार है। ऐसी नियुक्तियां वह ऐसे ढग से कर सकता है कि सीनेट की इच्छा के विरुद्ध भी वह नियुक्ति पक्की बनी रहे। रिक्त पदो पर वह अपने मित्रो व राजनैतिक पक्ष के साथियो को नियुक्त कर अपने पक्षानुराग का खुले तौर पर परिचय देता है। पदाधिकारियो की नियुक्ति की शक्ति का प्राय ऐसा उपयोग किया गया है कि घरेलू व वैदेशिक मामलो में प्रसीडेंट की ही मन चाही बात होनी है। छोटे पदाधिकारियो को प्रेसीडेंट बिना सीनेट से पूछे ही नियुक्त कर सकता है। क्षमादान करने की शक्ति प्रसीडेंट को ही दी हुई है और प्रेसीडेंट ही छुट्टियां घोषित करता है।

स्वविवेकी शक्तियाँ (Discretionary Powers):—प्रेसीडेंट को कुछ ऐसी शक्तियां भी प्राप्त हैं जिनका उपयोग वह अपने विवेक से ही करता है। इन शक्तियो के बल पर प्रेसीडेंट किन्ही व्यक्ति या व्यक्ति समूहो को किसी

० थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ माडर्न गवर्नमेंट पु० II, पृ० १०३३

काम के करने से रोक सकता है या किसी काम को करने के लिये उन्हें बाध्य कर सकता है। इस शक्ति के प्रयोग में न्यायालय भी हस्तक्षेप नहीं करते। यदा कदा न्याय विभाग और प्रेसीडेंट व सुप्रीम कोर्ट में भी टक्कर होती है। प्रेसीडेंट की शक्ति इतनी अधिक है कि एक अवसर पर जब प्रधान न्यायाधीश मार्शल ने प्रेसीडेंट जैक्सन की इच्छा के प्रतिकूल एक निर्णय दिया तो प्रेसीडेंट जैक्सन ने कहा "मार्शल ने अपना निर्णय दे तो दिया पर वह उसको कार्यान्वित भी करे।" इससे दिखला दिया कि न्यायालय भी अपने निर्णय को कार्यान्वित कराने में प्रेसीडेंट पर ही निर्भर है।

**प्रेसीडेंट पर अभियोग**—प्रेसीडेंट पर दुर्व्यवहार व महापराध का अभियोग लगाया जा सकता है। प्रतिनिधि-सदन में अभियोग लगाने का निर्णय पहले होता है। तब सीनेट में यह अभियोग लगाया जा सकता है और उसकी जाँच की जाती है। प्रेसीडेंट को अपराधी ठहराने और दण्ड देने के लिये सीनेट का निर्णय दो तिहाई बहुमत से होना चाहिये।

**प्रेसीडेंट की मंत्रिपरिषद्**—प्रेसीडेंट की मंत्रिपरिषद् में शासन विभागों के अध्यक्ष होते हैं जिनको प्रेसीडेंट सीनेट की सम्मति से नियुक्त करता है। "ये लोग प्रेसीडेंट के ऐसे निकटस्थ सहायक होते हैं कि यदि सीनेट प्रेसीडेंट से चुने हुये व्यक्तियों को नियुक्त करने से इन्कार करे तो यह केवल शिष्टता नहीं बात ही न हो वरन् यदि ऐसे विरोधों की संख्या अधिक हो तो शासन सत्ता ही छिन्न-भिन्न हो जाय।"* प्रेसीडेंट की मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को वैसी ही शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं जैसी ब्रिटेन या फ्रांस की पार्लियामेंटरी या अन्य मंत्रिपरिषद् के सदस्यों को मिली हुई रहती हैं। इसका कारण यह है कि अमेरिकन कार्यपालिका शक्ति केवल प्रेसीडेंट में ही निहित है। यह एकात्मक कार्यपालिका (Unitary Executive) है और इसीलिए फ्रांस व इंगलैंड की अनेकात्मक कार्यपालिका से भिन्न है। अमेरिका की कार्यपालिका स्थायी (चार वर्ष के समय तक) अध्यक्षात्मक (Presidential) कार्यपालिका है जो विधान मण्डल को उत्तरदायी नहीं है जैसी कि संसदात्मक कार्यपालिका (Parliamentary Executive) होती है। अमरीका के प्रेसीडेंट का यह अधिकार है कि वह अपने मंत्रियों की राय को पलट सकता है। वह प्रायः ऐसा करता भी है क्योंकि उनकी सलाह सिफारिश के रूप में होती है। इसका स्पष्टीकरण एक उदाहरण द्वारा किया जा सकता है। एक बार अब्राहम लिंकन ने अपना एक प्रस्ताव अपने सात मंत्रियों की परिषद् के सामने रखा

* थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ मॉडर्न गवर्नमेंट पृष्ठ १०८४

और उन सब ने उसका विरोध किया। परन्तु स्वय उसने उसका समर्थन किया। उसने चुपचाप यह निर्णय दिया "इस निर्णय के पक्ष में हाँ कहने वाला १ और विपक्ष में न कहने वाले ७ मत है इसलिये हाँ की जीत हुई।"

**सचिव प्रेसीडेंट के मातहत है**—प्रेसीडेंट के मन्त्री जो सेक्रेटरी कहलाते है दोनो सदनो में से किसी में भी उपस्थित नही हो सकते। वे वहाँ जाकर अपनी नीति पर लगाये हुये दोषारोपण का प्रतिवाद भी नही कर सकते। वे प्रेसीडेंट के ही आश्रित रहते है और यदि वे किसी बात में प्रेसीडेंट से सहमत नही होते तो अधिक से अधिक यही कर सकते है कि अपना पद त्याग कर दें। प्रेसीडेंट रूजवेल्ट के समय मे ऐसे कई उदाहरण मिलेंगे। युद्ध के समय प्रेसीडेंट की शक्ति अधिनायक (Dictator) जैसी हो जाती है। उस समय उसे सेक्रेटरियो से परामर्श लेने की आवश्यकता भी नही रहती। किन्तु बहुत कुछ प्रेसीडेंट के व्यक्तित्व पर निर्भर रहता है। यदि वह सुदृढ व्यक्ति नही है तो वह कुछ नही कर पाता, और यदि वह दृढ इच्छा वाला होता है तो अपने देश में सर्वशक्तिमान् बना रहता है।

ये सेक्रेटरी विभिन्न शासन विभागो के अध्यक्ष बना दिये जाते है। इस समय इन विभागो की सख्या १० है। मन्त्रिपरिषद में इन देशो के उपाध्यक्ष १० सेक्रेटरी है। स्टेट डिपार्टमेन्ट, अर्थात् परराष्ट्र विभाग, अर्थ विभाग, युद्ध-विभाग, न्याय-विभाग, डाक-विभाग, नौसेना विभाग, गृह विभाग, कृषि-विभाग, व्यापार विभाग और श्रम-विभाग ये दस विभाग है। इन शासन विभागो के बारे में शासन-विधान में कुछ भी नही कहा गया है किन्तु ये कांग्रेस के एक्टो से स्थापित हुये है।

## संघ-न्यायपालिका

**सर्वोच्च न्यायालय**—सयुक्त-राज्य अमेरिका के शासन विधान की तीसरी धारा से न्याय शक्ति 'सर्वोच्च न्यायालय या उन अन्य न्यायालयो में जो कांग्रेस समय समय पर स्थापित करे" विहित है। सघ न्यायपालिका की चोटी पर जो सर्वोच्च न्यायालय है उसकी शक्ति व अधिकार सविधान से ही उसे प्राप्त है। इसलिये वह विधानमण्डल या कार्यपालिका सत्ता के आधीन नही है।

**न्यायाधीशो की नियुक्ति**—इसमें सन्देह नही कि इन सर्वोच्च न्यायाधीशो को प्रेसीडेंट ही नियुक्त करता है, किन्तु इनको चुनने में प्रेसीडेंट दलबन्दी की नीति का अनुसरण नही करता। "इनकी नियुक्ति में राजनीति

का बहुत थोड़ा पुट रहता है। अपने दल का ध्यान न रखते हुये प्रेसीडेंट रिक्त स्थान की पूर्ति करने के लिये सबसे योग्य व्यक्ति को ही नियुक्त करता है"*। सर्वोच्च न्यायालय के अधीन सब विचरण शील ( Circuit Courts ) न्यायालयों व जिले के न्यायालयों के न्यायाधीशों को प्रेसीडेंट महा न्यायवादी (Attorney General) की सिफारिश पर नियुक्त करता है। महाअभिवक्ता स्वयं सम्बन्धित उपराज्य के सीनेटरों से सलाह लेता है। इससे स्पष्ट है कि संघ-न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति में यह ध्यान रखा जाता है कि वे विधि-निर्णय के सम्बन्ध में अनुपम योग्यता रखते हों। 'अयोग्य व्यक्तियों को न्यायाधीश के पद पर नियुक्त करने से नियुक्त करने वाली सत्ता को जितना दोष मिलता है उतना किसी और शासन की गलती से नहीं मिलता"⊙। शासन विधान में यह भी कहा गया है कि 'न्यायाधीश, चाहे वे सर्वोच्च न्यायालय के हों अथवा छोटे न्यायालयों के, जब तक सदाचारी रहेंगे अपने पदों पर काम करते रहेंगे और निश्चित समय पर अपनी सेवाओं के लिये जो पारिश्रमिक पायेंगे वह उनके सेवा-काल में कम नहीं किया जा सकता"। अतएव, इन परिस्थितियों में संयुक्त-राज्य का सर्वोच्च न्यायालय, प्रेसीडेंट कांग्रेस और उपराज्यों के कार्यों को वैध अवैध ठहराने की अपनी शक्ति के कारण और उस स्थायित्व के कारण जिससे होने से उसे बदलते हुये लोकमत का मुँह नहीं देखना पड़ता, संयुक्त-राज्य की शासन प्रणाली की बहुत सी बातों में एक बहुत प्रभावशाली हेतु बना हुआ है और दुनिया का सब से बड़ा न्यायसंगठन है।[1]

सर्वोच्च न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र – संघ न्यायसंगठन के अधिकार-क्षेत्र के सम्बन्ध में शासन-विधान का लेख यह है 'इस शासन विधान के सम्बन्ध में या संयुक्त-राज्य अमरिका के कानून और इनके आधीन जो सधियाँ हुई हों या भविष्य में हों इनके अन्तर्गत कानूनों के प्रावधानों के सम्बन्ध में या प्राकृतिक न्याय के बारे में उठने वाले प्रश्नों में, राजदूतों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों में, सामुद्रिक व नौसेना के अधिकार-क्षेत्र में उठने वाले प्रश्नों में, उन झगड़ों में जहाँ संयुक्त राज्य वादी या प्रतिवादी हो दो या दो से अधिक उपराज्यों के बीच झगड़ा में, एक उपराज्य और दूसरे उपराज्य के नागरिकों के झगड़े में, विभिन्न उपराज्यों के नागरिकों के झगड़े में, एक ही उपराज्य के दो नागरिकों को विभिन्न उपराज्यों से मिले अनुदान सम्बन्धी

---

* दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८५

⊙ फॉर्म एण्ड फंक्शन्स ऑफ अमरीकन गवर्नमेंट पृ० २-३

[1] दी अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २८४

झगडो में और एक उपराज्य व उसके नागरिकों तथा दूसरे किसी विदेशी राज्य व उसके नागरिकों में जो झगडा हो, इन सब बातो मे संघ-न्यायपालिका को निर्णय करने का अधिकार प्राप्त रहेगा।" विधान ने सर्वोच्च न्यायालय के प्रारम्भिक व पुनर्विचारक अधिकार-क्षेत्र की सीमा भी इस प्रकार निश्चित कर दी है: "राजदूतों व किसी उपराज्य से सम्बन्धित मुकदमे सर्वोच्च न्यायालय में ही प्रारम्भ होंगे। अन्य उपर्युक्त मुकदमो में सर्वोच्च न्यायालय में कानून की व्याख्या व वास्तविकता के प्रश्न पर केवल पुनर्विचार हो सकता है उन अपवादों को छोड़ कर और उन नियमों के अनुसार जिन्हे कांग्रेस निश्चित कर दे।"

प्रारम्भिक अधिकार-क्षेत्र—जैसे उन मुकदमो में जहाँ किसी संघ या उपराज्य के कानून के वैध-अवैध होने का प्रश्न ही सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त है वैसे ही जिन मुकदमो मे सघ सरकार या कोई उपराज्य सरकार एक पक्ष में हो सर्वोच्च न्यायालय में ही वे प्रारम्भ होते है। संयुक्त-राज्य का सबसे बड़ा पुनर्विचारक न्यायालय होने के अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय की वास्तविक महत्ता और अनुपमता इस बात मे है कि वह शासन-विधान की व्याख्या, करता है और उसकी मान्यता को सुरक्षित रखता है। किन्तु अपनी इस शक्ति के प्रयोग का सूत्रपात वह न्यायालय स्वयं नही करता। इसका प्रयोग तभी होता है जब उसके सामने कोई एक ऐसा निश्चित उदाहरण उपस्थित किया जाता है जिसमें सघ सरकार या उपराज्य-सरकार के किसी कानून की वैधानिकता पर आपत्ति की गई हो। ऐसे मुकदमे का निर्णय देने में यह न्यायालय शासन-विधान को सर्वोपरि मान कर उसकी कसौटी पर दूसरे कानूनों को वैध-अवैध ठहराता है। "प्रेसीडेन्ट या कांग्रेस का कोई भी कार्य तभी वैध समझा जाता है जब उस कार्य का सम्बन्ध लिखित शासनविधान के किसी वाक्य या शब्द से हो। प्रेसीडेन्ट विलसन ने अपने पब्लिक पेपर्स (Public Papers) में सच कहा है कि "हमारे न्यायालय हमारी विधान-प्रणाली के आधीन है, वे हमारे राजकीय विकास के साधन है, हमारा राज्य-सगठन कुछ ऐसा विशेष रूप मे वैधानिक प्रकृति का है कि हमारी राजनीति वकीलो पर निर्भर रहती है। अतएव प्रत्येक मुकदमे में निर्णय देते समय सर्वोच्च न्यायालय को पहले यह निश्चय करना पड़ता है कि जिस शक्ति को कांग्रेस अपनी कहती है वह विधान के किसी प्रावधान से जोड़ खाती है या नही और उसके बाद यह देखा जाता है कि उस प्रावधान का कितना विस्तृत अर्थ लगाया जा सकता है"।

**संविधान की व्याख्या**—संविधान ने कांग्रेस की शक्तियों को पूरी तरह से निर्धारित कर दिया है किन्तु अनुच्छेद १ की ८ वीं धारा के १८ वें पैरा (Para) में न्यायाधीशों को व्याख्या करने के हेतु विस्तृत क्षेत्र छोड़ दिया गया है जिसके द्वारा उनको यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता मिली हुई है कि क्या कांग्रेस से अभ्यर्पित शक्ति 'पूर्वोक्त शक्तियों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक है"। इस वाक्य की व्याख्या करने में ही न्यायाधीशों ने निहित शक्तियों के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। *इस निहित शक्तियों के सिद्धान्त* (Doctrine of Implied Powers) के आधार पर अमेरिका में संघ सरकार की शक्तियों को बहुत बढ़ा दिया गया है। न्यायाधीश टैनी (Tany) ने सर्वोच्च न्यायालय के सम्बन्ध में कहा था "*यदि हम इस न्यायालय में संविधान के शब्दों को नवीन अर्थ देने में स्वतन्त्र हैं तो ऐसी व्याख्या से किसी* भी शक्ति को संघ सरकार के सुपुर्द किया जा सकता है और उसे उपराज्यों से छीना जा सकता है।"

निहित-शक्तियों के सिद्धान्त को प्रतिपादित कर संघ सरकार को शक्तिशाली बनाने का श्रेय सब से अधिक न्यायाधीश मार्शल को दिया जाता है जो बहुत समय तक न्यायाधीश के पद पर बना रहा और जो "उसी युग की उत्पत्ति था जिस में शासन विधान का निर्माण हुआ और संविधान निर्माताओं के अभिप्राय से भली भांति परिचित था। जब किसी प्रश्न पर कहीं भी कथन न दिखाई दी थी तो वह यह बतला सकता था कि देश के हित में किस प्रकार बाल की खाल निकाली जा सकती है और उसने उसके समकालीनों की राय में अपने निर्णयों में संविधान के स्पष्ट शब्दों की भी खूब खींचा-तानी की।"* अब भी अमरीका के वकील उन निर्णयों को उतना ही पुनीत समझते हैं जितना संविधान की धाराओं को क्योंकि दोनों का ही तात्पर्य एक है। वह तात्पर्य यह है कि राष्ट्र को चिरजीवी और सुदृढ़ बनाया जाय।"

राजशास्त्री हरमन फाइनर ने अमरिका के सर्वोच्च न्यायालय के बारे में एक बार कहा था कि ऐसे कर्तव्य वाला ऐसा न्यायालय राजनीति शास्त्र अमेरिका की अपनी निराली देन है जो इसके विरोध में पाई जाती है। इसमें बढ़कर, यह वह सीमेंट है जिससे संघराज्य का भवन सुदृढ़ बना रहता है।"[1]

---

* दी अमेरिकन गवर्नमेंट, पृ० २८७

[1] थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट, पु० १ पृ० ३०६

एक दूसरे लेखक हैस्किन (F J. Haskin) ने भी न्यायालय के बारे में कहा है कि "यह न्यायालय राज्य सगठन यन्त्र की चाल को ठीक रखने वाला चक्र है। जब लोकमत के झकोरो से सरकार के दूसरे विभाग इधर उधर भटके खाते हैं यह अपनी न्याय-सतुलन बनाये रखता है सब समय और सब परिस्थितियो में इसका कर्तव्य सविधान की सर्वोच्चता की रक्षा करना है। इस कर्तव्य का निबाहना लोकहित के लिये अत्यन्त आवश्यक है।"

**सर्वोच्च न्यायालय की बनावट**—सर्वोच्च न्यायालय मे एक प्रमुख न्यायाधीश जिसका वार्षिक वेतन २५,५०० डालर है और ८ उप-न्यायाधीश जिनमे से प्रत्येक को २५,००० वार्षिक वेतन दिया जाता है होते हैं। सर्वोच्च न्यायालय में काम करने के अतिरिक्त ये ६ न्यायाधीश उन ६ भ्रमणशील न्यायालयो के काम की देखभाल करते हैं जो काँग्रेस ने स्थापित किये हैं। सयुक्त-राज्य का सारा भूमि प्रदेश ६ क्षेत्रो में बाँट कर इन ६ भ्रमणशील न्यायालयो के अधिकार क्षेत्र में कर दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश यदि चाहे तो ७० वर्ष की आयु मे अवकाश प्राप्त कर सकते है, यदि उस समय तक वे दस साल तक अपने पद पर काम कर चुके हो। मुकदमो को सुनने के लिये सब न्यायाधीश मिल कर बैठते है। सबके बीच में प्रमुख न्यायाधीश बैठता है। मगलवार, बुधवार, बृहस्पतिवार और शुक्रवार के दिन मुकदमों की सुनवाई होती है। शनिवार का दिन न्यायाधीशो के परामर्श के लिये निश्चित है जब वे आपस मे मिलकर सब मुकदमो पर विचार व बहस करते हैं और विचार करने के पश्चात् पृथक होकर अपने अपने सुपुर्द किये हुये मुकदमे का निर्णय लिखते है। निर्णय पहले ही विचार करने के फलस्वरूप बहुमत से या सर्वसम्मति से ही निश्चित रहता है। अगले सोमवार के दिन न्यायालय भवन मे सब के सामने ये निर्णय सुना दिये जाते है।

*न्यायालय की साधारणतया अक्टूबर से लेकर जून तक बैठक* हुआ करती है। दुनिया में ऐसी कोई सस्था नही है जो इतने प्रभावपूर्ण ढग से अपना कार्य करती हो जितना अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय करता है। इसकी बैठकों में समय-निष्ठा और अनुपम शान्ति देखने योग्य है।

**भ्रमणशील न्यायालय (Circuit Courts)**—काँग्रेस ने सर्वोच्च न्यायालय के आधीन निम्नकोटि की सघ अदालतें भी स्थापित की हैं। इस समय ऐसे न्यायालय १० हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो में से प्रत्यक

• अमरीकन गवर्नमेंट, पृ० २६६

एक भ्रमणशील न्यायालय के प्रबन्ध की देख भाल करता है। प्रत्येक भ्रमणशील न्यायालय में दो न्यायाधीश होते हैं जिनको १०,००० डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। ये दौरा करने वाले न्यायाधीश कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जिस जिले में न्यायालय की बैठक होती है वहां एक जिला न्यायाधीश भी होता है जो भ्रमणशील न्यायालयों की बैठकों में भाग लेता है यदि उसके निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील न सुनी जा रही हो। ऐसा होते समय वह दौरा करने वाले न्यायाधीशों के साथ बैठकर अपील नहीं सुनता।

**जिला-न्यायालय**—न्यायमण्डल की तह में ८८ जिला-न्यायालय हैं जिनमें एक या अधिक जिला न्यायाधीश होते हैं। इनका वेतन ८,००० डालर होता है। हर एक उपराज्य में कम से कम एक जिला न्यायालय अवश्य होता है। किन्हीं में एक से अधिक भी न्यायालय होते हैं किन्तु एक ही जिले में दो या अधिक उपराज्यों का प्रदेश शामिल नहीं किया जाता। कुछ इने गिने मामलों को छोड़कर जिनमें सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है सब मामले जिले के न्यायालयों में ही पहले आरम्भ होते हैं। इनके निर्णय के विरुद्ध अपील भ्रमणशील न्यायालय और अन्त में सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है। किन्तु अपराध के मुकदमों में जिनमें फांसी का दण्ड दिया जा सकता है जिले के न्यायालय से सीधी सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

**अन्य न्यायालय**—उपर्युक्त न्यायालयों के अतिरिक्त दो प्रकार के न्यायालय और भी होते हैं, एक *अभ्यर्थन-न्यायालय* (Court of Claims) और दूसरे *निराकम्य करके पुनर्विचारक न्यायालय* (Court of Customs & Appeal)। पहले में सरकार के प्रति व्यक्तियों के दावे के मुकदमे सुने जाते हैं और दूसरे में निराकम्य-कर सम्बन्धी कानून के अन्तर्गत मुकदमे निबटाये जाते हैं। ये न्यायालय साधारण मुकदमों से कोई सरोकार नहीं रखते।

सन् १९११ से पूर्व न्यायमण्डल की कार्य प्रणाली व कार्यवाही से सम्बन्धित कानून में ६००० धारायें थीं किन्तु उसी साल इनकी फिर से छान बीन की गई और उनमें से असंगत धाराओं को निकाल कर उन्हें एक संक्षिप्त पर स्पष्ट रूप दे दिया गया।

**शासन-विधान का संशोधन**—शासन विधान के संशोधन में दो अवस्थायें होती हैं एक प्रस्ताव और दूसरा उसका अनुसमर्थन।

संविधान के ५ वें अनुच्छेद के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव निम्न लिखित दो प्रकार से किया जा सकता है—

(१) कांग्रेस स्वय ही शासन-विधान में सशोधन का प्रस्ताव कर सकती है यदि दोनो सदनो मे पृथक पृथक दो-तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

(२) उपराज्यो की दो तिहाई सख्या की विधान-मडल कांग्रेस से सशोधन की प्रार्थना कर सकती हैं। ऐसा किये जाने पर कांग्रेस को इन सशोधनो का प्रस्ताव करने के लिये एक सम्मेलन बुलाना पडता है।

किन्तु दोनों अवस्थाओ मे सशोधन तभी वैध और लागू समझा जाता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यो की विधान-मडलो द्वारा वह अनुसमर्थित अर्थात् स्वीकृत हो जाता है या तीन चौथाई सख्या के उपराज्यो में इस कार्य के लिये बुलाये हुये सम्मेलनो में वह स्वीकार हो जाता है।

उपर्युक्त सशोधन की रीति से स्पष्ट है कि सघ सरकार और उपराज्य दोनो ही का विधान सशोधन में हाथ रहता है। यह सशोधन रीति सहज-साध्य नही है। अतएव सन् १७८६ व १६५१ के बीच यद्यपि १६०० से अधिक सशोधन-प्रस्ताव रखे गये किन्तु उनमें से केवल २२ सशोधन ही स्वीकृत हुये शेष निरर्थक होने से रद्द कर दिये गये।* इन २२ सशोधनो को तीन श्रेणियो में बाट सकते हैं। पहिली श्रेणी म नागरिको के अधिकार-सम्बन्धी सशोधन हैं (मूलसविधान में ये अधिकार न रखे गये थे)। ये सन् १७६१ में किये गये प्रथम १० सशोधन हैं और १७६८ व १६०४ में किये गये ११ वें व १२ वें सशोधन हैं। दूसरी श्रेणी में १३ वा (१८६५) सशोधन जिससे दास प्रथा का निषेध किया गया, १४ वां (१८६८) और १५ वां (१८७०) जिसमे सब उपराज्यो मे समान नागरिक अधिकार दिये गये। इसके द्वारा गृह युद्ध (Civil war) के वैधानिक परिणामो को लिखित रूप दिया गया। तीसरी श्रेणी में बचे हुए ६ सशोधन हैं जिनमें से सन् १६१३ का सशोधन कांग्रेस को प्रत्यक्ष कर लगाने व वसूल करने की शक्ति देता है, सन् १६१३ के दूसरे सशोधन ने सीनेटरो के निर्वाचन को प्रत्यक्ष लोकमत से होने वाला बना दिया, सन् १६१६ के सशोधन से मद्य बनाना, बेचना व सयुक्त राज्य की सीमा के भीतर बाहर से मद्य मगाने का निषेध किया गया, सन् १६२६ के सशोधन से स्त्रियो को मताधिकार दिया गया, सन् १६३३ के सशोधन से १६१६ के मद्य-निषेध करने वाले सशोधन को समाप्त कर दिया गया और उसी साल के दूसरे सशोधन से प्रेसीडेंट व प्रतिनिधियो की अवधि-समाप्ति के दिनाक निश्चित कर

---

* दरीर। एण्ड प्रैक्टिस आफ मोडर्न गवर्नमेन्ट, पुस्तक १, पृ० १६५

एक भ्रमणशील न्यायालय के प्रबन्ध की देख भाल करता है। प्रत्येक भ्रमणशील न्यायालय में दो न्यायाधीश होते हैं जिनको १०,००० डालर प्रतिवर्ष वेतन मिलता है। ये दौरा करने वाले न्यायाधीश कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त जिस जिले में न्यायालय की बैठक होती है वहां एक जिला न्यायाधीश भी होता है जो भ्रमणशील न्यायालयों की बैठकों में भाग लेता है यदि उसके निर्णय के विरुद्ध न्यायालय में अपील न सुनी जा रही हो। ऐसा होते समय वह दौरा करने वाले न्यायाधीशों के साथ बैठकर अपील नहीं सुनता।

**जिला-न्यायालय**—न्यायमण्डल की तह में ८८ जिला-न्यायालय हैं जिनमें एक या अधिक जिला न्यायाधीश होते हैं। इनका वेतन ८,००० डालर होता है। हर एक उपराज्य में कम से कम एक जिला न्यायालय अवश्य होता है। किन्हीं में एक से अधिक भी न्यायालय होते हैं किन्तु एक ही जिले में दो या अधिक उपराज्यों का प्रदेश शामिल नहीं किया जाता। कुछ इने गिने मामलों को छोड़कर जिनमें सर्वोच्च न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार है सब मामले जिले के न्यायालयों में ही पहले आरम्भ होते हैं। इनके निर्णय के विरुद्ध अपील भ्रमणशील न्यायालयों और अन्त में सर्वोच्च न्यायालय में हो सकती है। किन्तु अपराध के मुकदमों में जिनमें फांसी का दण्ड दिया जा सकता है जिले के न्यायालय से सीधी सर्वोच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

**अन्य न्यायालय**—उपर्युक्त न्यायालयों के अतिरिक्त दो प्रकार के न्यायालय और भी होते हैं, एक अध्ययन-न्यायालय (Court of Claims) और दूसरे निराकम्य करके पुनर्विचारक न्यायालय (Court of Customs & Appeal)। पहले में सरकार के प्रति व्यक्तियों के दावे के मुकदमे सुने जाते हैं और दूसरे में निराकम्य कर सम्बन्धी कानून के अन्तर्गत मुकदमे निबटाये जाते हैं। ये न्यायालय साधारण मुकदमों से कोई सरोकार नहीं रखते।

सन् १९११ से पूर्व न्यायमण्डल की कार्य प्रणाली व कार्यवाही से सम्बन्धित कानून में ६००० धारायें थीं किन्तु उसी साल इनकी फिर से छान बीन की गई और उनमें से असंगत धाराओं को निकाल कर उन्हें एक संक्षिप्त पर स्पष्ट रूप दे दिया गया।

**शासन-विधान का संशोधन**—शासन विधान के संशोधन में दो अवस्थायें होती हैं एक प्रस्ताव और दूसरा उसका अनुसमर्थन।

संविधान के ५ वें अनुच्छेद के अनुसार संशोधन का प्रस्ताव निम्न लिखित दो प्रकार से किया जा सकता है —

(१) कांग्रेस स्वयं ही शासन-विधान में संशोधन का प्रस्ताव कर सकती है यदि दोनों सदनों में पृथक पृथक दो-तिहाई बहुमत उसकी आवश्यकता को स्वीकार करता हो।

(२) उपराज्यों की दो तिहाई संख्या की विधान-मंडल कांग्रेस से संशोधन की प्रार्थना कर सकती हैं। ऐसा किये जाने पर कांग्रेस को इन संशोधनों का प्रस्ताव करने के लिये एक सम्मेलन बुलाना पड़ता है।

किन्तु दोनों अवस्थाओं में संशोधन तभी वैध और लागू समझा जाता है जब या तो तीन चौथाई उपराज्यों की विधान-मंडलों द्वारा वह अनुसमर्थित अर्थात् स्वीकृत हो जाता है या तीन चौथाई संख्या के उपराज्यों में इस कार्य के लिये बुलाये हुये सम्मेलनों में वह स्वीकार हो जाता है।

उपर्युक्त संशोधन की रीति से स्पष्ट है कि संघ सरकार और उपराज्य दोनों ही का विधान-संशोधन में हाथ रहता है। यह संशोधन रीति सहज-साध्य नहीं है। अतएव सन् १७८६ व १९५१ के बीच यद्यपि १९०० से अधिक संशोधन प्रस्ताव रखे गये किन्तु उनमें से केवल २२ संशोधन ही स्वीकृत हुये शेष निरर्थक होने से रद्द कर दिये गये।* इन २२ संशोधनों को तीन श्रेणियों में बाट सकते हैं। पहिली श्रेणी में नागरिकों के अधिकार सम्बन्धी संशोधन हैं (मूलसविधान में ये अधिकार न रखे गये थे)। ये सन् १७९१ में किये गये प्रथम १० संशोधन हैं और १७९८ व १८०४ में किये गये ११ वें व १२ वें संशोधन हैं। दूसरी श्रेणी में, १३ वां (१८६५) संशोधन जिससे दास प्रथा का निषेध किया गया, १४ वाँ (१८६८) और १५ वां (१८७०) जिससे सब उपराज्यों में समान नागरिक अधिकार दिये गये। इसके द्वारा गृह युद्ध (Civil war) के वैधानिक परिणामों को लिखित रूप दिया गया। तीसरी श्रेणी में बचे हुए ६ संशोधन हैं जिनमें से सन् १९१३ का संशोधन कांग्रेस को प्रत्यक्ष कर लगाने व वसूल करने की शक्ति देता है सन् १९१३ के दूसरे संशोधन ने सीनेटरों के निर्वाचन को प्रत्यक्ष लोकमत से होने वाला बना दिया, सन् १९१९ के संशोधन से मद्य बनाना, बेचना व संयुक्त राज्य की सीमा के भीतर बाहर से मद्य मंगाने का निषेध किया गया, सन् १९२९ के संशोधन से स्त्रियों को मताधिकार दिया गया, सन् १९३३ के संशोधन से १९१९ के मद्य-निषेध करने वाले संशोधन को समाप्त कर दिया गया और उसी साल के दूसरे संशोधन से प्रेसीडेंट व प्रतिनिधियों की अवधि-समाप्ति के दिनाक निश्चित कर

* दौरा। एण्ड मैसिम आफ मौडर्न गवर्नमेन्ट, पुस्तक १, पृ० १६५

दिये गये। सन् १९५१ के संशोधन के अनुसार कोई व्यक्ति अब दो बार से अधिक संयुक्त राज्य का राष्ट्रपति नहीं हो सकता।

संयुक्त राज्य में शासन-विधान में संशोधन करने की प्रणाली ऐसी है कि एक व्यक्ति भी संशोधन के कार्यान्वित होने में रुकावट डाल सकता है। उदाहरण के लिये यदि सीनेट में ९६ सदस्यों में से ८७ उपस्थित हों जिनमें से ५८ संशोधन के पक्ष में मत दें और २९ उसके विरुद्ध मत प्रकट करें तो वह संशोधन सीनेट में दो-तिहाई संख्या पक्ष में न होने से स्वीकार नहीं समझा जा सकता चाहे प्रतिनिधि-सदन में वह दो-तिहाई मत से पास हो चुका हो।

## संयुक्त-राज्य में राजनैतिक दल

संयुक्त-राज्य के राजनैतिक पक्षों की रचना, रूप व उद्देश्य इगलैंड व अन्य देशों के पक्षों के उद्देश्य से भिन्न हैं। इस भिन्नता को समझने के लिये इन पक्षों का संक्षिप्त इतिहास जानना सुविधाजनक होगा।

प्रारम्भ में संयुक्त-राज्य अमरीका में एक पक्ष था जिसमें धनी मानी व्यक्ति थे जो राजा के प्रति निष्ठा रखने का दावा करते थे। दूसरा पक्ष उन लोगों का था जो संख्या में बहुत अधिक थे किन्तु निर्धन व साधन-हीन थे और जो राजभक्ति के प्रतिकूल देश-भक्ति को उच्चतर मानते थे। इस दलबन्दी का स्वतन्त्रता-युद्ध के पश्चात् अन्त हो गया। सन् १७८७ में जब शासन विधान बना तो दो शक्तिशाली पक्ष बने, एक फैडरलिस्ट्स जो धनी मानी वर्ग में से थे और केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में थे और दूसरे डेमोक्रेट्स, जो उपराज्यों की सर्वाधिकारी सत्ता व उनके अधिकारों की प्रमुखता के समर्थक थे। ये लोग स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व का प्रचार करते थे। टौमस जैफरसन इस पक्ष का नेता था। थोड़े ही समय के पश्चात् हैमिल्टन के नेतृत्व में फैडरलिस्ट्स पक्ष जार्ज वाशिंगटन का सहयोग प्राप्त होने से अधिक शक्तिशाली हो गया।

कुछ समय के पश्चात् दलबन्दी के आधार का रूप कुछ बदल गया। सन् १८५६ में फैडरलिस्ट्स, जो उस समय रिपब्लिकन नाम से कहलाने लगे, और डेमोक्रेट्स में बहुत ही उग्र विरोध हो गया। यह जानकर आश्चर्य होगा कि डेमोक्रेट्स दासप्रथा के समर्थक बने, उन्होंने अपने स्वतन्त्रता, समानता व भ्रातृभाव के सिद्धान्त को केवल गोरवर्ण जनता तक ही सीमित माना। इस पक्ष में अधिकतर वे लोग थे जो दक्षिणी उपराज्यों में कपास आदि की कृषि करते थे। रिपब्लिकन पक्ष की अधिक संख्या उत्तरी उपराज्यों में थी। डेमोक्रेट्स ने कलहाउन के उस सिद्धान्त का समर्थन किया जिससे यह

माना जाता था कि किसी संघ शासन से उपराज्यों को स्वेच्छानुसार पृथक होने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। उन्होंने अब्राहम लिंकन की दास प्रथा निवारण नीति का विरोध किया। गृह-युद्ध के सन् १८६१ में अन्त हो जाने से और उसके परिणाम स्वरूप विधान में संशोधन हो जाने से दास प्रथा का प्रश्न सर्वदा के लिये हल हो गया और इन दोनों पक्षों की विभिन्न नीति का यह आधार समाप्त हो गया।

इस समय रिपब्लीकन और डैमोक्रेट दो राजनैतिक पक्ष हैं जिनमें से पहला दल एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के बनाने के पक्ष में है। यहाँ यह बतलाना उचित होगा कि अमेरिका में विभिन्न राजनैतिक पक्ष बनने के लिये पर्याप्त मसाला नहीं है। पहली बात तो यह है कि शासन विधान की भाषा इतनी स्पष्ट व उपराज्यों व केन्द्रीय सरकार में शक्ति विभाजन के बारे में उसका मन्तव्य समझने में इतना सरल है कि राजनैतिक पक्षों के लिये कार्यक्रम का कुछ मसाला बचता ही नहीं। विधान संशोधन पेचीदा और कठोर होने से उसके आधार पर किसी राजनैतिक पक्ष का संगठन सम्भव नहीं। दूसरे अभी संयुक्त-राज्य की आर्थिक सांस्कृतिक व भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि कोई महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रश्न नहीं उठते। वहाँ मुश्किल से कोई निर्धन भूखा वर्ग मिलेगा क्योंकि कृषि उद्योग व व्यापार की पूंजी अधिकतर जनसंख्या में बंटी हुई है। राष्ट्र की अधिकतर जनता मध्यवर्ग की है। संसार की दूसरी राष्ट्र शक्तियाँ यूरोपियन, जापान आदि, संयुक्त-राज्य से इतनी दूर हैं कि अमेरिका को इनसे डरने की कोई सम्भावना नहीं है इसलिये वैदेशिक नीति के आधार पर दलबन्दी नहीं हो सकती। उद्योग व व्यापार के लिये अब भी बड़ा विस्तृत क्षेत्र खुला पड़ा है और अधिकतर लोग उससे लाभ उठाने में व्यस्त हैं। अधिकतर लोग नौन-कनफौरमिस्ट्स (Non-Conformists) हैं इसलिये सांस्कृतिक विभिन्नता भी अधिक प्रखर नहीं है। सबसे अन्त में यह बात है कि शक्ति विभाजन के सिद्धान्त से राजनैतिक मतभेद का क्षेत्र बहुत संकुचित रह गया है।

इसलिये यह कथन चाहे कितना ही विपरीत क्यों न प्रतीत होता हो पर है यह सत्य कि अमरिकन राजनैतिक पक्षों के उद्देश्यों की विभिन्नता के हेतु संख्या में इतने कम हैं कि अमरिका में एक ही राजनैतिक पक्ष है जिसे रिपब्लीकन व डैमोक्रेटिक पक्ष का संयुक्त दल कहा जा सकता है जो स्वभाव से व अधिकार संघर्ष से दो समान भागों में बंटा हुआ है, एक भाग रिपब्लीकन कहलाता है और दूसरा डैमोक्रेट। '* संयुक्त राज्य के इतिहास में अधिकतर

रिपब्लीकन पक्ष ने निर्वाचनों में जीत पाई है और प्रेसीडेंट के पद पर उसी दल का प्रतिनिधि नियुक्त हुआ है। डैमोक्रेट पक्ष का प्रभुत्व बहुत कम रहा है। राजनीतिज्ञ हरमन फाइनर ने इन पक्षों के कार्य व इनमें असमानता न होने के सम्बन्ध में कहा है "यह ध्यान देने योग्य बात है कि अमरीकन राजनैतिक पक्षों के बारे में जितना साहित्य है वह उनका महत्व दिखलाते समय यही कहता है कि ये दल मतदाताओं को सगठित करते हैं और अपने उम्मेदवार खड़े करते हैं। कार्य-क्रम के मापदण्ड की और आदर्श के पालन को गौण मान कर इनका केवल साधारण सा वर्णन ही कर दिया जाता है। कुछ समय से अब आर्थिक सकट व समाजवाद के जाग्रत होने से राजनैतिक पक्षों में कुछ आर्थिक उग्र भेद उत्पन्न हो गये हैं जिसके फलस्वरूप समाजवादी पक्ष का सगठन हो गया है। किन्तु यह अभी अधिक प्रभाव पूर्ण नहीं हुआ है। हालांकि यह समाजवादी पक्ष या और छोटे मोटे पक्ष बने रहें परन्तु अमरीकन राजनैतिक व निर्वाचनों पर इनका अधिक प्रभाव नहीं रहेगा। अतएव यह प्रतीत होता है कि दो पक्ष-प्रणाली (रिपब्लीकन व डैमोक्रेट) ही भविष्य में बहुत दिनों तक अमेरिका में प्रभुत्व जमाये रहेगी।

## पाठ्य पुस्तकें

Brogan, D. W.—The American Political System (London 1933)

Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol II pp 3-140

„ „ American Common wealth 2 Vol. (Macmillan 1907)

Finer Herman—Theory & Practice of Modern, Government, Vol. I chs VII, XI & XV, Vol II chs. XXIII

Hamilton, Jay & Madison—The Federalist (Especially Nos. I—XIV)

Haskin F. J.—The American Government, ch. I & XXII—XXVI

* थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मौडर्न गवर्नमेंट, पृ० ५३६

Hughes, C. E.—The Supreme Court of the United State (N. Y. 1938)

Munro, W. B.—The Government of United State (Macmillan 1937)

Newton. A. P.—Federal & Unified Constitutions pp. 66-94

Reed. T. H.—Form & Functiors of American Government, chs. I.--IV. III. XI--XIII & XIX- XXIII

Sharma, B. M.—Federal Polity ch.II pp.72-90 and Appendix A

Smellie, K.—The American Federal, System chs. I & III-IV

Wilson, Woodrow—The State (Chapters on Gc-vernment of the United States)

# अध्याय १७

## संयुक्त राज्य अमेरिका में उपराज्यों की सरकारें

"अमेरिका के राजनैतिक इतिहास में उपराज्यों के शासन-विधान सब से प्राचीन हैं क्योंकि ये उन्हीं राजकीय उपनिवेश-चार्टरों के संशोधित व परिवर्तित रूप हैं जिनसे अमेरिका में सब से प्रथम अंगरेजी बस्तियां स्थापित की गई थीं और जिनके द्वारा उनकी स्थानीय सरकारों का संगठन किया गया था जिनके ऊपर ब्रिटिश सम्राट और अन्ततः पार्लियामेंट का आधिपत्य था।"

(जेम्स ब्राइस)

**उपराज्यों की उत्पत्ति व विकास**—सन् १७८७ ई० में संयुक्त-राज्य अमेरिका में १३ उपराज्य थे। ये वही उपनिवेश थे जिन्होंने ब्रिटिश सम्राट् के आधिपत्य को मानने से इन्कार कर दिया और स्वतन्त्रता-युद्ध में विजय प्राप्त की। धीरे धीरे इसके पश्चात् पश्चिम की ओर नई बस्तियाँ स्थापित हुई जिनसे नये उपराज्य बने जो सन् १७८७ के शासन-विधान के तीसरे अनुच्छेद के पैरा १ की तीसरी धारा के अनुसार संघ-राज्य में शामिल कर लिये गये। इस धारा से नये उपराज्यों के बनने का प्रावधान कर दिया गया था, शर्त केवल यह थी कि तत्कालीन स्थित किसी उपराज्य की प्रदेशभूमि के विस्तार आदि में बिना कांग्रेस या उस उपराज्य की विधान-मंडल की सम्मति के कोई परिवर्तन न किया जायेगा। इस समय संयुक्त-राज्य अमेरिका के संघ-राज्य में ४९ उपराज्य हैं। उनका शासन उनके निजी पृथक पृथक शासन-विधानों द्वारा स्थापित राज्य संगठनों के आधीन होता है। ये शासन-विधान लिखित हैं और इनका अस्तित्व राष्ट्रीय संघ-शासन-विधान पर निर्भर नहीं है किन्तु इनके आधारभूत सिद्धान्त एक समान हैं जो इंगलैंड से बसने वाले अपने साथ लाये थे।

**उपराज्यों के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख बातें**—भूमि के विस्तार, जन-संख्या, भौगोलिक स्थिति और आर्थिक अवस्था में उपराज्यों में पारस्परिक विभिन्नता है। नीचे लिखी सारिणी में प्रत्येक उपराज्य (हवाई द्वीप के ४९ वें,

उपराज्य को छोड़ कर) का क्षेत्रफल, जनसंख्या व संघ में शामिल होने के समय के बारे मे सूचना मिल सकती है:—

| उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्णन | | वर्ग मीलों में क्षेत्रफल | सन् १९४८ की जनसंख्या |
|---|---|---|---|
| अलाबामा | (१९१९) | ५१,२७९ | २८४८,००० |
| ऐरीजोना | (१९१२) | ११३,८१० | ६६४,००० |
| अर्कनसास | (१८३६) | ५२,५२५ | १,९२५,००० |
| कैलीफ़ोर्निया | (१८५०) | १५५,६५२ | १०,०३१,००० |
| कौलैरैडो | (१८७६) | १०३,६५८ | १,१६५,००० |
| कनैक्टीकट | (१७८८) | ४,८२० | २,०११,००० |
| डैलावेयर | (१७८७) | १,९६५ | २९७,००० |
| फ्लोरीडा | (१८४५) | ५४,८६१ | २,३६५,००० |
| ज्योजिया | (१७८८) | ५८,७२५ | ३,१२८,००० |
| इदाहो | (१८९०) | ८३,३५४ | ५३०,००० |
| इल्योनिस | (१८१८) | ५६,०४३ | ८,६७०,००० |
| इन्डियाना | (१८१६) | ३६,२०५ | ३,९०९,००० |
| आइओवा | (१८४६) | ५६,५८६ | २,६२५,००० |
| कनसास | (१८६१) | ८१,७७४ | १,९९८,००० |
| कैन्टुकी | (१७९२) | ४०,१८१ | २,८१९,००० |
| लुईसियाना | (१८१२) | ४५,४०९ | २,५७६,००० |
| मेन | (१८२०) | २९,८९५ | ९००,००० |
| मेरीलैंड | (१७८८) | ९,९४१ | २,१४८,००० |
| मैसाच्यूटैस | (१७८८) | ८,०३९ | ४,७१५,००० |
| मिचीगन | (१८३७) | ५७,४८० | ६,१९५,००० |
| मिनैसोटा | (१८५८) | ८०,८५८ | २,९४०,००० |
| मिसिसिपी | (१८१७) | ४६,३६२ | २,१२१,००० |
| मिस्सोरी | (१८२१) | ६८,७२७ | ३,९४७,००० |
| मोन्टाना | (१८८९) | १४६,१३१ | ५११,००० |
| नैब्रास्का | (१८६७) | ७६,८०८ | १,३०१,००० |
| नैवैदा | (१८६४) | १०९,८२१ | १४२,००० |
| न्यू हैम्पशायर | (१७८८) | ९,०३१ | ५४८,००० |

| उपराज्य का नाम और उसके संगठन का वर्णन | | वर्ग मीलों में क्षेत्रफल | सन् १९४८ की जनसंख्या |
|---|---|---|---|
| न्यूजर्सी | (१७८७) | ७,५१४ | ४,७२६,००० |
| न्यूमैक्सिको | (१९१२) | १२२,५०३ | ५७१,००० |
| न्यूयार्क | (१७८८) | ४७,६५४ | १४,३८६,००० |
| नार्थ कैरोलीना | (१७८९) | ४८,७४० | ३,७१५,००० |
| नार्थ डैकोटा | (१८८९) | ७०,१८३ | ५६०,००० |
| ओहियो | (१८०३) | ४०,७४० | ७,७९९,००० |
| ओकलाहामा | (१९०७) | ६९,४१४ | २,३६२,००० |
| ओरोगन | (१८५९) | ९५,६०७ | १,६२६,००० |
| पसिल्वेनिया | (१७८७) | ४४,८३२ | १०,६८९,००० |
| रोड आइलैंड | (१७९०) | १,०६७ | ७४८,००० |
| साउथ कैरिलीना | (१७८८) | ३०,४५९ | १,९९१,००९ |
| साउथ डैकोटा | (१८८९) | ७६,८६८ | ६४३,००० |
| टैनेसी | (१७९६) | ४१,६८७ | ३,१४९,००० |
| टैक्सास | (१८४५) | २६२,३९८ | ७,२३०,००० |
| उटा | (१८९६) | ८२,१८४ | ६६५,००० |
| वरमोन्ट | (१७९१) | ९,१२४ | ३७४,००० |
| विरजीनिया | (१७८८) | ४०,२६२ | ३,०२९,००० |
| वाशिगटन | (१८८९) | ६३,८३६ | २,४८७,००० |
| वर्जीनिया | (१८६३) | २,०१२ | १,९१५,००० |
| विसकोन्सिन | (१८४८) | ५५,२५६ | ३,३०९,००० |
| व्योमिंग | (१८९०) | ९७,५४८ | २७५,००० |

**उपराज्य शासन-विधान**—सयुक्त राज्य के सघ शासन-विधान में केन्द्रीय राज्य सगठन की रचना व शक्तियो का वर्णन है। उसमें उपराज्यो के शासन विधान के सिद्धान्त नहीं दिये हुये हैं। इस सघ-शासन-विधान का निर्माण उन १३ मूल-उपराज्यो के शासन-विधानो के प्रमुख सिद्धातो के आधार पर हुआ था जो १७८७ के सगठन के सदस्य बने थे। अतएव उप-राज्यो के शासन-विधान सघ-शासन-विधान से बिलकुल पृथक हैं। उनकी शक्ति का स्रोत पृथक पृथक उपराज्यो की जनता है। आस्ट्रेलिया व

स्विटजरलेंड में भी सदस्य-राज्यो के शासन-विधान सघ शासन-विधान में शामिल नही हैं और इसलिये उनका वैसा ही महत्व और स्वतत्र अस्तित्व है जैसा अमेरिकन उपराज्यो के शासन विधानो का। इसके विपरीत, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका व रूस में सघ शासन-विधान और उपराज्यो के शासन-विधान सब मिलकर एक शासन विधान के रूप में है। भारतवर्ष के नये शासन विधान में भी केन्द्रीय सरकार के सघात्मक राज्यसगठन व प्रातो के राज्यसगठन की रूप रेखा एक ही वैधानिक आलेख से निश्चित हुई है। अमेरिकन उपराज्यो के शासन-विधान सघ-शासन सविधान से पुराने हे, इसलिये उनके आधार पर ही सघ शासन-विधान की रचना भी हुई।"

४६. उपराज्य शासन-विधान—सयुक्त राज्य अमेरिका के प्रत्येक उपराज्य का अपना पृथक पृथक शासन-विधान है इसलिये ४६ विभिन्न उपराज्य शासन विधान हैं जिन्हे अध्ययन करने के पश्चात् उपराज्यो के शासन-प्रबन्ध का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु उन सब म इतनी अधिक समानता है कि इन उपराज्यो के शासन-प्रबन्ध को समझने के लिये केवल उनकी सामान्य विशेषताओं को जानने से ही काम चल जाता है। इसका कारण जैसा राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कहा है, यह है "कि ये सब प्राचीन अगरेजी सस्थाओ की कुछ अधिक व कुछ थोडी मिलती हुई प्रतिलिपिया है। अर्थात् ये वे चार्टर प्राप्त स्वायत्त-शासन करने वाली कम्पनिया हैं जो अगरेजी स्वाभाविक प्रवृत्तियो से प्रभावित होकर और अगरेजी पार्लियामेंट प्रणाली के उदाहरण को सामने रख कर ऐसे राज्य सगठनो मे विकसित हो गई जो अठाहरवी शताब्दी के इगलैड के राज्यसगठन से मिलते जुलते थे"। जब ये राज्यसगठन स्वतन्त्र राज्य बन गये तब भी इन्होने अपने मूल शासन विधानो की प्रमुख विशेषताओ का ज्यो का त्यो सुरक्षित रखा। उनमें केवल वही परिवर्तन किया जो उनकी नई कानूनी, वैधानिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के लिये आवश्यक था। जब सघ में नये उपराज्य बन कर शामिल हुये, प्रत्येक ने मूल १३ उपनिवेशो के शासन विधानो के ढाचे को ही अपना लिया। "ऐसा करने के लिये उनका अधिक झुकाव इसलिये भी था क्योकि प्राचीन शासन-विधानो म उन्हे कार्यपालिका, विधायिनी व न्यायिक सत्ता का वह पृथकत्व देखने को मिला जो उस समय के राजनीति शास्त्र की दृष्टि से स्वतन्त्र सरकार के लिये आवश्यक समझा जाता था। इस पृथक्त्व सिद्धात से ही उन्होने आगे बढाने का निश्चय किया"।*

उपराज्यो के शासन-विधानो की सामान्य विशेषतायें—शक्ति

विभाजन के सिद्धान्त के अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें हैं जो इन सब शासन-विधानों में मिलती हैं। प्रत्येक उपराज्य में शासन विधान जनता की देन हैं जिन्होंने कार्यपालिका के अध्यक्ष को निर्वाचित करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है। यह अध्यक्ष गवर्नर कहलाता है। शासन विधान का संशोधन, लोक निर्णय (Referendum), विधेय-उपक्रम (Initiative), और प्रत्याहरण (Recall), ये सब भी जनमत के आधीन हैं। प्रत्येक उपराज्य में एक निर्वाचित गवर्नर व कुछ प्रशासन अधिकारी द्विगृही विधान मण्डल, स्वतन्त्र न्यायपालिका और स्थानीय शासन संस्थायें हैं जैसे काउन्टी, नगर, ग्राम, जिनके कारण, संयुक्त राज्य अमरीका का जनतन्त्रात्मक राज्यों की गिनती में बड़ा ऊँचा स्थान प्राप्त है।

## उपराज्य विधान-मण्डल

उपराज्य के राज्यसंगठन में विधान मण्डल सब से महत्वपूर्ण संस्था है। लगभग सब उपराज्यों में द्विगृही विधान मण्डल हैं जिसके निचले सदन को प्रतिनिधि सदन और ऊपरले सदन को सीनेट कहते हैं। केवल नेब्रास्का ने एक वैधानिक संशोधन द्वारा यह निश्चय हुआ कि विधानमण्डल में ही एक सदन हो जिसके सदस्यों की संख्या ४३ हो। असल में द्विगृही विधान मण्डल की प्रणाली को उपराज्यों ने संघ शासन की नकल करके ही अपनाया। ऊपरले सदन के पक्ष में विधान-कार्य में जल्दबाजी के दोष को दूर रखने की जो दलील सामने उपस्थित की जाया करती थी वह अब अधिक महत्व नहीं रखती क्योंकि इस दोष को दूर रखने के लिये समाचार-पत्रों का प्रभाव किसी भी अधिनियम का तीन बार वाचन कर विचार करने की पद्धति गवर्नर की अस्वीकार करने की शक्ति और लोकनिर्णय की पद्धति में सब पर्याप्त समझे जाते हैं।

**विधानमंडल का निर्वाचन**—दोनों सदन सीधे निर्वाचित संस्थायें होती हैं। इस निर्वाचन में सब नागरिक भाग ले सकते हैं। दुहरे प्रतिनिधित्व का दोष दूर रखने के लिए और दोनों सदनों के अस्तित्व की आवश्यकता दिखलाने के हेतु दोनों सदनों के निर्वाचन क्षेत्रों को भिन्न प्रकार से संगठित किया जाता है। सीनेट में काउन्टियों (Counties) से निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। चाहे उनकी जनसंख्या कितनी ही हो किन्तु प्रत्येक काउण्टी के प्रतिनिधियों की संख्या एक समान होती है। निचले सदन के प्रतिनिधियों का

* ब्राइस अमेरिकन कामनवेल्थ, पुस्तक १, पृ० ४७८

निर्वाचन जनसख्या के आधार पर विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो से होता है। इसलिए इस कथन मे कुछ सत्य है कि सीनेट का भौगोलिक निर्वाचन होता है और प्रतिनिधि सदन का जनसख्यात्मक। निचले सदन मे अधिकतर ग्रामनिवासी प्रतिनिधि है और नगरो की जनसख्या बढने से सीनेट मे नगरवासी अधिक सख्या में है। निचला सदन सीनेट की अपेक्षा बडा होता है इसलिए वह सीनेट की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय रहता है।

विधानमंडल की अवधि—यह अवधि भिन्न भिन्न उपराज्यो में अलग अलग है। प्राय सीनेट की अवधि निचले सदन से अधिक लम्बी होती है। सीनेट के कुछ सदस्यो के स्थान पर निश्चित काल के पश्चात् नये सदस्य आ जाते है किन्तु निचले सदन के सब प्रतिनिधि निश्चित समय के बाद फिर से नये चुने जाते है। बहुत से उपराज्यो मे सीनेट के उम्मेदवारो को प्रतिनिधि-सदन के उम्मीदवारो की अपेक्षा अधिक आयु का होना पडता है।

विधानमंडल का कार्य—सब उपराज्यो में विधान मडल के सदस्यो को एकसा ही वेतन मिलता है। कुछ उपराज्यो में विधान मडल की साल में दो बैठकें होती है, किन्ही मे साल में एक ही होती है। सदस्यो को सामान्य मुक्तियाँ, सुविधाये व अधिकार मिले हुए रहते है। प्रत्येक सदन का अपना अपना सभापति होता है और अन्य पदाधिकारी होते है जिनको सदन चुनता है। कोई विधेयक किसी भी सदन मे आरम्भ किया जा सकता है किन्तु मुद्रा-विधेयक निचले सदन में ही आरम्भ हो सकता है। सीनेट मुद्रा-विधेयक में सशोधन कर सकती है। कोई योजना तभी सदन से स्वीकृत समझी जाती है जब उसके सदन में तीन वाचन हो जाते है। तब यह दूसरे सदन को भेज दी जाती है। यदि वह वहाँ स्वीकृत हो जाती है तो गवर्नर के हस्ताक्षर से कानून बन जाती है। यदि दोनो सदनो में मतभेद हो जाता है तो वह योजना अस्वीकृत समझी जाती है। दोनो सदनो से स्वीकृति योजना को गवर्नर अपनी आपत्तियों के साथ लौटा सकता है। इस प्रकार लौटाये जाने पर वह योजना तभी कानून बन जाती है जब वह दोनो सदनो में फिर से निश्चित मताधिक्य से पास हो जाय।

संविधान संशोधन—सघ सविधान के समान उपराज्यो के सब शासन शक्ति विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर ही बने है। विधानमडल सविधान में सशोधन भी कर सकती है केवल इन सशोधनो के लिए सामान्य मताधिक्य से कुछ अधिक मत पक्ष में होने चाहिएँ। किसी उपराज्य मे गणपूरक के है

मताधिक्य से और वही सदन के कुल सदस्यों की दो-तिहाई संख्या से संविधान में संशोधन हो सकता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक विधान-संशोधन का प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नहीं समझा जाता जब तक लोक निर्णय से यह पास न हो। कोई भी उपराज्य अपने शासन-विधान में ऐसा संशोधन नहीं कर सकता जो राष्ट्रीय संघ-शासन संविधान के प्रतिकूल हो।

उपराज्यों के विधानमंडल की शक्तियां—यह पहले बतलाया जा चुका है कि संघ सरकार की शक्तियां सीमित हैं और संघ-शासन-विधान उपराज्यों की शक्तियों की व्याख्या नहीं करता, इसमें केवल इतना ही कहा गया है कि जो शक्ति निश्चितरूप से संघ सरकार को न दी गई हो, न स्पष्टतया उपराज्यों को उससे वंचित रखा गया हो वह उपराज्यों के सुपुर्द है। अतएव उपराज्यों को सब शेषाधिकार मिले हुए हैं। किन्तु कुछ समय से यह देखने में आ रहा है कि बढ़ती हुई अन्तर्राष्ट्रीयता, व्यापारिक सम्बन्धों की पेचीदगी और कुछ राष्ट्रों की शक्ति लोलुपता के कारण उपराज्य केन्द्रीय सरकार पर अधिकाधिक परावलम्बी होते जा रहे हैं। इसलिये वे धीरे धीरे उस स्वतन्त्रता और उन अधिकारों को खोते जा रहे हैं जिनकी उन्होंने बड़े यत्न से संघ के प्रारम्भिक काल में रक्षा की थी।

## उपराज्यों की कार्यपालिका

अमेरिकन उपराज्य छोटे छोटे गणराज्य हैं। इनके शासन विधान के इस गुण को बदला नहीं जा सकता। प्रत्येक उपराज्य में प्रमुख कार्यपालिका सत्ता एक लोक निर्वाचित गवर्नर में निहित रहती है। कार्यकारी विभाग विधान मण्डल से पृथक स्वतन्त्र रहता है। इसमें गवर्नर के अतिरिक्त एक लैफ्टिनेन्ट गवर्नर, एक सेक्रेटरी आफ स्टेट, एक कोषाध्यक्ष, महान्यायवादी (Attorney General), लेखापरीक्षक (Auditor) शिक्षा प्रबन्धक और कुछ दूसरे छोटे अफसर होते हैं।

गवर्नर—उपराज्य की सरकार का अध्यक्ष गवर्नर होता है। गवर्नर का पद बड़ा पुराना है। अमेरिकन उपनिवेशों के प्रारम्भिक काल से ही लगभग ३०० साल से यह परम्परा के आधार पर चलता चला आ रहा है। गवर्नर जनता द्वारा चुना जाता है। इस पद के लिये उपराज्य के नागरिक ही योग्य समझे जाते हैं। गवर्नर के पद के उम्मेदवारों को राजनैतिक पक्षों के सम्मेलन में चुनकर मनोनीत किया जाता है। इस सम्मेलन में उस पक्ष के सब काउन्टियों से प्रतिनिधि एकत्र होते हैं। निर्वाचन गुप्त शलाका द्वारा होता है और सामान्य मताधिक्य से उम्मेदवार चुन लिया जाता है। उम्मेद-

बार उस उपराज्य का ५ वर्ष तक निवासी रह चुका हो और निर्वाचन के समय उसकी आयु ३० वर्ष से कम न होनी चाहिये। गवर्नर के पद की अवधि भिन्न-भिन्न उपराज्यों में भिन्न हैं किन्तु या तो यह दो या चार वर्ष है। गवर्नर पुनर्निर्वाचन के लिये खड़ा हो सकता है। तीन हजार से लेकर २५००० डालर-तक का वेतन भिन्न-भिन्न उपराज्यों में दिया जाता है। गवर्नर पर अभियोग लगाकर उसके पद से उसे हटाया जा सकता है। यदि ऐसा न्यायाधिकरण (Tribunal) जिसमें उपराज्य की सीनेट के सदस्य व उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हों, दो-तिहाई मत से गवर्नर को अपराधी सिद्ध कर दे तो गवर्नर उसके पद से हटाया जा सकता है। लगभग एक दर्जन उपराज्यों में सरकार से प्रार्थना कर गवर्नर का प्रत्याहरण (Recall) किया जा सकता है अर्थात् उसे पद से हटाया जा सकता है। ऐसा प्रत्याहरण करने के लिये निश्चित रूप से कारण देने पड़ते हैं। किन्तु अभी तक केवल एक ही गवर्नर को ( नौर्थ डैकोटा के गवर्नर फ्रेजियर को ) ही इस प्रकार हटाया गया है (१९२१)।

**गवर्नर की शक्तियाँ**—गवर्नर को कई प्रकार की शक्तियाँ दी जाती हैं। विधान-कार्य में प्रत्येक कानून के घोषित होने से पूर्व उस पर गवर्नर के हस्ताक्षर होना आवश्यक है। वह विधान-मण्डल से पास किये हुए किसी भी विधेयक पर आपत्ति कर सकता है और पुनर्विचार के लिये लौटा सकता है। वह विधान-मण्डल का विशेष अधिवेशन बुला सकता है जिनमें विशेष योजनाओं पर ही विचार हो सकता है। विधान-मण्डल के साधारण अधिवेशनों में भी गवर्नर नये कानून बनाने के लिये सुझाव देता है और अपने उच्च पद के प्रभाव से दोनो सदनों में उन्हे स्वीकृत करा लेता है। थियोडोर रूजवैल्ट ने जो कभी उपराज्य का गवर्नर रह चुका था यह कहा था, कि "आधे से अधिक मेरा गवर्नर का काम आवश्यक और महत्व-पूर्ण कानूनों का पास कराना था।" गवर्नर दलबन्दी में पूरी तरह भाग लेता है। अपने पक्ष के व्यवस्थापकों की सहायता से वह विधान-मण्डल पर अपना प्रभुत्व रखता है हालाकि वह विधान-मण्डल का सदस्य नहीं होता। कुछ मात्रा में वह विधेयकों को जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कानून बनने से रोक सकता है। विधान-मण्डल के मन्तव्य व निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये गवर्नर अध्यादेश (Ordinances) निकालता है। वह छोटे पदों पर नियुक्तियाँ कर सकता है, और उन पदों पर आसीन व्यक्तियों को हटा सकता है। वह सामान्य शासन-प्रबन्ध की देख-भाल रखता है और यह भी देखता है कि आर्थिक कार्य, सैनिक

कार्य, केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाले कार्य, सुचारु रूप से हो रहे हैं। यह दण्डित अपराधियों को क्षमा प्रदान भी कर सकता है। उपराज्य के अधिकतर पदाधिकारियों की नियुक्ति गवर्नर ही करता है किन्तु इन नियुक्तियों में सीनेट की सम्मति होना आवश्यक है। वह सिविल सर्विस के अफसरों को तरक्की आदि दे सकता है। बजट उसके ही आदेशों के अनुसार बनाया जाता है। वह राज्य में प्रधान सेनापति भी होता है।

*दूसरे पदाधिकारी*—जिन अफसरों की गवर्नर स्वयं नियुक्ति नहीं करता वे अधिकतर जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। उनका अवधि-काल निश्चित रहता है। इसलिए वे अफसर गवर्नर के मातहत न होकर सहकारी होते हैं। अतएव केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् के सदस्यों की अपेक्षा गवर्नर के मन्त्री अधिक स्वतन्त्र हैं क्योंकि केन्द्रीय मन्त्री प्रेसीडेंट द्वारा ही बनाये जाते हैं, और वह स्वेच्छा से ही उनको नियुक्त करता व हटा सकता है। उपराज्य का गवर्नर अपने मन्त्रियों को न नियुक्त करता है न हटा सकता है। ये लोग अभियोग लगा कर अवश्य हटाये जा सकते हैं किन्तु गवर्नर के साथ भी ऐसा ही बर्ताव किया जा सकता है। इस प्रकार हटाने के लिये प्रतिनिधि-सदन उन पर पहले अपराधों का अभियोग लगाता है। सीनेट इन अपराधों की जाँच करती है और अपराधी सिद्ध होने पर उन्हें उनके पद से हटा सकती है। सामान्य नागरिकों के समान ही उन्हें न्यायालयों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। जिस अवधि के लिए गवर्नर चुना जाता है उसी अवधि के लिये ही उन अफसरों का चुनाव होता है। सब राज्यपदाधिकारी एक दूसरे की सेवा नहीं करते वे जनता की सेवा करते हैं जिसके द्वारा वे चुने जाते हैं। वे जनता पर ही निर्भर रहते हैं न कि एक दूसरे पर।'

## उपराज्य-न्यायपालिका

प्रत्येक उपराज्य में अपने अपने शासन विधान के अन्तर्गत न्याय-पालिका स्थापित है। उपराज्य के न्यायालय संघ-न्यायालयों के आधीन नहीं होते किन्तु वे एक पृथक न्यायपालिका के अंग होते हैं जिसको अपने अधिकार क्षेत्र में पूरी स्वतन्त्रता व शक्ति रहती है। सामान्य संघटन में ये न्यायालय संघ-न्यायालयों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। दोनों न्यायप्रणालियों में छोटे बड़े कई न्यायालय होते हैं जिनके कर्तव्य व शक्तियाँ एक दूसरे से भिन्न, कम या अधिक होती हैं। प्रत्येक राज्य में न्यायालयों की तीन श्रेणियां होती हैं, किसी में चार भी होती हैं। पहली श्रेणी में जस्टिसेज आफ दी पीस (Justices of the Peace) हैं जो मामूली रुपये पैसे या बहुत छोटे अपराधों की जाँच

पर दण्ड देते है। इनके ऊपर काउन्टी या म्युनिसिपल न्यायालय होते हैं जिनमें कुछ बडे मुकद्दमो की प्रारम्भिक सुनवाई होती है और निचली अदालतो के निर्णयो के विरुद्ध पुनर्विचार की अपील की जाती है। इनके ऊपर उच्च न्यायालय होते हैं जो काउन्टी न्यायालयो के निर्णय पर, प्रार्थना किये जाने पर पुनर्विचार करते हैं और कुछ अधिक भारी मुकद्दमों में प्रारम्भिक विचार भी करते है। इन सब के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय होता है जिसमे सब प्रकार के मुकद्दमो पर प्रार्थना करने पर पुनर्विचार होता है। इस-न्यायालय के निर्णयो पर पुनर्विचार करने के लिये सघ सर्वोच्च न्यायालय (Federal Supreme Court) से प्रार्थना नही की जा सकती।

उपराज्यो के न्यायालय दो बडी बातो में सघ-न्यायालयो से भिन्न है। पहला भेद तो यह है कि उपराज्य के न्यायाधीश जनता द्वारा निर्वाचित होते है किन्तु सघ-न्यायालय के न्यायाधीशो को कार्यपालिका नियुक्त करती है। केवल १० उपराज्य ऐसे है जिनके न्यायाधीश निर्वाचित न होकर कार्य-पालिका द्वारा नियुक्त होते हैं। दूसरा भेद यह है कि प्रत्येक उपराज्य म न्यायपद्धति भिन्न भिन्न है जिससे सब उपराज्यो में न्याय व्यवहार में समानता नही हो पाती।

उपराज्यो के न्यायाधीशो पर प्रतिनिधि सदन अभियोग लगा सकता है और सीनेट अभियोग की जाँच कर उन्हे दण्डनीय ठहरा कर उनके पद से उन्हे हटा सकती है। बारह उपराज्यो में यह प्रथा प्रचलित है कि विधान-मडल में तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पास होने से ही किसी न्यायाधीश को हटाया जा सकता है। नौ उपराज्यो में गवर्नर विधान मडल की प्रार्थना पर न्यायाधीश को पदच्युत कर सकता है। कुछ उपराज्यो में जनता न्यायाधीशो का प्रत्याहरण कर सकती है। इसके लिये पदच्युत करने की प्रार्थना पर जनता का प्रत्यक्ष मत लिया जाता है। इन उपराज्यो में न्यायालयो के कुछ निर्णयो को भी जनमत से वापिस किया जा सकता है। इन सब बातो को प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली की दृष्टि से उचित ठहराया जाता है। जनमत के इस प्रकार के हस्तक्षेप से न्यायकार्य में भ्रष्टाचार की मात्रा बढती है, यह निश्चय है। यही नहीं किन्तु इससे अन्याय बढता है, और न्यायप्रणाली की स्थिरता जाती रहती है।

## स्थानीय शासन

**विभिन्न स्थानीय संस्थायें**—सयुक्त राज्य अमेरिका एक बहुत ही जनतन्त्रात्मक राज्य है इसलिये सब उपराज्यों में 'स्थानीय-शासन' का काम

जनता से प्रत्यक्ष रीति से चुनी हुई स्थानीय शासन संस्थाओं को सुपुर्द है। स्थानीय शासन के अन्तर्गत पुलिस, सफाई, निर्धनों की देखभाल, शिक्षालयों का भरण-पोषण व प्रबन्ध, सड़कों व पुलों का बनवाना और उनको अच्छी अवस्था में बनाये रखना, व्यापार व उद्योग के लाइसंस देना, कर लगाना और इकट्ठा करना, छोटे छोटे न्यायालय व कारागृह स्थापित करना और वे अन्य सब कार्य आते हैं जो राज्य की विभिन्न जातियों व वर्गों के सुख शान्ति व स्थानीय शासन प्रबन्ध के लिये आवश्यक हैं। टाउनशिप (Township), काउन्टी (County), शिक्षालय जिला (The School District), कस्बा (Town) व नगर (City) ये विभिन्न प्रकार की और विभिन्न क्षेत्राधिकार वाली स्थानीय शासन संस्थायें पाई जाती हैं। इनके निजी कर्मचारी होते हैं। इन संस्थाओं की शक्तियां उपराज्य की सरकार से प्राप्त रहती हैं। ये बहुत ही सीमित मात्रा में कर लगा सकती हैं। अधिकतर संस्थाओं में एक कार्यकारी बोर्ड और कर्मचारी होते हैं। जिनमें नियम बनाने वाली सभायें भी होती हैं, वहां ये सभायें अपना काम बहुत कुछ उसी पद्धति पर करती हैं जिस पर उपराज्य की विधान मण्डल करती है। जैसा भारतवर्ष में प्रान्तीय सरकारों के स्वायत्त शासन विभाग हैं वैसा उपराज्यों में कोई विभाग नहीं है जो इन स्थानीय संस्थाओं पर स्वेच्छाचारी नियन्त्रण रखता हो। अमरीका में स्थानीय शासन उस देश की शासन प्रणाली का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अङ्ग है।

## प्रत्यक्ष लोकतन्त्र

अधिनियम उपक्रम (Initiative)—अमरीका में प्रत्यक्ष लोकतन्त्र (Direct Democracy) केवल उपराज्यों में ही पाया जाता है संघ शासन में नहीं किन्तु स्विटजरलैंड में यह दोनों जगह पाया जाता है। अमरिकन प्रजातन्त्र के प्रारम्भिक समय से ही शासन विधान के संशोधन कार्य में जनता के भाग लेने की प्रथा प्रचलित थी। किन्तु लोक निर्णय की इस प्रथा के अतिरिक्त बहुत से अमरीकन उपराज्यों ने अधिनियम उपक्रम की प्रथा भी अपनाई है। इस प्रथा में व्यक्तियों को यह स्वतन्त्रता रहती है कि वे किसी विधेयक या शासन विधान के संशोधन को तैयार कर धारा सभा की मध्यस्थता के बिना ही लोक-निर्णय के लिए रख सकते हैं।

लोक निर्णय—लोक निर्णय के अधिकार के होने से व्यक्तियों की निश्चित संख्या यह मांग कर सकती है कि विधानमंडल से पास किया हुआ कोई अधिनियम जनता की स्वीकृति या अस्वीकृति के निर्णय के लिए उपस्थित

किया जाय। पाच से पन्द्रह प्रति सैकडा नागरिक प्राय अधिनियम उपक्रम का प्रस्ताव कर सकते हैं और पाँच से दस प्रति सैकडा नागरिक लोक-निर्णय की माँग कर सकते है। यह संख्या उपराज्यों में एक समान नही है।

इस प्रत्यक्ष लोक-व्यवस्थापना कार्य की माँग क्यो की गई, इसके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राइस ने कुछ कारण बतलाये है जो ये है —

(१) उपराज्य का विधानमंडल पर यह अविश्वास कि यह लोकमत का सच्चा प्रतिनिधित्व नही करती और जनता की इच्छानुसार कानून नही बनाती, (२) धनी व्यक्तियो व कम्पनियो की ओर से यह शका कि ये व्यवस्थापको व अफसरो पर अपना अनुचित प्रभाव डालते है और ऐसा कानून बनवा लेते है जो पूँजीवर्ग के ही अनुकूल होता है (३) जनता के हाथ मे ऐसी शक्ति रखने की इच्छा जिससे ऐसी अधिनियम योजनाएँ पास की जा सकें जो विधान-मडल की अपेक्षा लोकनिर्णय से सुगमता से पास की जा सकती है (४) अल्पसख्यक समुदाय के विवेक की अपेक्षा, सारी जनता के विवेक, नीतिमत्ता व पुनीतता मे विश्वास।

**अधिनियम प्रकरण व लोकनिर्णय (Initiative and Referendum)** प्रत्यक्ष लोकव्यवस्थापन के ये दोनो साधन साधारण अधिनियम बनाने व विधान संशोधन दोनो मे ही प्रयोग किये जाते है।

**इस प्रणाली के दोष**—ऊपर से देखने में यह प्रणाली कितनी ही आकर्षक प्रतीत होती हो किन्तु व्यवहार मे यह बिलकुल दोषरहित सिद्ध नही हुई है। ऐसे कई उदाहरण है जहाँ ऐसे कानून बनाये गये जो दोषपूर्ण थे और ऐसे कानून रद्द कर दिये गये जो बडे लाभदायक सिद्ध हो रहे थे। इसके कारण व्यवस्थापक अपने उत्तरदायित्व की ओर इतने सतर्क नही रहते जितना वे अन्यथा रह सकते है। जनता ने भी प्रत्यक्ष व्यवस्थापन (Direct Legislation) में उतनी बुद्धिमानी का परिचय नहीं दिया जितना उन्होने अपने प्रतिनिधियो के चुनने मे दिखलाई। इसके अतिरिक्त यह सत्य भी है कि एक साधारण मतधारक दो उम्मेदवारो की अच्छाई-बुराई का अन्तर जितना अधिक भली-भाँति मालूम कर सकता है उतनी अच्छी तरह से वह यह निश्चय नही कर सकता कि कौन-सी योजना लोक हितकारी होगी और कौनसी नही क्योंकि कानूनो की पेचीदगी उसके लिये दुरूह होती है, वह आसानी से उनके सब पहलुओ को नही देख सकता न उनके अन्तिम परिणामो का उसे भान हो सकता है।

**प्रत्याहरण (Recall)**—देश के शासन कार्य मे जनता स्वय भाग

में गये, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अमेरिका में एक तीसरी प्रथा भी प्रचलित है। इसको प्रत्याहरण ( Recall ) कहते हैं जिसका यह अर्थ है कि किसी भी प्रतिनिधि या राजपदाधिकारी को जो जनमत के अनुकूल नहीं है प्रत्यक्ष लोकमत लेकर वापिस बुला लेना। जहाँ तक यह प्रथा प्रतिनिधियों व राजपदाधिकारियों तक ही लागू है, इससे बहुत लाभ भी हुआ है। इसका कारण यह है कि इससे ये लोग सतर्क व कर्तव्यपरायण बने रहते हैं। पदाधिकारी अपने कार्य को कुशलता से व तत्परता से सम्पादित करते हैं। और प्रतिनिधि अपने निर्वाचकों की इच्छा का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु कुछ उपराज्यों में न्यायाधीशों को भी जनता मत लेकर उनके पद से हटा देती है। इस प्रत्याहरण-प्रणाली के कुछ समर्थकों का तो यहाँ तक कहना है कि सघ-न्यायालयों पर भी यह प्रणाली लागू होनी चाहिये। उनका यह प्रयत्न अभी सफलीभूत नहीं हो पाया है, प्रत्याहरण भय से न्यायसंगठन निर्बल हो जाता है, कहीं-कहीं इसके भय से न्यायाधीश कर्तव्य-विमुख भी हो सकते हैं। जब तक न्यायाधीशों को यह विश्वास न हो कि वे साधारणतया अपने पद से हटाये नहीं जा सकते और उनका वेतन कम नहीं किया जा सकता, कोई भी न्यायपालिका अपने कर्तव्य को निरपेक्षभाव से व सच्चाई से पूरा नहीं कर सकती यदि अधिनियम उपक्रम (Initiative) और लोकनिर्णय (Referendum) प्रतिनिधिक शासन प्रणाली पर कुठाराघात करते हैं तो प्रत्याहरण की प्रणाली शासन को निर्बल बनाती है किन्तु अमेरिका में जहां न्यायाधीश व उच्च पदाधिकारी भी जनता से निर्वाचित होकर नियुक्त होते हैं, प्रत्याहरण प्रथा का होना यह सिद्ध करता है कि सामान्य नागरिक इन पदाधिकारियों को चुनने की भी योग्यता नहीं रखते।

## पाठ्य पुस्तकें

पूर्व अध्याय के अन्त में जो पुस्तकों की सूची दी हुई है उनमें ही उपराज्यों की शासन प्रणाली के अध्ययन करने के लिये पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उपराज्य के लिये स्टेटसमेन ईयर बुक (Statesman Yearbook) का सबसे नवीन सस्करण भी प्रयोग किया जा सकता है।

—

# अध्याय १८

## स्विट्ज़रलैंड की सरकार

### शासन-विधान का इतिहास

**परिचय**—स्विट्ज़रलैंड एक पहाडी देश है जो दक्षिणी पश्चिमी यूरोप के मध्य में बसा हुआ है। इसके उत्तर में जर्मनी, पूर्व में आस्ट्रिया, दक्षिण में इटली और पश्चिम में फ्रास है। पूर्व से पश्चिम तक इसकी अधिक से अधिक लम्बाई कुल २२६½ मील है, उत्तर से दक्षिण तक अधिक से अधिक चौडाई १३७ मील है। कुल क्षेत्रफल १५,६४४ वर्ग मील है। इसके विभिन्न भाग समुद्र तट से ६४६–१५००० फीट की ऊँचाई पर है। इस देश की जनसख्या ४,२६५,७०३ है। यह देश २२ जिलो या केन्टनो में बँटा हुआ है, यहा के निवासियो की जीविका का साधन प्रमुखतया खेती है। (यहा ३००,००० जमीन की पट्टिया है जिनसे २० लाख व्यक्ति अपना भरण-पोषण करते हैं, अर्थात् कुल जनसख्या का ५३·५ प्रतिशत भाग खेती पर निर्भर है। कृषि के अतिरिक्त पशुपालन और उद्योग व कारोबार है जिनसे शेष निवासी अपनी जीविका उपार्जन करते हैं।

**निवासी**—स्विट्ज़रलैंड के निवासी एक जाति-समूह के नही हैं। उनमें विभिन्न जाति, धर्म व भाषा बोलने वाले वर्ग है। कुछ जर्मन हैं, फ्रेंच है और इटैलियन है। कुल जनसख्या का ६९ प्रतिशत भाग जर्मन भाषा बोलता है जो अधिकतर उत्तर के १६ कैंटनों में रहता है। फ्रेंच भाषा के बोलने वाले २१·१ प्रतिशत व्यक्ति है जो पश्चिम के ५ कैंटनो में रहते है और ८ प्रतिशत इटैलियन भाषा बोलते हैं। धर्म की दृष्टि से यहा के निवासी इस प्रकार विभाजित है, प्रोटेस्टेंट ५६·७ प्रतिशत, रोमन कैथोलिक्स ४२·८ प्रतिशत और शेष अन्य धर्मावलम्बी है[1]। ऐतिहासिक व भौगोलिक कारणो से यहा के निवासी धर्म के मामले में बडे अद्भुत ढग पर बँटे हुये हैं। यह विभाजन तीन प्रमुख भाषा-क्षेत्रो का भी अनुकरण नही करता। स्विट्ज़रलैंड

[1] ब्रूक्स—गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड

से ऐसे बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो विदेशों से भाग कर यहां बस गये हैं क्योंकि सैनिक सेवा या राजनीतिक अपराधों से बचने के लिये उन्हें यह देश सब से अधिक सुरक्षित प्रतीत हुआ।

देश की भौगोलिक विभिन्नता, भाषा, धर्म, जाति व रीतिरिवाजों के भेद के कारण और कृषिजीवी होने से यहां के निवासियों में लोकतन्त्र की भावना बहुत मात्रा में पाई जाती है। इन्हीं कारणों से देश में वास्तविक सघात्मक संस्थाओं का विकास भी हुआ है। प्राचीन व अर्वाचीन सच्चे लोकतन्त्रों का उदाहरण देते समय एथेन्स (Athens) और स्विट्जरलैंड का नाम लिया जाता है। स्विट्जरलैंड एक बहुत छोटा देश है इसलिये यहाँ के निवासी अपने अपने केन्टन के शासन में सुगमता से सक्रिय भाग ले सकते हैं। वे अपने जीवन से सन्तुष्ट हैं। वहाँ की सरकार लोकहितकारी, दूरदर्शी, कुशल, मितव्ययी और अपनी नीति में दृढ़ है। सामाजिक जीवन में भ्रष्टाचार का नाम नहीं सुना जाता और राज्यपदाधिकारियों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर की जाती है न कि किसी राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति की दृष्टि से। उनके सामने जो समस्या है वह यह है कि सन्तोषी, मितव्ययी और स्थिर-प्रकृति वाले व्यक्तियों में स्थानीय शासन किस प्रकार चलाया जाय। इस समस्या को सुलझाना यहां अधिक सुगम है बनिस्बत ऐसे बड़े देश में जहां के निवासी धनी और महत्वाकांक्षी हैं। इसलिये यह भी ठीक है कि स्विट्जरलैंड में जिन उपायों से इस समस्या को सुलझाया गया है उनसे दूसरे देशों की भिन्न परिस्थितियों में वैसा ही सन्तोषजनक परिणाम नहीं हो सकता।

**वैधानिक इतिहास के पांच युग**—स्विट्जरलैंड के राजनैतिक इतिहास को प्राय पांच हिस्सों में बांटा जाता है (१) प्राचीन संघ, सन् १२९१ से १७९८ तक, (२) हेल्वेटिक प्रजातन्त्र, (३) सन् १७९८ से १८०३ तक (४) नैपोलियन काल, सन् १८०३ से १८१५ तक। सन् १८१५ से १८४१ तक को संघ-राज्य और (५) सन् १८४८ से अब तक का वर्तमान संघ-शासन।

(१) **प्राचीन संघ**—सन् १२९१ में उरी, स्वीज और इन्टरवाल्डन नाम के तीन केन्टनों ने अपने आप को एक स्थायी संगठन में अपने अधिकारों की रक्षा के लिये संघीभूत किया। ये केन्टन लूजर्न झील के सबसे पृथक एक किनारे पर बसे हुये थे, किन्तु इनका राजनैतिक दर्जा एक समान न था। वह समय सामन्तशाही की अराजकता का था। इस संगठन के बनने पर

आस्ट्रिया के राजा लियोपोल्ड को बुरा लगा और वह सेना लेकर इस उद्दण्ड केन्टनों को दण्ड देने के लिये आगे बढ़ा। किन्तु इस युद्ध में केन्टनों की विजय हुई। अतएव यह संघ फलने फूलने लगा। सन् १३५३ तक इसमें ३० सदस्य हो गये। "इसके पश्चात् ऐसे युग का आरम्भ हुआ जिसे राजनीतिज्ञ ब्रूगम ने 'सैनिक शक्ति का युग' कहा है। इस युग में केन्टनों ने पड़ोसी विदेश राज्यों से भूमि छीन छीन कर अपने प्रदेश का विस्तार बढ़ाया"।* उस समय स्विस लोग स्वदेश में ही लोकतन्त्र के समर्थक थे, बाहर न थे, सन् १४४२ से १४५० तक व एक बार फिर सन् १५३१ और १७२१ में धार्मिक व जातिगत विभेदों के कारण गृह-युद्ध हुये। किन्तु इन सब आपत्तियों के रहते हुये भी यह आश्चर्य की बात है कि संघ ने विदेशियों के आक्रमणों का डट कर सामना किया और विजय पाई जिससे आपसी फूट से छिन्न-भिन्न स्विट्जरलैंड उस युग की डावाडोल अवस्था में भी अपने राजनैतिक व्यक्तित्व की रक्षा कर सका।

(२) हेल्वेटिक प्रजातंत्र—स्विस राजनैतिक इतिहास का दूसरा युग जिसे हेल्वेटिक प्रजा-तन्त्र के नाम से पुकारा जाता है सन् १७९८ से आरम्भ होकर १८०३ में समाप्त होता है। स्विट्ज़रलैंड की सेना फ्रांस की डाइरेक्टरी (Directory) के सैन्य-बल से हार गई, जिसके परिणाम स्वरूप फ्रांस ने अपने यहां के तत्कालीन शासन-विधान के ढांचे के समान ही स्विट्जरलैंड को अपना शासन-विधान बनाने पर बाध्य किया। देश को २२ डिपार्टमेंटों (Departments) अर्थात् प्रांतों में बांट दिया गया। प्रत्येक डिपार्टमेंट को अपना स्थानीय विधानमंडल था जो स्थानीय मामलों में स्वाधीन था। सारे देश के शासन के लिये सीनेट और ग्रांड कौंसिल (Grand Council) नाम के दो सदनों का विधानमंडल बनाया गया। बाहरी रूप से स्विट्जरलैंड में प्रजातन्त्र स्थापित करने का प्रयत्न करते हुए फ्रांस की राज्यसत्ता इस देश पर अपने अधिकार के वास्तविक मन्तव्य को छिपा न सकी। उन्होंने बर्न नगर में स्थित राजकीय कोष को जब्त कर लिया और केन्टनों से बहुत सा धन और अनेकों सैनिक दूसरे देशों से लड़ने के लिये एकत्रित कर अपने आधीन किये। इसका परिणाम यह हुआ कि केन्टनों में विद्रोह खड़ा हो गया जिसकी प्रतिक्रिया में फ्रांसीसियों ने स्विट्ज़रलैंड के निवासियों की निर्दयतापूर्वक हत्या की। जब फ्रांस और आस्ट्रिया में युद्ध आरम्भ हुआ तो स्विट्ज़रलैंड तुरन्त ही इस संघर्ष की युद्धभूमि बन गया।

---

* फेडरल पौलिटी पृष्ठ ५३

(३) नेपोलियन काल—नेपोलियन ने शुरू में ही अपने कुशल जनरल ने (Ney) को सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए भेजा। स्विट्जरलैंड के प्रतिनिधि पेरिस में इकट्ठे हुए और वहां उन्होंने एक्ट आफ मिडियेशन (Act of Mediation) पास किया जिससे स्विट्जरलैंड के इतिहास का तीसरा युग आरम्भ हुआ। किन्तु इस एक्ट से भी स्विट्जरलैंड का फ्रांस के प्रभाव से छुटकारा न मिला। सन् १८१३ में जब नेपोलियन की हार हुई तब इस युग की समाप्ति हुई।

(४) सन १८१५-१८४८ का संघ शासन—वियना कांग्रेस (Vienna Congress) ने यूरोप के नक्शे को बिलकुल बदल दिया था, यह सभी जानते हैं। यद्यपि स्विट्जरलैंड को अपनी खोई हुई भूमि न मिली किन्तु एक सुन्दर शासन विधान अवश्य मिल गया जो १८१५ की संधि के नाम से प्रसिद्ध है। इस संविधान से सब केन्टनों को समान राजनैतिक दर्जे का मान लिया गया और प्रत्येक को इसी आधार पर राष्ट्रीय परिषद् में एक मताधिकार दिया गया। स्थानीय मामलों में उन्हें पूरी स्वाधीनता दे दी गई। सन् १८३० के जुलाई मास में इस संविधान में कई महत्वपूर्ण सुधार किये गये।

(५) आधुनिक काल—सन् १८४५ ई० में स्विट्जरलैंड में भयंकर गृहयुद्ध हुआ जिसमें सात केन्टनों ने अपना पृथक संघ बनाया, जिसका नाम उन्होंने बेवाफनेटर सोंडरबन्द (Bewaffneter Sonderbund) रखा और यह धमकी दी कि वे संघ शासन से पृथक हो जायेंगे। संघ-संसद ने जनरल ड्यूफोर की अध्यक्षता में अपनी १ लाख सेना भेजी जिसने विद्रोही कैन्टनों की ७५००० सेना को दस दिन के युद्ध के पश्चात् हरा दिया। इस प्रकार संघ से पृथक होने के कार्य को सफल होने से रोका। सन् १८४८ में कैथोलिक कैंटनों की कुछ मांग को पूरा करने के लिए शासन विधान को दुहराया गया। इस नये संविधान से जिसमें सन् १८७४ में फिर संशोधन हुआ स्विट्जरलैंड के पाँचवें युग का आरम्भ होता है। वर्तमान समय में यही संविधान चल रहा है।

## सन् १८७४ का शासन-विधान

सन् १८४८ के शासन विधान में नये विचारों की प्रतिच्छाया के साथ-साथ प्राचीन व्यवहार को सुरक्षित रखने का प्रयत्न दिखाई पड़ता था। इन दोनों का मेल उसमें स्पष्ट रूप से किया गया था। संघ-सरकार को जो शक्तियाँ सुपुर्द की गई थी वे बहुत सीमित थी। ये शक्तियाँ सेना सम्बन्धी व कूटनीति सम्बन्धी मामलों में प्राप्त थी। डाक, आयात-निर्यात कर, माप,

तोल इन आर्थिक विषयो में भी, जिनमें मिली जुली कार्यवाही के बिना प्रजा की एकता की रक्षा नही हो सकती, सघ-सरकार को अधिकार दिया गया था" ।* इस सविधान को जब व्यवहार में लाया गया तो यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाया जाय। इस उद्देश्य से जो आदोलन चला उसमें यह कहा गया कि कैंटनो की पृथक न्याय प्रणालियाँ मिटा दी जाँय, कानून को सघीभूत कर क्रमबद्ध किया जाय और एक स्थायी सघ न्यायालय स्थापित किया जाय। यह भी कहा गया कि रेलो का राष्ट्रीयकरण किया जाय और वे सघ सरकार के आधीन रखी जायेँ। और यह भी माँग की गई कि प्रत्येक कानून सम्पूर्ण जनता की स्वीकृति के लिए रखा जाय। इस सम्बन्ध में जनता शब्द से कैंटनो की पृथक पृथक जनता न समझी जाय किंतु सारे सघ की जनता का अन्तिम निर्णय करने वाला न्यायालय समझा जाय।[१]

**सन् १८७४ के शासन-विधान का रूप**—उपर्युक्त परिवर्तन के सुझावो को सन् १८७४ के सशोधित शासन-विधान मे स्वीकार कर लिया गया। इस सशोधित सविधान को प्रथम विधानमडल ने पास किया फिर लोक-निर्णय से यह स्वीकार हुआ। यह सविधान-विस्तार मे सयुक्त राज्य अमेरिका के शासन-विधान का आधा है। "यह सविधान सघ-सरकार और कैंटनो की सरकारो की शासन सम्बधी व कानून सम्बधी शक्तियो की सीमा निर्धारित करता है।" इसने कैंटनो के अधिकार व सघ सरकार के अधिकार के समर्थको के विचारो का सामजस्य कर उन्हे लोक हितकारक सजीव रूप देने का प्रयत्न किया है। इसीलिए इसका इतना लम्बा विस्तार है जिससे पढने वाला ऊबता जाता है। किंतु इसमे आन्तरिक मतभेद और सम्भवत सघर्ष के कारणो को दृष्टि में रखकर उनके दोष को दूर रखने या उन्हे उत्पन्न न होने देने का प्रयत्न किया गया है जिससे राजनीति सम्बधी सद्गुणो की दृष्टि से बहुत ऊँचा स्थान दिया जाता है।" स्विट्जरलैंड के विधान-निर्माता मौंटसक्यू (Montesquieu) के सिद्धात मे श्रद्धा न रखते थे इसीलिए उन्होंने राज्य सगठन के विभिन्न अगो में शक्ति का विभाजन या पृथक्करण नही किया और न उसके साथ पारस्परिक सतुलन या विरोध का आयोजन किया"। इस दृष्टि से सयुक्त राज्य अमेरिका व स्विट्जरलैंड के सविधान

---

* सेलक्ट कान्स्टीट्यूशन आफ दी वर्ल्ड, पृ० ४२७

[१] सेलेक्ट कान्स्टीट्यूशन्स आफ दी वर्ल्ड, पृ० ४२८

में अद्भुत समानता है। स्विट्ज़रलैंड में २२ कैन्टनों या यों कहिये कि १९ पूर्ण और ६ अर्ध-कैन्टनों का संघ-शासन स्थापित किया गया है। इनके नाम शासन विधान की प्रस्तावना में दिये हुये हैं। नये उपराज्यों अर्थात् घटकों या इकाइयों को संघ में शामिल करने का आयोजन इस संविधान में नहीं है। यदि ऐसा करने की आवश्यकता पड़ जाय तो संविधान में परिवर्तन करना पड़ेगा। इसके विपरीत संयुक्त-राज्य अमेरिका के शासन विधान में इससे सम्बन्धित स्पष्ट प्रावधान है।

*संविधान की प्रमुख विशेषतायें*—स्विट्ज़रलैण्ड के निवासियों को सन् १८४८ के गृहयुद्ध का कटु अनुभव हो चुका था इसलिये इस नये संविधान में पृथक्करण की सम्भावना को दूर रखने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिये यह निश्चित प्रावधान कर दिया गया है कि कैन्टनों में आपस में राजनैतिक सन्धियां नहीं हो सकती। संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन विधान में कहा गया है कि संघ-सरकार के अधिनियम को संघ-सरकार के अफसर कार्यान्वित करेंगे और उपराज्यों के अधिनियम को उपराज्यों के अफसर। किन्तु स्विट्ज़रलैंड में इस प्रकार का विभाजन नहीं किया गया है। इस संविधान में स्विस नागरिकता की विधिपूर्वक परिभाषा नहीं की गई है, किन्तु केवल यही कह दिया गया है कैन्टन का प्रत्येक नागरिक स्विस नागरिक है। संविधान में मूलाधिकारों का वर्णन नहीं मिलता किन्तु वैयक्तिक अधिकारों का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। निर्बन्धन्याय में विधि के समक्ष सब व्यक्तियों की समानता, आत्मस्वातन्त्र्य, धर्म-विश्वास व आराधना सम्बन्धी स्वतन्त्रता और समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई है। किन्तु संविधान के ५२ वें अनुच्छेद से नये मठों या सम्प्रदायों को पुनर्जीवित करना मना है। नागरिकों का यह अधिकार भी सुरक्षित कर दिया है कि वे प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं और समुदाय बना सकते हैं। प्रतिबन्ध केवल इतना है कि ये समुदाय राज्य में हानिकारक या किसी अवैध उपायों को काम में नहीं ला सकते। भारतवर्ष के समान स्विट्ज़रलैण्ड के विधान निर्माताओं के सामने भी विभिन्न भाषा, धर्म और जातियों की समस्या थी। अतएव भारतवर्ष के निवासियों को स्विटज़रलैण्ड के संविधान व उसके इतिहास का अध्ययन बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

*शक्ति-विभाजन*—संविधान के प्रथम अध्याय में सामान्य प्रावधान दिये हुये हैं जिनमें उन शक्तियों का वर्णन भी किया गया है जो केन्द्रीय

---

* गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स ऑफ स्विटज़रलैण्ड, पृ० ४६

सरकार (Federal Government) द्वारा भोगी जाती है। दूसरे अनुच्छेद में सघ के उद्देश्य की परिभाषा से सघ सरकार की शक्तियों का मूल भाव जाना जा सकता है। इसके अनुसार सघ का उद्देश्य विदेशियों से देश की स्वतत्रता की रक्षा करना, देश के भीतर शाति व सुव्यवस्था रखना, सदस्य-राज्यों की स्वतत्रता व अधिकारों की रक्षा करना और उन सब की समृद्धि को बढाना है। इसलिये सघ सरकार को बहुत ही सीमित और स्पष्टतया निश्चित अधिकार प्राप्त है। तीसरे अनुच्छेद में इसको स्पष्ट कर दिया गया है: "जहां तक सघ शासन से कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता मर्यादित नही हुई है, कैन्टन सम्पूर्ण सत्ताधारी है, अतएव वे उन सब शक्तियों को काम में ला सकते है जो सघ सरकार को नही सौंपी गई है"। सघ ने कैन्टनों की सम्पूर्ण सत्ता, उनकी भूमि व उनके नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने का वचन दिया है। कैन्टनों के शासन विधानों में सघ सरकार हस्तक्षेप नही कर सकती, पर उनमें सघ शासन विधान के विरुद्ध कोई बात न होनी चाहिये उनसे प्रतिनिधिक प्रजातत्री गणराज्य की रक्षा होती रहनी चाहिये और कैन्टनों की बहुसख्यक जनता उन सविधानों को मान्य समझती हो। कैन्टन आपस में राजनैतिक मित्रता नही कर सकते हालाकि वे दूसरे कामों में एक दूसरे से सहयोग कर सकते है। अद्भुत बात तो यह है कि कैन्टनों को यह अधिकार अब भी मिला हुआ है कि वे पुलिस, अर्थ सम्बन्धी और सीमा सबधो के बारे में विदेशी राज्यों से सधि कर सकते है। पर इन समझौतों में कोई ऐसी बात न होगी जो सघ के या दूसरे कैन्टनों के हितों के प्रतिकूल हो। इसके साथ साथ यह भी प्रतिबध है कि विदेशी राज्यों से जो कुछ विचार विनिमय होगा वह सघ कौंसिल की मध्यस्थता से होगा। कोई भी पूर्ण कैन्टन या अर्ध-कैन्टन ३०० सैनिकों से अधिक स्थायी सैन्य शक्ति न रख सकेगा। यह ऐसा प्रावधान है जो प्राय बहुत से अन्य सघ-शासन विधानों में नही मिलता क्योंकि सुरक्षा व उससे सम्बन्धित सब सस्थायें सघ सरकार के आधीन ही होती है। कैन्टनों की सेना का अनुशासन सघ कानून से निश्चित व नियमित रहता है और आवश्यकता पडने पर सघ सरकार सघ सेना के अतिरिक्त कैंटनों की सारी सैन्यशक्ति पर अनन्यरूप से तुरत अपना नियत्रण रख सकती है। इसमे यह सम्भावना नही रहती कि कोई कैंटन सघ के विरुद्ध शक्तिशाली बन गृह-युद्ध के लिये खडा हो जाय। यदि दो कैंटनों में कोई झगडा हो जाता है या किसी कैंटन में विद्रोह खडा हो जाता है तो सघ कौंसिल उसके निपटाने का प्रबन्ध करती है और यदि परिस्थिति गभीर हो तो अधिनायक जैसी शक्ति अपने हाथ में ले कर उसका प्रयोग करती है। सब बातो पर विचार करने के

परन्तु यह कहा जा सकता है कि संघ में रह कर भी केंटनों को बहुत विस्तृत अधिकार मिले हुये हैं ।

**केन्द्रीय सरकार की शक्तियाँ**—केन्द्रीय सरकार सेना-सम्बन्धी कानून बना सकती है । सेना का सङ्गठन, युद्ध घोषणा, संधि करना, सुरक्षा, वैदेशिक सम्बन्ध इन सब की व्यवस्था संघ अधिनियमों से होती है । जल विद्युत शक्ति, डाक व तार, संघ की सड़कें और पुल, नौपरिवहन (Aerial Navigation), विदेशी मुद्रा की कीमत, मुद्रा का बनाना, माप व तोल, बारूद का बनाना और बेचना, विवाह निर्णय और प्रत्यर्पण (Extradition) आदि पर संघ सरकार का अनन्य स्वामित्व व नियन्त्रण है । व्यवहार सम्बन्धी मामलों में, व्यापार के कानूनी प्रश्नों के बारे में, चलसम्पत्ति के हस्तान्तरण, साहित्यिक व कलात्मक प्रतिलिप्याधिकार (Copy Right), औद्योगिक अन्वेषण, ऋण चुकाने के अभियोग और दिवालियापन आदि के सम्बन्ध में संघ सरकार को अधिनियम बनाने का अधिकार है । न्यायसंगठन, न्याय-कार्य-प्रणाली, अपराध सम्बन्धी कानून, खाद्य व अन्य घरेलू वस्तुओं के व्यापार और सामान्य आयात-निर्यात-कर, इन सब के लिये भी संघ सरकार आवश्यक व्यवस्था कर सकती है । संघ सरकार केंटनों से निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा के लिये आयोजन की आशा रखती है ।

**संघ सरकार की आय**—आय के सम्बन्ध में संविधान के ४१ वें अनुच्छेदन से संघ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह हुंडियों बीमे की रसीदों, अधिकार-पत्रों व अन्य समान पर्चों पर मुद्रांक शुल्क (Stamp Duty) लगा सकती है । किन्तु इस कर से जो धन एकत्रित हो व्यय घटा कर उसका पाँचवां भाग केंटनों को लौटाना पड़ता है । ४२ वें अनुच्छेद में कुछ और आगम स्रोतों का वर्णन है जैसे, संघ सम्पत्ति की आय, सीमा पर उगाया हुआ संघ कर डाक व तार से प्राप्त आय या बारूद बनाने के एकाधिकार से प्राप्त धन, केंटनों में सैनिक-सेवा से मुक्त किये गये व्यक्तियों से प्राप्त कर का आधा भाग (स्विट्जरलैंड में सैनिक-सेवा अनिवार्य है, जो व्यक्ति इससे मुक्त होना चाहते हैं उनसे कुछ कर वसूल किया जाता है), मुद्रांक शुल्क, केंटनों से प्राप्त धन ।

अन्य शक्तियाँ जो निश्चित रूप से संघ सरकार को नहीं दी गई हैं संविधान ने केंटनों को सुरक्षित कर दी है ।

## संघ विधान-मंडल

**द्विगृही विधान-मंडल**—यह विधान मंडल फेडरल असेम्बली अर्थात्

संघ परिषद् के नाम से पुकारा जाता है। इसमें दो आगार हैं, एक को नेशनल कौंसिल और दूसरे को कौंसिल आफ स्टेट कहते हैं।

**निचला सदन**—नेशनल कौंसिल विधान-मंडल का निचला सदन है। इसके सदस्यों को सब प्रौढ नागरिक अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर चुनते हैं। प्रति २२००० नागरिकों का एक प्रतिनिधि चुना जाता है। यदि ११००० या इससे अधिक संख्या मतधारकों की होती है तो उन्हें एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होता है। कैंटनों के जिले निर्वाचन-क्षेत्र रहते हैं। कैंटनों की जनसंख्या में बहुत अन्तर है अतएव छोटे कैंटनों में कुछ एक ही प्रतिनिधि चुन कर भेजते हैं। ऊरी का कैंटन अपने २३००० नागरिकों का एक प्रतिनिधि चुनता है किन्तु बर्न के ३३ और ज्यूरिच के ३१ प्रतिनिधि नेशनल कौंसिल के सदस्य हैं। नेशनल कौंसिल की कुल संख्या सन् १९४७ के निर्वाचन के पश्चात् १९४ थी। सन् १९३० के निर्बन्ध से इसका कार्यकाल तीन वर्ष से बढ़ा कर चार वर्ष कर दिया गया है। इतने समय से पहले सदन का विघान नहीं होता क्योंकि कार्यपालिका नेशनल कौंसिल को उत्तरदायी नहीं है। यह कार्यपालिका पार्लियामेंटरी ( संसदात्मक ) ढंग की नहीं है।

**सदस्यों की योग्यता**—राज्य का प्रत्येक नागरिक जिसने २१ वें वर्ष में प्रवेश किया हो मत देने का अधिकारी है और पादरियों को छोड़ कर कोई भी मतधारक प्रतिनिधि चुना जा सकता है। किन्तु एक ही व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य एक समय में नहीं रह सकता। प्रत्येक प्रतिनिधि को आने जाने के खर्च के अतिरिक्त सदन में उपस्थित रहने के प्रतिदिन के लिये २५ फ्रैंक के हिसाब से भत्ता मिलता है। वर्ष में चार बैठकें होती हैं। सदन स्वयं ही अपने सभापति व उपसभापति को चुनता है। हर एक सत्र के लिये नये सभापति व उपसभापति चुने जाते हैं। पूर्व सभापति या उपसभापति को लगातार दूसरे सत्र में, अर्थात् दूसरे वर्ष में फिर से सभापति या उपसभापति नहीं चुना जा सकता। एक वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं उन सब की एक सत्र में गिनती होती है।

**सदन का सभापति**—समान मत होने पर सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार है। अतएव साधारण प्रश्नों पर वह दो मत दे सकता है। किन्तु समितियों के सदस्यों के निर्वाचन में वह दूसरे सदस्यों के समान ही मतदान करता है। इस सभापति का प्रभाव व शक्ति वैसी नहीं है जैसी अमेरिकन प्रतिनिधि-सदन के सभापति को प्राप्त है। फिर भी इस

पद की आकांक्षा बड़े बड़े राजनीतिक नेता करते हैं और जो सौभाग्य से इस पद को पा जाते हैं उनका अपने साथियों में बड़ा विशेष आदर होता है। यही बात कौंसिल आफ स्टेट के सभापति के बारे में भी ठीक है"।*

दूसरा सदन—फेडरल असेम्बली का दूसरा सदन कौंसिल आफ स्टेट्स कहलाता है। अमेरिका व आस्ट्रेलिया की सीनेट की तरह इसमें कैन्टनों से प्रतिनिधि सदस्य होते हैं। प्रत्येक कैन्टन को दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार है। इस प्रकार २२ कैन्टनों से ४४ प्रतिनिधि होते हैं। अर्ध-कैन्टन एक प्रतिनिधि भेजता है। 'यह अनोखी बात है कि संविधान में इन प्रतिनिधियों के चुनाव के ढंग के बारे में कोई प्रावधान नहीं है। न इनकी योग्यता ही निर्धारित की गई है। ये सब बातें कैन्टनों पर छोड़ दी गई हैं। संविधान में यह भी नहीं कहा गया है कि पादरी लोग इसके सदस्य नहीं हो सकते"।[1] संविधान में केवल यह निर्धारित है कि कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को स्वयं वेतन दें। फिर भी कैन्टनों में यह प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है कि इस सम्बन्ध में वे सब एक ही प्रणाली का अनुकरण करें। यह बात इससे स्पष्ट है कि अधिकतर कैन्टनों में कौंसिल आफ स्टेट्स के प्रतिनिधि सीधे प्रजा द्वारा चुने जाते हैं। कुछ कैन्टनों में वहां की विधानमण्डल इन प्रतिनिधियों को चुनती है।

सदस्यों की अवधि—तीन वर्ष की अवधि ही एक सामान्य नियम सा हो गया है किन्तु किन्हीं कैन्टनों में १ वर्ष और दूसरों में चार वर्ष की अवधि भी रखी जाती है। कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को वापस बुला सकते हैं और उनके स्थान पर दूसरे प्रतिनिधियों को भेज सकने में स्वतन्त्र हैं। किन्तु ४१ वें अनुच्छेद से एक प्रावधान है जो इसके प्रतिकूल प्रतीत होता है। इस अनुच्छेद में लिखा है कि 'कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्यों को कौंसिल में अपना मत देने के सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं दिया जा सकता'।

सदस्यों का वेतन—कैन्टन अपने प्रतिनिधियों को वेतन व आने जाने का खर्चा उसी दर से देते हैं जो संघ सरकार नेशनल कौंसिल के सदस्यों के लिये निश्चित करती है। यदि कौंसिल आफ स्टेट्स के सदस्य किन्हीं विधायिनी-समितियों में सदस्य बनने पर कार्य करते हैं तो संघ सरकार उन्हें भत्ता देती है।

सभापति—कौंसिल आफ स्टेट्स स्वयं ही अपना सभापति व उप-

---

* गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड पृ० ७९-८०

[1] ,, ,, ,, ,, ,, पृ० ८३

सभापति चुनती है। किन्तु एक ही कैन्टन के निवासी एक सत्र में दोनों पदों के लिये नहीं चुने जा सकते। न एक ही कैन्टन के प्रतिनिधियों में से लगातार दो सत्रों में सभापति या उपसभापति चुने जा सकते हैं (अनुच्छेद ८२) प्रचलित प्रथानुसार उपसभापति दूसरे सत्र में सभापति बना दिया जाता है। वर्ष में जितनी बैठकें होती हैं वे सब एक सत्र का भाग समझी जाती हैं। मत बराबर रहने पर सभापति को निर्णायक मत देने का अधिकार है।

**संघ विधान मण्डल की शक्तियाँ**—संघ विधान मण्डल, जैसा पहले बतला चुके हैं, फेडरल असेम्बली (Federal Assembly) के नाम से पुकारा जाता है जिसमें कौंसिल ग्राफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल नाम के दो सदन हैं। मन्त्रिपरिषद् जो फेडरल कौंसिल (Federal Council) के नाम से प्रसिद्ध है सब अधिनियम योजनाओं को तैयार करता है, चाहे वह याचना विधेयक के रूप में हो या रिजाल्यूशन अर्थात् प्रस्ताव के रूप में। विधानमण्डल के सदस्य या दूसरे सामान्य व्यक्ति (उस दशा में जब वे स्वयं किसी योजना का प्रस्ताव रखते हैं) किसी योजना के प्रस्ताव की सूचना दे सकते हैं और फेडरल कौंसिल तब इस प्रस्ताव का मसविदा तैयार करती है। कभी कभी प्रस्ताव करने वाले व्यक्ति स्वयं ही अपना मसविदा कौंसिल के पास भेज देते हैं। जब सत्र आरम्भ होने जा रहा हो उस समय फेडरल कौंसिल उस सत्र में विचारार्थ रखे जाने वाले विधेयकों और प्रस्तावों की पूरी सूची कौंसिल ऑफ स्टेट्स और नेशनल कौंसिल के सभापतियों के सम्मुख रख देती है। ये दोनों आपस में विचार करके यह निर्णय कर लेते हैं कि कौन से प्रस्तावों पर दोनों सदनों में पहले विचार किया जाय। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि जब एक सदन में कोई योजना स्थापित हो जाती है तो वह फेडरल असेम्बली में स्थापित हुई समझी जाती है इसलिये यदि एक सदन में वह योजना अस्वीकृत हो जाय फिर भी दूसरे सदन में वह विचाराधीन समझी जाती है। दोनों सदनों को समान अधिकार है। उन दोनों में मतभेद होने पर प्रत्येक एक समिति नियुक्त करता है। ये दोनों समितियाँ आपस में सलाह करती हैं और प्राय किसी न किसी समझौते पर पहुँच जाती हैं। यदि समझौता न हो तो योजना या प्रस्ताव गिर जाता है। स्विट्जरलैंड में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जब इस प्रकार के मतभेद से कोई वैधानिक संकट खड़ा हो गया हो। दूसरे विधानों की प्रथा के विपरीत स्विस संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिससे दोनों सदनों के मतभेद होने पर किसी प्रश्न पर निर्णय हो

गये। किन्तु इन मतभेदों की संख्या अधिक नहीं होती न ये बहुत गम्भीर होते हैं क्योंकि अपनी रचना के कारण कौंसिल आफ स्टेट्स नेशनल कौंसिल अर्थात् लोक सभा से अधिक उन्नति-विरोधी नहीं होती। अधिनियम निर्माण में सारी प्रजा के अन्तिम नियन्त्रण का अधिकार होने से संविधान में इस कमी का कोई महत्व भी नहीं रह जाता है।

असेम्बली को संघ-अधिकार क्षेत्र के सब विषयों में व्यवस्था करने का अधिकार है। सदनो के इन अधिकारों या शक्तियों को संक्षेप में नीचे दिया गया है।

(१) विदेशी राज्यों से व्यवहार करने में, युद्ध या संधि करने में, संघ-सेना के लिये अधिनियम बनाने में, स्विट्जरलैंड की बाहरी सुरक्षा व तटस्थता बनाये रखने के लिये सब प्रकार का प्रबंध करने में ये सदन संघ की सर्वाधिकारी सत्ता का उपभोग करते हैं।

(२) कैंटनो व संघ के बीच के संघ के अधिकार की रक्षा करते हैं। इसके साथ साथ वे यह भी ध्यान रखते हैं कि कैंटनों के संविधानों की सुरक्षा-सम्बन्धी-संघ द्वारा दी हुई प्रत्याभूति के पालन के हेतु आवश्यक अधिनियम भी बनते रहें। और फेडरल कौंसिल से प्रार्थना किये जाने पर वे कैंटनों में आपस में किये हुये या किसी कैंटन और विदेशी राज्य के बीच किये हुये समझौते या संधि के वैध अवैध होने का निर्णय भी करते हैं।

(३) वे संघ की सामान्य अधिनियम शक्ति को कार्यान्वित करते हैं और इस बात का विशेष प्रयत्न करते हैं कि शासन-विधान कार्यान्वित हो और संघ के कर्तव्यों का अच्छी तरह पालन हो।

(४) वे संघ के आय-व्यय के लेखे को पास करते हैं और संघ की आर्थिक स्थिति पर नियन्त्रण रखते हैं।

(५) वे संघ के पदाधिकारियों व कर्मचारियों का प्रबन्ध करते हैं। आवश्यक शासन विभागों की रचना कर उनके अफसरों के वेतन आदि का उचित प्रबन्ध भी उन्हीं के द्वारा होता है।

(६) वे संघ सरकार की व संघ न्यायपालिका की कार्यवाहियों पर दृष्टि रखते हैं। शासन सम्बन्धी मुकदमों में फेडरल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध वे शिकायतें सुन उन पर अपना निर्णय देते हैं।

(७) जनता की सम्मति से व संघ शासन विधान में संशोधन भी करते हैं।○

---

मौडर्न डमोक्रेसीज पुस्तक, पृ० ४३६

○ दी स्टेट, पैरा ६६६ (सन् १८२६ की प्रति)

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जायगा कि फेडरल असेम्बली को विधायिनी, कार्यकारी व न्यायिक शक्तियां प्राप्त हैं और वह उनका प्रयोग भी करती है। स्विट्ज़रलैंड में मोंटेस्क्यू के शक्ति विभाजन के सिद्धांत का अनुकरण नहीं किया गया है। वहां की कार्यपालिका विधानमंडल अर्थात् फेडरल असेम्बली को अपने कार्यों के लिये उत्तरदायी नहीं होती बल्कि असेम्बली की इच्छाओं को व्यवहाररूप देती है। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के समान यहां की न्यायपालिका सर्वोच्च न्याय सत्ता नहीं है।

सम्मिलित बैठकें—असेम्बली के दोनों सदन फेडरल कौंसिल (कार्य-पालिका) का निर्वाचन करने के लिये संयुक्त अधिवेशन में सम्मिलित होते हैं। ऐसी संयुक्त बैठकों में ही फेडरल कौंसिल के सभापति व उप-सभापति का चुनाव किया जाता है। फेडरल चांसलर व अन्य प्रमुख संघ-अधिकारी भी इसी संयुक्त बैठक में चुने जाते हैं।

विधान-मंडल के उल्लेख-पत्र—असेम्बली की कार्यवाही का उल्लेख जर्मन, फ्रेंच व इटैलियन तीनों भाषाओं में रखा जाता है और सदस्यों को किसी भी भाषा में वक्तृता देने का अधिकार है। दोनों सदनों में कार्य-वाही बड़े शिष्टाचार से और गौरवपूर्ण ढंग पर होती है। जब कोई सदस्य वक्तृता देता होता है उस समय सब लोग बिलकुल शांत रहते हैं। सब सदस्य अपने कार्य से परिचित रहते हैं और उनकी संख्या कम होने से सब मामलों पर पूर्ण विचार होता है। सैनिक मामलों की खूब अच्छी तरह से छानबीन होती है क्योंकि सैनिक सेवा हर स्विट्ज़रलैंड के निवासी के लिये अनिवार्य होने के कारण सब सदस्य उसमें वैयक्तिक अनुभव के आधार पर विचार प्रकट करते हैं और अपनी अभिरुचि का परिचय देते हैं।

सदस्यों की योग्यता—दोनों सदनों के सदस्य खूब पढ़े लिखे व्यक्ति होते हैं। नेशनल कौंसिल के ३/५ सदस्य और कौंसिल आफ स्टेट के तीन-चौथाई सदस्य विश्वविद्यालय में शिक्षित व्यक्ति होते हैं।* कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो विदेशी विद्यालयों में शिक्षा पाये हुए होते हैं। जैसी दलबंदी संयुक्त-राज्य की कांग्रेस में देखने को मिलती है वैसी स्विस विधानमंडल में नहीं है। यहां का साधारण व्यवस्थापक 'ठोस, चतुर, उद्वेगहीन या कम से कम अपने उद्वेगों को सहज ही व्यक्त करने वाला होता है। किसी समस्या

* गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स आफ स्विट्ज़रलैंड, पृ० ६८

पर विचार करने पर वह व्यावहारिक बुद्धि से मनन करता है और उसका दृष्टिकोण मध्यवर्गीय व्यवहारी व्यक्तियों का सा रहता है। जर्मन व्यक्ति की तरह उसकी प्रवृत्ति सैद्धांतिक बातों पर बाल खींचने की नहीं होती न फ्रांस के निवासी के समान वह चकित करने वाले वाक्यों से प्रभावित होता है"।[1] सदस्य सदनों में ठीक समय पर नियमानुसार उपस्थित होते हैं। व्यवस्थापकों में इन गुणों के कारण स्विट्जरलैंड में विधानमंडल को विशेषतया आदरणीय और गौरवपूर्ण समझा जाता है। संसार में इसके समान दत्तचित्त होकर अपना काम करने वाली दूसरी कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसमें असंबद्ध वाद विवाद कम होता है और उससे भी कम असंबद्ध व्याख्यान होते हैं। यहां प्रभावपूर्ण भाषा की कला का कोई प्रदर्शन नहीं होता। वक्ताओं को न कोई बीच में रोकने का प्रयत्न करता है न प्रशंसा के उद्गार ही प्रकट करते हैं। नेशनल कौंसिल में सदस्य खड़े होकर वक्तृता देते हैं, किन्तु कौंसिल आफ स्टेट में अपने स्थान से ही वे अपने विचार प्रगट करते हैं।

## संघ-कार्यपालिका

स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका जिसको फेडरल कौंसिल का नाम दिया हुआ है, एक अनोखे प्रकार की है। राजशास्त्री ब्राइस ने इसकी अनुपमता का इस प्रकार वर्णन किया है 'किसी दूसरे प्रजातन्त्र राज्य में ऐसी प्रथा नहीं कि कार्यकारी सत्ता एक व्यक्ति को न देकर एक समिति के हाथ में रखी गई हो और ऐसा कोई दूसरा देश न होगा जहां कार्यकारी सत्ता दलबन्दी से इतनी अप्रभावित हो। यह कौंसिल मन्त्रिपरिषद् नहीं है जैसा कि ब्रिटेन में है या उन देशों में है जिन्होंने ब्रिटेन की परिषद प्रणाली का अनुकरण किया है क्योंकि यह विधानमंडल का नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा हटाई भी नही जा सकती। संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यपालिका के समान यह विधानमंडल के तन्त्र के बाहर भी नहीं है। यद्यपि इसमें परिषद प्रणाली और अध्यक्षात्मक प्रणाली (Cabinet System and Presidential System) दोनों के कुछ कुछ गुण पाये जाते हैं। यह दलबन्दी से परे रहने के कारण दोनों से भिन्न है। यह पक्ष के बाहर स्थिर रहती है। इसका निर्वाचन किसी राजनैतिक पक्ष विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता।

[1] माडर्न डेमोक्रेसीज़ पु० १, पृ० ३७८

"यह किसी पक्ष की नीति निर्धारित नही करती किन्तु फिर भी पक्ष के रग से कुछ न कुछ रगी अवश्य होती है।"*

**फेडरल कौंसिल की बनावट**—फेडरल कौंसिल में सात सदस्य होते हैं जिनको फेडरल असेम्बली सयुक्त बैठक में चार वर्ष के लिए चुनती है। असेम्बली ही आकस्मिक रिक्त स्थानो को जाने वाले सदस्य के समय के लिए सदस्यों की नियुक्ति कर भरती है। कोई भी स्विस नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य बनने के योग्य हो फेडरल कौंसिल में चुना जा सकता है किन्तु एक ही कैन्टन के दो निवासी फेडरल कौंसिल के सदस्य नही बन सकते। निर्वाचन की पद्धति पर कानून से एक रोक और भी लगा दी गई है। एक से अधिक ऐसे व्यक्ति एक ही समय फेडरल कौंसिल के सदस्य नही बन सकते जो विवाह से या जन्म से किसी भी पीढी तक सीधी लाइन मे और चार पीढी तक पार्श्ववर्ती लाइन में सम्बन्धित हो। जो व्यक्ति गोद लेने से सम्बन्धी हो गये हो उनको भी यह प्रतिबन्ध लागू होगा। जो कोई विवाह से इस प्रकार के सम्बन्ध में बंधगा वह फेडरल कौंसिल की सदस्यता त्याग देगा [१]। प्रचलित प्रथा के अनुसार सबसे बडे ज्यूरिच व बर्न कैन्टनो का एक एक निवासी कौंसिल का सदस्य अवश्य होता है, बचे हुए पांच स्थानो को दूसरे कैन्टनो में बांट दिया जाता है। प्राय एक या दो स्थान उन कैन्टनो के निवासियो से भर जाते है जहां फ्रेंच या इटैलियन भाषा अधिकतर बोली जाती है। जो सदस्य पुनर्निर्वाचन के लिए खडे होते है उनका पुनर्निर्वाचन साधारणतया हो ही जाता है। सन् १८४८ से अब तक इस सम्बन्ध में केवल दो व्यक्तियो का एसा पुनर्निर्वाचन नही हुआ। इसलिए कौंसिल के सदस्य बड अनुभवी व्यक्ति होते है। एसे व्यक्तियो का उदाहरण मौजूद है जो २५-३० वर्ष तक कौंसिल के सदस्य रहे। सविधान में यद्यपि इस सम्बन्ध में कोई प्रतिबन्ध नही है फिर भी प्राय ये कौंसिल के सदस्य नेशनल कौंसिल या कौंसिल आफ स्टेट के सदस्यो में से ही छांट कर नियुक्त किये जाते है। किन्तु फेडरल कौंसिल के सदस्य बन जाने पर वे विधान मडल के सदस्य नही रह सकते। इससे विधान-मडल और कार्यपालिका दोनो बिलकुल पृथक रहे आते है।

प्रतिवर्ष फेडरल कौंसिल के सदस्यो में से असेम्बली एक को प्रेसीडेंट

---

* माडर्न डेमोक्रेसीज पुस्तक १, पृ० ३६३ ३६४

[१] गवर्नमेंट एण्ड पौलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड नामक पुस्तक में दिये हुए कथनानुसार पृ० १०४ १०५

पर विचार करने पर वह व्यावहारिक बुद्धि से मनन करता है और उसका दृष्टिकोण मध्यवर्गीय व्यवहारी व्यक्तियों का सा रहता है। जर्मन व्यक्ति की तरह उसकी प्रवृत्ति सैद्धान्तिक बातों पर बार २ लौटने की नहीं होती न फ्रांस के निवासी के समान वह चकित करने वाले कार्यों से प्रभावित होता है"।[1] सदस्य सदनों में ठीक समय पर नियमानुसार उपस्थित होते हैं। व्यवस्थापकों के इन गुणों के कारण स्विट्जरलैंड के विधानमंडल को विशेषतया आदरणीय और गौरवपूर्ण समझा जाता है। संसार में इसके समान दत्तचित्त होकर अपना काम करने वाली दूसरी कानून बनाने वाली संस्था नहीं है। इसमें क्रम-बद्ध वाद-विवाद कम होता है और उसमें भी कम क्रमबद्ध व्याख्यान होते हैं। यहां प्रभावपूर्ण भाषा की कला का कोई प्रदर्शन नहीं होता। वक्ताओं को न कोई बीच में रोकने का प्रयत्न करता है न प्रशंसा के उद्गार ही प्रकट करते हैं। नेशनल कौंसिल में सदस्य खड़े होकर वक्तृता देते हैं, किन्तु कौंसिल आफ स्टेट में अपने स्थान से ही वे अपने विचार प्रगट करते हैं।

## संघ-कार्यपालिका

स्विट्जरलैंड की कार्यपालिका जिसको फेडरल कौंसिल का नाम दिया हुआ है, एक अनोखे प्रकार की है। राजशास्त्री ब्राइस ने इसकी अनुपमता का इस प्रकार वर्णन किया है 'किसी दूसरे प्रजातंत्र राज्य में ऐसी प्रथा नहीं कि कार्यकारी सत्ता एक व्यक्ति को न देकर एक समिति के हाथ में रखी गई हो और ऐसा कोई दूसरा देश न होगा जहाँ कार्यकारी सत्ता दलबन्दी से इतनी अप्रभावित हो। यह कौंसिल मंत्रिपरिषद् नहीं है जैसा कि ब्रिटेन में है या उन देशों में है जिन्होंने ब्रिटेन की परिषद-प्रणाली का अनुकरण किया है क्योंकि यह विधानमंडल का नेतृत्व नहीं करती और उसके द्वारा हटाई भी नहीं जा सकती। संयुक्त राज्य अमेरिका की कार्यपालिका के समान यह विधानमंडल के तंत्र के बाहर भी नहीं है। यद्यपि इसमें परिषद प्रणाली और अध्यक्षात्मक प्रणाली (Cabinet System and Presidential System) दोनों के कुछ कुछ गुण पाये जाते हैं। यह दलबन्दी से परे रहने के कारण दोनों से भिन्न है। यह पक्ष के बाहर स्थित रहती है। इसका निर्वाचन किसी राजनैतिक पक्ष-विशेष के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता।

[1] माडर्न डैमोक्रेसीज पु० १, पृ० ३७८

कैंटनों के बीच की हुई सन्धियों की परीक्षा पर अपनी सहमति देती है, राष्ट्र के सब वैदेशिक व्यवहार की निगरानी और आवश्यकता पड़ने पर स्विट्जरलैंड की घरेलू व बाहरी सुरक्षा का प्रबन्ध करती है। यह शान्ति व सुव्यवस्था की रक्षा के लिए सेना बुलाती है और सेना पर आधिपत्य रखती है। यह सघ की आय-व्यय का प्रबन्ध करती है, अपने कार्य का विवरण असेम्बली के सम्मुख रखती और अपने कार्य के सम्बन्ध में उन विशेष रिपोर्टों को प्रस्तुत करती है जो असेम्बली द्वारा मांगी जाती है।

**प्रशासन-विभाग**—उपर्युक्त विभिन्न कार्यकलापों का सचालन करने के लिए फेडरल कौंसिल ने सात प्रशासन विभागों का निर्माण किया है। परराष्ट्र विभाग, न्याय व पुलिस विभाग, गृह विभाग, युद्ध विभाग, अर्थ-विभाग, उद्योग व कृषि विभाग और डाक व रेल विभाग, ये सात प्रशासन-विभाग असेम्बली के आदेशों को कार्यरूप देते हैं। कुछ समय पहले प्रेसीडेंट परराष्ट्र विभाग को अपने हाथ में रखता था किन्तु हाल ही में यह प्रथा टूट गई है। अब प्रतिवर्ष शासन-विभागों का राजमंत्रियों में नये ढंग से वितरण किया जाता है। प्रत्येक प्रशासन-विभाग के लिये मुख्य अध्यक्ष के अतिरिक्त एक दूसरा अध्यक्ष निश्चित कर दिया जाता है जो स्वयं किसी दूसरे विभाग का मुख्य अध्यक्ष होता है। अतएव फेडरल कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासन-विभाग का मुख्य अध्यक्ष और किसी अन्य प्रशासन विभाग का एवजी अध्यक्ष' होता है। इस युक्ति से शासन के कार्य का सुसचालन पक्का हो जाता है क्योंकि बारी बारी से सब प्रशासन विभागों के कार्य की पेचीदगी का अनुभव सदस्यों को हो जाता है।

**फेडरल कौंसिल का कार्य-संचालन**—फेडरल कौंसिल की बैठक सप्ताह में दो बार बर्न नगर में होती है। गणपूरक चार सदस्यों की उपस्थिति होती है। मताधिक्य से सब निर्णय होते हैं। "कौलिजियट" ढग की कार्य-पालिका होने के कारण कौंसिल के सदस्य अपने साथी सदस्यों से प्रस्तुत की हुई योजनाओं के विरुद्ध प्रकट रूप से असेम्बली में बोल सकते हैं। यह इस-लिये सम्भव है कि प्रत्येक सदस्य अपने कार्यों के ही लिये उत्तरदायी है, कौंसिल सामुदायिक रूप से विधानमंडल को उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश मंत्रिपरिषद् पार्लियामेंट को उत्तरदायी है। ऐसी योजना भी जो फेडरल कौंसिल की सर्वसम्मति से असेम्बली के सम्मुख रखी गई हो यदि असेम्बली द्वारा अस्वीकार हो जाय तो 'राजमंत्रियों को अपने त्यागपत्र देने या पद से हटाये जाने, इन दोनों बातों में एक को पसन्द करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती,

निर्वाचित करती है। एक उप-प्रेसीडेंट भी निर्वाचित होता है। पिछले वर्ष का उप प्रेसीडेंट प्रायः अगले वर्ष के लिये प्रेसीडेंट चुन लिया जाता है। कोई भी व्यक्ति लगातार दो वर्षों तक प्रेसीडेंट या उप-प्रेसीडेंट नहीं रह सकता। प्रेसीडेंट स्विस फेडरल कौंसिल का सभापति भी रहता है। वह उसकी में सब का प्रतिनिधित्व करता है, कौंसिल का कार्य सञ्चालन करता है, सामान्य रूप से उसके काम की देखभाल करता है और अत्यावश्यक मामलों में कौंसिल की ओर से कार्यवाही भी करता है। कौंसिल में निर्णय लेते समय यदि दो पक्षों के मत बराबर हों तो वह निर्णायक मत दे सकता है।

*बिना शक्ति का अध्यक्ष*—किन्तु स्विस प्रेसीडेंट को विधानमंडल के कानूनों के प्रतिषेध करने का अधिकार नहीं है और वह अन्य सदस्यों के समान ही किसी एक शासन विभाग का अध्यक्ष रहता है। उसे कोई विशेष अधिकार नहीं है और दूसरी बातों में भी वह नाम मात्र का अध्यक्ष समझा जाता है, उसको "बिना किसी महत्व का प्रेसीडेंट" यह कह उसका वर्णन किया जाता है। इस कथन में कुछ तथ्य भी है क्योंकि उसका कार्यभार बहुत थोड़ा है और फ्रांस प्रेसीडेंट या अमरीका के प्रेसीडेंट में जो शक्तियां निहित हैं वैसी किसी शक्ति का वह उपभोग नहीं करता। फिर भी इस पद का बड़ा गौरव है और राजनैतिक क्षेत्र में महत्वाकांक्षियों के लिये सब से अधिक ऐश्वर्य का पद है जिस पर पहुँचने का वे प्रयत्न करते हैं।

हर एक फेडरल कौंसिल के सदस्य को प्रतिवर्ष ४८,००० फ्रांक वेतन मिलता है। प्रेसीडेंट को केवल ३,००० फ्रांक और अधिक मिलते हैं।

फेडरल कौंसिल की कार्यवाही—संविधान के १०२ वें अनुच्छेद से प्रदान की हुई शक्तियों के आधीन, फेडरल कौंसिल संघ के आदेशों के अनुसार सब संघ का काम करती है। संघ विधान के पालन और संघ के कानूनों, आदेशों व समझौतों के अनुकरण को यह निरापद करने के लिये आवश्यक कार्यवाही करती है, कैन्टनों के शासन विधानों के पालन की सुरक्षा करती है, फेडरल असेम्बली के सम्मुख प्रस्तुत किये जाने वाले अधिनियमों व आदेशों का मसविदा तैयार करती है, और कैंटनों या अन्य कौंसिलों द्वारा भेजे हुए प्रस्तावों पर अपनी रिपोर्ट देती है।* फेडरल कौंसिल संघ अधिनियमों को, संघ न्यायालय के निर्णयों को व कैंटनों के बीच हुए समझौता को कार्यरूप देती है। यह उन शासन-पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति करती है जो असेम्बली द्वारा नहीं भरे गए हों। यह विदेशी राज्यों से की हुई संधियों को और

* गवर्नमैंट एण्ड पौलिटिक्स स्विट्ज़रलैंड पृ० ११०

कैंटनों के बीच की हुई संधियों की परीक्षा कर अपनी सहमति देती है, राष्ट्र के सब वैदेशिक व्यवहार को चलाती और आवश्यकता पड़ने पर स्विट्ज़रलैंड की घरेलू व बाहरी सुरक्षा का प्रबंध करती है। यह शान्ति व सुव्यवस्था की रक्षा के लिए सेना बुलाती है और सेना पर आधिपत्य रखती है। यह संघ की आय-व्यय का प्रबन्ध करती है, अपने कार्य का विवरण असेम्बली के सम्मुख रखती और अपने कार्य के सम्बन्ध में उन विशेष रिपोर्टों को प्रस्तुत करती है जो असेम्बली द्वारा मांगी जाती हैं।

प्रशासन-विभाग—उपर्युक्त विभिन्न कार्यकलापों का संचालन करने के लिए फेडरल कौंसिल ने सात प्रशासन विभागों का निर्माण किया है। परराष्ट्र विभाग, न्याय व पुलिस विभाग, गृह विभाग, युद्ध विभाग, अर्थ-विभाग, उद्योग व कृषि विभाग और डाक व रेल विभाग, ये सात प्रशासन-विभाग असेम्बली के आदेशों को कार्यरूप देते हैं। कुछ समय पहले प्रेसीडेंट परराष्ट्र विभाग को अपने हाथ में रखता था किन्तु हाल ही में यह प्रथा टूट गई है। अब प्रतिवर्ष शासन-विभागों का राजमन्त्रियों में नये ढंग से वितरण किया जाता है। प्रत्येक प्रशासन विभाग के लिये मुख्य अध्यक्ष के अतिरिक्त एक दूसरा अध्यक्ष निश्चित कर दिया जाता है जो स्वयं किसी दूसरे विभाग का मुख्य अध्यक्ष होता है। अतएव फेडरल कौंसिल का प्रत्येक सदस्य एक प्रशासन विभाग का मुख्य अध्यक्ष और किसी अन्य प्रशासन विभाग का एवजी अध्यक्ष होता है। इस युक्ति से शासन के कार्य का सुसंचालन पक्का हो जाता है क्योंकि बारी बारी से सब प्रशासन विभागों के कार्य की पेचीदगी का अनुभव सदस्यों को हो जाता है।

फेडरल कौंसिल का कार्य-संचालन—फेडरल कौंसिल की बैठक सप्ताह में दो बार बर्न नगर में होती है। गणपूरक चार सदस्यों की उपस्थिति होती है। मताधिक्य से सब निर्णय होते हैं। "कौलिजियेट" ढंग की कार्य-पालिका होने के कारण कौंसिल के सदस्य अपने साथी सदस्यों से प्रस्तुत की हुई योजनाओं के विरुद्ध प्रकट रूप से असेम्बली में बोल सकते हैं। यह इसलिये सम्भव है कि प्रत्येक सदस्य अपने कार्यों के ही लिये उत्तरदायी है, कौंसिल सामुदायिक रूप से विधानमंडल को उत्तरदायी नहीं है जिस प्रकार ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् पार्लियामेंट को उत्तरदायी है। ऐसी योजना भी जो फेडरल कौंसिल की सर्वसम्मति से असेम्बली के सम्मुख रखी गई हो यदि असेम्बली द्वारा अस्वीकार हो जाय तो राजमन्त्रियों को अपने त्यागपत्र देने या पद से हटाये जाने, इन दोनों बातों में एक को पसन्द करने की स्वतन्त्रता नहीं रहती,

वे उस निर्णय को शिरोधार्य करते और उसके अनुसार कार्यारम्भ कर देते हैं"। वे अपने पदों पर बराबर बने रहते हैं, पदत्याग नहीं करते। इस प्रथा के कारण कौंसिल दूसरे देशों की स्थिर सचिव मंडल से मिलती जुलती है केवल अन्तर यह है कि इसके सदस्यों का निर्वाचन प्रति चार वर्ष बाद होता है। फेडरल कौंसिल के सदस्य विधानमंडल के किसी भी सदन में उपस्थित हो सकते हैं और बोल सकते हैं। वे वाद-विवाद में बिना किसी प्रतिबन्ध के भाग ले सकते हैं। उन्हें यहां प्रश्नों का उत्तर भी देना पड़ता है। किन्तु असेम्बली के सदस्य न होने के कारण वे वहां वोट नहीं दे सकते। वे स्विस राजनीति में अन्तिम अधिकार रखने वाली असेम्बली की इच्छा को कार्यान्वित करते हैं।

विधानमंडल को अनुत्तरदायी—फेडरल कौंसिल को स्विस-सविधान प्रदत्त है। "वह राष्ट्र की किसी अन्य कार्यकारी सत्ता की ओर से काम नहीं करती है" इसकी रचना बहुसंख्यक दल से बनाई जाने वाली मन्त्रिपरिषद् के ढग पर नहीं होती। इसमें कोई प्रधानमंत्री नहीं होता जो सब मंत्रियों को अपने ही दल के व्यक्तियों में से चुनता हो। इसके "सदस्य विभिन्न राजनैतिक दलों से ही नहीं वरन् विरोधी दलों से भी चुने जाते हैं। फिर भी वे लोग कौंसिल के प्रति सद्भावना व अपने इस सगठन के ऊपर अभिमान दिखाते हैं। अपनी नीति के लिये यह असेम्बली पर निर्भर रहती है। यह विधानमंडल का विघटन नहीं करा सकती और उसके द्वारा अपने पक्ष में निर्णय करने को जनता से अपील नहीं कर सकती। असेम्बली भी कौंसिल के सदस्यों को बरखास्त नहीं कर सकती"। इन अनुपम बातों के रहते हुये भी कौंसिल अपना काम बड़ी कुशलता से, मिलकर व उत्तम ढग पर करती है। इसका कारण यह है कि यह छोटी संस्था है जिसके सदस्यों को लम्बे समय का अनुभव रहता है और ये लोग प्रायः अपने दलों के व्यक्तियों की सहायता से असेम्बली में अपना बड़ा प्रभाव रखते हैं। नियुक्तियाँ करने की शक्ति होने से भी उनका बड़ा दबदबा रहता है। सन् १९१४-१८ के महायुद्ध में असेम्बली ने फेडरल कौंसिल को असीमित अधिकार दे दिये थे जिनकी सहायता से वह स्विट्जरलैंड की सुरक्षा, पूर्णता व तटस्थता की रक्षा के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध कर सके और स्विट्जरलैंड की आर्थिक स्थिति व विश्वास की रक्षा कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कौंसिल को खर्च करने और कर्ज लेने की असीमित शक्ति दे दी गई थी। केवल प्रतिबन्ध

○ गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० ११२-११३

इतना था कि उसे असेम्बली की आगे होने वाली बैठक में पूर्व बैठक के बाद से इन असीमित शक्तियों के प्रयोग का पूरा विवरण देना पड़ता था। उस समय कौंसिल को जो शक्तियां दी गई उनसे कौंसिल का प्रभाव सदा के लिये बढ़ गया है।

**कौंसिल के प्रभाव के बारे में ब्राइस का मत**—राजनीतिज्ञ ब्राइस ने स्विस कार्यपालिका की प्रशंसा इस प्रकार की है इस प्रणाली से ऐसी सत्ता की स्थापना होती है जो जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व को कम किये बिना शासक असेम्बली को प्रभावित कर केवल परामर्श ही नहीं दे सकती किन्तु दलबन्दी से दूर रहने के कारण यह आवश्यकता पड़ने पर दो लड़ने वाले पक्षों में मध्यस्थ का काम भी कर सकती है और कठिनाइयों को कम कर मित्र भावना के सहारे समझौते करा सकती है। इनके द्वारा सिद्ध-बुद्धि प्रशासक राष्ट्र की सेवा में लगे रहते हैं चाहे उनके के राजनैतिक विचार कुछ भी हों जिनके कारण तत्कालीन राजनैतिक पक्षों में विभेद हो। इसके द्वारा परम्परा की रक्षा होती है और नीति की अविच्छिन्नता बनी रहती है।

**फेडरल कौंसिल की सफलता**—फेडरल कौंसिल की बहुत कुछ आलोचना व इसके सुधार के लिये अनेक सुझाव के होते हुए भी यह दृढ़ विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि 'स्विस कार्यपालिका ने अपनी शक्तियां व अवसरों की सीमा के भीतर उच्च श्रेणी की दक्षता प्राप्त कर ली है और इस छोटे देश में रहने वाली तीनों जातियों का संतुलन करने में यह कृतकार्य हुई है।

**चांसलर**—स्विस कार्यपालिका का वर्णन समाप्त करने से पूर्व चांसलर, जो संघ का एक उच्च पदाधिकारी होता है का वर्णन भी कर देना आवश्यक है। इस पदाधिकारी का नाम संविधान की १०५ वी धारा में पाया जाता है, इसको प्रति चार वर्ष पश्चात् फेडरल असेम्बली चुनती है। वह फेडरल असेम्बली व कौंसिल के जनरल सेक्रेटरी के समान कार्य करता है और उसी के कार्यकाल तक अपने पद पर काम करता है। विशेष रूप से वह फेडरल कौंसिल के आधीन रहता है। चांसलर के कर्तव्यों में उल्लेख पत्रों का रखना, प्रलेखों की रक्षा, निर्वाचनों, लोकनिर्णयों (Referendum) निर्वन्ध-उपक्रम (Initiative) आदि का विधिवत् प्रबन्ध करना, ये सब काम गिने जाते हैं। संघ के सब निर्बन्धों पर उसके हस्ताक्षर होना आवश्यक है, उनको वैध करने के लिये नहीं किन्तु उनके सही होने को प्रमाणित करने

के लिये । अतएव वह एक 'उच्च ऐट कवर्स' के समान है और उसके नाम से किसी को जर्मन साम्राज्य का भाग न होना चाहिये जो जर्मनी में एक बड़ी शक्तिशाली विभूति के रूप में हुआ करता था ।

## संघ न्यायपालिका

**इसकी बनावट**—संविधान द्वारा एक संघ ट्रिब्यूनल अर्थात् न्यायालय की स्थापना की गई है । जिसमें संघ-सम्बन्धी मामलों में न्याय का निर्णय किया जाता है । इस समय इसमें २६-२८ सदस्य हैं और ११ से १३ तक अतिरिक्त न्यायाधीश हैं । ये सब ६ वर्ष के लिये फेडरल असेम्बली द्वारा चुने जाते हैं और इस अवधि के समाप्त होने पर फिर चुने जा सकते हैं । इनमें से एक प्रेसीडेंट और एक उप प्रेसीडेंट नियुक्त किया जाता है । दोनों दो वर्ष के लिये नियुक्त होते हैं और लगातार दो बार के निर्वाचित होकर नियुक्त नहीं किये जा सकते । प्रेसीडेंट का वेतन ३२,००० फ्रैंक प्रति वर्ष है । दूसरे न्यायाधीशों में प्रत्येक को ३०,००० फ्रैंक मिलता है । स्विट्जरलैंड का कोई नागरिक जो नेशनल कौंसिल का सदस्य होने योग्य है, वह न्यायालय का सदस्य चुना जा सकता है चाहे उसकी विधि निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी और योग्यता कुछ भी हो । पर प्रतिबन्ध यह है कि वह न्यायालय का सदस्य रहने के साथ साथ विधानमंडल का सदस्य नहीं रह सकता न किसी और पद पर काम कर सकता है । यह एक विचित्र सी बात प्रतीत होती है कि, कम से कम सिद्धान्ततः, विधान न्यायाधीशों के लिए कोई विधि निर्बन्ध सम्बन्धी जानकारी की योग्यता निश्चित नहीं करता हालांकि व्यवहार में ऐसी जानकारी रखने वाले व्यक्ति ही न्यायाधीश चुने जाते हैं ।

**इसका अधिकार क्षेत्र**—संघ व कैन्टनों के बीच व्यवहार सम्बन्धी सब मुकदमे, ऐसे मुकदमे जो संघ व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच में हों, आपस में कैन्टनों के मुकदमे या कैन्टनों व कम्पनियों या व्यक्तियों के बीच के मुकदमे निबटाना संघ न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में है । यह न्यायालय संघ के प्रति देश द्रोह के अपराध या शासन विधान के विरुद्ध विद्रोह सम्बन्धी अपराधों की जांच करने का भी अधिकारी है । राष्ट्र के मध्य मान्य निर्बन्ध के विरुद्ध अपराधों या ऐसे अपराधों और राजनैतिक अवज्ञाओं की परीक्षा जिसमें संघ सेना के हस्तक्षेप की आवश्यकता हो जाय, यह न्यायालय कर सकता है । संघ पदाधिकारियों के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों को भी यही न्यायालय सुन कर अपना निर्णय देता है । 'क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में यदि

संघ और कैन्टनो के अधिकारियो मे झगडा हो जाय, या लोक निर्बन्ध के बारे में यदि कैन्टनो मे मतभेद हो, नागरिकों के वैधानिक अधिकारो के उल्लघन की शिकायत हो, या समझौतो अथवा सन्धियों के तोडने की व्यक्तियो द्वारा शिकायत की जाय तो इन सब मामलो की जाँच करने का सघ-न्यायालय को अधिकार है" ।* मजे की बात यह है कि विधानमडल द्वारा पास किये हुये अधिनियमो को वैध-अवैध निश्चित करने का अधिकार इस न्यायालय को नहीं है जिससे यह अमेरिका के सर्वोच्च-न्यायालय के समान प्रभावशाली व गौरवपूर्ण न्यायालय नही रह जाता । अमरीका में सर्वोच्च-न्यायालय विधानमण्डल या कार्यपालिका के तन्त्र से परे है । किन्तु इस न्यायालय के 'सीमित अधिकारो के कारण न्यायाधीशों की निर्वाचन-पद्धति होने से और विधानमण्डल का न्याय पालिका पर नियन्त्रण होने से स्विट्जरलैंड के निवासी एक शक्तिशाली सघ-न्यायपालिका बनाने में असफल रहे हैं। यह कमी इस बात से और भी अधिक खटकती है कि उन्होंने सयुक्त-राज्य अमरीका की बहुत सी बातो में नकल की है" ।[1] यद्यपि यह सच है कि इस न्याय-पालिका का अधिकार क्षेत्र बराबर विस्तृत होता जा रहा है फिर भी यह निश्चय है कि वह सयुक्त-राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के वैधानिक महत्व को नही पा सकता । विशेषकर विधान-मडल के बनाये हुए अधिनियमो को वह अवैध घोषित नहीं कर सकता । ऐसा करना स्विट्जरलैंड को ही नहीं वरन् यूरोपीय परम्परा के भी विरुद्ध होगा । इसका कारण स्पष्ट है और वह यह कि स्विट्जरलैंड में शक्ति विभाजन को अगीकार नही किया है । विधानमण्डल ही राज्य-सगठन का सब से शक्तिशाली अग है और वह भी प्रजा की सतर्क देख-रेख मे सदा बनी रहती है क्योंकि जनता लोक-निर्णय (Referendum) निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) और प्रत्याहरण (Recall) द्वारा लोक व्यवस्था पर अपना प्रत्यक्ष नियन्त्रण रखती है ।

न्यायपालिका की कार्य प्रणाली—न्यायाधीशों को इस ढग से चुना जाता है कि वे तीनो राष्ट्र-भाषाओ का प्रतिनिधित्व करें । न्यायालय की बैठक, लूसेन नगर मे होती है जो फ्रेंच भाषा-भाषियो के कैन्टन वौड (Vaud) में स्थित है । बर्न नगर के राजनैतिक वातावरण से न्यायलय को दूर रखने के लिये ऐसा किया गया था । न्यायालय तीन विभागों में विभक्त है, प्रत्येक

---

* [illegible] १३ वाँ धारा ।

१ पेट्रल पौलिटी, पृ० १८८ ८७ ।

वभाग में ८ न्यायाधीश व्यवहार-सम्बन्धी व कानून सम्बन्धी (Civil) मुक-दमों को सुनकर निर्णय करते हैं। अपराध-सम्बन्धी (Criminal) मुकदमों का निबटारा करने में पंच (Jury) सहायता करते हैं। ये संख्या में १२ होते हैं और ५४ नामों की सूची से १८ चुने हुए व्यक्तियों में से लाटरी द्वारा छाट लिए जाते हैं। मुकदमे में प्रत्येक पक्ष को सूची के २० नामों के विरुद्ध आपत्ति करने का अधिकार होता है। इन पंचों को प्रतिदिन के काम के लिये २० फ्रैंक पारिश्रमिक मिलता है।

## राजनैतिक पक्ष

**दलबन्दी की भावना का अभाव**—फ्रांस और इंगलैंड के राजनैतिक पक्षों की अपेक्षा यहाँ राजनैतिक पक्ष निम्न-श्रेणी का कार्य करते हैं क्योंकि कार्यकारी क्षेत्र में सदन मंत्रियों को स्थान च्युत नहीं करा सकते और व्यवस्थापन क्षेत्र में आगारों का निर्णय अंतिम निर्णय नहीं होता। यह अन्तिम-निर्णय जनता का होता है"।* इनके अतिरिक्त उत्कट दलबन्दी की भावना के इस अभाव के पीछे और भी कई कारण हैं। विधानमंडल के सत्र बहुत कम समय के होते हैं जिससे दलबन्दी को सुदृढ़ करने के लिये समय ही नहीं रहता। विधानमंडल के सदस्य जिलों के अनुसार समूह बनाकर बैठते हैं न कि पक्ष-समूहों में। केन्द्रीय सरकार के हाथ में अपने समर्थकों को देने के लिये कोई अधिक संख्या में पुरस्कार भी नहीं होते क्योंकि कैन्टनों की सरकारों को ही अधिक विस्तृत अधिकार मिले हुए हैं। सब सरकारी पदों पर राजनीति के आधार पर न होकर योग्यता के कारण ही नियुक्तियाँ होती हैं। इन पदाधिकारियों के वेतन इतने कम हैं कि कृपाकांक्षी व्यक्ति उससे आकर्षित नहीं होते। फेडरल कौंसिल के मंत्रियों का चुनाव अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है जिससे गुटबन्दी को प्रोत्साहन नहीं मिलता। लोक निर्णय और प्रत्याहरण से स्विटजरलैंड जैसे छोटे देश में दलबन्दी नहीं होने पाती क्योंकि मतदाता अपने पड़ोसियों को ही मत देने के अधिक इच्छुक होते हैं। योजना के दोष-गुण पर अधिक ध्यान दिया जाता है न कि व्यक्ति विशेष पर। अतएव पड़ोसी से न कि पक्ष के उम्मेदवारों से यह अधिक आशा की जाती है कि वह प्रिय योजनाओं का समर्थन करेगा। अन्तिमतः स्विस निवासी स्वभाव से व्यावहारिक बुद्धि के होते हैं उनमें यह गुण नहीं पाया जाता है जो प्राय राजनैतिक दल-बन्दी के लिए आवश्यक है। वे निर्वाचन के समय किसी प्रकार का प्रदर्शन पसन्द नहीं करते।

---

* मोडर्न डेमोक्रेसीज, पुस्तक १ पृ० ३८०

**पुराने पक्ष**—प्रारम्भ मे उपराज्यो के अधिकार के प्रश्न पर पक्षो का सगठन हुआ था। वैधानिक सम्प्रदाय के अनुयायी जो परम्परा के समर्थक थे अपने आपको फेडरलिस्ट (Federalist) कहते थे किंतु वैन्टना के अधिकारो को सुरक्षित किये जाने पर जोर देते थे। इसी नाम का अमेरिका में एक राजनैतिक दल है जो मिल्टन और वाशिंगटन के नेतृत्व में उपराज्यो के स्थान पर केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के पक्ष में था। स्विट्जरलैंड मे दूसरा पक्ष अपने आप को सैन्ट्रलिस्ट (Centralist) के नाम से पुकारता था और केन्द्रीय सरकार की शक्ति को बढाने का समर्थन करता था। सौदरबन्द के युद्ध म कैथोलिक पक्ष की हार हुई किन्तु मेल और सुदृढ सघठन के कारण उनका अस्तित्व नष्ट नही हुआ। विजयी सैन्ट्रलिस्ट कुछ समय के पश्चात् दो शाखाओ म बट गये, एक रैडीकल पक्ष (Radicals) और दूसरा राइट विंगर्स (Right Winge s)। रैडीकल पक्ष की सख्या बढती गई क्योंकि उन्होने सघक्षेत्र में लोक निर्णय और निर्वन्ध-उपक्रम लागू करने का जो प्रश्न उठाया उसका प्रजा ने बडा समर्थन किया। सन् १८७४ में सविधान में जो सशोधन हुआ वह रैडीकल पक्ष की विजय का द्योतक था। उसके पश्चात इस दल ने स्विस राजनीति पर अपना सिक्का जमा लिया। राइट विंगर्स (Right Wingers) जल्दी ही राजनैतिक क्षेत्र से लुप्त हो गये। रैडीकल पक्ष से समाजवादी पक्ष का आविर्भाव हुआ जिसने सन् १८६० के निर्वाचन में नशनल कौंसिल के ६ स्थानो पर अपना अधिकार कर लिया। किंतु इस पक्ष की अधिक उन्नति न हुई। ' इसका एक कारण यह है कि स्विटजरलैंड में पहले से ही राज्यसंगठन के ऊपर अन्य देशों की अपेक्षा अधिक मात्रा म जनता का नियन्त्रण हो चुका था और बडे-बडे उद्योगो का समष्टिकरण भी हो गया था इसलिये इस बात में सदेह नही कि इन कारणो से व अचल सम्पत्ति के छोटे छोटे टुकडो के अधिक व्यक्तियों म बटे रहने से स्विटजरलैंड में समाजवाद का वैसा जोर नही हुआ जैसा जर्मनी और फ्रास में रहा है।*

**वर्तमान राजनैतिक पक्ष**—उपर्युक्त वर्णन से यह मालूम हो गया कि स्विट्जरलैंड में कैथोलिक अनुदार पक्ष और इन्डिपेंडेंट डेमोक्रेटिक रैडीकल (Independent Democratic Radical) पक्ष ये दो बडे राजनैतिक पक्ष हैं।। ऊपरी सदन में कैथोलिको की पर्याप्त सख्या है और उनका एक शक्तिशाली अल्पसख्यक दल है। किन्तु लोक सभा अर्थात् निचले सदन में उन

---

* गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० २६६

की संख्या अधिक है। इसका विशेष कारण यह है कि नितान्त सदन जनसंख्या के आधार पर चुने हुए प्रतिनिधियों से गठित होता है और इस पक्ष में समर्थकों की संख्या, घनी आबादी वाले और अधिक संख्या में प्रतिनिधि चुनने वाले कैंटनों में ही अधिक है।

## शासन-विधान का संशोधन

**दो प्रकार का परिवर्तन**—किसी समय भी पूरे संविधान का या उसके किसी भाग का संशोधन हो सकता है ऐसा आयोजन स्वयं शासन विधान में कर दिया गया है। फेडरल असेम्बली का कोई सदन जब संविधान का पूरी तरह से संशोधित करने का प्रस्ताव पास कर दे और उस प्रस्ताव को दूसरा सदन स्वीकार नहीं करे तो संशोधन का यह प्रश्न प्रजा के निर्णय के लिए रखा जाता है। ऐसे लोक निर्णय के लिए उस प्रस्ताव को भी प्रस्तुत किया जाता है जो पूरे शासन विधान के संशोधन के लिए ५०,००० मतधारकों द्वारा भेजा गया हो। दोनों अवस्थाओं में यदि मत देने वालों की अधिक संख्या संशोधन के लिए मत देती है तो दोनों कौंसिलों के लिए नया निर्वाचन किया जाता है और नये सदन संशोधन कार्य को अपने हाथ में लेते हैं।

**आंशिक संशोधन**—आंशिक संशोधन दो प्रकार से हो सकता है (१) जब ५०,००० मतधारक आंशिक संशोधन का प्रस्ताव, केवल इच्छा प्रकट करके या संशोधन का पूरा मसविदा तैयार करके उपस्थित करें। इस संशोधन की मांग को जब फेडरल असेम्बली सामान्य ढंग से स्वीकार कर लेती है तो फेडरल कौंसिल उस संशोधन का मसविदा तैयार करना आरम्भ कर देती है। यदि फेडरल असेम्बली इस मांग को अस्वीकार कर देती है तो संशोधन हो या न हो, यह प्रश्न लोक निर्णय के लिए रखा जाता है। यदि ५०,००० मतधारक संशोधन का पूरा मसविदा प्रस्तुत करते हैं उस दशा में असेम्बली अपना मसविदा भी प्रस्तुत कर सकती है और दोनों मसविदे लोक निर्णय के लिए रखे जाते हैं। (२) असेम्बली के एक या दोनों सदन सब विधयकों के ढंग पर विधान के संशोधन का प्रस्ताव कर सकते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि विधानमंडल और जनता दोनों संशोधनों का प्रस्ताव रख सकते हैं।

**विधान-संशोधन के लिये लोकनिर्णय अनिवार्य**—उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में लोक निर्णय के लिए प्रस्तुत किया जाता है। बहुसंख्यक कैंटनों में जब मताधिक्य से संशोधन स्वीकार हो जाता है तो यह पास समझा जाता है। बहुसंख्यक कैंटनों की गिनती करने में पूरे कैंटन का एक मत और अर्ध-कैंटन का आधा मत गिना जाता है। पास होने के लिए सब कैंटनों के मतदाताओं

की अधिक संख्या उसके पक्ष में होनी चाहिये । अथवा यो कहा जा सकता है कि ११½ कैंटनो की जनता से उसे स्वीकृत होना चाहिए । जून १६२१ तक २६ संशोधन लोक निर्णय के लिए प्रस्तुत किये गये जिनमे से एक को छोडकर सब पास हो गये । इनमें से केवल पाँच का प्रस्ताव जनता द्वारा किया गया था । एक का प्रस्ताव ११७,४६४ मतो से किया गया था । यह प्रस्ताव जुआ-घरो के सम्बन्ध मे था और इसका पूरा मसविदा तैयार करके मतधारको ने संशोधन का प्रस्ताव किया था । असेम्बली ने अपना निजी वैकल्पिक मसविदा तैयार किया । दोनो मसविदे जनमत के लिए रखे गये । इस जनमत का परिणाम निम्नलिखित था —

| | पक्ष में मत | विरोध में मत | पक्ष में कैंटनो की संख्या | विरोध में कैंटनों की संख्या |
|---|---|---|---|---|
| उपक्रम किया हुआ मसविदा | २६६,७४० | ३२१,६६६ | १३½ | ८½ |
| असेम्बली का मसविदा | १०७,२३० | ३४४,६१४ | ½ | २१½ |

## कैंटनों की सरकारें

घटक-राज्य या कैंटनो के विस्तार में बडी विभिन्नता है । गौबुन्डन और बर्न का क्रमानुसार जहा २७४६ वर्ग मील और २६५८ वर्ग मील क्षेत्रफल है वहा जुग (Zug) का ६३ वर्गमील क्षेत्रफल है । बर्न कैंटन की जनसंख्या सब से अधिक है । इसमें ६८८,७७४ व्यक्ति रहते है । एपेन्जल इन्टिरिअर (Appenzell Interior) जो अर्ध कैंटन है उसमें सब से कम, अर्थात् १३,६८८ मनुष्य ही रहते है । सन् १२६१ से लेकर सन् १८१५ तक विभिन्न समयो पर ये कैंटन संघ में शामिल किये गये थे । संघ में शामिल होने से पूर्व अधिकतर कैंटन स्वतन्त्र और सम्पूर्ण सत्ताधारी थे । उनके निजी शासन विधान और संस्थायें थी । संघ में आने पर उन्होने निश्चित शक्तियो को ही संघ के सुपुर्द किया, शेष बातो में उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सत्ता ज्यो की त्यों सुरक्षित रखी । इसीलिये संघ का नाम कनफेडरेशन (Confderation) है न कि फेडरेशन (Federation), जो अन्य देशों में पाया जाता है ।

निम्न सारिणी में स्विस संघ के २२ कैंटनो का क्षेत्रफल जनसंख्या और लोकसभा (Lower House) में उनके प्रतिनिधियो की संख्या दी हुई है ।

| कैंटनों के नाम और संघ में आने का वर्ष | क्षेत्रफल | १९३० की जनसंख्या | नेशनल कौंसिल में प्रतिनिधियों की संख्या |
|---|---|---|---|
| ज्यूरिच (१३५१) | ६६८ | ६३८,५०५ | ३१ |
| बर्न (१३५३) | २६५८ | ७२८,६१६ | ३३ |
| लूजर्न (१३३२) | ५७६ | २०६,६०८ | ९ |
| ऊरी (१२९१) | ४१५ | २७,३०२ | १ |
| स्वीज (१२९१) | ३५१ | ६६,५५५ | ३ |
| ओबवाल्डन (१२९१) | १९० | २०,३४० | १ |
| निडवाल्डन (१२९१) | १०६ | १७,३४८ | १ |
| ग्लैरस (१३५२) | २६४ | ३४,३३१ | २ |
| जुग (१३५२) | ९३ | ३६,६४३ | २ |
| फ्रीबर्ग (१४८१) | ६१५ | १५२,०५३ | ७ |
| सोलोथर्न (१४८१) | ३०६ | १५४,९४४ | ७ |
| बेसिल-स्टेण्ट (१५०१) | १४ | १५५,६६१ | १२ |
| बेसिल लैंड (१५०१) | १६५ | ९४,४१९ | ११ |
| शैफेसान (१५०१) | ११५ | ५३,७७२ | २ |
| एपेन्जल ए (१५१३) | ९६ | ४४ ७५९ | २ |
| एपेनजल आई (१५१३) | ६७ | १३ ३८३ | १ |
| सेंट गैलेन (१८०३) | ७७७ | २८६ २०१ | १३ |
| ग्रौबुन्डन (१८१३) | २७४६ | १२८ २४७ | ६ |
| अरगाउ (१८०३) | ५४२ | २७०,४६३ | १२ |
| थुरगाउ (१८०३) | ३८८ | १३८ १२२ | ६ |
| टिसीनो (१८०३) | १०८६ | १६१ ८८२ | ७ |
| वौड (१८०३) | १२८९ | ३४३ ३९८ | १६ |
| वैलैज (१८१५) | २०२१ | १४८ ३१९ | ७ |
| नोचटैल (१८१५) | ३०९ | ११७,९०० | ५ |
| जैनीवा (१८१५) | १०९ | १७४ ८८५ | ८ |
| कुल | १५ ९४४ | ४,०६६,४०० | १६४ |

**कैंटनो में प्रत्यक्ष जनतंत्र**—जिन बातो मे शासन-विधान कैंटनो की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध नही लगाता उनमे वे सम्पूर्ण सत्ताधारी है। कुछ छोटे कैंटनो में प्रत्यक्ष जनतन्त्र है, अर्थात् सब नागरिक मिल कर विधायनी सत्ता का कार्य करते है। वे ही सब अफसरो को चुनते है। अन्य बहुत से कैंटनो में कही अपरिहार्य और कही वैकल्पिक लोक निर्णय की प्रथा प्रचलित है, फीवर्ग कैंटन मे ही किसी भी रूप में लोक निर्णय नही लिया जाता। स्विट्जरलैंड के कैन्टनो मे यह ही एक ऐसा कैंटन है जहा प्रतिनिधिक राज्य संस्थाये है।

**कैंटनो के विधान-मंडल**—प्रत्यक्ष जनतन्त्र प्रणाली वाले छ कैन्टनो को छोड कर सब में सरकार का सगठन एक ही ढंग का पाया जाता है। प्रत्येक में गृही विधानमण्डल है जो ३ या ४ वर्ष के लिये लोक निर्वाचन द्वारा सगठित किया जाता है। दस कैन्टनो मे अनुपाती प्रतिनिधित्व द्वारा व्यवस्थापक चुने जाते है। प्रति ३००-५०० निवासी १ प्रतिनिधि को चुनते है। विधानमण्डल प्राय ग्राड कौसिल ( Grand Council ) के नाम से पुकारा जाता है।

**शासन-विधान का सशोधन**—सब कैन्टनो म शासन-विधान का अनुसमर्थन और उसका सशोधन जनमत से होता है। कई कैण्टनो मे सब अधिनियम अन्तिम स्वीकृति के हेतु जनमत के प्रकाशन के लिये प्रस्तुत किये जाते है। बहुत से मुद्रा विधेयक भी इसी भाति अपरिहार्य लोक निर्णय के लिये रखे जाते है। कैंटनो के सविधान म सशोधन का प्रस्ताव जनता द्वारा व विधानमडल द्वारा किया जा सकता है।

**कैंटनो की कार्यपालिका**—प्रत्येक कैंटन म कार्यकारी सत्ता ५ या ७ सदस्यो के एक बोर्ड में विहित होती है। यह बोर्ड या कमीशन एडमिनिस्ट्रेटिव कौंसिल ( Administrative Council ), स्मौल कौसिल (Small Council) या कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) के नाम से विख्यात रहते है। जुग और टिसीनो में यह कमीशन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली पर चुना जाता है। अन्य कैंटनो मे साधारण पद्धति से निर्वाचित होता है। केवल फीवर्ग और वैलस में ही यह कार्यकारी कमीशन विधानमडल द्वारा चुना जाता है। कमीशन का एक प्रसीडेंट और एक उप प्रेसीडेट होता है, 'फेडरल कौंसिल की तरह कैंटन की कार्य पालिका बडे बड मामलो में सामुदायिक रूप से कार्य करती है"। जो सम्बन्ध फेडरल कौंसिल और फेडरल असेम्बली में है वही सम्बन्ध इन कमीशनो का कैंटनो की विधानमडलो से

होता है अर्थात् कौंसिल विधानमंडलों की अनुचर रहती है और उनके आदेशों को कार्यान्वित करती रहती है।

कैंटनों की न्यायपालिका—प्रत्येक कैंटनों का अपना निजी न्याय संगठन है किन्तु थोड़े सी बातें छोड़कर इस संगठन के सामान्य सिद्धांत व उसका रूप सब कैंटनों में एकसा है। व्यवहार-सम्बन्धी व अपराध-सम्बन्धी मामलों को दो भिन्न न्यायालय सुनकर निर्णय देते हैं।

*कैंटनों में स्थानीय शासन—स्थानीय शासन की सबसे छोटी इकाई* स्विस कम्यून (Swiss Commune) है। इनकी जनसंख्या में बड़ा भेद है। किसी में केवल ७० मनुष्य रहते हैं दूसरे में २००,००० मनुष्यों के नगर शामिल हैं। सारे देश में ३१६४ कम्यून (Commune) हैं। जहां प्राकृतिक स्थिति चाहती है उन बड़े कम्यूनों में क्वार्टर कम्यून अर्थात् उप-कम्यून भी होते हैं। *कम्यून में प्रबन्ध करने वाली एक कम्यून* कौंसिल होती है जिसमें ५ या कहीं ६ सदस्य होते हैं जिनको कम्यून के निवासी स्वयं चुनते हैं। इन कौंसिलों में एक सभापति और एक उप सभापति भी होता है।

कैंटनों मे शिक्षा—सब कैंटनों में ऐसा शिक्षा-संगठन है जो अपनी व्यावहारिकता और दृष्टि की व्यापकता के लिए विख्यात है। इनमें नागरिक *शास्त्र की शिक्षा अनिवार्य है इसीलिए यहां के निवासी अच्छे* नागरिक है। अधिकतर कैंटनों में कृषि शिक्षालय है। उनमें माध्यमिक शिक्षालय और विभिन्न व्यवसायों की शिक्षण संस्थायें हैं जो संघ सरकार के डाक, तार, टेलीफोन और चुंगी आदि कार्यों के लिये युवा स्त्री पुरुषों को शिक्षा देकर तैयार करते है। सैनिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। शिक्षा के सम्बन्धों में कैंटनों को अधिक मात्रा में स्वाधीनता मिली हुई है हालांकि संघ सरकार शिक्षा के व्यय में कैंटनों को सहायता देती है और यह आशा किया करता है कि शिक्षा का स्तर ऊंचे से ऊंचा हो।

## प्रत्यक्ष जनतन्त्र

## ( Direct Democracy )

**स्विट्जरलैंड प्रत्यक्ष जनतन्त्र का घर है—**संसार के सब देशों में स्विट्जरलैंड ही ऐसा देश है जहाँ सब से अधिक मात्रा में प्रत्यक्ष जनतंत्र प्रचलित है। 'जनतंत्र के विद्यार्थी के लिये स्विट्जरलैंड की प्रणाली में इससे अधिक शिक्षा देने वाली कोई अन्य वस्तु नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष जनतंत्र से मानव-समुदाय की आत्मा का ज्ञान प्राप्त होता है। उनके विचार व

भावनाग्रो का जितना वास्तविक ज्ञान प्रकट रूप से इससे हो सकता है उतना प्रतिनिधिक सस्थाग्रो के माध्यम से विवर्त हुये ज्ञान से नही हो सकता ।"* कई कारणो से यह प्रत्यक्ष जनतत्र यहाँ सम्भव भी है। देश पहाडी है जिसमें छोटी छोटी घाटियाँ है जो एक दूसरे से पृथक होने से निवासियो में विभिन्नता उत्पन्न करती है । कैन्टनो का विस्तार छोटा है, बडे से बडे मे भी ५ लाख से कुछ अधिक निवासी है । औसतन कैंटन का क्षेत्रफल ६४० वर्गमील से अधिक नही है । "अतएव ऐसे प्रदेश के निवासी राजकार्य के बीच मे ही सदा रहते होते है और लोक कार्य के गुण दोष को जांचने के लिए सब समय सुगमता से एकत्र हो सकते है । उनके विचारो व भावनाग्रो में एकसापन भी होता है और उन्हे अपनी शक्तियो को प्रतिनिधियो को सौपने की आवश्यकता नही रहती" ।[1] अमरीका में भी प्रत्यक्ष जनतत्र की सस्थायें है किन्तु स्विट्जरलैंड में उनकी अधिक आवश्यकता है क्योकि यहां विधानमडल बहुत कम सख्या में कानून पास करती है इसलिए जनता ही उसकी कमी को पूरा करती है ।

उपर्युक्त प्रत्यक्ष जनतत्र के दो प्रसिद्ध साधन लोक-निर्णय (Referendum) और निर्बन्ध-उपक्रम (Initiative) है । पहिला प्रतिनिधियो द्वारा सपादित कार्य के दोषो को दूर कराने में प्रयोग किया जाता है और दूसरा उनकी भूल के दोषो के निवारण करने मे काम मे लाया जाता है ।

सघ मे लोक-निर्णय—स्विट्जरलैंड में सब विधान-सशोधनो के लिये लोक निर्णय अपरिहार्य्य है । जैसा हम पहले ही कह चुके है । दूसरे अधिनियमो के लिये यह इच्छा पर छोड दिया गया है । वैकल्पिक अर्थात् इच्छा पर निर्भर लोक-निर्णय पूर्णरूप से स्विट्जरलैंड की ही कृति है । १८२०-१८३० की नीति के फलस्वरूप इसकी उत्पत्ति हुई । सन् १७८४ मे ही सघ शासन में इनको अगीकार किया गया यद्यपि कुछ कैन्टनो में उन्नीसवी शताब्दी के पहले से ही इसका प्रयोग होता आ रहा था । सार्वजनिक प्रस्तावो व अधिनियमो के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है । "व्यवहार में, सन्धियो, वार्षिक आय-व्यय (बजट), स्थानीय सुधारो के हेतु आर्थिक अनुदान और विधानमण्डल के सामने प्रस्तुत निश्चित प्रश्नो पर दिये गये निर्णय, जैसे क्षेत्राधिकार के झगडे कैन्टनो के विधानो की स्वीकृति इत्यादि

---

* मॉडर्न डेमोक्रेसीज़, पु १, पृ० ४१८

1 दी स्टेट (१९०० का सस्करण) पृ० ३०६

से सब लोक-निर्णय से लिये नहीं रखे जाते।"* तीस हजार नागरिक लिखित प्रार्थनापत्र के द्वारा लोक-निर्णय की माँग कर सकते हैं। आठ कैन्टन भी मिलकर लोक निर्णय की माँग कर सकते हैं किन्तु कैन्टनों ने ऐसी माँग कभी भी नहीं की है। अधिनियम पास होने के ६० दिन के भीतर ही यह माँग होनी चाहिये। अगस्त में फेडरल असेम्बली से पास हुए अधिनियमों में से ७ प्रतिशत लोक निर्णय से रद्द किये जा चुके हैं, जिससे स्पष्ट है कि जनता वास्तव में इसमें रुचि रखती है।

कैन्टनों में लोक-निर्णय—कैन्टनों के शासन विधानों का संशोधन लोक-निर्णय से ही पास हो सकता है। आठ कैन्टनों में सब अधिनियमों व प्रस्तावों के पास होने के लिये लोक-निर्णय से लोक सम्मति प्राप्त करना आवश्यक है। सात कैन्टनों में वैकल्पिक लोक-निर्णय प्रचलित है जिसकी माँग नागरिकों की निश्चित संख्या कर सकती है। यह संख्या भिन्न भिन्न है। तीन कैन्टनों में अपरिहार्य लोक-निर्णय का रूप वैकल्पिक निर्णय से भिन्न है। केवल एक कैन्टन में ही सामान्य अधिनियमों के लिये लोक-निर्णय की आवश्यकता बिलकुल नहीं है।

लोक-निर्णय की गुण-दोष परीक्षा—यद्यपि लोक-निर्णय की प्रथा से कुछ लाभ हुआ है किन्तु निम्नलिखित हानियाँ भी इससे हुई बताई जाती हैं।

१—पहली बात तो यह है कि योजना के विरोधी ही अधिक संख्या में मत देने जाते हैं समर्थक प्रायः प्रयत्नशील न होने के कारण घर पर ही बैठे रहते हैं। अतएव मतधारकों की बहुत थोड़ी संख्या ही इसमें भाग लेती है यह लोक निर्णय का दोष है। इसमें भाग लेने वालों की संख्या योजना के महत्व पर निर्भर रहती है। प्रायः धार्मिक योजनाओं में सब से अधिक संख्या भाग लेती है उसके बाद क्रम से रेल स्कूल आदि की योजनाओं आदि के सम्बन्ध में जो योजनायें होती हैं उनको महत्व दिया जाता है।

(२) मतदाताओं की अयोग्यता—अधिनियम विशेष कर पेचीदा योजनाओं के बारे में साधारण मतदाता ठीक निश्चय करने में अयोग्य रहता है। मतधारकों को योजना की छपी हुई प्रतियां मिलती हैं जिसमें बड़ा व्यय होता है।

(३) लोक-निर्णय की प्रथा से प्रतिनिधियों के उत्तरदायित्व की भावना

* गवर्नमेंट एण्ड पालिटिक्स आफ स्विट्जरलैंड, पृ० २४३

अधिनियम उपक्रम करने का अधिकार देने से व्यवस्था के सारतत्व रूप के स्थान पर एकात्मक रूप हो जायगा।' (२)

**कैंटनों में अधिनियम-उपक्रम**—कैंटनों में नागरिकों की निश्चित संख्या ( जो भिन्न भिन्न कैंटनों में भिन्न भिन्न है ) सारे संविधान के परिवर्तन की या कुछ संशोधनों की मांग कर सकती है। पहली अवस्था में कैंटनों के अधिकारी या तो उस मांग के अनुसार मसविदा तैयार कर लोक निर्णय के लिये प्रस्तुत करते हैं या यह प्रश्न ही लोक निर्णय के लिये रख दिया जाता है कि संशोधन हो या न हो। सामान्य अधिनियम के लिये भी बहुत से कैंटनों में साधारण नागरिक स्वयं प्रस्ताव कर सकते हैं।

**जनतंत्र के संबंध में स्विस-दृष्टिकोण**—स्विट्जरलैंड के रहने वालों का कहना है कि जब तक नागरिकों को स्वयं *अधिनियम बनाने* का अधिकार न हो, जनतंत्र अधूरा है। इस कमी को पूरा करने का साधन अधिनियम उपक्रम की प्रणाली है। प्रार्थना और उपक्रम में भेद है क्योंकि उपक्रम विधान मंडल के ऊपर अनिवार्य बन्धन स्वरूप हो जाता है। प्रार्थना (Petition) के सम्बन्ध में यह बात ठीक नहीं है। यद्यपि अधिनियम उपक्रम लोक-निर्णय की कमी पूरा करता है किन्तु ये दोनों साथ साथ ही उत्पन्न नहीं हुये हैं। पहले पहल इसका प्रयोग जनमत की उपेक्षा करने वाले अधिनियमों को रोकने में नहीं किया गया था।

**अधिनियम-उपक्रम के दोष**—अधिनियम-उपक्रम की कई श्रेष्ठ राज-

मत निश्चय करने में अयोग्य रहती है । लोक-मतदाता का परिणाम जनता की इच्छा का सच्चा व दोषरहित प्रदर्शन नही कहा जा सकता क्योंकि लोक-बुद्धि असगत बातो के चक्कर में पड भ्रमित हो जाती है या विधेयक के अनेक प्रावधानो से घबरा कर किसी एक प्रावधान से असतुष्ट होने के कारण ही सारे विधेयक को भी रद्द कर देती है चाहे सारे विधेयक के सार से वह सहमत क्यो न हो । अधिनियम उपक्रम की माँग में संशोधन भी सम्भव नही होता । इससे मतधारक पर उत्तरदायित्व का अत्यन्त भारी बोझ पड जाता है जिसे वह भली प्रकार सभाल सकने में असमर्थ होता है ।

**अधिनियम-उपक्रम के समर्थकों की विचार धारा**—उपर्युक्त दोषों के रहते हुए भी इस प्रणाली के समर्थक इससे बडी आशा रखते है । उनका विचार है कि इसके द्वारा जनता की प्रभुसत्ता (Sovereignity) की रक्षा होती है । इसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियो के प्रति अपना असतोष प्रकट करने में समर्थ होती है, यदि वे अपना कर्तव्य अच्छी तरह नही निबाहते । इससे देशभक्ति जाग्रत होती है और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि होती है क्योंकि स्वनिर्मित निर्बन्ध के अनुसार आचरण करने के लिये मतधारक का सुभाव अधिक होता है । इससे सर्वसाधारण को राजनीति की शिक्षा मिलती है, दलबन्दी का जोर कम हो जाता है, जहाँ कार्यपालिका को विधायिनी सत्ता पर नियत्रण रखने की शक्ति नही होती वहा इसके द्वारा जनता का नियन्त्रण रखा जा सकता है और अन्त में उस जनमत की शक्ति का इससे प्रकाशन होता है जो ऐसा निर्णय करने में समर्थ है जिसके विरुद्ध कहीं अपील नहीं हो सकती ।

प्रत्यक्ष जनतत्र के सचालन के सम्बन्ध में ब्रुक्स का यह कथन है कि 'इसमें सन्देह नही कि स्विट्जरलैंड में लोक निर्णय और अधिनियम-उपक्रम से राज्यसगठन तितर बितर नही हुआ है । इनसे अल्पसख्यक पक्षो का प्रभाव अवश्य बढ गया है । स्विस राज्यसगठन की यह प्रणाली एक आवश्यक अग बन गई है जिससे इसके प्रति अब विरोध होना भी बहुत समय स समाप्त हो गया है ।

## पाठ्य पुस्तकें

Brooks.—Government and Politics of Switzerland.
Bryce. Viscount—Modern Democracies Vol. I chs. XXVII—XXXII.

अधिनियम उपक्रम करने का अधिकार देने से व्यवस्था के गणतन्त्र रूप के स्थान पर एकात्मक रूप हो जायगा।"(८)

**कैंटनों में अधिनियम-उपक्रम**—कैंटनों में नागरिकों की निश्चित संख्या (जो भिन्न भिन्न कैंटनों में भिन्न भिन्न है) सारे संविधान के परिवर्तन की या कुछ संशोधनों की मांग कर सकती है। पहली अवस्था में कैंटनों के अधिकारी या तो उस मांग के अनुसार संविधान तैयार कर लोक-निर्णय के लिये प्रस्तुत करते हैं या यह प्रश्न ही लोक निर्णय के लिये रख दिया जाता है कि संशोधन हो या न हो। सामान्य अधिनियम के लिये भी बहुत से कैंटनों में साधारण नागरिक स्वयं प्रस्ताव कर सकते हैं।

**जनतंत्र के संबंध में स्विस-दृष्टिकोण**—स्विट्जरलैंड के रहने वालों का कहना है कि जब तक नागरिकों को स्वयं अधिनियम बनाने का अधिकार न हो, जनतंत्र अपूर्ण है। इस कमी को पूरा करने का साधन अधिनियम उपक्रम की प्रणाली है। प्रार्थना और उपक्रम में भेद है क्योंकि उपक्रम विधान-मंडल के ऊपर अनिवार्य बन्धन स्वरूप हो जाता है। प्रार्थना (Petition) के सम्बन्ध में यह बात ठीक नहीं है। यद्यपि अधिनियम उपक्रम लोक-निर्णय की कमी पूरा करता है किन्तु ये दोनों साथ साथ ही उत्पन्न नहीं हुये हैं। पहले पहल इसका प्रयोग जनमत की उपेक्षा करने वाले अधिनियमों को रोकने में नहीं किया गया था।

**अधिनियम-उपक्रम के दोष**—अधिनियम-उपक्रम की कई श्रेष्ठ राजनीतिज्ञों ने बुराई की है। इनमें एम ड्रोज और हरमन फाइनर का नाम उल्लेखनीय है। पहले राजनीतिज्ञ का कहना है कि जनतन्त्र की नींव पक्की करने की बजाय इस अधिनियम उपक्रम की प्रणाली से राज्य-संगठन के आधारभूत संविधान की बात मन में भय उत्पन्न हो जाता है। उनका कहना है कि इसके द्वारा सेना युग का प्रारम्भ होता है जिसमें स्वनिर्मित समितियों का उतना ही महत्व हो जाता है जितना व्यवस्थित सरकार का। अतएव देश की समृद्धि व शान्ति को इससे हमेशा भय बना रहेगा। इसका अन्तिम परिणाम यही होगा कि बनी बनाई व्यवस्था विशृंखलित होकर नष्ट हो जाएगी। इस कथन में अत्युक्ति है किन्तु यह भी ठीक नहीं कि दो या तीन ऐसी सफलीभूत मांगों में जनमत का परिचय प्राप्त हो सकता है। अधिनियम-उपक्रम के कारण व्यवस्थापकों के उत्तरदायित्व की भावना में कमी आ जाती है। साधारण जनता बहुत सी अधिनियम योजनाओं पर ठीक ठीक

○ फाइनर थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस आफ मौडर्न गवर्नमेंट के पृ० ६१८ पर दी हुई पाद टीका से

मत निश्चय करने में अयोग्य रहती है। लोक-मतदाता का परिणाम जनता की इच्छा का सच्चा व दोषरहित प्रदर्शन नहीं कहा जा सकता क्योंकि लोक-बुद्धि असगत बातो के चक्कर मे पड भ्रमित हो जाती है या विधेयक के अनेक प्रावधानो से घबरा कर किसी एक प्रावधान से असतुष्ट होने के कारण ही सारे विधेयक को भी रद्द कर देती है चाहे सारे विधेयक के सार से वह सहमत क्यो न हो। अधिनियम उपक्रम की मांग में सशोधन भी सम्भव नही होता। इससे मतधारक पर उत्तरदायित्व का अत्यन्त भारी बोझ पड जाता है जिसे वह भली प्रकार सभाल सकने में असमर्थ होता है।

अधिनियम-उपक्रम के समर्थकों की विचार धारा—उपर्युक्त दोषों के रहते हुए भी इस प्रणाली के समर्थक इससे बडी आशा रखते हैं। उनका विचार है कि इसके द्वारा जनता की प्रभुसत्ता (Sovereignty) की रक्षा होती है। इसके द्वारा जनता अपने प्रतिनिधियों के प्रति अपना असतोष प्रकट करने में समर्थ होती है, यदि वे अपना कर्तव्य अच्छी तरह नही निबाहते। इससे देशभक्ति जाग्रत होती है और उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि होती है क्योंकि स्वनिर्मित निर्बन्ध के अनुसार आचरण करने के लिये मतधारक का सुझाव अधिक होता है। इससे सर्वसाधारण को राजनीति की शिक्षा मिलती है, दलबन्दी का जोर कम हो जाता है, जहाँ कार्यपालिका को विधायिनी सत्ता पर नियन्त्रण रखने की शक्ति नही होती वहा इसके द्वारा जनता का नियन्त्रण रखा जा सकता है और अन्त में, उस जनमत की शक्ति का इससे प्रकाशन होता है जो ऐसा निर्णय करने में समर्थ है जिसके विरुद्ध कही अपील नही हो सकती।

प्रत्यक्ष जनतत्र के सचालन के सम्बन्ध में ब्रुक्स का यह कथन है कि 'इसमें सन्देह नही कि स्विट्जरलैंड मे लोक निर्णय और अधिनियम-उपक्रम से राज्यसगठन तितर वितर नही हुआ है। इनसे अल्पसख्यक पक्षो का प्रभाव अवश्य बढ गया है। स्विस राज्यसगठन की यह प्रणाली एक आवश्यक अग बन गई है जिससे इसके प्रति अब विरोध होना भी बहुत समय से समाप्त हो गया है।

## पाठ्य पुस्तकें

Brooks.—Government and Politics of Switzerland.
Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol. I chs. XXVII—XXXII.

Finer, Herman—Theory & Practice of Modern Government, Vol II, ch XXI.

Lowell, A. L.—Governments & Parties in Continental Europe, Vol. II ch. XI.

Munro, M. W.—Governments of Europe, chs. on Switzerland.

Ogg, F. A.—The Governments of Europe chs. XXI—XXIII.

Sharma, B. M.—Federal Polity ch. II C (1) chs III, IV and Appendix B.

Wilson, Woodrow.—The State (Edition 1200) PP. 031—728.

Select Constitutions of the World pp. 425—458

Statesman Year Book (Latest issue).

Vincent, J. M—Government in Switzerland.

# अध्याय १६

## सोवियट रूस की सरकार

"पूंजीवादी देशों में जहाँ विरोधी वर्ग हों प्रजातन्त्र का अर्थ यही होता है कि वहाँ अल्पसंख्यक पूंजी वर्ग का तन्त्र या शक्तिवान का तंत्र है। इसके विपरीत सोवियट रूस में प्रजातंत्र का अर्थ श्रमिकों का तंत्र अथवा सब लोगों का तंत्र है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रजातंत्र की नींव पर आघात करने वाला रूस का नया संविधान नहीं है किन्तु दूसरे पूंजीवादी शासन विधान हैं। इसीलिये मैं समझता हूँ कि सोवियट रूस का शासन-विधान पूर्ण रूप से जनतंत्रात्मक संविधान है" (जोसेफ स्टैलिन

समाजवादी सोवियट प्रजातंत्रों के संघ (Union of the Socialist Soviet Republics) का क्षेत्रफल ८,०६५,७२४ वर्गमील है और जनसंख्या १६१,८८८,४४५ है[1]। यहां पिछले ३० वर्षों में एक नवीन राजशासन प्रणाली का बृहत्-प्रयोग किया जा रहा है जिसके प्रशंसकों और आलोचकों ने विभिन्न रूपों में इसकी व्याख्या की है। कुछ लोगों ने सोवियट रूस के शासन-विधान को वास्तविक रूप में प्रजातंत्रात्मक कह कर प्रशंसा की है, दूसरे लोगों ने लाखों मूक-व्यक्तियों पर अत्याचार करने वाला कठोर शासन कह कर इसकी प्रतारणा की है।

### शासन-विधान का इतिहास

रूस की भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि वह, संस्कृति, हितों और संस्थाओं की दृष्टि से अर्ध-यूरोपियन और अर्ध-एशियाई समझा जाता है। सन् १९१४–१८ के महायुद्ध के पूर्व रूस संसार के सबसे कठोर शासित देशों में गिना जाता था। ज़ार राज्य का ऐकाधिकारी स्वामी माना जाता था, उसकी शक्ति असीमित और उसका वचन ही कानून था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ज़ार अलेक्जेंडर प्रथम (Zar Alexandar I) ने शासन-

[1] यह आंकड़े जनवरी सन १९३९ के पहिले के हैं

प्रणाली में कुछ सुधार करने का प्रयत्न किया किंतु इस कार्य में सन् १८१२ में किये हुये नैपोलियन के आक्रमण ने बाधा डाल दी। उसका उत्तराधिकारी जार अलैक्जेंडर द्वितीय उदार विचारों का व्यक्ति था। अपने पड़ोसी राज्य आस्ट्रिया के उदाहरण से (जहां सन् १७८१ में कृषि-श्रमजीवियों की स्थिति में सुधार हो चुका था) प्रेरित होकर उसने यह इच्छा प्रकट की कि सामन्त लोगों को इन कृषि श्रमजीवियों को स्वतन्त्र करने का काम अपने हाथ में लेना चाहिये। तीन मार्च सन् १८६१ में एक राजाज्ञा से वैयक्तिक भूसम्पत्तियों के श्रमजीवी दासों को स्वतन्त्र कर दिया गया। उनके साथ साथ गृह कार्य करने वाले दासों को स्वतन्त्रता दे दी गई। कृषकों को भूमि उनकी सम्पत्ति बना दी गई और उनसे अपने जमींदारों को एक उचित नियत लगान देने के लिये कह दिया गया। तीन वर्ष बाद उसने पोलैंड (Poland) के दासों को भी स्वतन्त्र कर दिया। "न्याय, प्रकाश और स्वतन्त्रता" यही उसका निर्देशक सिद्धांत था, तब भी शून्यवादी रूसी क्रांतिकारियों (Nihilits) ने उसका विरोध किया। इन लोगों ने गुप्त संस्थायें खोलना आरम्भ किया, हिंसा का प्रचार किया और अंत में जार पर बम फेंका (१३ मार्च सन् १८८१) जिसमें उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े हो गये।

**ड्यूमा को बुलाने का प्रथम प्रयत्न**—इस घटना के बाद सन् १९०५ के रूसी-जापानी युद्ध तक शासन को जनतन्त्रात्मक बनाने का कोई दूसरा प्रयत्न नहीं किया गया। इस युद्ध में रूस की पराजय हुई और उससे जार के ऐश्वर्य का भवन खण्डहर हो गया। उसकी उच्चता की चमक-दमक फीकी पड़ गई और उसके पैतृक अधिकार में अविश्वास होने लगा। जार ने एक लोक निर्वाचित असेम्बली (जिसे ड्यूमा कहा गया) का संगठन कर लोकमत जानने का प्रयत्न किया। इसी समय जनता ने विद्रोह खड़ा कर दिया। मताधिकार को बढ़ाकर जनता को प्रसन्न करने के सब प्रयत्न विफल हुये और उसे बाध्य होकर एक मैनीफैस्टो (अर्थात् घोषणापत्र) निकालना पड़ा जिससे "व्यक्ति के शरीर की, आत्मा की, वाणी की, समुदाय व मुक्तव्यवहार की वास्तविक अलध्यता के आधार' पर जनता को नागरिक स्वतन्त्रता प्रदान करनी पड़ी। यह अपरिवर्तनशील नियम भी स्थिर करना पड़ा कि ड्यूमा (Duma) की सम्मति के बिना कोई कानून लागू न होगा, और जनता के प्रतिनिधियों को यह अधिकार दिया गया कि राज्याधिकारियों के कार्यों को वैध अवैध ठहरा सकें। सन् १९०६ में जो प्रथम ड्यूमा एकत्रित हुई उसमें प्रत्यक्ष प्रौढ़ मताधिकार, पार्लियामेंटरी (संसदात्मक) शासन प्रणाली, जमींदारी

उन्मूलन आदि की माँग की गई। इस ड्यूमा का जुलाई में विघटन हो गया। द्वितीय ड्यूमा मार्च १६०७ मे एकत्रित हुई और वह भी विफल-कार्य सिद्ध हुई।

जार की सत्ता मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ—मई सन् १६०६ के मौलिक-अधिनियमो के चौथे अनुच्छेद से यह घोषणा कर दी गई थी कि "रूस के सम्राट की शक्ति सर्वोच्च निरकुश शक्ति है। उसके प्रभुत्व को शिरोधार्य करना चाहिये, केवल भय से ही नही किन्तु आत्मा की रक्षा के लिये भी, यही परमेश्वर की आज्ञा है"। ऐसे वातावरण में सन् १६०७ के नवम्बर मास में बुलाई गई ड्यूमा भी कोई कार्य न कर सकी। जार की इच्छा से ही अन्तिमत सब व्यवस्था होती थी। यदि ड्यूमा सरकार के आर्थिक प्रस्तावो को अस्वीकार कर देती थी तो जार के मत्री पूर्व वर्ष के बजट के अनुसार शासन चलाते रहते थे। कार्यपालिका पूर्णतया जार को उत्तरदायी थी न कि ड्यूमा (Duma) को।

इसलिये प्रथम महायुद्ध के समय रूस की जनता उस युद्ध से उत्पन्न कष्टो से घबरा कर विद्रोह कर उठी और निकोलस को राजत्याग करने पर बाध्य कर दिया (मार्च १२ सन् १६१७)।

सन् १६१७ की क्रांति—प्रथम महायुद्ध मे रूस योरप की केन्द्रीय शासन सत्ताओ के विरुद्ध मित्र-राष्ट्रो का साथी था। किन्तु वह अपने यहा के निरकुश शासन के कारण अधिक समय तक युद्ध न कर सका। शासन को प्रजातन्त्रात्मक बनाने की मागो को जार लगातार कुचलता रहा जिससे प्रगतिशील व्यक्तियो ने उसके विरुद्ध विद्रोह खडा कर दिया। जार ने समझदारी से काम न लेकर अनुचित आज्ञायें दी कि ड्यूमा के सदस्य घर वापिस चले जाएं, पिट्रोग्राड के श्रमिको को हडताल बन्द करने की आज्ञा दी और काम आरम्भ करने को कहा, जिससे विद्रोह सजीव हो उठा। इस विद्रोह के दूरवर्ती कारणो में, रूस के किसानो की भूख से मृतप्राय अवस्था, योरप में प्रजातन्त्र का जार रूसी जापानी युद्ध मे उत्पन्न कष्ट और रूसी युवको की अधीरता, ये सब कारण थे। ड्यूमा ने राजाज्ञा का विरोध किया। एक सप्ताह के भीतर जार ने राजसिंहासन छोड दिया और उसको कुटुम्ब सहित बन्दी बना दिया गया। ड्यूमा ने जो अस्थाई सरकार स्थापित की उसने आज्ञा देकर समाचार-पत्रो पर लगाये हुये बन्धनो को हटा दिया, राजनैतिक व धार्मिक बन्दियो को छोड दिया, श्रमिको के सगठन बनाने और हडताल करने के अधिकार को मान्य कर दिया और स्थल व जल सेना के अनुशासन को अधिक मानुषिक रूप दिया। यह सरकार थोडे ही समय तक कायम रह सकी

पर्याप्त पीट्रोग्रेड की सोवियट ने स्थल सेना व जलपोतों में बैठे कों यह आदेश दे दिया कि इस अस्थायी सरकार की उन आज्ञाओं का पालन न किया जाय जो सोवियट के आदेशों के विरुद्ध हों। इसका परिणाम यह हुआ कि सैनिकों ने व नाविकों ने स्थानीय क्रान्तिकारी समितियां स्थापित कीं। इस समय भी कुछ व्यक्ति पूर्व शासकों के पक्ष में थे और दूसरे लोगों ने युद्ध करने से बिल्कुल मना कर दिया।

सन् १९१७ के अक्टूबर मास में बोलशेविकों ने अपने पक्ष की बैठक में बलपूर्वक राज्यशक्ति को अपने हाथ में करने का निर्णय किया। नवम्बर मास की ६ तारीख को उन्होंने पीट्रोग्रेड नगर पर बलपूर्वक अधिकार कर लिया और सरकार के मंत्रियों को बन्दी कर लिया। सोवियटों की अखिल रूसी कांग्रेस ने ७ नवम्बर को एक कार्यपालिका समिति बनाई और एक प्रशासन बोर्ड स्थापित किया जिसके लैनिन सभापति, ट्रौटस्की परराष्ट्र मंत्री और स्टैलिन विभिन्न जातियों का मंत्री (Commissar of Nationalities) बनाये गये। सन् १९१७ के नवम्बर मास की क्रांति की प्रमुख प्रेरक शक्ति लेनिन और उसके अत्यन्त योग्य सहकारी ट्रौटस्की की थी। मंत्रिमण्डल ने एक कार्यक्रम तैयार किया जिसमें निम्नलिखित बातें थीं

(i) केन्द्रीय सत्ताओं (Central Powers) से तुरन्त संधि करना।

(ii) स्थानीय विद्रोह का दमन करना और पृथक्करण की भावनाओं को मिटाना।

(iii) पूर्ण कम्यूनिस्ट सरकार की स्थापना के लिए श्रमिकों की अधिनायक सत्ता स्थापित करना और इस अधिनायक सत्ता की स्थापना के लिए सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक संगठन को पूरी तरह से बदल देना और

(iv) सारे संसार में श्रमजीवियों के विद्रोह को फैलाना।

सोवियटों की कांग्रेस ने जिसका संचालन बोलशेविक समाजवादी पक्ष करता था जल्दी २ अपने कई अधिवेशन किये। सन् १९१८ की १० मार्च को जो पांचवां अधिवेशन हुआ उसमें रूस के समाजवादी संघात्मक सोवियट गणराज्य (Russian Socialist Federal Soviet Republic) के लिए एक शासन विधान तैयार किया। इस गणराज्य या प्रजातन्त्र में जार के नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य के उत्तरी व सुदूरपूर्वी अधिकतर भाग शामिल थे। सन् १९१८ से १९२३ तक इस संविधान में कई महत्वपूर्ण संशोधन किये गये। विशेषकर ये संशोधन नये प्रदेशों को संघ में शामिल करने के बारे में थे।

सन् १९२३ से इस संघ का नाम समाजवादी सोवियट प्रजातन्त्रों का संघ (U. S. S. R. or Union of Socialist Soviet Republics) रखा गया।

यह विधान बहुत ही अद्वितीय था और इसमें संसार के अन्य शासन-विधानों से बिल्कुल भिन्न शासन-प्रणाली अपनाई गई थी। इसकी उत्पत्ति सन् १९१७ की जनक्रांति से हुई थी इसलिए यह जार की अत्याचारी सत्ता की प्रतिक्रिया-स्वरूप निर्मित हुआ था। इसके द्वारा प्रसिद्ध दार्शनिक कार्ल मार्क्स के समाजवादी सिद्धांत को व्यावहारिक रूप दिया गया जिसके अनुसार प्रत्येक समस्या राजनैतिक समस्या है और प्रत्येक श्रमिक राज्य का नौकर है। इसका उद्देश्य पूंजीवाद को पूर्णतया कुचल देना था इसलिए इस शासन विधान में रूस को 'सोवियट श्रमिकों, सैनिकों और कृषकों के प्रतिनिधियों का प्रजातन्त्र" कहकर पुकारा गया था। वाह्यरूप में यह संगठन अत्यन्त दृढ संघ (Close Federation) के रूप में था अर्थात् संघ शक्ति या केन्द्रीय शक्ति को विस्तृत अधिकार दिए गये और जनता के राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले प्रमुख मामलों को संघ सरकार के हाथ में कर दिया था। संघ के सात घटक प्रजातन्त्र राज्यों को स्थानीय व सांस्कृतिक स्वाधीनता मिली हुई थी। इसका अन्तिम उद्देश्य सारे संसार का एक सोवियट संघ बनाना था इसलिए इस संघ को एक राष्ट्रीय इकाई न कहा जाता था। इसको समान समाजवादी सिद्धांतों पर स्थित समान समाजवादी संस्थाओं वाला संघ समझा जाता था। कम से कम कागज पर इसमें घटक राज्यों को संघ से पृथक होने का अधिकार दिया गया था जो संघ के सर्वमान्य सिद्धांतों के बिल्कुल प्रतिकूल बात थी।

**श्रमिकों का शासन**—संविधान ने श्रमिकों के शासन की स्थापना की थी इसलिए मताधिकार सबके लिए समान था चाहे वे स्त्री हों या पुरुष। जो लोग लाभकारी उद्योगों में मजदूरों से मजदूरी देकर काम कराते थे, या अन-उपार्जित आय से जीविका चलाते थे, पादरी, सन्यासी, मूढ व्यक्ति और जार के पूर्व कर्मचारी, ये लोग मताधिकार से वंचित कर दिये गये थे। संविधान की एक नवीनता यह थी कि इसमें जिले की सोवियट, सरकार की सोवियट और केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति, इन सबको अप्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली द्वारा संगठित करने की योजना थी। प्रत्यक्ष-निर्वाचन द्वारा गाँव या फैक्टरी की सोवियट (परिषद्) ही बनाई जाती थी जिसका अधिकार क्षेत्र बहुत सीमित

था। "इस प्रकार का संगठन किसी राजनैतिक पक्ष के लिए तो नई वस्तु न थी किन्तु राज्य-संगठन में इसका होना एक अद्वितीय बात थी।"*

**स्थानीय व प्रांतीय-सरकार**—रूस में शासन का रूप पिरैमिड जैसा था जिसके आधार में फैक्टरी और ग्राम सोवियटों की बड़ी संख्या थी और चोटी पर केन्द्रीय कार्यपालिका समिति (Central Executive Committee) और प्रेसीडियम (Presidium) थी। अपनी सीमा के भीतर ग्राम सोवियट को संविधान ने शासन सत्ता का सर्वोच्च अङ्ग माना था।

सोवियट राजनैतिक सिद्धान्तों के अनुसार मताधिकार वास्तव में कोई अधिकार नहीं है केवल एक सामाजिक कर्तव्य है और इससे मजदूरों के अधिकारों की रक्षा होती है। रूस में रहने वाले विदेशी मजदूरों को भी मताधिकार मिला हुआ था। सन् १९३१ में १६०,००६,००० लोगों में से ८४,०००,००० लोगों को मताधिकार मिला हुआ था। सूचीबद्ध मतधारकों में से ७१-८ प्रति सैकड़ा ने मतदान किया था। सोवियट शासन में मतदान करना मजदूरों की राजनैतिक शिक्षा का साधन समझा जाता था। और मतधारकों को बराबर इस कर्तव्य में चूक न करने का आदेश दिया जाता था।

**निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का आधार**—शासन की जिस इकाई का निर्वाचन होना होता था उसकी कार्यपालिका द्वारा नियुक्त कमीशन निर्वाचन की सब बातें, जैसे निर्वाचन-स्थान, समय, ढंग आदि निश्चय करता था। निर्वाचन क्षेत्र प्रादेशिक न थे किन्तु व्यवसायिक थे, प्रत्येक फैक्टरी या सामूहिक कृषि फार्म स्वयं एक निर्वाचन-क्षेत्र होता था। गुप्त शलाका की प्रथा न थी, मतधारक निर्वाचन पदाधिकारी के सम्मुख उपस्थित होकर अपना मत बता देता था। ग्राम व फैक्टरी सोवियटों में हाथ उठा कर मत लिये जाते थे। जो उम्मेदवार मतों की अधिक सख्या पाते थे। वे निर्वाचित हो जाते थे। नगरों, यद्यपि सोवियट शासन विधान श्रमिकों की अधिसत्ता पर आधारित था किन्तु कारखाना और गाँव के रहने वालों के नागरिक अधिकारों में बहुत विभिन्नता थी (यदि वोट इस नागरिकता के मूल्य का माप हो)। नगरों में या कारखानों में काम करने वाले२५००० व्यक्तियों को एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था किन्तु गाव में कृषि करने वाले १२५००० व्यक्ति एक प्रतिनिधि चुन सकते। इस भेद का कारण यह बतलाया जाता था कि पूंजीवाद से समष्टिवाद के परिवर्तन काल में राजनीति में शिक्षित व वर्ग भेद को समझने

* कौल-स गाइड टु माडर्न पौलिटिक्स पृ० २३

वाले मजदूरों के हाथ में नेतृत्व होना चाहिये। यह कहा जाता था कि जब कृषक लोग भी जाग्रत हो जायेंगे तब यह भेद मिटा दिया जायेगा।

**ग्राम्य और फैक्टरी सोवियट**—शासन की प्राथमिक इकाई ग्राम या फैक्टरी थी और प्रत्येक की अपनी निजी सोवियट (परिषद् समिति) होती थी जिसको सब स्थानीय मामलों के प्रबन्ध का काम सौंपा गया था। तीन सौ निवासियों वाले ग्राम या तो अपना शासन स्वयं करते थे या दूसरे गाँवों के साथ मिलकर संयुक्त शासन-प्रबन्ध करते थे। इसी प्रकार छोटे कारखाने जिनमें १०० से कम मजदूर काम करते थे वे दूसरों से मिलकर अपनी एक सोवियट स्थापित कर लेते थे। फैक्टरी समिति काम करने वालों के सामाजिक जीवन, पाठशाला, क्लब, निवास-स्थान (यदि इसका आयोजन कारखाने के पास ही होता था) और काम करने वालों की शिक्षा की देख भाल करती थी।*

**डिस्ट्रिक्ट सोवियट**—ग्राम व फैक्टरी सोवियट से ऊपर जिले की सोवियट होती थी जिसमें जिले की ग्राम व फैक्टरी सोवियटों के प्रतिनिधि होते थे। इन प्रतिनिधियों को ग्राम के किसान या फैक्टरी के काम करने वाले न चुनते थे किन्तु ग्राम व फैक्टरी सोवियट चुना करती थी। यहीं से अप्रत्यक्ष निर्वाचन (Indirect Election) जो रूस की शासन प्रणाली की विशेषता है आरम्भ होता था। डिस्ट्रिक्ट सोवियट जिले के भीतर स्थानीय हित की बातों का प्रबन्ध करती थी और साथ साथ ऊपर से मिले आदेशों का भी पालन करती थी।

**प्रादेशिक सोवियट (Regional Soviet)**—अगली ऊँची प्रशासन-इकाई प्रादेशिक सोवियट थी जिसके आधीन अनेक डिस्ट्रिक्ट सोवियट होती थी। प्रादेशिक सोवियट जिसको कांग्रेस भी कहते थे, में प्रतिनिधियों को कुछ संख्या में डिस्ट्रिक्ट सोवियट चुनती थी और कुछ प्रतिनिधि फैक्टरी सोवियटों द्वारा चुने जाते थे जिससे ग्राम सोवियटों की अपेक्षा फैक्टरी सोवियटों का अधिक महत्व था क्योंकि ग्राम सोवियटें प्रादेशिक कांग्रेस में प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रतिनिधि चुन कर न भेजती थी। इन प्रादेशिक कांग्रेसों के कर्तव्य जिले की सोवियटों की अपेक्षा उच्च श्रेणी के होते थे। रूसी संघ के सात प्रजातन्त्र इकाई-राज्यों में से प्रत्येक में कई प्रदेश (regions) होते थे जो स्थानीय शासन की इकाई होते थे। प्रत्येक प्रादेशिक कांग्रेस उपराज्य की कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि चुन कर भेजती

* ए गाइड टु माडर्न पौलिटिक्स, पृ० २२६

थी। इसलिये प्रादेशिक कांग्रेस के ऊपर उपराज्य की कांग्रेस होती थी।

**स्वाधीन उपराज्य**—रूसी सोवियट संघ में स्वयं अपना शासन करने वाले सात उपराज्य थे। इनमें से बहुत से उपराज्य स्वयं छोटे स्वतन्त्र गण-राज्यों के संघ थे जिनका सोवियट ढंग पर शासन प्रबन्ध होता था। उपराज्यों को शिक्षा, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाचार-पत्रों आदि में पूर्ण स्वतन्त्रता थी। प्रत्येक इकाई राज्य की अपनी कांग्रेस थी जिसमें प्रादेशिक (Regional) कांग्रेसों के प्रतिनिधि सदस्य होते थे। सदस्यों की संख्या बहुत होती थी। इसकी साल में दो बैठकें होती थी। यह अपने सदस्यों में से कुछ व्यक्तियों को चुन कर केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति बनाती थी जिसको सामान्यतया कुछ अधिनियम सम्बन्धी व प्रशासन सम्बन्धी अधिकार मिले होते थे। इस समिति में भी सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती थी। इसकी माह में तीन बैठकें होती थीं यह अपनी एक छोटी समिति चुनती थी जो इसकी ओर से कार्य करती थी जब केन्द्रीय समिति की बैठकें न होती थी। इस छोटी समिति को प्रेसीडियम (Presidium) कहा जाता था। प्रेसीडियम के अतिरिक्त एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् (Council of Peoples Commissaries) भी संगठित की जाती थी जिसमें उपराज्य के शासन-विभागाध्यक्ष (Heads of Departments) होते थे। यह परिषद् मन्त्रिपरिषद् के समान थी किन्तु इसे प्रेसीडियम के आदेशों को कार्यान्वित करना पड़ता था।

सातों उपराज्यों में एक सा ही प्रशासन होता था क्योंकि इनकी कांग्रेसों में अधिकतर सदस्य कम्यूनिस्ट पक्ष के ही लोग होते थे जिनकी नीति सारे पक्ष के लिये निश्चित की हुई नीति होती थी। हर एक उपराज्य में रूस के सर्वोच्च न्यायालय की एक शाखा होती थी जिसके नीचे अन्य छोटे न्यायालय थे। इन सब से मिलकर उपराज्य की न्यायपालिका थी।

**रूस की केन्द्रीय सरकार**—सोवियट सरकार संगठन के पिरैमिड की चोटी पर सोवियट रूस की संघ या केन्द्रीय सरकार थी। केन्द्रीय प्रशासन की सब से बड़ी संस्था सोशलिस्ट उपराज्यों के संघ की सोवियट-कांग्रेस थी। इसमें नगर या फैक्टरी सोवियटों से चुने हुये प्रतिनिधि सदस्य थे जो २५००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि के हिसाब से चुने जाते थे। इनके अतिरिक्त प्रादेशिक सोवियटें (Regional Soviets) भी प्रति १ २५ ००० मतधारकों के लिये एक प्रतिनिधि चुनकर इस कांग्रेस में भेजती थी। यह कांग्रेस रूसी संघ में सर्वोच्च सत्ताधारी संस्था थी। इसमें लगभग ४००० सदस्य बैठते थे।

इसकी बैठक साल मे एक बार हुआ करती थी। यह संघ की कौंसिल के सदस्यों का निर्वाचन कर उसका संगठन करती जिससे यह कौंसिल विधानमंडल का कार्य करती थी। इस कौंसिल में ४७२ सदस्य सातों उपराज्यों से अनुपाती प्रतिनिधित्व के अधार पर चुने हुये होते थे। कांग्रेस एक कौंसिल आफ नेशनलिटीज (Council of Nationalities) या उपराष्ट्र परिषद् भी चुन कर सगठित करती थी। इस कौंसिल के सदस्यों की संख्या १३८ थी जो इस हिसाब से निर्वाचित होते थे कि प्रत्येक स्वतंत्र उपराज्य के लिये ५ सदस्य और प्रत्येक स्वाधीन प्रदेश (Region) के लिये १ सदस्य हो। ये दोनो कौंसिलें मिलकर सघ की सैन्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी (Central Executive Committee) अर्थात् केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति कहलाती थी। जब कांग्रेस की बैठक नही होती थी तब सोवियट रूस की यह ही सर्वाधिकारी निर्बन्धकारी, कार्यकारी और न्यायकारी सत्ताधारी सस्था थी। इसकी बैठकें तीन मास मे एक बार होती थी। बैठक न होने के समय प्रैसीडियम (Presidium) इसके कार्यो का सचालन करती थी। प्रैसीडियम मे २१ सदस्य थे। जिन शक्तियो को केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति प्रयोग कर सकती थी वे सब प्रैसीडियम को भी मिली हुई थी। केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् का सगठन भी करती थी जिसमें शासन विभागो के १७ अध्यक्ष होते थे। यह लोक-प्रबन्धक-परिषद् (Council of People's Commissaries) ब्रिटिश मन्त्रिपरिषद् जैसी सस्था थी। इसमें जो शासनाध्यक्ष होते थे उनको दो सहायक और मिले होते थे। परराष्ट्र विभाग, युद्ध, ग्रह, विदेशी व्यापार, कृषि, स्थल-यातायात, जल-यातायात डाक व तार, मजदूरों व कृषकों का निरीक्षण, काष्ठ-उद्योग, सरकारी फार्म, अर्थ-विभाग इन सब के अध्यक्ष इस परिषद् में सदस्य होते थे। राजकीय योजना कमीशन (State Planning Commission) का प्रेसीडेंट भी इसका सदस्य था। परिषद् में एक प्रेसीडेंट और एक उप-प्रेसीडेंट था। स्टैलिन इसी परिषद् का सदस्य था।

अतएव अप्रत्यक्ष चुनाव के टेढे-मेढे ढंग से चुनी हुई प्रैसीडियम व प्रबन्धक परिषद् (People's Commissaries) ये दो सस्थायें थी जो रूस के प्रशासन का सचालन करती थी। सघ सरकार के कर्तव्यो में विदेशी व्यापार, परराष्ट्र सम्बन्ध, सुरक्षा, राष्ट्रीय आर्थिक नीति का निश्चय करना, घरेलू व्यापार, कर लगाना, मजदूरी और उनके सम्बन्ध में कानून और सरकार की सामान्य देखभाल ये सब शामिल थे[1]।

[1] ए गाइड टु माडर्न पौलिटिक्स, पृ० २२८

## सोवियट न्यायमण्डल

सोवियट संघ के सातों उपराज्यों में न्यायमण्डल की स्थापना थी। इसके संगठन का उद्देश्य इसको सरल बुद्धि-गम्य और ऐसा बनाना था जिससे सब उस तक पहुँच कर उसका उपयोग कर सकें। हर उपराज्य (Republic) में उपराज्य की कांग्रेस के द्वारा किये हुये कुछ परिवर्तनों के साथ एक सा ही न्यायसंगठन था। इस संगठन में एक सर्वोच्च न्यायालय और अनेक प्रादेशिक (Regional Courts) और लोक-न्यायालय (Peoples' Court) होते थे।

छोटे न्यायालय—न्यायमण्डल की सब से प्राथमिक इकाई लोक-न्यायालय (Peoples' Courts) थी इसमें एक न्यायाधीश और उसके दो सहायक होते थे। इन सब को समान अधिकार मिले हुये थे। सहायक न्यायाधीश का चुनाव ग्राम और फैक्टरी सोवियट द्वारा चुने हुये व्यक्तियों की सूची में से प्रदेश (Region) की कार्यपालिका समिति करती थी। वह किसी वर्ष में लगातार छ दिन से अधिक न कार्य करता था। न्यायाधीश की नियुक्ति प्रादेशिक कार्यपालिका समिति एक वर्ष के लिये करती थी।

प्रादेशिक न्यायालय—हर प्रादेशिक न्यायालय में प्रादेशिक कार्यकारिणी समिति से नियुक्त कई न्यायाधीश होते थे। यह प्रादेशिक न्यायालय लोक-न्यायालयों के काम की देखभाल करता था और उन निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनता था। बड़े मुकदमों में इसे प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त था।

सर्वोच्च न्यायालय—प्रादेशिक न्यायालय के ऊपर उपराज्य का सर्वोच्च न्यायालय था जिसके न्यायाधीश उपराज्य (Republic) की कार्यपालिका समिति द्वारा नियुक्त होते थे। उपराज्य में (Republic) सर्वोच्च न्यायालय ही उपराज्य का अंतिम न्यायालय था। यह उन मुकदमों को सुन कर निबटाता था जो प्रादेशिक न्यायालय इसके पास भेजते थे। जिन मुकदमों को उपराज्य की कार्यपालिका समिति या उपराज्य का अभियोक्ता (Prosecutor) विशेष महत्वपूर्ण होने के कारण इस न्यायालय में भेजता था उनमें इस न्यायालय को प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार था। (Republican) सरकार के सदस्यों के अपराधों वाले मुकदमे भी इसी सर्वोच्च न्यायालय में प्रारम्भ होते थे।

सोवियट कानून में केवल सामान्य आदेश होते हैं जिनके अनुसार न्याय का निर्णय करना पड़ता है। कानून के प्रत्येक शब्द का पालन नहीं

करना पडता । सोवियट सरकार के विरुद्ध किये गये अपराधो का दण्ड बडा कठिन दिया जाता था । काम से बचने या आर्थिक कानूनो को तोडने के साधारण अपराधो के लिये दस का दण्ड दिया जाता था । ऐसे अपराधो के लिये एक से दस वर्ष तक के कारावास का दण्ड दिया जाता था । राज-विद्रोह के लिये मृत्यु सब से ऊंचा दण्ड था । 'सोवियट न्याय प्रणाली का उद्देश्य अपराधी को सुधारना और अपराध करने से रोकना है न कि निरुद्देश्य सताना ।"

संघ का सर्वोच्च न्यायालय—केन्द्रीय कार्यपालिका समिति से लगा हुआ केन्द्रीय सर्वोच्च न्यायालय था । यह अन्य सघ-शासनो के समान स्वतत्र न्यायालय न होता था । इसमें एक सभापति, एक उपसभापति और ३० न्यायाधीश होते थे जो सब प्रेसीडियम द्वारा नियुक्त होते थे । यह न्यायालय तीन विभागो मे विभक्त था । दीवानी विभाग (Civil), अपराध-विभाग (Criminal) और सेना विभाग (Military) सघ-सरकार के सदस्यो के अपराधो की यह न्यायालय परीक्षा करता था । घटक उपराज्यो के बीच झगडो की परीक्षा कर सघ की कार्यपालिका समिति से उनके विरुद्ध यह प्रार्थना कर सकता था कि वे उपराज्य सघ के सामान्य-निर्बन्धो के विरुद्ध आचरण करते है या दूसरे उपराज्य को हानि पहुँचाते है । सघ और उपराज्यो की सरकारो के आदेशो के वैध अवैध होने के सम्बन्ध में पूछे जाने पर यह न्यायालय केन्द्रीय कार्यपालिका समिति को अपनी राय भी देता था । इन न्यायालयो के अतिरिक्त विशेष प्रश्ना के लिये अन्य न्यायालय भी सोवियट सघ मे बने हुए थे ।

## सोवियट शासन विधान का पुनर्निर्माण

मार्क्स के सिद्धातो के इस व्यावहारिक प्रयोग से यह मालूम हो गया कि इस समाजवाद की आदर्श-विचारधारा को व्यावहारिकता में लाना बडा कठिन है । अतएव शासन विधान मे कई सशोधन किये गये जिनमें से मुख्य ये है.

सुदूर पूर्वीय प्रदेशो को जो बडे निर्धन थे कर से मुक्त कर दिया गया । (१९३३)

मजदूरी उत्पादन के परिमाण व गुण, दोनो के आधार पर निश्चित की जाने लगी । (१९३४)

बालको को नागरिक शिक्षा व उनके राजनीतिक शिक्षण के सम्बन्ध में जो नियम थे उनमें सशोधन कर दिया गया । (१९३४)

राशन प्रणाली तोड़ दी गई (१९३४)

सामूहिक कृषि का कानून बदल दिया गया और वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार विस्तृत कर दिया गया। (१९३४)

शिक्षा प्रणाली का पुनर्संगठन करके और विद्यालयों में अनुशासन की मात्रा बढ़ाने के लिये कानून बनाये गये।

एक नये शासन-विधान के निर्माण का प्रयत्न—उपर्युक्त परिवर्तनों से जिस प्रवृत्ति का परिचय मिलता है उसकी प्रेरणा से सन् १९३५ में एक समिति बनाई गई जिसका स्टैलिन सभापति था। अन्य प्रमुख सदस्यों में सिदूधीनोव, रैडक, वाइशिन्स्की, सोकोलनिकोव, मोलोटोव, बुखारिन, वरोशीलोव आदि थे। इस समिति को शासन विधान बनाने का काम सौंपा गया। एक वर्ष के परिश्रम के पश्चात् एक मसविदा तैयार हुआ जो केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति से स्वीकार होकर जनमत के जानने के लिये १२ जून सन् १९३६ को प्रकाशित किया गया। अखिल सोवियट कांग्रेस ने फिर इस पर विचार किया और ५ दिसम्बर सन् १९३६ को इसे पास किया। यह शासन-विधान सन् १९३७ में लागू किया गया।

कांग्रेस के विचारार्थ इस संविधान के मसविदे को उपस्थित करते हुये स्टैलिन ने कहा कि इसकी उत्पत्ति पूंजी पद्धति की समाप्ति और सोवियट रूस में समाजवादी पद्धति की विजय के फलस्वरूप हुई है। नये संविधान का प्रमुख आधार समाजवाद के सिद्धांत हैं जिनके प्रधान अवयवों को प्राप्त किया जा चुका है, जैसे—भूमि, वन, कारखाना, मशीनों व अन्य उत्पादन के साधनों पर समाज का स्वामित्व अपीड़कों और उत्पीड़कों का विनाश, बहुसंख्यकों की निर्धनता व अल्पसंख्यकों की विलासिता का निवारण, बेकारी का दूर करना, प्रत्येक स्वस्थ शरीर वाले के लिये काम को एक कर्तव्य व सम्मान का स्थान देना"। स्टैलिन ने कहा कि उस मसविदे में जो मार्ग चला जा चुका है और जो सफलता प्राप्त की जा चुकी है उसका कुल योग व सारांश इसमें दिया हुआ है। अर्थात् जो व्यवहार में सत्य है उसे अधिनियम का रूप दिया जा रहा है।

## सन् १९३६ का नया शासन-विधान

शासन विधान के प्रारम्भ में समाज का संगठन दिया हुआ है और कहा गया है कि सोवियट रूस किसानों और मजदूरों का समाजवादी राज्य है जिसका राजनैतिक आधार श्रमिकों के प्रतिनिधियों की सोवियटें (समितियाँ)

है। "सोवियट रूस में सारी शक्ति नगरों और ग्रामो के श्रमिकों की है……।" सामाजिक स्वामित्व की व्याख्या में कहा गया है कि यह दो प्रकार का है या तो राज्य का स्वामित्व या सामूहिक फार्मो का स्वामित्व। सारी भूमि, खनिज पदार्थ, वन, कारखाने, रेले, स्थल और जल यातायात के साधन व इनके अतिरिक्त सब उद्योग व सस्थाये राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिये गये। राज्य की सम्पत्ति का अर्थ सारे राष्ट्र की सम्पत्ति से है।

**कुछ वैयक्तिक सम्पत्ति मान्य की गई**—सामूहिक कृषि-भूमि उनकी संस्थाओ के लिये बिना कुछ मूल्य दिये हुये दे दी गई। सामूहिक-कृषि सस्था (Collective Farm) के प्रत्येक गृहस्थी को अपने प्रयोग के लिये घर से लगी हुई जमीन का टुकडा और अन्य आवश्यक वस्तुयें जैसे रहने का मकान, पशु, मुर्गियाँ, व अन्य खेती करने का सामान दे दिया गया। उन किसानो व कारीगरो की आय व वैयक्तिक सम्पत्ति उनके लिये कानून से सुरक्षित कर दी गयी जो केवल अपने परिश्रम से कमाई गई हो और दूसरो की मेहनत से प्राप्त न की गई हो। नागरिको की आय, उनकी बचत, रहने का मकान व अन्य वस्तुयें, घर की चीजे दिन प्रतिदिन के जीवन यापन की आवश्यक वस्तुये आदि को अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति मानकर रखने का अधिकार कानून से दे दिया गया है। इस वैयक्तिक सम्पत्ति का पिता से प्राप्त करने का अधिकार भी कानून से मान्य कर दिया गया है।

**नागरिकों के मौलिक अधिकार**—नये शासन-विधान की एक विशेषता यह है कि इसके दसवें अध्याय मे नागरिको के मौलिक अधिकारो की घोषणा कर दी गई। मौलिक अधिकार ये हैं—(१) काम पाने का अधिकार जिसका आवश्यक प्रबन्ध राष्ट्र की समाजवादी आर्थिक व्यवस्था, सोवियट समाज के बढने हुये उत्पादन, आर्थिक सकटो के अभाव और बेकारी के निवारण द्वारा किया गया है, (२) विश्राम का अधिकार जिसके लिये अधिकतर काम करने वालो के काम के घण्टे घटा कर सात घण्टे कर दिये गये है। कर्मचारियो व मजदूरो को सवेतन वार्षिक छुट्टी दी जाती है, और स्वास्थ्य गृहो, विश्राम गृहो और चिकित्सालयो का प्रबन्ध है, (३) वृद्धावस्था, रोगावस्था या काम करने की सामर्थहीनता की अवस्था में जीवन यापन की उचित व्यवस्था। इसके लिये श्रमिको का राज्य की ओर से बीमा की व्यवस्था है जिसका व्यय सरकार अपने ऊपर लेती है, नि.शुल्क चिकित्सा की जाती है और अनेक स्वास्थ्य सुधारने के स्थानो का प्रबन्ध है, (४) शिक्षा का अधिकार। इसके लिए नि शुल्क सार्वजनिक प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा, राज्य

की ओर से माध्यमिक विद्यालयों के बहु-संख्यक विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियाँ निःशुल्क उच्च शिक्षा, विद्यालयों में मातृभाषा में शिक्षण, निःशुल्क व्यवसायिक शिक्षा और फैक्टरियों, फार्मों, ट्रैक्टर स्टेशनों पर काम करने वालों को कृषि सम्बन्धी शिक्षा, इन सबका प्रबन्ध किया जाता है।

अधिकारों के उपभोग में स्त्री और पुरुष में भेद नहीं किया जाता। पुरुषों की तरह स्त्रियों को भी काम करने, विश्राम, शिक्षा, आदि का अधिकार है। माँ व बच्चे की आवश्यक देख भाल, गर्भावस्था में सवेतन छुट्टी, अनेक जच्चा घरों का प्रबन्ध व छोटे बालकों के लिए रहने, खेलने व पढ़ने का आयोजन, ये सब होता है।

जातीयता या राष्ट्रीयता के आधार पर, आर्थिक, राजकीय, सांस्कृतिक, व सामाजिक क्षेत्र में व नागरिक अधिकारों के उपभोग में अन्तर नहीं किया जाता है।

धार्मिक स्वतन्त्रता सुरक्षित कर दी गई है। अतएव रूस में धर्ममठ (Church) राज्य से पृथक है और विद्यालय भी धर्ममठ से पृथक हैं।

नागरिकों को वक्तृता देने, एकत्र होने, संस्था बनाने, सड़कों पर जलूस निकालने और प्रदर्शन करने की स्वतन्त्रता दी जाती है। इसके साथ साथ समाचार छपवाकर प्रकाशित करने की भी स्वतन्त्रता है। इन सब के लिये मजदूरों और उनकी संस्थाओं को छापने की मशीनें, कागज, मकान, सड़कें, बातचीत करने के साधन और अन्य सुविधायें उपलब्ध कराई जाती हैं।

किसी भी व्यक्ति के शरीर को व्यर्थ ही कष्ट नहीं पहुंचाया जा सकता। अभियोक्ता की आज्ञा से या किसी न्यायालय के निर्णयानुसार ही कोई भी व्यक्ति पकड़ कर बन्दी बनाया जा सकता है अन्यथा नहीं। कानून से व्यक्तियों के रहने का स्थान सुरक्षित स्थान माना गया है जहाँ हर कोई बिना मकान के स्वामी की इच्छा के नहीं जा सकता। व्यक्तियों का पत्र-व्यवहार भी इसी प्रकार सुरक्षित रहता है। पत्रों को खोल कर उनका भेद खोलना अवैध है।

सोवियट नागरिक को (१) संविधान के अनुसार कार्य करना पड़ता है। नियमों का पालन, काम करने के सम्बन्ध में अनुशासन मानना अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को सच्चे मन से पूरा करना और समाजवादी जनसंगठन के नियमों का पालन करना, ये सब नागरिक को करने पड़ते हैं। (२) उसे सार्वजनिक धन सम्पत्ति की रक्षा समाजवादी प्रणाली का पुनीत अलंघ्य

आधार मान कर और श्रमिको के पूर्ण सास्कृतिक जीवन का स्रोत समझ कर करनी पडती है ।

सैनिक शिक्षा सबके लिए अनिवार्य है क्योकि देश की सुरक्षा प्रत्येक नागरिक का पुनीत कर्तव्य है । देश के प्रति विद्रोह, शपथ का उल्लघन, शत्रु से जाकर मिल जाना, राज्य की सैन्य शक्ति को हानि पहुँचाना, विदेशी राज्य के लिए गुप्तचर का कार्य करना, इन सब के लिए कडे से कडे दण्ड का विधान है ।

## संघ का संगठन

सविधान के दूसरे अध्याय में राज्य का सगठन (organisation of the state) दिया हुआ है ।

केन्द्रीय सरकार को शक्तियाँ—ग्यारह सोवियट समाजवादी प्रजातन्त्र राज्यो के मिलाने से सघ का निर्माण हुआ है । इन सब राज्यो को एक समान अधिकार प्राप्त है । राज्यचिन्ह में हँसिया और हथौडे का चित्र है । राज्य की राजधानी मास्को है । सविधान के १४ वें अनुच्छेद के अनुसार निम्नलिखित शक्तिया सघ को दी गई है —

(क) अन्त राष्ट्रीय मामलो में सघ का प्रतिनिधित्व करना, पर-राष्ट्रो से सन्धि करना और उनको पूरा करना और सघ, उपराज्यो व विदेशी राज्यो के बीच सम्बन्धो के बारे मे सामान्य प्रणाली निश्चित करना ।

(ख) युद्ध और शान्ति सम्बन्धी प्रश्न ।

(ग) सोवियट रूस में नये प्रजातन्त्रात्मक उपराज्यो को शामिल करना ।

(घ) सघ के शासन विधान के पालन की देखभाल जिससे उसके अनुसार ही सब कार्य हो ।

(ङ) उपराज्यो की सीमाओ को परिवर्तन करने की स्वीकृति देना ।

(च) उपराज्यो में नये स्वाधीन प्रदेशो, प्रान्तो या प्रजातन्त्रो (Republics) के बनने की स्वीकृति देना ।

(छ) सोवियट रूस की सुरक्षा का प्रबन्ध, उसकी सैन्य शक्ति का सचालन और उपराज्यो, में सैन्य शक्ति सगठित करने के लिये निर्देशक सिद्धान्तो का स्थिर करना ।

(ज) राज्य के एकाधिकार के आधार पर वैदेशिक व्यापार ।

(झ) राज्य की सुरक्षा का बचाव ।

(अ) सोवियट रूस की आर्थिक योजनाओं को कार्यान्वित करना।

(ट) सारे संघ का एक बजट (आय-व्यय का लेखा) बनाकर स्वीकार करना। उपराज्यों व स्थानीय संगठनों के बजट में करों व आय के साधनों की स्वीकृति देना।

(ठ) उद्योगों, कृषि-सम्बन्धी संस्थाओं, बैंकों और सारे सोवियट रूस के लिये महत्वपूर्ण व्यापार-योजनाओं का प्रबन्ध।

(ड) यातायात के साधन, डाक व तार आदि का प्रबन्ध।

(ढ) मुद्रा व उधार-प्रणाली का संचालन।

(ण) राजकीय बीमा का प्रबन्ध।

(त) ऋण लेना या देना।

(थ) भूमि, जंगल, खान, जल आदि के प्रयोग के सम्बन्ध में मूल सिद्धांतों को स्थिर करना।

(द) शिक्षा के सम्बन्ध में व सार्वजनिक स्वास्थ्य के सम्बन्ध में मूल सिद्धान्तों को स्थिर करना।

(ध) देश के लिये हिसाब किताब रखने की एक ही प्रणाली का आयोजन करना।

(न) श्रम के सम्बन्ध में कानून के आधारभूत सिद्धान्तों को निश्चित करना।

(प) न्याय-संगठन व न्याय प्रणाली के सम्बन्ध में कानून बनाना।

(फ) नागरिकता और विदेशियों के सम्बन्ध म कानून बनाना।

(ब) सारे संघ के बन्दियों को मुक्त करने का आदेश देना।

१४वें अनुच्छेद में वर्णित शक्तियों को छोड़कर शेष शक्तियां संघ के उपराज्यों की हैं। संघ उनमें उपराज्यों की सत्ता का रक्षा करता है। प्रत्येक उपराज्य का शासन विधान पृथक पृथक है क्योंकि वह अपनी निजी विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल बनाया गया है किन्तु उसका रूप संघ शासन विधान के रूप के समान ही है। सिद्धान्ततः प्रत्येक उपराज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार है। किसी भी उपराज्य के प्रदेश में उसकी सम्मति के बिना परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

संघ के सारे निवासी संघ के नागरिक हैं। संघ के अधिनियम सब उपराज्यों में लागू रहते हैं और संघ अधिनियम में टक्कर होने पर संघ अधिनियम ही मान्य होता है।

## संघ सरकार की बनावट

**सुप्रीम कौंसिल**—सोवियट रूस में राज्य शक्ति की सब से बडी सस्था सुप्रीम कौंसिल (Supreme Council) है जो ६४वे अनुच्छेद में दी हुई सारी शक्तियो के सम्बन्ध में अधिनियम बना सकती हैं किंतु ऐसा करने म वह प्रेसीडियम (Presidium) कौंसिल आफ पीपल्स कमीसार्स (Council of People's Commissars) या लोक प्रवन्धक परिषद् और पीपल्स कमीसरियट्स ( People's Commissariats ) अर्थात् शासन विभागो की शक्तियो में हस्तक्षेप नही कर सकती। यह सुप्रीम कौंसिल द्विगृही है, एक सदन का नाम सघ सोवियट या कौंसिल है और दूसरे सदन का नाम नेशनलिटीज सोवियट है।

## विधानमण्डल

**प्रथम सदन या लोकसभा**—सघ सोवियट या सघ-कौंसिल निचला सदन है जिसमें प्रजा द्वारा प्रत्यक्ष प्रणाली से चुन हुये व्यक्ति सदस्य होते हैं। इन प्रतिनिधियो को नागरिक स्वय चुनते हैं। प्रति ३००,००० जनसख्या के लिये एक प्रतिनिधि चुना जाता है। चुनाव के लिये सारा देश निर्वाचन-क्षेत्रो मे बटा हुआ है।

सोवियट रूस के सब नागरिक जिनकी आयु १८ वर्ष की हो प्रतिनिधियो के निर्वाचन म भाग ले सकते हैं और स्वय प्रतिनिधि निर्वाचित होने के लिये खडे हो सकते हैं। मताधिकार के लिये किसी विशेष जाति, धर्म या राष्ट्र निष्ठा, शिक्षा का स्तर, सम्पत्ति-स्वामित्व आदि का ध्यान नही रखा जाता सब को मत देने का अधिकार रहता है चाहे कोई विदेशी ही क्यो न हो। केवल उन्माद रोग से पीडित व्यक्ति या वे जिनको किसी न्यायालय ने मताधिकार से वंचित कर दिया है मत नही दे सकते। स्त्रियो को भी मत देने का अधिकार है, वे प्रतिनिधि भी चुनी जा सकती हैं। प्रत्येक व्यक्ति को एक मत देने का अधिकार होता है। सैनिक भी मत दे सकते हैं और प्रतिनिधि बन सकते हैं। गुप्त शलाका द्वारा मत लिया जाता है। निर्वाचन-क्षेत्रो में उम्मेदवारो को श्रमिको की सस्थायें, कम्यूनिस्ट पार्टी के सगठन, व्यवसायी-सघ, सहकारी-समितिया, युवक-सघ और सास्कृतिक सस्थायें मनोनीत करती हैं। कौंसिल चार वर्ष के लिये चुनी जाती है। चुने हुये प्रतिनिधि को अपने काम के बारे में अपने निर्वाचको को सतुष्ट करना पडता है। अधिनियम के अनुसार स्थिर किये हुए तरीके पर निर्वाचको के बहुमत से किसी भी प्रतिनिधि को

वापस बुलाया जा सकता है । नये संविधान के अन्तर्गत सोवियत का निर्वाचन १२ दिसम्बर सन् १९३७ को हुआ । उस समय ९१,११३,१५४ व्यक्तियों ने मतदान में भाग लिया। चुने हुए प्रतिनिधियों में सोवियट संघ के प्रत्येक प्रदेश के कुछ निवासी अवश्य थे । एक ओर उत्तरी प्रदेश के एस्कीमो थे तो दूसरी ओर दक्षिण के कौकेशिया निवासी भी थे । ये प्रतिनिधि लगभग १०० भाषाओं के बोलने वाले और रहन सहन, संस्कृति आदि में एक दूसरे से बहुत भिन्न थे। इस भिन्नता का कारण सोवियट रूस के विशाल देश की विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक परिस्थितियाँ ही हैं ।

द्वितीय सदन—नेशनलिटीज सोवियट (या कौंसिल) अर्थात् उपराष्ट्र-परिषद् कहलाता है । इसके सदस्य भी सीधे नागरिकों द्वारा चुने जाते हैं । प्रत्येक संघ प्रजातन्त्र (Union Republic) अर्थात् उपराज्य से २५, स्वाधीन प्रदेश को ११, स्वाधीन जिले को ५ और राष्ट्रीय जिले को १ प्रतिनिधि चुन कर भेजने का अधिकार है । संघ-सोवियट के साथ साथ ही यह उपराष्ट्र-परिषद् भी चार वर्ष के लिए चुनी जाती है । निर्वाचन पद्धति भी प्रथम सदन की निर्वाचन पद्धति के समान है । यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि सोवियट रूस के कई उपराज्यों में अनेक स्वाधीन प्रजातंत्र, प्रांत, और प्रदेश (autonomous republics, provinces and regions) होते हैं । केवल चार उपराज्यों में ऐसी स्वाधीन इकाइयाँ नहीं हैं ।

विधानमंडल की कार्यवाही—दोनों सदनों में से प्रत्येक अपनी कार्यपद्धति निश्चित कर उसके अनुसार अपना कार्य करता है । सदन में एक सभापति और दो उपसभापति होते हैं । प्रत्येक सदन अपने सदस्यों के प्रतिनिधि बनने के अधिकार की परीक्षा भी करता है । दोनों सदनों को अधिनियम बनाने का समान अधिकार है । किसी भी सदन में नई योजना पर विचार आरम्भ हो सकता है । जब दोनों सदन साधारण बहुमत से किसी विधेयक को स्वीकार कर लेते हैं तो वह स्वीकृत समझा जाता है । इस प्रकार स्वीकृत हो जाने के पश्चात् वह अधिनियम सुप्रीम कौंसिल ( Supreme Council ) की प्रैसीडियम के अध्यक्ष व सेक्रेटरी के हस्ताक्षर सहित संघ की विभिन्न भाषाओं में छाप कर प्रकाशित कर दिया जाता है ।

दोनों सदनों के मतभेदों को सुलझाना—यदि दोनों सदनों में मत भेद होने से कोई विधेयक दोनों में स्वीकार नहीं हो पाता तो वह एक समझौता-कमीशन के सुपुर्द कर दिया जाता है । यह कमीशन पक्ष प्रणाली के अनुसार ही संगठित होता है, अर्थात् प्रत्येक राजनैतिक पक्ष के प्रतिनिधि अपनी अपनी

संख्या के अनुपात से इसके सदस्य बनाये जाते है। यदि कमीशन (Commission) किसी समझौते पर पहुँचने में असफल रहे या यदि इसका निर्णय किसी सदन को अमान्य हो तो सदनों का पुनर्विचार करने के लिए एक बार फिर अवसर दिया जाता है। यदि फिर भी वे सहमत नही होते तो सुप्रीम कौंसिल का अर्थात् दोनों सदनों का विघटन कर दिया जाता है और नया निर्वाचन किया जाता है।

सुप्रीम कौंसिल की प्रेसीडियम और कौंसिल आफ पीपल्स कमिसार्स (लोक प्रबन्धक परिषद्) को चुनने के लिए दोनो सदनो की सयुक्त बैठक होती है। वर्ष में दो बार सदनों की साधारण बैठकें होती हैं किन्तु प्रेसीडियम स्वयं या सघ-उपराज्यो की प्रार्थना पर सुप्रीम कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुला सकती है। चार वर्ष की अवधि समाप्त होने पर या विघटन होने पर दो मास के भीतर ही नये निर्वाचन का होना आवश्यक है और निर्वाचन होने से एक मास के भीतर ही नये सदनो की प्रथम बैठक होनी चाहिये।

## कार्यपालिका

**प्रेसीडियम**—सुप्रीम कौंसिल की प्रेसीडियम में ३३ सदस्य हैं। प्रेसीडियम अपने सब कार्यों के लिए सुप्रीम कौंसिल को उत्तरदायी है शासन-विधान के ४६ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रेसीडियम निम्नलिखित काम करती हैं:—(क) सोवियट रूस के सुप्रीम कौंसिल की बैठकें बुलाना, (ख) सोवियट रूस के अधिनियम की व्याख्या करना और आदेश देना, (ग) किसी उपराज्य की माँग पर या स्वेच्छा से लोकनिर्णय (Referendum) का प्रबन्ध करना (घ) जब संघ की या उपराज्यों की कौंसिल आफ पीपल्स कमीसार्स के निर्णय या आज्ञायें अधिनियमो के विरुद्ध हो तो उनको रद्द करना, (ङ) सुप्रीम कौंसिल के दो सत्रो के बीच समय में कौंसिल का कार्य करना, (च) पीपल्स कमीसार्स (Peoples' Commissars) के सभापति के सुझाव पर सघ के किसी पीपल्स कमीसार को अर्थात् लोक प्रबन्ध को नियुक्त करना जिसकी अन्तिम स्वीकृति सुप्रीम कौंसिल देती है, (छ) सम्मानसूचक नाम या पुरस्कार देना, (ज) क्षमादान देना, (झ) सेना के उच्चपदाधिकारियों को नियुक्त करना या पदच्युत करना, (ञ) जब सुप्रीम कौंसिल की बैठक न हो रही हों उस समय यदि संघ पर बाहरी आक्रमण हो या किसी दूसरे पर आक्रमण कर पारस्परिक रक्षा के हेतु की गई किसी अंतःराष्ट्रीय संधि के अन्तर्गत कोई कार्यवाही करनी हो तो युद्ध की स्थिति की घोषणा करना, (ट) सेना में भर्ती

के लिये घोषणा करना, (ठ) अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों का अनुसमर्थन करना, (ड) दूसरे देशों में रूस के राजदूतों की नियुक्ति करना या उन्हें वापिस बुलाना, और (ढ) विदेशी राजदूतों का स्वागत करना व उनको आवश्यकता पड़ने पर वापिस भेजने का प्रबन्ध करना आदि।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि प्रेसीडियम की शक्तियां वे हैं जो दूसरे राज्यों में कुछ राज्याध्यक्ष को और कुछ मन्त्रिपरिषद् को मिली होती हैं।

**कौंसिल आफ कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक परिषद्**—*सोवियट रूस की सर्वोच्च प्रशासन शक्ति कौंसिल ( सोवियट ) आफ पीपल्स कमीसार्स अर्थात् लोक प्रबन्धक परिषद् को मिली हुई है। यह परिषद् संघ की सुप्रीम कौंसिल के सामने अपनी कार्यवाही का ब्यौरा रखती है। जब कौंसिल की बैठक नहीं होती है उस समय यह प्रेसीडियम के आधीन रहती है। अधिनियमों के आधार पर व उनके प्रावधानों के अनुसार यह परिषद् अपने आदेश निकालती है जो सारे संघ में लागू होते हैं।* इन आदेशों के पालन करने का भी प्रबन्ध यह परिषद् करती है। शासन विधान के ६८ वें अनुच्छेद के अनुसार इस परिषद् के निम्नलिखित कर्तव्य हैं—(१) सोवियट रूस के उपराज्यों के शासन विभागों ( *Peoples' Commissariats* ) अन्य आर्थिक या सांस्कृतिक संस्थाओं के कार्यों का संचालन करना व उनमें सामंजस्य लाना। (२) राष्ट्र की आर्थिक योजनाओं व आय-व्यय के निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करना और मुद्रा-व्यवस्था को शक्तिपूर्ण बनाना, (३) लोक-व्यवस्था को ठीक रखना, राज्य के हितों की रक्षा करना और नागरिकों के स्वत्वों को बचाना (४) सोवियट रूस के पर-राष्ट्रीय सम्बन्धों को निश्चित कर उनको व्यवहार रूप देना (५) संघ-सैन्य बल के सामान्य-संगठन की देखभाल व नागरिकों की सैन्यसेवा का वार्षिक परिमाण निश्चित करना और (६) आवश्यक होने पर, आर्थिक सांस्कृतिक या सुरक्षा सम्बन्धी प्रश्नों को हल करने के लिये विशेष समितियां बनाना।

यह परिषद् उपराज्यों की प्रबन्धक परिषदों के निर्णयों व आदेशों को स्थगित कर सकती है और उनके आर्डीनेंसों (अध्यादेशों) को रद्द कर सकती है, यदि वे प्रशासन व आर्थिक प्रबन्ध के उन विभागों से सम्बन्धित हों जो संघ के अधिकार-क्षेत्र में आते हों।

**इसकी बनावट**—सुप्रीम कौंसिल इसका संगठन करती है। इसमें परिषद का एक सभापति, व एक उप सभापति होता है। इनके अतिरिक्त सोवियट रूस के प्लानिंग (योजना) कमीशन का सभापति, सोवियट कन्ट्रोल

कमीशन का सभापति सोवियट रूस के शासन प्रबन्धक (Commissars), भण्डारो की समिति का सभापति, कला-समिति का सभापति और उच्च शिक्षा-समिति का प्रधान, ये सब सदस्य होते हैं। इन सबकी कुल संख्या १६ जनवरी सन् १९३८ को २८ थी।

**परिषद् कैसे कार्य करती है**—सोवियट रूस की सरकार से दोनो सदनो मे प्रश्न पूछे जा सकते हैं और इन प्रश्नो का ततसम्बन्धी कमीसार उत्तर देता है। यह उत्तर लिखित हो या मौखिक और प्रश्न करने से तीन दिन के समय के भितर मिलना चाहिए। कमीसार अर्थात् लोक प्रबन्धकर्त्ता अपने आधीन शासन विभाग का सचालन करते हैं। वे इन विभागो से सम्बन्धित आदेश निकालने और इन आदेशो को कार्यान्वित करने का आयोजन करते हैं। उनके ऊपर केवल राष्ट्र के अधिनियमो और लोक प्रबन्धक परिषद् की आज्ञाओ का ही प्रतिबन्ध रहता है।

सोवियट रूस में आगे वर्णित आठ सघ-शासन विभाग हैं। (All Union Peoples' Commissariats) हैं सुरक्षा, वैदेशिक मामल, वैदेशिक व्यापार, रेल, जल मार्ग, तार आदि भारी उद्योग और सुरक्षा-उद्योग।

## सोवियट रूस में न्यायपालिका

न्याय व्यवस्था सारे सोवियट रूस में एक सी है। सर्वोच्च न्यायालय सोवियट रूस की सुप्रीम कोर्ट है। इसके आधीन उपराज्यो की सुप्रीम कोर्ट, प्रान्तीय और प्रादेशिक न्यायालय स्वाधीन प्रजातन्त्रो व स्वाधीन प्रदेशो के न्यायालय, जिला अदालतें, विशेष अदालतें, (जिनको सोवियट रूस की सुप्रीम कौंसिल स्थापित करती है) और लोक-न्यायालय (Peoples' Courts) हैं।

**सुप्रीम कोर्ट (Supreme Court)** सुप्रीम कोर्ट या सर्वोच्च न्यायालय सघ व उपराज्यों के सारी न्यायपालिका के कार्य की देखभाल करता है इसके व विशेष न्यायालयों के न्यायाधीशों को सुप्रीम कौंसिल पांच वर्ष के लिये चुनती है। इसी प्रकार उपराज्यों की सुप्रीम कौंसिल वहां के सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) के न्यायाधीशों को पांच वर्ष के लिये चुनती है। स्वाधीन प्रजातन्त्र (Autonomous Republic)[1] इकाइयों में भी एक

[1] यह Union Republic से भिन्न होती है

अपना सर्वोच्च न्यायालय होता है। जिसके न्यायधीश वहां की सुप्रीम कौंसिल द्वारा पांच वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं।

प्रांतीय और प्रादेशिक सोवियट या स्वाधीन प्रादेशिक श्रमिक प्रतिनिधियों की सोवियट प्रान्तीय या प्रादेशिक न्यायालयों, स्वाधीन प्रदेशों के व जिले के न्यायालयों का निर्वाचन करती है। लोक-न्यायालय के न्यायाधीश को रेयोन (Rayon) के निवासी स्वयं तीन वर्ष के लिये चुनते हैं। निर्वाचनों में सब को समान अधिकार होते हैं और मतदान गुप्त रीति से होता है।

न्यायालयों की कार्यवाही उस प्रदेश की भाषा में होती है जिसमें वह न्यायालय स्थित है। यदि कोई व्यक्ति उस भाषा से परिचित नहीं होता तो उसे एक अनुवादक की सहायता दी जाती है। वह स्वयं अपनी भाषा में ही न्यायालय से अपनी राय कह सकता है। सब न्यायालयों की कार्यवाही खुले ढंग पर होती है। अपराध लगाये हुये व्यक्ति को अपना बचाव करने का पूर्ण अधिकार रहता है। कानून से निश्चित कुछ मामलों में छोड़ कर सब मुकदमों में पंचों की सहायता ली जाती है। न्यायाधीश अधिनियमों के आधीन रहते हुये सब प्रकार से तंत्र रहित हैं।

प्रत्येक (उपराज्य संघ, प्रदेश आदि की) सुप्रीम कौंसिल एक न्यायवादी (Attorney) नियुक्त करती है जिसका प्रमुख कर्तव्य यह होता है कि शासन विभागों द्वारा कानूनों को कार्यान्वित किये जाने की देखभाल करे। सब न्यायवादी सोवियट रूस के महा-न्यायवादी (Attorney General) के नियन्त्रण में अवश्य हैं किन्तु अन्यथा वे स्वतन्त्र रूप से अपना कार्य करते हैं।

## इकाई-राज्यों की सरकारें

सोवियट रूस के १६ इकाई या घटक राज्यों के नाम, उनकी राजधानियाँ, क्षेत्रफल और जनसंख्या नीचे दी हुई सारिणी में मिलेगी।

| घटक राज्य का नाम व उसकी राजधानी रूस का सोवियट संघात्मक समाजवादी प्रजा तंत्र | | वर्ग मीलों में क्षेत्रफल | जन संख्या जनवरी १७, १९३९ |
|---|---|---|---|
| (U S S S. R) ,, | (मौस्को) | ८,३६८,७६८ | १०६, २७६,५०० |
| यूक्रेन, एस, एस, आर | (कीव) | १७०,९९८ | ३८,५००,००० |
| बाईलोरन्सियन ,, | (मिन्स्क) | ४६०,२२ | १६,४००,००० |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| एजरविजान | ,, | (वाकू) | ३२,६५६ | ३,२०६,७२७ |
| जार्जियन | ,, | (टिफलिस) | २६८२५ | ३,५४२,२८६ |
| आर्मिनियम | ,, | (इरीवन) | ११५८० | १,२८१,५६६ |
| टुर्कमन | ,, | (अशखावाद) | १७१,३८४ | १,२५३,६८५ |
| उजबेक | ,, | (ताशकन्द) | ६६,३६२ | ६,२८२,४४६ |
| तदजैक | ,, | (स्टैलिनावाद) | ५५,७४० | १,४८५,०६१ |
| कजस | ,, | (अलमा-आटा) | १,०४७,७६७ | ६,१४५,६३७ |
| किरघिज | ,, | (फ्रुन्ज) | ७५,६२६ | १,४५६,३०१ |
| एसटोनियन | ,, | | १८६ | १,१२०,००० |
| लैटवियन | ,, | | २५,००० | २,८७६,०७० |
| लियुनियन | ,, | | २१ ५०० | १,६५०,००० |
| करैलोफयूनिश | ,, | | १८००० | ६,०००,००० |
| मोल्डेविया | | (किशीनेव) | ३३,८०० | २,२००,००० |
| कुल सोवियट रूस का योग | | | ८,१७६,२२८, | १६१, ८८८,४४३ |

सन् १६३६ के शासन-विधान में सगठन, शक्तियो व कर्तव्यो का वर्णन है। साथ साथ उसमे उपराज्यो (Union Republics) व स्वाधीन प्रजातत्रो (Autonomous Republics) की शक्तियाँ भी वर्णित हैं। सात सघ प्रजातत्र (Union Republics) जिनको हमने उपराज्य भी कहा हैं सघ के घटक राज्य या उपराज्य हे। किन्तु उनमें से वहुतो में कई स्वाधीन प्रजातत्र है और इसलिये वे स्वय सघ-राज्य के भीतर सघ राज्य है। इन सब इकाइयो की सरकारो का सगठन उन्ही सिद्धातो पर किया गया है जिनके आधार पर सोवियट रूस की सघ-सरकार का सगठन हुआ है।

इकाई राज्यों या उपराज्यो के विधान मंडल—प्रत्येक उपराज्य में एक निजी सुप्रीम कौंसिल (सोवियट) है जो चार वर्ष के लिये नागरिको द्वारा निर्वाचित होती है। यह अकेली ही उपराज्य की विधानमडल है। यह उपराज्य के शासन-विधान को स्वीकार करती और उसमें सोवियट रूस के शासन-विधान की ३६ वी धारा के अनुसार सशोधन कर सकती है। यह स्वाधीन प्रजातत्रो के शासन-विधानो में अपनी सम्मति देती है और उन प्रजातन्त्रो के क्षेत्राधिकार की सीमा निर्धारित करती है। यह आर्थिक योजना को स्वीकार करती और उपराज्य के वजट को पास करती है। यह उन अपराधियो को क्षमादान देती है जो उस राज्य के न्यायालयो से दडित हो।

उपराज्यों की कार्यपालिका सरकारें—उपराज्य की सर्वोच्च प्रशासन-शक्ति रखने वाली संस्था लोक-प्रबन्धक परिषद् (Council of People's Commissars) होती है। इसके आधीन ११ शासन विभाग (Commissariats) होते हैं जो इस प्रकार हैं—खाद्य उद्योग, छोटी वस्तुओं के उद्योग, काष्ठ उद्योग, कृषि, अन्न और पशु, सरकारी फार्म, आय व्यय, घरेलू व्यापार, घरेलू मामले, न्याय, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सैनिक संगठन और वैदेशिक मामले। यह परिषद् उपराज्य की सुप्रीम कौंसिल का उत्तरदायी रहती है। कौंसिल के अवकाश काल में उसका सब कार्य यह परिषद् स्वयं करती है और उसकी प्रैसीडियम को उत्तरदायी रहती है।

इस परिषद् में एक सभापति, उपसभापति, राष्ट्रीय योजना कमीशन का सभापति, १५ शासन विभागों के प्रबन्धक, भण्डारों (Reserves) की समिति का एक प्रतिनिधि कला-प्रशासन का अध्यक्ष और संघ के शासन-विभागों का एक प्रतिनिधि, इतने सदस्य होते हैं।

*लोक-प्रबन्धक* अपने आधीन प्रशासन-विभागों के कार्य का सञ्चालन करते हैं। सोवियट संघ और उपराज्यों के अधिनियमों के आधार पर उन्हीं को कार्यान्वित करने के लिये वे आवश्यक आदेश जारी करते हैं। इसके अतिरिक्त वे संघ-लोक प्रबन्धक-परिषद् (People's Commissar of the U. S. S. R.) और उपराज्य-लोक-प्रबन्धक परिषद् के आदेशों का पालन करते हैं।

उपराज्य की लोक-प्रबन्धक-परिषद् स्वाधीन प्रजातन्त्रों के प्रबन्धकों व प्रांतों और प्रदेशों की कार्यपालिका समितियों के निर्णयों को स्थगित और रद्द भी कर सकती है।

१ फरवरी सन् १९४४ को संविधान में एक संशोधन कर संघ की सुप्रीम सोवियट ने उपराज्यों को यह शक्ति दे दी है कि वे अपनी सुरक्षा के लिये निजी सेना रख सकते हैं और दूसरे राष्ट्रों से स्वयं सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं किन्तु इन विषयों में उन्हें संघ की सुप्रीम सोवियट द्वारा निर्णीत सिद्धान्तों के अनुसार ही चलना पड़ता है।

स्वाधीन सोवियट प्रजातन्त्र उपराज्यों की छोटी इकाइयां हैं। इनमें एक सुप्रीम कौंसिल होती है जो इन प्रजातन्त्रों (Autonomous Soviet Socialist Republics) की प्रजा द्वारा चार वर्ष के लिये निर्वाचित होती है। प्रत्येक स्वाधीन प्रजातन्त्र का निजी शासन विधान है जो सोवियट

रूस के शासन-विधान के ढग पर उस प्रदेश की विशेष परिस्थितियो के अनुकूल निर्मित हुआ होता है । प्रजातत्र की सुप्रीम कौसिल चुन कर एक प्रैसीडियम और एक लोक-प्रबन्धक-परिषद् का सगठन करती है ।

उपराज्यो में प्रात, प्रदेश, स्वाधीन प्रदेश (Autonomous Regions) स्वाधीन प्रजातन्त्र (A. S. S. R ) जिले, रेप्रौन, नगर, ग्राम-क्षेत्र आदि शासन की इकाइयां होती हैं जिनमें निजी सोवियट शासन प्रबन्ध करती है । इन सोवियटो का चुनाव दो वर्ष के लिए होता है । इनका काम यह है कि ये सुव्यवस्था रखने का प्रबन्ध करती है । अधिनियमो के पालन का आयोजन और नागरिको के अधिकारो की रक्षा की देखभाल करती है । ये स्थानीय बजट तैयार करती है। ये अपने निर्वाचक श्रमिको को ही नही वरन् अपने ऊपर वाली सोवियट को भी उत्तरदायी रहती है ।

## कम्यूनिस्ट पार्टी

पीछे सोवियट शासन प्रणाली का जो वर्णन किया गया है उसका सचालन कम्यूनिस्ट पार्टी के हाथ म था फिर भी सरकार और कम्यूनिस्ट पार्टी एक नही है वे एक दूसरे मे भिन्न और पृथक है ।

कम्यूनिस्ट पार्टी का कोई भी व्यक्ति सदस्य हो सकता है क्योकि कम्यूनिज्म के सिद्धातो में राष्ट्रीय, जाति आदि की सकीर्णता को कोई स्थान नही दिया गया है । उसका उद्देश्य सारे ससार मे श्रमिको का शासन स्थापित करना है । यह अपनी मूल विचारधारा म राज्यसीमाओ का आदर नही करती । उसका तो प्रयत्न ही यही है विश्व मजदूरों को सगठित किया जाय । इतनी व्यापक दृष्टि के होते हुए भी कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य होना बडा कठिन काम है । उम्मेदवार को निश्चित समय तक पार्टी की शिक्षा लेनी पडती है । इस शिक्षण के पूरे होने पर भी जानकार व प्रभावशील सदस्यो की सिफारिश से ही वह व्यक्ति सदस्य बनाया जा सकता है । इसके विपरीत पार्टी का छोडना बडा सरल है केवल अपनी इच्छा प्रकट करना ही पर्याप्त होता है । समय २ पर पार्टी में से उन व्यक्तियो को निकाल दिया जाता है जो निरुत्साही प्रतीत होते है क्योकि या तो कम्यूनिज्म सिद्धातो व व्यवहार में उनका विश्वास नही रह गया या वे पार्टी के प्रति निष्ठा रहित हो गये होते है ।

सन् १६३८ के आरम्भ में पार्टी के कुल सदस्यो की सख्या ३० लाख थी । सदस्यो की भर्ती कोमसोमोल (Com·omol) मे होती है । जिसम १६ और २३ वर्ष की आयु वाले युवा स्त्री पुरुष होते है । इस में से

आयु के भीतर वाले बालक पायनियर्स (Pioneers) कहलाते हैं। दस वर्ष की आयु से छोटे आठ वर्ष की आयु तक के ओक्ट्रीहारिस्ट्स (Octriharists) कहलाते हैं। इस प्रकार पार्टी की ये तीन श्रेणियां मिलकर स्काउट संगठन के समान प्रतीत होती हैं जिसमें एक के बाद एक श्रेणी को पार करना पूर्ण सदस्यता के लिये आवश्यक होता है। कम्युनिस्ट पार्टी और उसकी उपशाखाओं की कुल संख्या १२० लाख से ऊपर है।

पार्टी का अनुशासन—पार्टी का अनुशासन बड़ा कठोर है और उसका पालन करना बड़ा कठिन है। प्रत्येक सदस्य या उम्मेदवार को पार्टी के हित के लिये अपने वैयक्तिक भावों का बलिदान करना पड़ता है। प्रत्येक सदस्य अपने से उच्च व्यक्ति की इच्छा पर अपने आप को छोड़ देता है और उसकी आज्ञा का बिना हिचकिचाहट के पालन करता है। सदस्य को जहां भेजा जाय वहां जाना पड़ता है। अपना बचा हुआ समय वह कम्यूनिज्म के सिद्धांतों के प्रचार करने में लगाता है और यदि उनकी रक्षा करने में प्राण की भी बलि देनी पड़े तो उसे उसके लिये तैयार रहना पड़ता है। लगभग सदस्यों में १४ प्रतिशत स्त्रियां या बालिकायें हैं।

कम्यूनिज्म के उद्देश्य—कम्युनिज्म मार्क्स के दार्शनिक सिद्धांतों को व्यवहार में लाना चाहती है। वर्गभेद का मिटाना, व्यक्ति के परिश्रम के आधार पर राजनैतिक व सामाजिक अधिकारों को निश्चित करना, पूंजीवाद को मिटा कर उत्पादन व वितरण के सब साधनों पर राज्य का स्वामित्व स्थापित करना, यह कम्यूनिज्म के उद्देश्य हैं। कम्यूनिस्ट पार्टी का जो सदस्य मदिरा आदि मादक द्रव्यों का प्रयोग करता हुआ पाया जाता है या अपने से उच्च अधिकारी व्यक्ति की आज्ञा की अवहेलना करता है, या जो गिरजाघर में जाता है या जो पार्टी के सिद्धान्तों का प्रचार करने में उत्साह नहीं दिखाता या पूंजीवर्ग को सहायता पहुंचाता है वह पार्टी से निकाल दिया जाता है। दूसरी ओर जो सदस्य पार्टी की सेवा में अपने आपको विख्यात बना लेते हैं उनको विशेष पुरस्कार दिया जाता है। पार्टी के अफसरों को आने जाने का भत्ता रहने का मकान और सवारी के लिये मोटर मिलती है। कम से कम सिद्धांतत व्यवहार की समानता पर अधिक जोर दिया जाता है किन्तु सच तो यह है कि जो कारखानों और फार्मों के अफ्सर होते हैं उनको अतिरिक्त लाभ का भाग बांट कर अधिक सुविधायें दी जाती हैं। सोवियट रूस की कम्यूनिज्म के व्यावहारिक रूप के बारे में जो विविध मत हैं वे एक दूसरे के बहुत विरोधी हैं क्योंकि वहां पर जाकर देखने

वालो व लेखको की दृष्टि पक्षपात रहित नही होती। मानव स्वभाव ही ऐसा है कि उससे यह आशा रखना कि वह आदर्श का व्यवहार में सच्चा अनुकरण करेगा व्यर्थ है। फिर भी यह लाभ अवश्य है कि पार्टी के दृढ सगठन से शासन प्रबन्ध सुव्यवस्थित है।

**पार्टी का संगठन**—पार्टी की सब से छोटी इकाई "सेल" (Cell) होती है जिसमें तीन सदस्य होते है। यह किसी गाव या कारखाने में बनाई जा सकती है। यह सेल पार्टी की नीति का प्रचार करके उसे कार्यान्वित करती है। 'सन् १९२८ मे सेलो की कुल सख्या ३९,३२१ थी जिसमे से २५ ४ प्रतिशत कारखानो मे, ५२·७ प्रतिशत गावो में, १८·५ प्रतिशत अफसरो और उद्योगो में और १ ८ प्रतिशत शिक्षालयो में थी। पार्टी की जो प्रादेशिक सस्था होती है उसके प्रतिनिधियो को ये सेल चुनती है। प्रान्तीय व प्रादेशिक सस्थाये अखिल सघ की पार्टी काग्रेस के लिये अपने प्रतिनिधि चुनती है। काग्रेस साल में दो बार एकत्र होती है। बीच में काग्रेस से चुनी हुई एक सैन्ट्रल एक्जीक्यूटिव काम चलाती है। सैन्ट्रल कमेटी का सब से प्रभावशाली व्यक्ति सैक्रेटरी-जनरल होता है (आजकल इस पद पर स्टैलिन है)। सन् १९३६ तक यह सैक्रेटरी-जनरल पार्टी पर ही नही किंतु सरकार पर भी अपना नियन्त्रण रखता था। यद्यपि पार्टी और सरकार पृथक है फिर भी पार्टी सरकार को पूरी तरह से अपने हाथ में किये हुये थी। सन् १९३४ की काग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया कि पार्टी और सरकार का भेद मिटा दिया जाय।

यद्यपि पार्टी के भीतर वाद-विवाद करने व विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता है पर जब एक बार कोई निश्चय हो जाता है तो सब सदस्यो पर वह लागू हो जाता है। जो कोई भी पार्टी के आदेशो की अवहेलना करता है उसे पार्टी से निकाल दिया जाता है या अन्य दण्ड दिया जाता है। सारे देश में फैली हुई पार्टी की शाखायें सोवियटो के कार्यों पर दृष्टि रखती हैं जिससे केन्द्र से निकले हुये आदेशो का पालन कराने में सहायता होती है। सन् १९३६ तक सरकार की प्रमुख सस्थाये पिरेमिड के ऊचे स्तरो पर थी इसलिये कम्यूनिस्ट अपने पक्ष के अधिक व्यक्तियो को उन सस्थाओं में ही रखने को अधिक उत्सुक रहते थे। गांव और नगरो की सोवियटो में वे ऐसे ही व्यक्तियो से ही सतोष कर लेते थे जो पार्टी के सदस्य न हो परन्तु उनके कृपा-पात्र हो।

सरकार की वास्तविक नीति ऊपर से ही निश्चित होती थी और वहां कम्यूनिस्टो का पूर्ण आधिपत्य था जिसमे कम्यूनिस्टो का सरकार पर पूरा

नियंत्रण रहता था। नये रूस में कम्युनिस्ट पार्टी ही प्रेरक शक्ति है। जहां कम्युनिस्ट स्वयं सर्वेसर्वा नहीं होते वहां उनका प्रभाव ही सब कार्य उनके अनुकूल ही करता है। प्रत्येक कारखाने में एक 'लाल त्रिभुज" पाया जाता है जिसमें कारखाने की नीति निश्चित करते समय मैनेजर और फैक्टरी समिति के प्रतिनिधि के साथ कम्युनिस्ट पार्टी का एक प्रतिनिधि बैठता है।

राज्यशक्ति को अपने हाथ में करने के पश्चात् कम्युनिस्ट पार्टी ने उन विभिन्न आर्थिक योजनाओं को अपने हाथ में लिया जो सोवियट रूस के शासन विधान की आर्थिक व राजनैतिक प्रणाली का अङ्ग समझी जाती थीं। इनको कार्यरूप देने में स्टैलिन और ट्रोटस्की में विरोध उत्पन्न हुआ। लेनिन की मृत्यु के पश्चात् इन दोनों में से प्रत्येक लेनिनवाद के दृष्टिकोण का सच्चा प्रतिनिधित्व करने का दावा करता था। अन्त में स्टैलिन की ही विजय हुई। ट्रोटस्की को पार्टी से निकाल दिया गया। स्टैलिन के शासन-प्रबन्ध के विरुद्ध गुप्त षड्यन्त्र रचे गये किंतु स्टैलिन ने सब विरोधियों को कुचल दिया।

## पाठ्य-पुस्तक

Batsell, W. R.—Soviet rule in Russia (1939).
Buell, R. L.—New Governments of Europe (Nelson 1934
Cole, G. D H & M. I—A Guide to modern Politics (Gollancz)
Makeev, & O' Hara—Russia (Modern World Series, Benn 1935)
Mc Cormick A O—Communist Russia (William & Norgate).
Select Constitutions of the World pp 211-236.
Statesman Yearbook (Latest Issue).
The Soviet Constitution (London 1945)
Freund, H A.—Russia from A to Z (Melbourne 1945)

# अध्याय २०

## फ्रांस की सरकार

**शासन विधान का इतिहास**—इगलैंड को छोड कर फास ही एक ऐसा बडा देश है जहाँ पार्लियामेंटरी शासन प्रणाली अपनाई गई है। इ गलैंड के समीप स्थित रहने से यहा अ गरेजी सिद्धान्तो व राजनैतिक सस्थाओं का प्रभाव भी अधिक रहा है। इस देश का क्षेत्रफल २१२६८६ वर्ग मील और जनसख्या सन् १९४६ की जनगणना के अनुसार ४०,५०२,५१३ है। यद्यपि यह प्रजातत्र राष्ट्र है किन्तु इसके आधीन विशाल साम्राज्य है जिसका क्षेत्रफल ४,६१७,५७१ वर्ग मील और ६४,९४६,९७५ व्यक्ति इस साम्राज्य में रहते हैं।

फास को प्राय राज्यप्रणालियो का प्रयोगशाला कहा गया है। अमेरिका के स्वतनता युद्ध के पश्चात जब फास की सेना वहा से फास को लौट कर आई, तो फ्रास में एक राजनैतिक हलचल मच गई। उस समय फास में कोई शासन विधान न था राजा स्वय ही राज्य सगठन का रचयिता और सचालक था, उसकी इच्छा ही न्याय थी। कुछ तो राजा के अत्याचारी शासन से और कुछ आर्थिक कष्ट से घबरा कर प्रजा ने विद्रोह कर दिया जिसका इतना विशाल रूप हो गया कि यह भय था कि फ्रास की क्राति सारे यूरोप के राष्ट्र सगठनो पर अपना प्रभाव डाले बिना न रहेगी। फास की राजनैतिक समस्या को हल करने का प्रथम प्रयत्न ३ सितम्बर सन् १७९१ के शासन विधान द्वारा किया गया। इससे राजा की स्वेच्छा पर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये। यह सविधान थोडे ही समय तक चल सका। जैकोबिन्स ने २४ जून सन् १७९३ को एक प्रजातत्र शासन की स्थापना की किन्तु वह भी अधिक दिन तक न चल सका। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप २२ अगस्त सन् १७९५ को एक तीसरा सविधान बनाया गया जिससे विधायिनी सत्ता ५०० व्यक्तियो की कौसिल और वृद्ध पुरुषो की कौसिल में विहित की गई और कार्यकारी सत्ता पाँच सदस्यो की डाइरेक्टरी के सुपुर्द की गई। चार वर्ष बाद

डाइरेक्टरी (Directory) ने एक नये संविधान से निरंकुश शक्ति अपने हाथ में कर ली। नैपोलियन ने, जो डाइरेक्टरी का सदस्य था सारी शक्ति को अपने हाथ में कर लिया और उसको प्रथम कौंसिल (First Council) नियुक्त कर दिया गया। सन् १८०२ में उसे स्थायी रूप से उसके जीवन भर के लिये पूर्ण सत्ता सौंपकर कौंसल (Consul) बना दिया गया। दो वर्ष बाद कंसुलेट (Consulate) के स्थान पर साम्राज्य की स्थापना की गई जिसका नैपोलियन प्रथम सम्राट हुआ। सन् १८१४ में नैपोलियन की पराजय होने से फिर राजसत्ता स्थापित हुई और बोर्बन वंश का राजा १८ वाँ लुई राजा बनाया गया। पार्लियामेंटरी प्रणाली स्थापित की गई जिसमें फ्रांस ने और देशों के समान ही अंग्रेजी ढांचे की नकल की। द्विगृही विधानमण्डल बनाया गया। द्वितीय सदन में मनोनीत व्यक्ति थे और प्रथम सदन में संकुचित मताधिकार से निर्वाचित व्यक्ति सदस्य बनते थे। मंत्रियों के उत्तरदायित्व का सिद्धांत भी स्वीकार कर लिया गया।

द्वितीय प्रजातन्त्र की स्थापना—यह राजतंत्र अधिक समय तक न चल सका। चार्ल्स ने अपनी शक्ति को प्रजा के अधिकार कम करके बढ़ाने का विफल प्रयत्न किया। तीन दिन की क्रांति के फलस्वरूप चार्ल्स को सिंहासन छोड़ना पड़ा। बोर्बन वंश की सत्ता इस प्रकार समाप्त हुई। लुई फिलिप सिंहासन पर बैठा पर उसे भी सिंहासन छोड़ कर भागना पड़ा। विद्रोह और फूट से तंग आकर सब जनता शान्ति की इच्छा करने लगी। अन्त में १० दिसम्बर सन् १८४८ को प्रजातंत्र शासन की स्थापना हुई जिसका नैपोलियन का भतीजा प्रथम अध्यक्ष चुना गया। प्रौढ़ मताधिकार से चुना हुआ एक गृही विधानमण्डल स्थापित करना निश्चय हुआ। इसके पश्चात् राज सत्ता को हथियाने का एक हिंसात्मक प्रयत्न किया गया। बहुत से राज नीतिज्ञ प्रजा प्रतिनिधि और सेनापति कारावास में डाल दिए गये। एक नया शासन विधान बनाया गया जिसमें प्रेसीडेंट का कार्यकाल बढ़ा कर दस वर्ष कर दिया गया और उसको बहुत विस्तृत शक्तियाँ दे दी गईं। सन् १८५२ में फिर एक नया शासन विधान बना जो लोक-निर्णय से दो सप्ताह के भीतर स्वीकृत हुआ। इसके अनुसार नैपोलियन तृतीय सम्राट घोषित कर दिया गया।

साम्राज्य सत्ता अधिक दिन तक न चल सकी। पहले तो युद्ध में विजय होने से फ्रांस का यूरोप में सिक्का जम गया परन्तु अन्त में देश के भीतर नैपोलियन से प्रजा असंतुष्ट होने लगी। जर्मनी और फ्रांस के बीच होने

वाले सन् १८७० के युद्ध से फ्रास के इतिहास में एक नये युग का प्रारम्भ हुआ । जर्मनो ने पैरिस पर अधिकार कर लिया होता यदि उन्हे फ्रास से भारी रकम न मिली होती । तृतीय नैपोलियन की पराजय के पश्चात् एक नया शासन सविधान बनाया गया । राष्ट्र की रक्षा के लिये एक अस्थायी सरकार बनाई गई और सन् १८७१ की फरवरी में इसका स्थान नेशनल असेम्बली ने लिया ।

इस प्रकार अस्सी वर्ष के समय में ११ शासन-विधानो के अतर्गत फ्रास का शासन हुआ । प्रजातत्र और राजतत्र के बीच फ्रास झूलता रहा । यद्यपि कोई निश्चित शासन विधान अब भी न था पर पूर्व सविधानो की बची सस्थाये अब भी कार्य कर रही थी । नेशनल असेम्बली का यह काम था कि इन बिखरे हुये टुकडो को पुन एक सूत्र मे बाँध कर व्यस्थित करती किन्तु यह निश्चित नही था कि असेम्बली को यह अधिकार भी है या नही ।

तृतीय प्रजातन्त्र—राजसत्ता के गिरते हुये दिनो में प्रजातन्त्रवादियो ने अपनी शक्ति बढा ली थी । उन्होने प्रजातत्र स्थापित करने का अब दृढ निश्चय किया । १८७१ की सधि के पश्चात् शान्ति स्थापित करने और नये शासन विधान बनाने का भारी प्रयत्न किया गया । असेम्बली ने ३१ अगस्त को एक प्रस्ताव पास किया जो राइवट लॉ ( Rivet Law ) के नाम से प्रसिद्ध है । इसके अनुसार एडोल्फ थियर्स प्रेसीडेंट बनाया गया और इसको यह शक्ति दी गई कि वह निर्वाचित असेम्बली को उत्तरदायी मत्री नियुक्त कर सकता है। पर इस योजना से राजसत्ता वादी (Monarchists) सतुष्ट न हुये । नेशनल असेम्बली को बाध्य होकर सवैधानिक प्रश्न फिर हाथ में लेना पडा । उसकी प्रार्थना पर तीस सदस्यो की एक समिति ने दो विधेयक (Bills) तैयार किये जिनमें दूसरे सदन की स्थापना का प्रस्ताव था और विधायिनी व कार्यकारी शक्तियो की व्याख्या की गई थी । परन्तु इन विधेयको पर विचार न हो सका । सन् १८७३ के नवम्बर मास में एक नई समिति बनाई गई । इस समिति ने सार्वजनिक शक्तियों के सगठन का एक विधेयक तैयार किया जिसके आधार पर सन् १८७५ का कानून बना । सीनेट का सगठन एक दूसरे वैधानिक अधिनियम द्वारा स्थिर हुआ । सीनेट राजसत्तावादियों को सतुष्ट करने के लिये ही बनाई गई थी ।

फरवरी २४ व २५, १८७५ के दोनों वैधानिक अधिनियमों को पास करने के पश्चात् दूसरे विषयों को असेम्बली ने अपने हाथ में लिया और जुलाई १६, १८७५ का तीसरा वैधानिक अधिनियम पास किया । इस प्रकार फ्रास के

शासन विधान के आधारभूत तीन अधिनियम बने। इनके आधार पर दूसरे अधि-नियम बने जिनसे शासन विधान को कार्यान्वित करने की प्रणाली निश्चित की गई। सन् १८७० और १८८८ में दो और कानून पास हुये जिनमें से एक के द्वारा वार्साई की जगह पेरिस को राजधानी बनाया गया क्योंकि प्रजातन्त्रवादी पेरिस को अधिक पसन्द करते थे। सन् १८८४ में नेशनल असेम्बली के दोनों सदनों ने अपनी संयुक्त बैठक में वैधानिक अधिनियमों में संशोधन करने के प्रश्न पर विचार किया और सन् १८८४ का परिवर्तन करने वाला अधिनियम (Revisory Law of 1881) पास किया। इससे शासन विधान पूरा हो गया। संविधान को कार्यान्वित करने वाले अधिनियम भी पास किये गये। ये अधिनियम साधारण अधिनियम और वैधानिक अधिनियमों के मध्य में हैं। ये साधारण निर्बन्धों से ऊँची और वैधानिक निर्बन्धों से नीची श्रेणी में है। इन का संशोधन सामान्य रीति से हो सकता है। ये शासन विधान के छोटे मोटे विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। इनको आर्गेनिक लॉज (Organic Laws) के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि फ्रांस का शासन-विधान किसी एक अधिनियम में नहीं मिलता। इसके सिद्धांत समय समय पर पास किये हुए कई अधिनियमों में पाये जाते हैं। फिर भी अंग्रेजी शासन संविधान से यह इस बात में भिन्न है कि सब अधिनियमों को एकत्र करने से शासन विधान पूरा प्राप्त हो सकता है किन्तु अंग्रेजी शासन विधान के सिद्धान्त पार्लियामेंट के अधिनियमों के अतिरिक्त जो कई शताब्दियों के समय में बने हैं, इन अलिखित पर सर्वमान्य प्रथाओं में बिखरे हुये हैं जो किसी भी दशा में विधिवत् पास हुए अधि-नियमों से कम मान्य नहीं हैं। फ्रांस के वैधानिक इतिहास की अविच्छिन्नता भी ध्यान देने योग्य है इसलिए यह शासन विधान एक शताब्दी से होने वाले वैधानिक विकास का परिणाम है। इसमें अपने पूर्ववर्ती संविधानों के प्रमुख सिद्धांत ज्यों के त्यों पाये जाते हैं। फ्रांस के संविधान पर उस देश में हुई राजनैतिक क्रांतियों की छाप लगी हुई है। यह वह भवन नहीं जिसके प्रत्येक भाग को किसी पूर्व निश्चित ढाँचे पर बनाया गया हो किन्तु यह वह प्राचीन कौटुम्बिक गढ़ी है जिसमें आने वाली पीढ़ियों ने अपनी अपनी रुचि के अनुसार कुछ यहाँ कुछ वहाँ सुधार या नवीनता लाई हो। यूरोप के राजनैतिक वाता-वरण में जो परिवर्तन हुए उनको इसने सहकर अपने आपको उनके अनुकूल बना लिया है। इस शासन-विधान से फ्रांस में पार्लियामेंटरी ढंग के प्रजातन्त्र की स्थापना करने का उद्देश्य था। इसको ऐसी असेम्बली ने न बनाया था

जो सविधान निर्माण के लिए ही चुनी गई हो किन्तु फिर भी, इसमे परिवर्तन करना कठिन है क्योंकि उसके लिए निश्चित रीति प्रयोग में लानी आवश्यक है। पहले दोनों सदन पृथक पृथक यह निर्णय करते थे कि सशोधन आवश्यक है या नही। अपेक्षाकृत बहुमत से दोनों में ऐसा निर्णय होने पर दोनो की सयुक्त बैठक में मतो के पूर्णाधिक्य से सशोधन हो सकता था। किन्तु किसी भी सशोधन से सविधान का प्रजातन्त्रात्मक रूप न बदला जा सकता था। यदि ऐसा प्रस्ताव कभी रखा भी जाता तो असेम्बली के सभापति को यह अधिकार था कि वह उसे अस्वीकार कर दे।

## विधानमंडल

सन् १८७५ के शासन सविधान से दो सदनो के स्थापित होने का आयोजन था। एक प्रतिनिधि सदन ( Chamber of Deputies ) कहलाता था और दूसरा ऊपरी सदन ( Upper House ) या सीनेट। सीनेट में ३१४ सदस्य थे जिनमें से २४६ निर्वाचित होते थे। बचे हुये ७५ स्थान, सन् १८७५ के अधिनियम के अनुसार उन व्यक्तियों से भरे जाते थे जिनको दोनो सदन जीवन भर के लिये चुने। किन्तु सन् १८८४ के सशोधन से जीवन-सदस्यों की मृत्यु होने पर सामान्य निर्वाचन से उनका स्थान भरा जा सकता था। सीनेट के सदस्यो का मतदारक-सघ निर्वाचन करते थे जैसे म्यूनिसिपल परिषदे, प्रातो के प्रतिनिधि, प्रातो के सामान्य कौंसिलर्स आदि इस प्रकार सीनट के सदस्य अप्रत्यक्ष ( Indirect election ) रूप से प्रजा के प्रतिनिधि होते थे। इसकी अवधि नौ वर्ष थी परन्तु यह कभी समाप्त न होती थी। प्रति तीन वर्ष बाद एक तिहाई सदस्य नये चुने जाते थे। अधिनियम बनाने मे सीनेट की वही शक्तियाँ थी जो प्रतिनिधि सदन की थी। मुद्रा विधेयक निचले सदन में ही प्रारम्भ होते थे। सीनेट-मुद्रा विधेयकों मे परिवर्तन कर सकती थी पर कर की मात्रा न बढा सकती थी। दोनो सदनो के मतभेदो को मिटाने के लिए दो कमीशन नियुक्त होते थे जो मिलकर विचार कर सकते थे पर वे पृथक पृथक होकर निर्णय करते थे। यदि समझौता न होता था तो प्रस्ताव गिर जाता था। सीनेट की पूर्व स्वीकृति से ही निचले सदन का विघटन हो सकता था। प्रेसीडेंट और मन्त्रियो के अभियोगों को सुनने के लिए सीनेट सर्वोच्च न्यायालय के समान कार्य करती थी। राष्ट्र की सुरक्षा भग करने वाले अपराधियो को भी न्यायालय के समान सीनेट दण्ड देती थी।

प्रतिनिधि सदन ( Chamber of Deputies )—यह प्रथम

सदन था। इसके सदस्य प्रौढ़ मताधिकार पद्धति से चुने जाते थे। कोई भी निर्वाचक जो २५ वर्ष का हो इस सदन की सदस्यता के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता था। राजवंशों के व्यक्ति प्रतिनिधि न चुने जा सकते थे। सन् १९२७ के बाद जो पद्धति प्रचलित थी उसके अनुसार ७५००० मतदाताओं के लिए एक प्रतिनिधि चुना जाता था। देश एक-प्रतिनिधिक क्षेत्रों (Single-member Constituencie.) में बांट दिया जाता था और एक मतदाता को एक मत देने का अधिकार था। सदन का सभापति अर्थात् स्पीकर हाउस आफ कामन्स के स्पीकर के समान निष्पक्ष व्यक्ति न होता था। वह अपने पद पर नियुक्त होने के बाद भी अपने पक्ष का सदस्य बना रहता था। और अपने पक्ष को अधिक सुविधायें देता था। स्पीकर एक शक्तिशाली व्यक्ति हो जाया करता था और प्राय स्पीकर प्रधानमन्त्री या प्रेसीडेंट के पद पर पहुँच जाता था। मुद्राविधेयक निचले सदन में ही प्रारम्भ होते थे। अन्य सब विषयों में दोनों सदनों की शक्तियां बराबर थी। वे दोनों मिल कर प्रेसीडेंट को चुनते थे और शासन-विधान में संशोधन कर सकते थे।

कार्य-पालिका—यद्यपि सन् १८७५ के शासन-विधान से संसदात्मक (Parliamentary) कार्यपालिका अपनाई गई किन्तु राजा के स्थान पर अध्यक्ष या प्रेसीडेंट बनाने का निर्णय हुआ। नेशनल असेम्बली अर्थात् विधान-मण्डल के दोनों सदन मिल कर प्रेसीडेंट को चुनते थे। प्रेसीडेंट निश्चित समय तक अपने पद पर बना रहता था। प्रेसीडेंट संधियां करता और उनका अनुसमर्थन (Ratification) करता था किन्तु दोनों सदनों की पूर्व सम्मति के बिना युद्ध की घोषणा न कर सकता था। वह राष्ट्र का अध्यक्ष होता था और इस पद के नाते उसका बाहरी रूप से बड़ा आदर, प्रभाव तथा ऐश्वर्य था। किंतु वास्तव में उसकी कार्यकारी शक्ति शून्य के बराबर थी।

मंत्रिपरिषद्—सन् १८७५ में ही फ्रांस में संसदात्मक कार्यपालिका प्रणाली अपनाई गई। मंत्रियों के सम्बन्ध में शासन-विधान में निम्नलिखित सिद्धांत दिये हुए थे।

(१) प्रेसीडेंट के सब आदेश किसी एक मंत्री के समर्थन-सूचक हस्ताक्षरों से ही कार्यान्वित हो जाते हैं।

(२) मंत्री सरकार की नीति के लिये सामुदायिक रूप से दोनों सदनों को उत्तरदायी होंगे और अपने शासन-विभाग की कार्यवाही के लिये वैयक्तिक रूप में उत्तरदायी होंगे।

(३) प्रेसीडेंट केवल देशद्रोह का अपराधी हो सकता है।

(४) प्रेसीडेंट अपने सदेश द्वारा ही विधान मडल से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। यह सदेश सदनों म किसी मत्री द्वारा पढ कर सुनाया जा सकता है।

(५) मत्री किसी भी सदन मे बोल सकता है।

(६) विधानमडल से पास होकर और किसी मत्री द्वारा समर्थन-सूचक हस्ताक्षर हो जाने पर विधेयक प्रेसीडेंट द्वारा अधिनियम घोषित किया जा सकता है, यदि एक मास के भीतर प्रेसीडेंट उसे दोनो सदनो द्वारा पुर्नविचार करने के लिये वापस न कर दे। व्यवहार में जब विधानमण्डल किसी मत्री के कार्य की निन्दा करती है तो मत्रिमण्डल पद त्याग कर देता है और नये मत्रिमण्डल से पुराने मत्रिमण्डल के उस मत्री को बाहर कर दिया जाता है जिसके कारण मत्रिमण्डल को पद त्याग करना था। इस प्रथा का कारण यह है कि कोई भी मत्रिमण्डल इतना दृढ नही होता कि वह विधानमडल के विघटन की प्रार्थना करे। विधानमण्डल इसीलिये अपने निश्चित काल, ४ वर्ष तक कार्य करती रहती है।

संसदात्मक शासन प्रणाली की असफलता—फ्रास ने ब्रिटिश प्रणाली को अपनाया तो सही पर उसके चलाने में उसे सफलता न हुई। फ्रास में ब्रिटिश ढग की मत्रिपरिषद् की सफलता के लिये आवश्यक परिस्थिति वर्तमान न थी। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी बातें भी थी जिनके कारण वे रूढियाँ और प्रथायें सर्वमान्य न हो सकी जिनसे फ्रास की मत्रिपरिषद् प्रणाली में स्थिरता आती। फ्रास की मत्रिपरिषद् की अस्थिरता के कई कारण थे।

पहला—इगलैंड की तरह फ्रास में मत्रि मण्डल के पद त्याग से शासन नीति में कोई अन्तर न पडता था। इगलैंड में मत्रि परिषद् तभी पद-त्याग करती थी जब उसकी नीति का हाउस आफ कामन्स में विरोध हो या उसका विघटन किये जाने पर नये निर्वाचन में निर्वाचक जनता उसकी नीति से सहमत न होने के कारण उनके पक्ष के बहुसख्यक प्रतिनिधि न चुने। ऐसा असमर्थन होने से नया मत्रिमण्डल स्थान ग्रहण करता था और नये मत्रि-मण्डल का बनना इस बात का स्पष्ट निर्देश था कि शासन नीति में परिवर्तन हो गया। किंतु फ्रास में मत्रि-परिषद् में इतना बल न था कि वह अपनी नीति,की विवेक पूर्णता को दिखलाने के लिये सदन का विघटन करा कर जनता से समर्थन की प्रार्थना करे।

दूसरा—मत्रि परिषद् अपनी नीति को कार्यान्वित करने वाले कानूनों के बनने में निचले सदन के कमीशन पर निर्भर रहती थी। मत्रि-परिषद्

द्वारा जो विधेयक भी सदन में विचारार्थ प्रस्तुत होता था वह इस कमीशन को राय के लिये भेजा जाता था। इस कमीशन में प्राय (सदन में कई राजनीतिक पक्षों के होने के कारण) मन्त्रिपरिषद् के विरोधी ही होते थे, जो परिषद् की योजना में इतना परिवर्तन करने का प्रयत्न करते थे कि परिषद् स्वयं ही उस योजना की अस्वीकृति चाहने लगती थी जिससे परिषद् पदत्याग कर दे और नई परिषद् बने।

तीसरा—मन्त्रिपरिषद् आर्थिक नीति पर नियन्त्रण करने की शक्ति न रखती थी। मन्त्रिपरिषद् में इतनी शक्ति न थी कि वह सदन का विघटन करा सके। इसलिये विरोधी पक्ष को सामान्य निर्वाचन होने पर अपनी सदस्यता खोने का डर न रहता था। वे आर्थिक प्रस्तावों में बिना किसी डर के संशोधन करते थे, जिससे परिषद् को ऐसी आर्थिक स्थिति में काम करना पड़ता था जो उसकी सुविधाजनक या उसकी इच्छा के अनुकूल न होती थी। परिषद् इसलिए स्वयं भी पदत्याग कर अपने पुनर्गठन का अवसर देखा करती थी जिससे विरोधी पक्ष के व्यक्तियों को नई परिषद् में शामिल कर विरोध कम किया जा सके।

चौथा—संसदात्मक प्रणाली में यह देखा गया है कि दो राजनैतिक पक्षों का होना ही उसे सफल बना सकता है। फ्रांस की लोकसभा में निर्वाचन पद्धति के कारण दो से अधिक राजनैतिक पक्ष बनने का अवसर रहता था जिसका परिणाम यह होता था कि कोई भी पक्ष इतना शक्तिशाली न रहता था जो एक सुदृढ स्थायी मन्त्रिपरिषद् बना सके। प्राय विरोधी नीति और कार्यक्रम वाले पक्षों की मिली जुली सरकार बनती थी जो अधिक दिन तक न चल सकती थी।

पाँचवा—इंगलैंड में पार्लियामेंट के सदस्यों को प्रश्नों द्वारा सूचना प्राप्त करने का अधिकार है परन्तु यह अधिकार केवल सूचना प्राप्त करने तक ही सीमित है। मन्त्रिमंडल यदि चाहे तो किसी प्रश्न का उत्तर देने से मना कर सकता है। किन्तु फ्रांस में शुक्रवार के प्रश्न केवल सूचना ही प्राप्त करने के लिये न किये जाते थे किन्तु उनके द्वारा सरकार की नीति पर भी विचार करने का प्रयत्न किया जाता था। यदि सरकार का उत्तर संतोषजनक न समझा जाता था तो उस पर वाद विवाद होता था, मत लिये जाते थे और यदि सदन सरकार के उत्तर से इस मत प्रकाशन द्वारा असंतोष प्रकट करता था तो परिषद् पद त्याग कर देती थी।

छठा—फ्रांस की मन्त्रिपरिषद में सामुदायिक उत्तरदायित्व न होता

था। विभिन्न राजनैनिक पक्षो में से लिये जाने के कारण मन्त्रियो से यह आशा करना व्यर्थ था कि वे सदन में एक दूसरे का समर्थन करते। एक्य-भाव का अभाव इसलिये न था कि उनमें पारस्परिक द्वेप रहता था किन्तु बात यह थी कि ऐसी सस्था से दृष्टिकोण की एकता न हो सकती थी और उद्देश्य भी प्रत्येक मत्री का एक न होता था। इसलिये यह स्वाभाविक था कि मन्त्रिमण्डल को फोडने का कोई न कोई बहाना सरलता से ही मिल जाता था।

उपर्युक्त कारण वश फ्रास मन्त्रिमडल अचिरजीवी रहता था। सन् १८७५ के पश्चात् ४३ वर्ष के समय में ६४ मन्त्रिमण्डल बने अर्थात् मन्त्रिमडल की औसतन अवधि ६३ मास रही। सन् १६२६-१६३८ के बीच में अर्थात् १२ साल में २४ मन्त्रिमडल बने। इगलैंड में उतने ही समय म केवल ५ मन्त्रिपरिषदें बनी।

**फ्रांस के चतुर्थ प्रजातन्त्र का शासन-विधान**—सन् १६४० में तृतीय प्रजातन्त्र की करारी हार हुई। अगले चार वर्षो में फ्रास का शासन जर्मनी के अधिकार में रहा यद्यपि मार्शल पेता की विची (Vichy) सरकार को कार्य करने की थोडी सी स्वतन्त्रता अवश्य थी। जनरल डी गाले ने यह घोषणा की कि वे फ्रास के बाहर से जर्मनी के विरुद्ध युद्ध करेंगे। इस उद्देश्य से एलजिअर्स मे फ्रास की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की एक समिति बनाई गई। सन् १६४३ में परामर्श देने वाली एक परिषद् बनाई गई जिसम सब पूर्व राजनैतिक पक्षो के प्रतिनिधि सदस्य बनाये गये। यह फ्रास की सकट-कालीन सरकार थी। सन् १६४४ में यह सरकार एलजियर्स से पेरिस आ गई। परामर्शदात्री परिषद् के सदस्यो की सख्या बढा दी गई। सन् १६४५ के अक्टूबर मास की २५ तारीख को विधान-परिषद् के सदस्यो का चुनाव हुआ। इस परिषद को एक नये सविधान के बनाने का काम सौंपा गया। साथ साथ परामर्शदात्री परिषद् की शक्ति की सीमा भी निर्धारित कर दी गई। सविधान परिषद् में समाजवादियो की सख्या अधिक थी। सन् १६४६ की १६ अप्रैल को २४६ विरोधी और ३०६ पक्षवाले मतो से नया सविधान स्वीकृत हो गया। किन्तु जब यह शासन विधान लोक निर्णय के लिये रखा गया तो उसके पक्ष में ८,६००,००० और विरोध में १,००,००,००० मत आये जिससे यह सविधान अस्वीकृत हो गया। एक दूसरी विधान-परिषद् बुलाई गई और दूसरा सविधान बनाने का काम सौंपा गया। अक्टूबर १३ सन् १६४६ को इस द्वितीय विधान परिषद द्वारा तैयार किया हुआ शासन विधान स्वीकृत हुआ। इस सविधान के पक्ष में ६०,००,०००, और विरोध म

७०,००,००० मत पाये। इस संविधान के अन्तर्गत फ्रांस के चतुर्थ प्रजातंत्र शासन का श्रीगणेश हुआ। अप्रैल व अक्टूबर के शासन विधान में जो विशेष ध्यान देने योग्य अन्तर है वह पार्लियामेंट के संगठन के सम्बन्ध में है। पहले संविधान में एक सदन की पार्लियामेंट थी, उस नये संविधान ने दो सदनों का आयोजन किया है। पहले मसविदे में विधान में सब संशोधनों पर लोकनिर्णय आवश्यक था किन्तु नये संविधान में बिना लोक-निर्णय के भी विधान-संशोधन सम्भव है। दोनों मसविदों में प्रेसीडेंट की शक्तियों के सम्बन्ध में भी भारी अन्तर है। नये संविधान में पूर्व संविधान में दिये हुये मूलाधिकारों को कम कर दिया गया है।

**शासन-विधान के सिद्धान्त**—सन् १९४६ का फ्रांस का शासन-विधान एक विचित्र ढंग का है। इसकी प्रस्तावना में ही उन सिद्धांतों को जिन पर यह बनाया गया है घोषणा कर दी गई है और उसमें नागरिकों के रक्षित अधिकारों का भी उल्लेख कर दिया गया है। यह मनुष्य की व नागरिकों की स्वतंत्रता की घोषणा करता है। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक मनुष्य के, चाहे वह किसी जाति, धर्म या सम्प्रदाय का हो, कुछ पुनीत अधिकार है जो दूसरे को सौंपे नहीं जा सकते। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह काम करे और यह अधिकार है कि उसे जीविका का साधन दिलाया जाय। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी मजदूर संघ का सदस्य होने के लिए स्वतंत्र है और उस संघ द्वारा प्राप्त सुविधाओं व अधिकारों का भोग करने के लिए तत्पर है। मजदूरों को कानून की सीमा के अन्तर्गत हड़ताल करने का अधिकार है वे सामुदायिक रूप से अपनी मजदूरी आदि का सौदा करने के लिए स्वतन्त्र है। अपाहिज व अनाथ व्यक्ति समाज से भरण-पोषण के साधन ले सकते हैं। सब बच्चों व युवा पुरुषों को व्यावसायिक शिक्षण व संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार है। संविधान सब को, विशेष कर बच्चों माताओं और वृद्धों को, स्वास्थ्य, जीविका, विश्राम व अवकाश प्राप्त कराने का संकल्प करता है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार दे दिये गये हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शासन विधान में यह कहा गया है कि पारस्परिकता के आधार पर फ्रांस शान्ति के लिये अपनी सर्वोच्च सत्ता पर अंकुश रखने को तैयार है।

संविधान में यह कहा गया है कि फ्रांस एक प्रजातंत्रात्मक गणराज्य है। 'स्वतंत्रता, समानता व मित्रता" यह इसका मूलमन्त्र है "जनता द्वारा

जनता के लिये जनता की सरकार" यह इसका सिद्धात है । राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता फ्रास की जनता मे विहित है । इस सत्ता को वैधानिक मामलो में जनता अपने प्रतिनिधियो द्वारा या लोक निर्णय द्वारा कार्यान्वित करती है । दूसरे मामलो में जनसत्ता नेशनल असेम्बली में प्रौढ मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा ( गुप्त शलाका से ) चुने हुए प्रजा के प्रतिनिधियो से कार्यान्वित होगी । फ्रास के सब नागरिक (स्त्री या पुरुष) जो प्रौढावस्था में पहुच चुके हो और नागरिक अधिकार से वचित न हो, वे निर्वाचन में भाग ले सकते है ।

## विधानमण्डल

नये प्रजातन्त्रात्मक शासन में पालियामेंट व्यवस्थापन कार्य करती है । इस पालियामेंट के दो सदन है, एक नेशनल असेम्बली और दूसरा प्रजातन्त्र की कौंसिल कहलाता है । दोनो सदनो के प्रतिनिधि प्रादेशिक आधार पर चुने जाते हैं । नेशनल असेम्बली अर्थात् लोक सभा प्रौढ मताधिकार से चुनी जाती है, कौंसिल जो दूसरा या ऊपरी सदन है अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा प्रातीय निर्वाचन सघो द्वारा चुनी जाती है ।

असेम्बली का कार्यकाल, इसकी निर्वाचन-पद्धति और अन्य सम्बन्धित बाते अधिनियम द्वारा निश्चित होती हैं । कौसिल के सदस्यो की अवधि छ साल है । आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते है और नये सदस्य चुने जाते है । नेशनल असेम्बली भी अनुपाती प्रतिनिधिक प्रणाली से कौंसिल के कुल सदस्यो मे छटे भाग के बराबर सदस्यों को चुनती है । कौंसिल के सदस्यों की कुल सख्या नेशनल असेम्बली के कुल सदस्यो की कुल सख्या के एक तिहाई से कम और आधे से अधिक नही हो सकती ।

प्रत्येक सदन अपने सदस्यो के चुनाव के वैध अवैध होने के सम्बन्ध में और उनकी योग्यता के सम्बन्ध में पृथक पृथक निर्णय करता है ।

५ अक्टूबर सन् १९४६ को सविधान परिषद् ने एक अधिनियम बनाया जिसके अनुसार नेशनल असेम्बली के सदस्यों की सख्या ६१९ निर्धारित की गई । ( फ्रास के ५४४, ऐलजियर्स के ३० और समुद्रपार के प्रदेशों के ४५ प्रतिनिधि निश्चित किये गये ) । पहला निर्वाचन १० नवम्बर १९४८ को हुआ । प्रत्येक पक्ष को अपनी लिस्ट से वोटो के अनुपात से सदस्य मिले । कौंसिल के सदस्यो की कुल सख्या ३२० निर्धारित की गई जिनमें फ्रास को २५५, ऐलजियर्स को १४ और समुद्रपार प्रदेशों को ५१ सदस्य दिये गये ।

कौंसिल का प्रथम निर्वाचन नवम्बर १९४८ में हुआ। दोनों सदनों की बैठकें साथ साथ होती हैं। नेशनल असेम्बली अपनी वार्षिक बैठक प्रति वर्ष जनवरी के दूसरे मंगलवार को प्रारम्भ करती है, बैठकों में जनता दर्शक की तरह जा सकती है किन्तु आवश्यकता पड़ने पर गुप्त बैठकें भी हो सकती हैं। दोनों सदन संयुक्त बैठक में प्रेसीडेंट का चुनाव करते हैं।

**सदस्यों के अधिकार और उनको प्राप्त विशेष सुविधायें**—जैसे अन्य प्रजातन्त्रों में वैसे ही फ्रांस में व्यवस्थापकों को कुछ अधिकार और विशेष सुविधायें प्राप्त हैं। पार्लियामेंट के भीतर उन्हें बोलने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। अपने भाषण में कही हुई किसी बात पर या अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अपना मत प्रकट करने पर न उन्हें पकड़ा जा सकता है न उन पर मुकदमा चलाया जा सकता है, न उन्हें दण्ड दिया जा सकता है। बिना सदन की अनुमति के उसके किसी सदस्य को पार्लियामेंट के सत्र में किसी अपराध के लिये पकड़ा नहीं जा सकता। पार्लियामेंट के सदस्यों को कानून से निश्चित भत्ता मिलता है। कोई भी व्यक्ति दोनों सदनों का एक ही समय में सदस्य नहीं हो सकता न पार्लियामेंट का कोई सदस्य एक ही समय पार्लियामेंट का और आर्थिक परिषद् या संघ की असेम्बली का सदस्य रह सकता है।

**सदनों का व्यावहारिक रूप**—दोनों सदन वार्षिक बैठक के आरम्भ में ही अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली से सचिवों का चुनाव कर लेते हैं। सचिवों में विभिन्न राजनैतिक पक्षों के प्रतिनिधि पक्ष की संख्या के अनुसार आ जाते हैं। प्रेसीडेंट पार्लियामेंट को बुलाता है। प्रधानमंत्री या नेशनल असेम्बली के एक तिहाई सदस्य बैठक होने की मांग कर सकते हैं। नेशनल असेम्बली लोकप्रिय होने से कौंसिल से अधिक शक्तिशाली है। अधिनियमों का निर्माण नेशनल असेम्बली ही कर सकती है यह अपनी इस शक्ति को दूसरे किसी संस्था को नहीं सौंप सकती। प्रधानमंत्री और पार्लियामेंट के सदस्य प्रस्तावों व योजनाओं को पार्लियामेंट के सम्मुख रख सकते हैं। कौंसिल अधिनियमों को दुहराने वाला सदन है यह केवल अधिनियमों के बनने में देर लगा सकता है। कौंसिल के सदस्य भी कौंसिल में योजनाओं का प्रस्ताव कर सकते हैं। प्रस्ताव के होने के बाद ये योजनायें कौंसिल के सचिवालय में जमा हो जाती हैं। और फिर वहाँ से वे नेशनल असेम्बली के सचिवालय को भेज दी जाती हैं। जिन विधेयकों का प्रस्ताव असेम्बली के प्रतिनिधि करते हैं वे भी असेम्बली के सचिवालय में जमा हो जाते हैं।

इन जमा किये हुये या कौंसिल के सचिवालय से भेजे हुये प्रस्तावों पर असेम्बली से नियुक्त समितियां विचार करती हैं। जब कोई योजना असेम्बली में स्वीकार हो जाती है तब वह कौंसिल में भेज दी जाती हैं। कौंसिल को इस योजना पर अपनी राय दो मास के भीतर देनी पड़ती है। बजट के लिये दो मास का यह समय इतना घटाया जा सकता है कि वह उस समय से अधिक न हो जो असेम्बली ने बजट पर विचार करने और पार (पास) करने में लगाया हो। आवश्यकता पड़ने पर नेशनल असेम्बली किसी अन्य आवश्यक विषय में भी कौंसिल के विचारार्थ दो मास के समय को घटा सकती है। यदि निश्चित समय के भीतर कौंसिल अपनी राय नहीं दे पाती तो नेशनल असेम्बली से जिस रूप में विधेयक पास हो चुकता है उसी रूप में कानून घोषित कर दिया जाता है।

यदि कौंसिल योजना से सहमत नहीं होती और संशोधनों का सुझाव पास करती है तो नेशनल असेम्बली योजना पर पुर्नविचार करती है और ऐसा करने में कौंसिल के संशोधनों पर ध्यान रखती है। उसके पश्चात् उस योजना पर खुले तौर पर मत लिया जाता है और कुल सदस्यों के बहुमत से ही वह योजना पास हो सकती है।

राज्यकोष पर असेम्बली का पूरा अधिकार रहता है। असेम्बली में ही बजट के प्रस्ताव रखे जा सकते हैं। इन प्रस्तावों में आय व्यय के अतिरिक्त और कोई विषय नहीं रह सकता, नेशनल असेम्बली आय-व्यय के हिसाब पर हिसाबी न्यायालय ( Account Courts ) के द्वारा नियन्त्रण करती है। सामान्य क्षमादान पार्लियामेंट द्वारा बनाये हुये कानून से ही दिया जा सकता है।

**आर्थिक परिषद्**—फ्रांस के शासन-विधान पर उन समाजवादी प्रवृत्तियों की छाप लगी हुई है जो पिछले बीस साल में फ्रांस की राजनीति में प्रमुखतया दृष्टिगोचर होती रही है। शासन विधान में एक आर्थिक परिषद् के स्थापित करने का आयोजन है, इस परिषद् के वही कर्तव्य है जो जर्मनी में वीमार (Weimar) शासन-विधान के अन्तर्गत स्थापित राष्ट्रीय-आर्थिक परिषद (National Economic Council) के कर्तव्य थे। फ्रांस की आर्थिक परिषद् की क्या शक्ति होगी यह साधारण कानून से निश्चित हो सकता है। जर्मनी की परिषद् की शक्तियाँ संविधान द्वारा ही निश्चित थी। फ्रांस की आर्थिक-परिषद् परामर्श देने वाली संस्था है जो उसके क्षेत्र में पड़ने वाली अधिनियम योजनाओं की परीक्षा करती है और उनके पास होने के पूर्व उनके

बारे में अपनी राय देती है। कुछ योजनाओं पर विचार करने और पास करने के पूर्व असेम्बली उन्हें इस आर्थिक-परिषद् के पास उसकी राय के लिये भेजती है। फ्रांस की मंत्रिपरिषद् भी आवश्यकता पड़ने पर इस परिषद् से सलाह ले सकती है। किन्तु सारी जनता को काम दिलाने वाली और राष्ट्र की द्रव्य सम्पत्ति का युक्तिसंगत उपयोग कराने वाली आर्थिक योजना बनाने के लिये इस आर्थिक परिषद् की सलाह लेना अनिवार्य है। समाजवादी इस परिषद् से सन्तुष्ट होंगे या नहीं यह देखना है। भय यह है कि यही जर्मनी की परिषद् के समान यह भी असफल सिद्ध न हो।

## चतुर्थ प्रजातंत्र की कार्यपालिका

चतुर्थ प्रजातंत्र की सरकार की कार्यपालिका का दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है, एक नाममात्र की कार्यपालिका जैसे प्रेसीडेंट और दूसरी वास्तविक कार्यपालिका जैसे मंत्रिपरिषद्।

**प्रेसीडेंट**—राज्य का अध्यक्ष प्रेसीडेंट कहलाता है जिसको चुनने के लिए दोनों सदन अपनी संयुक्त बैठक करते हैं और किसी व्यक्ति को प्रेसीडेंट चुनते हैं, वह ७ वर्ष के लिये चुना जाता है। एक ही व्यक्ति दो बार लगातार प्रेसीडेंट निर्वाचित हो सकता है किन्तु तीसरी बार नहीं हो सकता। १६ जनवरी १६४७ को नेशनल असेम्बली और कौंसिल के संयुक्त सम्मेलन में पहले प्रेसीडेंट का निर्वाचन हुआ। उन राज्य घरानों के व्यक्ति जिन्होंने फ्रांस में राज्य किया है प्रेसीडेंट नहीं बनाये जा सकते। राज्य का अध्यक्ष होने से सब सरकारी उत्सवों में जिसका अगुआ समझा जाना के अतिरिक्त प्रेसीडेंट की कुछ निश्चित शक्तियां और कर्तव्य भी हैं। वह मंत्रिपरिषद् की बैठकों में सभापति रहता है और उन बैठकों की कार्यवाही की रिपोर्टों को अपने पास सुरक्षित रखता है। वह राष्ट्रीय सुरक्षा समिति में भी सभापति का आसन ग्रहण करता है और सेनाध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता है। मजिस्ट्रेटों की उच्च समिति का भी वह सभापति होने से क्षमादान की शक्ति का उपभोग करता है।

**नियुक्ति करने की शक्ति**—नियुक्तियां करने की प्रेसीडेंट को भारी शक्ति है। वह प्रधान मंत्री को नियुक्त करता है और प्रधान मंत्री की सलाह से दूसरे मंत्रियों को। इनके अतिरिक्त प्रेसीडेंट (१) ग्रांड चांसलर आफ दी लीजन आफ ऑनर, (२) राजदूतों, (३) राष्ट्रीय सुरक्षा समिति व उच्चसमिति के सदस्यों (४) विश्व विद्यालयों के कुलपतियों, (५) प्रांतीय अधिकारियों,

(६) केन्द्रीय शासन के अध्यक्षो, (७) सामान्य अफसरो और, (८) विदेशो में सरकार के प्रतिनिधियो की नियुक्ति करता है।

**प्रेसीडेंट और विधानमंडल**—राज्य का अध्यक्ष होने से प्रेसीडेंट विधानमडल द्वारा पास किये हुये विधेयको को घोषित कर कानून का रूप देता है, यह घोषणा असेम्बली से विधेयक के प्राप्त होने के दस दिन के भीतर करनी पडती है। यदि आवश्यक हो तो असेम्बली इस समय को घटा कर पाच दिन कर सकती है। प्रेसीडेंट यदि चाहे तो इस समय के भीतर असेम्बली से विधेयक पर पुनर्विचार करने के लिये कह सकता है। यदि प्रेसीडेंट न घोषणा करे और न पुनर्विचार के लिये विधेयक को वापस करे तो असेम्बली का सभापति इसकी घोषणा कर इसे कानून का रूप देता है। प्रेसीडेंट नेशनल असेम्बली को सदेश भेज कर उसे अपने विचारो से सूचित कर सकता है।

**प्रेसीडेंट संविधानिक अध्यक्ष है**—यह निस्सन्देह ठीक है कि तृतीय प्रजातत्र की अपेक्षा चतुर्थ प्रजातत्र में प्रेसीडेंट की शक्तिया कही अधिक हैं परन्तु फिर भी ये अमेरिका के प्रेसीडेंट की शक्तियो से बहुत कम हैं क्योकि प्रेसीडेंट का कोई भी आदेश वैध नही समझा जाता यदि उसपर प्रधानमत्री या किसी मत्री के हस्ताक्षर नही होने। इससे स्पष्ट है कि वह केवल एक वैधानिक अध्यक्ष है जो मत्रिपरिषद् की सलाह से कार्य करता है।

**मंत्रिपरिषद्**—वास्तविक शासन शक्ति मत्रिपरिषद् के पास रहती है जो विधानमडल अर्थात् असेम्बली को उत्तरदायी है। परिषद् बनाने का ढग यहा अन्य ससदात्मक राज्यों में सामान्य तया अपनाये जाने वाले ढग से भिन्न है। शासन विधान के ४५ वे अनुच्छेद में कहा गया है कि "प्रत्येक विधानमडल के कार्यारम्भ होने पर रीत्यानुसार सलाह लेकर प्रेसीडेंट प्रधान-मत्री नियुक्त करेगा"। दृढ मत्रिपरिषद् बनाने के उद्देश्य से परिषद् बनाने से पूर्व प्रधानमत्री नेशनल असेम्बली का विश्वास एक निश्चित विश्वास प्रस्ताव द्वारा प्राप्त कर लेता है। यदि प्रतिनिधि पूर्ण मताधिक्य से प्रधान-मत्री में अपना विश्वास प्रकट करते हैं तो प्रधानमत्री अपने मित्र मत्रियों को चुनना प्रारम्भ करता है और उनके नाम प्रेसीडेट के सामने प्रस्तुत करता है जो अपने आदेश से उन्हे घोषित कर देता है।

**प्रधान मंत्री की शक्तियां**—प्रधान मत्री कुछ विशेष शक्तियो का उप-भोग करता है। विधान-मडल से पास हुये सब अधिनियमों को कार्यान्वित करने का वह प्रबन्ध करता है। कुछ अफसरों को छोड़कर जिनकी नियुक्ति प्रेसीडेंट

करता है, बचे हुए सब पदाधिकारों को (शासन में व सेना में) प्रधान मंत्री नियुक्त करता है। प्रधानमंत्री सेना में सञ्चालन का प्रबन्ध करता है और सुरक्षा की योजनाओं को कार्यान्वित करने का आवश्यक प्रबन्ध करता है। किन्तु एक विचित्र बात यह है कि इन सब कार्यों के सम्बन्ध में प्रधान मंत्री जो आदेश देता है उन पर किसी एक मंत्री के समर्थन सूचक हस्ताक्षर होना आवश्यक है। ऐसी प्रथा अन्य संसदात्मक राज्य संगठनों में प्रचलित नहीं है। वैधानिक दृष्टि से फ्रांस में प्रधान मंत्री का पद अन्य देशों के प्रधान मंत्री से ऊंचा है।

**मंत्रिपरिषद् और विधानमंडल**—मंत्रिपरिषद् और मंत्रियों के उत्तरदायित्व का रूप संविधान द्वारा निश्चित है। वे नेशनल असेम्बली को (कौंसिल को नहीं) परिषद् की सामान्य नीति के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी हैं और अपने वैयक्तिक कार्यों के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी रहते हैं। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद् की सलाह से कभी भी विश्वास प्रस्ताव द्वारा अपने प्रति नेशनल असेम्बली के विश्वास की परीक्षा कर सकता है। असेम्बली का अविश्वास पूर्णमताधिक्य (Absolute Majorty) से ही मान्य ठहराया जा सकता है। पूरे एक दिन तक अपने पास रखने के पश्चात् यदि नेशनल असेम्बली मंत्रिमंडल की निन्दा करने वाला प्रस्ताव पास कर दे तो मंत्रिमंडल पदत्याग कर देता है। नेशनल असेम्बली के सदस्यों का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व-प्रणाली से होता है जिससे प्रत्येक राजनैतिक पक्ष के कुछ न कुछ प्रतिनिधि निर्वाचित हो ही जाते हैं। इस प्रकार असेम्बली में कई राजनैतिक पक्ष या समूह रहते हैं। इन पक्षों की अनेकता के कारण ही तीसरे प्रजातंत्र में मंत्रिपरिषदें अस्थिर रहा करती थीं। किन्तु चतुर्थ प्रजातंत्र की परिषद् में स्थिरता लाने के लिए संविधान द्वारा यह आयोजन कर दिया गया है कि यदि १८ मास के भीतर दो बार मंत्रिपरिषद् पर संकट आवे तो परिषद् प्रेसीडेंट की सम्मति से असेम्बली का विघटन करा सकती है। विघटन का निर्णय प्रेसीडेंट के आदेश से होता है। असेम्बली के विघटन हो जाने पर प्रधानमंत्री व गृहमंत्री को छोड़कर परिषद् के सब मंत्री सामान्य काम चलाने के लिए अपने पदों पर स्थित रहते हैं। इस अन्तरिम काल के लिए प्रेसीडेंट असेम्बली के सभापति को प्रधानमंत्री नियुक्त कर देता है। यह प्रधानमंत्री असेम्बली के सचिवालय (Secretariat) की सलाह से किसी मंत्री को गृहमंत्री बनाता है। विघटन हो जाने के पश्चात् कम से कम २० और अधिक से अधिक ३० दिन के भीतर नई असेम्बली निर्वाचित हो जाती है और सामान्य निर्वाचन के पश्चात् तीसरे मंगलवार को अपनी बैठक करती है।

मंत्रियों के दोनों सदनों में उपस्थित रहने और बोलने का अधिकार रहता है। प्रधानमंत्री अपनी शक्तियों को किसी अन्य मंत्री के सुपुर्द कर सकता है। मृत्यु होने से प्रधानमंत्री का स्थान रिक्त होने पर परिषद् अपने में से किसी को प्रधानमंत्री नियुक्त कर देती है। यह व्यक्ति नये प्रेसीडेंट द्वारा प्रधानमंत्री के नियुक्त होने तक प्रधानमंत्री का काम करता रहता है।

प्रेसीडेंट और मंत्री अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी रहते हैं। ४२ वें अनुच्छेद के अनुसार प्रेसीडेंट पर देशद्रोह का अभियोग लगाया जा सकता है। इस अभियोग का प्रस्ताव नेशनल असेम्बली द्वारा पास होना चाहिये। उसके पश्चात् हाई कोर्ट उस अभियोग की परीक्षा करती है। यह हाई कोर्ट इस काम के लिए नये विधानमंडल की प्रथम बैठक में ही निर्वाचित कर दी जाती है। मंत्री भी अपने कर्तव्य का पालन करते हुए जो अपराध कर बैठें उसके लिए दण्ड के भागी हो सकते हैं। असेम्बली ही गुप्त शलाका द्वारा और पूर्ण मताधिक्य से यह निश्चय करती है कि प्रेसीडेंट या मंत्रियों पर देशद्रोह या अन्य किसी अपराध का अभियोग लगाकर उसकी जांच की जाय या नहीं।

## शासन-विधान का संशोधन

संविधान में उसके सुधार की रीति स्पष्टतया निश्चित कर दी गई है। संशोधन कार्य में दो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। एक यह कि प्रजातंत्रात्मक गणराज्य का रूप संविधान संशोधन से नहीं बदला जा सकता। दूसरा कौंसिल के अस्तित्व के सम्बन्ध में कोई भी संशोधन का प्रस्ताव तब तक स्वीकृत नहीं हो सकता जब तक कि उस प्रस्ताव से कौंसिल सहमत न हो या जब तक उस पर लोक निर्णय न लिया गया हो। जब तक फ्रांस की राष्ट्रीय भूमि पर विदेशी सेनायें रहें तब तक संविधान संशोधन की कोई कार्यवाही न आरम्भ की जा सकती है न जारी रखी जा सकती है।

उपर्युक्त प्रतिबन्धों के अन्तर्गत शासन विधान का संशोधन इस प्रकार हो सकता है। प्रथम नेशनल असेम्बली इस विषय का प्रस्ताव पास करती है जो पूर्ण मताधिक्य से ही पास हो सकता है। इस प्रस्ताव में संशोधन के उद्देश्य का उल्लेख होना है। पास हो जाने के बाद यह प्रस्ताव कौंसिल को भेज दिया जाता है। यदि कौंसिल में भी वह प्रस्ताव पूर्ण मताधिक्य से स्वीकृत हो जाता है या स्वीकार न होने पर असेम्बली पूर्ववत् पुनः उसे पास कर देती है तो असेम्बली उस संशोधन का मसविदा तैयार करती है। विधान संशोधन

के विधेयक (Bill) को पार्लियामेंट सामान्य विधेयकों के समान विचार करने के पश्चात् पास कर सकती है। पास हो जाने के बाद यह लोक निर्णय के लिये रखा जाता है। यह संशोधन लोक निर्णय के लिये नहीं रखा जाता है यदि (१) द्वितीय वाचन में असेम्बली उसे दो-तिहाई मताधिक्य से पास कर दे या (२) दोनों सदनों में ३/५ के मताधिक्य से यह स्वीकृत हुआ हो। इससे स्पष्ट है कि फ्रांस में संविधान का संशोधन एक विचित्र ढंग पर होता है जिससे इसका संशोधन कठिन साध्य है। इन दोनों व्यवस्थाओं को छोड़ कर संशोधन के लिये लोक-निर्णय आवश्यक होने से इस पर प्रजा का नियन्त्रण रहता है।

फ्रांस में एक वैधानिक समिति भी है जिसका सभापति प्रेसीडेंट होता है और प्रेसीडेंट के अतिरिक्त नेशनल असेम्बली का सभापति, कौंसिल का सभापति और १० अन्य व्यक्ति सदस्य होते हैं। इन दस में से सात को असेम्बली चुनती है और ३ सदस्यों को कौंसिल। ये दसों सदस्य पार्लियामेंट के सदस्य न होने चाहियें। इनका निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली से होता है। इस समिति का यह काम है कि किसी अधिनियम के पास होने पर यह निश्चय करे कि उस अधिनियम से शासन विधान का संशोधन होना है या नहीं, यदि उस अधिनियम के बन जाने से विधान संशोधन होता हो तो विधिपूर्वक संशोधन होते समय तक उस अधिनियम की घोषणा नहीं की जाती।

दूसरे राष्ट्रों से जो संधियां की जाती हैं वे अनुसमर्थित होकर प्रकाशित होने पर राष्ट्र के कानून के समान लागू होती हैं चाहे वे राष्ट्र के अन्य कानूनों के विरुद्ध हों। उनको लागू करने के लिये उन्हें स्वीकार करने के अतिरिक्त किसी और अधिनियम को बनाने की आवश्यकता नहीं होती। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वाली व मुद्रा वाली संधियां, व्यापारिक समझौते और वे संधियां जिनको कार्यान्वित करने में राज्यकोष से धन व्यय करना पड़े, या जिनका फ्रांस के नागरिकों के मान पर दूसरे राष्ट्रों में प्रभाव पड़ता हो, वे संधियां जिनका प्रभाव राष्ट्रीय कानूनों पर पड़ता हो या जिनसे राष्ट्र की भूमि दूसरों को दी जाती हो, या उसमें वृद्धि होती हो, ये सब तब तक लागू नहीं होतीं जब तक अधिनियम बना कर ये स्वीकृत न कर ली गई हों। इस प्रकार स्वीकृत हो जाने पर इनमें न कोई संशोधन हो सकता है, न इन्हें स्थापित किया जा सकता है जब तक कि सामान्य कूटनैतिक रीति से उन्हें अमान्य न कर दिया गया हो।

## न्यायपालिका

ब्रिटिश और फ्रेंच संविधान प्रणालियो में एक महत्वपूर्ण अन्तर इन दोनो देशो के कानून और न्यायालयो के विकास का है। इसका कारण यह है कि "बहुत पहले ही इङ्गलैंड मे राजसत्ता और राष्ट्रीय भावना का विकास हो चुका था जिससे सामन्तशाही और उसकी शक्ति पर नियन्त्रण रहा और देश में सब को एक सूत्र में बाँधने वाले अधिनियम की सृष्टि हुई और राजन्यायालयों की सर्वोच्चता स्थापित हो गई थी"[1]। इसके विपरीत फ्रास में सन् १७८९ की क्राति के समय तक कोई सार्वजनिक अधिनियम प्रणाली न थी। राजा की आज्ञाओं घोषणाओ व अध्यादेशो (Ordinances) के अनुसार न्यायकार्य चलता था। इसकी कमजोरी फ्रास की क्राति के नेताओ से छिपी न रह सकी। उन्होने पुरानी न्यायपद्धति को तोड दिया और उसके स्थान पर सामान्य अधिनियम का निर्माण किया। नैपोलियन ने फ्रास के अधिनियम को क्रमबद्ध करने का महत्वपूर्ण काम अपने हाथ मे लिया। कोड नैपोलियन (Code Napoleon) उसकी ऐसी कृति थी जो बहुत समय तक जीवित रही। उससे फ्रास में एक अधिनियम और एक न्यायपद्धति की स्थापना हुई। बाद में जो कुछ प्रयत्न इस ओर हुआ वह उस कोड को अधिक विस्तृत करने या सुधारने के लिये किया गया, उसके मूल सिद्धातो में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नही हुई।

**फ्रास की न्यायपालिका के सिद्धात**—फ्रास में प्रत्येक न्यायालय अपना निर्णय देने मे स्वतन्त्र है, उसके उपर पूर्ववर्ती निर्णयो का कोई प्रतिबन्ध नही रहता। एक न्यायालय मे कोई एक न्यायाधीश ऐसा निर्णय दे सकता है जो उसी न्यायालय में दिये हुये किसी दूसरे पूर्ववर्ती न्यायाधीश द्वारा दिये हुए निर्णय के बिलकुल विरुद्ध हो। ऐसी बात इङ्गलैंड में संभव नही है। वहाँ पूर्ववर्ती निर्णयो का आदर किया जाता है। दूसरे, फ्रास का शासन विधान (जो लिखित और कठिन परिवर्तनशील है), देश का सर्वोच्च अधिनियम कानून है और सिद्धाततः न्यायालयों को यह अधिकार है कि वे अमरीकन न्यायपालिका के समान किसी ऐसे अधिनियम को अवैध घोषित कर सकते हैं जो उनकी राय मे संविधान के अनुकूल न हो। यह अवश्य है कि फ्रास के किसी न्यायालय ने इस अधिकार का कभी काम में नही लिया। इसका कारण यह है कि फ्रास में न्यायालयों का निर्माण पार्लियामेंट करती है इसलिये ज्योंही कोई न्यायालय किसी अधिनियम को अवैध घोषित करे,

[1] मुनरो गवर्नमैन्ट्स आफ यूरोप, पृ० ५१५ १६

पार्लियामेंट कानून को अवैध घोषित करने की शक्ति उससे छीन सकती है। इसके विपरीत अमरीका में सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) की शक्ति संविधान से प्रदत्त है फ्रांस में किसी न्यायालय को उस शक्ति व अधिकार से वंचित नहीं कर सकती। 'फ्रांसिसियों की यह आदत नहीं है कि वे न्यायपालिका को सरकार का एक पृथक विभाग मानें जो कार्यकारी व विधायक विभाग से बिलकुल अलग हो। किन्तु वे न्यायालयों को वैसा ही प्रशासन कार्यालय समझते हैं जैसे डाकखाना।"* तीसरे, सब न्यायालयों का स्थानिक रूप होना है अर्थात् ये निश्चित स्थानों पर अपना कार्य करते हैं। स्थान स्थान पर घूम कर न्यायनिर्णय कार्य नहीं करते। चौथे कुछ न्यायालयों को छोड़ कर प्रत्येक में एक से अधिक न्यायाधीश मुकदमे को सुनते हैं। और प्रत्येक निर्णय कम से कम तीन न्यायाधीशों की सम्मति से दिया जाना चाहिये इसके कारण बड़ी संख्या में न्यायाधीश नियुक्त करने पड़ते हैं। पांचवें, फ्रांस में दो प्रकार के न्यायालय हैं, एक तो वे जिनमें साधारण नागरिकों के अभियोगों की जांच होती है और दूसरे वे प्रशासन न्यायालय (Administrative Courts) जहां सरकारी अफसरों द्वारा किये हुए उन अपराधों की परीक्षा होती है जिनको वे लोग अपने सरकारी काम करने में कर बैठते हैं। फ्रांस में रूल आफ लॉ (Rule of Law) नहीं है वहां प्रशासन अधिनियम (Administrative Law) का विकास ही हुआ है।

**प्रशासन अधिनियम का क्या अर्थ है**—प्रशासन अधिनियम वह नियमावली है जिसको फ्रांस की कार्यपालिका ने राज्य और व्यक्ति के सम्बन्ध को नियमित करने के लिये बनाया है। यह फ्रांस की अधिनियम प्रणाली का अंग समझी जाती है। इसमें राज्य के पदाधिकारियों की स्थिति व देयता (Liability) निश्चित की गई है इन राज्य पदाधिकारियों के प्रति नागरिकों के कर्तव्य व अधिकार बता दिये गये हैं और इन कर्तव्यों व अधिकारों को कार्यान्वित करने की पद्धति भी स्थिर कर दी गई है।

**फ्रांस में प्रशासन अधिनियम का इतिहास**—फ्रांस में प्रशासन अधिनियम (कानून) बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। नैपोलियन ने इसे तत्कालीन स्थिति के अनुकूल होने के कारण अपने कोड में स्थान दे दिया था। नैपोलियन ने दो सिद्धान्त स्थिर कर दिये थे। एक यह कि राज्य पदाधिकारियों के सामान्य नागरिकों से पृथक कुछ विशेष अधिकार और विशेष सुविधायें उन्हें मिलनी चाहियें। दूसरा यह कि विधायिनी कार्यकारी

* मुनरो—गवर्नमेंट्स आफ यूरोप, पृ० ५२१

व न्यायकारी सत्ता का ऐसा प्रथकीकरण हो कि न्यायपालिका राज्य कर्मचारियो के काम मे हस्तक्षेप न कर सके अर्थात् कार्यकारी सत्ता न्यायकारी सत्ता से निर्यंत्रित न हो। इन सिद्धान्तो के मान लेने से प्रशासन अधिनियम के चार सिद्धान्त निसृत हुए और व्यवहार मे लाये जाने लगे। पहला, राज्य कर्मचारियों व नागरिको के पारस्परिक सम्बन्धो के नियामक सिद्धान्त उन सिद्धातो से भिन्न हैं, जिन से स्वयं नागरिको के पारस्परिक सम्बन्ध निर्यमित होते हैं। दूसरा, राज्य कर्मचारियों और सामान्य नागरिको के बीच हुए झगडो का निवटारा सार्वजनिक न्यायालय मे न होकर इस काम के लिये स्थापित विशेष न्यायालयो मे होगा। तीसरा, कोई मामला प्रशासन अधिनियम के अन्तर्गत आता है या साधारण कानून के इस प्रश्न को राज्य का अध्यक्ष तय करेगा यानी व्यवहार मे अध्यक्ष की ओर से कौंसिल आफ स्टेट (Council of State) तय करेगी। चौथा, सार्वजनिक न्यायालय के प्रतिबन्ध से राज्य-कर्मचारी इस आधार पर रक्षित है कि उसने राज्य का प्रतिनिधि रहते हुए अपने कर्तव्य का पालन करने मे कोई अपराध किया हैं।

नैपोलियन काल के समाप्त होने के बाद इस प्रशासन अधिनियम (कानून) मे कुछ छोटे मोटे परिवर्तन किये गये। विशेषतया यह परिवर्तन उस प्रणाली में किया गया जिससे यह कानून कार्यान्वित होता था। यह परिवर्तित प्रणाली अब भी चालू है।

**प्रशासन अधिनियम और अधिनियम शासन में भेद**—यह कहना कठिन है कि प्रशासन अधिनियम व अधिनियम शासन मे कौन अधिक अच्छा है। दूसरे से सामान्य नागरिक अधिकारो की और उसकी स्वतन्त्रता की रक्षा होती है किन्तु इससे कानूनीपन बढ जाता है और राज्य के प्रति आदर भाव निर्बल हो जाता है। पहले से राजकर्मचारियो की अधिक रक्षा होती है जो निर्भय होकर और स्थिर मन से शासन कार्य करते हैं। किन्तु इससे सामान्य व्यक्ति को यह अवसर नही रहता कि वह इन राजकर्मचारियो के मनमौजी कानून कार्यो से अपनी रक्षा कर सके।

**फ्रांस के न्यायालय**—फ्रास में न्यायालयो की पाच श्रेणियां हैं। सब से छोटा न्यायालय कुछ कम्यून समूहों या एक कैंटन के लिए होता है। इस न्यायालय का प्रधान जस्टिस आफ दी पीस (Justice of the Peace) होता है। इस प्रधान को प्रेसीडेंट न्याय मन्त्री की सिफारिश पर नियुक्त करता है। यह ऐसा व्यक्ति होता है जो साधारणतया विधि-अधिनियम शिक्षा का प्रथम प्रमाणपत्र लिये होता है। इसे २५०० से लेकर ५००० फ्रैंक

वार्षिक वेतन मिलता है। प्रत्येक कैंटन में एक ऐसा न्यायालय होता है। उसमें छोटे मुकदमे तय होते हैं जिनमें कम से कम २०० फ्रांक के मूल्य की सम्पत्ति का झगड़ा हो या जिनमें ५ फ्रांक का जुर्माना होने वाले अपराध का अभियोग लगाया गया हो। इस न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध एरोन्डाइजमेंट के न्यायालय में अपील हो सकती है।

**एरोन्डाइजमेंट के न्यायालय**—इसके ऊपर दूसरी श्रेणी में एरोन्डाइजमेंट के न्यायालय (Courts of Arrondizements) होते हैं, प्रत्येक एरोन्डाइजमेंट एक ऐसा न्यायालय होता है जिसमें एक प्रधान और अन्य न्यायाधीश होते हैं। इसमें नीचे के न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपीलें सुनी जाती हैं और २०० फ्रांक से अधिक मूल्य वाले मुकदमों में इसे प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार प्राप्त रहता है। १५०० फ्रांक से कम से कम मूल्य के मुकदमों में इसका निर्णय अन्तिम रहता है। जिन अपराध सम्बन्धी मुकदमों में ५ फ्रांक से अधिक जुर्माना किया जा सकता है, वे मुकदमें भी यही सुने जाते हैं। अपराध सम्बन्धी मुकदमों (Criminal Cases) की जाच करते समय इस न्यायालय का नाम करैक्शनल न्यायालय (Correctional Courts) हो जाता है।

**पुनर्विचारक न्यायालय**—उपर्युक्त दोनों न्यायालयों से ऊँचा न्यायालय पुनर्विचारक न्यायालय (Courts of Appeal) है। ऐसे २७ न्यायालय हैं। वे सामान्यतया अपील सुनते हैं। प्रत्येक न्यायालय में तीन विभाग हैं, दीवानी फौजदारी और अभियोगी। अन्तिम विभाग में यह निर्णय किया जाता है कि अमुक अपराधी पर मुकदमा चलाया जाय या नहीं।

**एसाइज न्यायालय (Assize Courts)**—इनसे ऊँचा न्यायालय एसाइज-न्यायालय कहलाता है। इसकी बैठकें प्रमुख प्रान्तीय नगरों में बारी बारी से होती हैं इसलिये यह स्थायी न्यायालय नहीं है। इसमें न्याय मंत्री से नियुक्त किये हुये दो न्यायाधीश और एक प्रधान होता है। यह फ्रांस का फौजदारी (अपराध सम्बन्धी) न्यायालय है जहां पंचों की सहायता से न्याय किया जाता है।

**सर्वोच्च पुनर्विचार न्यायालय**—न्यायालय के सोपान के सबसे ऊँचे सिरे पर सर्वोच्च पुनर्विचारक न्यायालय (Supreme Appellate Tribunal) है। इस न्यायालय में दूसरे सब न्यायालयों के निर्णयों को रद्द करने की क्षमता रहती है।

राज कर्मचारियों के अपराधों की जाच करने और दण्ड देने के लिये जैसा पहले कहा जा चुका है फ्रांस में पृथक न्यायालय हैं जिन्हें प्रशासन-न्यायालय (Administrative Courts) कहते हैं, इन न्यायालयों के स्थापित करने के कई सिद्धान्त हैं : (१) सरकार के कर्मचारियों को सरकारी योजनाओं को कार्यान्वित करने की पर्याप्त शक्ति देना (२) प्रशासको को इस बात से भयातुर न करते हुये कि वे एक साधारण न्यायाधीश के द्वारा न्यायालय मे अपनी सफाई देने के लिये बुलाये जा सकते हैं, प्रशासन को एकरूपता बनाये रखना। "इस प्रकार राज्य का प्रत्येक कर्मचारी अपने राजकार्य में हो जाने वाले अपराधो के लिये सामान्य न्यायालयों मे दिये जाने वाले दण्ड से बचा रहता है। इसमे स्पष्ट है कि फ्रास मे नागरिको की अपेक्षा राजकर्मचारियो को विशेष अधिकार प्राप्त है। इससे तुरन्त ही मन में यह विचार उत्पन्न हो सकता है कि फ्रास में सामान्य नागरिक राजकर्मचारियो के विरुद्ध न्यायसम्बन्धी कोई कार्यवाही नहीं कर सकते और ये लोग जो चाहे सो कर सकते हैं क्योकि उन्हे यह भय नही कि सार्वजनिक न्यायालय मे उनके अपराध की जाच होगी। इनके अपराध का निर्णय सार्वजनिक अधिनियम से न होकर उस कानून से होगा जो सरकार से नियुक्त प्रशासन न्यायालय बनाते हैं। किन्तु ऐसी बात वास्तव मे नही है, यद्यपि यह ठीक है कि प्रशासन अधिनियम के नियम किसी संहिता मे नही पाये जाते और केवल पूर्व उदाहरणों पर ही निर्भर हैं किन्तु फिर भी इनके विकास पर राजनैतिज्ञो का नही वरन् वकीलो का ही प्रभाव रहा है। ये प्रशासन न्यायालय चाहे कितने ही सरकारी प्रभाव में हो किंतु निश्चिय ही ये सरकार के केवल शासन-विभाग होने से बहुत दूर है।"* आचार्य डायसी का कहना है कि इन प्रशासन-न्यायालयो के चाहे कुछ भी दोष हो फिर भी फ्रास के लोगों में इस प्रणाली को जीवित इसलिये रहने दिया गया है कि वे लोग इसे लाभकारी ही समझते हैं। इसके कटु से कटु आलोचक भी मानते हैं इस प्रणाली में कुछ व्यावहारिक उपयोगिता अवश्य है और यह फास की संस्थाओं की आधारभूत भावना के प्रतिकूल नहीं है।"[1] यदि शासन अधिनियम से सामान्य नागरिक राजकर्मचारी को न्यायालय के समक्ष समानता प्राप्त नही है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि राजकर्मचारी जो चाहे सो कर सकता है। फ्रास के लोग राजकर्मचारी की इस युक्ति को अपने वैयक्तिक अधिकारो की रक्षा करने में बाधा नही सम-

* लो आफ कंस्टीट्यूशन: पृ० ३७७ ७८

[1] लौ आफ कंस्टीट्यूशन. पृ० ३७७

भगे। इसके विपरीत वे इसे अपने अधिकारों की रक्षा का साधन समझते हैं। राजकर्मचारी को भी भय रहता है कि स्वेच्छाचारिता के कारण वे अपने पद से हटा न दिये जाय, और अब तो इगलैंड में भी रूल आफ लॉ (Rule of Law) का महत्व कुछ समय से कम होता जा रहा है।

ये प्रशासन न्यायालय दो प्रकार के होते हैं। प्रत्येक प्रान्त में प्रिफेक्टोरियल कौंसिल (Prefectorial Council) होती है और उन सब के ऊपर सारे देश के लिये एक कौंसिल आफ स्टेट होती है। प्रिफेक्टोरियल कौंसिल में राज्य के कर्मचारियों के अभियोग की प्रथम सुनवाई होती है। इस सुनवाई से पहले सरकारी जांच हो चुकती है। इस कौंसिल के सदस्य प्रेसीडेंट के आदेश से नियुक्त होते हैं। न इनको अधिक वेतन मिलता है न ये अधिक समय तक अपने पद पर रहते हैं इसलिये योग्य व्यक्ति इस पद को स्वीकार नहीं करते। किन्तु कम से कम दस वर्ष की सरकारी नौकरी का अनुभव वाले और विधि-अधिनियम की शिक्षा पाये हुये व्यक्ति ही इन पदों पर काम करते हैं। कौंसिल आफ स्टेट का मान इससे अधिक वैभवपूर्ण होता है और वह सरकारी प्रभाव व नियन्त्रण से अधिक स्वतन्त्र रहती है। इस कौंसिल में न्यायमंत्री व अन्य कुछ मन्त्री सदस्य होते हैं। किन्तु जब इन्ही व्यक्तियों पर लगाये गये अपराध की जांच होती है तो ये कौंसिल के सदस्य नही रहते। दूसरे सदस्य वकालात करने वाले वकील होते हैं जो तीन वर्ष तक सदस्य रहते हैं। कुछ महत्वपूर्ण बातों में कौंसिल आफ स्टेट को प्रारम्भिक अधिकार क्षेत्र मिला रहता है। इसके अतिरिक्त यह प्रिफेक्टोरियल कौंसिल के निर्णयों के विरुद्ध अपील सुनती है। यह मन्त्रिमण्डल को सलाह भी देती है।

## स्थानीय शासन

किसी भी देश में स्थानीय शासन राज्यसगठन का अनिवार्य अग होता है। इतिहास ऐसा कोई उदाहरण नही बतलाता जहाँ कि एक केन्द्रीय सत्ता ने बिना अपने आधीन शासनाधिकारियों की सहायता से शासन किया हो। विभिन्न स्थानों की आवश्यकताओं को जानने और उन्हे पूरा करने के लिये स्थानीय शासन संस्थायें बडी उत्सुक होती हैं। कम से कम आधुनिक काल में एक व्यक्ति का शासन असम्भव है। फ्रास भी इस नियम में अपवाद नही है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि क्रांतिकारी केवल केन्द्रीय सगठन पर ही आक्रमण कर बदलने का प्रयत्न करते हैं, उसके स्थानीय सगठनों को जैसे का तैसा रहने देते हैं।

क्रान्ति के पूर्व—"सन् १७८६ की क्रांति के पूर्व फ्रांस का शासन केन्द्रित, कर्मचारियों के आधीन चलने वाला (Bureaucratic) अपव्ययी और अक्षम था" ।* स्थानीय शासन की कोई प्रणाली प्रचलित न थी । सारा देश प्रांतों में बटा हुआ था जिनकी स्वाधीनता निरंकुश राजाओं के आ जाने से नष्ट हो चुकी थी । जैनरलाइट (Generalite) ही प्रमुख शासन-जिला था जिसका अध्यक्ष इन्टेंडेंट (Intendant) नाम का एक सरकारी कर्मचारी होता था । वह ही सम्राट का प्रवक्ता होता था । सारी प्रणाली में सामंजस्य न था । इन जैनरलाइटों में विभिन्न क्षेत्रफल, जनसंख्या वाले व शासन-संगठन वाले कम्यून होते थे । राजसत्ता के स्थापित हो जाने से इनकी प्रतिनिधिक संस्थायें नष्ट हो चुकी थी । राजा ने इन स्थानीय शासन पदों को बेचना आरम्भ कर दिया था । कभी कभी इस पद पर रहने का अधिकार पैतृक भी रहता था जिससे शासन में अक्षमता और जनता में असन्तोष हो जाता थी । क्रान्ति के पश्चात् लेखनी के एक झटके से सबको बदल दिया गया । कम्यूनों का फिर से निर्माण हुआ । प्रांतों और जैनरलाइटों के स्थान पर डिपार्टमेंट, डिस्ट्रिक्ट और कैंटन बनाये गये । इन इकाइयों की संस्थाओं में निर्वाचित व्यक्ति सदस्य बनाये जाने लगे । किन्तु यह जनतन्त्रात्मक प्रणाली अधिक दिन न चली क्योंकि जनता को इस ढग की शिक्षा न मिल पाई थी । यह प्रणाली समय से कुछ आगे बढी हुई थी जिससे अराजकता फैल गई और प्राचीन केन्द्रित प्रणाली पुनर्जीवित हो गई । सन् १७६५ में सब स्थानीय पदाधिकारी पैरिस की डाइरैक्टरी के आधीन कर दिये गये और अन्त में सन् १८०० से निर्वाचित न होकर वे ऊपर से नियुक्त किये जाने लगे । इसलिये अब फिर एक बार सारे संगठन की शक्ति केन्द्रीभूत है । इस स्थिति में समय के बदलने से परिवर्तन करने की कोई प्रवृत्ति भी नहीं दिखाई देती । फ्रांस में चाहे राजतन्त्र रहा चाहे प्रजातन्त्र, सभी फ्रांस की एकता की रक्षा करने के लिये चिन्तित रहे और इसका एक उपाय यही था कि सारे शासन-संगठन को पेरिस स्थित शक्ति के आधीन रखा जाय ।

कम्यून: उसकी कौंसिल की बनावट—स्थानीय शासन की सब से छोटी इकाई कम्यून (Commune) होती है । प्रत्येक नगर, कस्बे, मोहल्ले और गांव में एक कम्यून होता है । सब की संख्या ३७, ६८३ है ।* सब कम्यून बराबर पद के समझे जाते हैं । उनके विधान का रूप, शक्तियाँ,

* ओग—गवर्नमैंट आफ यूरोप, पृ० ४६५

* स्टेट्समैन ईयर बुक १६४६ पृ० ६०७

कोर्सिका एक से हैं। केवल पेरिस और लियोन्स नगर ही इस नियम के अपवाद-स्वरूप हैं। इन कम्यूनों का औसत क्षेत्रफल ३६९४ है, कुछ इनसे बड़े व कुछ छोटे भी होते हैं। प्रत्येक कम्यून में १० से ३६ सदस्यों तक की एक कौंसिल होती है। ये सदस्य चार वर्ष के लिये वयस्क मताधिकार प्रणाली से चुने जाते हैं। निर्वाचन के लिये वार्ड बनाये जाते हैं। २४ वर्ष से ऊपर की आयु वाला कोई भी मतदाता कौंसिल की सदस्यता के लिये उम्मीदवार खड़ा हो सकता है। केवल पागल, दिवालिया, सरकारी कर्मचारी, अपराधी व्यक्ति सदस्य नहीं बन सकते। कौंसिल की वर्ष में चार बैठकें अवश्य होनी चाहियें। एक सत्र कम से कम १५ दिन तक चलना चाहिये, बजट पर विचार करने के लिये यह ६ मास तक बढ़ाया जा सकता है। कम्यून-कौंसिल की कर लगाने व पुलिस रखने की शक्ति पर प्रतिबन्ध लगे हुये हैं। अधिकतर आर्थिक प्रस्तावों पर (Prefect) की स्वीकृति होना आवश्यक है। करों और बाजारों से सम्बन्धित मामलों में डिपार्टमेंट के कौंसिल जनरल की स्वीकृति होना आवश्यक है। प्रिफेक्ट कौंसिल को स्थगित कर सकता है। केन्द्रीय सरकार इसका विघटन कर सकती है।

कम्यून कौंसिल की कार्यवाही—कौंसिल के सदस्य अपने में से किसी एक को मेयर और या अधिक सहायक मेयर चुन लेते हैं। इनको कोई वेतन नहीं दिया जाता परन्तु उन्हें कुछ अप्रतिष्ठित कर्तव्य करने पड़ते हैं। जिस नगर में २५००० जन रहते हैं वहां मेयर की सहायता के लिये एक सहायक मेयर होता है और जिस नगर की जनसंख्या १०० ००० होती है वहां दो सहायक मेयर होते हैं। अधिक बड़े कम्यूनों में प्रति २५००० की आबादी पर एक सहायक मेयर नियुक्त किया जाता है। अधिक से अधिक १२ सहायक मेयर हो सकते हैं, केवल लीयोन्स नगर में १६ सहायक मेयर काम करते हैं। मेयर और सहायक मेयर प्राय कई बार पुनर्निर्वाचित हो जाते हैं। यहां तक कि कोई कोई मेयर ३० वर्ष तक काम करते रहते हैं। किन्तु ऐसा प्राय ग्रामीण कम्यूनों में ही अधिक होता है क्योंकि वहां के निवासी परिवर्तन नहीं चाहते। मेयरों के चुनाव में दलबन्दी अधिक होती पाई जाती है। यह कहा जाता है कि मेयर राजनीतिज्ञ या न कि मतधारकों का प्रतिनिधित्व करता है। मेयर कम्यून का सर्वोच्च नागरिक होता है और उसको पर कम्यून का प्रतिनिधित्व करता है। मेयर दो हैसियतों में कार्य करता है। प्रमुखतया वह कम्यून का प्रधान रहता है किन्तु वह राज्य का कर्मचारी भी रहता है और इस हैसियत से वह किसी डिपार्टमेंट के प्रीफेक्ट (Prefect)

के आधीन रहता है। कम्यून का कार्यकारी अध्यक्ष होने के नाते वह म्यूनिसिपल कर्मचारियों को नियुक्त करता है। नियम उपनियमों को प्रकाशित करता है, अध्यादेश निकालता है, आय व्यय की देखभाल करता है, पुलिस का संगठन व नियंत्रण करता है और न्यायालयों में कम्यून का प्रतिनिधि होता है। राज्य का कर्मचारी होने के नाते वह जन्म, विवाह और मृत्यु का रजिस्ट्रार रहता है। निर्वाचन-सूचियों को तैयार कराता है, सैनिक-सेवा लेने का प्रबन्ध करता है। संक्षेप में अपने शासन में रहने वालों के जीवन, स्वास्थ्य, शांति—यहाँ तक उनकी तन्द्रा तक पर भी चौकीदारी करता है...वह किसी रूप में एकयभाव का अवतार कहा जाता है। मेयर प्राय अपने कर्तव्यों को अपने सहायकों में बाँट देता है। प्रीफेक्ट एक मास तक के लिये और गृह-मंत्री तीन मास तक के लिये उसे स्थगित कर सकता है। प्रेसीडेंट की आज्ञा से ही उसे अपने पद से हटाया जा सकता है।

**कैन्टन**—कई कम्यून जब निर्वाचन व न्याय कार्य के लिये एक समूह में मिला दिये जाते हैं तो इस समूह का नाम कैन्टन हो जाता है। सन् १९४६ में ३,०२८ कैंटन थे।

**ऐरौंडाइजमेंट**—ऐरौण्डाइजमेंट (Arrondizement) या डिस्ट्रिक्ट (District) डिपार्टमेंट का एक उपविभाग होता है। इसमें कम से कम ९ सदस्यों की एक कौंसिल होती है। ये सदस्य ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। जुलाई या अगस्त में होने वाली बैठकों में यह कौंसिल एरौण्डाइजमेंट पर लगाये हुए करों में कौन कम्यून कितना कर एकत्र करके देगा यह निश्चय कर देती हैं। दूसरी बैठकों में डिपार्टमेंट के दूसरे मामले तय होते हैं। इसकी निजी न कोई सम्पत्ति होती है न कोई बजट। एरौण्डाइजमेंट में उपप्रीफेक्ट की वही स्थिति होती है जो डिपार्टमेंट में प्रीफेक्ट की होती है। वह भी केन्द्रीय सरकार से नियुक्त होता है किन्तु प्रीफेक्ट से दी हुई शक्तियों को ही काम में ला सकता है। सन् १९३६ में इनकी संख्या २८१ थी।

**डिपार्टमेंट**—सारा देश ९० डिपार्टमेंटों अर्थात् प्रांतों में बँटा हुआ है। प्रत्येक डिपार्टमेंट का एक अध्यक्ष होता है जिसको प्रिफेक्ट (Prefect) कहते हैं। वह केन्द्रीय सरकार से नियुक्त होता है किन्तु वास्तव में गृह मंत्री और बाहरी रूप से प्रेसीडेंट की आज्ञा से हटाया जा सकता है। वह सबसे महत्वपूर्ण स्थानीय शासक होता है और डिपार्टमेंट का कार्यकारी अध्यक्ष रहने के साथ साथ केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि व कार्यकर्ता भी रहता है। वह डिपार्टमेंट के लगभग सभी मामलों की देख रेख करता है और ऊपर के

अधिकारियों की बड़ी सहायता करता है व उन्हें आवश्यक सूचना देता रहता है। यह अपने आधीन कई कर्मचारियों की नियुक्ति करता और आध्यादेश तथा नियम बनाकर लागू करता है। उसकी नियुक्ति अधिकतर राजनीति की दृष्टि से की जाती है। उससे यह आशा की जाती है कि वह तत्कालीन सरकार का राजनैतिक और निर्वाचन प्रतिनिधि रहे। तीन सदस्यों की एक कौंसिल और एक सेक्रेटरी जनरल उसके काम में सहायता देने के लिए होते हैं। कौंसिल के सदस्य प्रशासन कार्य में शिक्षा पाए हुए दक्ष व्यक्ति होते हैं। प्रिफेक्ट उनकी सलाह को मानने पर बाध्य नहीं है। इस कौंसिल का प्रमुख कर्तव्य प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार वाले प्रशासन न्यायालय की तरह काम करना है। कौंसिल-जनरल ( Council General ) डिपार्टमेंट की प्रतिनिधि संस्था है जिसमें १७-६७ सदस्य तक होते हैं। प्रत्येक कैंटन एक सदस्य चुन कर भेजता है। कार्यकाल ६ वर्ष है। आधे सदस्य प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। यह अपना सभापति स्वयं चुनती है और अपनी कार्यवाही के नियम बनाती है। इसकी बैठकें जनता के लिए खुली होती हैं। डिपार्टमेंट के टैक्सों को निश्चित करना, ऋण लेने की स्वीकृति देना, सड़कों व अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्यों को ठीक रखना, शिक्षालय, अनाथालय आदि का प्रबन्ध करना, ये सब इस कौंसिल जनरल के कर्तव्यों में से कुछ हैं। यह राजनैतिक प्रश्नों को छोड़कर अन्य मामलों में प्रस्ताव पास कर सकती है और केन्द्रीय सरकार से पूछे गये प्रश्नों पर अपनी राय दे सकती है, सरकार के आदेश से इसका विघटन हो सकता है। इसे प्रतिवर्ष एक डिपार्टमेंटल स्थायी समिति नियुक्त करनी पड़ती है जिसकी वर्ष में एक बैठक अवश्य होनी चाहिए। यह समिति कौंसिल-जनरल प्रदत्त शक्तियों को काम में लाती है। केवल कर लगाने या ऋण लेने के सम्बन्ध में यह कोई निर्णय नहीं कर सकती।

पेरिस (Paris)—संसार की अन्य राजधानियों के समान पेरिस का शासन फ्रांस के अन्य नगरों से भिन्न और विचित्र है, यहाँ मेयर नाम का कोई अफसर नहीं होता। इसका शासन सीन (Seine) डिपार्टमेंट जैसा है जिसमें पेरिस नगर के अतिरिक्त उसके चारों ओर का प्रदेश भी शामिल है। इस डिपार्टमेंट में दो कार्याध्यक्ष होते हैं, एक सीन का प्रिफेक्ट और दूसरा पुलिस का प्रिफेक्ट। प्रेसीडेंट इन दोनों को नियुक्त करता है और उन्हें उनके पद से हटा सकता है। ये दोनों गृहमंत्री को उत्तरदायी रहते हैं।

दोनो मिलकर वही काम करते है जो किसी डिपार्टमेंट का एक प्रिफेक्ट करता है। पेरिस नगर मे उनकी वे ही शक्तिया है जो अन्य नगरो मे मेयरो की है। वास्तव में सीन के प्रिफेक्ट की नियुक्ति राजनैतिक दृष्टि से की जाती है किंतु इसका यह अर्थ न लगाना चाहिए कि मन्त्रिमडल के बदलने से इस पद पर स्थित व्यक्ति भी बदल जाता है। प्रिफेक्ट और गृहमन्त्री आपस में सद्भाव व मेल से रहते है चाहे वे दोनो दो विभिन्न राजनैतिक पक्षो के व्यक्ति ही क्यो न हो। प्रिफेक्ट मन्त्रिमडल के आदेशो के अनुसार ही कार्य करता है। उसे स्वय किसी नये कदम उठाने की स्वतन्त्रता नही होती। पुलिस से सम्बन्धित भाग को छोडकर वह नगर का बजट बनाता है और डिपार्टमेंट की व सार्वजनिक सम्पत्ति की देखभाल करता है। फ्रास ही में नही परन्तु सारे योरुप भर में किसी स्थानीय अधिकारी को इतनी प्रशासन शक्तिया नहीं मिली हुई है जितनी सीन (Seine) डिपार्टमेंट के प्रिफेक्ट को प्राप्त है। वह अपने कार्यो के लिए कौसिल को सीधा उत्तरदायी नही रहता। कौसिल से झगडा होने पर वह कह सकता है कि 'मुझे मन्त्रिमडल ने पहले ही से सहायता देने का विश्वास दिला रक्खा है"। पुलिस का प्रिफेक्ट सीन के प्रिफेक्ट का सहकारी होता है और वह भी कौसिल को उत्तरदायी नही होता। वह पेरिस की पुलिस का अध्यक्ष होता है और उसके विभिन्न विभागो में काम करने वाले पुलिस कर्मचारियो के वेतन उन्नति व अनुशासन को सुव्यवस्थित रखता है।

**कौसिल की बनावट**—पेरिस नगर में एक नगरपालिका कौसिल है जिसमे ८० सदस्य होते है, इस कौसिल को प्राय वे सब शक्तिया प्राप्त है जो साधारणतया नगरपालिका कौसिल ( Municipal Council ) को दी जाती है। सीन (Seine) के डिपार्टमेंट की कौसिल पेरिस नगर की कौसिल से बडी है। इसमें ९८ सदस्य होते है। किन्तु वास्तविक शक्ति केन्द्रीय सरकार के हाथ में रहती है न कि उस कौसिल के हाथ में। पेरिस नगर की कौसिल स्वय अपने सभापति, उप सभापति, एक या अधिक सेक्रेटरी और एक उत्सव सचालक (Director of Ceremonies) को चुनती है। इसका कार्यकाल चार वर्ष है। निर्वाचन के लिये प्रशासन के लिये निश्चित हुये पेरिस के २० एरोण्डाइजमेंटो को छोटे छोटे भागो में बाँट दिया गया है। यहा कम्यूनिस्ट और अन्य पक्ष भी है। साल में चार बार कौसिल की नियमित बैठकें होती है। इसके अधिकाश काम को इसकी स्थायी समितियां निबटा देती है जिनकी सख्या आवश्यकतानुसार बदली रहती है। कुछ समय पहले यह सख्या ८ थी। इन समितियो का सगठन करने के लिये

कौंसिल चार भागों में बँट जाती है और प्रत्येक भाग इन स्थायी समितियों के लिये दो, तीन या चार व्यक्तियों की सिफारिश करता है। कुछ समितियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें कौंसिल के सदस्य व अन्य नागरिक भी मिल कर काम करते हैं। समितियों के कर्मचारी पृथक पृथक नहीं हैं। इनका काम यह है कि वे प्रस्तावों की छानबीन कर कौंसिल के सम्मुख लाती हैं। उनकी सिफारिशों को मानने के लिये कौंसिल बाध्य नहीं होती। कौंसिल प्रशासन अधिकारियों का निर्वाचन नहीं करती इसलिये उनकी नीति पर सीधा नियन्त्रण भी नहीं रखती। कौंसिल का कोई प्रस्ताव तब तक कार्यान्वित नहीं हो सकता जब तक सीन (Seine) का प्रिफेक्ट अपनी लिखित सम्मति न दे दे। कौंसिल को राष्ट्रीय नीति पर वाद-विवाद नहीं करने दिया जाता परन्तु प्राय वह इस प्रतिबन्ध का उल्लंघन किया करती है। इसका मुख्य कार्य बजट पास करना है किन्तु इस काम में भी कानून ने इसके ऊपर कई प्रतिबन्ध लगा रखे हैं। म्यूनिसिपल, सम्पत्ति के खरीदने, लाइसेंस फीस व बाजार चुङ्गी के बारे में नियम आदि बनाने और वसीयत द्वारा दान स्वीकार करने की विभिन्न शक्तियाँ इसे प्राप्त हैं किंतु प्रत्येक बात में प्रिफेक्ट की सम्मति होना आवश्यक है। "संसार की अनेक नगरपालिका कौंसिलों में पेरिस की कौंसिल सब से कम प्रभावशाली है"।[१] डाक्टर को के कथनानुसार जर्मनी और इंगलैंड के बड़े नगरों की कौंसिलों की अपेक्षा फ्रांस की नगरपालिका कौंसिलें कम भार-युक्त और उत्तरदायी हैं।

फ्रांस में स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन—राज्य के टैक्सों (करों) को स्थानीय संस्थायें उगाहती हैं। इन टैक्सों (करों) में ये संस्थायें कुछ प्रतिशत अपने लिये जोड़ सकती हैं। जिन टैक्सों (करों) में ये योग किया जा सकता है। वे भूमि-कर, मकान-कर, मकानों के किराये पर कर, द्वारा व खिडकियों पर कर, व्यवसाय व व्यापार लाइसेंस कर हैं। प्रत्येक स्थानीय संस्था अपना बजट तैयार कर उस पर विचार करती है। जिन नगरों की आय ३,०००,००० फ्रैंक होती है उनका बजट प्रसीडेंट से स्वीकृत होता है। प्रेसीडेंट स्वीकृति देने से पूर्व गृहमन्त्री से परामर्श कर लेता है। डिपार्टमेंट और कम्यून दोनों ३० वर्ष तक के लिये ऋण ले सकते हैं किन्तु प्रतिबन्ध यह है कि ऋण का भार कानून से निश्चित की हुई मात्रा से अधिक न हो। यदि ३० वर्ष से अधिक अवधि वाला कोई ऋण लेना हो तो कौंसिल आफ स्टेट का आदेश लेना आवश्यक है।

---

[१] मुनरो गवर्नमैन्ट्स आफ यूरोपियन सिटीज

**सहायक-अनुदान**—केन्द्रीय सरकार बहुत से कामो के लिये सहायक अनुदान देती है किंतु ये अनुदान उन्ही कामो में निश्चित रीति से व्यय करना चाहिये। अपना प्रशासन चलाने के लिये प्रत्येक स्थानीय सस्था अधिकतर उन टैक्सो से वित्त उपार्जित करती हैं जो विभिन्न वस्तुओ पर लगाये जाते हैं।

**केन्द्रीय नियंत्रण**—"यरोप में केन्द्रीय सरकार को ही प्रारम्भिक व प्रमुख सत्ता माना जाता है। स्थानीय सरकार का अस्तित्व केन्द्रीय सरकार की सुविधा के लिये ही आवश्यक समझा जाता है न कि किसी स्थान विशेष को लाभ पहुँचाने के लिये"।[१] वास्तव में केन्द्रीय सरकार अब भी स्थानीय शासन में सक्रिय भाग लेती है। मन्त्रियो को ऐसा करने से शक्तिलाभ नही होता वरन् प्राय उनकी स्थिति कमजोर हो जाती है। फ्रास की पालियामेंट अधिनियम को बडी व्यापक भाषा में शब्दबद्ध करती है जिससे उन्हे लागू करते समय सरकार को उसमे हेर फेर करने का पर्याप्त अवसर रहता है।

**प्रेसीडेंट और गृह-मंत्री का नियंत्रण**—गृह विभाग जो अधिकतर स्थानीय शासन पर केन्द्रीय नियत्रण रखता है, स्थानीय विषयो से सम्बन्धित अध्यादेश और नियम तैयार कर प्रकाशित करता है। इन अध्यादेशो व नियमो पर प्रेसीडेंट के हस्ताक्षर व गृहमत्री की सम्मति लेकर इन्हे प्रिफैक्ट की मध्यस्थता से कम्युन के मेयर को भिजवा दिया जाता है। बहुत से मामलो में प्रिफैक्ट प्रातीय आदेशो को प्रकाशित करता है। प्रत्येक स्थानीय इकाई के कार्यकारी अध्यक्ष को प्रेसीडेंट ही गृहमत्री की सम्मति से नियुक्त करता और पदच्युत करता है। इसलिये गृहमत्री का बडा कडा नियत्रण रहता है। स्थानीय सस्थाओ को बहुत कम स्थानीय स्वतत्रता मिली होती है। कम्यून कौंसिल के कुछ कार्यों के लिये प्रेसीडेंट की पूर्वाज्ञा आवश्यक होती है। अन्य विषयो में गृह विभाग की सम्मति अपरिहार्य होती है। वास्तव में तो गृहमत्री की सम्मति ही सब विषयो में आवश्यक होती है क्योकि प्रेसीडेंट का कोई उत्तरदायित्व नही होता। गृह विभाग के सब कार्य उनके प्रतिनिधि प्रिफैक्ट व उप-प्रिफैक्ट किया करते है।

**प्रिफैक्ट का नियत्रण**—डिपार्टमेंट का अध्यक्ष, प्रिफैक्ट (Prefect) कम्यूनो के मामलो की देख रेख करता है और केन्द्रीय सरकार के आदेशो को स्थानीय सस्थाओ तक पहुचाता है। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते प्रिफैक्ट कम्यून कौंसिल की बैठक की तारीख (दिनांक) निश्चित करता है और यदि वह समझे कि कौंसिल के सदस्य अपने अधिकार की

---

१ हरमन फाइनर-इंग्लिश लोकल गवर्नमेंट

सीमा के बाहर जाने का प्रयत्न कर रहे हैं तो बैठक को स्थगित भी कर सकती है। केन्द्रीय सरकार शिक्षा प्रणाली का तो प्रबन्ध स्वयं ही करती है। विभिन्न प्रकार की शिक्षा विभिन्न स्थानीय संस्थाओं की देख रेख में रख दी गई है। सरकार की ओर से गरीबों को जो सहायता दी जाती है उसके प्रबन्ध के लिये केन्द्रीय सरकार एक समिति नियुक्त करती है। पुलिस भी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में ही रहती है। पेरिस नगर में गृह विभाग ही सीधा पुलिस का नियंत्रण करता है। सड़कें भी केन्द्रीय सरकार के नियंत्रण में रहती हैं। कम्यून के बजट को कार्यान्वित करने से पूर्व उस पर डिपार्टमेंट के प्रिफैक्ट की स्वीकृति लेनी पड़ती है। जिस कम्यून का बजट ६० लाख फ्रैंक से अधिक होता है उस पर केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति भी आवश्यक होती है। यदि बजट में पुलिस, सड़कें आदि आवश्यक कार्यों के लिये पर्याप्त आयोजन नहीं होता तो प्रिफैक्ट अपनी समझ के अनुसार उसके लिये धनराशि का आयोजन बढ़ा देता है और यदि आवश्यकता हो तो इन आवश्यक सेवाओं के लिये टैक्सों (करों) की मात्रा बढ़ा सकता है। जो विषय बिलकुल स्थानीय प्रकृति के हो उनमें भी प्रिफैक्ट अपनी प्रतिषेधात्मक शक्ति का उपयोग कर सकता है। जब कम्यून-कौंसिल साधारण प्रस्ताव द्वारा किसी कार्य को करने का निर्णय करती है तो प्रिफैक्ट कोई भी कारण देकर उसे अस्वीकृत कर सकता है, किन्तु जब कौंसिल कोई उपविधि (Bye Law) बनाती है तो प्रिफैक्ट अवैध होने के कारण ही उसे रद्द कर सकता है अन्यथा नहीं। सब ठेको, व्यय या सार्वजनिक सम्पत्ति के उपयोग के लिये प्रिफैक्ट की स्वीकृति लेना आवश्यक होता है। कौंसिल प्राय साधारण प्रस्तावों से ही निर्णय किया करती है इसलिए "हिज मैजेस्टी दी प्रिफैक्ट" की सम्मति के बिना वह कुछ भी नहीं करती। किन्तु यदि प्रिफैक्ट अत्याचार करने लगे तो कौंसिल गृहमन्त्री से रिपोर्ट कर सकती है। यदि गृहविभाग के निर्णय से कौंसिल -असन्तुष्ट रहे तो वह कौंसिल आफ स्टेट से अन्तिम निर्णय की अपील कर सकती है। उपर्युक्त व्याख्या से यह स्पष्ट है कि फ्रांस में स्थानीय शासन पर केन्द्रीय सरकार का नियंत्रण कठोर है जिससे सुव्यवस्था की रक्षा होती है अनाचार नहीं होने पाता और बहुसंख्यक अल्प-संख्यकों पर अत्याचार नहीं कर पाते। किन्तु इस प्रणाली में कई दोष भी हैं और यह लोकप्रिय नहीं है। "यदि विभिन्न छोटे मोटे अफसर योग्य हों और भ्रष्टाचारी न हों तो केन्द्रीय नियंत्रण वाली प्रणाली स्यात् सबसे उत्तम और सस्ती भी पड़ती है। किन्तु इसमें एक तो नौकरशाही से अत्याचार बढ़ता है दूसरे भ्रष्टाचार होने लग जाता है। हमारे ऊपर उत्तम प्रकार से शासन करने के लिए हम जमींदारों या पूंजीपतियों

को अपेक्षा सरकारी अफसरों से अधिक आशा नही कर सकते।" * यह दोष फ्रास में भी देखने को मिल सकता है।

## पाठ्य पुस्तकें

Partblemcy.J.—The Government of France.
Buck, P. W. and Masland, J. W.—Governments of Foreign Powers (1947), chs. 9-12.
Bryce, Viscount—Modern Democracies Vol.I, pp. 233-366.
Finer, H— The Theory & Practice of Modern Government (Portions Dealing with France).
Harris Montague.—Local Government in many Lands pp. 5-25.
Lowell, A L.—Government and Parties in Continental Europe, Vol. 1, pp.1-145.
Munro, W. B.— Governments of Europe.
Pioncar, R.—How France is Governed.
Wilson, W.—The State (Chapter on France).
Select Constitutions of the world pp. 385-424.
Statesman's Yearbook ( Latest Issue).

* जैनिग—लोकल गवर्नमेंट इन माडर्न कान्स्टीट्यूशन, पृ० ४५

# अध्याय २१

## जापान की सरकार

"ओमूटैनो के सिंहासनारूढ़ होने वाले समय से अब तक जब कि अधिक से अधिक स्पष्ट वक्ता समाजवादी भी राजा के विरुद्ध धीमी सी भी आवाज़ निकालने का साहस नहीं करते, सम्राट के प्रति निष्ठा जो आराधना का रूप धारण किये हुए है, जापान के शासन-विधान का ही सिद्धान्त नहीं, किन्तु जापानियों के राष्ट्रीय धर्म का भी सिद्धान्त है।" (जे० एच० लॉगफोर्ड)

"वास्तविकता तो यह है कि ऐतिहासिक युग के आरम्भ से अब तक जितनी अभद्रता से जापानियों ने अपने राजा के साथ व्यवहार किया है वैसा किसी और राष्ट्र या जाति ने अपने राजा के साथ नहीं किया है। जापान में सम्राटों को सिंहासन से हटाया गया, उनकी हत्या की गई। कई शताब्दियों तक हर बार जब राज-तिलक हुआ, झगड़े फिसाद भी हुए। सम्राटों को वनवास भी दिया गया। कुछ की वनवास करते समय हत्या की गई।" (जे० चैम्बरलेन)

"पश्चिमी रंग में रंगी हुई बुद्धि को—विशेषकर ब्रिटिश और फ्रांसीसी व्यक्तियों को—जिस निश्चयता से जापान के नेता जापानी नागरिकों से राज्य के लिये पूर्ण आत्म समर्पण करने का विश्वास रखते हैं, वह बड़ी भयानक प्रतीत होती है। ऐसा कोई कार्य नहीं है जिसे एक जापानी करने को तैयार न हो, यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि राज्य उससे इस कार्य की आशा रखता है।"

(जी० डी० एच० कोल)

देश का परिचय—चार बड़े द्वीपों व ४०० से अधिक छोटे द्वीपों को मिलाकर हम जापान के नाम से पुकारते हैं। चार द्वीपों में होंडो या होन्शू नाम का एक द्वीप है जिसका क्षेत्रफल ८७,३७३ वर्ग मील है। जापान का यह सब से बड़ा द्वीप है और इसमें बसने वालों की संख्या जापान के अन्य सब द्वीपों की जनसंख्या से अधिक है। इस द्वीप में पूर्व पुरुषों से प्राप्त

सारी न्यायनिष्ठा, उदारता, सत्यता, शुद्धता पाई जाती है। इसके निवासियो का देवाचार अन्य सब देशो में धर्माचरण से इतनी ऊँची श्रेणी का है कि उन्हे न किसी धर्मसहिता की आवश्यकता पडती है न सिद्धान्त की और न चक्कर में डालने वाली नैतिकता की। यदि जापान के राजनीतिज्ञो को बडे लम्बे पृथकत्व के पश्चात् अपने देश को सारे ससार में आदरणीय बनाने की अभिलापा हुई तो उसका श्रेय इसी धर्म को है जिससे वे प्रभावित थे। इसी अभिलाषा के वशीभूत होकर उन्होने जापान को एशिया में ही सर्व शक्तिमान् बनाने का प्रयत्न नही किया किन्तु वे उसे सैन्यबल, कारोबार, व्यापार की दृष्टि से ससार का सबसे महान् देश बनाना चाहते थे। किन्तु यह अभिलापा पूरी न हुई।

## शासन-विधान का इतिहास

**प्राचीन काल**—जापानी अपनी उत्पत्ति जीमो टेनो (ईसा से ६६० वर्ष पूर्व) बतलाते है जो सूर्य देवता की सन्तान था। सन् ५५२ ई० में वहाँ बुद्ध धर्म का प्रचार हुआ। सन् ६४५ ई० म चीनी प्रशासन पद्धति कुछ हर फेर के साथ जापान में चालू की गई। जब से लिखित इतिहास का पता चलता है जापान मे एक ही राजवश ने राज्य किया है। प्राचीनता मे ससार का कोई राजवश जापान से मुकाबिला नही कर सकता। लगभग १२०० वर्ष तक जापान मे द्वयात्मक (dual) शासन प्रणाली चालू रही।

पहले दरबार के प्रभावशाली एक दो सामन्त ही शासन सत्ता को अपने अधिकार में किये रहते थे। फिर फूजीवारा वश ने शासन सत्ता को अपने हाथ में कर लिया। उनके बाद क्षत्रिय वर्ग (Military class) ने उसे हस्तगत किया और ये ही अर्वाचीन काल तक उसका भोग कर रहे है। इस लम्बे समय में एक बार ही दो वर्ष के लिये सम्राट ने अपनी नाम मात्र की शक्ति को सबल व सक्रिय करने का प्रयत्न किया। यद्यपि समय समय पर सम्राटो के साथ बुरा बर्ताव हुआ प्राय उनको सिंहासन से उतारा गया और निर्वासित किया गया फिर भी किसी सामन्त का यह साहस न हुआ कि वह टेनो (Tenno) की उपाधि ग्रहण करता। टेनो का अर्थ सम्राट है। इस प्रकार की द्वयात्मक सरकार जो नेपाल में अभी तक प्रचलित है, पहले किसी विदेशी की समझ में नही आई। वैदेशिक मामलो में शोगुन (Shogun) के नाम से कार्यवाही की जाती है। सन् १८५४-५८ की पहली आधुनिक सधि शोगुन की ओर से की गई थी। विदेशियों की समझ में यह द्वयात्मक शासन बहुत दिनो बाद में आया।

तोकूगावा-शोगून काल—तोकूगावा शोगून काल बड़ा शान्तिपूर्ण रहा। इस काल का प्रारम्भ सन् १६४१ से हुआ जब विदेशियों को जापान से बाहर निकाल दिया गया था। इस समय से दो शताब्दी तक जापान विश्व के अन्य देशों से बिल्कुल पृथक रहा और जब चीन, भारतवर्ष, यूरोप व अमरीका में हलचल मच रही थी, जापान में उस समय शान्ति का राज्य था। उन्नीसवीं शताब्दी में पश्चिमी राज्यों ने जापान से सम्बन्ध जोड़कर उसे एकान्तवास से निकालने का प्रयत्न किया। उस समय आने जाने के साधनों में उन्नति होने से नये समुद्री मार्ग खुल रहे थे और जापान बरबस अन्तर्राष्ट्रीय आदान प्रदान के क्षेत्र में खिंचा जा रहा था। अंगरेजों व चीन के बीच प्रथम युद्ध के समाप्त होने पर जापान के बन्द द्वार पर विदेशियों की खटखटाहट अधिक दृढ़ता के साथ होने लगी। सन् १८४४-४६ तक शान्त प्रयत्न प्रयत्न किये गये। सन् १८५० में अमरीका ने कैलीफोर्निया (California) पर अपना आधिपत्य कर लिया और प्रशान्त महासागर से उसका सम्बन्ध हो गया। सन् १८५३ में एक अमरीकन बेड़ा कमोडोर पैरी की अध्यक्षता में जापान की येदो खाड़ी में जा पहुंचा। इसी समय जापानियों ने पहली बार भाप से चलने वाला समुद्री पोत देखा था। कमोडोर पैरी ने जापान के शोगून के अफसरों को प्रेसीडेंट फिलमोर का एक पत्र दिया। डेम्योस (Daimyos) का विरोध होने हुये भी येदो (Yedo) के अधिकारियों ने एक सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये जिसमें शिमोडा और होकेडोर बन्दरगाह अमरीकन जहाजों के आने के लिये खोल दिये गये। इसी संधि से अमरीकन सरकार को इन दोनों में से एक में अमरीकी व्यापार राजदूत रखने का अधिकार मिला, पैरी के बाद तुरन्त ही अंगरेज रूसी और डच लोग जापान में आये। सब ने जापान से वैसी ही सन्धियां की जैसी अमरीका और शोगुन के बीच हुई थी। दो सौ वर्ष के एकान्तवास के पश्चात जापान का फिर विश्व से संसर्ग स्थापित हुआ। इन पश्चिमी राज्यों को जल्दी ही पता लग गया कि शोगून जापान की वास्तविक राजसत्ता नहीं है। इसलिये उन्होंने आर्थिक सुविधायें प्राप्त करने के लिये सीधे क्योटो (Kyoto) के राजदरबार से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। इसी बीच में सम्राट कामी का जो विदेशी विरोधी पक्ष का नेता था देहावसान हो गया। उसका १४ वर्षीय पुत्र मुत्सुहितो, क्योटो के राजसिंहासन पर बैठा। तब सत्सुमा, चोशू हिजेन और टोसा नाम के शक्तिशाली सामन्त घरानों के प्रमुख व्यक्तियों ने शोगून से पदत्याग करने को कहा। इस मांग को शोगून ने ३ नवम्बर सन् १८६७ को स्वीकार कर पदत्याग कर दिया। नौ दिन बाद सम्राट की एक विज्ञप्ति

निकली जिसमें यह कहा गया कि सम्राट ने तोकूगावा केकी की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है कि प्रशासनाधिकार सम्राट की राजसभा को वापिस कर दिया जाय। जिस शक्ति को तोकूगावा शोगून ने १६०३ में हस्तगत किया उसे २६४ वर्ष के पश्चात् हस्तान्तरित कर दिया। यही नहीं किन्तु लगभग ७०० वर्ष के पश्चात् शोगून के जिस पद को योरीतोमो सम्राट ने ११६२ में बनाया वह समाप्त हो गया।

मीजी युग(The Meiji Era) - सम्राट मुत्सुहितो के राज्यकाल में, जिसे मीजी युग कहा जाता है, प्राचीनता का पुनर्स्थापन और पूर्ण सुधार दोनो बातें साथ साथ चलती रही। सन् १८६७ में शोगून संस्था के अन्त होने के पश्चात् सन् १८७१ में डेम्योस जागीरदारो को भी समाप्त कर दिया गया। जिन जागीरदारों की जागीर छीनी गई उन्हे क्षतिपूर्ति के लिये पेंसन दे दी गई। बहुत से ऐसे जागीरदारों को नये कुलीन वर्गों में भी शामिल कर लिया गया। किन्तु सुधारक लोग इस बात पर तुले हुए थे कि जागीरदारों के हाथ की विकेन्द्रित शक्ति बिलकुल समाप्त कर देनी चाहिये। जागीरदारी के आधार पर देश का जो विभाजन चला आ रहा था और जिन पर डेम्योस शासन करते थे वह समाप्त कर देश को प्रान्तो व जिलो में बाँट दिया गया और प्रत्येक का शासन करने के लिये केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रशासन करने वाले अफसर नियुक्त कर दिये गये। इस प्रकार सम्राट की जिस शक्ति को शोगून ने अपने हाथ मे कर लिया था वह फिर सम्राट को समर्पित कर दी गई। किन्तु यह बात यही समाप्त नहीं हुई। मीजी राजनीतिज्ञों ने कुछ नवीन बातो को भी प्रवर्तन करना आरम्भ किया। सन् १८६८ में क्योटो से राजसभा हटाकर यडो नामक नगर में स्थापित की गई। इसी नगर का नाम पीछे जाकर टोकियो पडा। इस प्रकार सम्राट को पुरानी राजधानी के परिवर्तन-विरोधी प्रभाव से हटा लिया गया। इसके बाद नये राजनैतिक विचार और पद्धतियो को अपनाना आरम्भ हुआ। दूसरे ही वर्ष नये सम्राट ने एक राष्ट्रीय असेम्बली बुलाने का वचन दिया। सन् १८७३ में ईसाई धर्म के विरुद्ध निषेध हटा लिया गया। सन् १८७५ मे प्रथम असेम्बली (जैनरोइन या सीनेट) स्थापित की गई जिसमें व्यवस्था सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार हो सके। क्योकि यह असेम्बली मनोनीत की गई थी, निर्वाचित न थी। उदार पक्ष वालो ने निर्वाचित प्रतिनिधियो की सख्या बढाने के लिये आन्दोलन आरम्भ किया। सन् १८८६ में सम्राट ने नया शासन-विधान स्वीकृत कर उपहार के रूप में प्रजा को दिया। इस नये सविधान मे द्विगृही ससद या

डायट (Diet) का कार्यालय था। जिसमें सदन के सदस्यों को लोक-निर्वाचन से लिये जाने का इरादा था। सिद्धान्त और अधिनियमानुसार सम्राट को ही साम्राज्य का निरंकुश शासक बना रहा किन्तु डायट सरकार का एक महत्वपूर्ण अंग बन गई। प्रतिनिधियों द्वारा प्रकट किया हुआ जनमत क्रमशः मन्त्रियों के निर्णयों पर अधिक प्रभाव डालने लगा। मीजी सुधारों ने जापान में शासन को प्रजातान्त्रिक नहीं बनाया किन्तु उसमें अन्याय का कुछ अवरोध कर दिया जिसका इससे पूर्व कोई अस्तित्व न था।

**जापान में पश्चिमी विचारों का प्रवेश**—जापान की राज्य-व्यवस्था में इस परिवर्तन से अधिक महत्वपूर्ण, विधि अधिनियम, शिक्षा, उद्योग और व्यापार के सम्बन्ध में वे पश्चिमी विचार थे जो जापान में प्रवेश करने लगे। ज्यों ही जापान की सरकार ने यूरोपियन देशों से बिना किसी प्रतिबन्ध के सम्बन्ध स्थापित करने की नीति अपनाने का निर्णय किया। सन् १८७१ में पश्चिमी शिक्षालय पद्धति पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली स्थापित की जिससे आधुनिक जगत में जापान सब से अधिक साक्षर देश हुआ। रेल, तार, सरकारी डाकखाने और राष्ट्रीय बैंकें खोली गईं। कारखाने खुलने लगे। पुराने उद्योग-धन्धों के स्थान पर आधुनिक ढंग के बड़े बड़े कारखाने स्थापित हुए, जिनसे जापान कुछ ही दिनों में संसार के बड़े उद्योगी राष्ट्रों में गिना जाने लगा। जागीरदारों की सेना के स्थान पर पश्चिमी ढंग से शिक्षित नये ढंग की सेना संगठित की गई। आधुनिक ढंग की नौसेना बनाने का काम भी प्रारम्भ हुआ। इन सब का यह फल हुआ कि जापान संसार में एक अत्यन्त शक्तिशाली सैनिक राष्ट्र बन गया। इंगलैंड, फ्रांस, जर्मनी और अमरीका से विशेषज्ञ इन सुधारों में सहायता करने के लिये बुलाये गये। पश्चिमी विज्ञान को सीखने के लिये जापानी विद्यार्थी पश्चिमी देशों में भेजे गये। पचास वर्षों में ही जापान ने अपने आपको जागीरदारों के देश से बदल कर एक आधुनिक शक्तिशाली व प्रगतिशील राष्ट्र बना लिया।

**पश्चिमी विचारों का प्रभाव**—एशिया में जापान ही एक ऐसा देश है जिसने पश्चिमी ढंग का लिखित शासन विधान सबसे पहले अपनाया था। यह शासन विधान सन् १८८९ में बना और सन् १९४६ तक चालू रहा। प्रारम्भ में जैसे अंगरेजी सरकार निरंकुश और अत्याचारी थी, जिसका उदाहरण नार्मन व ट्यूडेरवंशीय राजाओं की निरंकुशता में मिलता है, उसी प्रकार जापान में भी निरंकुश राजसत्ता थी। उन्नीसवीं शताब्दी में जब जापानियों ने विज्ञान, सेना संगठन, शिक्षा आदि क्षेत्रों में

पश्चिमी विचारो को अपनाया तो साथ साथ राजनैतिक विचार भी पश्चिम से आकर धीरे धीरे जापान पर अपना प्रभाव डालने लगे। पहले तो प्राचीन परम्परा का सहारा लेकर द्वयाम्मक शासन सगठन के स्थान पर एक केन्द्रीय शासन स्थापित किया गया। इसके पश्चात् धीरे धीरे पश्चिमी विचारो ने अपना सिक्का जमाया और जापानियो का राजनैतिक जीवन पूरी तरह से पश्चिमी साँचे में ढल गया।

सम्राट की शपथ का महत्व—सन् १८६८ मे सम्राट नें जो शपथ ली उसे जापान का मैग्ना कार्टा (Magna Charta) कहा जाता है। इसी शपथ से जापान म वैधानिक विचार फूट निकले। इस शपथ के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया था कि 'एक विचारक असेम्बली बनाई जायगी और सब योजनायें लोकमत से निश्चित होगी। शपथ के इस वाक्य को जब राजनैतिक सस्थाओ के रूप में परिणत किया गया तो शपथ के अभिप्राय से जापानी राजनीतिज्ञ बहुत आगे बढ गये। सन् १८८१ के अक्टूबर मास में सम्राट ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसमें सन् १८६० में एक राष्ट्रीय असेम्बली बुलाने का वचन दिया। इस प्रकार ससदात्मक सरकार स्थापित करने के लिए तत्कालीन शासन सगठन को उसके अनुकूल बनाने के लिए ६ वर्ष का समय मिला। राजनैतिक पक्षो का भी सगठन इसी समय में करना था जिससे वे पार्लियामेंट के निर्वाचित सदन म प्रवेश कर सकें। मार्च सन् १८८२ में सम्राट ने राजकुमार आइटो (Ito) को एक शासन विधान का मसविदा तैयार कर सम्राट् की स्वीकृति के लिए उपस्थित करने का आदेश दिया। इस पर आइटो (Ito) और उसके सेक्रटरी यूरोप गये जहाँ लगभग डेढ वर्ष तक उन्होने यूरोप के प्रमुख राजतत्रो (Monarchies) के व्यावहारिक रूप का अध्ययन किया। वैधानिक राजतत्र स्थापित करने के लिए फ्रास और अमरीका के शासन विधान से कोई शिक्षा न मिल सकती थी। लौटने पर आइटो और उसके सेक्रटरियो ने विदेशी परामर्शदाताओ की सहायता से वैधानिक प्रस्ताव तैयार कर सम्राट की स्वीकृति के लिए भेजे। इसी समय जर्मनी की राजनैतिक प्रणाली का प्रभाव जापान पर पडने लगा था आइटो का विश्वास था कि 'प्रशिया, बवेरिया और सैक्सनी आदि जर्मनी रियासतो में जापान जैसी परिस्थितियाँ वर्तमान थी। इगलैंड में वे न पाई जाती थी क्योंकि वहाँ की राजनैतिक सस्थायें बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी। और उनका विकास बडे लम्बे समय के बाद धीरे धीरे हुआ था।

जापानी सस्थाओ पर जर्मनी का प्रभाव—सन् १८८०-१८६० में

जापानी सेना का संगठन जर्मनी की सेना के ढंग पर किया गया। शासन विधान नये व्यावहारिक व व्यापारिक अधिनियम संहितायें बनाने, विश्व विद्यालय की शिक्षा देने, विद्यार्थियों को सरकार द्वारा विदेश भेजने और अन्य योजनाओं में जर्मन प्रभाव प्रकट रूप से दिखाई पड़ता था। जिस पार्लियामेंट के बनाने का वचन दिया गया था उसकी तैयारी में सब से प्रथम जो राजनैतिक परिवर्तन किया गया वह नये पीयरों (Peers) का बनाना था।

**पीयरों का बनाना**—नये पीयर सन् १८८४ में बनाये गये और इनके बनने के पीछे यही उद्देश्य था कि ऊपरी सदन के गठन के लिए कोई आधार तैयार हो जाये। सबसे प्रथम अधिनियम के अनुसार ५०० पीयर बनाये गये जिनकी उपाधियाँ पश्चिमी उपाधियों के समान ही, प्रिंस, मारक्विस, काउण्ट, वाईकाउन्ट और बेरन थी। नये पीयर प्राचीन कुज (Kuge) और डेमियो (Damiyo) जागीरदार वर्गों में से ही बनाये गये किन्तु जिन समुराईयों (Samurai) ने नई सरकार में ख्याति प्राप्त करली थी उनको भी पीयर बनाया गया। समुराई जागीरदारों के वेतनभोगी सैनिक हुआ करते थे।

**मंत्रिपरिषद् का संगठन**—सन् १८८५ में एक नई मंत्रिपरिषद् का संगठन हुआ जिसमें एक प्रधानमंत्री और नौ शासन विभागों के अध्यक्ष मंत्री हुये। आइटो (Ito) प्रथम प्रधानमंत्री नियुक्त हुआ। इसके आधिपत्य में शासन विभागों की क्षमता में बड़ी वृद्धि हुई। अन्त में, सन् १८८८ में प्रिवी कौंसिल बनाई गई जिससे सम्राट परामर्श कर सके। इस कौंसिल में थोड़े से अनुभवी व्यक्ति थे—अधिकतर अवकाश प्राप्त अफसर—जिनका यह काम था कि वे व्यवस्थापन सम्बन्धी व वैदेशिक संधियों के बारे में सम्राट् को अपने विचार बतावें और सम्राट से पूछे जाने पर अन्य विषयों में अपनी राय दें। यह केवल सम्भव ही न था किन्तु कई बार ऐसा हुआ भी कि उनकी राय और मंत्रिमंडल की राय में अन्तर रहा। ऐसी परिस्थिति में सम्राट संविधान के बाहर नियुक्त किए गये कुछ उच्च व्यक्तियों की सलाह से स्वयं अपना निर्णय दिया करता था। ये उच्च व्यक्ति जैनरो (Genro) अर्थात् वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ (Elder Statesman) कहलाते थे। सात वर्ष की परीक्षा और तैयारी के पश्चात् आइटो और उसके साथियों का कार्य पूरा हुआ। आइटो ने स्वयं आस्ट्रिया और जर्मन शासन प्रणालियों का अध्ययन किया था क्योंकि उसे यह विश्वास था कि इंगलैंड की शासन प्रणाली इतनी अधिक प्रजातंत्रात्मक थी कि वह जापान के लिए अनुपयुक्त थी। इसलिए जापान के शासन विधान

पर आस्ट्रिया और जर्मन प्रणालियों की छाप अधिक पड़ी। ११ फरवरी सन् १८८९ को सम्राट ने अन्तिमत शासन-विधान स्वीकार कर लिया जिसके अन्तर्गत पहला निर्वाचन जुलाई सन् १८९० में हुआ और नई पार्लियामेंट का पहला अधिवेशन उसी वर्ष नवम्बर मास में बुलाया गया।

प्राचीन राजतन्त्र की परम्परा और नई वैधानिक पद्धति के मेल से ही सन् १८८९ का शासन-विधान तैयार हुआ था। सम्राट की शक्ति अधिक होने के कारण डाइट (Diet) की शक्ति संसार के अन्य विधान-मण्डलों की अपेक्षा बहुत कम थी। किन्तु दूसरी बातों में शासन विधान में अर्वाचीन वैधानिक सिद्धान्तों में से बहुतों को अपना लिया गया था।

## सन् १८८९ के शासन-विधान की विशेषतायें

लिखित प्रकार—जापान का सन् १८८९ का शासन-विधान लिखित प्रकार का था। लिखित प्रकार का शासन-विधान सब से प्रथम संयुक्त राज्य अमरीका में अपनाया गया था। अब प्राय सब नवीन शासन-विधान लिखित ही होते है। संविधानों के लिखे जाने की प्रथा इस माग के परिणामस्वरूप प्रचलित हुई कि शासन अधिनियम (Law) का हो न कि व्यक्तियों का।

कठोरता ( Rigidity )—संविधान में संशोधन करने की शक्ति अनन्यरूप से सम्राट के पास सुरक्षित की गई थी। सम्राट ही किसी संशोधन को कर सकता था। डाइट ( Diet ) स्वयं शासन विधान का कोई प्रस्ताव न कर सकती थी न जनता ही उसके लिये प्रार्थना कर सकती थी। साधारण अधिनियम बनाने की क्रिया की अपेक्षा शासन-विधान मे संशोधन करने की पद्धति अधिक पेचीदा थी। संकटकाल में संविधान मे कोई संशोधन न किया जा सकता था चाहे उसकी कितनी ही अधिक आवश्यकता क्यो न होती। सन् १८८९ से लकर सन् १९४६ तक जब नया शासन विधान बना, पुराने संविधान म कोई संशोधन हुआ ही नही। इसका पहला कारण तो यह था कि संशोधन के सूत्रपात करने की शक्ति सम्राट को ही दी हुई थी, दूसरे संविधान ने शासन सम्बन्धी सामान्य सिद्धान्त ही निश्चित कर दिये थे, ब्यौरे की बातें अधिनियम और अध्यादेशो द्वारा निश्चित किये जाने के लिये छोड दी गई थी। किन्तु एक बात अवश्य थी, वह यह कि न्यायालयों को अवैधानिक अधिनियम को रद्द करने का अधिकार न था, अतएव, शासन-विधान में सामान्य अधिनियम से भी संशोधन हो सकता था यद्यपि विधान निर्माताओं का कदापि यह अभिप्राय न था कि डाइट (Diet) विधान संशोधन के इस प्रतिबन्ध से

या कर ऐसा अधिनियम बनावे जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संविधान के सिद्धान्तों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले ।

**प्रचलित प्रथा का प्रभाव**—वैधानिक विकास पर प्रचलित प्रथाओं का प्रभाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है । जापान में भी कुछ रीति-रिवाज पहले से चले आ रहे थे जो यद्यपि वैधानिक न थे और न्यायालय जिन्हें मान्य न समझते थे किन्तु राज्यकार्य में उनका बड़ा प्रभाव पड़ता था । इन रीति-रिवाजों में जैनरो (Genro) के सब परामर्श सम्बन्धी कार्य गिने जा सकते हैं जैसे प्रधानमंत्री के नाम की सिफारिश करना, मंत्रियों के पारस्परिक उत्तर-दायित्व की प्रथा और मंत्रिपरिषद् का डाइट के राजनैतिक दलों के साथ मिल कर कार्य करना । इन्हीं वैधानिक प्रथाओं से शासन-विधान के शुष्क ढांचे में प्राण का संचार हो सकता था । पार्लियामेंट के प्रति मंत्रिपरिषद् के उत्तरदायित्व की प्रथा बाद में जारी हो गई थी ।

**सबल राजतंत्र**—जापान की सरकार एकतात्मक ढंग की थी जिसमें सम्राट की शक्ति बहुत अधिक थी किन्तु वह शक्ति संविधान से मान्य थी । कुछ कुछ शक्ति-प्रथक्करण का सिद्धान्त भी जापान में मान लिया गया था किन्तु अमरीका जैसा पृथक्करण न माना गया था । कार्यपालिका और विधान-मण्डल बिलकुल एक दूसरे से पृथक न किये गये थे ।

**केन्द्रित पद्धति**—जापान की शासन-पद्धति कार्य की दृष्टि से व भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही केन्द्रित थी । शासन-विधान के शब्दों के अनुसार सरकार की सारी शक्ति सम्राट के हाथ में थी, संविधान में स्थानीय शासन का कोई उल्लेख न था । स्थानीय शासन अध्यादेशों व अधिनियमों से ही होता था । तत्कालीन पार्लियामेंटरी स्थिति को देखते हुए कुछ लोग इस शासन विधान को बहुत प्रगतिशील और उदार बतलाते थे । दूसरे इसे प्रतिक्रियात्मक कह कर कड़ी आलोचना करते थे । इस कड़ी आलोचना का एक आधार यह था कि जहाँ सम्राट के विशेष अधिकारों व स्वत्वों का स्पष्ट उल्लेख किया गया था वहाँ प्रजा के मूलाधिकारों का कोई वर्णन न था । इसके अतिरिक्त सम्राट की पूर्वस्वीकृति के बिना संविधान के संशोधन पर विचार न किया जा सकता था और मन्त्रिमण्डल को निचले सदन के बहुमत के नियन्त्रण में स्पष्टरूप से न रखा गया था । यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि सन् १८८९ के बाद बिना संविधान में संशोधन किये ही राज्य प्रणाली में बहुत कुछ व्यावहारिक प्रगतिशीलता आ गई थी । जैसे-जैसे संसदात्मक प्रणाली का अनुभव बढ़ता गया जनता को अधिनियम द्वारा अधिकाधिक अधिकार दिये गये, यहाँ

*तब कि सन् १९२६ में प्रौढ़ मताधिकार भी प्रजा को मिल गया यद्यपि संवि*-धान में मन्त्रिमंडल के उत्तरदायित्व के सम्बन्ध में कोई प्रावधान न था किंतु आवश्यकता पड़ने पर इस उत्तरदायित्व को अस्वीकार न किया गया और निचला सदन मन्त्रिमण्डल के कार्यों पर नियन्त्रण रखता रहा।

जिस दिन शासन-विधान की घोषणा हुई उसी दिन चार बड़े बड़े अधि-*नियम भी प्रकाशित हुए जिनमें वे ब्योरे की बातें दी गई थीं जिनका वर्णन संविधान में न किया गया था।* इनमें से एक हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) से सम्बन्धित सम्राट का अध्यादेश था, दूसरा दोनों सदनों के संगठन के बारे में अधिनियम था, तीसरा निर्वाचन से सम्बन्ध रखता था और चौथा अर्थ सम्बन्धी अधिनियम था। सन् १८९० में पहला निर्वाचन हुआ। जो वयस्क नागरिक २५ वर्ष की आयु के हों और १५ येन (Yen) राष्ट्रीय टैक्स देते हों वे मत देने के अधिकारी थे। ४ करोड़ २० लाख की जनसंख्या में केवल ४६०,००० ही मतधारक थे अर्थात् केवल १ प्रति सैकड़ा से कुछ अधिक। सम्राट ने स्वयं डाइट के प्रथम अधिवेशन का उद्घाटन किया। तीन सौ सदस्य चार पक्षों में बँटे हुए थे। प्रथम असेम्बली में मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध १७० सदस्य थे जिनमें १३० उदार व अनुदार पक्ष के (Conservatives & Liberals) और ४० प्रगतिशील दल (Progressives) के सदस्य थे। अधिक से अधिक सरकार १३० सदस्यों का ही समर्थन प्राप्त कर सकती थी। काउन्ट यमागाता जो एक योग्य सेनानायक था प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त हुआ। प्राइटो (Ito) हाउस आफ पीयर्स (House of Peers) का अध्यक्ष बना। विरोधी पक्ष ने सरकार द्वारा प्रस्तुत किये हुये बजट की कड़ी आलोचना की और ८० लाख येन (Yen) की कटौती का प्रस्ताव किया। मन्त्रिमण्डल ने संविधान के ६७ वें अनुच्छेद को पढ़ कर सुनाया जिसके अनुसार सम्राट की वैधानिक शक्तियों के आधार पर निश्चित व्यय या वह सरकारी व्यय जो किसी अधिनियम के अन्तर्गत या वैधिक बन्धन (Legal Obligation) के कारण अनिवार्य हो उसे डाइट बिना सरकार की सम्मति के न अस्वीकार कर सकती हैं न उसमें कमी कर सकती हैं। प्रतिनिधि सदन (House of Representatives) तिस पर भी अपने कटौती के प्रस्ताव पर अड़ा रहा। अन्त में समझौता हुआ जिससे सरकार ने ६,३१०,००० *येन की कटौती स्वीकार कर ली।* एक लम्बी वैधानिक लड़ाई का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ। यह लड़ाई तभी स्थगित हो जाया करती थी जब कोई राष्ट्रीय संकट आ पड़ता था और किसी [illegible] सधि के

कारण विरोधी पक्ष सरकार की आलोचना करना उचित न समझता था। धीरे धीरे दलबन्दी के आधार पर सरकार का संगठन करने की प्रथा प्रचलित हो गई और सरकार बड़े पक्ष के सदस्यों के समर्थन के सहारे काम करने लगी।

**पाश्चात्य राजनैतिक संस्थाओं का अपनाना**—जापान की नई पार्लियामेंटरी प्रणाली और उसकी संस्थायें, जैसे असेम्बली, राजनैतिक दल, प्रतिनिधित्व संस्थायें, प्रिवी कौंसिल, शासन विधान, स्थानीय शासन का ताना-बाना और न्यायालय आदि, या तो पश्चिमी राज्यों से ज्यों की त्यों लेकर अपनायी गई थीं या इनके निर्माण करने में पश्चिमी रीतियों और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। फिर भी नये विचारों ने पुराने विचारों को बिलकुल ही न उखाड़ फेंका था। सारे राजनैतिक संगठन व शासन प्रणाली को चलाने में परम्परा से चले आने वाले रीति रिवाजों ने बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया था। यह भी न समझना चाहिये कि जापानियों ने आंख मींच कर पश्चिमी संस्थाओं की नकल की थी। उन्होंने उन संस्थाओं को अपनी विशेष परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुकूल ही बना कर स्थापित किया। आधुनिक ब्रिटिश पार्लियामेंट से जापान की डाइट (Diet) की तुलना करके उसे तुच्छ ठहराना बिलकुल ही बेमतलब की बात होगी। आश्चर्य और प्रसन्नता की बात तो यह है कि जागीरदारी की प्रथा के टूटने के ३० वर्ष के भीतर ही डाइट का निर्माण हो गया जिसमें जनता के प्रतिनिधि राज्य के मन्त्रियों से अपनी इच्छानुसार कार्य कराने में समर्थ थे।

**जैनरो**—जापानियों ने पश्चिमी संस्थाओं को किस प्रकार अपनी संस्कृति और परम्परा के रंग में रंगा इसके उदाहरण में "जैनरो" (या वृद्ध-राजनीतिज्ञ) का नाम उल्लेखनीय है। इसके स्थापित होने में हमें जापान की एक प्राचीन प्रथा की झलक देखने को मिलती है। जिस प्रकार गृहस्वामी घर के वृद्ध व्यक्तियों से बड़ी बड़ी बातों में परामर्श लेता है उसी प्रकार सम्राट भी जो राज्य का अध्यक्ष था कुछ ऐसे योग्य व्यक्तियों की राय लिया करता था जिनकी राजनिष्ठा और बुद्धिमानी में संदेह न होता था। यूरोपियन देशों में यह मान लिया गया था कि वैधानिक सम्राट अपने मन्त्रियों की राय के अनुसार ही कार्य करेगा। किन्तु जापान में यह सम्भावना थी कि जैनरो की राय मन्त्रियों की राय के प्रतिकूल हो। ऐसा होने पर जैनरो की राय ही मानी जाती थी। इस प्रकार एक ऐसी परामर्श देने वाली संस्था बन गई जिसका प्रभाव मन्त्रिपरिषद् से भी अधिक हो गया। इन वृद्ध राजनीतिज्ञों में आइटो,

जिसने सविधान को जन्म दिया, यमागाता, इनौनी, ओयामा मत्सुकाता और सैगो जैसे विख्यात व्यक्ति थे। इन वृद्ध राजनीतिज्ञो की सलाह से ही प्रधान मत्री को पसन्द किया जाता था। इसके अतिरिक्त राज्य के जितने बडे प्रश्न होते थे उन पर ये लोग ही पहले विचार किया करते थे। ऊपर जिन वृद्ध राजनीतिज्ञो का नाम दिया गया है उनमें यमागाता और आइटो एक जाति के होते हुए भी प्राय एक दूसरे का विरोध किया करते थे। सविधान का निर्माता आइटो उदार विचारो का व्यक्ति था। यमागाता जिसने जापानी सेना का सगठन किया था सैनिक वर्ग का मुखिया था। सन् १९०९ में आइटो की हत्या के पश्चात् यमागाता ही जैनरो में सब से प्रभावशाली व्यक्ति रह गया।

## सन् १८८९ के शासन-विधान की उपक्रमा

जापान के शासन-विधान का रूप बहुत सक्षिप्त था। उसमें सरकार-सगठन की मोटी मोटी बातें ही दी हुई थी अधिकतर विस्तार की बातें सामान्य अधिनियमो द्वारा पूरी किये जाने के लिए छोड दी गई थी। सामान्य शब्दावली के कारण शासन-विधान में व्याख्या के लिए पर्याप्त सामिग्री थी।

जो विस्तार की बातें अर्वाचीन शासन विधान में पाई जाती है उनको आइटो ने अपने शासन-विधान में शामिल न कर सामान्य अधिनियमो के लिए छोड दिया जिससे अवसर पडने पर सामान्य रीति से ही उनमें परिवर्तन हो सके और शासन विधान में सशोधन की पचीदा कार्यवाही करने की आवश्यकता न रहे। सविधान के सातो अध्यायो में क्रम से सम्राट, प्रजा के कर्तव्य डाइट, मत्री और प्रिवी कौंसिल न्यायपालिका, आय व्यय और पूर्ति करने वाले नियमो का वर्णन था।

**शासन-विधान सम्राट का उपहार**—शासन विधान के पहले अध्याय में सम्राट का वर्णन है। दूसरे अनुच्छेद के अनुसार सम्राट पवित्र और अवध्य है। सम्राट ने अपनी प्रजा को शासन विधान की भेंट स्वेच्छा से ही की थी न कि परवश होकर नीटोबे (Nitobe) ने इसलिए कहा है कि "जापान का शासन-विधान इस अर्थ में एक अध्यादेश ( Ordinance ) है कि यह राजा-प्रजा का विभेद स्वरूप न होकर एक-पाक्षिक है और शासितो की इच्छा या सम्मति के बिना ही इसकी रचना हुई है।"* इसलिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जापान के सम्राट को सविधान में इतना अधिक

* जापान गाइडी व. ? माहित ।

से ऊँचा स्थान दिया गया। मंत्री सम्राट को न कि डायट को उत्तरदायी रखे गये थे। सम्राट की जिन शक्तियों का वर्णन किया गया है वे सब ऐसी हैं जो अन्य राज्यों में राज्याध्यक्ष को सामान्यतः दी जाती हैं। इन शक्तियों में डायट के अधिवेशन न होते रहने के समय आवश्यकता होने पर अध्यादेश निकालने की शक्ति भी शामिल थी। किन्तु ऐसे अध्यादेश डायट की अगली बैठक में सामने रखने पड़ते थे और यदि अस्वीकृत हो जाते तो वे रद्द समझे जाते थे।

**सरकार की अध्यादेश निकालने की शक्ति**—*यह शक्ति बड़ी विस्तृत थी। इसके अन्तर्गत सरकार (१) किसी अधिनियम को कार्यान्वित करने* के लिए (२) शान्ति, सुव्यवस्था रखने और जनता का सुख बढ़ाने के लिए, (३) अपनी कार्यकारी शक्ति को कार्यरूप देने के लिए अर्थात् शासन के विभिन्न विभागों के संगठन, सेना की व्यवस्था, हाउस आफ पीयर्स की रचना आदि के लिए अध्यादेश निकाल सकती थी। किन्तु इन अध्यादेशों से किसी पूर्व स्थित अधिनियम को बदला न जा सकता था केवल उसकी कमी को पूरा किया जा सकता था। यही नहीं, किन्तु यह भी प्रतिबन्ध था कि जो बातें अधिनियम द्वारा ही नियमित की जा सकती थीं वे अध्यादेश से व्यवस्थित न हो सकती थीं।

**राजा की कार्यकारी शक्तियाँ**—*राजा स्वयं भी अनेक आज्ञायें निकाल* कर कार्यसम्पादन किया करता था। वह ही शासन के विभिन्न विभागों का संगठन निश्चित करता था और शासन के सेना के कर्मचारियों की नियुक्ति कर उनका वेतन निश्चित करता था। राजा ही इन कर्मचारियों को उनके पद से हटा सकता था। राजा ही युद्ध की घोषणा करता, युद्ध समाप्त करने की आज्ञा देता और सन्धियाँ करता था। इन कामों के करने में उसे डायट से सलाह लेने की भी आवश्यकता नहीं थी। इस भाँति द्वयात्मक शासन (Dual Government) की प्रथा चालू थी।

**राजा की न्याय सम्बन्धी शक्तियाँ**—संविधान में लिखा था कि *न्यायकारी शक्ति को न्यायालय सम्राट के नाम से अधिनियम के अनुसार* कार्यान्वित करेंगे। सम्राट न्यायशक्ति का स्वामी भी था क्योंकि वही न्याय का *निर्झर समझा जाता था। किन्तु इस शक्ति का उपयोग न्यायालयों के लिए ही* छोड़ दिया गया था जिनका संगठन अधिनियमानुसार होना था।

राजा को कार्य करने की शक्तियाँ अवश्य दे दी गई थीं किन्तु उन पर यह प्रतिबन्ध अवश्य था कि उनके प्रयोग करने में यदि धन की आवश्य-

कता हो तो वह डाइट की सम्मति से ही दिया जा सकता था। इसका एक उदाहरण यह है कि बार-बार यह सिफारिश किये जाने पर भी कि स्थल व नौ सेना बढाई जाय डाइट ने कई बार इस सिफारिश को कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक पर्यादान (Appropriation) स्वीकार नही किया। डाइट की बिना सम्मति के युद्ध करने और सधि करने की शक्ति वैदेशिक सम्बन्धो में भारी महत्व रखने वाली बात थी।

**प्रजा के अधिकार और कर्तव्य**—सविधान के दूसरे अध्याय में प्रजा के कर्तव्य और अधिकारो का वर्णन है। इनमे उन सब अधिकारो का उल्लेख था जो यूरोपियन बिल्स आफ राइट्स (Bills of Rights) में या अमरीकन शासन विधान के प्रथम सशोधन में मिलते है। किन्तु यहा यह बतलाना आवश्यक है कि जापान में प्रतिबन्धहीन अधिकार न माने गये थे। कार्यकारी सत्ता थोडे समय के लिये सुव्यवस्था सम्बन्धी नियमो या अध्यादेशो से इन सुविधाओ को छीन सकती थी। इन नियमो या अध्यादेशो के अन्तर्गत किसी व्यक्ति को वक्तृता देने, समाचार-पत्रो मे लिखने या सामाजिक अधिकारो के भोगने से रोका जा सकता था।

**मंत्रिपरिषद्**—राजनीतिज्ञ वाल्टर बैजहौट (Walter Bagehot) ने कहा है कि आधुनिक सरकारो के दो अग होते है, एक शोभनार्थ दूसरा कार्यार्थ। शोभनार्थ अग प्रजा को प्रभावित करने के लिये होता है। कार्यार्थ अग ही वास्तव मे शासन करता है। जापान में शोभनार्थ अग सम्राट था और कार्यार्थ अग मन्त्रिपरिषद् थी। सम्राट के पुन प्रतिष्ठित होने के थोडे समय बाद ही साम्राज्य के चासलर का एक नया पद बनाया गया। जर्मन चासलर के समान इसका काम सम्राट को सलाह देना और शासन का सारा प्रबन्ध करना था। सन् १८८५ में यह प्रणाली तोड दी गई और मन्त्रिपरिषद् प्रणाली जारी की गई। मन्त्रिपरिषद् सम्राट और डाइट को जोडने वाली कडी थी। परिषद् के कर्तव्य तीन श्रेणियों में विभक्त थे, परामर्श सम्बन्धी, पार्लियामेंटरी और शासन सम्बन्धी। शासन-विभाग के अध्यक्ष होने के नाते मत्री अपने अपने विभाग के कार्य का प्रबन्ध करते थे। शासन विधान में यह अवश्य कहा गया था कि मत्री उत्तरदायी होंगे, पर किसको—यह स्पष्ट न किया गया था। किन्तु व्यवहार में डाइट के प्रति मन्त्रिपरिषद् का उत्तरदायित्व पक्का हो चुका था। यही डाइट से मतलब निचले सदन से ही था हालाकि वैधिक रूप से दोनो ही सदनो को समान अधिकार थे। शासन विधान में मन्त्रियों की वैयक्तिक जिम्मेदारी का ही उल्लेख था किन्तु पक्षो के आधार पर परिषद् के बनने से

सांदिग्ध प्रश्न। संविधान के मानुषांगिक अधिनियमों में प्रतिनिधि सदनों के निर्वाचन व अर्थ सम्बन्धी अधिनियम और हाउस आफ पीयर्स से सम्बन्धित सम्राट के अध्यादेशों की गिनती होनी थी।

(३) घेरा पड़ने की स्थिति की घोषणा, शासन संविधान के आठवें अनुच्छेद के अन्तर्गत अध्यादेश और अन्य सम्राट के अध्यादेश जिनमें दण्ड की व्यवस्था की गई हो।

(४) अन्तर्राष्ट्रीय संधियां और समझौते, और

(५) प्रिवी कौंसिल के संगठन व कर्त्तव्यों से सम्बन्ध रखने वाले सम्राट के अध्यादेश में संशोधन करने के बारे में प्रश्न।

लार्ड प्रिवीसील – (Lord Privy-Seal) लार्ड प्रिवीसील यद्यपि सम्राट के गृह-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाला व्यक्ति होता था किन्तु राज्यों के मामलों में भी वह सम्राट को सलाह दिया करता था। इस पद पर वृद्ध राजनीतिज्ञों में से सब से चतुर व्यक्ति ही नियुक्त किये जाते थे। इस कर्मचारी का मुख्य काम नये मन्त्रिमंडल के बनाने में सम्राट को सलाह देना था। व्यवहार में केवल प्रधान मन्त्री के सम्बन्ध में ही यह कर्मचारी सम्राट को सलाह दिया करता था। संविधान के अंतर्गत सम्राट निचले सदन में विभिन्न राजनैतिक पक्षों की शक्ति का ध्यान न रखते हुये भी अपने मन्त्रियों को चुन कर नियुक्त कर सकता था। मन्त्रियों की जिम्मेदारी का सिद्धांत पक्की तरह मान्य न हुआ था किंतु प्रत्येक राजनैतिक नेता यह जानता था कि निचले सदन के बहुमत को अपने पक्ष में किये बिना सरकार को कभी २ बड़े निराशाजनक विरोध का सामना करना पड़ेगा। उदार विचार वाले नेताओं ने प्रिवी कौंसिल की कड़ी आलोचना की क्योंकि किसी भी राजनैतिक नियन्त्रण से प्रतिबंधित न होने से यह कभी कभी सम्राट को मन्त्रिपरिषद के प्रस्तावों को अस्वीकार करने की सलाह दे सकती थी।

## विधान मण्डल

द्विगृही प्रणाली—डाइट में दो सदन थे—एक प्रतिनिधि सदन और दूसरा हाउस आफ पीयर्स। इस प्रकार जापान ने भी द्विगृही प्रणाली ही अपनाई थी। जहाँ तक बनावट और संगठन का सम्बन्ध है हाउस आफ पीयर्स अधिक वैज्ञानिक ढंग पर सुदृढ़ रूप से संगठित था और समाज के विभिन्न वर्गों का भली भांति प्रतिनिधित्व करता था। अग्रज में लगभग आधे सदस्य पीयर्स न थे। कुछ लेखक जापान की शासन प्रणाली में हाउस आफ पीयर्स

(House of Peers) को ही सबसे अधिक शक्तिशाली होने में नहीं हिचकते।

हाउस आफ पीयर्स में निम्नलिखित ६ श्रेणियों के ही सदस्य होते थे: (१) राजघराने के पुरुष जो वयस्क हो गये हैं। (२) वे प्रिंस और मारक्विस जिनकी आयु ३० वर्ष से ऊपर हो। (३) काउन्टों या वाइकाउन्टों और बैरनों द्वारा सात वर्ष के लिये चुने हुए प्रतिनिधि काउन्ट, वाइकाउन्ट और बैरन। (४) तीन वर्गों से सम्राट से मनोनीत प्रतिनिधि, पहले वे लोग जो राज्य की सेवा या विद्वता के कारण चुने गये हों, दूसरे सब से अधिक कर देने वालों के प्रतिनिधि और तीसरे इम्पीरियल ऐकेडैमी के प्रतिनिधि।

सन् १९२५ से पूर्व यह प्रतिबन्ध था कि चौथी श्रेणी में सम्राट के मनोनीत व्यक्तियों की संख्या तीन बची हुई श्रेणियों के सदस्यों से अधिक न होनी चाहिये। सन् १९२५ में अधिनियम द्वारा यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया और इम्पीरियल ऐकेडैमी प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ा दी गई। ऊपरले सदन के सदस्यों की संख्या प्रारम्भ में २०६ थी किंतु यह संख्या ४०० तक पहुँच चुकी थी।

प्रतिनिधि सदन में ४६६ निर्वाचित सदस्य थे अर्थात् १३३,२०६ व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि होता था। सदन का कार्यकाल चार वर्ष था। प्रत्येक सदस्य को ३००० येन (Yen) वार्षिक वेतन और सरकारी रेलों में बिना टिकट चलने की सुविधा प्राप्त थी। सदन स्वयं स्पीकर और सेक्रेटरी को चुनता था। इस सदन की यह विशेषता थी कि सामान्यतः श्रद्धा के कारण और अनुभवी होने से लोग वृद्ध पुरुषों को ही सदन का सदस्य चुनते थे। सन् १९३० में १९६ सदस्य प्रथम बार चुने गये थे। २८६ ऐसे थे जो पहले भी डाइट के सदस्य थे और ५९ पूर्व की डाइटों में भी सदस्य रह चुके थे। कृषिजीवी से जब देश अधिकाधिक उद्योगजीवी हुआ तो सदन के सदस्य भी भिन्न प्रकार के होने लगे। वकील सदस्यों की संख्या दूनी हो गई थी। सन् १९३० में विश्वविद्यालय के स्नातकों की संख्या अन्य सदस्यों से कहीं अधिक थी।

विधानमण्डल की शक्ति—प्रिंस आइटो का कहना था कि "डाइट का यह काम है कि वह राज्य के अध्यक्ष को अपना कर्तव्य पालन करने के योग्य बनाने और राज्य की इच्छाशक्ति को सुदृढ़, अनुशासित और स्वस्थ रखे ···· डाइट का यह कर्तव्य है कि वह सलाह दे और सम्मति दे।" सम्राट विधायिनी सत्ता का उपभोग डाइट (Diet) की सम्मति से करता

था। दोनो सदनो से सरकार मे प्रस्तुत किये विधेयको पर विचार हो सकता था। दोनो सदनो को समान अधिकार दिया गया था, केवल ऊपरी सदन को वार्षिक बजट पर विचार करने के लिये कम समय मिला हुआ था, किंतु हाउस आफ पीयर्स को यह अधिकार था कि प्रतिनिधि सदन से अस्वीकृत पर्यादान को पुन प्रतिष्ठित कर दे। सिद्धातत सब अधिनियम डाइट की सम्मति से बनते थे, सधिया और अध्यादेश ही इस नियम में अपवाद थे। डाइट शासन-विधान मे सशोधन का प्रस्ताव न कर सकती थी। सरकारी विधेयको पर अन्य विधेयको की अपेक्षा पहले विचार किया जाता था।

सरकार की अध्यादेश जारी करने की शक्ति इतनी विस्तृत थी कि उससे पालियामेंट की विधायनी शक्ति पगु बनी रहती थी। हालाकि सविधान में यह प्रावधान था कि अध्यादेशो से किसी अधिनियम को नही बदला जा सकता फिर भी सकटकालीन अध्यादेशो से अधिनियम बदला जा सकता था और अपनी इच्छापूर्ति करने वाली शक्तिशाली कार्यपालिका की चालो के सामने डाइट निस्सहाय की तरह मु ह देखती रह जाती थी। डाइट को यह भी विश्वास न रहता था कि उसका बहुमत कार्यपालिका की अनुचित कार्यवाही का विरोध करेगा या नही और सदन के विघटन किये जाने का भी भय डाइट को अधिक दृढ बनने से रोके रहता था।

**आय-व्यय पर नियन्त्रण**—राज्य की आय और उसका व्यय डाइट के आधीन था। वार्षिक बजट के द्वारा आय व्यय के लिये डाइट की सम्मति ली जाती थी। राज्य की आय अधिनियमानुसार ही एकत्र की जा सकती थी। बजट में आय के दिखाने और बजट के पास हो जाने का यह मतलब न होता था कि सरकार कर लगा कर आय वसूल कर सकती है। ऐसा करने के लिये पृथक अधिनियम द्वारा सरकार शक्ति ले सकती थी। क्षतिपूर्ति के बतौर जो आय होनी थी, जैसे प्रशासन सम्बन्धी फीस इत्यादि, उसके लिये डाइट की सम्मति की आवश्यकता न थी। डाइट बजट प्रस्तुत न कर सकती थी। उसकी शक्ति केवल यही तक सीमित थी कि वह सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट में कुछ सशोधन कर दे या उसे अस्वीकृत कर दे। सशोधन करने में भी डाइट व्यय को बढा न सकती थी। स्वय शासन विधान में कुछ ऐसे व्यय की सूची निश्चित कर दी गई थी जिसे डाइट सरकार की सम्मति के बिना न बदल सकती थी न रद्द कर सकती थी। उस सूची में निम्नलिखित मदें थी (५) सम्राट की कार्यकारी शक्ति के कार्यान्वित करने में जो व्यय हो, जैसे सधियो व सम्राट के अध्यादेशो द्वारा बढा हुआ व्यय। पर इसमें प्रतिबन्ध यह था कि पूर्ववर्ग के

बजट में वे मदें रखी गई हों और उस प्रकार डाइट से वे स्वीकृत हो चुकी हों। सेना, नौसेना व शासन-सम्बन्धी व्यय भी इसी श्रेणी में आते थे, (२) ऐसा व्यय जो किसी अधिनियम के पास हो जाने से अनिवार्य हो गया हो, जैसे पेंशन। यह सिद्धांत मान लिया गया था कि एक बार जब कोई अधिनियम सम्राट ने डाइट की सम्मति से पास कर दिया हो तो डाइट उस अधिनियम से प्रतिबन्धित है और इसलिये उसको कार्यान्वित करने में डाइट आवश्यक अनुदान अस्वीकृत करके अड़ंगा नहीं लगा सकती, (३) वह व्यय जो कि सरकार के वैधिक (Legal) ऋण या दातव्य (liability) के कारण हुआ हो, जैसे राष्ट्रीय ऋणों पर ब्याज, क्षति पूर्तियां इत्यादि।

## राजनैतिक पक्ष

जापान में राजनैतिक दलबन्दी सन् १८९० से पूर्व भी प्रचलित थी। किंतु १८९८ में दो बड़े बड़े राजनैतिक पक्षों के मिल कर हो जाने से एक *वैधानिक सरकारी पक्ष (जियूतू)* (Constitutional Government Party) का जन्म हुआ। इस पक्ष के बनाने का उद्देश्य तत्कालीन सरकार को शक्ति प्रदान करना था और इसके बन जाने से पहली बार पक्ष के आधार पर मंत्रिपरिषद् का संगठन हुआ जिसका प्रधानमंत्री काउंट ओकूबा बना जो इस नये पक्ष का नेता था। तब से लेकर सन् १९२३ तक मंत्रिपरिषदों के रूप और उसके राजनैतिक पक्षों की स्थिति कुछ अधिक अच्छी नहीं रही। किंतु उसके बाद मंत्रिपरिषद् राजनैतिक पक्षों के ही आधार पर बनने लगी। प्रतिनिधि सदन में कई पक्ष थे, उसमें से कुछ इतने निर्बल थे कि उनको मिला कर एक शक्तिशाली पक्ष बन सकता था। अप्रैल ३० सन् १९३७ को जो निर्वाचन हुआ उससे निर्वाचित डाइट के सदस्यों की संख्या इस प्रकार थी —

| | |
|---|---|
| मिनसिटो | १७९ |
| सीयू काइ | १७५ |
| श्रमिक दल | ३६ |
| स्वतंत्र | २९ |
| शोमा-काई | १८ |
| कोकूमिण्डम | ११ |
| दूसरे | १८ |
| कुल | ४६६ |

न्यायालय, ५१ जिले के न्यायालय, ७ पुनर्विचार न्यायालय थे और इन सब के ऊपर एक सर्वोच्च न्यायालय था। न्यायाधीश विश्वविद्यालय की शिक्षा पाये हुए व्यक्ति होते थे। वे सिविल सर्विस के नियमों के अन्तर्गत परीक्षा द्वारा छांट कर नियुक्त किये जाते थे। ये ६७ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकते थे। सर्वोच्च न्यायालय का अध्यक्ष ६५ वर्ष की आयु तक कार्य कर सकता था। सब सामान्य न्यायालयों में मुख्तार भी नियुक्त किये जाते थे। जिनका न्याय शासन से बड़ा निकट सम्बन्ध रहता था। ये मुकदमों में प्रारम्भिक छान-बीन करते और सार्वजनिक मामलों में जनता के हित का प्रतिनिधित्व करते थे।

**पंच-प्रणाली**—जापान में पंच-प्रणाली भी प्रचलित थी किन्तु इसका कार्यक्षेत्र अन्य देशों की अपेक्षा बड़ा संकीर्ण था। सन् १९२३ के अधिनियम की प्रथम धारा इस प्रकार थी "अपराध सम्बन्धी (फौजदारी) मुकदमों में इस अधिनियम के अनुसार कोई न्यायालय पंचों की राय लेकर वास्तविकता के आधार पर अपना निर्णय दे सकता है"। तीस या उससे अधिक आयु वाले १२ पुरुष पंच बनाये जाते थे। डिस्ट्रिक्ट के न्यायालयों में केवल अपराध सम्बन्धी (Criminal) मुकदमों में ही उनकी राय ली जाती थी।

**सैनिक न्यायालय**—सामान्य न्यायालयों के अतिरिक्त सैनिक-न्यायालय, पुलिस-न्यायालय और दूसरे विशेष न्यायालय भी थे। सैनिक न्यायालयों में सामान्य न्यायाधीश और सेना के अफसर न्याय करते हैं। सेना के लोगों के विरुद्ध अपराधों की ही ये न्यायालय जांच करते थे। पुलिस न्यायालयों में पुलिस के अफसर न्याय करते थे। ये लोग साधारण रक्षा सम्बन्धी मुकदमें मामूली पूछ-ताछ करके तय किया करते थे। इन मुकदमों में २० दिन से अधिक कारावास या २० येन से अधिक जुर्माने का दण्ड न दिया जा सकता था। उनके निर्णय के विरुद्ध सामान्य न्यायालयों में अपील की जा सकती थी। विशेष न्यायालयों में तरुण अपराधियों के न्यायालय (Juvenile courts), सामरिक न्यायालय (Martial courts) आदि होते थे।

## स्थानीय शासन

"जापान में लोकतन्त्र स्वयजात होकर नीचे से विकसित न हुआ था किन्तु इसका भरण-पोषण दूरदर्शी नेताओं ने चोटी पर ही किया था।" जापान में स्वायत्त शासन का सिद्धान्त किसी बड़ी राष्ट्रीय जाग्रति के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। स्वायत्त शासन प्रणाली

सन् १८८८ के अधिनियम पर आधारित थी । टोकियो, क्योटो और ओसाका नगरो का स्थानीय शासन सन् १८६८ अधिनियम के अनुसार होता था। फ्रान्स की तरह यहा स्थानीय शासन केन्द्रित और श्रेणीबद्ध था। यहा दो प्रकार की स्थानीय शासन सस्थायें थी, एक प्रिफेक्चर्स और बडे नगरो की और दूसरी छोटे नगरो और गावो की।

प्रिफेक्चर—शासन की दृष्टि से जापान ४६ प्रिफेक्चरो अर्थात् प्रान्तो में बटा हुआ था प्रिफेक्चर में कार्यकारी-प्रध्यक्ष गवर्नर या प्रिफेक्ट कहलाता था। फ्रान्स के प्रिफेक्ट के समान वह दो अवस्थाओ में कार्य करता था। केन्द्रीय सरकार का प्रतिनिधि होने के नाते स्थानीय शासन पर उसे पूरा अधिकार था। वह स्थानीय शासन अनन्यरूप से न मत्री के अधीन था न स्थानीय शासन-सस्था के। निर्वाचन, शिक्षा, निर्धना की सहायता, पुलिस, सार्वजनिक स्वास्थ्य, उद्योगो की रक्षा, सेना में भर्ती, कर्मचारियो की देखभाल आदि सब मामले प्रिफेक्ट के अधिकार-क्षेत्र में पडते थे। प्रान्त का प्रमुख कार्याध्यक्ष होने के कारण वह उन सब बातो का प्रबन्ध करता था जो विधान-मडल की सम्मति से स्थानीय प्रबन्ध के लिये छोड दिये जाते थे। वह गृह-मत्री को उत्तरदायी रहता था। टोकियो के प्रिफेक्चर में पुलिस का शासन दूसरे प्रिफेक्चरो में पुलिस के शासन से भिन्न व निराले ढग का था। वहा मैट्रोपोलिटन पुलिस बोर्ड की आधीनता में पुलिस काम करती थी। प्रिफेक्ट में एक असेम्बली और एक कौंसिल अधिनियम बनाती थी।

बड़े नगर—जापान के ४६ प्रात या प्रिफेक्चर (Prefectures) १० बडे नगरों, १६८५ छोटे नगरो और १०४४ गावो में विभाजित है। ये सब सन् १६७४ तक रहने वाली ६३६ काउन्टिया में से बनाये गये थे। प्रिफेक्चर की तरह इन छोटी इकाइयो की भी अधिनियम बनाने वाली व कार्यपालिका सस्थायें थीं। बडे नगरो में एक असेम्बली और एक कौंसिल होती थी। असेम्बली चार वर्ष के लिये लोकमत से निर्वाचित हुआ करती थी। इसके सदस्यो की सख्या नगर की जनसख्या के अनुसार विभिन्न नगरो में विभिन्न थी। मेयर (Mayor) इसकी बैठको को बुलाता था और समाप्त करता था। असेम्बली की कुछ सेलक्ट समितिया (Select Committees) थी किन्तु स्थायी समितिया (Standing Committees) न होती थीं। बडे नगरों की असेम्बलियो की शक्तिया प्रान्तीय असेम्बलिया की शक्तियो से अधिक होती थीं।

ग्राम और छोटे नगर—छोटे नगरो और ग्रामो की शासन प्रणाली,

में केवल नाम का ही अन्तर था। ग्राम या छोटे नगर की असेम्बली कर्मचारियों को स्वयं चुनती थी। इन कर्मचारियों की नियुक्ति प्रिफेक्ट अर्थात् प्रान्त के गवर्नर की पूर्व स्वीकृति से ही हो सकती थी। नगर-असेम्बली के ढांचे पर ही इन ग्राम-असेम्बलियों का संगठन हुआ करता था। कुछ ग्रामों में गवर्नर की पूर्व सम्मति से विशेष परिस्थितियों में सब मतदाताओं की, न कि उनके प्रतिनिधियों की असेम्बली बनाई जा सकती थी। यह असेम्बली स्विट्जरलैंड के छोटे कैंटनों की 'लैण्डजेमेंडे" (Landsgemeinde) के समान थी या न्यू इंगलैंड (New England) की नगर शासन प्रणाली से मिलती जुलती थी। कभी कभी गवर्नर की पूर्व-सम्मति से सड़क, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सिंचाई के साधन, पुल, शिक्षा आदि सर्व हितकारी कामों के लिये नगरों और ग्रामों की सिंडिकेट (Syndicate) बन जाती थीं।

केन्द्रीय नियंत्रण—केन्द्रीय सरकार का स्थानीय इकाइयों पर कड़ा नियंत्रण रहता था, विशेषकर इसलिये क्योंकि प्रान्त का गवर्नर सरकार का कर्मचारी होता था। सरकार का नियंत्रण गृह विभाग के द्वारा रखा जाता था। इसी विभाग को उन बातों में अन्तिम अधिकार रहता था जो केन्द्रीय सरकार के किसी अन्य अधिकारी को न सौंपी हुई होती थी। यह बात निस्सन्देह है कि गृह विभाग (Home Ministry) का ऐसा नियंत्रण रहने से स्थानीय शासन में एकरूपता व्यवस्था, शांति और एकता रहती थी, किंतु प्रान्तीय गवर्नर का पद राजनैतिक ढंग का होने से कार्य की क्षमता न रह पाती थी। जो बात आचार्य मुनरो ने फ्रांस के स्थानीय शासन के बारे में कही थी वह जापान के लिए भी सत्य थी। आचार्य मुनरो ने कहा है कि 'केन्द्रीकरण ही इसकी मूल प्रकृति है। सारी शक्ति भीतर और ऊपर की ओर समूह होती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जिसका मानचित्र एक पिरैमिड के रूप का होगा।' किंतु बाद में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति भी दिखाई देने लगी थी।

## सन् १९४६ का शासन-विधान

टोकियो खाडी में संयुक्त राज्य के मिस्सूरी नामक जलपोत के ऊपर २ सितम्बर सन् १९४५ को जापानियों ने द्वितीय महायुद्ध में पूर्णतया पराजित होकर विधिपूर्वक आत्म समर्पण कर दिया। पोट्सडम घोषणा के अनुसार जापान के प्रधान भू भाग पर मित्रराष्ट्रों के सेनानायक जनरल मैकार्थर ने अधिकार कर लिया। संयुक्त राज्य की सरकार ने जनरल मैकार्थर को दो

उद्देश्यों को प्राप्त करने का आदेश दिया, पहला यह कि "जापान फिर संयुक्त-राज्य अमरीका के लिये और विश्व की शांति और सुरक्षा के लिये विपत्तिदायक न होने पावे" और दूसरा यह कि "अन्तिमत ऐसी शांतिप्रिय और उत्तरदायी सरकार स्थापित हो जो दूसरे राज्यों के स्वत्वों का उचित आदर करे और संयुक्त राज्य के उन आदर्शों और सिद्धांतों का समर्थन करे, जो संयुक्त-राष्ट्र (United Nations) के चार्टर में दिये हुए हैं।" नई सरकार प्रजातंत्रात्मक सिद्धांतों के अनुकूल बने और स्वतंत्र जनमत के ऊपर स्थित रहे। अतएव जितने सैनिक नियंत्रण जापान की शासन व्यवस्था में लगे हुए थे, वे मिटा दिये गये, शिंटो राज्य को अप्रतिष्ठित कर दिया गया, शिक्षालयों में सेना की शिक्षा समाप्त कर दी गई, राजनैतिक बन्दी छोड दिये गये, और जनमत के प्रकट होने के लिए उचित आयोजन कर दिया गया।

**नया संविधान कैसे बना**—जापान के मन्त्रिमंडल ने जिसका प्रधान मंत्री शिडेहरा था, जनरल मैकार्थर से सलाह करके ६ मार्च सन् १९४६ के शासन-विधान का एक मसविदा तैयार किया। इसको कुछ परिवर्तनों के बाद डाइट ने स्वीकार कर लिया और अन्त में सम्राट ने उसकी ३ नवम्बर सन् १९४६ को घोषणा कर दी। यह शासन विधान सन् १८८९ के विधान से बिल्कुल भिन्न है। इसकी प्रस्तावना म कहा गया है कि "हम जापानी लोग राष्ट्रीय डाइट में विधिपूर्वक चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा कार्य करते हुए, यह दृढ सकल्प करके कि हम अपने लिये और अपनी संतान के लिए सब राष्ट्रों से मेल रखने से प्राप्त हुए फल को ग्रहण करेंगे और यह दृढ प्रतिज्ञा करते हुए कि सरकार के कार्यों से हम फिर कभी युद्ध की भीषणता का सामना न करेंगे, यह घोषणा करते हैं कि सर्वोच्च सत्ता प्रजा के हाथ में है और इस शासन-विधान को स्थापित करते हैं। सरकार जनता का पवित्र संगठन है जिसका अधिकार जनता से ही प्राप्त है, जिसकी शक्ति जनता के प्रतिनिधियों द्वारा कार्यरूप होती है और जिसका सुख जनता ही भोगती है। यही मानव जाति का सार्वभौमिक सिद्धांत है जिसकी नींव पर यह संविधान खडा किया गया है। हम उन सब विधानों, अधिनियमों आध्यादेशों और विज्ञप्तियों को रद्द करते हैं जो इस सिद्धांत के प्रतिकूल हों।'

**संविधान में जनता के अधिकार**—शासन विधान के तीसरे अध्याय में जनता के अधिकारों और कर्तव्यों का उल्लेख है। इनका उल्लेख ३० अनुच्छेदों में विस्तारपूर्वक किया गया है। जिन मूलाधिकारों का वर्णन

संविधान में किया गया है उनको अवध्य माना गया है। इस संविधान में पूर्व नागरिकों के मूल अधिकार अधिनियमों की सीमा के भीतर ही भोगे जा सकते थे। यह प्रतिबन्ध अब नये संविधान से हटा दिया गया है। संक्षेप में मूलाधिकार ये हैं—सब लोगों के व्यक्तित्व का आदर किया जायगा। अधिनियम बनाने में और अन्य शासन सम्बन्धी कार्यों में उनके जीवन सुख व उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा ही सर्वोच्च उद्देश्य रहेगा, यदि ऐसा करने में सार्वजनिक हित में बाधा न पड़े। अधिनियम के अन्तर्गत सब व्यक्ति समान हैं और जाति, सम्प्रदाय, लिङ्ग, सामाजिक मान या वंश के आधार पर उनके राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों में भेद भाव न रखा जायगा। पीयरों और उनकी उपाधियों का कोई मान न होगा। जनता को अपने शासन कर्मचारियों के चुनने व उन्हें पद से हटाने का पूर्ण अधिकार है जिसको किसी प्रकार भी उनसे छीना नहीं जा सकता। प्रौढ़मताधिकार सुरक्षित रहेगा। निर्वाचनों में गुप्तमतदान का ही सर्वदा प्रयोग होगा। निर्वाचक मत देने में अपनी पसन्द के लिए किसी प्रकार भी उत्तरदायी न होगा। प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्वक अपनी क्षतिपूर्ति कराने, शासन कर्मचारियों को हटाने और अधिनियमों, या अध्यादेशों को रद्द कराने या उनमें संशोधन कराने की प्रार्थना करने का अधिकार होगा। किसी राज्य-कर्मचारी के द्वारा यदि किसी व्यक्ति की हानि हुई हो तो वह अधिनियमानुसार उस राज्य कर्मचारी पर या राज्य पर मुकदमा चला सकता है। सिवाय दण्ड के रूप में किसी व्यक्ति को बन्धन में न रखा जायगा। विचारों की व आत्मा की स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न होगा। प्रत्येक व्यक्ति किसी भी धर्म को मान सकता है। राज्य किसी धर्म विशेष को सुविधा न देगा। समुदाय बनाने, वक्तृता देने और समाचार पत्र निकालने की स्वतन्त्रता सुरक्षित रहेगी। चिट्ठी-पत्रियों को खोलकर न पढ़ा जायेगा जब तक लोकहित में बाधा न पड़े। प्रत्येक व्यक्ति को अपना निवास स्थान और व्यवसाय पसन्द करने और बदलने की स्वतन्त्रता रहेगी। प्रत्येक व्यक्ति विदेशों में जा सकता है और अपनी नागरिकता बदल सकता है कोई व्यक्ति किसी प्रकार की विद्या या शिक्षा प्राप्त कर सकता है। विवाह बंधन में सम्पत्ति के ऊपर स्त्री पुरुष का समान अधिकार होगा। पसीयत करने, नागरिकता अपनाने, विवाहोच्छेद आदि के सम्बन्ध में जो अधिनियम बनाये जायेंगे वे स्त्री पुरुष की वैयक्तिक प्रतिष्ठा और उनकी समानता के दृष्टिकोण को सामने रखकर ही बनाये जायेंगे। प्रत्येक व्यक्ति अधिनियमानुसार अपनी योग्यता के अनुकूल शिक्षा पाने का

अधिकारी होगा। वह एक निश्चित परिमाण में सुखमय व सांस्कृतिक जीवन बिताने का अधिकारी होगा, तदर्थ राज्य जीवन के सब क्षेत्रों में स्वास्थ्य व जीवन निर्वाह की उचित व्यवस्था करेगा। प्राथमिक शिक्षा नि शुल्क होगी। सब व्यक्तियो का यह कर्तव्य और अधिकार होगा कि वे काम करें। अधिनियम से मजदूरी, काम करने के घंटे, विश्राम आदि के बारे में व्यवस्था की जायेगी। बच्चों से मजदूरी न कराई जायेगी। मजदूरों को सगठन बनाने और सामुदायिक रूप से मजदूरी तय करने का अधिकार होगा। वैयक्तिक सम्पत्ति का अधिकार सुरक्षित रहेगा। सम्पत्ति के अधिकार की व्याख्या लोकहित को ध्यान में रख कर अधिनियम से होगी, वैयक्तिक सम्पत्ति क्षतिपूर्ति देकर राज्य द्वारा सार्वजनिक कार्य के लिये ली जा सकती है। किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वतन्त्रता या उसके जीवन से वंचित न किया जायेगा न उसे अपराध के लिये दण्ड दिया जायेगा जब तक इस सम्बन्ध में अधिनियमानुसार आवश्यक कार्यवाही न हो जाय। बिना वारंट के न तलाशी ली जायेगी न कोई व्यक्ति बिना वारंट के पकडा जायेगा। सब फौजदारी (अपराधी) अभियोगो में जल्दी से जल्दी एक पक्षपातरहित न्यायालय से जांच करायी जायेगी।

## विधानमंडल

संविधान ने डाइट (Diet) को राज्यशक्ति की प्रमुख संस्था माना है और अधिनियम बनाने का अधिकार केवल इसी संस्था को दिया है।

**द्विगृही मंडल**—विधानमंडल में दो सदन हैं, एक का नाम प्रतिनिधि सदन और दूसरे का कौंसिलर्स सदन है। दोनों सदनों में निर्वाचित व्यक्ति ही सदस्य बनते हैं। सदस्यो की संख्या अधिनियम से निश्चित की जाती है। प्रतिनिधि सदन के सदस्य चार वर्ष के लिये चुने जाते हैं। कौंसिलर्स ६ वर्ष के लिये चुने जाते हैं। उनमें से आधे प्रति तीन वर्ष बाद हट जाते हैं और उनके स्थान पर नये सदस्य चुन लिये जाते हैं। निर्वाचन क्षेत्र, मतदान प्रणाली आदि मामले अधिनियम द्वारा निश्चित होते हैं। एक व्यक्ति दोनों सदनो का एक ही समय सदस्य नहीं रह सकता। दोनों सदनो के सदस्यो से अधिनियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। यदि अधिनियम ने प्रतिकूल नियम न बनाया हो तो प्रत्येक सदस्य को यह सुविधा रहेगी कि जब डाइट की बैठक हो रही हो उसे किसी अपराध के लिये पकडा नही जा सकता। यदि बैठक होने से पूर्व किसी सदस्य को पकड लिया गया हो तो सदन के कहने पर बैठक के समय भर के लिये उसे स्वतन्त्र कर दिया

जायगा। सदनों के भीतर भाषणा में जो-जो बातें कही जायें या जिस प्रकार प्रस्तावों पर मत-दान किया जाय उसके लिये किसी सदस्य को कानून-बद्ध नहीं किया जाता।

**डाइट का अधिवेशन**—वर्ष में डाइट का एक अधिवेशन अवश्य किया जाना चाहिए। मन्त्रिपरिषद् विशेष अधिवेशन भी बुला सकती है। जब एक चौथाई या अधिक सदस्य विशेष अधिवेशन करने की मांग उपस्थित करें तो मन्त्रिपरिषद् को विशेष अधिवेशन बुलाना पड़ता है। प्रतिनिधि सदन के सदस्यों की संख्या ४६६ है, जो ८ वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। कौंसिलर्स के सदन के सदस्यों की संख्या २५० है, जिनमें से १०० सारे राज्य से और १५० प्रिफेक्टी जिलों से निर्वाचित होते हैं।

**प्रतिनिधि सदन का विघटन**—मन्त्रिपरिषद् की सम्मति से जब सम्राट प्रतिनिधि सदन का विघटन कर दे तब विघटन होने के चालीस दिन के भीतर नये सदस्यों का निर्वाचन होना चाहिए और निर्वाचन होने वाले दिन से ३० दिन के भीतर डाइट का अधिवेशन होना चाहिए। जब प्रतिनिधि सदनों का विघटन हो जाता है तो साथ साथ ऊपरी सदन अर्थात् हाउस आफ कौंसिलर्स बन्द हो जाता है। किन्तु संकटकाल में मन्त्रिपरिषद् ऊपरी सदनों का अधिवेशन इस विघटन काल में भी कर सकती है। इस अधिवेशन में जो योजनायें तैयार हों वे स्थायी रहती हैं और यदि अगले अधिवेशन में डाइट इन योजनाओं को दस दिन के भीतर स्वीकार नहीं करती तो ये योजनायें रद्द समझी जाती हैं।

**कार्य पद्धति**—प्रत्येक सदन अपने सदस्यों की योग्यता सम्बन्धी प्रश्नों को स्वयं तय करता है। कोई सदस्य अपने स्थान से तब तक नहीं हटाया जा सकता जब तक कि उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई मत से इस विषय का प्रस्ताव पास न हो जाय। एक तिहाई या अधिक सदस्यों की उपस्थिति होने पर ही सदन का कार्य हो सकता है सिवाय जहां संविधान के अनुसार अधिक बहुमत की आवश्यकता हो सदनों के निर्णय सामान्य बहुमत से होते हैं। जब दोनों पक्ष में मत बराबर हों तो सदन का प्रधान प्रश्न का निर्णय करता है। प्रत्येक सदन अपने प्रधान व अन्य कर्मचारियों को चुनता है। सदनों की बैठकें सब के लिये खुली होती हैं। किन्तु यदि उपस्थित सदस्यों की दो तिहाई इस विषय का प्रस्ताव पास कर तो गुप्त बैठकें भी हो सकती हैं। सदनों की कार्यवाही का लेख रखा जाता है और प्रकाशित किया जाता है। यदि गुप्त बैठक की कार्यवाही को गुप्त

समझा जाता है तो उसे प्रकाशित नही किया जाता। कार्यपद्धति के अन्य नियम प्रत्येक सदन स्वय निश्चित करता है।

**अधिनियम कैसे बनते हैं**—जब कोई विधेयक (Bill) दोनो सदनो में पास हो जाता है तो वह विधि (Law) बन जाता है। यदि कोई विधेयक प्रतिनिधि सदन से पास होने पर ऊपरी सदन में जाये और वहा वह स्वीकृत न हो तो वह विधेयक तभी अधिनियम बन सकता है जब वहा से लौटने पर प्रतिनिधि सदन फिर दो-तिहाई या अधिक मत से उसे पास कर दे। यदि ऊपरी सदन किसी विधेयक के पाने पर ६० दिन के भीतर कोई निर्णय न करे तो वह विधेयक उस सदन से अस्वीकृत समझा जाता है। यदि प्रतिनिधि सदन चाहे तो ऐसा मतभेद होने पर दोनो सदनो की सयुक्त बैठक बुला सकता है जिसमें इस मतभेद पर विचार हो सके यदि ऐसी सयुक्त बैठक का आयोजन अधिनियम द्वारा कर दिया जाये।

बजट प्रतिनिधि सदन में ही प्रस्तुत किया जाता है। विचार करने के पश्चात् यदि ऊपरी सदन ऐसा निर्णय करे जो प्रतिनिधि सदन के निर्णय से भिन्न हो या जब सयुक्त-बैठक मे भी कोई एकमत न हो सके या जब बजट के पाने से ३० दिन के भीतर ऊपरी सदन कोई अन्तिम निर्णय न कर पावे, तो प्रतिनिधि सदन का बजट के सम्बन्ध में निर्णय डाइट का निर्णय समझा जाता है। यही क्रम सधियो मे विचार करने पर भी अपनाया जाता है।

प्रत्येक सदन सरकार के सम्बन्ध में जाच कर सकता है और इस जाच में उल्लेख पत्रो को मगा सकता है और गवाहो को बुला सकता है। प्रधान मत्री व अन्य मत्री दोनो सदनो में से किसी में भी उपस्थित रह सकते है और भाषण दे सकते है चाहे वे सदन के सदस्य हो या न हो। यदि सदन में किसी प्रश्न का उत्तर देने या सफाई देने के लिए उन्हे बुलाया जाये तो आवश्यक है कि वे उपस्थित हो।

डाइट दोना सदनो के सदस्यो में से न्यायाधीशो पर लगाये गये अभियोगो की जाच के लिए एक विशिष्ट न्यायालय स्थापित कर सकती है।

**संविधान संशोधन**—पूर्व सविधान म सविधान का सशोधन सम्राट ही कर सकता था। नये सविधान में यह आयोजन है कि सविधान सशोधन का प्रस्ताव डाइट में रखा जाय और दोना सदनो में जब यह प्रस्ताव कुल सदस्यो के दो तिहाई मत से स्वीकार हो जाये तब लोक निर्णय के लिए

प्रस्तुत किया जाये। लोक निर्णय में जितने मत पड़ें उन में से बहुमत द्वारा पक्ष में होने से संशोधन स्वीकृत समझा जाता है। इस प्रकार स्वीकृत होने पर तुरन्त ही सम्राट जनता की ओर से उसे घोषित कर देता है। इस प्रकार सर्वोच्च अधिनियम के संशोधन में जनता की सर्वोच्च सत्ता और सम्राट की प्रतिष्ठा दोनों का समुचित आदर हो जाता है।

## कार्यपालिका

सम्राट—जापान का शासन विधान कार्यपालिका के शोभनार्थ और कार्यार्थ अंगों में स्पष्ट रूप से भेद करता है। सम्राट राज्य और प्रजा की एकता का प्रतीक माना गया है जिसको सर्वोच्च सत्ता की स्वामिनी प्रजा ने अपनी इच्छा से ऊँची पदवी प्रदान की है। डाइट से पास किये हुये राजघराने के अधिनियम के अनुसार राजा के उत्तराधिकारी निश्चित होते हैं। सम्राट केवल वैधानिक रूप से राज्य का अध्यक्ष है क्योंकि राज्य के प्रत्येक कार्य में मन्त्रिपरिषद् की स्वीकृति होना आवश्यक है जो उसके लिये जिम्मेदार रहती है। शासन क्षेत्र में सम्राट को कोई शक्ति नहीं दी गई है। उसके सारे अधिकार राज्य की अध्यक्षता से ही सम्बन्ध रखते हैं। सम्राट डाइट से मनोनीत व्यक्ति को प्रधानमन्त्री नियुक्त करता है। इसी प्रकार वह मन्त्रीमंडल से मनोनीत व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश नियुक्त करता है। मन्त्रिपरिषद् की सलाह और सम्मति से सम्राट निम्नलिखित राजकार्य करता है विधान-संशोधनों अधिनियमों मन्त्रिपरिषद् के आदेशों और सन्धियों को घोषित करना जिससे उन पर कार्य हो सके डाइट का अधिवेशन बुलाना प्रतिनिधि सदन का विघटन करना, डाइट के सदस्यों का सामान्य निर्वाचन करने का आदेश देना मन्त्रि व अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति या पदच्युति का अधिनियमानुसार साक्षी होना, मन्त्रियों व राजदूतों के अधिकारपत्रों पर साक्षी होना, सामान्य या विशेष क्षमादान पत्र पर या दण्ड का रूप बदलने वाली आज्ञा पर साक्षी रूप से हस्ताक्षर करना उपाधियाँ प्रदान करना, विदेशी राजदूतों का स्वागत करना और उत्सवों पर अध्यक्षरूप से उपस्थित होना।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि नये संविधान से जापान का सम्राट ब्रिटिश सरकार के समान ही बन गया है। दोनों में से किसी को शासन करने का अधिकार नहीं है किन्तु प्रत्येक राष्ट्र का चिन्हरूप से अध्यक्ष है। किन्तु यह न भूलना चाहिये कि ब्रिटिश सम्राट अपने विशेषाधिकार १७ वी

शताब्दी में ही खो चुका था। तभी से अनेकों झगड़ों तथा रक्तपात के बाद प्रजा के प्रतिनिधियों की वर्तमान प्रतिष्ठा और उनके अधिकार प्राप्त हो पाये हैं। जापान में सम्राट् की शक्ति को नये सविधान मे लेखनी के एक झटके से समाप्त अवश्य कर दिया है किन्तु मानव सस्कार इतनी जल्दी नही मिटते, अतएव यह नही कहा जा सकता कि जापान का सम्राट अपनी नई स्थिति से संतुष्ट रह सकेगा और प्रजा कहाँ तक अपनी नई प्राप्त की हुई शक्ति की रक्षा करने मे समर्थ हो सकेगी। जापान में सम्राट की शक्ति यहा तक सीमित कर दी गई है कि संविधान के आठवें अनुच्छेद के अनुसार जापान के राज-घराने को डाइट की अनुमति के बिना किसी सम्पत्ति को बेचने या पुरस्कार स्वरूप देने का अधिकार भी नहीं है।

मन्त्रिपरिषद्—राज्य की कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिपरिषद् में विहित की गई है जिसमें प्रधान मन्त्री अध्यक्ष होता है और अधिनियमानुसार नियुक्त किये गये मन्त्री सदस्य बनते हैं। जापान के पूर्व इतिहास को ध्यान में रख कर ही शायद यह स्पष्ट कर दिया गया है कि प्रधान मन्त्री और अन्य मन्त्री सब असैनिक नागरिक होंगे। जापान मे सम्राट के ऊपर यह नही छोडा गया है कि वह लोक सभा के बहुसख्यक पक्ष के नेता को बुलाकर मन्त्रिपरिषद् बनाने का आदेश दे। यहा डाइट ही अपने सदस्यो में से प्रस्ताव द्वारा किसी का नाम नियुक्त करती है, जिसे सम्राट घोषित कर देता है। यदि इस नाम के विषय मे दोनो सदन एकमत न हों और सयुक्त बैठक करने के पश्चात् भी उनमे समझौता न हो या ऊपरी सदन प्रतिनिधि सदन के प्रस्ताव को १० दिन के भीतर स्वीकार न करे तो प्रतिनिधि सदन का निर्णय ही डाइट का निर्णय समझ लिया जाता है। मन्त्रिपरिषद् सामुदायिक रूप से शासन सम्बन्धी विषयों में डाइट को उत्तरदायी है। प्रधानमन्त्री अन्य मन्त्रियो को नियुक्त करता है। अधिकतर मन्त्री निचले सदन में से ही चुने जाते हैं। प्रधान मन्त्री किसी भी मन्त्री को हटा सकता है, यदि डाइट अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे या विश्वास के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दे तो मन्त्रिपरिषद् को या तो पद त्याग करना पड़ता है या दस दिन के भीतर प्रतिनिधि सदन का विघटन कराना पडता है। नये प्रधानमन्त्री के नियुक्त होने तक दोनो अवस्थाओं में पुराने मन्त्री कार्य चलाते रहते हैं।

प्रधानमन्त्री मन्त्रिपरिषद् की ओर से डाइट के सामने सब विधेयकों और घरेलू तथा परराष्ट्र सम्बन्धी रिपोर्टों को प्रस्तुत करता है और शासन के विभिन्न विभागो पर नियन्त्रण रखता है और उनके काम की देख-भाल

करता है। सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् निम्नलिखित कार्य करती है।

अधिनियमों को कार्यान्वित करना—राज्य के सब प्रबन्ध को चलाना, परराष्ट्र सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करना, सन्धि करना, इस कार्य में उसे पहले ही या बाद में डाइट की स्वीकृति लेनी पड़ती है, अधिनियम से निर्धारित आदेशों के अनुसार सिविल सर्विस का प्रबन्ध करना, बजट तैयार करके डाइट के सामने रखना, विधान व अन्य अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये परिषद् के आदेश निकालना, सब बन्दियों को छोड़ने का, दण्ड के रूप को बदलने का और किसी शक्ति के अधिकारों को उसे वापिस देने का निश्चय करना। मन्त्रिपरिषद् के सब आदेशों और सब अधिनियमों पर सम्बन्धित मंत्री के हस्ताक्षर होते हैं और प्रधानमंत्री के समर्थनसूचक हस्ताक्षर होते हैं। प्रधानमंत्री की सम्मति के बिना किसी मंत्री के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि उनके विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार ही नहीं है।

## न्यायपालिका

फिर निरीक्षण होता है। यदि इस निरीक्षण में बहुसंख्यक मतदाता किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने के पक्ष में होते हैं तो वह न्यायाधीश अपने पद से हटा दिया जाता है।

**सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति**—सर्वोच्च न्यायालय न्याय करने वाली अन्तिम संस्था है। सर्वोच्च न्यायालय को संविधान से यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अधिनियम, आदेश, नियम या सरकारी कार्य के वैध-अवैध होने का निश्चय कर सके। संविधान में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि संविधान राष्ट्र का सर्वोच्च अधिनियम है और कोई भी अधिनियम, सम्राट की विज्ञप्ति या अन्य सरकारी कार्य जो संविधान के प्रावधानों के विरुद्ध होगा वह अवैध समझा जायेगा इसी संविधान की कसौटी पर अधिनियमों के जाचने का काम सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। जापान का सर्वोच्च न्यायालय इस प्रकार संयुक्त-राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान ही शक्तिशाली है।

## स्थानीय शासन

नये संविधान में स्थानीय संस्थाओं के कार्यकारी अफसरों का निर्वाचन आवश्यक कर दिया गया है। स्थानीय संस्थाओं को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपनी जायदाद का स्वयं प्रबन्ध करें और अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं नियम बना कर करें।

## आर्थिक प्रावधान

संविधान के सातवें अध्याय में आर्थिक विषयों के बारे में कुछ प्रावधान दिये हुये हैं। उनके अनुसार डाइट को ही राष्ट्रीय आय-व्यय का प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया है। डाइट की सम्मति के बिना किसी प्रकार का खर्चा नहीं किया जा सकता। डाइट मन्त्रिपरिषद् के आधीन एक सुरक्षित कोष रख सकती है जिसमें से मन्त्रिपरिषद् पहले से न जाने हुये खर्चे कर सकती है। इस खर्चे की स्वीकृति बाद में डाइट से लेनी पड़ती है। इसी अध्याय में कहा ... राजघराने की सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति है। राजघराने का कर ... डाइट बजट के साथ मंजूर करती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है ... ... जनिक मुद्रा या अन्य सम्पत्ति किसी ऐसी धार्मिक संस्था को न ... या किसी शिक्षा या दान के ऐसे काम में न लगाई जायगी जो ... र के आधिपत्य में न हो। वर्ष में कई बार या कम से कम एक बार ... न्त्रिपरिषद् डाइट और जनता के सामने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। पूर्व-विधान के प्रतिकूल अर्थ सम्बन्धी मामलों में डाइट की शक्ति बहुत बढ़ गई है। जापान के ...

रहता है। सामान्य प्रशासन के अतिरिक्त मन्त्रिपरिषद् निम्नलिखित कार्य करती है।

**अधिनियमों को कार्यान्वित करना**—राज्य के सब प्रबन्ध को चलाना परराष्ट्र सम्बन्धी मामलों का प्रबन्ध करना, सन्धि करना, इस कार्य में उसे पहले ही या बाद में डायट की स्वीकृति लेनी पड़ती है, अधिनियम से निर्धारित आदर्शों के अनुसार सिविल सर्विस का प्रबन्ध करना, बजट तैयार करके डायट के सामने रखना, विधान व अन्य अधिनियम के प्रावधानों को कार्यान्वित करने के लिये परिषद् के आदेश निकालना, सब बन्दियों को छोड़ने का, दण्ड के रूप को बदलने का और किसी व्यक्ति के अधिकारों को उसे वापिस देने का निश्चय करना। मन्त्रिपरिषद् के सब आदेशों और सब अधिनियमों पर सम्बन्धित मन्त्री के हस्ताक्षर होते हैं और प्रधानमन्त्री के समर्थनसूचक हस्ताक्षर होते हैं। प्रधानमन्त्री की सम्मति के बिना किसी मन्त्री के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही नहीं की जा सकती, किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि इनके विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार ही नहीं है।

## न्यायपालिका

न्यायकारी सत्ता एक सर्वोच्च न्यायालय और अन्य निम्न श्रेणी के न्यायालयों में विहित की गई है। ये न्यायालय अधिनियम द्वारा स्थापित किये जाते हैं। असाधारण न्यायालय स्थापित नहीं किये जा सकते न कार्यपालिका या उसके किसी प्रतिनिधि को अन्तिमतः न्याय करने की शक्ति दी जा सकती है। सब न्यायाधीश अपने काम करने में स्वतन्त्र रहते हैं, उन पर केवल संविधान का और अतः अधिनियमों का ही प्रतिबन्ध रहता है। न्याय पद्धति के नियमों को सर्वोच्च न्यायालय निर्धारित करता है। सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश और अधिनियम से निश्चित संख्या में अन्य न्यायाधीश होते हैं। प्रधान न्यायाधीश को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की मन्त्रिपरिषद् नियुक्त करती है। छोटे न्यायालयों के न्यायाधीश सर्वोच्च-न्यायालय द्वारा [illegible] की हुई सूची में से मन्त्रिपरिषद् द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। [illegible] १० वर्ष तक के लिये नियुक्त किये जाते हैं किन्तु उनकी पुनर्नि[illegible] सकती है। सब न्यायाधीशों को पर्याप्त वेतन दिया जाता है जो उ[illegible] काल में घटाया नहीं जा सकता।

सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के बाद जो प्रा[illegible] सदन के लिये प्रथम निर्वाचन होता है उसमें उनके काम का निरीक्ष[illegible] किया जाता है और ऐसा करने के प्रति दस वर्ष बाद सामान्य निर्वाचन

पिर निरीक्षण होता है। यदि इस निरीक्षण मे बहुसख्यक मतदाता किसी न्यायाधीश को पदच्युत करने के पक्ष में होते हैं तो वह न्यायाधीश अपने पद से हटा दिया जाता है।

**सर्वोच्च न्यायालय की शक्ति**—सर्वोच्च न्यायालय न्याय करने वाली अन्तिम सस्था है। सर्वोच्च न्यायालय को सविधान से यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अधिनियम, आदेश, नियम या सरकारी कार्य के वैध-अवैध होने का निश्चय कर सके। सविधान मे यह स्पष्ट कह दिया गया है कि सविधान राष्ट्र का सर्वोच्च अधिनियम है और कोई भी अधिनियम, सम्राट की विज्ञप्ति या अन्य सरकारी कार्य जो सविधान के प्रावधानो के विरुद्ध होगा वह अवैध समझा जायेगा इसी सविधान की कसौटी पर अधिनियमो के जाचने का काम सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। जापान का सर्वोच्च न्यायालय इस प्रकार सयुक्त राज्य अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के समान ही शक्तिशाली है।

## स्थानीय शासन

नये सविधान में स्थानीय सस्थाओ के कार्यकारी अफसरो का निर्वाचन आवश्यक कर दिया गया है। स्थानीय सस्थाओ को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे अपनी जायदाद का स्वय प्रबन्ध करें और अपने मामलो का प्रबन्ध स्वय नियम बना कर करें।

## आर्थिक प्रावधान

सविधान के सातवें अध्याय में आर्थिक विषयो के बारे में कुछ प्रावधान दिये हुये है। उनके अनुसार डाइट को ही राष्ट्रीय आय-व्यय का प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया है। डाइट की सम्मति के बिना किसी प्रकार का खर्चा नही किया जा सकता। डाइट मन्त्रिपरिषद् के आधीन एक सुरक्षित कोष रख सकती है जिसमें से मन्त्रिपरिषद् पहले से न जाने हुये खर्चे कर सकती है। इस खर्चे की स्वीकृति बाद में डाइट से लेनी पडती है। इसी अध्याय में कहा . राजघराने की सारी सम्पत्ति राज्य की सम्पत्ति है। राजघराने का कर, डाइट बजट के साथ मजूर करती है। यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि सार्वजनिक मुद्रा या अन्य सम्पत्ति किसी ऐसी धार्मिक सस्था को न दी जायगी या किसी शिक्षा या दान के ऐसे काम मे न लगाई जायगी जो . . र के आधिपत्य में न हो। वर्ष में कई बार या कम से कम एक बार . . न्त्रिपरिषद् डाइट और जनता के सामने राष्ट्रीय आर्थिक स्थिति के बारे में रिपोर्ट प्रस्तुत करती है। पूर्व विधान के प्रतिकूल अर्थ सम्बन्धी मामलो में डाइट की शक्ति बहुत बढ गई है। जापान के इस नये सविधान ने सेना को

शक्ति को कम कर दिया और सम्राट की निरंकुशता समाप्त कर दी है। नये संविधान में स्वतन्त्र परामर्श देने वाली संस्थाएँ, जैसे प्रिवीकौंसिल, राजघराने का मंत्री, वृद्ध राजनीतिज्ञ (गेनरो) आदि समाप्त हो गईं और सेना पर सम्राट का सर्वोच्च आधिपत्य भी न रह गया। इसके स्थान पर वास्तविक प्रजातन्त्र शासन की स्थापना हो गई। इस शासन का रूप संसदात्मक है। इसमें कार्यपालिका पार्लियामेंट को उत्तरदायी है और अन्तिम शक्ति जनता के हाथ में है।

## पाठ्य पुस्तकें


Allen, G C—Modern Japan and its Problerrs (George Allen and Unwin)

Pigclow, P—Japan and Her Colonies (Arnold)

Buchan, J. C (Editor)—Japan (Nations of Today setics).

Buck, P. W. and Masland, J W.—Governments of Foreign Powers (1947), Chapters 23-26.

Cole G D H and M I—Modern Politics (Gollancy) pp 248-265.

Cubbins, J. H.—Making of Modern Japan (London 1922)

McGorern, W M—Modern Japan (London 1920).

Naokitchi Kitazawa—The Government of Japan (Princeton University Press)

Nitobe—Japan (Modern World Series).

Quigly, H. S—Japanese Government & Politics (The Century Co)

Statesman Year Book (Latest Edition)

Treat, P. J—The Far East (Harper Bros.)

Upebara G E—The Political Develonment of Japan (London 1910).

Wilson, Woodrow—The State (New Edition) pp. 526-533